आदरणीय
श्री श्यामलाल जी गुप्ता
को
सस्नेह समर्पित

तीसरे संस्करण की प्रस्तावना

यूरोप के इतिहास का अध्ययन प्रत्येक भारतवासी के लिये आवश्यक है क्योंकि उसके अध्ययन से हम अनुमान लगा सकते हैं कि किस प्रकार देश उन्नति करते हैं। संसार की वर्तमान स्थिति का ठीक-ठीक पता भी यूरोप के इतिहास से मिल सकता है। वर्तमान युग में कूपमण्डूक बन कर न कोई प्राणी और न कोई देश जी सकता है। प्रत्येक देश को दूसरे देशों की शक्ति का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये अन्यथा सर्वनाश होने का डर ही रहेगा।

इस पुस्तक के नये संस्करण में बहुत कम संशोधन किये गये हैं परन्तु पिछले कुछ वर्षों में संसार में हुई घटनाओं का वर्णन कर दिया गया है।

III M १०
लाजपत नगर
नई दिल्ली

विद्याधर महाजन
सावित्री महाजन

पहले संस्करण की प्रस्तावना

लोग कहते हैं कि इतिहास के अध्ययन का कोई लाभ नहीं परन्तु हम इससे सहमत नहीं हैं। हमारी अपनी धारणा है कि अपने देश के इतिहास के पठन-पाठन से अपने देश की कमज़ारियों का पता लगता है और भविष्य में उनसे वचने के लिए प्रेरणा मिलती है। दूसरे देशों के उज्ज्वल इतिहास को पढ़ कर उत्साह पैदा होता है और कार्य करने के लिए शक्ति मिलती है। यह एक बहुत बड़ा लाभ है जिसके साथ किसी और चीज़ की तुलना नहीं की जा सकती।

शताब्दियों के वाद हमारा देश स्वतन्त्र हुआ है। देश को स्वतन्त्र कराने के लिए हमारे पूर्वजों ने बहुत कष्ट सहे और अब हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम उस स्वतन्त्रता को कायम रखने के लिए अपने जीवन की वलि लगा दें। यह तभी हो सकता है यदि हम अपने तथा दूसरे देशों के इतिहास का अध्ययन करें। ऐसा करने से हम किसी देश अथवा जाति से मार न खायेंगे और हमारा देश दिन-प्रतिदिन उन्नति की ओर आगे वढ़ेगा।

हमारा विचार है कि आधुनिक यूरोप का इतिहास समस्त संसार के लिए वहुत शिक्षाप्रद है और संसार के जिन देशों ने उन्नति आजकल की है उन सबने यूरोप से ही प्रेरणा तथा प्रोत्साहन प्राप्त किया है। इसी उद्देश्य को आगे रखकर यह पुस्तक हिन्दी में प्रकाशित की जा रही है। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है और इस पुस्तक का हिन्दी में प्रकाशन अनिवार्य था। हम आदरणीय श्री श्यामलाल जी गुप्ता के बहुत आभारी हैं। उन्होंने इस पुस्तक को छापने में हमारी बहुत सहायता की है, यह पुस्तक उन्हीं को भेंट की गई है।

यह पुस्तक भारत के विद्यार्थियों को यूरोप के इतिहास का पर्याप्त ज्ञान देने के लिए लिखी गई है। पुस्तक को सब प्रकार से उपयोगी बनाने के लिए भरसक यत्न किया गया है परन्तु यदि कोई महोदय किसी त्रुटि अथवा दोष की ओर निर्देश करेंगे तो धन्यवाद के साथ उनके सुझाव को स्वीकार किया जायेगा और आगामी संस्करण में संशोधन कर दिया जायेगा।

१६ मार्च, १९६१ | विद्याधर महाजन
III. एम० | सावित्री महाजन
२०, लाजपतनगर, नई दिल्ली

विषय-सूची
(CONTENTS)

अध्याय विषय

चित्रों की सूची

(LIST OF ILLUSTRATIONS)

मानचित्रों की सूची

(LIST OF MAPS)

अध्याय १

फ्रांस-क्रान्ति से पूर्व का यूरोप

(Europe on the Eve of the French Revolution)

सन् १७८९ में दो ऐसी घटनाएँ घटीं, जिनका संसार में महत्त्वपूर्ण स्थान है पहली घटना थी फ्रांस में क्रान्ति का फूटना और दूसरी थी संयुक्तराज्य अमेरिका में संविधान का प्रचलित होना। जहाँ दूसरी घटना से संसार में संगठन और विस्तार की भावना के युग का आरम्भ हुआ वहाँ पहली घटना ने विश्व को अव्यवस्था के गर्त में फेंक दिया।

फ्रांस की क्रान्ति के फूटने के साथ-ही-साथ "यूरोप का इतिहास एक राष्ट्र, एक घटना और एक व्यक्ति का इतिहास बन गया। वह राष्ट्र फ्रांस, वह घटना फ्रांस की क्रान्ति और वह व्यक्ति नेपोलियन है।" इससे पूर्व कि फ्रांस की क्रान्ति के विषय में कुछ कहा जाये, यूरोप की महत्त्वपूर्ण घटना से पूर्व के यूरोप की स्थिति का उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है।

साधारणतः यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन यूरोप की वागडोर रईसों के हाथों में थी। यह बात केवल उन देशों पर ही लागू नहीं होती जहाँ राजाओं की शासन-प्रणाली थी, अपितु उन पर भी लागू होती है जहाँ प्रजातन्त्रात्मक शासन चलता था। वेनिस का प्रजातन्त्र एक विशिष्ट वर्ग द्वारा शासित था। यहीं प्रणाली स्विट्ज़रलैण्ड में भी चालू थी। इंगलैण्ड में भी, जहाँ संसद् शक्तिशाली थी, सत्ता जनता की अपेक्षा बड़े जमींदारों के हाथों में थी। जनसाधारण का तो कोई मूल्य ही न था। यही दशा अन्य यूरोपीय देशों यथा आस्ट्रिया, हंगरी, प्रशिया, रूस, फ्रांस, स्पेन और पोलैण्ड इत्यादि की भी थी। अधिकांश यूरोपीय देशों के शासक स्वेच्छाचारी थे। यद्यपि अठारहवीं सदी में उन्हें उदार स्वेच्छाचारी शासक कहा जाता था। जनता को अपने देश के शासन में कोई अधिकार प्राप्त न था। उन्हें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता न थी। उनकी प्रत्येक इच्छा शासकों की इच्छा पर निर्भर रहा करती थी। लगभग यूरोप भर में मुज़ारों की प्रथा का बोलबाला था।

उस युग में यूरोप के शासक दगाबाज़ और आचार-हीन थे। अठारहवीं शताब्दी में अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र काफी सीमा तक गिर चुका था। फ्रेड्रिक महान् जैसा व्यक्ति भी मेरिया थिरेसा के पिता चार्ल्स षष्ठम को वचन देने पर भी सिलेसिया का प्रदेश हड़पने में नहीं हिचका था। रूस, प्रशिया और आस्ट्रिया ने सामूहिक रूप से पोलैण्ड के अस्तित्व को समाप्त करने का षड्यन्त्र रचा था। यह वह समय था जब अड़ोस-पड़ोस के निर्बल राष्ट्रों को समाप्त करके अपने देश की सीमाओं को बढाने का पागलपन प्रायः सभी राजा लोगों में पनप रहा था। "जाति और राष्ट्रों की सीमाओं

का कोई मूल्य नहीं रह गया था।" प्रो० हौलण्ड रोज़ के अनुसार "वंशाधिकार और सन्धि-प्रतिज्ञा को ईसाइयत फैलने के समय जो पवित्रता प्राप्त थी, वह नष्ट हो गई और इसके स्थान पर राज्य-कूटनीति को मान्यता दी गई, जिसका मुख्य उद्देश्य राज्य की सीमा का विस्तार और मण्डियों को हथियाना था।" प्रो० हेजन के अनुसार, "प्राचीन यूरोप की व्यवस्था जिन सिद्धान्तों पर आधारित थी, उन्हीं के प्रति विद्रोह उठ खड़ा हुआ। व्यवस्था, कानून और सन्धियों के प्रति श्रद्धा इसके मूल आधार थे।"

लगभग यूरोप भर में विशेष-अधिकार-प्राप्त वर्ग समाये थे। इनमें से कुछ वर्गों को तो कर देना ही न होता था और कुछ नाममात्र का कर देकर छुटकारा पा लेते थे। इस प्रकार टैक्स का सारा भार विशेष अधिकारों से हीन लोगों पर आ पड़ता था। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यूरोप का सम्पूर्ण समाज सामन्तशाही प्रणाली पर आधारित था और जागीरदार अपने क्षेत्रों में एक छोटे सम्राट् की तरह शासन करते थे। मुजारों की दशा दीन थी। उन्हें खेती का कार्य सौंप दिया जाता था और उपज से प्राप्त धन का बहुत बड़ा भाग जागीरदारों की जेबों में पहुँचता था। किसी के शब्दों में, "यूरोपीय समाज के ढाँचे का निचला भाग दुःखद दासता की शृंखलाओं से जकड़ा था। या यों कहें कि वह अरक्षित और अविकसित मानवों का एक ऐसा झुण्ड था, जिसके लिए विकास और प्रगति के सभी मार्ग बन्द थे।" कतिपय लोगों को ही विशेपाधिकार प्राप्त थे, शेष समाज असमानता और अव्यवस्था से पीड़ित था। यूरोप के जनसाधारण में जाग्रति लेशमात्र को न थी। यही स्थिति एक लम्बे अर्से तक बनी रही।

धार्मिक दृष्टि से पश्चिमी यूरोप और मध्य यूरोप मुख्य रूप से अव्यवस्थित था। उत्तर में प्रोटैस्टैण्ट और दक्षिण में रोमन कैथोलिक थे। मध्य में स्विट्ज़रलैण्ड और सवाय की जनता प्रोटैस्टैण्ट थी। पोलैण्ट के लोग कैथोलिक थे। पूर्वी यूरोप में यूनानी चर्च ने रूस और बलकान राज्यों पर अपना प्रभाव जमा रखा था। यहूदी यूरोप भर में फैले हुए थे। कहीं-कहीं तो उनसे अच्छा व्यवहार होता था, किन्तु प्रायः उन्हें यातनाएँ पहुँचाई जाती थीं।

यूरोप धार्मिक संघर्ष से अछूता न था। 'विभिन्न धर्मों के अनुयायी भी राष्ट्र-भक्त हो सकते हैं' यह भावना उन दिनों जोर पकड़ रही थी। 'मनुष्य मात्र की चिन्ता की जानी चाहिए' यह भावना भी पैर जमा रही थी। वैज्ञानिक खोज की लगन ने भी इस भावना को बल दिया। धर्मान्धता क्रमशः घट रही थी।

रोमन कैथोलिक चर्चों पर आक्रमण होते थे। इस प्रकार इनकी शक्ति क्षीण हो रही थी। १७६३ में एक रोमन कैथोलिक धर्माधिकारी द्वारा लिखित—"On the Present State of Church and the Lawful Authority of the Roman Pontiff" नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में धर्माधिकारियों (Bishops) पर पोप के अधिकार का विरोध किया गया। जोज़फ द्वितीय पर इस पुस्तक का बड़ा प्रभाव पड़ा और उसने चर्च को अपने अधिकार में कर लिया।

१७१३ में पोप को जेनिसिट्सों के विरुद्ध बहिष्कार घोषणा (Bull) को

वापस लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। १७५९ में जेसुइट्सों (Jesuits) को पुर्तगाल से निकाल दिया गया। १७६४ में उनके मत का फ्रांस में दमन किया गया। १७६७ में उन्हें स्पेन, सिसली और पारमा से निकाल दिया गया। १७७३ में पोप ने जेसुइट्सों के मत को समाप्त कर दिया। केवल रूस और प्रशिया में ही इन लोगों को शरण मिली।

जर्मनी (Germany)—राजनैतिक दृष्टि से यूरोप के बहुत से देश अपनी राज्य-सीमाओं का विस्तार करने तथा सत्ता हथियाने में लीन थे। जर्मनी असंगठित तथा निर्बल था। यूरोप में ३६० से भी अधिक सर्वाधिकार-सम्पन्न राष्ट्र थे और उन्हें परस्पर जोड़ने वाली कड़ी उनका 'पवित्र रोम साम्राज्य' (Holy Rome Empire) का सदस्य होना था। पवित्र रोम साम्राज्य का सम्राट् कई शताब्दियों से आस्ट्रिया-हंगरी देश का सम्राट् ही होता रहा था। पवित्र रोम साम्राज्य के अन्तिम प्रबन्ध के लिए एक शाही राज्य-परिषद् थी, किन्तु यह किसी भी कार्य के कर सकने में समर्थ न थी। वाल्टेयर ने कहा है कि "यह पवित्र रोम साम्राज्य न तो पवित्र है और न ही रोम का है और न यह कोई साम्राज्य ही है।" जर्मनी का सम्पूर्ण शासन आस्ट्रिया और प्रशिया के लोग चलाते थे और दोनों ही परस्पर घोर शत्रु थे।

प्रशिया (Prussia)—फ्रेड्रिक महान् के शासन-काल १७४० से १७८६ तक प्रशिया की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ी। इसी सम्राट् ने ही साइलेसिया (Silesia) पर अधिकार किया था। आस्ट्रिया के राज्यारोहण-युद्ध (War of Succession) तथा सप्तवर्षीय युद्ध के समय मेरिया थिरेसा के प्रयत्न करने पर भी और घोर कठिनाइयों के विपरीत फ्रेड्रिक इस प्रदेश पर अधिकार बनाये रहा। यद्यपि सम्राज्ञी केथरीन महान् सारे पोलैण्ड पर अधिकार करना चाहती थी। फ्रेड्रिक ने आस्ट्रिया को अपने साथ मिला कर रूस को पोलैण्ड का कुछ भाग देने के लिए बाध्य कर दिया। परिमाणतः १७७२ में जब पहली बार पोलैण्ड का विभाजन हुआ तो फ्रेड्रिक ने पश्चिमी प्रशिया का प्रदेश अपने हिस्से के रूप में प्राप्त किया। पश्चिमी प्रशिया की सहायता से फ्रेड्रिक ने पूर्वी प्रशिया पर अधिकार कर लिया और इस प्रकार अपने अन्य प्रदेश से मिलाकर प्रशिया की प्रादेशिक एकता की स्थापना की। फ्रेड्रिक ने आस्ट्रिया को बवेरिया पर अधिकार करने से रोककर इसके बदले बेल्जियम पर अधिकार कर लिया। उसने जर्मन-सामन्त संघ (Frustenband or League of Geraman Princes) की स्थापना इस उद्देश्य से की कि जर्मनी में आस्ट्रिया की शक्ति की प्रगति को रोका जा सके। अन्य देशों से व्यवहार करने में फ्रेड्रिक नितान्त सिद्धान्त-हीन था। वह निजी स्वार्थ की नीति का समर्थक था और उसने अपनी नीति के विषय में कहा है, "जो कुछ तुम प्राप्त कर सकते हो करो, तुम उस समय तक गलती पर नहीं हो जब तक तुम्हे प्राप्त वस्तु लौटानी न पड़े।"

"यदि हमें ईमानदार बने रहने से कुछ प्राप्त होता है तो हम ईमानदार ही बने रहेंगे, किन्तु यदि धोखा देना ही आवश्यक हो तो हमें विश्वासघाती बन जाना चाहिये।" साइलेसिया की विजय के विषय में उसने कहा है, "मेरे सैनिक तैयार थे

और मेरा बटुआ भरा था। साइलेसिया वह प्रदेश था जो ब्राण्डनवर्ग वंश (House of Brandenberg) के लिए अत्यन्त लाभदायक था।"

गृह-नीति के दृष्टिकोण से फ्रेड्रिक ने अपने देश की आर्थिक स्थिति में उन्नति की। उसने दलदल से भरे प्रदेशों में से पानी निकलवाकर खेती की वृद्धि की। उसने नई नहरें बनवाईं। आर्थिक सहायता देकर उद्योग को बढ़ावा दिया। अपने देश की आर्थिक उन्नति के लिए दिन-रात अथक परिश्रम किया। वह धार्मिक सहिष्णुता की नीति को मानता था और वह तुर्कों को भी, यदि वे उसके देश की उन्नति में साधक हो सकते तो, आने देने को तैयार था।

७४ वर्ष की आयु में जब फ्रेड्रिक की मृत्यु हुई तो उसने एक दुगुने क्षेत्र वाला और दुगुनी से अधिक जनसंख्या वाला राज्य छोड़ा। वह अपने को राष्ट्र का प्रथम सेवक मानता था, किन्तु उसे समस्त जर्मनी की अपेक्षा प्रशिया के हित का अधिक ध्यान था। वह जर्मन भाषा को एक 'रूखी बड़बड़ाहट' मानता था। इतना कुछ होने पर भी वह सारे जर्मनी में एक महान् राष्ट्रीय नेता माना जाता था। जनता उसका उतना ही सम्मान करती थी जितना कि उससे पूर्व उसने लूथर का किया था।

यद्यपि फ्रेड्रिक ने यूरोप अथवा संसार पर शासन नहीं किया किन्तु फिर भी वह अपने युग का सबसे महान् सम्राट् माना जाता था। उसके सिद्धान्त और 'उदार स्वेच्छाचारी' शासन के ढंग को लगभग आधे तत्कालीन शासकों ने आदर सहित अपनाया। उसकी मृत्यु पर एक किसान ने ये शब्द कहे थे—"अब संसार पर कौन शासन करेगा।"

१७८६ में फ्रेड्रिक महान् की मृत्यु के पश्चात् फ्रेड्रिक विलियम द्वितीय गद्दी पर बैठा। वह एक न्यून बुद्धि और असंयत प्रकृति का व्यक्ति तथा रूस और आस्ट्रिया दोनों का विरोधी था। १७८९ में जब फ्रांस में क्रान्ति हुई तो वह फ्रांस के मामलों की अपेक्षा पोलैण्ड के मामलों में अधिक दिलचस्पी लेता था।

आस्ट्रिया-हंगरी (Austria-Hungary)—आस्ट्रिया-हंगरी में हैप्सबर्ग वंश का शासन था। उनका सम्राट् भी पवित्र रोम साम्राज्य का सम्राट् था। किन्तु इस राज्य की सीमाएँ बिखरी होने तथा साम्राज्य में अनेक जातियों के होने के कारण यह शक्तिशाली नहीं था। जाति, धर्म और भाषा-भेद के कारण उनमें संगठन नहीं था। बोहेमिया, हंगरी, नीदरलैण्ड, मिलान और आस्ट्रिया के लोगों के मध्य एकता का सूत्र निर्बल था।

१७४० से १७८० तक मारया थरेसा आस्ट्रिया पर शासन करती रही। वह उच्च चरित्र की साहसी स्त्री थी। वह आधुनिक काल की महिला शासकों में सबसे महान् थी और उसकी तुलना इंगलैण्ड की महारानी विक्टोरिया से की जा सकती है। उसका पति राजा था, किन्तु वास्तविक शासक वह स्वयं थी। वह दयालु, उदार और सुन्दर थी। उसे जर्मन मैग्यार और स्लाव जातियाँ आदर की दृष्टि से देखती थीं। नववर्ष दिवस के समारोह पर उसकी प्रजा उसका हाथ चूमने के लिए लालायित हो उठती थी। वह एक योग्य शासक और उत्साही सुधारक थी।

इसके ही शासन-काल में पहली बार आस्ट्रिया की सेना ने कदम मिलाकर चलना सीखा था। फ्रेड्रिक महान् ने भी इस बात को माना कि उसके द्वारा किये गये कार्य पुरुष के योग्य थे। यह सत्य है कि सैलीसिया को प्रशिया ने छीन लिया, किन्तु उसने इसे पुनः प्राप्त करने के लिये प्रयत्नों में कसर नहीं छोड़ी। पोलैण्ड के बँटवारे के समय उसे भी हिस्सा मिला।

जोजफ द्वितीय इसका उत्तराधिकारी बना, जो १७६५ में अपने पिता के देहान्त के बाद पवित्र रोम-साम्राज्य का सम्राट् बना। १७८० में यह अपनी माता की मृत्यु के पश्चात् आस्ट्रिया के प्रदेशों का स्वामी बना। वह एक उदार स्वेच्छाचारी राजा था। वह उद्यमी और समझदार था। वह अपनी प्रजा की उन्नति के लिए दिन-रात प्रयत्न करता था।

उसका ध्येय जाति, धर्म और भाषा के भेदों से मुक्त आस्ट्रिया के सारे प्रदेशों को एक सूत्र में बाँध देना था। साम्राज्य की भिन्न-भिन्न जातियों को संगठित करके एक आस्ट्रियन राष्ट्र के रूप में बाँधने का उसका उद्देश्य था। उसने साम्राज्य के भागों की प्राचीन सीमाओं को तोड़ कर सारे साम्राज्य को तेरह प्रदेशों में बाँटकर प्रत्येक प्रदेश का शासन एक सेनापति को सौंप दिया। प्रदेशों को जिलों और नगरों में बाँटकर सभी प्रदेशों में एक जैसी शासन-व्यवस्था स्थापित की। जर्मन भाषा सारे साम्राज्य की राज्य-भाषा घोषित की गई। न्याय-प्रणाली का नये सिरे से संगठन किया गया। सारे देश के लिए एक ही न्याय-विधान लागू कर दिया गया और जनता को न्याय के समक्ष समानता, लेख की स्वतन्त्रता तथा धार्मिक सहिष्णुता प्रदान की गई। उसने बड़ी संख्या में स्कूल बनवाये। उसने जागीरदारों और धर्माधिकारियों के विशेषाधिकार समाप्त करके सबसे खेती की आय का १३ प्रतिशत कर लेना आरम्भ कर दिया। उसने चर्च को अपने अधिकार में लेकर उस पर से पोप के नियंत्रण को कम कर दिया। शिक्षा के क्षेत्र में धर्माधिकारियों का नियंत्रण कम कर दिया। अपने साम्राज्य में उसने मुजारे की प्रथा (serfdom) समाप्त कर दी।

उसके सुधार बिना लोगों की भावना तथा परिपाटियों का ध्यान किये शीघ्रता से लागू किये गये। प्रजा इन सुधारों के लिए तैयार नहीं थी। जोजफ द्वितीय ने यह डींग मारी कि उसने 'दार्शनिकता को अपने साम्राज्य का निर्माता' बनाया है। किन्तु ऐसा करके उसने बड़ी भारी भूल की। उसे यह जानना चाहिए था कि दार्शनिक विचार जन-साधारण के क्रियाशील जीवन में बहुत ही कम स्थान पाते हैं। जोजफ द्वितीय द्वारा स्थापित बुद्धिमत्तापूर्ण महान् सिद्धान्तों के स्तर तक ऊँचा उठना जनसाधारण के लिए बिल्कुल असम्भव कार्य था। परिणामतः उसके सारे सुधार असफल रहे। साम्राज्य को संगठित करने के उसके प्रयत्नों के कारण, साम्राज्य लगभग छिन्न-भिन्न हो गया। आस्ट्रिया-हंगरी साम्राज्य एक बहुमुखी साम्राज्य था और इसको एकजातीय साम्राज्य बनाना असम्भव कार्य था। जोजफ द्वितीय ने असम्भव कार्य करना चाहा। आश्चर्य नहीं कि वह इस कार्य में असफल रहा, किन्तु अपनी मृत्यु के पहले उसने बड़े साहस से सुधार-सम्बन्धी अपने सम्पूर्ण आदेश लौटा लिये। किसी ने

कहा है कि "इस सुधारक के जीवन का सबसे साहसपूर्ण कार्य यह था कि उसने अपना सम्पूर्ण कार्य उल्टा लौटा लिया।"

जोज़फ द्वितीय के विषय में कहा गया है कि "उसे खाना-पीना या मनोरंजन करना भी नहीं आता। वह सरकारी सूचना-पत्रों के अतिरिक्त कुछ पढ़ता भी नहीं।" इतना करने पर भी वह असफल रहा क्योंकि जैसा फ्रेड्रिक महान् ने कहा "उसने पहले कदम के बजाय दूसरा कदम पहले उठाया।" स्वयं जोज़फ ने अपनी कब्र पर लिखने के लिए यह कहा कि "यहाँ वह राजा सोया है जो सब प्रकार की सद्भावनाओं के होने पर भी प्रत्येक कार्य में, जो भी उसने किया, असफल रहा।"

जोज़फ द्वितीय की परराष्ट्र-नीति का भी उल्लेख करना चाहिये। उसकी परराष्ट्र-नीति का मुख्य ध्येय हैप्सबर्ग वंश की जर्मनी में सर्वोच्च सत्ता स्थापित करना तथा अपने साम्राज्य की सीमाओं का पुनर्गठन करना था। जोज़फ द्वितीय ने रूस को सारे पोलैण्ड पर अधिकार करने से रोकने के लिए पोलैण्ड के प्रथम विभाजन के समय प्रशिया का साथ दिया। इसे रूस और प्रशिया के साथ इस लूट का माल भी मिला। वह तुर्कों से बुकोविना लेने में भी सफल रहा। १७१३ की सन्धि के अनुसार होलैण्ड सीमान्त के दुर्गों में सेना रखता था किन्तु जोज़फ ने होलैण्ड को इन दुर्गों का अधिकार छोड़ने पर बाध्य किया। प्रशिया के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए उसने रूस से गठबन्धन किया। उसने आस्ट्रियन-नीदरलैण्ड को बावेरिया से बदलने का प्रयत्न भी किया किन्तु प्रशिया के विरोध के कारण वह ऐसा करने में असफल रहा। उसने तुर्कों को छिन्न-भिन्न करने के विचार से तुर्की के विरुद्ध युद्ध छेड़ा। किन्तु प्रशिया के विरोध के कारण वह अपने कार्य में सफल न हो सका। प्रशिया, इंगलैण्ड और होलैण्ड ने तुर्कों की सहायता के लिए त्रिमुख सन्धि की। ल्युपॉल्ड (Leopold) द्वितीय, जो आस्ट्रिया के सिंहासन पर १७९० में बैठा, १७९१ में युद्ध से हट गया।

फ्रांस-क्रान्ति के पूर्व आस्ट्रिया के साम्राज्य में अत्यन्त बेचैनी थी। यह केवल फ्रांस की क्रान्ति में ही नहीं अपितु रूस और प्रशिया के पोलैण्ड सम्बन्धी षड्यन्त्रों में भी दिलचस्पी रखती थी। फ्रांस-क्रान्ति के लिए यह द्विविधा लाभदायक थी।

रूस (Russia)—१७६२ से १७९६ तक केथरीन महान् रूस पर शासन करती रही। यह एक चतुर और कूटनीतिज्ञ महिला थी और पीटर महान् के पदचिह्नों पर चल रही थी। वह एक उदार स्वेच्छाचारी शासिका थी। वह यूरोप के विद्वानों की संगति में प्रसन्न रहती थी और डिडरोत (Diderot) जैसे साहित्यिकों की संरक्षिका थी। उसने एक दक्ष शासन-प्रणाली की स्थापना की किन्तु जनसाधारण की स्थिति के विषय में वह परवाह नहीं करती थी। जनसाधारण को किसी भी क्षेत्र में स्वतन्त्रता नहीं थी। उसके आदेश ही सर्वत्र कानून थे।

उसकी विदेश-नीति पोलैण्ड और तुर्की के विरुद्ध थी। १७६८ में रूस ने तुर्की के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया। तुर्क परास्त हुए और उन्हें मोलडाविया और वालासिया का प्रदेश छोड़ना पड़ा। १७७५ में कुटचुक—केनार्डजी (Kutchuk—Kainardji) की सन्धि होने पर यह युद्ध समाप्त हुआ। इस सन्धि के कारण रूस को

अज़ोफफ और अन्य बहुत से स्थान प्राप्त हुए, जिसके कारण केथरीन को काला सागर (Black Sea) के उत्तरी तट और अज़ोफफ सागर (Sea of Azoff) पर अधिकार प्राप्त हुआ। काला सागर रूसियों की जहाज़रानी के लिए खुला था। क्रीमिया की स्वतन्त्रता को मान्यता दी गई : रूस ने तुर्की में अपना राजदूत नियुक्त किया। रूसी प्रजा को फिलिस्तीन के तीर्थ-स्थानों पर यात्रा करने की छूट मिल गई। तुर्की में बसे हुए यूनानी ईसाइयों की रक्षा के लिए रूस को तुर्की के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त हुआ। रूस और तुर्की की यह सन्धि अधिक समय तक नहीं चल सकी। १७८७ में पुनः युद्ध आरम्भ हो गया। इस अवसर पर केथरीन ने जोज़फ द्वितीय से तुर्की को समाप्त करने के लिए मेल कर लिया। १७९१ में आस्ट्रिया को इंगलैण्ड, प्रशिया और पवित्र देश (होलीलैण्ड Holyland) के त्रिमुखी गठजोड़ के कारण इस युद्ध से अलग होना पड़ा। रूस किसी प्रकार अकेला ही इस युद्ध को लड़ता रहा, जो १७९२ में जेस्सी (Jassy) की सन्धि होने पर समाप्त हुआ। इस सन्धि के द्वारा तुर्की को क्रीमिया पर रूस का अधिकार मानना पड़ा। डेनिस्टर नदी तक के काला सागर के उत्तरी तट के प्रदेश पर तुर्की का अधिकार समाप्त हो गया।

केथरीन का पोलैण्ड के १७७२, १७९३ और १७९५ के तीनों विभाजनों में बड़ा हाथ था। उसकी प्रथम योजना सारे पोलैण्ड को अधिकार में रखने की थी किन्तु इसे आस्ट्रिया और प्रशिया को १७७२ के विभाजन में पोलैण्ड का कुछ भाग देना ही पड़ा। १७९३ के विभाजन में आस्ट्रिया को कुछ नहीं मिला, किन्तु प्रशिया को थोड़ा-सा भाग मिला। १७९५ के विभाजन में यद्यपि आस्ट्रिया और प्रशिया को थोड़ा-सा प्रदेश मिला किन्तु रूस का भाग सबसे अधिक था। इस बात को मानने से इनकार नहीं किया जा सकता कि केथरीन ने यूरोप में रूस की प्रतिष्ठा बहुत ऊँची कर दी। उसकी सफलताएँ उसके ही शब्दों में संक्षिप्त रूप से इस प्रकार कही जा सकती हैं—"मैं रूस में एक गरीब लड़की के रूप में आई, रूस ने मुझे बहुत दहेज दिया, किन्तु मैंने उसका यह ऋण एज़ोव (Azov), क्रीमिया और यूक्रेन देकर उतार दिया है।"

ब्रिटेन (Great Britain)—हनोवर वंश इंगलैण्ड पर राज्य करता था। स्थापन-कानून (Act of Settlement) के अनुसार, साम्राज्ञी ऐनी की मृत्यु के पश्चात् १७१४ में जार्ज प्रथम इंगलैण्ड के सिंहासन पर बैठा। १७२७ में उसका पुत्र जार्ज द्वितीय गद्दी पर बैठा और उसने १७६० तक राज्य किया। जार्ज प्रथम और द्वितीय के शासन-काल में ही विग सामन्तशाही का इंगलैण्ड में राज्य था। इसी अवधि में मन्त्रिमण्डल-प्रणाली की एक ठोस आधार पर स्थापना हुई। वालपोल के समय में 'प्रधान मन्त्री' का पद अस्तित्व में आया। इंगलैण्ड को जेनकिन्ज़ युद्ध, आस्ट्रिया का उत्तराधिकार-युद्ध और सप्तवर्षीय युद्ध लड़ना पड़ा। १७६० में जब जार्ज तृतीय गद्दी पर बैठा उस समय सप्तवर्षीय युद्ध जारी था। वह १८२० तक राज्य करता रहा। वह अपने पिता और दादा दोनों से भिन्न था। उसका जन्म और लालन-पालन इंगलैण्ड में हुआ था, और वह इसे बड़ा सम्मान और महत्त्व देता था।

आरम्भ से ही वह अपना व्यक्तिगत शासन स्थापित करना चाहता था। १७६१ में पिट ने त्याग-पत्र दे दिया और १७६१ से १७६३ तक जार्ज का शिक्षक लार्ड बुटे (Lord Bute) प्रधान मन्त्री रहा। १७६३ से १७७० तक उसने विग-वर्ग के लोगों में मतभेद पैदा करने की नीति अपनायी और साथ-साथ अपने विश्वस्त मित्रों को शासन की शिक्षा भी देता रहा। अपने ध्येय में सफल होने पर १७७० में उसने लार्ड नार्थ को अपना प्रधान मन्त्री नियुक्त किया, और वह इस पद पर १७८२ तक बना रहा। इस अवधि में उत्तरी अमेरिका के उपनिवेशों में अंग्रजों के सम्बन्ध जटिल हो गये और अमेरिका में स्वातंत्र्य युद्ध आरम्भ हो गया। इंगलैण्ड परास्त हुआ और १७८३ में वरसाई (Versailles) की सन्धि के अनुसार अमेरिका के उपनिवेशों की स्वतन्त्रता को मान्यता दी गई। दिसम्बर, १७८३ में युवा पिट (Pitt. the Younger) को प्रधान मन्त्री नियुक्त किया किया गया और उसने यह पद थोड़ी अवधि छोड़कर १८०६ तक सँभाला। १७८९ में जब फ्रांस-क्रान्ति शुरू हुई, युवा पिट इंगलैण्ड में सर्वाधिकार-सम्पन्न था। औद्योगिक तथा कृषि क्रान्तियाँ इंगलैण्ड में प्रगति कर रही थीं, जिनके कारण इंगलैण्ड उद्योग और कृषि की पैदावार में यूरोप का नेतृत्व कर रहा था। फ्रांस को नियति के विधान के अनुसार इंगलैण्ड से घोर विरोध प्राप्त होना था।

पोलैण्ड (Poland)—सोलहवीं शताब्दी में पोलैण्ड एक शक्तिशाली राष्ट्र था और १६८३ में तुर्कों से वियाना का उद्धार कराने का श्रेय पोलैण्ड को ही है। उसने केवल जर्मनी को ही नहीं, अपितु सारे यूरोप को तुर्कों के प्रभुत्व से बचाया। अठारहवीं शताब्दी में उसका पतन आरम्भ हुआ और इस शताब्दी के अन्त तक यूरोप के मान-चित्र से उसका नाम मिट गया। इसके अनेक कारण थे।

पोलैण्ड में राजा को चुना जाता था, परिणामतः प्रत्येक राजा की मृत्यु के पश्चात् बहुत षड्यन्त्र होते और पड़ोसी देशों को पोलैण्ड के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अवसर प्राप्त होता रहता था। महान् शक्तियों के पोलैण्ड में अपने गुट थे, जिनके हितों का वे प्रतिपादन करते थे। इन गुटों की स्वामि-भक्ति अपने देश के हितों की अपेक्षा अपने विदेशी संरक्षकों के प्रति रहती थी। प्रत्येक राजा के चुनाव के समय पोलैण्ड के सामन्तों को विशेष सुविधाएँ प्राप्त हो जातीं और यह चक्र प्रत्येक बार राजा के चुनाव के समय चलता था। शिष्ट वर्ग को बहुत बड़ी संख्या में सुविधाएँ और विशेषाधिकार मिल जाते थे, परिणामतः राजा की स्थिति बड़ी दुर्बल हो जाती थी। पुनश्च, विदेशी राजकुमारों को पोलैण्ड का राजा चुना जाना पोलैण्ड के लिए बड़ी मुसीबत थी। चुने हुए राजा लोग अपने साथ अपने प्रदेशों का स्वामित्व भी लाते और इनके कारण पोलैण्ड को व्यर्थ में ही यूरोप की कूटनीति में घिसटना पड़ता था।

पोलैण्ड में एक और दुर्भाग्यपूर्ण परिपाटी थी जिसे स्वतन्त्र मत (Liberum Veto) कहते थे। इस परिपाटी के अनुसार पोलैण्ड के मन्त्रिमण्डल के प्रत्येक सदस्य को संसद् के किसी भी प्रस्ताव को रद्द कर देने का अधिकार प्राप्त था। परिणामतः कोई भी कानून संसद में सर्वसम्मति के बिना पारित नहीं हो सकता था। सर्वसम्मति

प्राप्त करना इसलिए असम्भव था क्योंकि विदेशी राष्ट्र सरलता से कुछ सामन्तों को अपने साथ मिलाकर किसी भी प्रगतिशील कानून को रद्द करा सकते थे। यह परिपाटी अत्यन्त मूर्खतापूर्ण थी और पोलैण्ड के लिए घातक सिद्ध हुई। किन्तु सामन्त लोग अपनी शान, घमण्ड और परिणामों पर विचार न करने के कारण इसे बनाये रखना चाहते थे ।

पोलैण्ड में घोर असमानता थी। एक ओर सामन्तों को सब प्रकार की सुविधाएँ और विशेषाधिकार प्राप्त थे, दूसरी ओर गरीब किसानों की दशा अत्यन्त दयनीय थी। परिणामतः समाज में घोर कटुता फैली थी। इन परिस्थितियों में पोलैण्ड में एकता नहीं थी, अतः देश की शक्ति क्षीण होती गई। धार्मिक मतभेदों के कारण भी पोलैण्ड के देशभक्तों की कठिनाइयाँ बढ़ीं। पोलैण्ड के कैथोलिक प्रोटैस्टैण्टों पर बड़ा अत्याचार करते थे। जाति-भेद भी पोलैण्ड के समाज में एकता की कमी का एक कारण था। पोलैण्ड में बहुत-से ऐसे तत्त्व थे जो अपनी स्वतन्त्रता के लिए विदेशों का सहारा और सहायता ढूँढते थे। दुर्भाग्य से पोलैंड की सीमा में भौगोलिक एकता नहीं थी और इसके अनेक प्रदेश अपने को देश का भाग नहीं मानते थे। पोलैंड की सीमा निर्धारित करने के लिए कोई पर्वत अथवा नदी नहीं थी। इस कारण उसके लिए विदेशी आक्रमणकारियों से अपनी रक्षा करना बड़ा कठिन था। पोलैण्ड के दुर्भाग्य से अठारहवीं शताब्दी में उसके पड़ोसी देशों के शासक सिद्धान्तहीन व्यक्ति थे। फ्रेड्रिक महान् और केथरीन महान् दोनों ही अपने व्यवहार में पूर्णतः सिद्धान्तहीन थे। इस कारण इसमें आश्चर्य नहीं कि इन दोनों के हाथों पोलैण्ड का नाश हुआ।

फ्रेड्रिक महान् और केथरीन महान् दोनों की आँखें पोलैण्ड पर गड़ी थीं। आरम्भ के तौर पर उन्होंने सेक्सोने वंश को पोलैण्ड के सिंहासन पर बैठने के अधिकार से वंचित करने का प्रयत्न किया। १७६३ में जब पोलैण्ड के राजा आगस्टस तृतीय का देहान्त हुआ उन्हें यह अवसर प्राप्त हुआ। दोनों ने ही पोलैण्ड के सामन्तों पर अपने मनोनीत व्यक्तियों को राजा चुनने के लिए जोर डाला। पोलैण्ड का नया राजा स्टेनलॉस पोनियाटोवस्की (Stanislaus Poniatowsky) केथरीन का बड़ा कृपापात्र था। पोलैण्ड के सिंहासन पर अपना मनोनीत व्यक्ति बैठाकर पोलैण्ड के विभाजन की तैयारियाँ शुरू हुईं। पोलैण्ड के देश-भक्तों को रूस का प्रभाव अखरा और उन्होंने उसकी रोक के लिए एक संगठन किया। रूस और पोलैण्ड में युद्ध छिड़ गया और रूस पोलैण्ड की शक्ति तोड़ने में सफल रहा। फ्रेड्रिक ने पोलैण्ड के विभाजन का प्रस्ताव रखा, किन्तु केथरीन सारे पोलैण्ड को अपने पास रखना चाहती थी, इसलिए उसने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया। किन्तु जब रूस और तुर्की का युद्ध छिड़ा उस समय फ्रेड्रिक को अवसर प्राप्त हुआ। जब आस्ट्रिया और प्रशिया ने गठजोड़ किया तो रूस पोलैण्ड के विभाजन को मान गया। १७७२ में प्रथम विभाजन हुआ। इस विभाजन में रूस को लिवोनिया तथा लिथोनिया का कुछ भाग मिला जिससे रूस की सीमा का और डेनीपर नदी तक विस्तार हुआ। प्रशिया को पश्चिमी प्रशिया तथा आस्ट्रिया को जिप्स तथा लाल रूस (गेलेसिया) का प्रदेश प्राप्त हुआ। मेरिया

थिरेसा के व्यवहार के विषय में फ्रेड्रिक ने व्यंग्य से कहा था कि "वह रोती तो है किन्तु अपना भाग ले ही लेती है।"

१७७२ के विभाजन के पश्चात् पोलैण्ड रूस पर निर्भर हो गया और पोलैण्ड के देशभक्त कुछ समय तक रूस और प्रशिया के मेल के कारण कुछ नहीं कर सके। १७८१ में प्रशिया और आस्ट्रिया में मेल होने के कारण जो कि पोलैण्ड के लिए प्रशिया की अपेक्षा अधिक मित्रतापूर्ण था, हालत कुछ सुधरी। १७८७ में रूस और तुर्की में युद्ध हुआ। १७८८ में रूस और आस्ट्रिया की महत्त्वाकांक्षाओं को रोकने के लिए त्रिमुखी सन्धि (Triple Alliance) हुई। १७८८ में पोलैण्ड की संसद् की बैठक हुई जिसमें कुछ सुधार करने का निश्चय किया गया। दुर्भाग्य से सुधार-कार्य में इस कारण देर हुई कि पोलैण्ड का राजा रूस से डरता था तथा सामन्त सुधारों का विरोधी था। प्रशिया ने भी विरोध किया। १७९१ के सुधार के अनुसार पोलैण्ड के राजा का पद सेक्सोने (Saxony) वंश में वंशक्रमानुगत होना था। पोलैण्ड के राजा को शासन और सेना का नियन्त्रण करना था। स्वतन्त्रगत (Liberum Veto) की प्रणाली को समाप्त कर देना, सबको धार्मिक सहिष्णुता प्रदान करना इत्यादि था। रूस इन सुधारों से अप्रसन्न था और इसलिए पोलैण्ड के विरुद्ध अभियान की तैयारी शुरू की। रूस ने आस्ट्रिया और प्रशिया को फ्रांस की क्रान्ति में दिलचस्पी लेने के लिए उत्साहित किया जिससे कि पोलैण्ड में मनमानी की जा सके। प्रशिया ने भी पोलैण्ड के प्रति मित्र-भाव त्याग दिया। इससे पोलैण्ड को बड़ा बुरा लगा। आस्ट्रिया का रुख मैत्रीपूर्ण था। इस वातावरण में रूस ने पोलैण्ड पर आक्रमण किया और उसे परास्त किया। पोलैण्ड को अपनी सुधार-योजना समाप्त करनी पड़ी। उसे आस्ट्रिया और प्रशिया से कोई सहायता नहीं मिली इसलिए उसका रक्षा का युद्ध समाप्त हो गया। १७९३ में दूसरी बार पोलैण्ड का विभाजन हुआ। आस्ट्रिया को कुछ नहीं मिला। रूस को पूर्वी पोलैण्ड जिसमें मिन्स्क पोडोलिया, वोल्हीनिया, छोटा रूस थे, मिला तथा प्रशिया को डेन्जिग, थोर्न, रोजन जेनीजन और कैलिस्क मिले। रूस को प्रशिया से दुगुना प्रदेश और चार गुनी प्रजा प्राप्त हुई। इस विभाजन से इन शक्तियों की लज्जाजनक स्वार्थपरता और परस्पर अविश्वास नंगे रूप में प्रकट हो गया। आस्ट्रिया ने इस विभाजन पर घोर नाराजगी प्रकट की जो उसकी सम्मति के बिना हुआ और जिसके कारण रूस की सीमाएँ आस्ट्रिया के प्रदेशों तक फैल गईं। आस्ट्रिया और प्रशिया के सम्बन्धों में तनाव आ गया।

रूस ने पोलैण्ड में अपनी शक्ति को बढ़ाया और पोलैण्ड का राजा वारसा में स्थित रूस के राजदूत का एजेण्ट हो गया। पोलैण्ड की प्रजा को यह विभाजन बहुत बुरा लगा और गुप्त सभाओं की स्थापना हुई जिससे पुनः स्वतन्त्रता प्राप्त करके सुधार किये जायँ। अनेक स्थानों पर विद्रोह हुआ और अनेक स्थानों से रूसियों को निकाल दिया गया। १७९४ में रूस ने माँग की कि पोलैण्ड की सेना भंग कर दी जाए किन्तु इस माँग को ठुकरा दिया गया। बहुत स्थानों पर विद्रोह हुआ और रूसियों को निकाल दिया गया। रूस ने पोलैण्ड पर आक्रमण किया और परास्त किया। सब विरोधी तत्त्वों का दमन कर दिया गया। इस प्रकार १७९५ में पोलैण्ड

का तीसरा विभाजन हुआ। इस विभाजन में रूस को गेलीसिया और डुना की तराई के बीच लगभग २,००० वर्गमील का क्षेत्र प्राप्त हुआ। आस्ट्रिया को गेलीशिया का शेष प्रदेश तथा क्रेको का लगभग १,००० वर्गमील का क्षेत्र प्राप्त हुआ। प्रशा को वारसा तथा वग और डेनीपर नदी के बीच का लगभग ७०० वर्गमील का प्रदेश मिला। जनवरी, १७६७ की एक सन्धि के अनुसार रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया ने मिलकर यह घोषणा की कि "पोलैण्ड के राज्य को याद दिलाने वाली सब वस्तुओं को नष्ट कर देना आवश्यक है।"

ग्यूडाला (Gucdalla) के मतानुसार पोलैण्ड का विभाजन यूरोप की कूटनीति का एक घोर लज्जाजनक नंगा कार्य था। यह लज्जाजनक इसलिए था, क्योंकि यह अन्तर्राष्ट्रीय सदाचार और न्याय के विरुद्ध था। यह नंगा इसलिए था क्योंकि जिन देशों ने इस लूट में साझा किया उन्हें इससे कोई बल प्राप्त नहीं हुआ। पोलैण्ड की जनता ने कभी भी विभाजन को स्वीकार नहीं किया और बीसवीं शताब्दी में जब तक उन्हें स्वतन्त्रता नहीं मिली वे निरन्तर घोर संघर्ष करते ही रहे। रूस, प्रशिया और आस्ट्रिया तीनों के पेटों में पोलैण्ड के टुकड़े बिना हजम हुए स्वतन्त्र बने रहे। पोलैण्ड का विभाजन एक घोर पापाचार का उदाहरण है। किन्तु इन महान् शक्तियों द्वारा पोलैण्ड में हस्तक्षेप के कारण फ्रांस की क्रान्ति को सहायता मिली। फ्रांस अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने में इसलिए सफल रहा, क्योंकि उसके शत्रु पोलैण्ड के मामले में परस्पर विरोधी होने के कारण उसके विरुद्ध कोई समुचित कदम नहीं उठा सकते थे।

इटली (Italy)—इटली इस काल में एक भौगोलिक शब्द था और यह बहुसंख्यक राज्यों में बँटा हुआ था। उत्तर में सवाय और सारडीनिया के सामन्तशाही राज्य, जिनोआ और वेनिस के दो गणतन्त्र और मिलान, परमा, मोडैना (Modena) और लुक्का की चार जागीरें थीं। दक्षिण में टुस्कने की जागीर, रोम, नेपल्स, सिसली को मिलाकर पोप का राज्य था। १७६६ में कोर्सिका फ्रांस ने ले लिया था।

स्पेन के उत्तराधिकार के पश्चात् इटली में स्पेन के स्थान पर आस्ट्रिया ने एक प्रभावशाली शक्ति का स्थान प्राप्त कर लिया। आस्ट्रिया का मिलान पर सर्वाधिकार सम्पन्न शासन था। सम्राट् फ्रांसिस ने टुस्कने हथिया रखा था। परमा, मोडैना और लुक्का पर आस्ट्रिया का बहुत-सा नियन्त्रण था। आस्ट्रिया की भूखी आँखें वेनिस पर भी लगी थीं। यह सत्य है कि इटली के राज्य स्वतन्त्र थे किन्तु इसका कोई महत्त्व नहीं था। वेनिस और जिनोआ की शान समाप्त हो चुकी थी। पोप की जागीरें सारे यूरोप में सबसे बुरी शासित थीं। नेपल्स बहुत ही पिछड़ा हुआ था। किन्तु टुस्कने समस्त यूरोप में सबसे श्रेष्ठ शासित राज्य था। १७३७ में मेरिया थिरेसा के पति फ्रांसिस को यह उत्तराधिकार में मिला। उसका कार्य उसके पुत्र लियोपोल्ड (१७६५-१७९०) ने जारी रखा। मुजारे की प्रथा समाप्त कर दी गई और सामन्तों के अधिकार सीमित कर दिये गए। धार्मिक न्यायालय प्रथा

(Inquisition) को समाप्त कर दिया गया। चर्च के न्यायालयों के अधिकार कम कर दिये गये। यातनाएँ देना बन्द कर दिया गया। वार्षिक आय-लेखा प्रकाशित किया जाने लगा। इस प्रकार टुस्कने इटली और यूरोप के लिए प्रकाश-स्तम्भ बन गया।

इटली की स्थिति में सबसे महत्त्वपूर्ण बात सवाय वंश की सतत वृद्धि थी। यह सत्य है कि सवाय या सारडीनिया इटली में किसी प्रगति का नेतृत्व नहीं कर सकता था किन्तु उसने अपनी सामरिक और भौगोलिक स्थिति से लाभ उठाना सीख लिया था। कभी वह एक तो कभी दूसरी शक्तियों से गठजोड़ करता और इसलिए कभी-कभी स्वयं नष्ट होने की स्थिति में फँस जाता था। किन्तु किसी-न-किसी प्रकार यह अपने प्रदेशों को इकट्ठा करके उज्ज्वल भविष्य की आशा करने लगा।

किसी फ्रांसीसी दर्शक ने कहा है कि "इटली में सात या आठ सभ्यता के केन्द्र हैं। एक अत्यन्त साधारण-सा कार्य ट्युरीन, वेनिस, मिलान, जिनोआ, बोलोग्ना, फ्लोरेन्स, रोम या नेपल्स में भिन्न-भिन्न प्रकार से किया जाता है। वेनिस स्पष्ट और विलासी है किन्तु ट्युरीन बुरी तरह आडम्बर-लिप्त है। मिलान का विनोद जिनोआ की नीचता से टक्कर लेता है। बोलोग्ना वाले उत्तेजना, लगन, उदारतायुक्त और कभी-कभी ढीठ होते हैं। नेपल्स वाले क्षणिक मौज के दास हैं।"

स्पेन (Spain)—सोलहवीं शताब्दी में चार्ल्स पंचम और फिलिप द्वितीय के शासन-काल में स्पेन एक महान् देश था। सत्रहवीं शताब्दी के काल में वह एक द्वितीय श्रेणी की शक्ति रह गई। प्रतिक्रियाशील शक्तियाँ देश की भाग्य-विधाता बन गईं। स्पेन के उत्तराधिकार के युद्ध के पश्चात् फ्रांस के लुई चौदहवें के प्रपौत्र को स्पेन का शासक माना गया। १७६१ के सप्तवर्षीय युद्ध में स्पेन ने फ्रांस का साथ दिया। अलबरनोई और पेटिनो जैसे मन्त्रियों ने बहुत से सुधार किए। चार्ल्स तृतीय के शासन-काल में और सुधार हुए जिनके अनुसार न्याय-प्रणाली में सुधार हुए, डाके डालने वालों का दमन किया गया। धार्मिक दण्ड-विधान की कड़ाई को हल्का कर दिया गया, ज्युसेट्स को देश-निकाला दिया गया और देश की आर्थिक उन्नति हुई। देश के बौद्धिक जीवन को प्रोत्साहन दिया गया। नया राजा चार्ल्स एक दुर्बल और अस्थिर व्यक्ति था।

पुर्तगाल (Portugal)—जोजफ प्रथम के मन्त्री पोम्बल ने बहुत-से सुधार किए जिनके अनुसार उद्योगों में उन्नति हुई, शिक्षा को प्रोत्साहन मिला और उसे धर्म-निरपेक्ष (Secular) बनाया, पोप के अधिकारों को कम कर दिया गया और धर्म-दण्ड-प्रथा के क्षेत्र को कम किया गया।

Suggested Readings

Bourne, H. G. : *The Revolutionary Period in Europe, 1763—1815*
Bruun, G. : *The Enlightened Despots.*
Fisher, H. A. L. : *A History of Europe.*
Gottschalk, L. R. : *The Era of the French Revolution, 1715—1815.*
Goldsmith, M. : *Frederick, the Great.*

Grant and Temperley : *Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries.*
Hayes, C. J. H. : *A Political and Cultural History of Modern Europe, Vols. I & II.*
Johnson, A. : *The Age of the Enlightened Despots.*
Ketelbey, C. D. M. : *A History of Modern Times.*
Lowell : *Eve of the French Revolution.*
Macaulay (Lord) : *Essay on Frederic, the Great.*
Marriott, J. A. R. & Robertson, C. G. : *The Evolution of Prussia.*
Phillips, W. A. : *Modern Europe.*
Robinson & Beard : *Readings in Modern European History.*

अध्याय २

फ्रांस-क्रान्ति के कारण

(Causes of the French Revolution)

फ्रांस की क्रान्ति केवल फ्रांस अथवा यूरोप के इतिहास की ही महत्त्वपूर्ण घटना नहीं अपितु समूचे मानव-इतिहास की महान् घटना है। इसने मानव को स्वतन्त्रता, समानता और मित्रता के नवीन विचार प्रदान किये, जो विश्व के प्रत्येक कोने में फैल गये। यह जितना शस्त्रों का युद्ध था, उतना ही विचारों का भी था। अतएव यह आवश्यक है कि इसके कारणों का उल्लेख किया जाए।

(१) **सामाजिक कारण** (Social Causes)—फ्रांस में क्रान्ति के कारणों में सबसे महत्त्वपूर्ण कारण सामाजिक थे। "१७८९ की क्रान्ति स्वेच्छाचारी दमनपूर्ण शासन-पद्धति के विरुद्ध युद्ध होने की अपेक्षा फ्रांसीसी समाज की असमानता के विरुद्ध एक महान् संघर्ष था। क्रान्ति के पहले फ्रांसीसी समाज में घोर असमानता थी। फ्रांस का समाज दो भागों में विभक्त था अर्थात् विशेपाधिकार-प्राप्त वर्ग और सर्वहारा वर्ग। विशेपाधिकार-प्राप्त वर्ग में सामन्त और धर्माधिकारी थे। ये दोनों देश की जनसंख्या का एक न्यून (small minority) भाग थे। क्रान्ति के समय फ्रांस की जनसंख्या २५ करोड़ थी, जिसमें डेढ़ लाख जागीरदार और १,३०,००० पादरी थे। इन दोनों की कुल संख्या सारी जनसंख्या का लगभग एक प्रतिशत थी। इतनी कम संख्या में होते हुए भी वे अन्य प्रजा से पदवी, सुविधाओं और धन में कहीं ऊँचे थे। एक जागीरदार को 'मेरे मालिक' (My Lord) और 'अन्नदाता' (Your Grace) कहकर सम्बोधित किया जाता था। जनसाधारण को उन्हें अपने से उच्च मानकर नमस्कार करना पड़ता था। साधारणतः जागीरदारों की गाड़ियों पर उनके प्राचीन वंश के चिह्न (Coat of Arms) लगाये हुए होते थे। उनके लिए चर्च और नाटकघरों में सर्वश्रेष्ठ कुर्सियाँ सुरक्षित होती थीं। जागीरदार अपने से नीचे वर्ग में विवाह नहीं कर सकता था। वास्तव में सेना और चर्च के सारे पदों पर इस वर्ग का पूर्ण अधिकार था। प्रत्येक जागीरदार अपने पुत्र के लिए दुर्ग अथवा महल छोड़कर जाता था, जिसके साथ बहुत बड़ी जागीर लगी होती थी, जिससे वह कर वसूल कर सकता था। मोण्टैस्क्यू जो स्वयं एक जागीरदार था, लिखता है, "एक महान् जागीरदार वह है जो सम्राट् से मिलता है, उसके मन्त्रियों से बातचीत करता है, जिसके पूर्वज हैं और जो कर्जदार है तथा जिसे पेन्शन मिलती है।"

जागीरदारों की तरह पादरियों को भी विशेपाधिकार प्राप्त थे। वे धन, जमीन और विलासिता में सांसारिक गृहस्थों से होड़ लगाते थे। इन धर्माधिकारियों के पास दुर्ग, शानदार गिरजाघर, महल, अमूल्य चित्र, सोने के बर्तन, सोने-चाँदी के

तारों से कढ़े हुए चोगे थे और दशमांश के रूप में जागीरों से कर प्राप्त होता था। रोहन के महाधर्माधिकारी (Cardinal) को २ करोड़ ५० लाख लीवर की वार्षिक आय थी।

स्ट्रासबरो के महाधर्माचार्य (Archbishop) की ३ लाख डालर प्रतिवर्ष की आय थी। वह अपनी कचहरी एक शानदार महल में लगाता था और एक समय में २०० अतिथियों को भोजन कराता था। उसके सब्जी रखने के बर्तन तक चाँदी के थे। अतिथियों के मनोरंजन के लिए उसकी घुड़साल में १८० घोड़े थे।

चर्च राज्य के भीतर एक राज्य था। धर्माधिकारियों की फिजूलखर्ची और स्वार्थ इतना बढ़ गया था कि सारा राष्ट्र आश्चर्य में रह गया और लोगों को बड़ी ग्लानि हुई। चर्च की आमदनी का बहुत बड़ा भाग उच्च धर्माचार्यों के पास पहुँचता था, अर्थात् १३४ बिशप, आर्क बिशप और बहुत थोड़े एबटों, कैननों, और अन्य उपाधिधारियों के पास पहुँचता था। इन सबकी संख्या पाँच या छ: हजार थी। किन्तु निम्न श्रेणी के धर्माधिकारियों की दशा दयनीय थी। उन्हें दासों की तरह माना जाता था। वे बड़ी कठिनाई से जीवनयापन कर पाते थे। वे अपने उच्च पदाधिकारियों से असंतुष्ट और दु:खी थे क्योंकि ये इनकी उपेक्षा तथा शोषण करते थे।

अनुमान किया जाता है कि जागीरदार और धर्माधिकारियों में प्रत्येक के पास फ्रांस की समस्त सम्पत्ति का पाँचवाँ भाग था। अर्थात् एक प्रतिशत लोगों के पास देश की चालीस प्रतिशत सम्पत्ति थी। एक ओर उन्हें विशेष सुविधाएँ थीं और दूसरी ओर उन्हें राज्य-कर से छूट थी। फ्रांस में एक कहावत प्रचलित थी कि "जागीरदार युद्ध करते हैं, धर्माचार्य प्रार्थना करते हैं और जनता कर देती है।"

इस प्रकार की ईर्षायोग्य स्थिति विशेषाधिकारसम्पन्न लोगों की थी तो सर्व-हारा वर्ग की स्थिति किस प्रकार संतोषजनक हो सकती थी। किसानों की दशा विशेष रूप से दु:खी थी। किसान को जागीरदार के खेतों में सूर्योदय से सूर्यास्त तक काम करना पड़ता था। कभी-कभी जागीरदार अपनी जागीर का भाग साहूकारों (Money-lenders) को बेच देता था और साहूकार किसान को बहुत तंग करता था। किसान अपनी इच्छानुसार खेती नहीं कर सकता था। फसलों में अदल-बदल न करने के कारण उपज बहुत कम होती थी। जागीरदार बहुत बड़ी संख्या में कबूतर, हिरन और अन्य शिकार पालते थे जिनका परिपोषण किसान के खेतों पर होता था। खेतों के किनारे बाड़ लगाना मना था, जिसके अभाव में उसकी सारी खेती ही उजड़ सकती थी। किन्तु जागीरदार के डर से वह जंगली पशुओं को खेतों से नहीं भगा सकता था। उसे जागीरदार की पवनचक्की पर अनाज पीसवाने के लिए जाना पड़ता था। चक्कियाँ काफी दूर स्थित होने के कारण उन्हें बड़ी असुविधा होती थी। यदि वह अपने घर अपनी चक्की पर आटा पीस ले तो उसे जागीरदार से दण्ड मिलता था। किसानों के मामलों का फैसला स्वयं जागीरदार करता और जो भी जुर्माना वह करता सीधा उसकी जेब में जाता था। जागीरदार किसानों को कठोर दण्ड देता था।

किसान को जागीरदार, धर्माधिकारी तथा सम्राट् के प्रति बहुत से अनुदान देने होते थे। साधारणतः उसे जागीरदार के खेतों में सप्ताह में तीन दिन काम करना पड़ता था। फसल की कटाई के समय सप्ताह में पाँच दिन काम करना पड़ता था। किसान की मृत्यु पर उसके परिवार को दुगुना राजस्व देना पड़ता था। खेत के बिकने पर प्राप्त धन का पंचमांश जागीरदार को जाता था। किसान को चर्च के लिए भी अपनी आय का दशमांश देना पड़ता था जो वर्ष में लगभग उसकी कुल वार्षिक आय के बारहवें भाग से पन्द्रहवें भाग तक होता था। सम्राट् को दिया जाने वाला कर इन सबसे अधिक था। खेती-कर (Land tax or Taille) इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण था। यह कर निर्धारित नहीं था, किन्तु किसान के खेतों और घर की कीमत के अनुसार लगाया जाता था। वास्तव में कर उगाहने वाले पदाधिकारी अधिक-से-अधिक जितना उनके हाथ लगता, छीन ले जाया करते। खेती की धरती पर लगाई गई कर-प्रणाली के कारण किसानों की हालत बड़ी खराब हो गई। उगाही करने का कार्य सबसे ऊँची बोली लगाने वाले को मिलता था जो नीलामी का दाम राज्य में जमा कर देता और फिर किसानों को तंग करके अपने को मालामाल करने का प्रयत्न करता। किसानों की चमड़ी उतार ली जाती थी। सारा राजस्व किसानों को ही देना पड़ता था क्योंकि जागीरदार और धर्माचार्य राज्य को कुछ नहीं देते थे। किसानों को आयकर (Vingtieme) भी देना पड़ता था। यह लगभग सब प्रकार की आय का पंचमांश होता था। जागीरदार बहुत थोड़ा देते थे और धर्माचार्यों को बिल्कुल छूट थी। एक अन्य कर "नमक-कर" (Gabelle) था। यह कर सब प्रकार के करों से निकृष्ट था। सरकार के पास नमक के सर्वाधिकार थे। और सात वर्ष की आयु से बड़े सब लोगों को नमक की निर्धारित मात्रा खरीदनी पड़ती थी जो लगभग सात पौण्ड होती थी। नमक असली कीमत से दस गुनी कीमत पर मिलता था। किसी भी व्यक्ति को नमक के झरनों पर पानी पीने तथा समुद्र-जल से खाना बनाने का अधिकार नहीं था। फिर नमक का मूल्य सब स्थानों पर भिन्न था, जिनसे प्रजा को बड़ी कठिनाई होती थी। एक और कर "सड़क-कर" था। सड़कें बनाना किसानों का कर्त्तव्य था और उन्हें वर्ष में कई सप्ताह अपने पड़ोस के प्रदेशों में सड़कें बनानी और मरम्मत करनी पड़ती थीं।

अनुमान किया जाता है कि इन सब करों का भुगतान करने के बाद फ्रांस के किसान के पास उसकी कमाई का केवल बीस प्रतिशत भाग जीवन-यापन के लिए शेष रहता था। फ्रांस के बहुत थोड़े प्रदशों के किसान इन सब करों को देकर सुख से रह सकते थे किन्तु बाकी सारे देश में उनकी हालत इतनी दुःखमय थी कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। खूब अच्छी फसल होने पर भी उन्हें रोटियों के लाले पड़े रहते थे। सूखी गरमी या लम्बी सरदी होने पर वे समाप्त हो जाते थे। भूखे किसान अपनी भूख मिटाने के लिए घास और जड़ें खाते और हजारों भूख से मर जाया करते। कोई भी उनकी दशा पर विचार करता प्रतीत नहीं होता था। किसी ने ठीक ही कहा था कि "फ्रांस की जनसंख्या के दस भागों में नौ भाग भूख से और दसवाँ भाग अजीर्ण से मरता है।"

किसान बड़ी मुसीबत में थे। धरती के बँटवारे की फ्रांस की सामन्तशाही प्रणाली अत्यन्त दमनपूर्ण थी और उन सब चालों का, जिनके द्वारा उनके साधारण अधिकार छीने जाते, किसान विरोध करते थे। उन्होंने विशेष बाड़ लगाने तथा गाँवों की सामूहिक धरती के बँटवारे का विरोध किया। इनके द्वारा बड़े जागीरदारों को लाभ था। अठारहवीं शताब्दी में महँगाई के कारण भी उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। साधारण दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं के दाम १७२६ से १७४१ के काल की अपेक्षा १७८५ से १७८९ में कहीं अधिक थे। दामों के चढ़ने से उन लोगों को सब से अधिक कठिनाई हुई, जो मुश्किल से गुजारा कर पाते थे। किसानों द्वारा खाये जाने वाले अन्न के दाम उच्च वर्ग द्वारा खाये जाने वाले गेहूँ से भी ऊँचे चढ़ गये।

बुर्जुआ अर्थात् मध्य श्रेणी के लोग भी फ्रांस के अधिकार-हीन वर्ग में ही थे। इस वर्ग में शिक्षक, वकील, डाक्टर, साहूकार और व्यापारी थे। आर्थिक व्यापार और उद्योग के क्षेत्र में यह वर्ग बड़ा शक्तिशाली था। इसी वर्ग से राज्य को मन्त्री, न्यायाधीश, कर उगाहने वाले और अन्य धन्धे वाले प्राप्त होते थे। इनके पास धन और बुद्धि दोनों ही थीं। इसी वर्ग के लोग संसार के विभिन्न भागों में जाया करते और सब प्रकार से जागरूक थे। उन पर फ्रांस के दार्शनिकों का गहरा प्रभाव था और परिणामतः वे प्राचीन परिपाटी द्वारा दिये गये 'निम्न स्थान' को अपनाने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थे। पुरानी राज्य-शासन-प्रणाली के विरुद्ध विद्रोह में इस वर्ग के लोग ही जनता के नेता बने।

प्रो० साल्वेमिनी के अनुसार, "अठारहवीं शताब्दी के द्वितीय भाग में फ्रांस का समाज एक प्राचीन नगर के समान था, जो कि किसी रूपरेखा या नियम के बिना उन्नत हुआ और भिन्न-भिन्न युगों के तरीकों द्वारा अनेक प्रकार की वस्तुओं से बना हुआ था; प्राचीन और अप्रचलित भवन नये और गठित ढाँचों से परस्पर मिले हुए थे। प्रायः सभी निवासी श्रमी, मध्य-वर्गीय और विशेषाधिकारी भी असन्तुष्ट थे।"

सरकारी कर्मचारी भ्रष्ट और खराब नीति के शिकार हो गए थे, जिसके विरुद्ध देश को विद्रोह करना आवश्यक था, यदि उसे सामन्तशाही अन्धकार से पुनः बचाना था। विशेषाधिकारियों ने खजाने को लूटा, शासन-व्यवस्था ने देश की आर्थिक स्थिति को उलट-पुलट कर दिया। वे बिना देखे रसातल के किनारे तक पहुँच गए और परस्पर कलह करते हुए डूबने वाले थे।

कॉमन्स जोकि उनके स्वयं के विनाश और सामन्तशाही के प्रत्येक कार्य को नष्ट करने के लिए मजबूर थे, आशा करते थे कि राजा परम्परानुगत सामन्तशाही-विरोधी नीति को अपनायेगा जोकि प्राचीन समय में उसके वंश का गौरव थी। अन्त में, बेकार प्रतीक्षा से थककर उन्होंने सामन्तशाही के अन्तिम अवशेषों और राजशाही, जोकि उनकी समर्थक थी, उखाड़ फेंका और आधुनिक समाज पर एक नया गणतन्त्र स्थापित किया।

नेपोलियन बोनापार्ट के शब्दों में, "फ्रांस की क्रान्ति समूचे राष्ट्र द्वारा विशेष अधिकार-प्राप्त वर्गों के विरुद्ध एक सामूहिक विद्रोह था। फ्रांस का सामन्त वर्ग,

यूरोप के अन्य सामन्तों की तरह उन पर बर्बर आक्रमणों के काल से चला आ रहा था जिन्होंने रोम का साम्राज्य छिन्न-भिन्न कर दिया था। फ्रांस में सामन्त लोग प्राचीन फ्रेंक और बरगण्डियन जिरगों के प्रतिनिधि थे और अन्य प्रजाजनों का गॉल (Gaul) कबीले से निकास था। सामन्तशाही प्रणाली से सिद्धान्त रूप से यह बात सर्वमान्य हो गई कि अचल सम्पत्ति का अर्थ भू-स्वामी का होना आवश्यक है। देश के सारे राजनीतिक अधिकारों का सामन्त और धर्माचार्य ही प्रयोग करते थे। किसानों को धरती कमाने पर लगाकर दास बना दिया गया था।

"ज्ञान और सभ्यता के विकास से जनसाधारण मुक्त हो गये। नवीन परिस्थितियों से उद्योग और व्यापार की उन्नति हुई। अठारहवीं शताब्दी में धरती, राष्ट्र-धन और सभ्यता के वरदानों का उपभोग जनसाधारण के अधिकार में था। इस समय भी सामन्त और जागीरदार विशेषाधिकार भोगी वर्ग था। उच्च और माध्यमिक न्यायालय उनके अधिकार में थे। वे विभिन्न नामों और प्रकारों की आड़ में अनेक विशेषाधिकारों का उपभोग करते थे। राष्ट्र द्वारा लगाये करों से उन्हें छूट प्राप्त थी तथा देश के सर्वोच्च पदों पर उनका एकाधिकार था।

"इन सब बुराइयों ने जनसाधारण को विद्रोह के लिए प्रोत्साहन दिया। क्रान्ति का मुख्य उद्देश्य सब प्रकार की विशेष सुविधाओं और अधिकारों की समाप्ति, जागीरदारों की अदालतों की समाप्ति, जनसाधारण की पूर्व दासता की याद दिलाने वाले सारे सामन्तशाही अधिकारों को नष्ट करना, बिना किसी प्रकार के भेदभाव के सब सम्पत्तियों और सब नागरिकों पर एक समान राष्ट्र के करों को लगाना और प्राप्त करना था। समस्त नागरिकों को अपनी योग्यता, पसन्द और अवसर के अनुसार राज्य के सब पदों को प्राप्त करने का अधिकार देना था।" (Mind of Napoleon, p. 65)।

(२) दूषित शासन प्रणाली (Rotten Administrative System)—फ्रांस की क्रान्ति का दूसरा कारण देश की दूषित शासन-प्रणाली थी। सम्राट् देश का स्वामी था और वह स्वेच्छानुसार राज्य करता था। लुई चौदहवें के अनुसार, "सम्पूर्ण प्रभुत्व के अधिकार मुझमें निहित हैं, कानून बनाने की शक्ति केवल मुझ में है,...मेरी प्रजा केवल मेरे साथ है, सारे राष्ट्रीय अधिकार और राष्ट्रीय हित सिद्धान्त रूप से मेरे द्वारा संग्रहीत हैं तथा मेरे ही हाथों में हैं।" इस प्रकार की प्रणाली किस प्रकार दक्ष हो सकती थी! आश्चर्य नहीं कि जन-साधारण का जीवन उस समय दुःखमय था। सम्राट् देश के विभिन्न प्रदेशों का दौरा करने नहीं जाता था। परिणामतः उसका प्रजा से सम्पर्क टूट गया था। उसे लोगों के दुःखों और आकांक्षाओं का कोई ज्ञान नहीं था। सम्राट् का सारा ध्यान राजधानी पर केन्द्रित रहता था जहाँ राजदरबार की चहल-पहल में भाग लेने के लिए सामन्तों की भीड़ जुड़ी रहती थी। लुई पन्द्रहवें के राज्यकाल में राज्य की नीति पर उसकी रखैलों (mistresses) का प्रभाव था। लुई सोलहवें के शासनकाल में सम्राज्ञी मेरी एनटाईनिट राजकाज में हस्तक्षेप करती थी। कहा जाता था कि "राजदरबार राष्ट्र की कब्र बन गया है।"

वरसाई के दरबार में १८ हजार व्यक्तियों का अमला था, जिनमें से १६ हज़ार सम्राट् और उसके परिवार की सेवा में रहते थे। शेष दो हजार दरबारी थे जो निरन्तर विलासिता में डूबे रहते थे और सम्राट् से कृपा प्राप्त करके अपने घरों को मालामाल करने में व्यस्त रहा करते थे। महलों के निवासी अपने को देवताओं के प्रिय समझते थे। सम्राट्, सम्राज्ञी, शाही बालक, भाई और बहिन तथा सम्राट् के अन्य सम्बन्धियों के अलग-अलग नौकर-चाकर थे। कहा जाता है कि महारानी के निजी ५०० सेवक थे। उन्नीस सौ घोड़ों और दो सौ गाड़ियों से भी अधिक गाड़ियाँ शाही घुड़साल में थीं, जिनका वार्षिक खर्च लगभग चार करोड़ डालर था। राज्य की मेज की कीमत ही १९ लाख डालर से अधिक थी। फ्रांस की क्रान्ति के पूर्व इस महान् अपव्यय का अनुमान २० करोड़ डालर प्रतिवर्ष लगाया जाता है।[1]

देश की शासन-प्रणाली घोर असंतोषजनक थी। प्रशासन के अनेक विभागों का कार्य अथवा अधिकार-क्षेत्र निर्धारित नहीं था। विभिन्न अवसरों पर फ्रांस को जिलों में बाँटा गया और अधिकारी नियुक्त किये गये। ये अधिकारी नाममात्र के थे। राज्यपालों के अधिकार में सूबे भी थे, जिन्हें उन्होंने न्याय-क्षेत्र, शिक्षा-क्षेत्र तथा धार्मिक क्षेत्रों में बाँट रखा था। इस प्रकार कार्य और अधिकार-क्षेत्रों के परस्पर उलझे होने के कारण भी लोगों का कष्ट अधिक हो गया होगा।

न्याय-प्रणाली भी बड़ी अव्यवस्थित थी। समस्त देश के एक समान कानून नहीं थे। देश के भिन्न-भिन्न भागों में अलग-अलग कानून लागू थे। यदि एक स्थान पर जर्मन कानून लागू था, तो दूसरे स्थान पर रोमन कानून का प्रचलन था। अनुमान है कि देश में लगभग चार-सौ न्याय-प्रणालियाँ प्रचलित थीं। न्याय-संहिता लेटिन भाषा (Latin) में लिखी हुई थी, इसलिए जन-साधारण उसे समझ ही नहीं सकते थे। कानून निर्दय, न्यायहीन थे और साधारण से अपराध पर कठोर-से-कठोर दण्ड दिया जाता था। शारीरिक यातना दण्ड का मुख्य अंग था। चक्र के नीचे

---

१. प्रो० सात्वेमिनी के मतानुसार, "उनमें से बहुतों को यह तक पता नहीं था कि उनकी कितनी आय थी और कहाँ-कहाँ उनकी जायदादें थीं। एक बड़ा सामन्त यह अपनी शान के विरुद्ध समझता था कि वह ऐसे विषयों पर विवाद करे जैसे खाद की वस्तुएँ या उसके कृषकों की गृह-व्यवस्था। हिसाब-किताब संभालना उसके गुमाश्तों व नौकरों का काम था, जबकि धन व्यय करना उसका अपना। लुई सोलहवें ने श्रीमान् डिल्लों से कहा, 'मेरे धर्मपरायण स्वामी, यह बताया जाता है कि आपके ऊपर बड़े भारी ऋण हैं।' इस पर गुमाश्ते ने व्यंग्य के साथ उत्तर दिया, 'मैं अपने सेवक से पूछ-ताछ करूँगा और उसका हिसाब-किताब आपके सम्मुख उपस्थित करूँगा।'

"स्वाभाविक है कि वे ऋणों में ग्रस्त थे। डक डी लौजों ने २६ वर्ष की आयु में अपनी सारी १,००,००० क्राउंस की आय की पूँजी लुटा दी थी और लगभग बीस लाख की पूँजी का ऋण हो चुका था। प्रिंस डे कौंटी जिसकी आय ६,००,००० लिवर्स प्रतिवर्ष था, अपने इर्द-गिर्द साहूकारों की सेना से दबा पड़ा था; काम्टे डे क्लेरमांट जो सेंट जर्मेन डेस-प्रेस का अबाट था अपने उत्तराधिकार में दो बार दिवालिया हुआ; काम्टे डे आरटोज कार्डिनल डे रोहन की लाखों की पूँजी उनके ऋणों के भुगतान में गई; डक डे चोरेल की सम्पत्ति एक सौ चालीस लाख के बराबर थी जबकि सौ लाख के बराबर ऋण हो चुका था; जबकि डक डे ओरलींस के साहूकारों का उस पर सात सौ चालीस लाख का ऋण हो चुका था।" ('The French Revolution', pp. 20-21)

पीस कर हड्डियाँ तोड़ देना, अथवा हाथ या कान कटवा देना भी दण्ड थे। देश में कोई नियमित दण्ड विधान नहीं था। प्रभावशाली व्यक्ति के इशारे पर किसी भी व्यक्ति को कैद में डाल दिया जाता था। इसके लिए एक आज्ञा-पत्र (Lettre de Cachet) ही किसी को अनन्त काल तक विना मुकदमा चलाये कैदखाने में डाले रखने के लिये पर्याप्त था। 'वन्दी-प्रत्यक्षीकरण' आज्ञा का कोई विधान नहीं था। वोलटेयर और मिराबो जैसे महान् व्यक्तियों को भी अन्य साधारण व्यक्तियों के समान कैद कर लिया गया था। अव्यवस्था केवल न्याय-प्रणाली में ही नहीं अपितु न्यायालयों में भी थी। फ्रांस में शाही कचहरी, सैनिक कचहरी, आर्थिक कचहरी तथा धर्म-न्यायालय थे। इन अनेक प्रकार के न्यायालयों के कार्य और अधिकार-क्षेत्र के उलझे होने के कारण भी प्रजा को अवश्य ही कष्ट रहा होगा। फ्रांस में एक और अद्भुत परिपाटी थी जिसे Noblesse de la robe अर्थात् 'चोगे वाले सामन्त' कहा जाता था। ये लोग जीवन-भर के लिए न्यायाधीश होते थे। इनके पद बेचे और खरीदे जाते थे। क्योंकि ये लोग अपने पद खरीदते थे, ये वड़े-बड़े जुर्माने करके अपनी जेबें भरते थे। इनकी संख्या लगभग पचास हज़ार थी। यह वर्ग निश्चित रूप से समाज के लिये अभिशाप था। मूलतः यह न्याय के सिद्धान्तों को झुठला देता था। भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भार और माप के अलग-अलग नाम और दाम थे। इनके मानदण्ड का अन्तर एक गाँव से दूसरे गाँव जाने पर ही लग जाता था।

फ्रेंच क्रान्ति के समय फ्रांस की सेना में ३५,००० अफसर थे जिसमें १,१७१ जनरल्स थे और १,३५,००० सिपाही। अफसरों पर ४६ मिलियन्स वार्षिक का खर्च होता था, यद्यपि केवल ३५,००० ही सचेष्ट सूची पर थे। सारी सेना का व्यय कुल ४४ मिलियन्स के वरावर था।

नापने और तोलने की चीज़ों के विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न नाम और विभिन्न मूल्य थे। कभी-कभी यह असमानता देखने में तब थी आती भी जबकि कोई एक ग्राम से दूसरे ग्राम को जाता था।

फ्रांस में Parlements कहे जाने वाले न्यायालय वड़े प्राचीन न्यायालय थे और ये छोटे न्यायालयों के निर्णय पर पुनर्विचार करते थे। अठारहवीं शताब्दी के समाप्ति-काल में फ्रांस में इस प्रकार के १३ न्यायालय थे। प्रत्येक न्यायालय मालदार न्यायाधीशों का संघ था जिनके पदाधिकारी धीरे-धीरे वंशानुगत उत्तराधिकारी होने लगे थे।

पार्लिमेंट न्यायालयों को कुछ राजनैतिक अधिकार भी दिये हुए थे। इन्हें शाही आज्ञाओं और अधिनियमों को लेखवद्ध करने के अधिकार प्राप्त थे। वे इन आज्ञाओं को लेखवद्ध करने में देर करके सम्राट् पर दवाव डाल सकते थे। एक शक्तिशाली सम्राट् उनसे ठीक प्रकार निपट सकता था किन्तु दुर्भाग्य से लुई चौदहवें के वाद फ्रांस में कोई योग्य सम्राट् नहीं हुआ। १७७१ में लुई पन्द्रहवें ने इन न्यायालयों को समाप्त कर दिया, किन्तु १७७४ में लुई सोलहवें ने इन्हें पुनः चालू कर दिया। ये न्यायालय इस प्रकार दूसरी वार स्थापित होकर शाही मंत्रियों को तंग करने की तथा

आर्थिक सुधारों में हेरफेर करने की स्थिति में हो गये तथा साथ-साथ वे अपने-आपको जनता के अधिकारों और स्वतंत्रता के रक्षक घोषित करने लगे।

फ्रांस के कुछ राज्यों में प्रतिनिधि प्रादेशिक सभायें थीं जिनकी बैठकें नियत समय के पश्चात् हुआ करती थीं। ये सभायें स्थानीय प्रशासन के उत्तरदायित्व को केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधियों से मिलकर निबाहती थीं। इन्हें कुछ आर्थिक सुविधाएँ प्राप्त थीं जिन्हें वे सुधारवादी अर्थ-मंत्रियों के विरुद्ध सफलता से बचाये रखते थे। इन्हें नये करों की अदायगी करने में यह छूट थी कि वे एक नियत राशि वार्षिक अनुदान के रूप में दे सकते थे। परिणामतः वे पूरा कर देने से बच जाते थे। राज्य के करों का अनुमान तथा वसूली का कार्य इन प्रादेशिक सभाओं के पदाधिकारियों को सौंपा हुआ था। स्थानीय व्यय के लिए विशेष कर लगाये जाते थे। ये सभाएँ जागीरदारों अथवा धर्माचार्यों के नियन्त्रण में थीं और इनका रूढ़िवादी तथा प्रतिक्रियावादी होना स्वाभाविक था। वे ऐसे किसी भी सुधार को, जिससे उनके विशेषाधिकारों को चोट पहुँचे, पसन्द नहीं करते थे।

करों की उगाही का प्रबन्ध अत्यन्त त्रुटिपूर्ण था। राज्य अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से राजस्व की वसूली नहीं करता था, यह अधिकार सबसे ऊँची बोली देने वाले को दिया जाता था। परिणामतः ठेकेदार राज्य को एक नियत राशि देकर प्रजा से जितना धन वे ऐंठ सकते, वसूल करते थे। यद्यपि प्रजा का शोषण होता था तो भी सरकार को कोई लाभ नहीं था। कर लगाने की प्रणाली बहुत गंदी थी। इससे देश में अत्याचार और दमन बढ़ गया। सामन्तों, जागीरदारों और धर्माचार्यों द्वाराकर न देने के कारण सारा भार गरीब सर्वहारा-वर्ग पर ही पड़ता जिनके कारण जनता में बड़ा असन्तोष था। फ्रांस के समूचे शासन-यंत्र की सफाई की बड़ी आवश्यकता थी।

(३) लुई चौदहवें के उत्तराधिकारी (Successors of Louis XIV)—

लुई चौदहवें

क्रान्ति का एक कारण लुई चौदहवें के उत्तराधिकारियों का अयोग्य होना भी था। इस विलासी सम्राट् ने अपने उत्तराधिकारियों के लिए आर्थिक दिवालियापन की स्थिति विरासत में छोड़ी। कहा जाता है कि मृत्यु-शैय्या पर पड़े हुए लुई ने अपने प्रपौत्र लुई पन्द्रहवें को यह उपदेश दिया कि, "मेरे बच्चे, अपने पड़ोसियों के साथ शान्ति से रहने का प्रयत्न करना, मेरे युद्ध करने के शौक की अथवा मेरे अपव्यय की नकल मत करना। प्रजा को शीघ्रातिशीघ्र छुटकारा देने का प्रयत्न करके वह कार्य कर दिखाना जो मैं पूरा करने में असमर्थ रहा।" यह प्रसिद्ध है कि यह बिल्कुल व्यर्थ रहा और उसने लोगों को सुख देने की अपेक्षा उन पर युद्ध और विलासिता के कारण अधिक कठिनाइयाँ लाद दीं। वह कहा करता था, "मेरे बाद प्रलय होगी।"

लुई पन्द्रहवें के शासन के विषय में पेरिस में आस्ट्रिया के राजदूत काम्टे डे

लुई पन्द्रहवाँ

मर्सी ने सम्राज्ञी मेरिया थेरेसा को लिखा, "दरबार में अन्याय, गड़बड़ और दुष्कार्यों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। प्रशासन के अच्छे सिद्धान्तों का पालन करने का कोई प्रयत्न नहीं किया जा रहा है। प्रत्येक चीज भाग्य पर छूटी हुई है। राष्ट्रीय विषयों की अपमानजनक दशा ने अवर्णनीय घृणा और हतोत्साहिता को फैला दिया है, जबकि उन लोगों की चालबाजियाँ, जो मौजूद रहते हैं, केवल अव्यवस्था फैलाती हैं। पवित्र कार्यों को क्रियात्मकता नहीं मिलती जबकि अपमानपूर्ण आचरण को सहन किया जाता है।"

डा० जी० पी० गूच के मतानुसार, "लुई पन्द्रहवें ने अपने देशवासियों को एक कुशासित, असंतुष्ट और निराशाग्रस्त फ्रांस वसीयत में दिया। दूर से देखने पर प्राचीन शासन-व्यवस्था ऐसी ठोस मालूम होती थी जैसे वेस्टाइल, किन्तु मरम्मत न होने के कारण इसकी दीवारें गिर रही थीं और नींवें हटते जाने के चिह्न छोड़ रही थीं। निरंकुश राजतन्त्र, विशेषाधिकारी सामंतवर्ग, असहिष्णु चर्च, क्लोज कारपोरेशन, पार्लियामेंट्स सभी अलोकप्रिय हो चुकी थीं और सेना, जो कभी फ्रांस की शान थी, भी रोसबाश के पतन से पतित हो चुकी थी। यद्यपि गणराज्यवाद का तनिक विचार था, राजतन्त्र की मर्यादा लगभग उड़ चुकी थी।"

(Louis XV, The Monarchy in Decline, p. 244)

लुई सोलहवाँ (१७७४-९३) बीस वर्ष की आयु में सम्राट् बना। परिस्थितियों को सँभालने में उसकी असमर्थता और विवशता का अनुमान उसके ही शब्दों से लगाया जा सकता है कि, "ऐसा प्रतीत होता है कि दुनिया मेरे ऊपर गिर रही है। हे भगवान् ! मुझ पर कितना बोझ है और इन्होंने मुझे कोई भी शिक्षा नहीं दी।" शर्मीला और झेंपू होने के कारण वह संसद् की बैठकों की अध्यक्षता भी नहीं कर सकता था। वह आलसी और कम-अक्ल था। ताले बनाना और महल की खिड़की से हिरनों का शिकार करना उसके मनोरंजन के साधन थे। भले ही वह एक अच्छा नागरिक होता किन्तु उस समय जब उसके देश के सामने गम्भीर कठिनाइयाँ थीं, वह राजा होने के बिल्कुल अयोग्य था। एक समकालीन लेखक का लेख है कि "कोई भी उस पर विश्वास नहीं करता, क्योंकि उसमें आत्म-विश्वास है ही नहीं।" उसे शासन-कला से तनिक भी दिलचस्पी नहीं थी। यह तथ्य मेलिशर्बस (Malesherbes) का त्यागपत्र स्वीकार करते समय लुई के शब्दों से प्रकट होता है कि "तुम बड़े भाग्यशाली हो। काश मैं भी त्यागपत्र दे सकता!"

मेरी एनटाईनिट (Marie Antoinette) (१७५५-९३)—मेरी एनटाईनिट आस्ट्रिया-हंगरी की महारानी मेरिया थिरेसा की पुत्री थी। लुई सोलहवें से इसका विवाह करने का उद्देश्य आस्ट्रिया और फ्रांस में मैत्री करा देना था। वह सुन्दर, उदार और चंचल थी। वह कुशाग्रबुद्धि, शीघ्र निर्णय करने वाली तथा कठोर इच्छाशक्ति वाली थी। किन्तु उसमें गम्भीरता से विचार करने की तथा गुण परखने की शक्ति नहीं थी। उसने फ्रांस की प्रजा के स्वभाव को तथा समय की प्रगति को नहीं

समझा। शाही परिवार में पैदा होने के कारण वह सर्वहारा-वर्ग के दृष्टिकोण को नहीं समझ पाई। वह अपव्ययी, घमण्डी, जिद्दी, असंयमी तथा विलास-प्रिय थी। उसने बहुत-सी गलतियाँ कीं जिसके कारण फ्रांस की प्रजा उससे घृणा करने लगी। सप्त-वर्षीय युद्ध में वह फ्रांस के अपमान का जीवित प्रतीक थी। वह लोभी व्यक्तियों का केन्द्र थी जो सब प्रकार के सुधारों के विरोधी थे।

उसके सगे भ्राता सम्राट् जोज़फ़ द्वितीय ने मेरी एनटाईनिट के विषय में कहा हैं, "मेरी प्रिय बहिन, मैं निस्संकोचता के साथ कहता हूँ जिसके लिए मैं तुम्हारे प्रति अपने स्नेह तथा तुम्हारे कल्याण में अपनी रुचि के लिए अधिकारी हूँ। जो मैंने सुना है, तुम अनेकों बड़ी समस्याओं में अपने को ग्रस्त कर रही हो, जिनसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है, और जिनके बारे में तुम्हें कोई ज्ञान नहीं। चालबाज़ और चापलूस व्यक्तियों से घिरी हो, जो तुम्हरे हृदय में केवल अहंकार और चमकने की इच्छा ही नहीं जागृत करते हैं वरन् उनसे ईर्ष्या और दुर्भावना उत्पन्न होती है। ऐसा आचरण तुम्हारी प्रसन्नता पर बुरा प्रभाव डाल सकता है और आगे या पीछे तुम्हारे और राजा के बीच गम्भीर परेशानी उत्पन्न कर सकता है जिससे उसका तुम्हारे प्रति मान व प्यार घटेगा और जनता के प्रति प्रेम को भी कम करेगा...मेरी प्रिय बहिन, तुम मंत्रियों को उनके पदों से हटाने में, एक को निकालने और उसकी जगह दूसरे को देने में, यह देखने में कि तुम्हारा मित्र किसी मुकद्दमे में जीते, या कोर्ट की ओर से कोई नयी और अपव्ययी नियुक्ति कराने में, संक्षेप में, विषयों पर इस तरह विवाद करने में जो तुम्हारी स्थिति के अनुकूल नहीं, अपना प्रयोग क्यों करती हो? क्या तुमने कभी यह भी सोचा कि फ्रांस की सरकार या राजतन्त्र के विषयों में हस्तक्षेप करने का तुम्हें क्या अधिकार है? तुमने क्या अध्ययन किया है, तुमने क्या ज्ञान प्राप्त किया है जिससे तुम अपनी राय को महत्व देती हो, विशेषकर ऐसे मामलों में जिनके लिए विशाल अनुभव की आवश्यकता है। एक आकर्षक युवा स्त्री की तरह तुम केवल अपव्ययिता के विषय में, अपने शृङ्गार के विषय में, अपने मनोरंजन के विषय में सोचती हो जो न पुस्तकें पढ़े, न एक मास में दस मिनट से ज्यादा किसी गम्भीर बात को सुने, जो कभी सोच-विचार न करे, न कभी यह सोचे कि किये हुए काम या कहे हुए शब्द का क्या परिणाम होगा? तुम केवल क्षणिक आवेश के साथ काम करती हो जिसे तुम्हारे विश्वसनीय पक्षपातीगण तीक्ष्ण करते रहते हैं......एक मित्र के परामर्श को सुनो, यह सारी चालबाजियाँ छोड़ दो, सार्वजनिक विषयों से अपने को हटा लो और केवल राजा के स्नेह और विश्वास पाने के योग्य होने की ओर ध्यान करो......शेष के हेतु, कुछ अध्ययन किया करो, अपने मस्तिष्क को ऊँचा करो। सबसे बड़ी बात यह है कि प्रत्येक स्त्री का अपने निजी घर में यही काम होता है।"

(४) फ्रांस के दार्शनिक (French Philosophers)—फ्रांस की क्रान्ति का एक अन्य कारण फ्रांसीसी दार्शनिकों के उपदेश भी थे। मॉण्टेस्क्यू, वॉल्टेयर और

रूसो उस काल के बौद्धिक महामानव थे, मॉण्टेस्क्यू (१६८६-१७५५) एक शिष्ट और प्रसिद्ध वकील था। यह इतिहास का विद्वान्, गम्भीर, तीव्र, मानव-समाज का गम्भीर विद्यार्थी था। उसकी लेखन-शैली तीखी और चुभने वाली थी। उसके लेख केवल काल्पनिक नहीं अपितु गम्भीर और युक्ति-युक्त विचारों का परिणाम थे। इनमें गम्भीरता, उच्च विचार, वैज्ञानिक विश्लेषण तथा नम्र भाषा होती थी। उसने एक दार्शनिकता का आन्दोलन चलाया तथा व्यंग्य और आलोचना का सहारा लेकर प्राचीन शासन-प्रणाली (Ancien Regime) पर इतनी तीव्रता से आक्रमण किया कि शासन की नींव हिल गई। वह वैज्ञानिक प्रणाली की सरकार का समर्थक था और कानून की सर्वसत्ता में विश्वास रखता था। उसका मत था कि सत्ता के विभाजन के बिना स्वतंत्रता असम्भव है। वैज्ञानिक, न्यायिक तथा क्रियात्मक अधिकार आवश्यक रूप से भिन्न-भिन्न शक्तियों में बँटे होने चाहिएँ तभी जनता को स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। इन तीनों प्रकार के अधिकारों में किन्हीं दो अथवा तीनों के एक ही शक्ति के हाथ में होने के परिणामस्वरूप अत्याचार बढ़ जायेगा। मॉंटेस्क्यू ने शासन यंत्र को नियंत्रण करने वाले सिद्धान्तों का विश्लेषण करके फ्रांस की शासन-प्रणाली के प्रति आश्चर्यपूर्ण प्रतिष्ठा को समाप्त कर दिया।

मॉण्टेस्क्यू

उसका महान् ग्रंथ 'विधि की आत्मा' (Spirit of the Laws), जो बीस वर्ष के परिश्रम का परिणाम था, १७४८ में प्रकाशित हुआ। कहा जाता है कि अठारह महीने में इसके बाईस संस्करण निकले। यह राजनीति दर्शन का अध्ययन था जिसमें भिन्न प्रकार की शासन की प्रणालियों की विवेचना थी। प्रचलित प्रणालियों और परिपाटियों से दैनिक आवरण को उतार कर उसने इनका वनस्पति-शास्त्रवेत्ता की तरह विश्लेषण किया।

प्रो० साल्वेमिनी के मतानुसार, " 'स्प्रिट ऑफ दि लॉज़' ने शिक्षित जनों में वैधानिक और राजनीतिक अध्ययनों के विषय में एक अभिरुचि उत्पन्न कर दी, समाज विज्ञानों को साहित्य के क्षेत्र में स्थान दिया और अन्य किसी रचना की अपेक्षा समाज-वैज्ञानिक व दार्शनिक साहित्य-प्रेम का एक ऐसा वातावरण उत्पन्न करने में सहायता प्रदान की जिसने अठारहवीं शताब्दी में क्रान्तिकारी सिद्धान्तों को फलने-फूलने के योग्य बनाया।" (The French Revolution, p. 64.)

दूसरा महापुरुष वॉल्टेयर (१६६४-१७७८) था। गद्य, पद्य, इतिहास, नाटक, उपन्यासों के माध्यम से उसने देश की परिपाटियों, विश्वासों और अनाचारों की आलोचना की। उसने निर्दयता से इनकी त्रुटियों को नंगा कर दिया। वह इनकी मूर्खताओं का उपहास करता था। "उसकी दुर्लभ और वहुमुखी हाजिर-जवावी, सूक्ष्म व्यंग्य, विना हिचक आलोचना, उसके जीवन के गहरे अध्ययन का देशवासियों के मस्तिष्क पर बहुत गहरा प्रभाव था। उसने दार्शनिक आन्दोलन को जन-साधारण तक पहुँचाया। उसमें स्वयं कई कमियाँ थीं और उसकी रुचियों में भी दोष थे फिर भी उसने अपने देशवासियों को मूर्खता से घृणा करना और बुराइयों से बचना सिखाया।" फ्रांस का चर्च उसके खण्डन का मुख्य लक्ष्य था। उसने ईसाइयों की धर्मान्धता और रूढ़िवाद पर कठोर आक्रमण किया और धार्मिक सहिष्णुता का समर्थन किया। "क्योंकि हम सब त्रुटियों और बेवकूफ़ियों में फँसे हुए हैं इसलिए हमें एक-दूसरे को अपनी बेवकूफ़ियों के लिए क्षमा कर देना चाहिये। भगवान् की पूजा करो और अच्छे आदमी बनो।" इन साहित्यिक गुणों के कारण वॉल्टेयर के ग्रंथों और लेखों को बहुत लोग पढ़ते थे और इसमें आश्चर्य नहीं कि अपने युग में उसका फ्रांस में बड़ा प्रभाव था।

वॉल्टेयर

वॉल्टेयर यूरोप के इतिहास का महापंडित था और उसके नाम से उस युग को याद किया जाता है। हम वॉल्टेयर युग के विषय में उसी प्रकार चर्चा करते हैं जिस प्रकार लूथर और इरास्मस के युग को याद करते हैं। उसे बादशाह वॉल्टेयर के नाम से पुकारा जाता था। विश्वख्याति प्राप्त करके वह विश्व के इतिहास में लीन हो गया। वह सारे जीवन भर एक योद्धा रहा। वह दिन में बादल की तरह गरजा और रात्रि में अग्निपुंज की तरह दमका। वह कभी थकता नहीं था। वह बड़ा दिलचस्प और सदा ही अच्छी सलाह देने वाला रहा। वह अत्याचार को किसी भी रूप और प्रकार में सहन नहीं करता था। वह दलितों की खातिर संघर्ष के लिए सर्वदा तैयार रहता था। वह उदार-सामन्तशाही शासन का समर्थक था तथा प्रजातंत्र से उसे

कोई लगाव नहीं था। वह कहा करता था "मुझे एक सिंह का शासन अनेक चूहों के राज्य से अच्छा लगता है।"

फ्रांस के जिस दार्शनिक का प्रभाव सबसे अधिक था, वह था रूसो (१७१२-१७७८)। उसे भूतकाल का अध्ययन और विश्लेषण पसंद नहीं था। उसे विद्या और कला के प्रचार में कोई रुचि नहीं थी। उसके मतानुसार अध्ययन, ज्ञान और संस्कृति मनुष्य को गिरा देती हैं। सब समाज बनावटी हैं। राजनीति के सब प्रकार अत्याचारी और बुरे हैं। मनुष्य स्वतंत्र पैदा होकर भी सर्वत्र दासता में जकड़ा दिखाई पड़ता है। समाज का वातावरण मनुष्य की प्राकृतिक स्वच्छता को नष्ट कर देता है। उसके गुणों को मैला करके उसके सारे पापों और दुःखों का उत्तरदायी है। आश्चर्य नहीं कि रूसो ने जन-साधारण से अपील की, "समाज के बनावटी ढांचे को, गंदी इच्छाओं और यातना-पूर्ण धन से भरे संसार को, व्यवस्था के नाम से पुकारे जाने वाले अत्याचार को, ज्ञान कहे जाने वाले अज्ञान को, उखाड़ फेंको। इसकी असमानताओं को गिराकर समान कर दो, इसके अज्ञान का विरोध करो ; इसके कार्य को समाप्त कर दो और इसकी दासता की बेड़ियाँ तोड़ डालो। मनुष्यों को आदि काल की सादगी अपनाने दो, जब प्राकृतिक स्वभाव ही उन पर शासन करते थे, जब वे अबोध और अज्ञानी थे, जैसा प्रकृति ने उन्हें बनाया था, और उन्हें अमर दैविक आदेशों द्वारा प्रेरित तर्क के सहारे जीवन के उच्च आदेशों को प्राप्त करने दो।"

रूसो

आगे, 'क्या हमारे समाज में सारे लाभ केवल धनी और सत्ताधारियों के लिए सुरक्षित नहीं हैं ? क्या सारी चित्ताकर्षक सेवायें केवल उन्हीं के लिए नहीं हैं ? क्या सारे लोक-अधिकारी केवल उन्हीं की सेवा-हेतु नहीं हैं ? यदि एक प्रभावशाली व्यक्ति अपने साहूकारों को धोका देता है या अन्य दुष्टतापूर्ण काम करता है, तो क्या उसे कानून के सम्मुख विशेष उन्मुक्ति नहीं मिल सकती ? यदि वह हिंसा या हत्या का दोषी है, तो क्या सारा मामला शांत नहीं कर दिया जाता और छः महीनों के बाद कोई जिक्र तक नहीं होता ? लेकिन जब इसी व्यक्ति को लूट लिया जाता है, तो सारी

पुलिस चल पड़ती है और उस निर्दोष को सताया जाता है जिस पर संशय किया जाता है। यदि ऐसे धनी व्यक्ति को किसी भयानक स्थान से गुजरना पड़े, तो उसे विशाल संरक्षक दल दिया जाता है। यदि उसकी गाड़ी का धुरा टूट जावे, तो सारे लोग उसकी सहायता के लिए भाग पड़ते हैं। यदि उसके द्वार पर शोर हो, तो उसके एक शब्द पर सन्नाटा छा जाता है। यदि उसके द्वार पर कोई गाड़ीचालक रुक जावे तो उसके नौकर उस पर मार की वर्षा करते हैं। इन सुविधाओं का उसे कुछ देना नहीं पड़ता, क्योंकि धनी लोगों को इन छोटी-मोटी चीजों का प्रयोग करने के लिए अपने धन को व्यय करने की आवश्यकता नहीं। लेकिन गरीब व्यक्ति का दृश्य कितना भिन्न है! समाज जितनी अधिक दया उसे देता है, उसे वह उतना ही कम पाता है। उसके लिए सारे द्वार बन्द रहते हैं जबकि उन्हें खुला रखना उसके अधिकार में है। यदि मार्ग में एक बार भी न्याय लेने की आवश्यकता पड़े, तो अन्य लोगों की अपेक्षा इस कृपा को पाने की उसे बहुत ज्यादा कोशिश करनी पड़ती है। यदि किराये की गाड़ी मँगाना हो या सैनिक टैक्स वसूल करना हो तो सबसे पहले उसे ही लिया जाता है। उसे केवल अपने ही भार नहीं उठाने पड़ते, वरन् वे भी उठाने पड़ते हैं जो उसके पड़ोसी उसकी पीठ पर लाद देते हैं। यदि वह किसी दुर्घटना का शिकार हो जाय तो सभी उसे उसके भाग्य पर छोड़ देते हैं। यदि उसकी गाड़ी उलट जाय तो वह सामन्त के नौकरों के उस अपमान से नहीं बच सकता जो जल्दी से पास से निकलना चाहते हैं। आवश्यकता के समय सारी निःशुल्क सहायता से वह वंचित रहता है क्योंकि उसमें उसे अदा करने की क्षमता नहीं। और उस पर और भी अधिक दुःख पड़ता है यदि दुर्भाग्यवश उसकी आत्मा शुद्ध है, उसके पास एक सुन्दर पुत्री या सत्ताधारी पड़ोसी है, उसे हानि उठानी पड़ती है। कुछ शब्दों में हम दोनों वर्गों के बीच सामाजिक सम्बन्धों को इस प्रकार रख सकते हैं: "तुम्हें मेरी आवश्यकता है, क्योंकि तुम धनी हो और मैं निर्धन हूँ; इसलिए हम आपस में एक समझौता कर लें; मैं तुम्हें अपनी सेवा करने की आज्ञा दूँगा यदि तुम्हें आज्ञाएँ देने में मुझे जो कष्ट होगा उसके बदले में तुम मुझे वह सब दोगे जो तुम्हारे पास है'।"

रूसो ने उस प्राकृतिक राज्य की कल्पना की है जिसमें लोग सदाचारी, समान और स्वतंत्र थे। उसने इस बात की विवेचना की है कि सामाजिक समझौते (Social Contract) से किस प्रकार राज्य की उत्पत्ति होती है और प्रकृति का राज्य समाप्त हो जाता है। उसने जनता की सर्वाधिकार-सम्पन्नता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया; प्रत्येक व्यक्ति उस सम्पन्नता का अधिकारी था। क्योंकि सर्वाधिकार जनता में निहित हैं, कोई भी सरकार अथवा राजा उनके इस अधिकार को नहीं छीन सकता है। प्रजा को सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने का अधिकार है। रूसो वर्तमान की सारी मान्यताओं का विरोधी था और इस प्रकार इनकी नींव पर आघात करता था। उसके लेखों ने लोगों पर बड़ा स्थायी प्रभाव डाला। उसने स्वतंत्रता के प्रति लोगों में उत्साह भी पैदा किया। उसके "समाजिक समझौता" (Social Contract) सिद्धान्त ने क्रान्ति को आधार दिया और इसकी आग को सुलगाया। यह सिद्धान्त जैकोबिन (Jacobin) दल का मूलमंत्र बना और इस मंत्र का मुख्य प्रचारक रोबस्पेरी (Robes-

pierre) बना। लार्ड मॉरले ने रूसो के प्रभाव का अनुमान इन शब्दों में बताया है, "प्रथम उसने शब्द कहे जिन्हें वापस नहीं लौटाया जा सकता, तथा इनसे वह आशा का दीप जलाया गया जिसे कभी भी बुझाया नहीं जा सकता। पहले उसने जन-साधारण को तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था की बुराइयों का ज्ञान कराया, सभ्यता की महानता को मानव समाज के एक बहुत बड़े अंग के लिए नगण्य बना दिया। दूसरे, अपनी प्रभावशाली वाणी और तेजस्वी धारणाओं से असंख्य मनुष्यों के हृदय में वे भाव जगाये और फ्रांस में इतनी शक्ति फूँक दी और निद्रित अवस्था से जगाया जो मृत्यु की तरह सारे देश के जीवन पर छाई जा रही थी।"[1]

प्रो० हेजन (Hazen) के शब्दों में, "क्रान्ति दार्शनिकों के कारण नहीं हुई अपितु राष्ट्रीय जीवन की बुराइयों, परिस्थितियों तथा सरकार की त्रुटियों के कारण हुई। कुछ भी हो, ये विद्वान् क्रान्ति का एक निमित्त थे, क्योंकि उन्होंने क्रान्ति के नेताओं के एक गुट को शिक्षित किया, उनमें कुछ गहन सिद्धान्तों को जमाया, उन्हें वाक्यों, सिद्धान्तों और तर्कों को दिया, उन्हें कुछ शक्तिशाली विचार प्रदान किए और इस प्रकार की आशा दिखलाई जो इस सारे संघर्ष से प्रकट है। यद्यपि उन्होंने क्रान्ति नहीं की, किन्तु उन्होंने इसके कारणों को विद्वत्तापूर्ण रूप से नंगा कर दिया, उनका सारा ध्यान उन पर आकर्षित किया, इन पर विवाद करने पर बाध्य किया और उनकी घृणा को जगाया।"

इन तीन महापुरुषों के अतिरिक्त अन्य छोटे-छोटे विचारक भी थे और क्योंकि उनके लेखों ने भी लोगों के विचारों को प्रभावित किया, उनका उल्लेख भी आवश्यक है। डिडरोट (Diderot) उस विश्व-ज्ञान कोष (Encyclopaedia) का सम्पादक था, जिसमें अनेक लेखकों ने लेख दिये थे। उसके विचार मौलिक थे। वह चतुर, बोलने में संकोचहीन और महान् विचारक तथा अद्भुत और कल्पनाशील व्यक्ति था। उसमें लोगों को अपने विचारों का समर्थक बनाने की महान् आकर्षण-शक्ति और अगाध लगन थी। मानव-समाज की उन्नति करने की उसे बड़ी तीव्र लगन थी।

हेलविशियस (Helvetius) ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि स्वार्थ ही मनुष्यों के विचारों और चरित्रों को बनाता है और आनन्द की प्राप्ति ही उनका चरम लक्ष्य है।

---

१. प्रो० सालवेमिनी के मतानुसार, "रूसो कोई वास्तविक क्रान्तिकारी नहीं था ! यदि वह क्रान्ति के समय तक जीवित रहता, तो वह अपनी शिक्षाओं को लागू किये जाने की रीति देखकर या तो दिल का धक्का खाकर मर जाता या अपना गला घोंट लेता। फिर भी उस अत्याचारपूर्ण और पतनशील समाज में, जहाँ सभी असन्तुष्ट थे और विद्रोह को सिद्ध करने के लिए असंख्य दलीलें प्रयुक्त की जा सकती थीं, यह स्वाभाविक था कि सावधानी के विषय में रूसो की राय गुप्त रूप से निकल जाती और एक उत्तम संसार के लिए उसकी इच्छा; जन्म व धन के विशेषाधिकारों के विरुद्ध उसका कड़ा विरोध; और समानता के लिए प्रेम तथा असमानता पर घृणात्मक क्रोध से भरपूर उसके पृष्ठ अधिक अंश में प्रशंसित होने चाहिए। ज्यों ही लोगों का अपनी परम्परागत संस्थाओं में विश्वास समाप्त हो गया और नागरिक विशेषाधिकारग्रस्त वर्गों तथा राजा के विरुद्ध अवश्यतापूर्ण संघर्ष के लिए तैयार हो गए, तो रूसो का लोकराज्य सत्ता का मन्त्र क्रान्ति में संग्राम का नारा बन गया।" (The French Revolution, pp. 78—79.)

होलबैश (Holbach) ने राजाओं की दुश्चरित्रता और जनता की दासता को दर्शाया। उसके विचारानुसार, नास्तिकता और भौतिकवाद ही जीवन के दो दार्शनिक सिद्धान्त हैं। उसके शब्दों में, "धर्म और राजनैतिक त्रुटियों ने सारे ब्रह्माण्ड को एक आँसुओं की घाटी बना डाला है।"

क्युसिनाय (Quesnai) और टुर्गट (Turgot) जैसे व्यक्ति सुधारों के समर्थक और इतिहास के अध्ययन को हेच समझते थे। वे स्वतन्त्रता के प्रतिपादक तथा व्यक्ति के अधिकारों को जन-साधारण के हितों के समक्ष गौण मानते थे। वे राष्ट्रीय शिक्षा को राष्ट्र की उन्नति के लिए प्रमुख आवश्यक वस्तु मानते थे। उनके विचार से सारे कर खेती पर ही लगाने चाहियें क्योंकि यह राष्ट्र-धन का मुख्य आधार है। वे स्वतन्त्र व्यापार, स्वतन्त्र खेती और स्वतन्त्र उद्योग के समर्थक थे किन्तु 'स्वतन्त्रता' के लिये उनके हृदय में कोई प्रेम नहीं था।

विश्वकोप के सम्पादकों की प्रमुख देन यह थी कि वे अन्याय से घृणा करते थे, दासता कर लगाने में असमानता, न्याय-प्रणाली में भ्रष्टाचार और युद्ध की उपयोगिता के घोर विरोधी थे। वे सामाजिक प्रगति तथा औद्योगिक विकास के स्वप्न देखा करते थे।

मेलट (Mallet) के मतानुसार, "इन तीन प्रतिभाशाली व्यक्तियों द्वारा बोये गये बीज उपजाऊ धरती पर पड़े। फ्रांस की क्रान्ति के तुरन्त पहिले जो व्यवस्था थी वह यद्यपि स्पप्ट नहीं थी तो भी वह घोर असन्तोप की द्योतक थी। मानव की जन्म-जात महानता और तत्कालीन समाज के प्रति घोर घृणा उस युग के विचारों में ओतप्रोत थी। लगभग सारे यूरोपीय देशों में सूक्ष्मदर्शियों ने भावी परिवर्तन के लक्षण देखे—वह परिवर्तन जिसका मानव-समाज के कल्याण के लिये वे स्वागत करने के लिए तैयार थे। विचारक और वक्ता, दोनों ही कल्पना, उत्सुकता, निःस्वार्थपरता और असीम आशा से भरे हुए थे।" (The French Revolution)

क्रोपोटकिन के विचार में, "अठारहवीं शताब्दी के विचारक उस समय की विधि व व्यवस्थापूर्ण समाज की नींवों का काफी समय से रक्त पी रहे थे जिसमें राजनीतिक सत्ता और धन का विशाल भाग कुलीन वर्गों व पादरियों के पास था जबकि जनता शासक वर्गों की दृप्टि में भार उठाने वाले पशुओं की तरह थी। विवेक की प्रधान सत्ता घोपित कर, मानवीय स्वभाव में विश्वास का उपदेश देकर उन्होंने उन संस्थाओं को भ्रप्टाचारी घोपित कर दिया, जिन्होंने मनुष्य को नीचता पर उतार दिया था, लेकिन, फिर भी, इस विश्वास के साथ कि यदि उन्हें स्वतन्त्रता फिर से मिल गई तो वह सारे गुण प्राप्त कर लेंगे—उन्होंने मानव जाति के लिए नए क्षेत्र खोल दिए। जन्म के भेदभाव को न मानकर मनुप्यों के बीच समानता की घोपणा कर, चाहे राजा हो या किसान प्रत्येक नागरिक से कानून के प्रति आज्ञापालन की माँग कर उन्होंने राष्ट्र की इच्छा की अभिव्यक्ति करने की कल्पना की जबकि उसका सृजन जनता के प्रतिनिधियों ने किया था; अन्त में, स्वतन्त्र व्यक्तियों के बीच प्रसंविदा की स्वतन्त्रता माँग कर और सामन्ती सेवाओं व टैक्सों के उन्मूलन की माँग कर ऐसे सारे दावे

सामने रख कर, और उन्हें फ्रेंच चिन्तन की विशेषताओं, पद्धति व प्रणाली के साथ सम्बद्ध कर, विचारकों ने निस्सन्देह, कम-से-कम मनुष्यों के दिमागों में, पुराने शासन के पतन की तैयारी कर दी थी।"

(The Great French Revolution, pp. 1-2.)

प्रो० थॉमसन के अनुसार, "फ्रांस के दार्शनिकों और १७८९ में हुई क्रान्ति के बीच बड़ी दूर का और परोक्ष का सम्बन्ध है। उन्होंने क्रान्ति का उपदेश नहीं दिया। वे लोग किसी भी ऐसे राजा की सहायता करने के लिए तैयार थे जो इनका संरक्षण करने और इनकी शिक्षा मानने के लिए तैयार होता। पुनः उनके समर्थक भी क्रान्ति के लिए प्रयत्नशील अथवा चाहने वाले नहीं थे। स्वयं उनमें बहुत से पूँजीपति, वकील, व्यापारी, स्थानीय सम्माननीय व्यक्ति थे जिनकी स्थिति अन्य लोगों से कहीं अच्छी थी। 'दार्शनिकता' के सिद्धान्त का प्रयोग क्रान्ति के समय में ही हुआ और इसका प्रयोग भी इस प्रकार के कार्यों के लिए किया गया जिन्हें स्वयं इस सिद्धान्त के जन्मदाता घृणा करते। उनकी शिक्षाओं को बाद में महत्त्व प्राप्त हुआ। यदि क्रान्ति के प्रारम्भ में उनका कुछ प्रभाव था तो केवल इस कारण कि उन्होंने तत्कालीन सारी सामाजिक व्यवस्था के प्रति एक आलोचनात्मक और खण्डनपूर्ण विचार-धारा को जन्म दिया। उन्होंने आवश्यकता पड़ने पर प्राचीन व्यवस्था को गिराने के लिए जनता को तैयार किया था। १७८९ में फ्रांस की जनता को बिना इच्छा के क्रान्तिकारी बना देने के लिये सबसे बड़ा कारण उस समय की क्रान्तिपूर्ण परिस्थिति थी। इस परिस्थिति को लाने के लिए 'दार्शनिक सिद्धान्त' का कोई महत्त्वपूर्ण भाग नहीं था।

(५) **आर्थिक स्थिति** (Financial Condition)—फ्रांस की क्रान्ति का कारण तत्कालीन सरकार की आर्थिक स्थिति भी थी। यह सत्य है, कि "क्रान्ति का मूल आधार आर्थिक था और दार्शनिकता ने जो प्रवाह प्रवाहित किया, उसकी मुख्य शक्ति आर्थिक थी। आर्थिक कारण ही क्रान्ति की वास्तविक नींव थे। लुई चौदहवें के युद्धों ने फ्रांस की आर्थिक व्यवस्था को बिगाड़ दिया था और उसकी मृत्यु के समय देश की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। यद्यपि उसने लुई पन्द्रहवें को आर्थिक स्थिति को सुधारने और युद्ध से बचे रहने का उपदेश दिया, पर उसने इसकी उपेक्षा की। उसने अपने महलों और रखैलों पर ही धन का अपव्यय नहीं किया अपितु अनेक युद्धों में भाग लेने का दुस्साहस किया। उसने पोलैण्ड के उत्तराधिकार के युद्ध में भाग लिया। उसने आस्ट्रिया के उत्तराधिकार के युद्ध में भाग लिया। सप्त-वर्षीय युद्ध में भी उसे बहुत व्यय करना पड़ा। जिस समय लुई सोलहवाँ राजसिंहासन पर बैठा, फ्रांस की हालत दिवालिया हो गई थी किन्तु इतने पर भी फ्रांस ने अमेरिका के स्वातन्त्र्य-युद्ध में भाग लिया। यह सत्य है कि फ्रांस ने सप्तवर्षीय युद्ध के अपमान का बदला इंग्लैंड से लिया, किन्तु इस युद्ध में भाग लेने से देश की आर्थिक स्थिति बुरी तरह डगमगा गई। इस बात को नहीं झुठलाया जा सकता कि फ्रांस द्वारा अमेरिका के स्वतन्त्रता के युद्ध में भाग लेने से उत्पन्न हुई जटिल आर्थिक स्थिति ने ही फ्रांस में क्रान्ति उत्पन्न की।

फ्रांस की आर्थिक प्रणाली बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण थी। देश की चालीस प्रतिशत सम्पत्ति के स्वामी जागीरदार और धर्माधिकारी, देश के कोष में कुछ भी नहीं देते थे। परिणामतः राजस्व का सारा भार सर्वहारा-वर्ग पर ही पड़ता था। इससे बड़ी कटुता उत्पन्न हुई। राष्ट्र पर ऋण का भार बहुत ही बढ़ गया और यह अनुमान किया जाता है कि उस समय यह ४,४६७,४७८,००० लीवर था। १७८८ में ४७२,४१५,५४९ के राजस्व में से देश को २३६,९९९,९९९ लीवर वार्षिक सूद के रूप में देना पड़ता था।

अनुमान किया जाता है कि पुराने शासन (Ancien Regime) की समाप्ति पर राजस्व का तीन-चौथाई भाग सुरक्षा पर तथा पहले युद्धों के ऋणों को निपटाने में खर्च होता था। राष्ट्र के व्यय की इन भारी मदों को बिना देश की सुरक्षा और राष्ट्र की कर्जा निपटाने की प्रतिष्ठा को चोट पहुँचाए घटाना असम्भव था। व्यय में कटौती केवल नागरिक खर्च में ही की जा सकती थी जो १७८८ में राष्ट्र व्यय का केवल २३ प्रतिशत था। सम्राट् के खर्चे में भी, जो राष्ट्र-व्यय का ६ प्रतिशत था, कटौती करने से कोई सहायता नहीं मिलती थी। केवल आमूलचूल परिवर्तन ही देश की स्थिति को सुधार सकता था।

१७७४ में लुई सोलहवें ने टुर्गट को वित्त मन्त्री नियुक्त किया। टुर्गट फ्रांस के एक निर्धन प्रदेश का प्रतिनिधि था। उसने प्रगतिशील अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्तों का प्रयोग करके इस प्रदेश को धनवान बना दिया था। उसने अनुभव किया कि यदि केन्द्रीय सरकार के लेखे की वार्षिक कमी को चलने दिया गया तो इसका परिणाम देश को दिवालिया बना देगा। उसने अपने प्रोग्राम को इन शब्दों में बताया, "अधिक कर्जा बन्द, अधिक कर बन्द और दिवालियापन बन्द"। उसे मितव्ययिता और राष्ट्र धन की वृद्धि करके देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने की आशा थी। यह केवल खेती, उद्योग और व्यापार में स्वतन्त्रता देकर ही हो सकता था। टुर्गट वास्तव में व्यर्थ के खर्च को रोक कर करोड़ों की बचत करने में सफल हुआ। किन्तु इस प्रयत्न में उसको इस व्यर्थ के खर्च से लाभ उठाने वालों की शत्रुता मिली। उन्होंने मेरी एनटाईनिट से मिल कर सम्राट् पर दबाव डाला कि टुर्गट को निकाल दे। यद्यपि सम्राट् ने यह घोषणा की कि, "मैं और टुर्गट ही दो व्यक्ति प्रजा से प्रेम करते हैं", फिर भी उसने वित्त-मन्त्री को १७७६ में पदच्युत करके अपने लिए कठिनाइयों को निमन्त्रण दिया।

१७७६ में जिनेवा के एक साहूकार नेकर (Necker) को टुर्गट का उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया। नेकर ने गरीबी से उठ कर शक्ति प्राप्त की थी। मितव्ययिता करते समय उसे बहुत विरोध का सामना करना पड़ा। यह पहला व्यक्ति था जिसने देश के आय-व्यय का लेखा प्रकाशित किया। इससे पूर्व यह लेखा गुप्त रखा जाता था। दरबारी समाज में इस लेखे के प्रकाशित होने के कारण बड़ा क्षोभ हुआ, क्योंकि इससे यह पता लग गया कि दरबारियों की पेन्शन और भेंटों पर कितना व्यय होता है। १७८१ में नेकर को पदच्युत कर दिया गया।

नेकर के बाद उसका उत्तराधिकारी कैलोने (Calonne) बना। वह एक नम्र व्यक्ति था। उसका उद्देश्य सबको प्रसन्न करना था। दरबार के सदस्यों को केवल अपनी इच्छा ही प्रकट करनी होती थी और कैलोने उसे पूरा कर देता। कैलोने का आश्चर्यजनक ऋण लेने का सिद्धान्त था। उसके शब्दों में, "जो व्यक्ति उधार लेना चाहे उसे धनी दिखाई देना चाहिए और धनी प्रतीत होने के लिए उसे खूब खर्च करके दूसरों की आँखें चौंधिया देनी चाहियें।" उसके सिद्धांत के परिणामस्वरूप धन पानी की तरह बहाया गया। तीन वर्ष में वह ३० करोड़ डालर का ऋण प्राप्त कर सका। उसकी भूलों और कार्यों का परिणाम यह हुआ कि अगस्त, १७८६ तक शाही कोष बिल्कुल खाली हो गया और देश में कोई भी ऐसा मूर्ख नहीं था जो राज्य को ऋण देता। जब कैलोने ने विशेषाधिकार प्राप्त और सर्वहारा-वर्ग दोनों पर समान कर लगाने का प्रस्ताव रखा तो उसे पदच्युत कर दिया गया। सम्राट् ने एक और व्यक्ति को भी कोषाध्यक्ष बना कर परखा, किन्तु वह भी आर्थिक स्थिति को दृढ़ नहीं कर पाया।

१७८७ में आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के उद्देश्य से लुई सोलहवें ने प्रमुख व्यक्तियों की एक सभा बुलाई। उसे आशा थी कि ये लोग विशेषाधिकारी वर्गों पर कर लगाए जाने के लिए सहमत हो जायेंगे। किन्तु जागीरदार लोग सम्राट् पर यह कृपा करने के लिए तैयार नहीं थे और इसलिये यह सभा भंग कर दी गई। सम्राट् ने नये ऋण उठाने का प्रयत्न किया किन्तु पेरिस की संसद् ने नये ऋण अथवा कर लगाने से मना कर दिया। संसद् ने एक "अधिकार-घोषणा" तैयार की जिसके अनुसार वैधानिक रूप से आर्थिक अनुदान केवल जनता के प्रतिनिधि (Estates-General) ही दे सकते थे। सरकार ने पेरिस की संसद् के विरुद्ध कार्रवाई करके इसे भंग कर दिया। बहुत गुलगपाड़ा मचा और सैनिकों ने न्यायाधीशों को कैद करने से मना कर दिया। जनता की भीड़ ने संसद् को बहाल करने की माँग की। (१६१४-१७८९) इन परिस्थितियों में सम्राट् को झुकना पड़ा और १७५ वर्ष बाद संसद् का चुनाव करने की आज्ञा दी। यह आज्ञा १७८९ के फ्रांस का अग्रदूत थी।

प्रो० गुडविन के अनुसार, "१७८९ की फ्रांस की क्रान्ति के कारण, किसानों की दुर्दशा में नहीं, मध्यमवर्ग के राजनैतिक असंतोष में नहीं, अपितु फ्रांस के प्रतिक्रियाशील सामन्तवर्ग की महत्त्वाकांक्षाओं में ढूँढ़ने चाहिएँ।" यद्यपि क्रान्ति से राजनैतिक सत्ता की स्थापना और मध्यम वर्ग की आर्थिक अवस्था में सुधार हुआ किन्तु १७८७ से १७८८ के काल में सामन्तवर्ग ने बुरबोन (Burbon) वंशज राजाओं की सुधारवादी नीति का विरोध करके, जिसके द्वारा उनके विशेषाधिकारों पर आघात होता था, क्रान्ति की गति को बल प्रदान किया[1]। जुलाई, १७८८ में लुई सोलहवें द्वारा १६१४ से निष्क्रिय संसद् के चुनाव का आदेश देना इस बात का परिचायक था कि सम्राट् धर्माचार्यों और न्यायाधीशों के सामूहिक निरन्तर दबाव के सम्मुख झुक गया। विशेषाधिकार-प्राप्त वर्गों को आशा थी कि संसद् के चुनाव प्रचलित परिपाटी के अनुसार वर्गों के आधार पर होंगे, मत-संख्या के आधार पर नहीं होंगे

और वे प्रत्याशित सुधारों को रोकने में सफल हो जायेंगे तथा सम्राट् पर वर्गबल का दवाव डालकर अपनी विजय को स्थायी बना लेंगे। इस भ्रमपूर्ण अनुमान ने क्रान्ति की सम्भावना को और भी दृढ़ बना दिया। यदि सामन्तवर्ग सब वर्गों की आर्थिक तथा राजनैतिक अधिकारों की एकता को मान लेते तो उस समय क्रान्ति सरलता से टल जाती।

फ्रांस की क्रान्ति के सच्चे निर्माता (Real Makers of the French Revolution)—यह सर्वमान्य है कि फ्रांस की क्रान्ति तीसरे वर्ग से आरम्भ हुई, किन्तु इस विषय में कि इसे किसानों अथवा मध्यमवर्ग ने आरम्भ किया, मत-भेद है। कुछ इतिहासकारों का मत है कि फ्रांस के किसान अत्याचार से ऊब कर विद्रोह करने पर उतारू हो गये। किन्तु प्रो० हिरेन्शा (Hearnshaw) इस मत से सहमत नहीं हैं। उनके मतानुसार, "फ्रांस के किसानों की अवस्था जर्मनी, स्पेन, रूस और पोलैण्ड के किसानों से कहीं अच्छी थी। उनके दुःखों का मूल कारण राज-नैतिक अधिकारों से वंचित होना नहीं, अपितु उन पर लादे गये करों का असहनीय भार था। उनमें क्रान्ति करने के लिए बुद्धि ही नहीं, वरन् शक्ति भी न थी। प्रगतिशील मध्यमवर्ग ही इसका कर्णधार था। किसान केवल इसके अनुगामी थे। मध्यमवर्गी लोगों पर फ्रांस के दार्शनिकों की विचारधारा का गहरा प्रभाव था। इसमें कोई संशय नहीं कि फ्रांस का मध्यमवर्ग ही इस क्रान्ति का निर्माता था।

क्रान्ति फ्रांस में ही क्यों? (Why Revolution broke out in France?)—यह तथ्य उल्लेखनीय है कि पश्चिमी यूरोप के अधिकांश देशों में किसानों पर राजाओं की सर्वशक्तिमत्ता और अत्याचारों का प्रहार होता था। फ्रांस की जनता ही कुछ विशेष रूप से पीड़ित नहीं थी। किन्तु फिर भी क्रान्ति पश्चिमी यूरोप के किसी अन्य देश में न होकर फ्रांस में ही हुई। इसके अनेक कारण हैं। अन्य देशों के जागीरदारों को अधिकारों के साथ कुछ कर्त्तव्य भी पूरे करने होते थे। वे राजा की सेना में नौकरी करते तथा अपने अधिकृत प्रदेशों में शान्ति व व्यवस्था बनाये रखते थे। फ्रांस का सामन्तवर्ग बुरी तरह बिगड़ा हुआ था। एक ओर उन्हें करों में छूट थी और दूसरी ओर उनके सारे कर्त्तव्य सम्राट् ने ले रखे थे। परिणामतः अन्य देशों में सामन्तशाही एक वास्तविकता थी और फ्रांस में इसकी शक्ति पूर्ण-तया नष्ट हो गई थी। इन परिस्थितियों में प्रजा को उनके विशेषाधिकार चुभते थे। यह प्रणाली अव्यवस्था बन गई और इसी कारण इसका नाश हुआ। १७८९ की क्रान्ति इनके विरुद्ध असंतोष के रूप में फूट पड़ी।

दूसरा कारण फ्रांस में प्रगतिशील मध्यमवर्ग की स्थिति थी जो यूरोप के अन्य देशों में नहीं थी। इस वर्ग के सदस्य आर्थिक रूप से सबल थे किन्तु यह वर्ग अधिकारहीन था। इनके पास धन और बुद्धि दोनों थे और इस कारण ये राज्य द्वारा थोपी गई असमानता को मानने के लिए तैयार नहीं थे। उनके विचारों पर रूसो, वॉल्टेयर और मॉण्टेस्क्यू की दार्शनिकता का प्रभाव था, अतएव वे इन महामानव पण्डितों के उपदेशों को दृढ़ता से अपनाने के पश्चात् अपनी दुर्दशा को

सहन करने के लिए तैयार नहीं थे। उन्हें अपनी अपमानजनक स्थिति में कोई न्याय नहीं दीख पड़ता था। रूसो का "सामाजिक समझौता" (Social Contract) का सिद्धान्त क्रान्ति का मूलमंत्र और पवित्र ग्रंथ माना गया। फ्रांस के दार्शनिकों ने जनता के सम्मुख वह आदर्श रखा, जिसके लिए वह अपना सर्वस्व बलिदान कर सकते थे। इस प्रकार का वातावरण रूस के सिवा अन्य किसी भी देश में नहीं था। यद्यपि यूरोप के अन्य देशों के अधिकारहीन वर्ग दुःखी थे किन्तु उनके सम्मुख न कोई आदर्श थे और न कोई नेता थे जो वर्तमान व्यवस्था को चुनौती दे सकते। परिणामतः यूरोप के अन्य किसी भी देश में क्रान्ति नहीं हुई।

एक अन्य कारण भी था जिसके कारण यूरोप के किसी अन्य देश में क्रान्ति न होकर फ्रांस में ही हुई। यह सत्य है कि क्रान्ति को लाने का मुख्य कारण आर्थिक था तथा दार्शनिकता द्वारा संचालित गाड़ी में आर्थिक दुर्व्यवस्था का ईंधन भरा गया। राज्य की वार्षिक आय राज्य द्वारा लिये जाने वाले ऋण के व्याज से भी कम थी। इस अवस्था में राजकाज चलाना असम्भव था। धन प्राप्त करने के उद्देश्य से संसद् बुलानी पड़ी और इसके कारण क्रान्ति हुई। यूरोप के अन्य किसी भाग में ऐसी स्थिति नहीं थी। यद्यपि प्रजा दुःखी थी, वह अत्याचार सहन करती रही, उसमें विद्रोह करने का साहस नहीं था।

प्रो० साल्वेमिनी के अनुसार, "चाहे पहले-पहल यह तथ्य कितना ही विचित्र प्रतीत हो, फ्रांस अन्यों की अपेक्षा काफी अच्छी स्थिति में था। मुख्यतः यह फ्रांस के सामाजिक जीवन में प्रचलित अधिकपक्षीय दशाओं के कारण था कि यूरोप में अन्य स्थानों की अपेक्षा फ्रांस में क्रान्ति फैल गई। फ्रांस के मध्य वर्ग—अन्य यूरोपीय राष्ट्रों की अपेक्षा अधिक धनी व अधिक शिक्षित और समाज के उच्च वर्गों से अधिक निकट सम्पर्कयुक्त तथा अपनी जीवन-शैली में सामन्ती वर्ग से बहुत कम भिन्न और भिन्नताओं में बहुत कम अलग—उन अन्यायों से बड़ी तीव्रता से परिचित थे जिसने उन्हें राजनीतिक प्रभावों और सम्मानों से वंचित कर रखा था; और भौतिक व नैतिक शक्ति से भरपूर जिसका अभी तक दूसरों में अभाव था, उन्हें सार्वजनिक जीवन में वह स्थान पहले मिलना चाहिए था जिसके वे अधिकारी थे। इसके अतिरिक्त, अन्य देशों में जैसे रूस, जर्मनी, डेन्मार्क या हंगरी, जहाँ कि कृषकों को सामन्ती दासताओं ने बुरी तरह दबा रखा था, वे सविनय समानता व स्वतन्त्रता के विचारों को ग्रहण करने में बहुत पीछे थे। इसके विपरीत, फ्रांस में प्रत्येक भूमिधारी कृषक अपने को उस धरती का स्वामी समझता था जिसे वह अपनी माथे का पसीना गिराकर प्राप्त करता था, और अपने को उस सामन्ती अत्याचार से बचाने और अपनी सम्पत्ति को निर्दयी कर-व्यवस्था से मुक्त करने के लिए ही उसे क्रांति का सहारा लेना पड़ा। इसके अतिरिक्त, फ्रांस में अज्ञानी व धर्मसत्ताधारी सामन्त प्रान्तों की ओर जितना उपेक्षापूर्ण व्यवहार करते थे, इतना अन्यत्र कहीं नहीं था और उन्होंने शाही कृपाओं को पाने की लूट-मार में केंद्रीय सत्ता के इर्द-गिर्द घूमना शुरू कर दिया था; किसी और जगह विभिन्न सामाजिक वर्गों के बीच ऐसी गहरी खाई नहीं थी

जिसे फ्रांस के राजतन्त्र ने अपने केंद्रीयकृत नियन्त्रण से सामन्ती हाथों में स्थानीय शासन को छीनकर वनाया था। अन्य देशों में, पाशविक अर्द्धसभ्य सामन्त अपनी जागीर पर निर्वाह करते थे, अपनी राजनीतिक क्रियाएँ सम्पन्न करते थे, न्याय का प्रवन्ध करते थे और जनसाधारण पर आने वाली आपत्तियों की देखरेख भी करते थे। यदि कृषकों पर अत्याचार किया जाता था, तो अपने सामन्त के कठोर नियमों का उन्हें भी संरक्षण प्राप्त होता था और उसके विशेषाधिकार भी इतने उत्तरदायित्वों के कारण उचित समझे जाते थे। अन्त में, फ्रांस में केवल राजधानी ही ने इतना अधिक महत्त्व प्राप्त कर लिया था कि वह राष्ट्र के सारे राजनीतिक व प्रशासकीय जीवन का केन्द्र वन गयी थी; इसलिए जव क्रान्तिकारी सेनाओं ने पेरिस पर अधिकार जमा लिया, तो सारा राज्य उनके हाथ लग गया। अन्य राष्ट्रों में, प्रशासकीय केन्द्रीयकरण अभी तक या तो बिल्कुल नहीं था या प्रारम्भिक स्तर पर था और प्रन्तीय जीवन लगभग स्वाधीनतापूर्ण था। एक क्षेत्र में उठने वाली वेचैनी शेष देश को परेशान नहीं कर सकती थी और मुख्य केन्द्र में होने वाली अव्यवस्था का प्रान्तों पर वहुत कम प्रभाव पड़ता था, और वहाँ जो प्रशासन का संचालन करते थे, उन्हें राजधानी से आने वाले सारे आदेशों, सहायताओं या अन्य सहायकों की प्रतीक्षा करने पर वाध्य नहीं होना पड़ता था। फ्रांस में, प्रान्तों में फैली महान् गड़वड़ का राजधानी पर लगभग आंशिक प्रभाव पड़ता था; जवकि पेरिस में वह सारे राजनीतिक ढाँचे पर घातक चोट करती थी और उसका धक्का सारे राज्य पर पड़ता था।" (The French Revolution, pp. 188-89.)

पुन: प्रो० साल्वेमिनी के शब्दों में, "पेरिस अपने पाँच लाख से अधिक लोगों के साथ सवसे अधिक खतरनाक नगर था। केन्द्रीकृत प्रशासन के विकास के साथ, राजधानी ने धनी और निर्धन दोनों ही प्रकार के लोगों को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था जो अपना भाग्य आज़माना चाहते थे। इन सव लोगों की तरह-तरह की जरूरतें पूरी करने के लिए नई-नई इमारतें व कारखाने वने, जिनमें प्रान्तों से आने वाले मज़दूरों और कृपकों की वाढ़ को स्थान मिल गया। जनसंख्या की ऐसी वृद्धि से खुश होकर, किन्तु घवड़ा कर (इससे चिंतित होकर कि इतने वड़े नगर का प्रवन्ध करना है किन्तु आय के अतिरिक्त साधनों की खोज पर प्रसन्न होकर) सरकार एक ओर कृपाओं व विशेषाधिकारों के वाँटने और दूसरी ओर इस वाढ़ को रोकने के लिए ऊटपटाँग रुकावटें लगाने में डावाँडोल हो गई। लेकिन राजा की अनुमति से या उसके विना यह दानव वढ़ता ही गया जिसके भीतर क्रान्तिकारियों की एक सेना फलती-फूलती गई जो पुराने फ्रांस को नष्ट करने में एक अत्यधिक प्रभावकारी यन्त्र सिद्ध हुई। क्रान्ति के समय, फ्रांस के स्वामी यह शिकायतें कर रहे थे कि श्रमिक सरकार को आदेश दे रहे हैं और विरोध करने के लिए संगठन वना रहे हैं: अपने तिरस्कारपूर्ण व्याख्यानों तथा अपमानजनक पत्रों से, ऐसा मालूम होता है कि, वे सोचते हैं जैसे कि प्रत्येक वस्तु की उन्हें अनुमति प्राप्त है।" (The French Revolution, p. 37.)

फ्रांसीसी क्रान्ति की इंगलैंड की क्रान्तियों से तुलना (French Revolution compared with English Revolutions)—फ्रांस की क्रान्ति की १६४२-४९

की प्यूरिटन क्रान्ति (Puritan Revolution) तथा स्वर्ण-क्रान्ति (Glorious Revolution) से तुलना की जा सकती है। यह ध्यान रखने योग्य बात है कि इंगलैण्ड की इन क्रान्तियों के लक्ष्य मुख्यतः राजनैतिक थे। इनका उद्देश्य राजा की स्वेच्छाचारी शक्ति पर नियन्त्रण करके सारे अधिकार जनता की प्रतिनिधि मानी जाने वाली ब्रिटिश संसद् को सौंप देना था। दूसरी ओर, फ्रांस की क्रान्ति का उद्देश्य राजनैतिक नहीं, अपितु सामाजिक था। यह सत्य है कि फ्रांस की जनता को भी राजनैतिक अधिकार नहीं थे किन्तु उन्हें इनकी परवाह नहीं थी। फ्रांस की जनता युग-युगान्तर से सामन्तशाही प्रणाली की अभ्यस्त थी इसलिए वह केन्द्रित स्वेच्छाचारी शासन के प्रति उदासीन थी। जनता देश की असमानता के कारण दुःखी थी। इसीलिए फ्रांस की क्रान्ति का मुख्य उद्देश्य असमानता को नष्ट कर देना था और यही उसकी मुख्य सफलता भी थी।

१६८८ में हुई इंगलैंड की क्रान्ति का रूप प्राचीन और सुरक्षात्मक था। "अधिकार-घोषणा" (Bill of Rights) के द्वारा स्वर्ण-क्रान्ति (Glorious Revolution) में जो प्रजा को प्राप्ति हुई वह कोई नई वस्तु नहीं थी। अतीत के संघर्षों से इसका रूप विशेष प्रकार से भिन्न नहीं था। राजा को स्वेच्छाचारी व्यवहार की अपेक्षा देश में प्रचलित कानूनों के अनुसार व्यवहार करने को बाध्य कर दिया गया था। किन्तु फ्रांस की क्रान्ति मूलतः क्रान्तिकारी और विध्वंसात्मक थी। इसने प्राचीन शासन-प्रणाली को जड़ से नष्ट कर दिया।

क्रोपोटकिन के मतानुसार, "सामन्ती अधिकारों के उन्मूलन करने और सामुदायिक भूमियों को वापस लेने के कारण, जिन्हें सत्रहवीं शताब्दी से स्वामियों, अज्ञानी व धर्मज्ञानी, ग्रामीण कम्यूनों से प्राप्त कर लिया था, किसानों का विद्रोह ही उस महान् क्रान्ति का सार व नींव है। इसी के ऊपर अपने राजनैतिक अधिकारों के लिए मध्यमवर्ग का संघर्ष विकसित हुआ। इसके बिना क्रान्ति कभी इतनी परिपूर्ण नहीं होती जितनी कि फ्रांस में हुई। ग्रामीण जिलों के विशाल विद्रोह ने, जो जनवरी १७८९ के बाद शुरू हुए, और जो १७८८ में भी थे और पाँच वर्षों तक चलते रहे, ही क्रान्ति को इस योग्य बना दिया कि वह नाश का महान् कार्य पूरा कर सके जिसके लिए हम उसके ऋणी हैं। इसी ने क्रान्ति को इतना निश्चित कर दिया कि वह समानता की प्रणाली के प्रथम लक्षण स्थापित करे, फ्रांस में गणतंत्रीय भावना उत्पन्न करे, जिसे तब से अब तक कोई भी न दबा सका, ग्रामीण साम्यवाद के महान् सिद्धान्तों की घोषणा करे, जिन्हें हम १७९३ में प्रकाश में आता देखते हैं। निस्सन्देह, यह विद्रोह ही वह वस्तु है जो फ्रेंच क्रान्ति को सच्चा चरित्र प्रदान करती है और इसे इंगलैंड की १६४८-५७ की क्रान्ति से पूर्ण अर्थ में भिन्न बनाती है।

"नौ वर्षों के काल में, वहाँ भी मध्यवर्गों ने राजतन्त्र की सर्वोच्च सत्ता व दरबारी पार्टी के राजनीतिक विशेषाधिकारों को तोड़ डाला। किन्तु उससे आगे, इंगलैंड की क्रान्ति का विशेष लक्षण यह था कि प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार के लिए संघर्ष हुआ, जिससे वह अपने मतानुसार किसी भी धर्म का पालन करे, अपने व्यक्तिगत

विचार के अनुसार वाइविल की व्याख्या करे, अपने निजी पुरोहित चुने—संक्षेप में, व्यक्ति को यह अधिकार मिले कि वह अपनी सर्वश्रेष्ठ सुविधानुसार मानसिक व धार्मिक विकास कर सके। इसके अतिरिक्त, इसने प्रत्येक ग्राम, और उसी के फलस्वरूप प्रत्येक नगर, के स्वाधीनता के अधिकार को मान्यता दी। लेकिन जहाँ तक सामन्ती ऋणों और पदवियों के उन्मूलन या सामुदायिक भूमियों को पुनः लेने का संवंध है, इंगलैंड में कृपकों के विद्रोह ने उतना सामान्य ध्येय नहीं वनाया, जितना कि फ्रांस में हुआ। और यदि क्रामवैल के अनुचरों ने कुछ दुर्गों को गिरा दिया, जो सामन्तवाद के सच्चे गढ़ थे, तो दुर्भाग्यवश इन अनुचरों ने न तो उन शेखियों को आघात पहुँचाया जो स्वामी अपने सामन्ती भू-भाग पर दिखाया करते थे और न सामन्ती न्याय करने के अधिकार पर कोई चोट की, जो स्वामी अपने सेवकों पर प्रयोग कर सकते थे। इंगलिश क्रान्ति ने केवल यही किया कि उसने व्यक्ति के कुछ कीमती अधिकारों को जीता, किन्तु इसने स्वामी की सामन्ती सत्ता का नाश नहीं किया, इसने केवल उसे संशोधित किया जबकि भूमि के ऊपर इसके वही अधिकार वने रहने दिए जो आज तक चले आ रहे हैं।

"निस्सन्देह, इंगलिश क्रान्ति ने मध्यमवर्गों की राजनीतिक सत्ता वनी रहने दी, किन्तु यह सत्ता भी भूमि पर जमी सामन्ती जनसंख्या को भाग देकर प्राप्त हुई थी। यदि क्रान्ति ने इंगलैंड के मध्यम वर्गों को उनके व्यापार व वाणिज्य के लिए एक समृद्धिशाली युग प्रदान किया, तो यह समृद्धि भी इस शर्त पर प्राप्त हुई थी कि इससे मध्यमवर्ग इतना लाभ न कमा सकें कि वह भूमि पर जमे सामन्त वर्ग के विशेषाधिकारों पर आघात कर सकें। इसके विपरीत, मध्यम वर्गों ने, कम-से-कम मूल्य की दृष्टि से इन विशेषाधिकारों को वढ़ाने का काम किया। वंधनकारक नियमों (Enclosure Acts) के साधनों से उन्होंने इस सामन्ती वर्ग को इतनी सहायता पहुँचाई कि वे सामुदायिक भूमियों को वैधानिक अधिकार में ले सकें। इन्हीं कानूनों ने कृपक जनसंख्या को निर्धनता में उतारा था, भूमि के स्वामियों की कृपा पर उसे रख दिया था और उनकी विशाल संख्या को नगरों में जाने पर विवश कर दिया था, जहाँ श्रमिक वर्ग के रूप में वह मध्यमवर्गीय उत्पादकों की कृपा पर आश्रित हो चुकी थी। इंगलिश मध्यमवर्गों ने सामन्तवर्ग को इस योग्य भी वना दिया था कि वह अपनी भूमिगत आय के साधनों को वहुत विशाल वनाकर लाभार्जन कर सकें; केवल असंख्य मालगुजारी द्वारा ही नहीं, वरन् अपनी राजनैतिक और स्थानीय न्याय-संवंधी सत्ता दूसरा भी, जिसकी स्थापना वह अपने सामन्ती न्याय के अधिकार के नये रूपों के आधीन कर सकें। उन्होंने यह भी सहायता पहुँचाई कि वे भूमि के नियमों द्वारा अपनी माल-गुजारी को दस गुना वढ़ा सकें। ऐसे कानून वनायें जो सम्पत्ति का विक्रय रोकें, भूमि पर एकाधिकार जमायें, जिसकी आवश्यकता अधिकाधिक उस जनसंख्या को हो रही थी जिसका व्यापार तथा वाणिज्य तेजी से वढ़ रहा था।

"अव हम जानते हैं कि फ्रैंच मध्यमवर्गों, विशेषकर उच्च मध्यमवर्ग जो व्यापार व उत्पादन में लगे थे, ने अपनी क्रान्ति में इंगलिश मध्यमवर्गों की नकल करनी चाही। वे सत्ता पाने के हेतु राजसत्ता व सामन्त सत्ता के साथ समझौता अपनी इच्छा से कर

वैठते, किन्तु वे इसमें सफल न हुए क्योंकि भाग्यश इंगलैंड की क्रान्ति की अपेक्षा फ्रांस की क्रान्ति का आधार कहीं अविक व्यापक था। फ्रांस में क्रान्ति का उद्देश्य केवल यह नहीं था कि धार्मिक स्वतन्त्रता, या व्यक्ति के लिए कोई व्यापारिक या औद्योगिक स्वतन्त्रता, या कुछ मध्यमवर्गीय लोगों के हाथ स्थानीय स्वशासन की बागडोर देने के लिए विद्रोह किया जावे। सबसे अधिक, यह तो कृषकों का विद्रोह था, लोगों का भूमि पर पुनः अधिकार जमाने के लिए और उसे उन सामन्ती भारों से मुक्त करने के लिए आंदोलन था जिन्होंने इसे दबा रखा था, और जबकि इसमें आर-पार एक व्यक्तिवादी लहर मौजूद थी—व्यक्तिगत रूप से भूमि पर अधिकार जमाने की इच्छा—इसमें साम्यवादी तत्त्व भी निहित था—सारे राष्ट्र का भूमि पर अधिकार —एक ऐसा अधिकार जो १७९३ में निर्धन वर्गों की जोर की घोषणा में प्रकट हुआ।" (The Great French Revolution. pp. 95-7.)

Suggested Readings

Acton : *Lectures on the French Revolution.*
Aldington : *Voltaire.*
Aulard, A. : *Political History of the French Revolution.*
Belloc. H. : *The French Revolution.*
Brinton, C. C. : *A Decade of Revolution, 1789—99.*
Cobban, A. : *The Debate on the French Revolution (1789—99), 1945.*
Cobban, A. : *Rousseau and the Modern State, 1934.*
Dickens : *A Tale of Two Cities.*
Ducros, L. : *French Society in the Eighteenth Century.*
Goodwin : *The French Revolution, 1953.*
Gooch, G. P. : *Maria Theresa and Other Studies, 1951.*
Gootschalk, Louis : *The Era of the French Revolution (1715—1815), 1929.*
Lowell, E. J. : *The Eve of the French Revolution.*
Madelin : *The French Revolution.*
Mathews : *The French Revolution.*
Mathiez, A. : *The French Revolution, 1928.*
Kropotkin : *The Great French Revolution.*
Lefebvre, G. : *The French Revolution.*
Salvemini, G. : *The French Revolution, 1954.*
Shackleton, Robert : *Montesquieu.*

राष्ट्रीय-सभा का कार्य (१७८९-९१)

(Work of the National Assembly—1789-91)

भूमिका (Introductory)—जब लुई सोलहवाँ (१७७४-९३) फ्रांस की आर्थिक समस्या को नहीं सुलझा सका, तो उसने संसद् बुलाने का निर्णय किया। १७८९ की शरद् ऋतु में चुनाव हुए और प्राचीन परिपाटी और शाही आदेशों के अनुसार प्रतिनिधियों ने अपने प्रदेशों की अवस्था के विषय में सूचना-पत्र (Reports) तैयार किये तथा अपने प्रतिनिधियों और सरकार को उस विषय में सिफारिशें भी कीं। इन सूचना-पत्रों को काहियर (Cahiers) कहा जाता था और इनकी भाषा क्रान्तिकारी नहीं थी। ये सम्राट् के प्रति स्वामि-भक्ति तथा विश्वास प्रकट करते थे। किसी एक सूचना-पत्र में भी संघर्ष का लेशमात्र वर्णन नहीं था। मूल रूप से इन पत्रों में उस युग की नवीन राजनैतिक विचारधारा भरी थी और शासन-यंत्र तथा समाज में गहरे सुधारों की माँग की गई थी। तीसरे वर्ग के सूचना-पत्रों ने देश में प्रचलित सामाजिक असमानताओं को हटाने पर बहुत जोर दिया। देश में राष्ट्रीय एकता और संगठन पर भी बहुत जोर दिया गया था।

यह उल्लेखनीय है कि संसद् के तीन विभाग थे। पहला विभाग सामन्त-वर्ग, दूसरा धर्माचार्य-वर्ग और तीसरा विभाग अधिकारहीन मध्यमवर्गीय कारीगरों और किसानों का प्रतिनिधित्व करता था। पहले तीनों विभागों की बैठकें अलग-अलग होती थीं और प्रत्येक के प्रतिनिधि एक-सी संख्या के थे। किन्तु १७८९ में तीसरे विभाग को सामन्त-वर्ग और धर्माचार्य-वर्ग दोनों की संख्या के बराबर प्रतिनिधित्व दिया गया। भविष्य में जो महत्त्वपूर्ण कार्य इस विभाग को करना था वह इस बात से सिद्ध हो गया।

सेईस

तीसरे विभाग की मनोदशा का पादरी सेईस (Abbe Sieyes) द्वारा लिखित एक लेख से जो फ्रांस की क्रान्ति के तुरन्त पहले प्राशित हुआ, प्रकट होता है।

सेईस ने प्रश्न किया—"तीसरा विभाग क्या है ?"
उत्तर—"सब कुछ।"
प्रश्न—"राजनीति में अब तक इसकी क्या स्थिति रही ?"
उत्तर—"कुछ भी नहीं।"
प्रश्न—"इसकी क्या इच्छा है ?"
उत्तर—"कुछ बनने की।"

संसद् का अधिवेशन ५ मई, १७८९ को हुआ और तीनों विभागों के अधिवेशन अलग-अलग हुए। किन्तु तीसरे विभाग के सदस्यों ने यह घोषणा की कि १७८९ की संसद् एक सामन्तशाही सभा नहीं, बल्कि फ्रांस की जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली सभा है। यह माँग की गई कि अधिवेशन में तीनों विभाग एक साथ बैठें और मतदान वर्ग के अनुसार होने की अपेक्षा सदस्यों की संख्या के अनुसार होना चाहिए। सामन्त और धर्माचार्य इस माँग के विरोधी थे। परिणामतः कार्य रुक गया। १७ जून, १७८९ को तीसरे विभाग ने अपने को राष्ट्रीय सभा घोषित कर दिया।

२० जून, १७८९ को तीसरे विभाग के सदस्य अपने भवन में जाने लगे किन्तु उन्होंने सैनिकों को मार्ग रोके पाया। पूछताछ करने पर उन्हें बताया गया कि भवन में एक विशेष शाही अधिवेशन होने वाला है और उसके प्रबन्ध के लिए भवन को बन्द कर दिया गया है। कुछ समय तक सदस्य समझ न पाये कि क्या किया जाये। किन्तु कुछ समय के पश्चात् वे एक निकट के भवन में, जहाँ टैनिस खेली जाती थी, चले गये और वहाँ इतिहास-प्रसिद्ध अधिवेशन किया। बैले (Bailly) की अध्यक्षता में उन्होंने प्रसिद्ध टेनिस-कोर्ट (Tennis Court) शपथ ग्रहण की। एक सदस्य को छोड़कर शेष सभी सदस्यों ने यह शपथ ली, "हम कभी अलग नहीं होंगे और जब तक देश में विधान की स्थापना नहीं हो जाती तब तक जहाँ भी परिस्थितियों में आवश्यक होगा, बार-बार इकट्ठे होते रहेंगे।"

२३ जून, १७८९ को शाही अधिवेशन हुआ। सम्राट् ने तीसरे विभाग के प्रस्तावों को अवैध और गैर-कानूनी घोषित किया। यह भी आज्ञा हुई कि तीनों विभागों के अधिवेशन अलग-अलग हों। सम्राट्, सामन्तों और धर्माचार्यों ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। किन्तु तीसरे विभाग के सदस्य भवन से बाहर नहीं गये। अधिवेशन अधिकारी (Master of Ceremonies) ने उन सदस्यों से कहा "आपने सम्राट् की आज्ञा सुन ली है। सम्राट् की आज्ञा है कि तीसरे विभाग के सदस्य भवन से चले जायें।" भवन के द्वार पर कुछ सैनिक भी दिखाई पड़े। तीसरे विभाग के सदस्यों को भवन से निकाल देने का प्रबन्ध किया गया था। उस समय तीसरे विभाग के एक सदस्य मिराबो (Mirabeau) ने सीधे अधिवेशन अधिकारी के सामने जाकर गरज कर कहा, "जाओ और अपने स्वामी को जाकर कह दो कि हम यहाँ जनता की इच्छा से आये हैं और जब तक छुरी की नोक से हमको नहीं हटाया जायेगा, हम यहाँ से नहीं जायेंगे।" मिराबो के प्रस्ताव पर सब सदस्यों ने यह घोषणा

की कि "जो भी व्यक्ति सदस्यों पर शक्ति प्रयोग करें वे देश के द्रोही और मृत्यु-दण्ड के अधिकारी हों।" दे ब्रिज (De Breze) ने यह समाचार सम्राट् तक पहुँचाया।

टेनिस कोर्ट

सम्राट् सोच नहीं पाया कि क्या करे? अन्त में उसने कहा, "वे लोग यहाँ ठहरना चाहते हैं—यही वात है? अच्छा तो उन्हें रहने दो।" इस वात पर कि सम्राट् ने

पहले मना किया और फिर उनका वहाँ रहना मान लिया, टिप्पणी करते हुए मिरावो ने कहा कि, "इसी प्रकार राजा लोग फाँसी के तख्ते पर चढ़ते हैं।"

२५ जून, १७८९ को बहुत से धर्माचार्य और कुछ सामन्त राष्ट्रीय सभा में गये। २७ जून, १७८९ को सम्राट् ने घोषणा की कि तीनों-विभाग एक साथ एक सभा के रूप में अधिवेशन में बैठें। इस प्रकार यह बात कड़वाहट से सुलझी, जो पहले बिना कटुता के सुलझ सकती थी।

बेस्टाईल पर धावा
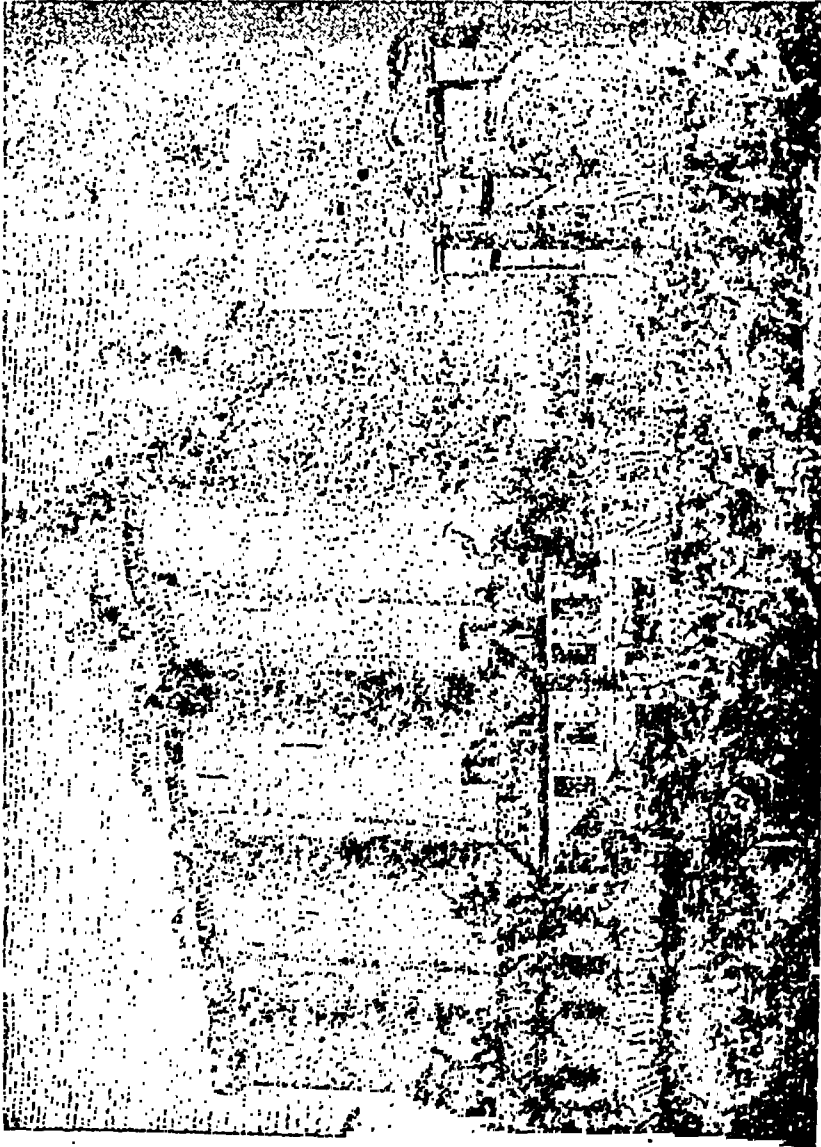
प्रतीत होता है कि सम्राट् ने अपनी हार सरलता से नहीं मानी। उसने राष्ट्रीय सभा को डरा कर या उसका दमन करके अपने खोये हुए सम्मान को पुन

प्राप्त करने का संकल्प किया। ११ जुलाई, १७८९ को वरसाई और पेरिस में बहुत-सी सेना बुलाई गई। सुधारों के समर्थक नेकर और उसके उन साथियों को, जो सुधारों के पक्ष में थे, पदच्युत कर दिया गया। नेकर को तुरन्त देश छोड़ जाने की आज्ञा हुई।

पेरिस के नागरिक अपने प्रिय मंत्री नेकर के निकाले जाने से सहमत नहीं हुए। यह भी भय था कि सम्राट् राष्ट्रीय सभा का दमन करने के लिए शक्ति का प्रयोग करेगा। इन परिस्थितियों में बैस्टाइल (Bastille) में बड़ा दंगा हुआ जिसे शासन के विरुद्ध विद्रोह का प्रतीक माना गया। इसे १४ जुलाई, १७८९ को जीतकर भूमिस्थ कर दिया गया। देश में बैस्टाइल का पतन, स्वतन्त्रता की विजय मानी गई।

प्रो० गुडविन के मतानुसार, "सारे क्रान्ति-काल में बैस्टाइल के पतन जैसी बहुमुखी और बहुत गहरे परिणामों वाली अन्य कोई महत्त्वपूर्ण घटना नहीं हुई। इसने फ्रांस में शाही स्वेच्छाचारिता का अन्त, राजनैतिक सत्ता के राष्ट्रीय संविधान को हस्तान्तरित करके तथा किसानों को विद्रोह करने के लिए भड़काकर सामन्तशाही के पतन का द्वार खोल दिया। इसने देश को समाचार-पत्रों तथा लेखों पर लगे प्रतिबन्धों से मुक्त कर दिया और इस प्रकार जनमत-समर्थक पत्रकारिता को प्रोत्साहन मिला, जिसका राजनैतिक परिणाम आगामी अक्टूबर की क्रान्ति-यात्रा में पूर्णता से प्रकट हुआ। इस घटना से पेरिस के नागरिक शासन में बड़ी महत्त्वपूर्ण क्रान्ति हुई, जिससे बड़ी शीघ्रता से सारे शासन-यंत्र का विकेन्द्रीकरण हो गया। काउण्ट-दे-आरतोइस (Count d' Artois) के नेतृत्व में प्रतिक्रियावादी सामन्त देश छोड़कर भागने लगे और परिणामस्वरूप उन शक्तियों को बल मिला जिनके कारण विदेशी हस्तक्षेप और यूरोप के देशों से युद्ध का युग आरम्भ हुआ था। थोड़े समय के लिए पेरिस के समाचारों से विदेशों में बड़ी अच्छी प्रतिक्रिया हुई। दे लॉने (da Launay) और दे फ्लेसेलेस (de Flesselles) पर लिया गया प्रतिशोध तथा जन-समूह की वीरता की बड़ी प्रशंसा हुई तथा सामूहिक लूटपाट के न होने का सभी ने आदर किया। इस दुर्ग के पतन को केवल फ्रांस में ही नहीं, अपितु सारे संसार में स्वतन्त्रता के नव-जन्म का परिचायक माना गया।"

प्रो० साल्वेमिनी के मतानुसार, "बैस्टाईल (Bastille) पर अधिकार ने सारे संसार के उदार मस्तिष्क वाले लोगों में महान् उत्साह उत्पन्न कर दिया। शोकमय छोटा दुर्ग, अपनी आठों मीनारों के साथ—जहाँ इतने अधिक राजनीतिक बन्दी थके हुए पड़े थे और जहाँ से एक संकल्पग्रस्त सरकार पेरिस के नागरिकों के विद्रोह के प्रयोजन को दबा सकती थी—पुराने सर्वसत्तावादी फ्रांस का प्रतीक मालूम होता था। वे सब जिन्हें अतीत से घृणा थी उन्होंने इसके पतन में स्वतन्त्रता का अवश्यम्भावी उत्थान देखा।" (The French Revolution, p. 129)

यद्यपि सम्राट् ने शाही सेना वापस बुला ली, विद्रोहियों की सेना को मान्यता दी तथा नेकर को पुनः पदासीन कर दिया, तो भी लोगों को संतोष नहीं हुआ।

देहातों में किसानों ने विद्रोह किया; सामन्तों के दुर्गों को लूट कर उनके सब उपाधि-चिह्नों को विशेष रूप से नष्ट कर दिया। सामन्तों को मार दिया गया, उनके दुर्गों को नष्ट कर दिया गया। अक्टूबर, १७८९ में वरसाई से पेरिस समाचार पहुँचा कि कुछ छीटं सैनिक टुकड़ियों को, जिन्हें वहाँ बुलाया गया था, दावत दी गई। इस अवसर पर तिरंगे ध्वज को पैरों-तले रौंदा गया, राष्ट्रीय सभा के प्रति धमकियाँ दी गईं। सम्राज्ञी ने अपनी उपस्थिति द्वारा इन नीचतापूर्ण कार्यों का अनुमोदन किया। पेरिस की स्त्रियों ने तोपें ले जाकर वरसाई पर चढ़ाई कर दी और सम्राट्, सम्राज्ञी तथा राजकुमार को अपने साथ ले रास्ते भर चिल्लाती रहीं कि, "हमने नानबाई, नानबाई की बीवी और छोटे रसोई बनाने वाले छोकरे को पकड़ लिया है। अब हमें रोटी मिलेगी" (We have the baker and the baker's wife and the little cook-boy—now we shall have bread)। इस प्रकार के तनावपूर्ण उपद्रवों और संघर्षों से पूर्ण वातावरण में १७८९ से १७९२ तक राष्ट्रीय सभा ने अपना कार्य किया।

स्त्रियों का वरसाई पर प्रयाण

राष्ट्रीय सभा का कार्य (Work of the National Assembly)—(१) राष्ट्रीय सभा का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य सामन्तशाही, मुजारेदारी तथा वर्ग-विशेषाधिकारों को समाप्त करना था। ४ अगस्त, १७८९ को लफ़ाइट (Lafayette) से सम्बन्धित एक जागीरदार ने सभा में कहा कि किसानों द्वारा जागीरदारों और उनकी सम्पत्ति पर आक्रमण करने का एक कारण अन्याय पर आधारित असमानता था। उसने कहा कि इसका निराकरण किसानों का दमन करने से नहीं, अपितु असमानताओं को, जो इसकी जड़ हैं, दूर करने से होगा। एक प्रस्ताव पारित हुआ, जिसके अनुसार सब पर एक जैसा कर लगाया जाना था। जागीरदारों और जागीरदारों में तथा धर्माचार्यों और धर्माचार्यों में अपने-अपने विशेषाधिकार और सुविधाएँ त्यागने के लिए होड़ लग गई। इस प्रकार के वातावरण में शिकार-कानून और जागीरदारों की

अदालतों को समाप्त कर दिया गया और मुज़ारेदारी समाप्त हुई। धर्माचार्यों ने दशमांश छोड़ दिया। पदों का विक्रय बन्द हो गया। सूक्ष्म रूप से वर्गों, नगरों और प्रदेशों के सब विशेषाधिकार एक ही लहर में बह कर नष्ट हो गये। यह सब केवल ४ अगस्त, १७८९ की रात्रि को हुआ। सब बिखरे हुए सूत्र इकट्ठे कर दिये गए और देश में सामन्तशाही समाप्त कर दी गई। जो कार्य टुर्गट और नेकर नहीं कर सके, उसे राष्ट्रीय सभा ने किया। आलोचक कहते हैं कि विशेषाधिकार-प्राप्त वर्गों ने अपने अधिकारों का समर्पण करने में कोई बलिदान की भावना नहीं दिखाई। जनता ने इनके विशेषाधिकार और उपाधि-सम्बन्धी सारे पत्र इत्यादि नष्ट करके अपना मार्ग साफ कर लिया था। विशेषाधिकार-प्राप्त वर्ग किसानों के विद्रोह के कारण अपने सारे अधिकार स्वतः ही खो चुका था। पेरिस के महा-धर्माचार्य (Archbishop of Paris) के सुझाव पर राष्ट्रीय सभा ने लुई सोलहवें को "फ्रांस की स्वतन्त्रता का पुनःसंस्थापक" (Restorer of French Liberty) घोषित किया।

प्रो० गुडविन के मतानुसार, अपने सामन्तशाही अधिकारों तथा आर्थिक छूटों का जागीरदारों और धर्माचार्यों द्वारा चार अगस्त की रात्रि को त्याग करना कोई स्वतः उदारता के कारण नहीं था। भय, चालों और सन्देह ने ही बहुत से सदस्यों को इस बात के लिए प्रेरित किया। वह प्रसिद्ध अधिवेशन एक संसदीय मोर्चाबन्दी थी, जिसकी योजना एक दिन पहिले ब्रिटन क्लब (Breton Club) में एक क्रान्तिकारी गुट ने तैयार की थी। योजना इस प्रकार थी कि उस संध्या को उदार जागीरदार गुट आंशिक रूप से सामन्तशाही अधिकारों के समर्पण का प्रस्ताव करेगा तथा उस समय आशा की गई कि इस प्रस्ताव के विरोधी अनुपस्थित होंगे। इस प्रस्ताव को रखने का कार्य ड्यूक दे अईग्युलियान (Duke de Aiguillon) पर छोड़ा गया और यह आशा की गई कि देश के सबसे बड़े भूस्वामी होने कारण उसका उदाहरण अन्य रूढ़िवादी प्रादेशिक जमींदारों को अपना समर्थक बना लेगा। वास्तव में ड्यूक की इस चाल को वाईकाउण्ट डी नॉलिस (Viscount de Noailles) समझ गया और उसने यह प्रस्ताव रखा कि सभा को पूर्ण आर्थिक समानता और जागीरदारी के सारे कर पूरे देने की आज्ञा देनी चाहिए। केवल व्यक्तिगत सेवा इत्यादि के समझौतों को छोड़कर। व्यक्तिगत सेवा के समझौतों के विषय में विस्कॉउण्ट ने प्रस्ताव किया कि इसे पूर्णतः समाप्त कर देना चाहिए। ड्यूक के प्रस्ताव की अपेक्षा विस्काउण्ट का प्रस्ताव ही सभा ने स्वीकार किया और फिर अभूतपूर्व बलिदानों की झड़ी लग गई। देश-भक्ति के उत्साह की चढ़ती भावना में विशेषाधिकारों के प्रतिनिधियों ने अगुआ बन कर प्रस्ताव रखे कि देश के सारे पदों को प्राप्त करने का अधिकार सभी नागरिकों के लिए समान होना चाहिए। जमींदारों के सारे अधिकार, शिकार के विशेष अधिकार, न्यायालय तथा अन्य विभागों के पदों का विक्रय समाप्त हो। इस दृश्य के साक्षी ड्युमोण्ट ने इनसे भी अधिक प्रभावशाली और नाटकीय प्रस्तावों का वर्णन किया है कि डौफिने (Dauphine) के प्रतिनिधियों ने अपने सारे क्षेत्रीय

(Municipal), संघीय (Corporate) तथा प्रादेशिक (Provincial) अधिकारों का त्याग किया था। "अधिवेशन की कार्यवाही सम्राट् के प्रति स्वामिभक्ति-पूर्ण अभिनन्दन तथा 'फ्रांस की स्वतन्त्रता का पुन:संस्थापक' की उपाधि देकर समाप्त हुई।"

"अपनी उत्तेजना के कारण राष्ट्रीय सभा के सदस्य लक्ष्य से कहीं आगे जा पहुँचे और शान्ति से विचार करने पर विशेषाधिकार-वर्ग को वाद में अपने वलिदानों की सीमा को कम और कहीं-कहीं इनके लिए संघर्ष करने के लिए तैयार होना पड़ा। परिणाम यह हुआ कि जब ५ अगस्त से ११ अगस्त के बीच सैद्धान्तिक निर्णयों को वैधानिक रूप दिया जाने लगा, मध्यमवर्गी रूढ़िवाद और कानूनी सुरक्षा के रूप में सामन्तशाही के बहुत से ऐसे अंग सुरक्षित हो गये जिन्हें चार अगस्त की रात्रि को शीघ्रतापूर्वक समाप्त कर दिया गया था। इस प्रकार विशेषाधिकारों का जनाज़ा एक झूठा धोखा सिद्ध हुआ (St. Bartholomew of privilege came to be a misnomer)। यद्यपि प्राचीन राज्य छिन्न-भिन्न कर दिया गया, किन्तु सभा की यह घोषणा कि 'सामन्तशाही शासन पूर्णतः नष्ट कर दिया गया है,' एक धोखा था। अन्तिम मसविदे में धर्माचार्यों का दशमांश समाप्त हुआ, किन्तु सामन्तशाही के सब से कठोर करों में, जो परस्पर के समझौते (Contactual) से सम्बन्धित थे, उन्हें पूरा करने की शर्त रखी गई थी। जब तक आपस के विचार-विनिमय द्वारा उनके निपटाने की शर्तें तय नहीं होतीं, उस समय तक ये यथापूर्व दिये जाने थे। किसानों का भ्रम दूर हो गया और जब सम्राट् ने इस अपूर्ण सामाजिक क्रान्ति को अपनी स्वीकृति देने से मना कर दिया तो सभी ने अपने को बड़ी कठिन स्थिति में पाया।

(२) राष्ट्रीय सभा का दूसरा महान् कार्य था, "मानव के अधिकारों की घोषणा" (Declaration of the Rights of Man)। इस घोषणा-पत्र में रूसो की दार्शनिकता की छाप थी तथा इंगलैंड और अमेरिका के वैधानिक विधेयकों की धाराएँ थीं। यह फ्रांस की क्रान्ति की आधारशिला बना और उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी की राजनैतिक विचारधारा पर इसका प्रभाव रहा। इसमें कहा गया था कि "फ्रांस की जनता के प्रतिनिधि, जिनसे राष्ट्रीय सभा बनी है, यह विश्वास करते हुए कि अज्ञानता, भूल या मानव-अधिकारों की उपेक्षा ही जनसाधारण के दुर्भाग्य तथा शासन में भ्रष्टाचार के मूल कारण हैं, इस बात का निश्चय करते हैं, कि एक पवित्र घोषणा-पत्र में मानव के पवित्र और अक्षुण्ण अधिकारों को लिख दिया जाय. जिससे कि यह घोषणा-पत्र सर्वदा सामाजिक संस्था के सब सदस्यों के सम्मुख रहने के कारण उन्हें उनके अधिकारों और कर्तव्यों का ध्यान दिलाता रहे; तथा संवैधानिक और कार्यकारिणी सत्ताओं के कार्यों की सर्वदा सब राजनीतिक धाराओं के उद्देश्यों से तुलना की जा सकती है। इस कारण इनका सबसे अधिक सम्मान हो; तथा नागरिकों की माँगें अब सरल, निर्विवाद सिद्धान्तों पर आधारित हो गई हैं और ये अब से संविधान की रक्षा तथा सर्वसाधारण के कल्याण के लिए प्रयोग में लाई जाएँ।"

राष्ट्रीय सभा ने निम्नलिखित मानव-अधिकारों तथा नागरिकों के अधिकारों

की घोषणा की—

१. सब मानव स्वतन्त्र उत्पन्न हुए तथा रहते हैं और इनके अधिकार समान हैं। सामाजिक सम्मान केवल सर्वसाधारण की उपयोगिता पर ही आधारित किया जा सकता है।

२. प्रत्येक राजनैतिक संगठन का उद्देश्य मानव के प्राकृतिक तथा अदृश्य अधिकारों की रक्षा करना है। ये अधिकार स्वतन्त्रता, सम्पत्ति, सुरक्षा और दमन का विरोध हैं।

३. स्वतन्त्रता उन सब कार्यों के करने में है जिनके करने से अन्य लोगों को हानि न पहुँचे।

४. स्वतन्त्र रूप से विचार और सम्मति का आदान-प्रदान मनुष्य के सभी अधिकारों में श्रेष्ठ है।

५. कोई भी व्यक्ति दोषी, वन्दी या पकड़ा नहीं जायगा, सिवाय उन तरीकों के कि जिनका कानून में उल्लेख है।

६. क्योंकि सम्पत्ति अमूल्य और पवित्र अधिकार है, किसी को भी सम्पत्ति से उस समय तक वंचित न किया जाय जब तक कि कानून द्वारा सर्व-साधारण की आवश्यकता, स्पष्ट रूप से न बताई गई हो और वह भी इस अनुवन्ध पर कि सम्पत्ति के स्वामी को पहले सूचना दी जा चुकी हो तथा उचित रूप से उसकी क्षतिपूर्ति कर दी गई हो।

७. कानून सर्वसाधारण की इच्छा की अभिव्यक्ति है। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं अथवा अपने प्रतिनिधि के द्वारा इसके बनाने में भाग लेना आवश्यक है।

८. सर्वाधिकार-सम्पन्नता राष्ट्र में निहित है और कोई संस्था अथवा व्यक्ति इस सत्ता का प्रयोग नहीं कर सकता, यदि यह अधिकार उसे राष्ट्र ने नहीं दिया है।

९. जनता को राष्ट्र-कोष के नियन्त्रण का अधिकार है।

१०. राज्य के सारे पदाधिकारी जनता के प्रति उत्तरदायी हैं।

प्रो० थाम्पसन के मतानुसार, "प्रथम, यह एक घोषणा, एक उद्देश्यपत्र और सामान्य सिद्धान्तों की व्याख्या थी, जिसके आधार पर फ्रांस की नेशनल असेम्वली ने फ्रांस की प्रशासन-व्यवस्था को सुधारने की आशा की। दूसरे, यह एक अधिकारों की घोषणा थी, कर्त्तव्यों की नहीं। यह नये दावों का एक समर्थन और राजनीतिक, सामाजिक व वैधानिक अधिकारों का वक्तव्य था जिसे इसके निर्माताओं ने एक अच्छे शासन-निर्माण के लिए अनिवार्य समझा। तीसरे, इसे व्यक्ति के अधिकारों की घोषणा कहा गया—ऐसा वक्तव्य, जिसका आशय सर्वव्यापी प्रयोग था और जिसके निश्चित रूप से बहुत दूर के अभिप्राय थे। इसका निर्माण केवल फ्रांस के ही लिए नहीं हुआ अपितु सभी मनुष्यों के हित के लिए हुआ था जो स्वतन्त्र होना चाहते थे व अपने

को सामन्ती विशेषाधिकारों तथा निरंकुश राजतन्त्र के तुलनात्मक भारों से मुक्त करना चाहते थे। मौलिक फ्रेंच क्रान्ति का सर्वव्याप्यवाद महान् महत्त्व की चीज थी। अन्तिम व पूर्ण अर्थ में, यह व्यक्ति व नागरिक के अधिकारों की घोषणा थी और यद्यपि इसके शीर्षक के अन्तिम तीन शब्दों को त्याग दिया जाता है, किन्तु वे इसके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंगों में से हैं। इन सविनय अधिकारों को सावधानी के साथ स्पष्ट किया गया था जिन्होंने अब असेम्बली में प्रधान मध्यमवर्गों के तत्कालीन उद्देश्यों को अत्यधिक पक्के रूप से पुष्ट किया—सब के लिए कानून की दृष्टि में समानता, लोक-सेवाओं में सब नागरिकों के लिए समानता, स्वेच्छाचारी दण्ड व निरोध से व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, भाषण व प्रकाशन की स्वतन्त्रता, और सबसे ज्यादा, राष्ट्रीय करों के भारों का समान वितरण और व्यक्तिगत सम्पत्ति की सुरक्षा। इन दावों को इसने दो सामान्य सिद्धान्तों पर आश्रित किया—'यह कि सब की राज्यसत्ता का सिद्धान्त राष्ट्र ही में अनिवार्य रूप से आश्रित है।' और 'यह कि कानून सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति है।' यही सिद्धान्त—जिनका आशय सर्वव्यापी आचरण था—यदि स्वीकार हो जायें, तो साफ तौर से समाज की पुरानी व्यवस्था की नींव को ही नष्ट कर देंगे और यूरोप में सभी जगह राज्य को अव्यवस्थित कर देंगे। फ्रांस में अपने प्रत्येक पड़ौसी के लिए (ब्रिटेन को भी मिलाकर) यह घटनाओं की आभ्यंतरिक चुनौती थी। फ्रांस के एक इतिहासकार ने इस घोषणा को 'पुराने शासन का प्रमाण-पत्र' कहा है! वस्तुत: सारी उन्नीसवीं शताब्दी में यह उदारवाद का घोषणा-पत्र बना रहा।

"इस पर भी, यह घोषणा जैसे कि यह ऊपर से देखने में प्रतीत हो, उसकी अपेक्षा कम काल्पनिक और अधिक वास्तविकतावादी है। उदारवाद का एक उद्देश्य-पत्र होने के नाते इसके छूटे हुए भाग महत्त्वपूर्ण हैं। इसने आर्थिक जोखिम या व्यापार की स्वतन्त्रता का कोई वर्णन नहीं किया जो इसके पूँजीवादी निर्माताओं को इतना प्रिय था, क्योंकि पिछली व्यवस्था ने हाल के वर्षों में पहले ही से गिल्डों का दमन किया था और अनाज के व्यापार पर से नियन्त्रण हटा दिए थे। इसने शिक्षा-सम्बन्धी सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा, या सभा और संस्थाओं के अधिकारों के विषय में कुछ भी नहीं कहा, यद्यपि बहुतों को यह होश था कि इनका कितना अधिक महत्त्व है, क्योंकि यह विषय पुरानी शासन-व्यवस्था के नाश के तत्कालीन उद्देश्यों की दृष्टि में कम महत्त्वपूर्ण थे। यद्यपि इसने सर्वव्यापी होने का प्रयत्न किया, इसने व्यापक होने की चेष्टा नहीं की। इसने जान-बूझ कर कर्त्तव्यों की घोषणा को हटा दिया और वह त्रुटि १७९५ तक न सुधर सकी। इसके अत्यधिक उदारवादी सिद्धान्तों का बड़ी सावधानी के साथ विवरण दिया गया था। प्राकृतिक अधिकारों का प्रयोग इस आवश्यकता से सीमित है कि दूसरों को भी उन्हीं अधिकारों के आनन्द का विश्वास दिलाया जावे। 'उचित रूप से कानून केवल उन्हीं कार्यों पर प्रतिबन्ध लगा सकता है जो समाज के लिए हानिकारक हैं।' मत की स्वतन्त्रता इस उपबन्ध से सीमित है कि इससे कानून द्वारा स्थापित लोकव्यवस्था में गड़बड़ नहीं पड़ना चाहिए और इसका दुरुपयोग भी नहीं होना चाहिए। सम्पत्ति तक की पवित्रता 'लोक आवश्यकता की स्पष्ट अनिवार्यता' के आधीन है।" (Europe Since Napoleon, pp. 10-11);

इस घोषणा-पत्र को प्रजातन्त्रीय तथा गणतन्त्रीय विचारों के विकास के इतिहास में एक अनोखा तथ्य तथा आधुनिक काल का धर्म-ग्रन्थ कहा गया है।

प्रो० हेज़न के अनुसार, "इस घोषणा-पत्र के लेखकों की यह आशा कि यह विश्व के लिए एक शान्ति-दूत होगा, कोरी अतिशयोक्ति नहीं थी। जहाँ कहीं भी मनुष्य मानव-अधिकारों की चर्चा करता है, उसके मन में फ्रांस का यह घोषणा-पत्र होता है। बहुत समय बीता, यह घोषणा फ्रांस देश की सीमा को लाँघ चुकी है। विश्व के लगभग प्रत्येक कोने में इसका अध्ययन, नकल और आलोचना हो चुकी है। यह आधुनिक संसार के राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तन में एक निर्विवाद तथ्य रहा है। पिछली शताब्दी में स्वतन्त्रता के इच्छुक अनेकों राष्ट्रों ने अपने भौतिक सिद्धान्तों को फ्रांस की इस घोषणा में खोजा है।"

प्रो० साल्वेमिनी के विचार में, "यदि किसी अभौतिक रचना से हमारा आशय किसी ऐसी वस्तु से है जिसे केवल सिद्धान्त तक ही सीमित रखा जा सकता है और वह वास्तविकता के साथ नहीं चल सकती, तो अधिकारों की घोषणा की अपेक्षा अन्य कोई अभौतिक वस्तु नहीं हो सकती जिसे फ्रांस व यूरोप के इतिहास ने बाद में व्यापक रूप दिया है। निस्सन्देह १७८९ के अधिकार इस अर्थ में नैसर्गिक नहीं थे क्योंकि उनके आशय के अनुसार वह सारी मानव-जाति जो उन्हें अनुकूल नहीं मानती नैसर्गिक नहीं, लेकिन आधुनिक अर्थ में वे हमारे लिए नैसर्गिक हैं क्योंकि उनके बिना हमारी सभ्यता जीवित ही नहीं रह सकती और हम लोग स्वयं भी जीवित नहीं रह सकते। १७८९ के बाद से फ्रांस में प्रत्येक शासन को इस घोषणा के सिद्धान्तों को प्रतिभूति व मान्यता देनी पड़ी। उन लोगों की प्रेरणा ही थी, जिन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी में निरंकुशवाद के विरुद्ध आवाज़ उठाई और अपने संवैधानिक शासन स्थापित किए। १७८९ के अधिकारों ही में से हमारा सारा सविनय व दण्ड सम्बन्धी विधायन विकसित हुआ है। अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने में पीड़ित राष्ट्रों ने इन्हीं के भीतर अपने प्रयत्नों का नैतिक औचित्य पाया है। आज भी जनसाधारण स्वतंत्रता व समानता के उन्हीं सिद्धान्तों की दुहाई देते हैं, जिन्होंने संग्राम में हथियारों का काम किया और उनसे सामन्तवाद का अन्त किया, जो अब दूसरे के हाथों में जा चुके हैं और अधिक विशाल परिवर्तन के यन्त्र बन गए हैं।

"यह सोचना नहीं चाहिए कि आज के सामाजिक संघर्षों को १७८९ की घोषणा ने जन्म दिया है। अन्य बहुत से तत्त्वों ने भी उनमें योगदान किया है—वे महान् कारखाने व उद्योग जहाँ श्रमिक वर्ग को शिक्षा मिलती है, सामान्य कार्य के निकट सम्पर्कों के रहने के कारण, और जिससे वह अपने निजी सामाजिक कृत्य और सांख्यिक शक्ति का ज्ञान पाता है; हमारे आधुनिक आर्थिक ढाँचे की विषमता व कोमलता जो शेष सबको अव्यवस्थित करने के लिए एक बिन्दु पर संकट उत्पन्न करती है; शिक्षा व प्रेस जो दोनों मिलकर और अधिक विस्तृत क्षेत्रों में विचारों की तीव्रता फैलाते हैं और मताधिकार जिसके द्वारा सम्पत्तिहीन वर्ग अपने शासन पर नियन्त्रण रख सकते हैं—इन सबने आधुनिक जीवन में संभारता की कमी पर प्रकाश

डाला है और व्यक्तियों को व्यक्तिगत स्वामित्व की परम्परागत व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिक्रिया उठाने की प्रेरणा दी है। लेकिन आज श्रमिक वर्ग को अपने संग्राम में उन्हीं सिद्धान्तों की सहायता मिलती है जिन्होंने १७८९ के पूँजीवादी वर्ग की रक्षा की और जिनको उन्होंने मनुष्यों के लिए प्राचीन, सर्वोच्च व सर्वमान्य बताया और अब पूँजीवादी वर्ग उन्हें कभी भी नहीं हटा सकता जब तक कि वह यह नहीं चाहता कि सामाजिक व्यवस्था की क्रिया बिल्कुल ठप्प ही न हो जाय और जब तक कि वह मौत के डर से आत्महत्या ही करने पर नहीं उतरता। जैसा कि फेग्वे (Fagvet) ने ठीक ही कहा है, वर्ग-युद्ध तो क्रान्ति से पहले भी मौजूद था, लेकिन उस समय जनसाधारण के पास 'ऐसा सामान्य आदर्श या किसी प्रकार का विचार नहीं था जो संघर्ष को उचित ठहराये या पवित्र बनाये, जो उनके पास शक्ति के विरुद्ध शक्ति का प्रतीक बने या कमजोरों से ऐसे प्रयत्न कराए जो एक-दूसरे की शक्तिशाली के विरुद्ध रक्षा करें। आज ऐसा बिलकुल नहीं है। क्रान्ति ने एकता का सिद्धान्त घोषित करके वर्ग-संघर्ष को सत्ता का कारण इतना नहीं दिया जितना यह घोषित करने का कारण कि इसे अधिकार के साथ जीवित रहने की क्षमता प्राप्त है और अधिकार को अपने साथ रखने का कारण भी प्राप्त है।'

"उन्नीसवीं शताब्दी की अन्य बड़ी राष्ट्रीय, संवैधानिक तथा विधायिनी सफलताओं के विषय में भी यही कहा जा सकता है। वे प्रत्यक्षत: अधिकारों की घोषणा में से उदित नहीं हुए हैं, क्योंकि वे आधुनिक सामाजिक व्यवस्था में से अनिवार्यत: उत्पन्न हुई हैं। लेकिन १७८९ के अधिकारों में उन्होंने अपना सैद्धान्तिक औचित्य पाया है; उन्होंने समय से सम्मानित विचारों की प्रणाली प्राप्त की है जिनके भीतर उन्हें भी स्थान दिया जा सके। यदि यह सब अभौतिकवाद है, तो सारा इतिहास ही अभौतिकवाद (metaphysics) है।" (The French Revolution, pp. 147-48)

(३) राष्ट्रीय सभा ने सारे देश में एक-जैसी शासन-व्यवस्था प्रचलित की पुराने प्रदेश, प्रशासन तथा इंटैण्डेन्सी (Intendancies), पेज़ दी इटेट (pays d etat), पेज़ दी इलैक्शन (pays d' election), पारलेमैंट्स (Parlements) और बैलेजिज़ (Bailliages) समाप्त कर दिये। देश को नये सिरे से ८३ विभागों (Departments) में विभक्त किया गया। ये विभाग क्षेत्रफल और जनसंख्या में समान थे तथा इनका नामकरण प्राकृतिक चिह्नों, यथा नदियों और पर्वतों के नाम पर किया गया। प्रत्येक विभाग को कैण्टन (Canton) और कम्यूनों (Communes) में विभक्त किया गया। स्थानीय खण्डों के प्रमुख राज्य द्वारा नियुक्त होने की अपेक्षा चुने जाने लगे। जनता द्वारा चुनी हुई स्थानीय सभाओं की व्यवस्था भी की गई। देश में एक नवीन न्याय-प्रणाली प्रचलित की गई। इन न्यायालयों के न्यायाधीश जनता द्वारा चुने जाते थे। देश की न्याय-प्रणाली को सरल और संगठित करने के लिए भी प्रयत्न किये गये, किन्तु यह कार्य, जब नेपोलियन प्रथम काउन्सल (Consul) बना, तब तक नहीं हो पाया।

(४) राष्ट्रीय सभा ने आर्थिक समस्या को सुलझाने का भी प्रयत्न किया। देश का कोष बिल्कुल खाली था। इस परिस्थिति को सँभालने के लिए सभा को अत्यन्त कठोर कदम उठाने पड़े। नवम्बर, १७८९ में फ्रांस के चर्चों की सम्पत्ति को जब्त कर लिया गया। इस सम्पत्ति का मूल्य कई सौ करोड़ रुपये आँका जाता है। चर्च-सम्पत्ति को आश्रय-धन (Security) मानकर राष्ट्रीय सभा ने कागज़ के नोट, जिन्हें एज़िग्नाटस (Assignats) कहा गया, प्रचलित किये। कागज़ का सिक्का उस समय तक ठीक चलता है जब तक इसे अधिक न छापा जाय। कागज़ के सिक्के को उचित सीमा में ही प्रचलित करना आवश्यक है। किन्तु अधिक नोट चलाकर इस प्रकार राज्य की आय को बढ़ाने के प्राकृतिक लालच को राष्ट्रीय सभा रोक नहीं सकी और परिणामतः १७९१ में ही काफ़ी महँगाई बढ़ गई थी। यह क्रम प्रतिवर्ष चलता ही रहा और डायरेक्टरी (Directory) के समय देश में कागज़ का सिक्का बन्द करना पड़ा। यह सत्य है कि कागज़ का सिक्का प्रचलित करने से उस समय का आर्थिक संकट टल गया, किन्तु अन्ततः इन नोटों (Assignats) का चलाना फ्रांसीसी क्रान्ति का एक अत्यन्त दुःखद अध्याय है।

प्रो० साल्वेमिनी के मतानुसार, "असेम्बली के सारे प्रयोजनों में, मुद्रा का विषय ऐसा था जिसने नई शासन-व्यवस्था को जमाने और किसी प्रकार की क्रान्ति-कारी प्रतिक्रिया को रोकने में सबसे अधिक योगदान किया। वास्तव में यह नोट (Assignats) कागज़ी मुद्रा थी जो स्वर्ण पर नहीं, बल्कि चर्च की भूमियों की जमानत पर आधारित थे। यदि क्रान्तिकारी प्रतिक्रिया पादरी को इस योग्य बना दे कि वह अपनी चीज़ों को पुनः वापस पा ले, तो इन नोटों की गारण्टी समाप्त हो जायगी; इसलिए उनका भाग्य क्रान्ति पर आश्रित था। जो कोई इस नोट को स्वीकार करता था—और प्रत्येक को उन्हें स्वीकार करना पड़ता था, क्योंकि वे कानूनी ग्राह्य थे—वह क्रान्तिकारी कार्य के हेतु उद्यत हो जाता था, यदि वह यह इच्छा नहीं रखता कि उसका धन सामन्ती और धार्मिक प्रतिक्रिया के साथ अर्थहीन हो जायगा।" (The French Revolution, p. 169)

(५) राष्ट्रीय सभा ने चर्च से भी निपटारा किया। नवम्बर, १७८९ में चर्च की सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गई। फरवरी १७९० में मोंस्टरीज़ (Monasteries) और अन्य धार्मिक संस्थाओं को दबा दिया गया। अप्रैल, १७९० में पूर्ण धार्मिक सहिष्णुता की घोषणा हुई। जुलाई, १७९० में "धर्माचार्यों का विधान" (Civil Constitution of the Clergy) का कानून बना। बिशपों और पादरियों की संख्या कम कर दी गई और उन्हें राज्य के नियन्त्रण में कर दिया गया। इन्हें जनता चुना करती और राज्य वेतन देता। पोप के साथ इनका सम्बन्ध केवल नाममात्र का ही रह गया। दिसम्बर, १७९० में एक घोषणा हुई जिसके अनुसार सभी कैथोलिक धर्माचार्यों को देश के संविधान के प्रति भक्ति की शपथ लेनी थी। जैसी आशंका थी, पोप ने संविधान की निन्दा की और फ्रांस के धर्माचार्यों को आदेश दिया कि वे संवि-धान के प्रति भक्ति की शपथ न लें। परिणामतः फ्रांस के धर्माचार्य दो गुटों में बँट

गये, जिन्होंने यह शपथ ग्रहण की उन्हें न्यायिक धर्माचार्य (Juring clergy), और जिन्होंने शपथ नहीं ली उन्हें विन्यायिक धर्माचार्य (non-juring clergy) कहा गया। अब तक निम्न श्रेणी के धर्माचार्य फ्रांसीसी क्रान्ति के प्रति सहानुभूति रखते थे, किन्तु इस घोषणा के पश्चात् वे इसके विरोधी हो गये। संविधान के प्रति शपथ ग्रहण करने वाले धर्माचार्यों की संख्या बहुत ही थोड़ी थी।

(६) राष्ट्रीय सभा ने फ्रांस के लिए एक नया संविधान तैयार किया, इसलिए इसे संविधान-सभा भी कहा जाता था। संविधान १७९१ में तैयार हुआ और सम्राट् की स्वीकृति के पश्चात् देश में लागू हो गया। यह फ्रांस का प्रथम लिखित संविधान था। यह मॉण्टेस्क्यू द्वारा प्रतिपादित अधिकारों की पृथक्ता (Separation of Powers) के सिद्धान्त पर आधारित था जिसे १७८७ के अमेरिका के संविधान में निहित किया गया था। विधान-मण्डल, न्याय-मण्डल और प्रशासन-मण्डल एक-दूसरे से अलग कर दिये गये और प्रत्येक के लिए अलग-अलग विभाग स्थापित किये गये। वैधानिक सत्ता एक भवन वाली विधान-सभा में निहित कर दी गई। इसके ७४५ सदस्यों को परोक्ष प्रणाली (Indirect) से दो वर्ष के लिए चुना गया। मतदान का अधिकार केवल "कार्यशील" (active) नागरिकों, अर्थात् जो नागरिक कर देते थे; उन्हें प्रदान किया गया। केवल उन्हीं सदस्यों को चुना जाता था जिनके पास कुछ सम्पत्ति थी। सम्पत्ति-योग्यता का अनुवन्ध इस वात के लिए द्योतक है कि राष्ट्रीय सभा में बुर्जुआ अर्थात् मध्यमवर्ग का आधिपत्य था।

साधारणत: राज्य की प्रशासन-सत्ता सम्राट् के हाथों में छोड़ दी गई थी और उसका पद वंशक्रमानुगत था। सम्राट् को विलम्ब-निषेधाधिकार (Suspensive Veto) प्राप्त था, जिसके अनुसार वह विधान-सभा द्वारा पारित कानून का लागू होना स्थगित कर सकता था। किन्तु स्थानीय प्रशासन, चर्च, समुद्री सेना और थल-सेना के अधिकारों से उसे वंचित कर दिया गया। उसके मंत्री का विधान-सभा में कोई स्थान नहीं था।

न्याय-प्रणाली को पूर्णत: वदल दिया गया। पहले न्यायाधीश अपने पद खरीदा करते थे और उन्हें कुछ उपाधियाँ तथा सुविधाएँ भी प्राप्त थीं। उन्हें अपने पुत्रों को अपने पद हस्तान्तरित करने का भी अधिकार था। किन्तु यह सब समाप्त कर दिया गया। भविष्य में सारे न्यायाधीश चुने जाने लगे। उनके पद की अवधि दो वर्ष से चार वर्ष तक होती थी। फौजदारी मुकदमों के लिए ज्यूरी प्रणाली प्रचलित की गई।

प्रो० हेजन के अनुसार, "१७९१ का संविधान फ्रांस के शासन में उन्नति का द्योतक था। किन्तु यह चल नहीं पाया और दीर्घजीवी नहीं हुआ। शासन-कला में स्वयत्त शासन का प्रथम प्रयोग होने के नाते इसका अपना महत्त्व था, किन्तु इससे अनेक वातों में अनुभवहीनता और न्यून कार्यकुशलता प्रकट हुई, जिसके कारण भविष्य में होने वाली कठिनताओं की भूमिका वनी। कार्य-मण्डल और विधान-मण्डल इतनी सूक्ष्मता से पृथक् कर दिये गये थे कि इनके बीच सम्पर्क वनाये रखना बड़ा

कठिन हो गया जिससे एक-दूसरे के प्रति सरलता से सन्देह पनपने लगा। सम्राट् विधान-मण्डल से यदि न चाहता तो मन्त्रियों को नहीं चुनता था। विशेषत: विधान-मण्डल से मतभेद होने पर वह विधान-मण्डल से मन्त्री न चुनकर इंगलैण्ड के राजा की तरह विधान-मण्डल भंग करके मतदाताओं को आपस में निपटने के लिए छोड़ देता। सम्राट् का निषेधाधिकार इतना शक्तिशाली शस्त्र नहीं था कि वह विधान-मण्डल के आक्रमणों से उसकी रक्षा कर सके, किन्तु इसके प्रयोग द्वारा वह विधान-मण्डल में पर्याप्त झुंझलाहट पैदा कर सकता था। कार्यशील और अकार्यशील नागरिकों में भेद स्पष्ट रूप से 'मानव-अधिकार घोषणा-पत्र' का खुला विरोध था और जिसके कारण एक असन्तुष्ट वर्ग का उदय हुआ। प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण इतना सम्पूर्ण था कि राष्ट्रीय सरकार की कार्यदक्षता समाप्त हो गई। फ्रांस ८३ टुकड़ों में बँटा हुआ था, इन इकाइयों में परस्पर सम्पर्क रखना और राष्ट्र की आशाओं के अनुकूल इनको समूचे राष्ट्र के हित के लिए अग्रसर करना अत्यन्त कठिन और कभी-कभी असम्भव हो गया।

विधान-सभा के कार्य का पर्यवेक्षण (Estimate of the work of the National Assembly)—राष्ट्रीय सभा के कार्य के पर्यवेक्षण से पता लगता है कि इसने पुराने शासन के आधार को नष्ट कर दिया। इसने प्रशासन के पुराने ढंग को समाप्त कर दिया। इसने पुरानी आर्थिक प्रणाली को नष्ट कर दिया। इसने पुरानी न्याय-प्रणाली को नष्ट कर दिया। इसने देश के चर्च में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। इन सब विध्वंसकारी कार्यों के साथ-साथ यह प्रयत्न भी किया गया कि एक सरल शासन-प्रणाली प्रचलित की जाय जिसके चलाने में जनता का योगदान हो। यह सब केवल राष्ट्रीय सभा के प्रयत्नों से ही नहीं हुआ, अपितु उन सब किसानों के द्वारा भी हुआ जिन्होंने देहातों में विद्रोह करके जागीरदारों के महलों, उपाधि-पत्रों को नष्ट कर दिया, जागीरदारों और धर्माचार्यों की हत्या करके विशेषाधिकार-सम्पन्न वर्गों के हृदयों में भय संचारित करके उनका पूर्ण नैतिक पतन कर दिया।

आलोचकों का मत है कि राष्ट्रीय सभा ने भीड़ के शासन (Mob Rule) के द्वार खोल दिये। इसने भयंकर सिद्धान्तों का पोषण किया। इसने धर्म के प्रश्न पर देश में फूट पैदा कर दी। इसने विधान-मण्डल को कार्य-मण्डल से पृथक् करके भूल की। इसने मूर्खता से एक कानून लागू किया जिसके अनुसार राष्ट्रीय सभा के सदस्यों को नये संविधान के द्वारा चुने गये विधान-मण्डल की सदस्यता से वंचित कर दिया। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इसका बहुत-सा कार्य बाद में समाप्त हो गया। किन्तु फिर भी बहुत कुछ स्थायी हो गया और यूरोप, तथा विश्व के लिए प्रेरणा का स्रोत बन गया।

क्रोपोटकिन के मतानुसार, "संविधान सभा द्वारा सम्पन्न कार्य वस्तुत: मध्य-वर्गीय क्रिया थी, किन्तु एक राष्ट्र की परम्परा में समानता का सिद्धान्त चालू करना, एक व्यक्ति के दूसरे व्यक्ति के ऊपर अधिकारों की अवशेष प्रगति का उन्मूलन करना समानता की भावना जाग्रत करना तथा असमानताओं के विरुद्ध विद्रोह की भावना

जगाना, फिर भी एक महान् कार्य था। केवल इतना याद रहना चाहिए, जैसा लुई ब्लैंक ने कहा है, कि असेम्बली में वह अग्नियुक्त भावना बनाए रखना और चमकाना, 'वह वायु जो सड़क से चल रही थी, आवश्यक थी।' वह कहता है कि उन अद्वितीय दिनों में इस गड़बड़ में उत्पन्न दंगेबाजी ने भी कई विद्वत्तापूर्ण प्रेरणाएँ पैदा कीं। प्रत्येक विद्रोह, अनेकों विचारों से भरपूर था। दूसरे शब्दों में, केवल जनसाधारण ने असेम्बली को हर बार पुनर्निर्माण का कार्य करने पर बाध्य रखा। एक क्रान्तिकारी असेम्बली भी, या कोई वह जिसने अपने को राजतन्त्र के ऊपर क्रान्तिकारी रीति से थोपा, जैसा कि संविधान सभा ने किया, वह भी कुछ न कर पाती, यदि जनसाधारण उसे आगे बढ़ाने पर बाध्य न करते और यदि उन्होंने अपनी हिंसात्मक क्रान्तियों से क्रान्ति के विरुद्ध विरोध को कुचल न डाला होता।" (The Great French Revolution, p. 173)

सम्राट् का पलायन (जून, १७९१)—३० सितम्बर, १७९१ को राष्ट्रीय सभा का कार्य समाप्त होने से पहले फ्रांस में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना घटी और वह सम्राट् का देश से पलायन करने का प्रयत्न था। लुई सोलहवें को भीड़ वरसाई से पेरिस घसीट कर लाई थी। ट्युलिरीज़ (Tuileries) में वह लगभग अवकाश-प्राप्त व्यक्ति की तरह रह रहा था और राष्ट्रीय सभा में वह कुछ विशेष अवसरों पर आता था। सम्राट् ने अनुभव किया कि वह वस्तुतः पेरिस की भीड़ का वन्दी है। मिराबो (Mirabeau) की मृत्यु के पश्चात् उसका सारा आश्रय समाप्त हो गया। राष्ट्रीय सभा द्वारा बनाये गये नये संविधान ने तो उसके सारे अधिकार छीन लिये। उसे अनुभव हुआ कि इस परिस्थिति में अधिक समय तक रहना उसके लिए असम्भव है। उसे यह कहते हुए सुना गया कि "मैं इस अवस्था में फ्रांस का सम्राट् रहने की अपेक्षा मेट्ज़ का राजा होना अधिक पसन्द करूँगा, किन्तु यह शीघ्र ही समाप्त हो जायगी।" फ्रांस से आस्ट्रिया भाग जाने की योजना बनाई गई। राज-परिवार के सदस्य वेष बदल कर गुप्त रूप से अपने निवास-स्थान से निकल गये। यदि राज-परिवार सावधान रहा होता और असुविधाओं पर ध्यान न देकर सीमान्त पर शीघ्रातिशीघ्र पहुँचने का प्रयत्न करता तो उसके बच निकलने की पूर्ण सम्भावना थी। किन्तु राज-परिवार को सीमान्त से बीस मील दूर ही पकड़ लिया गया। उसे बड़ी अपमानजनक अवस्था में पेरिस लाया गया। सम्राट् के असफल पलायन के बड़े गम्भीर परिणाम हुए। इससे स्पष्टतः प्रकट हो गया कि सम्राट् क्रान्ति का हृदय से समर्थक नहीं था और वह संविधान का शत्रु था। रोब्सपायर (Robespierre) और डेण्टन (Danton) जैसे व्यक्तियों ने माँग की कि सम्राट्-पद समाप्त करके इसके स्थान पर प्रजातंत्र की स्थापना कर दी जाय। किन्तु राष्ट्रीय सभा में संवैधानिक राज-पद के समर्थकों का बहुमत था, परिणामतः सम्राट् के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं हुई। सम्राट् ने संविधान का समर्थन करने की शपथ ली और यह मामला यहीं दबा दिया गया। इस प्रकार की परिस्थितियों में ३० सितम्बर, १७९१ को राष्ट्रीय सभा का कार्य पूरा हुआ और इसे भंग कर दिया गया।

Suggested Readings

Acton : *Lectures on the French Revolution.*
Bourne : *The Revolutionary Period in Europe.*
Lowell : *The Eve of the French Revolution.*
MacLehose : *From the Monarchy to the Republic.*
Mathews : *The French Revolution.*
Robinson & Beard : *Readings in Modern European History.*
Thompson, E. : *Popular Sovereignty and the French Constituent Assembly (1789-1791), 1952.*
Thomson : *Europe Since Napoleon.*

अध्याय ४

विधान-सभा और राष्ट्रीय सम्मेलन

(Legislative Assembly and National Convention)

विधान-सभा (The Legislative Assembly) (१७९१-९२)—१७९१ में राष्ट्रीय सभा द्वारा बनाये गये संविधान के अनुसार चुनाव हुए और प्रथम अक्टूबर, १७९१ को विधान-सभा का अधिवेशन हुआ। सभा में ७४५ सदस्य थे और दुर्भाग्य से सारे ही सदस्य अपने कार्य के लिए नये थे। मूर्खता से राष्ट्रीय सभा ने निःस्वार्थ भाव से एक कानून बना दिया जिसके अनुसार राष्ट्रीय सभा के सदस्यों को नये संविधान द्वारा स्थापित विधान-सभा के सदस्य बनने पर रोक लगा दी। यह कार्य बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण रहा और इसके कारण देश को हानि उठानी पड़ी। विधान-सभा के सदस्यों में बहुत से उग्रवादी थे और यह आगामी विपत्ति का चिह्न था।

फ्रांस के क्लब (Clubs in France)—उस समय कुछ राजनैतिक क्लबों की भी स्थापना हुई, जिनमें सबसे प्रमुख जेकोबिन (Jacobin) और कोरडिलियर क्लब थे। जेकोबिन क्लब आरम्भ में नम्र नीति का समर्थक था, किन्तु कालान्तर में वह क्रमशः उग्रतर होता गया। विशेषतः मिराबो और लफाइट के क्लब छोड़ने के पश्चात् उसके सदस्य उग्र हो गये। परिणामतः रोब्स्पायर (Robespierre) एक उग्र प्रजातन्त्रवादी के रूप में प्रकाश में आया। उसके नेतृत्व में देश के उग्र नागरिकों को संगठित किया गया और देश भर में इसकी बहुत-सी शाखाएँ खोल दी गईं। कुछ समय पश्चात् जेकोबिन क्लब विधान-सभा का प्रतिद्वन्द्वी बन गया। कोरडिलियर क्लब आरम्भ से ही उग्र विचारधारा का समर्थक था। इसका नेता डेण्टन था। इसके सदस्य समाज की निम्न श्रेणी के लोग थे और प्रजातन्त्र के आरम्भ से ही प्रबल समर्थक थे। यह उल्लेखनीय बात है कि इन क्लबों का जनता पर बड़ा भारी प्रभाव था।

विधान सभा में राजनैतिक वर्ग (Political groups in the Assembly)—विधान-सभा के राजनैतिक वर्गों का उल्लेख किया जाना चाहिए। जहाँ तक संविधानवादियों का प्रश्न है वे १७९१ के संविधान के समर्थक थे, इसलिए देश में वैधानिक शासन-प्रणाली को चाहते थे। वे सीमित अधिकार वाले सम्राट् को मानने के लिए तैयार थे। प्रजातन्त्रवादी दो मुख्य गुटों में बँटे हुए थे गिराण्डिस्ट और जेकोबिन्ज़। जेकोबिन्ज़ को विधान-सभा में उनके ऊँचे आसनों के कारण पहाड़ (Mountain) भी कहा जाता था। गिराण्डिस्ट नम्र विचारों के थे, किन्तु वे प्रजातंत्रात्मक शासन के समर्थक थे। वे अपने ढंग से क्रियाशील नहीं थे। उनका दृष्टिकोण क्रियात्मक होने की अपेक्षा शिक्षात्मक अधिक था। वे कानूनी ढंगों और तरीकों का

विशेष ध्यान रखते थे और पशुबल के प्रयोग के विरुद्ध थे। प्रो० हेज़न (Hazen) के मतानुसार, "कवि लामार्टिने (Lamartine) की गम्भीर लेखनी से जिस समय से क्रान्ति का काल्पनिक इतिहास लिखा जाने लगा, गिराण्डिस्टों को कवित्वमय अमरता मिल गई। कवि ने इनका उच्च विचारों वाले और दुष्ट संसार के भँवर में फँसे देशभक्तों के रूप में वर्णन किया है। उसका वर्णन ठीक नहीं था। वे सुशासन के लिए बलिदान करने वाले निःस्वार्थ देशभक्त नहीं थे। यह राजनीतिज्ञों का गुट था जिसके कार्य उसकी महत्त्वाकांक्षाओं के समान प्रबल नहीं थे। जैसा कि इस प्रकार की अवस्था में बहुधा होता है, उन्होंने अपनी उद्दाम लालसा (vaulting emotion) का दाम भी चुकाया। उन्हें वीरता और उत्साह से अपने जीवन के दुःखान्त अन्त का स्वागत करना तो आता था, किन्तु उन्हें मृत्यु से भी कठिन कार्य करना तथा जीवन को ऊँचा उठाकर विश्व-कल्याण के कार्यों में लगा देना नहीं आता था। उनका एक भावुक युवती के नेतृत्व में चलने वाले नवयुवकों का दल था। इनका पथ-प्रदर्शक और अद्भुत सितारा श्रीमती रोलाँ (Madame Roland) थी, जिसने इनका थोड़ी देर चमक कर पद-प्रदर्शन किया तथा जो इनकी वास्तविक नेता बनकर रंगमंच पर थोड़ी देर गरजी, लेकिन क्रान्ति के उत्कर्ष के समय उसकी वह घनघोर गर्जना पेरिस में फिर सुनाई नहीं पड़ी। इन लोगों का संसार के प्रति किताबी दृष्टिकोण था। उनका मुख्य बौद्धिक भोजन प्लुटार्क (Plutarch) के लेख थे। प्राचीन यूनानी और रोम के विद्वानों के प्रति उनकी श्रद्धा असीम थी। वे प्रजातन्त्रवादी इस कारण थे, क्योंकि प्राचीन युग के महापुरुष प्रजातन्त्रवादी थे। उन्हें यह भी आशा थी कि प्रजातन्त्रीय प्रणाली में उन्हें यश प्राप्त करने तथा चमकने के अधिक अवसर प्राप्त होंगे। वे अपने पूर्व आदर्शों के यश से चकाचौंध थे, और ईर्ष्या की भावना से दहका करते थे।" जेकोबिन्ज़ कट्टर प्रजातन्त्रवादी थे। वे देश में प्रजातन्त्र-प्रणाली की शासन-व्यवस्था स्थापित करने के तथा इसकी रक्षा के लिए सब प्रकार के साधन प्रयुक्त करने के लिए प्रस्तुत थे। यह सत्य है कि आरम्भ में गिराण्डिस्ट (Girondists) सदस्यों का विधान-सभा में बहुमत था, किन्तु जेकोबिन-क्लब के समर्थन के कारण जेकोबिनों का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था।

सम्राट् द्वारा निषेध किये गये कानून (Laws Vetoed by the King)—विधान-सभा ने दो विधेयक पारित किये। एक विधेयक के अनुसार सारे धर्माचार्यों को धर्माचार्यों के संविधान (Civil Constitution of the Clergy) के अनुसार अपना कार्य सम्पादन करना था। इसकी व्यवस्था के अनुसार जो धर्माचार्य किसी विशेष तिथि तक इस संविधान को न मानें उनका अवकाश-वेतन (Pension) रोक दिया जाता और उन्हें संदेहात्मक दृष्टि से देखा जाता था। कोई भी गड़बड़ होने पर उन्हें पदच्युत कर दिया जाता। दूसरे विधेयक में फ्रांस के उन नागरिकों के लिए व्यवस्था थी, जो देश से भाग गये थे और विदेशी शक्तियों से मिलकर हस्तक्षेप करके फ्रांस की क्रान्ति को कुचलने का षड्यन्त्र रच रहे थे। उन्हें भगोड़े (Emigres) कहा गया। कानून के अनुसार उन्हें एक विशेष तिथि तक स्वदेश लौट आने की आज्ञा दी गई। ऐसा न करने की अवस्था में उनकी सम्पत्ति को जब्त कर लेने तथा मृत्यु-दण्ड

देने की व्यवस्था थी। लुई सोलहवाँ इन दोनों कानूनों में से किसी को भी स्वीकार नहीं करना चाहता था। परिणामतः उसने इन दोनों को निषेधाधिकार से रद्द कर दिया। 'धर्माचार्य-संविधान' को न मानने वाले धर्माचार्यों के विरुद्ध कानून स्वयं उसकी आत्मा को कचोटता था तथा देश से भागे हुए लोगों के साथ भी सम्राट् को सहानुभूति थी। पेरिस के नागरिक सम्राट् के इस ढंग को सहन करने के लिए तैयार नहीं थे, परिणामतः उन्होंने २० जून, १७९२ को सम्राट् के महल पर आक्रमण कर दिया। उन्होंने सम्राट् को एक कमरे में तथा सम्राज्ञी और राजकुमार ड्युफिन को दूसरे कमरे में पाया। कई घण्टे तक सम्राट् को झँझोड़ा गया, उसका अपमान किया गया और उसे घूरा गया। जब भीड़ जाने लगी तो उनमें से एक ने कहा, "हम दूसरी बार आयेंगे और जो हम चाहते हैं, लेकर रहेंगे।" यह एक भयानक घटना थी।

भीड़ दूसरी बार फिर आई। ९-१० अगस्त, १७९२ की आधी रात को राजधानी के चर्चों में घण्टे बजने लगे और डेण्टन (Danton) के नेतृत्व में एक हिंसा पर उतारू भीड़ ने पेरिस की नियमित सरकार को निलम्बित कर दिया। महल के रक्षकों को हटा दिया गया था। वे भाग गये। उनके नायक की हत्या कर दी गई। परिस्थिति इतनी भयानक हो गई कि राजपरिवार ने सुबह आठ बजे महल छोड़कर बड़ी कठिनाई से सभा के भवन में आश्रय लिया। लुई सोलहवें ने भवन में घुसते हुए कहा—"मैं एक भयानक अपराध को रोकने के लिए आया हूँ।" महल के स्विस रक्षकों और भीड़ में डट कर रक्तपात हुआ। ६०० के लगभग रक्षक मारे गये, भीड़ ने महल में घुस कर लूट-मार आरम्भ कर दी। राज-परिवार सभा-भवन में तीन दिन रहा और उसके पश्चात् उन्हें उनके मरने तक एक टैम्पल (Temple) की कैदखाने जैसी अँधेरी मीनारों में कैद कर दिया गया।

विद्रोह का उद्देश्य सफल हुआ। सम्राट् को निलम्बित कर दिया गया। डण्टन को न्यायमन्त्री बनाकर एक अस्थायी (Provisional) सरकार की स्थापना कर दी गई, किन्तु वास्तविक सत्ता पेरिस की कम्यून और जेकोबिन क्लब के हाथ में थी।

युद्ध की ओर ले जाने वाले तत्त्व (Factors leading to War)—फ्रांस धीरे-धीरे युद्ध की ओर बढ़ रहा था और इसके अनेक कारण थे। फ्रांस के क्रान्तिकारी अपने विचारों का केवल देश में प्रचार होना ही पर्याप्त नहीं समझते थे बल्कि वे अपने विचारों को यूरोप के अन्य देशों में भी फैलाने के लिए दृढ़-संकल्प थे। यूरोप के अन्य देशों के शासक फ्रांस के नागरिकों की इन गतिविधियों के विरुद्ध थे और इससे कटुता उत्पन्न हुई। भगोड़े (Emigres) यूरोप के अन्य देशों में फ्रांस के विरुद्ध प्रचार कर रहे थे और विदेशी सहायता से उनके द्वारा फ्रांस पर आक्रमण होने की पूरी सम्भावना थी। फ्रांस में जागीरदारों के कर तथा धर्माचार्यों के दशमांश कर (Tithes) समाप्त कर दिये गए थे। यह व्यवस्था अलस्की (Alsace) तथा अन्य सीमान्त प्रदेशों पर, जो पहले जर्मन साम्राज्य के अंग थे, लागू होती थी। १६४८ की

वैस्टफेलिया (Westphalia) की सन्धि के अनुसार जर्मन सामन्तों को कुछ अधिकार और सुविधाएँ देना स्वीकार किया गया था और फ्रांस सरकार की इस व्यवस्था से उन्हें चोट पहुँची। यह सत्य है कि फ्रांस सरकार ने इन जर्मन सामन्तों को हरजाना (Compensation) देना चाहा, किन्तु सामन्तों ने इसे ठुकरा दिया और जर्मन संसद् से अपील की। फ्रांस ने ऐविग्नोन (Avignon) को अपनी सीमा में मिला लिया। यह क्षेत्र चौदहवीं शताब्दी से निरन्तर पोप के अधिकार में था। यह कार्य अन्तर्राष्ट्रीय कानून को भंग करना समझा गया। फ्रांसीसी आस्ट्रिया के विशेषतः विरुद्ध थे, क्योंकि इसने फ्रांस के भगोड़े सामन्तों को जर्मनी की धरती से नहीं हटाया था। आस्ट्रिया पर यह सन्देह किया जाता था कि वह उन्हें मदद देता है। २७ अगस्त, १७९१ को आस्ट्रिया और प्रशिया दोनों ने पिलनिट्ज (Pilnitz) घोषणा की। इसमें घोषित किया गया कि फ्रांस की सरकार का कार्य समूचे यूरोप के राजाओं का कार्य है। प्रशिया और आस्ट्रिया दोनों फ्रांस में हस्तक्षेप करने को तैयार हैं यदि और देशों के शासक भी उनका साथ देने को तैयार हों। फ्रांस की जनता ने विदेशी हस्तक्षेप की धमकी को बहुत बुरा माना और इससे युद्ध के समर्थक और फ्रांस में राजशाही शासन समाप्त करने के इच्छुक गिराण्डिस्टों के हाथ और भी मजबूत हो गये। फ्रांस सरकार ने आस्ट्रिया को चुनौती दी और अप्रैल, १७९२ में युद्ध आरम्भ हो गया।

यद्यपि गिराण्डिस्ट युद्ध की माँग कर रहे थे तथा इन्होंने युद्ध आरम्भ कर भी दिया था किन्तु वे इसे सफलतापूर्वक चला नहीं सके। ये लोग क्रियाहीन राजनीतिज्ञ थे। परिणामतः फ्रांस सब मोर्चों पर परास्त हुआ। बेल्जियम पर इनका आक्रमण असफल रहा। आस्ट्रिया और प्रशिया की सामूहिक सेना ने इन्हें हरा दिया। फ्रांसीसियों ने अपनी पराजय का कारण अपनी अनुभवहीनता मानने की अपेक्षा सम्राट् की गतिविधि को माना। यह आक्षेप लगाया गया कि फ्रांस के सैनिकों ने राजपरिवार के शत्रुओं को गुप्त भेद बता दिये और परिणामतः फ्रांस की पराजय हुई है। फ्रांस की पराजय का मूल दोष सम्राट् पर थोपा गया। जिस समय सब ओर से सम्राट् की निन्दा की जा रही थी उसी समय संयुक्त-शक्तियों (Allied Forces) के प्रधान सेनापति ब्रुन्सविक के ड्यूक (Duke of Brunswick) ने जुलाई, १७९२ में फ्रांस की जनता के नाम एक घोषणा-पत्र प्रकाशित किया जिसमें उसने बुरबोन्स (Bourbons) वंश को फ्रांस में उसके न्यायपूर्ण स्थान पर पुनःस्थापित करने की घोषणा की गई थी। इस घोषणा का उत्तर फ्रांस ने अगस्त, १७९२ में पेरिस में विद्रोह करके दिया। इस विद्रोह का परिणाम डेण्टन की तानाशाही (Dictatorship) की स्थापना में हुआ। १० अगस्त, १७९२ को सम्राट् को निलम्बित करके देश के लिए नया संविधान बनाने के उद्देश्य से राष्ट्रीय सम्मेलन के लिए चुनाव कराने का आदेश दिया गया।

डेण्टन (Danton) की नीति को उसके ही शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है, "मेरे मतानुसार शत्रु को रोकने का एक ही साधन है और वह यह कि सम्राट् के समर्थकों को भयभीत कर दिया जाय। दुस्साहस, अधिक दुस्साहस और

सर्वदा बढ़ता हुआ दुस्साहस ही हमारा रक्षक है ।" (Audacity, more audacity and always greater audacity)। उसकी नीति का परिणाम पेरिस में सम्राट् के समर्थकों की सामूहिक हत्याएँ हुआ । पुरुष, स्त्रियाँ और बालक, सामन्त और न्यायाधीश, पुजारी और धर्माचार्य और अन्य लोग, जिन पर सम्राट् के समर्थकों से सहानुभूति रखने का सन्देह था, अत्यन्त निर्दयता से मौत के घाट उतार दिये गये । जैसे-जैसे संयुक्त शक्तियों की सेनाएँ फ्रांस में घुसती जाती थीं वैसे-वैसे ही भय बढ़ कर अराजकता में परिवर्तित होता जाता था । देश की सर्वोच्च सत्ता डेण्टन (Danton) और उसके साथियों के हाथों में चली गई । २० सितम्बर, १७९२ को संयुक्त शक्तियों की वालमी नामक स्थान पर पराजय हुई और उनकी प्रगति रुक गई । फ्रांस की तत्कालीन आपत्ति से रक्षा हो गई । इस विजय ने फ्रांस की सेनाओं को आत्मविश्वास प्रदान किया और इसके पश्चात् उन्हें सफलता-पर-सफलता प्राप्त होती गई । इस प्रकार की परिस्थितियों में २१ सितम्बर, १७९२ को राष्ट्रीय सम्मेलन आरम्भ हुआ ।

राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) (१७९२-९५)—प्रो० हेज़ (Hayes) के शब्दों में, "सम्भवत: इतिहास में किसी भी देश के विधानमण्डल को इस प्रकार की उलझी हुई समस्याओं को सुलझाने का कार्य नहीं सौंपा गया जैसा कि राष्ट्रीय सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन को सौंपा गया ।" अपदस्थ (Deposed) सम्राट् का भी कुछ करना था । देश को विदेशी आक्रमण से बचाना था । आन्तरिक विद्रोह समाप्त करना था । देश में शासन-व्यवस्था स्थापित करनी थी । सामाजिक सुधार पूरे करके मजबूत करने थे । देश के लिए संविधान तैयार करना था । इन सब महान् समस्याओं को सफलतापूर्वक हल करने का श्रेय राष्ट्रीय सम्मेलन को ही है ।

सम्राट् पर मुकदमा चलाया गया और उसे सर्वसम्मति से देश-द्रोह का अपराधी पाया गया । थोड़े बहुमत से उसे तुरन्त मृत्युदण्ड देने का निर्णय हुआ । गिराण्डिस्टों ने दया की अपील की, किन्तु जेकोबिनों ने उसकी तत्काल मृत्यु की माँग की । अन्त में २१ जनवरी, १७९३ रविवार के दिन सम्राट् को मृत्यु-दण्ड (Guillotined) दे दिया गया । उसके अन्तिम शब्द थे, "सज्जनो ! जिस अपराध का दोषी मुझे ठहराया गया है उसमें मैं निर्दोष हूँ । मेरे रक्त से फ्रांस की खुशी चिरंजीवी हो ।"

विदेश नीति (Foreign Policy)—राष्ट्रीय सम्मेलन की नीति का दो शीर्षकों में वर्णन किया जा सकता है—विदेश-नीति और आन्तरिक नीति । विदेश नीति के विषय में एक कठिन परिस्थिति सँभालनी थी । दिसम्बर, १७९२ में राष्ट्रीय सम्मेलन ने यह आज्ञा (Decree) प्रचलित की—"फ्रांस राष्ट्र यह घोषणा करता है कि वह उस प्रत्येक व्यक्ति को अपना शत्रु मानेगा जो स्वतन्त्रता और समानता को नहीं मानेगा अथवा इनकी निन्दा करते हुए राजपरिवार और विशेषाधिकार-प्राप्त वर्गों से अपने सम्बन्ध बनाये रखने, मित्रता करने अथवा उन्हें बुलाने की इच्छा करेगा···।" जनवरी, १७९३ में लुई सोलहवें को इस आधार पर मृत्यु-दण्ड दिया गया कि उसने राष्ट्रीय संविधान सभा के सदस्यों को घूस दी तथा अपने साथी राजाओं को सहायता

के लिए पत्र लिखे। फ्रांस द्वारा यूरोप के सब राजाओं के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करने और लुई सोलहवें को मृत्यु-दण्ड देने के कारण आस्ट्रिया, प्रशिया, ग्रेट ब्रिटेन, हॉलैण्ड, स्पेन और सारडीनिया ने फ्रांसीसी क्रान्ति को कुचलने के लिए संगठन किया। बाहर से आने वाली इस विपत्ति का सामना करना फ्रांस के क्रान्तिकारियों के लिए सरल कार्य नहीं था, किन्तु सम्मेलन ने बड़ी दृढ़ता से परिस्थिति का सामना किया। कार्नट (Carnot) के नेतृत्व और नियन्त्रण में फ्रांसीसियों में वीरता की भावना भर गई। जनवरी ३१, १७९३ को डेण्टन ने घोषणा की, "हमारे प्रजातन्त्र की सीमाएँ स्वयं प्रकृति ने नियत की हैं और हम इन सीमाओं को क्षितिज के चारों कोनों राइन, ऐल्पस, पारिनीस और समुद्र तक प्राप्त करेंगे। हमारे प्रजातन्त्र की भौगोलिक सीमाएँ होनी चाहिएँ और पृथ्वी की कोई शक्ति हमें इन तक पहुँचने में रोक नहीं सकती।" फ़रवरी, १७९३ में ५ लाख व्यक्तियों की बलात् भरती की घोषणा हुई। अगस्त, १७९३ में आज्ञा प्रसारित हुई कि अठारह और पच्चीस वर्ष की आयु के सब नागरिकों को सैनिक सेवा करनी पड़ेगी। कार्नट ने जवानों को भर्ती किया, दोषारोपण को समाप्त किया, विशेष स्वयंसेवक संगठित किये, सेना को प्रशिक्षित (Trained) करके उन्हें शीघ्रतापूर्वक फ्रांस पर होते हुए आक्रमण को रोकने के लिये मोर्चों पर भेज दिया। उसने मोर्चेबन्दी की योजनाएँ बनाई, विश्वस्त अधिकारियों को नियुक्त किया और उनमें फ्रांस की क्रान्ति की रक्षा के लिए एक नई भावना को फूंका। १७९३ ई० के समाप्त होते ही उनके पास सात लाख सत्तर हजार सशस्त्र जवान थे जिनमें से अधिकांश क्रान्ति के बड़े अन्धविश्वासी भक्त थे। बुर्जुआ नागरिक, कारीगर और किसानों ने सरकार का समर्थन किया। उनका मुख्य गान मारसिलीज़ का क्रान्ति-गान था और वे स्वतन्त्रता, समानता और मित्रता के ध्वज को लहराते थे।

फ्रांस का सैनिकवाद "सशस्त्र राष्ट्र" के सिद्धांत पर टिका था। शीघ्र ही देश से विदेशी सेनाओं का सफाया ही नहीं हुआ, अपितु युद्ध नीदरलैंड्ज पर दबाव डालता हुआ राइन (Rhine) के किनारे, सवाय (Savoy) में तथा पारिनीस (Pyreneese) को पार कर गया। फ्रांस की सेनाएँ इतनी सफल हुई कि कार्नट को, जिसे पहले 'सुरक्षा-प्रबन्धक' की उपाधि प्राप्त थी, अब 'विजय-प्रबन्धक' पुकारा जाने लगा। १७९४-९५ के अद्भुत और आश्चर्य-जनक अभियानों की सफलताओं का वर्णन करने का प्रयत्न करना असम्भव है। संक्षिप्त रूप से इतना ही कहना आवश्यक है कि १७९५ में जब राष्ट्रीय सम्मेलन की अवधि समाप्त हुई तब फ्रांस के विरुद्ध प्रथम संगठन को पूर्णतः नष्ट कर दिया गया था। स्पेन को प्रजातन्त्रवादी फ्रांस से समझौता करके मुंह की खानी पड़ी। १७९५ ई० की बेसल (Basle) की संधि के अनुसार प्रशिया के राजा ने फ्रांस को राइन के बाएँ तट पर अधिकार दे दिया था। हॉलैंड का विलियम पंचम राज्यच्युत (Deposed) कर दिया गया और उसका राज्य बटाविया प्रजातन्त्र में बदल दिया गया, तथा इस प्रजातन्त्र ने फ्रांस से मित्रता कर ली। फ्रांस की सेना को आस्ट्रिया-नीदरलैंड और राइन (Rhine) के क्षेत्रों पर

अधिकार मिल गया। फ्रांस के प्रजातन्त्र के विरुद्ध केवल ग्रेट ब्रिटेन, आस्ट्रिया और सारडीनिया ही शस्त्र उठाये रहे।

गृह-नीति (Home Policy)—गृह-नीति के विषय में भी फ्रांस को बड़ी कठिन स्थिति का सामना करना था। जनता में सैनिक-भावना जागृत हो चुकी थी, परिणामतः बहुत स्थानों पर वैसे, लायन्स (Lyons), मारसिलेज (Marseilles) और बोरडो (Bordeaux) में दंगे-फसाद हुए। ला विन्दा (La Venda) के किसानों ने राज-प्रणाली तथा कैथोलिक चर्च की स्थापना के लिए विद्रोह किया। किन्तु सब विद्रोह दृढ़तापूर्वक कुचल दिये गए और किसी प्रकार का विरोध सहन नहीं किया गया।

(१) १७९३ में सम्मेलन ने देश के सर्वोच्च कार्यमण्डल की सत्ता एक जन-सुरक्षा समिति (Public Safety Committee) को सौंप दी। इस समिति में रोब्सपायर (Robespierre), कार्नट और सेण्ट जस्ट जैसे प्रभावशाली व्यक्ति थे। १७९३ से १७९४ तक फ्रांस में वस्तुतः 'आतंक का राज्य' (Reign of Terror) था। जन-सुरक्षा समिति के दो प्रमुख विभाग सर्वसाधारण सुरक्षा समिति और क्रान्तिकारी न्यायालय (Revolutionary Tribunal) थे। सन्देह-युक्त कानून (Law of Suspects) के अनुसार कोई भी व्यक्ति, जो जन्म से सामन्त परिवार का हो या जो क्रान्ति के पहले पदाधिकारी रहा हो या जिसका किसी भगोड़े से सम्बन्ध रहा हो अथवा जो नागरिकता का लिखित प्रमाण-पत्र प्रस्तुत न कर सके, मृत्युदण्ड का भागी था। इस अवधि में ग्युलोटिनी (Guillotine) ने बड़ा कार्य किया। अनुमान किया जाता है कि केवल पेरिस में ही आतंक-काल में पाँच हजार व्यक्तियों को मृत्यु-दण्ड दिया गया। जिनकी हत्या की गई, उनमें सम्राज्ञी मेरी एण्टोयनेट (Antoinette) और श्रीमती रोलाँ (Rolland) भी थीं। यद्यपि आतंक पेरिस में ही आरम्भ हुआ था, किन्तु यह शीघ्र ही देहातों में भी फैल गया। सब जगह स्थानीय न्यायालयों की स्थापना की गई, जिससे सन्देह-युक्त व्यक्तियों की खोज करके उन्हें मार दिया जाय। लायन्स (Lyons) में सैकड़ों व्यक्ति मार डाले गये। नानटेस में केरियर अपराधियों को लोयर (Loire) में ले गया और वहाँ उन्हें डुबोकर मार डाला। अनुमान लगाया जाता है कि प्रदेशों में लगभग १५००० व्यक्तियों को मार डाला गया। इस सैनिक भावना ने अपराध करने वाले व्यक्तियों के ही प्राण नहीं लिये, अपितु निर्दोष व्यक्तियों को भी नहीं छोड़ा गया। आतंक-राज्य डेण्टन (Danton), रोब्सपायर और सेण्ट जस्ट के हटने पर समाप्त हुआ।

(२) राष्ट्रीय सम्मेलन की सबसे बड़ी सफलता थी, देश में राष्ट्रीय धर्म की शिक्षा और प्रचार। एक सच्ची राष्ट्रीय सेना तैयार करने के हेतु १७९४ में एक आज्ञप्ति प्रसारित की गई, जिसके अनुसार सब सशक्त फ्रांसीसियों का सेना में भर्ती होना अनिवार्य घोषित हुआ। इस आज्ञप्ति में आदेश दिया गया कि "युवक युद्ध में लड़ें, विवाहित पुरुष शस्त्र बनायें और युद्ध-सामग्री को मोर्चों पर पहुँचायें, स्त्रियाँ तम्बू और कपड़े तैयार करें और अस्पतालों में परिचर्या करें, बालक कपड़े की पट्टियाँ

और पलीता तैयार करें, वयोवृद्ध युद्ध में लगे युवकों के साहस को बढ़ाने, शत्रुओं के प्रति घृणा जगाने तथा प्रजातन्त्र में एकता स्थापित करने के लिए सार्वजनिक स्थानों में प्रचार-कार्य सँभालें।" इस प्रकार यूरोप में बहुत बड़े स्तर पर वास्तविक रूप से सैनिकवाद का प्रारम्भ हुआ।

(३) राष्ट्रीय सम्मेलन ने यह भी कानून वानाया कि समूचे देश में फ्रेंच भाषा ही शिक्षा का माध्यम हो।

(४) देश के राष्ट्रीय कानूनों का संग्रह करके संहिता (Code) वनाने के कार्य को भी शुरू किया गया। अतः इस ओर भी पर्याप्त प्रगति हुई। यह व्यवस्था भी की गई कि ऋण के कारण किसी को कैद की सज़ा न दी जाय। फ्रांस के उप-निवेशों में दासता अवैध हो गई। ज्येष्ठ सन्तान के उत्तराधिकार कानून को समाप्त कर दिया गया जिसके अनुसार केवल ज्येष्ठ पुत्र ही सम्पत्ति का स्वामी होता था और अन्य वालकों को कुछ नहीं मिलता था। सब वालकों को सम्पत्ति में वरावर भाग का अधिकारी माना गया। दशमलव प्रणाली (Metric System) के वज़न और माप प्रचलित किये गए।

(५) धर्म के क्षेत्र में भी कुछ प्रयोग किये गए। राष्ट्रीय सम्मेलन रूढ़िवादी ईसाईयत के प्रति विरोध-भाव रखता था। पादरियों को सन्देह-युक्त व्यक्ति समझा जाता था। फ्रांस से ईसाई धर्म का प्रभाव कम करने का प्रयत्न किया गया। पेरिस की कम्यून के तत्त्वावधान में नवम्बर, १७९३ में पेरिस के महान् गिरजाघर 'कैथेड्रल डे नाट्रे डाम' (Cathedral de Notre Dame) में 'आस्तिक तर्क का धर्म' की स्थापना हुई, किन्तु १७९४ में रोव्सपायर के पतन के पश्चात् राष्ट्रीय सम्मेलन का विचार वदल गया और यह नीति अपनाई गई कि धर्म एक व्यक्तिगत वस्तु है और किसी धर्म की स्थापना अथवा समर्थन करना राष्ट्र का कार्य नहीं है। परिणामतः सबको धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की गई और १७९५ में वहुत से गिरजाघर ईसाई धर्म की पूजा के लिए लौटा दिये गए।

(६) राष्ट्रीय सम्मेलन ने देश के पंचांग (Calendar) में भी परिवर्तन किये। वर्ष को वारह महीनों में विभक्त किया और प्रत्येक महीने में दस-दस दिन के तीन सप्ताह वनाये। हर दसवाँ दिन अवकाश होता था। इस प्रकार ३६५ या ३६६ दिन से वर्ष के अन्त के पाँच या छः दिन राष्ट्रीय पर्व के नाम से अवकाश के होते थे। महीनों के नाम[1] भी वदल दिये गए तथा २२ सितम्वर, १७९२ से वर्ष का आरम्भ होता था।

---

१. अगस्त से सितम्वर तक महीनों के नाम, वेण्डिमेयर, वुमेयर, फ्रिमेयर, निवोज़ प्लुवोज़, विन्टोज़, जर्मिनल, फ्लोरियल, प्रेरियल, मेसीडोर, थर्मिडोर और फ्रुक्टिडोर थे। इनके समकालीन अंगरेजी पर्यायवाची महीने, व्हीजी, स्नीजी, फ्रीज़ी, स्लिप्पी, ड्रिप्पी, निप्पी, शोवरी, फ़्लवारी, वोवरी, व्हीटी, ह्वीटी और स्वीटी थे।

(७) राष्ट्रीय सम्मेलन ने सामाजिक क्षेत्र में भी कुछ प्रयोग किये। [illegible] की सम्पत्ति ज़ब्त कर ली गई। धनवान्, धर्माचार्य, सामन्त सबको [illegible] समझा जाता था। बड़ी-बड़ी जागीरों को टुकड़े करके, छोटे-छोटे ज़मीन के टुकड़ों में सरल शर्तों पर बेच दिया गया जिससे साधारण जनता भी अपनी धरती प्राप्त कर सके। इस प्रकार बहुत से किसान जमींदार हो गए। जिन लोगों की धरती ज़ब्त की गई उन्हें हरजाना नहीं दिया गया। मारट (Marat) का मत था कि "धनवानों ने इतने समय तक लोगों की हड्डियां निचोड़ी हैं कि अब उनसे इसका प्रतिरोध चुकाया जायगा।" महँगाई को रोकने के लिए अनिवार्य ऋण उगाहे गये। 'अधिकतम कानून' वेतन तथा अन्न और दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुओं के दाम निर्धारित करने के लिए लागू किया गया। यह भी आज्ञा दी गई कि प्रत्येक व्यक्ति परस्पर 'नागरिक' (Citizen) कह कर सम्बोधन करे और समाज में किसी भी प्रकार का ऊँच नीच का भेद न हो।

(८) जुलाई १७६४ में रोब्सपायर के पतन के पश्चात्, संदिग्ध व्यक्तियों के विरुद्ध कानून तथा 'अधिकतम कानून' वापस ले लिये गये। क्रान्तिकारी न्यायालय बन्द कर दिये गये। १७६५ के आरम्भ में फ्रांस प्रजातन्त्र-प्रणाली के शासन के लिए तैयार हो चुका था। गिराण्डिस्टों (Girondists) द्वारा १७६२ में तैयार किए गए संविधान को रद्द करके १७६५ में नया संविधान बनाया गया। नये संविधान में फ्रांस में दो भवनों वाली संसद की व्यवस्था की गई। निम्न भवन में ५०० सदस्य तथा वृद्ध-सभा (Council of Ancients) में २५० सदस्य थे। इन दो भवनों को देश के कानून बनाने और पड़ताल करने का कार्य सौंपा गया। कार्य-मण्डल की सत्ता पाँच डायरेक्टरों की सभा को, जिसे डायरेक्टरी कहा गया, सौंपी गई। इन डायरेक्टरों को विधान-मण्डल चुनता था और ये राज्य के मन्त्री नियुक्त करते थे, जिनका कार्य देश में कानून लागू करना और शान्ति की व्यवस्था बनाये रखना था।

(६) राष्ट्रीय सम्मेलन की एक अन्य महत्त्वपूर्ण सफलता थी, देश में नार्मल स्कूल, पोलिटैकनीक स्कूल, लोवर का अजायबघर, राष्ट्रीय पुस्तकालय और 'इंस्टीट्यूट दि फ्रांस' की स्थापना करना।

आतंक का राज्य (Reign of Terror) (१७६३-६४)—६ मार्च, १७६३ को क्रान्तिकारी न्यायालयों की स्थापना के साथ नियमानुसार आरम्भ हुए आतंक-राज्य के विषय में लिखना अत्यावश्यक है। यह राज्य रोब्सपायर (Robespierre) की हत्या होने पर २६ जुलाई, १७६४ में समाप्त हुआ। कुछ लोगों की दृष्टि में आतंक-राज्य लक्ष्यहीन रक्तपात, घृणित और अनावश्यक था। दूसरे लोगों की दृष्टि में यह अत्यावश्यक था। कहा जाता है कि "कठोर अनुशासन सामूहिक वीरता उत्पन्न कर सकता है।" गिराण्डिस्टों के कुशासन के पश्चात् फ्रांस को कठोर नियन्त्रण की आवश्यकता थी। देश में हजारों विद्रोही और कायर थे, जिन्हें ठीक करने के लिए आतंक-राज्य आवश्यक था। फ्रांस को आन्तरिक कठिनाइयों और बाहर के आक्रमणों से बचाने के लिए यह आवश्यक समझा गया कि सारे फ्रांस को एक छावनी में बदल

दिया जाए। आवश्यकता तुरन्त थी और परिणामतः इसे पूरा करने के साधन कठोर और तीव्र हुए।

आतंक-राज्य को 'पागल हुआ मार्शल लॉ' (Martial Law) कहा जाता है। भय और क्रान्ति के विरोधियों के विरुद्ध क्रोध ने एक सैनिक व्यवस्था का रूप ले लिया था। परिस्थितियों की पुकार थी कि फ्रांसीसियों को मोर्चों पर लड़ने को प्रस्तुत करने के लिए शीघ्र ही कोई व्यवस्था की जाए और यह कार्य आतंक-राज्य से सम्भव हो गया। इस आतंक-राज्य ने डेण्टन, कार्नट और सेण्ट जस्ट को इस योग्य बना दिया कि वे परिस्थिति का सामना कर सकें। डेण्टन न तो लहू का प्यासा था और न ही वह भ्रष्ट था। वह देश के कल्याण के लिए देशभक्ति से प्रेरित था। उसने अपनी गम्भीर वाणी और विशाल शरीर को देश की सेवा में लगा दिया। कार्नट एक जन्मजात शासक, योद्धा और युद्ध-विद्या का पंडित था। जो भी कार्य उसने किया, पूर्ण दक्षता से किया। कहा जाता है कि उसने ही नेपोलियन की विजलियों का निर्माण किया था और उसके विना आतंक-राज्य अत्यन्त घृणित हो गया होता। उसने तेरह सेनाओं को संगठित किया, उनकी सब आवश्यकताएँ पूरी कीं और उन्हें विजय प्राप्त कराई। सेंट जस्ट का नाम सुस्त और दक्षता-हीन व्यक्तियों के लिए भयप्रद हो गया था। उसके हृदय में देशभक्ति ठाँठें मारा करती, वह युद्ध के मोर्चों और पेरिस के बीच बड़ी तेजी से चक्कर लगा कर इस सारे अभियान में जीवन फूँका करता था।

१७९४ की आज्ञप्ति के अनुसार सारे सशक्त शरीर वाले व्यक्तियों को सेना में भर्ती कर लिया गया। जन-सुरक्षा के लिए समूचे देश में सुरक्षा और व्यवस्था बनाये रखने के लिए पुलिस को अधिकार सौंप दिए गए। क्रान्तिकारी न्यायालयों को अधिकार दिया गया था कि वे किसी भी व्यक्ति को, जिस पर प्रजातन्त्र के प्रति भक्ति-हीन होने का सन्देह हो, मृत्यु-दण्ड दे सकते थे। संदिग्ध व्यक्तियों के कानून ने सरकार को किसी भी व्यक्ति को कैद करके मृत्यु-दण्ड देने की छूट दे दी।

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि आतंक-राज्य अपने उद्देश्य में सफल हो गया। फ्रांसीसी सेनाएँ नीदरलैण्ड में विजयी हुईं। वे रक्षात्मक युद्ध से विजय की ओर अग्रसर हुईं। दिसम्बर, १७९३ में उन्होंने ट्युलोन को प्राप्त करके लाविण्डी को कुचला। ऐल्प्स और पारिनीस पर उनका अधिकार हो गया। संयुक्त राष्ट्रों को पीछे धकेल दिया गया। उन्हें डन्कर्क, मोब्यूज, टूरकोइंग और ॱॱस पर से घेरे हटाने पर वाध्य कर दिया। अनुशासन इतना कठोर था कि प्रत्येक सेनापति और सैनिक को अपनी पूर्ण शक्ति से कार्य करना पड़ता था। मोब्यूज के दुर्ग-रक्षक को कह दिया गया था कि दुर्ग का मूल्य उसे अपने सिर से चुकाना पड़ेगा। यद्यपि हाउकार्ड ने डन्कर्क के घेरा डालने वालों को पीछे धकेल दिया, किन्तु उसे मृत्यु-दण्ड इसलिए दिया गया कि उसने शत्रु के पीछे हटने (retreat) को भगदड़ (rout) में क्यों नहीं बदला।

फ्रांस की सेनाओं की सफलता का कुछ श्रेय सैन्य-संचालन के संगठन, उद्देश्य के लिए उनकी धर्मान्धता तथा कठोर अनुशासन को है, तथा कुछ श्रेय संगठित राष्ट्रों

की कमजोरी को भी है। उनमें योजना अथवा सैन्य-संचालन का संगठन नहीं था। प्रत्येक राष्ट्र को अपनी-अपनी पड़ी थी। आस्ट्रिया, प्रशिया और रूस पोलैण्ड के विभाजन की योजना में अपना-अपना भाग प्राप्त करने में व्यस्त थे। परिणामतः वे फ्रांस के साथ युद्ध पर पूरा ध्यान नहीं दे सके। यह सत्य है कि छोटे पिट (Pitt, the Younger) ने अपनी सेनाओं को नीदरलैण्ड्स पर इकट्ठा करने का प्रयत्न किया, किन्तु वह भी इधर-उधर की बातों में लग जाता था। ड्यूक ऑफ यार्क (Duke of York), जो नीदरलैण्ड में ब्रिटिश सेनापति था, नितान्त अकुशल था, जैसा कि निम्नलिखित पद से प्रकट है—

> "बिचारा बुड्ढा ड्यूक ऑफ यार्क,
> दस हजार थी सेना पास।
> कभी चढ़ाता उन्हें चोटी पर,
> फिर उतार ले आता पास।"

संगठित राष्ट्रों के पास केवल दो ही रास्ते थे। प्रथम मार्ग था कि वे रास्ते के सारे दुर्गों और फ्रांस की सेना को परास्त करते हुए सीधे पेरिस की ओर बढ़ जाते। दूसरा मार्ग था कि पहले वे फ्रांस के सारे दुर्गों को जीत कर फिर पेरिस की ओर बढ़ते। वास्तव में संगठित राष्ट्रों ने दूसरा मार्ग ही अपनाया। उनकी धारणा थी कि पहले, मार्ग के रोकने वाले दुर्गों को एक-एक करके जीतने पर पेरिस में अव्यवस्था को फैलाने में सहायता मिलेगी और यदि तुरन्त ही पेरिस की ओर बढ़ा गया तो सम्भव है सारी जनता अपने देश की रक्षा के लिए एकदम तैयार हो जाय। वास्तव में हुआ यह कि संयुक्त राष्ट्रों ने मार्ग को रोकने वाले दुर्गों को जीतने में बहुमूल्य समय गँवा दिया और फ्रांस को इनसे टक्कर लेने और परास्त करने के लिए अपनी सेनाओं को तैयार करने का अवसर मिल गया।

यह बिल्कुल सत्य है कि जिस युद्ध-यन्त्र ने फ्रांस की रक्षा की, उसे मानव-रक्त से चिकना किया गया था। फ्रांस में प्रत्येक बात का केन्द्र से नियन्त्रण होता था। जन-सुरक्षा समिति के प्रतिनिधियों को जिलों का अधिकार सौंपा गया और किसी भी प्रकार या रूप में उनके कार्य का ढीलापन सहन नहीं किया जाता था। लायन्स नगर के जिराण्डिस्टों का समर्थन किया। इस विद्रोह को दबाने में ४½ महीने लगे। जब यह हो गया तो राष्ट्रीय सम्मेलन ने आज्ञप्ति प्रसारित की, "लायन्स नगर को उजाड़ दिया जाय। वह प्रत्येक घर, जिसमें अमीर रहते हों, गिरा दिया जाय; वहाँ केवल गरीबों, देश-भक्तों तथा सार्वजनिक प्रयोग की इमारतें, शिक्षा के स्थान तथा उद्योगों के प्रयोग में आने वाली इमारतें छोड़कर, सबको गिरा दिया जाए। इस नगर का नाम ही मिटा दिया जाए और भविष्य में स्वतन्त्र नगर (Liberated City) के नाम से पुकारा जाय।" इस नगर के ३५०० व्यक्तियों को बन्दी बनाया गया और लगभग आधे व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया गया। जो व्यक्ति इस विध्वंस का प्रबन्धक था उसे कहते सुना गया, "ओह! स्वतन्त्रता के उपयुक्त कितना प्यारा दृश्य है! कितने आनन्द का समय है!"

विण्डी जिले ने प्रजातन्त्र के विरुद्ध विद्रोह किया। यहाँ के लोग पादरियों के विरुद्ध कानूनों से सहमत नहीं थे। उन्होंने प्रजातन्त्र की सेनाओं में भर्ती होने से इन्कार कर दिया। सरकार इस विद्रोह को दबाने में पूर्णतः न्याययुक्त थी, किन्तु इसे दबाते समय जो अत्याचार हुए वे परिस्थिति के अनुसार अनुचित थे। राष्ट्रीय सम्मिलन ने इस कार्य के लिए केरियर को नियुक्त किया और उसने बर्बरता का मानदण्ड स्थापित कर दिया। उसकी दृष्टि में क्रान्तिकारी न्यायालयों की कार्य-प्रणाली धीमी थी, अतः उसने कैदियों का गुट बना कर गोली मरवा दी। उसने कैदियों को बँधवा कर नावों में बैठा कर नाव-सहित लोइअर नदी में डुबा दिया। उसके कार्यों से स्वयं जन-सुरक्षा समिति को भी क्षोभ हुआ। केरियर का उत्तर था, "मेरा यह अपराध है कि नावें अपनी मंजिल पर नहीं पहुँच पाईं।" नदी में लाशें इतनी अधिक संख्या में थीं कि उसका जल भी विषाक्त हो गया। केरियर को पदच्युत कर दिया गया, किन्तु उसके विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की गई।

बन्दीगृहों में खूब भीड़ थी। क्रान्तिकारी न्यायालयों के सम्मुख निरन्तर पुरुष और स्त्रियाँ लाई जाती थीं। क्षमा-दान कभी भूले-भटके ही दिया जाता था, साधारणतः ग्युलोटिनी का दण्ड ही दिया जाता था। अक्टूबर, १७९३ में मेरी एण्टोयनेट को मृत्यु-दण्ड दिया गया। गिराण्डिस्टों को बड़ी संख्या में मृत्यु-दण्ड दिया गया। ३ नवम्बर, १७९३ को ड्यूक ऑफ ओरलियन्स फिलिप को, जिसने क्रान्ति का खूब समर्थन किया, सम्राट् को मृत्यु-दण्ड देने के पक्ष में अपना मतदान दिया तथा क्रांतिकारियों को अपना महल सौंपा, उसे मौत के घाट उतार दिया गया। १० नवम्बर को श्रीमती रोलाँ को मृत्यु-दण्ड मिला। जैसे ही वह मंच पर चढ़ी, उसने कहा, "हे स्वतन्त्रता! तेरे नाम पर कितने घोर अपराध किए जाते हैं।" १२ नवम्बर को राष्ट्रीय सभा के प्रथम प्रधान बैले को मार डाला गया। कास्टाइन और बिरोन जैसे सेनापतियों को इसलिए मृत्यु-दण्ड मिला कि उन्होंने षड्यन्त्र किया, अथवा शत्रु का पीछा करने में सुस्ती दिखाई थी।

१७९४ के वसन्त तक लोगों को आतंक-राज्य का अधिक दिन चलाना व्यर्थ लगने लगा, विशेषतः जबकि शत्रुओं को मारकर पीछे हटा दिया जा चुका था। जनता की इच्छा थी कि ये भयप्रद न्यायालय, ग्युलोटिनी, डुबाना और गोली मारने के भयानक कार्य बन्द हो जाने चाहिएँ। अप्रैल, १७९४ में डेण्टन ने अपनी इच्छा प्रकट की और उसे इसका मूल्य अपना जीवन देकर चुकाना पड़ा। रोब्सपायर अपनी तानाशाही बनाये रखने के लिए दृढ़-संकल्प था। उसकी महत्त्वाकांक्षा रूसो (Rousseau) के लेखों का तानाशाही नायक बनने की थी। उसने जनता के व्यक्तिगत आचार और धारणा में हस्तक्षेप करने का प्रयत्न किया, क्योंकि उसके विचारानुसार 'सदाचार' का पालन फ्रांस में नहीं होता था। उसकी इच्छा सबसे पहले फ्रांस को ही शुद्ध सदाचारी बनाने की थी। उसने कम्यूनों के प्रमुख सदस्यों को उनके धार्मिक विचारों के कारण मरवा डाला। कहा जाता है यदि रोब्सपायर के जीवन का अन्त न कर दिया जाता तो अनवरत रूप से लोगों के सिर, छत की स्लेटों की तरह धूल में कटकर गिरते ही रहते। इसने सारी सत्ता अपने हाथों में प्राप्त करने का प्रयत्न

किया। फाउच (Fouch) ने परोक्ष रूप से राष्ट्रीय सम्मेलन के भय को बढ़ावा देकर उन्हें रोब्सपायर का विरोध करने के लिए साहस प्रदान किया। रोब्सपायर को, स्वतन्त्रता को नीचा गिराने का अपराधी घोषित किया गया। उसने राष्ट्रीय सम्मेलन के विरुद्ध पेरिस की कम्यून को लड़ाने का प्रयत्न किया। उसका प्रयत्न असफल हुआ। उसे पकड़ लिया गया और २८ जुलाई, १७९४ को उसका सिर काट दिया गया। आतंक का राज्य उसकी मृत्यु के साथ ही समाप्त हो गया।

ग्राण्ट और टेम्परले के अनुसार, "रोब्सपायर का पतन, आतंक-राज्य में होने वाली अनेक घटनाओं में से, एक मामूली घटना होती, सम्भवतः इसकी बागडोर किन्हीं और भी उग्र और आचार-हीन आतंककारियों के हाथों में चली जाती; किन्तु यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि रोब्सपायर की मृत्यु के क्षण से ही आतंक-राज्य शीघ्रता से लुप्त होने लगा। इसके बहुत-से कारण हैं। अठारहवीं शताब्दी के फ्रांस में ग्युलोटिनी का राज्य स्थायी नहीं हो सकता था। पेरिस में जनमत स्पष्ट रूप से और अत्यन्त शीघ्रता से इसके विरुद्ध होता जा रहा था। किन्तु दो कारण अन्य सब कारणों से अधिक महत्त्वपूर्ण थे जिनके कारण आतंक-राज्य का उस समय लुप्त होना अनिवार्य हो गया। पहला कारण था कि विदेशी आक्रमण का भय शीघ्रता से समाप्त हो रहा था। फ्ल्युरस के युद्ध के पश्चात् फ्रांस स्वयं एक आक्रान्ता (aggressive) शक्ति बन गया था और पूर्व, उत्तर और दक्षिण में उसके सीमान्त पर आक्रमण पूर्णतः विफल रहे। देश में सैन्य शक्ति के प्रति आत्म-विश्वास और गौरव की भावना का उदय हो रहा था जिसके सन्मुख क्रान्तिकारी न्यायालय और ग्युलोटिनी से निरन्तर काटे जाने वाले लोगों के समूह, दोनों ही जघन्य अपराध और मूर्खतापूर्ण प्रतीत होते थे। आतंक-राज्य मूलतः एक सैनिक व्यवस्था थी और जैसे ही सेना से भय समाप्त हुआ, इसका भी अन्त हो गया। यह बात कितनी ही कम महत्त्वपूर्ण क्यों न हो किन्तु रोब्सपायर का अन्त दूसरे शब्दों में सम्मेलन की विजय थी। सम्मेलन और कम्यून, उस फ्रांस की प्रतिनिधि संस्था और पेरिस की प्रतिनिधि संस्था में रोब्सपायर के मामले में सीधी टक्कर थी। अन्त में सम्मेलन की और फ्रांस की ही विजय हुई। क्रान्ति के इतिहास में प्रथम बार एक प्रसिद्ध व्यक्ति की शक्ति द्वारा फ्रांस के चुने हुए प्रतिनिधियों की शक्ति को कुचलने का प्रयत्न असफल हुआ तथा उस की पराजय हुई। सम्मेलन को पहले की अपेक्षा अधिक आत्म-विश्वास हुआ और इतनी कठिनाई से प्राप्त की गई शक्ति को संगठित करने के लिए उचित कदम उठाए गए।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि 'आतंक-राज्य' एक आवश्यकता थी। देश-द्रोहियों और कायरों से निबटने का अन्य कोई रास्ता ही नहीं था। किन्तु आतंक-राज्य में बहुत-सा रक्तपात व्यर्थ ही हुआ। यदि रोब्सपायर ने डेण्टन की सम्मति मानी होती और नरमेध बन्द कर दिया होता तो इतना लहू न बहता।

थॉमसन ने लिखा है कि आतंक-राज्य प्राचीन प्रणाली की सरकार के अन्त और आन्तरिक क्रान्ति तथा बाहर से आक्रमण के डर के कारण पनपा। किन्तु

इसके इतना भयंकर बन जाने और इतनी देर तक चलने के अन्य कारण हैं। संक्षेप से सर्वहारा वर्ग की हिंसा, अत्यधिक अत्याचार की भावना को, नगरनिवासियों के जोश और निर्दयता को भड़का देना, इसके कारणों में से थे। यह आतंक केवल अत्याचारी सामन्त वर्ग, धर्माचार्यों और विश्वासघाती मध्यम वर्ग के लिए ही नहीं, अपितु साधारण फ्रांसीसी स्त्रियों और पुरुषों के लिए भी था जो दल-बन्दी के जोड़-तोड़ में फँस कर दुर्भाग्य के शिकार हुए। बहुत से लोगों पर केवल इस लिए देश-द्रोह का अपराध लगाया गया कि अपनी जान बचाने का एकमात्र यही साधन था। यह हत्याकाण्ड वर्ग-युद्ध का साधन नहीं था क्योंकि इसके ७० प्रतिशत शिकार किसान, मजदूर और प्राचीन शासन-प्रणाली के विरुद्ध विद्रोह करने वाले लोग थे। पेरिस के क्रान्तिकारी न्यायालय ने २६३९ व्यक्तियों को मृत्युदण्ड दिया; सारे क्रान्तिकारी न्यायालयों ने १७,१०० व्यक्तियों को मृत्यु-दण्ड दिया। इसके अतिरिक्त ४०,००० व्यक्ति ला विण्डी और लायन्स जैसे नगरों में सम्मेलन के विरुद्ध विद्रोह करने के कारण सामूहिक हत्याकाण्डों के शिकार हुए। यद्यपि यह महान् अत्याचारपूर्ण काण्ड था किन्तु आधुनिक तानाशाहों द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों से यदि इसकी तुलना की जाय तो यह आतंक-राज्य कम और विचारपूर्ण था। (Europe Since Napoleon, p. 21)

Suggested Readings

Acton : *Lectures on the French Revolution.*
Bourne : *The Revolutionary Period in Europe.*
Carlyle : *The French Revolution.*
Clapham, J. H. : *The Causes of the War of 1792.*
Fyffe : *History of Modern Europe.*
Gardiner, B.M. : *The French Revolution.*
Greer, D. : *The Incidence of the Terror, 1935.*
Mathews : *The French Revolution.*
Stephens : *The French Revolution.*
Thomson : *Europe Since Napoleon.*

अध्याय ५

गिराण्डिस्ट और जैकोबिन्ज़

(The Girondists and the Jacobins)

गिराण्डिस्ट (The Girondists)—१७६२ की विधान सभा में गिराण्डिस्ट और जैकोविन्ज़ नाम के दो प्रमुख राजनीतिक दल थे। गिराण्डिस्टों का बहुमत और जैकोविन्स का अल्पमत था। गिराण्डिस्ट दल के बहुत से नेता फ्रांस के गिरोण्डे नामक प्रदेश के रहने वाले थे। इसलिए इस दल का नाम भी गिराण्डिस्ट पड़ गया था। ये लोग ईमानदार और सभ्य थे। उनकी इच्छाएँ निःस्वार्थ थीं। ये लोग उच्च बौद्धिक स्तर, शिक्षा और दीक्षा वाले थे। ये लक्ष्य-प्राप्ति में आचारहीन नहीं थे। उनकी नीति नम्र थी। उन्हें व्यवस्था से प्रेम था और स्वयं भी संयत थे। वे प्राचीन रूढ़ियों से समझौते के समर्थक नहीं थे। इसका उद्देश्य था फ्रांस में अपनी कल्पना की आदर्श व्यवस्था स्थापित करना। वे प्रजातन्त्र-प्रणाली की शासन-व्यवस्था के समर्थक थे। उनका विचार था कि युद्ध घोषित होने की अवस्था में राजशाही की निन्दा होने की बहुत सम्भावना थी तथा उन्हें प्रजातन्त्र की स्थापना की आशा थी। अप्रैल, १७६२ में आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध आरम्भ करने में इनका बड़ा हाथ था। इन लोगों के क्रियाहीन आदर्शवादी होने के कारण फ्रांस युद्ध में असफल रहा। फ्रांस की सेनाओं की प्रत्येक मोर्चे पर पराजय हुई। अपनी आन्तरिक स्थिति को सुधार कर शत्रुओं से लोहा लेने की अपेक्षा अपनी पराजय का सारा दोष सम्राट् के सिर मढ़ा गया। इस दोषारोपण का परिणाम यह हुआ कि सम्राट् के निवास-स्थान पर आक्रमण किया गया। उनके स्विस अंगरक्षकों की हत्या कर दी गई और उसे स्वयं विधान-सभा के भवन में शरण लेनी पड़ी। पेरिस की भीड़ ही सर्वोच्च सत्ता बन गई। इस प्रकार की परिस्थितियों में १७६२ में राष्ट्रीय सम्मेलन का अधिवेशन हुआ।

जैसे ही राष्ट्रीय सम्मेलन का उद्घाटन हुआ, फ्रांस में प्रजातन्त्र की घोषणा हुई, गिराण्डिस्टों और जैकोविन्ज़ के बीच सत्ता प्राप्त करने का संघर्ष आरम्भ हो गया। आरम्भ में गिराण्डिस्ट प्रबल थे और वे पेरिस की कम्यून के सदस्यों का दमन करने तथा उन्हें दण्ड देने के लिए दृढ़-संकल्प प्रतीत होते थे। वे कम्यूनों को भंग करने में सफल हुए। राष्ट्रीय सम्मेलन के लिए राष्ट्रीय सेना (National Guard) तैयार करने की योजना को स्वीकार नहीं किया गया। सितम्बर के हत्याकाण्डों के उत्तरदायी व्यक्तियों को दण्ड देने की माँग भी अस्वीकार कर दी गई। इनके द्वारा रोब्सपायर, मारट और अन्य नेताओं की आलोचना के कारण परस्पर कटुता बढ़ गई। सत्ता पर उनके एकाधिकार को जैकोबिन्ज़ की ओर से भय हो गया। अक्टूबर, १७६२ में युद्ध-मन्त्री पाशे (Pache) गिराण्डिस्ट दल को छोड़कर जैकोबिनों के साथ मिल गया।

युद्ध-मन्त्रालय जैकोबिनों का सम्मेलन-स्थल बन गया और पाशे (Pache) ने अपना धन और प्रभाव जैकोबिनों के हाथों में सौंप दिया।

जनवरी, १७९३ में गिराण्डिस्ट सम्राट् के अभियोग और हत्या से दुर्बल हो गये। जैकोबिन दल सम्राट् को मृत्यु-दण्ड देने की माँग कर रहा था किन्तु गिराण्डिस्ट दल सम्राट् से, यदि वह अपने विशेषाधिकार छोड़कर एक वैधानिक प्रमुख की स्थिति में रहना स्वीकार कर ले, तो उससे समझौता करने को तैयार था। सम्राट् को मृत्यु-दण्ड देने का प्रस्ताव बहुत बड़े स्तर पर धमकियाँ देने का आन्दोलन चलाकर, स्वीकार किया गया।

१७९३ के आरम्भ से ही गिराण्डिस्टों ने मैदान छोड़ना शुरू किया। रोलाँड (Roland) ने जो गिराण्डिस्ट दल की बड़ी सक्रिय सदस्या थी, जनवरी १७९३ में त्याग-पत्र दे दिया। गेराट (Garat) को गृह-मन्त्रालय सौंपा गया। वह एक उदार विचारों वाला तथा अच्छे उद्देश्य वाला व्यक्ति था, किन्तु अपने पद के लिए पूर्णतः अयोग्य था। उसने अपने दल के हितों की रक्षा नहीं की, क्योंकि उसे जैकोबिन दल की गिराण्डिस्ट दल को उलट देने की योजना और तैयारियों का पता लग चुका था। अतः उसने न तो अपने दल को ही सूचित किया और न स्वयं कोई कारंवाई की। मूर्खतावश उसने इन गतिविधियों को कोई महत्त्व ही नहीं दिया।

पाशे के जैकोबिन दल में जाते ही उसे युद्ध-मन्त्रालय से हटा दिया गया, किन्तु वह पेरिस का महापौर (Mayor) चुना गया और इस प्रकार जैकोबिन दल को पेरिस की कम्यून पर अधिकार प्राप्त हुआ। इन्हीं दिनों गिराण्डिस्ट दल के नये संविधान के लिए प्रस्ताव प्रकाशित हुए। ये प्रस्ताव अव्यावहारिक थे तथा किसी को भी रुचिकर नहीं हुए। जैकोबिन दल को गिराण्डिस्ट दल पर इस बहाने से आक्रमण करने का अवसर मिल गया कि ये लोग प्रादेशिक शासनों को अधिक अधिकार देकर पेरिस के प्रभाव को कम करना और प्रजातन्त्र की एकता को तोड़ना चाहते हैं। गिराण्डिस्ट दल ने एक प्रकार से पेरिस कम्यून पर युद्ध की घोषणा कर दी। उन्होंने पेरिस-निवासियों द्वारा पैदा की गई अव्यवस्था की घोर निन्दा की। उन्होंने मूर्खता से यह भी प्रचार किया कि देश के अन्य प्रदेश देशभक्त हैं, किन्तु पेरिस की कम्यून नहीं है। उन्होंने उन सब को दण्ड देने की धमकी दी जो लोग इन्हें भय दिखाते हैं। किन्तु वास्तव में उन्होंने अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए कोई कारंवाई नहीं की। डेण्टन ने आपस में समझौता करने का प्रयत्न किया, किन्तु इन्होंने उसकी भी निन्दा की। वास्तव में केवल डेण्टन ही वह व्यक्ति था जो इनका उद्धार कर सकता था और योग्य था। डेण्टन ने अपनी निन्दा के उत्तर में गिराण्डिस्टों को केवल इतना ही कहा, "तुम लोग क्षमा करना ही नहीं सीखे।"

राज्य की आर्थिक स्थिति बिगड़नी आरम्भ हुई और इसका सुधार करने के लिए अधिक संख्या में नोट (Assignats) जारी करने पड़े। महँगाई के कारण इन नोटों की कीमत गिर गई और वस्तुओं की कीमतें बढ़ गई। जनता को बड़ी हानि हुई और इन सब कठिनाइयों के लिए गिराण्डिस्ट दल को उत्तरदायी ठहराया गया।

गिराण्डिस्ट दल के कुछ सदस्यों ने पेरिस के लिए सस्ती रोटी देने के लिए धन के अनुदान का विरोध किया। इससे इस दल का विरोध और भी बढ़ गया और इसे दण्ड देने तथा हटाने की माँग की जाने लगी। १० मार्च, १७९३ को गिराण्डिस्ट दल को शक्ति-प्रयोग द्वारा हटाने की योजना बनी। जैकोबिन दल के नेताओं ने इस योजना का समर्थन नहीं किया। अतएव यह प्रयास असफल हुआ।

जिस समय गिराण्डिस्ट डगमगा रहे थे और निरन्तर जनता का विश्वास खो रहे थे, उन दिनों जैकोबिन्स इनके विरुद्ध संघर्ष की तैयारी कर रहे थे। इनके पीछे पेरिस कम्यून की सारी शक्ति थी, जैकोबिन नेताओं का आदर तथा जैकोबिन क्लबों की शक्ति थी। उनके पास सैन्य शक्ति भी थी। राष्ट्रीय रक्षक सेना (National Guard) का अलग से संगठन भी हुआ। जिस समय उनके शत्रु अन्तिम संघर्ष के लिए तैयारी कर रहे थे, गिराण्डिस्टों ने अपने बचाव के लिए कुछ भी नहीं किया। पेरिस कम्यून पर वे इसलिए विश्वास नहीं कर सकते थे क्योंकि इन्होंने अपने वक्तव्यों और कार्यों से इसको अपना शत्रु बना दिया था। इन्हीं लोगों ने कहा था कि पेरिस को जला कर राख कर दिया जाय जिससे आगामी सन्तान यह पूछे कि पेरिस सीन नदी के कौन-से किनारे बसा हुआ था। गिराण्डिस्ट राष्ट्रीय रक्षक सेना पर इसलिए विश्वास नहीं कर सकते थे क्योंकि वह जैकोबिनों के नियन्त्रण में थी। उनके पास ऐसी कोई संस्था नहीं थी जो इनके समर्थन में हथियार उठा सके। उन्हें मध्यमवर्ग अथवा सामन्तवर्ग दोनों में से किसी का भी नेता नहीं माना जाता था। वे प्रतिभाशाली थे और वैधानिक दाँव-पेचों में लड़ सकते थे, किन्तु वे जैकोबिनों की शारीरिक शक्ति के प्रयोग से अपनी रक्षा करने में असमर्थ थे।

अप्रैल, १७९३ के हत्याकांड के लिए उत्तरदायी मारट पर गिराण्डिस्टों ने अभियोग लगाया, किन्तु उसे क्रान्तिकारी न्यायालय ने मुक्त कर दिया। गिराण्डिस्टों ने पेरिस के विभिन्न भागों में होने वाले षड्यन्त्रों की निन्दा की किन्तु निन्दा होने पर भी ये षड्यन्त्र होते ही रहे। इससे फैसला करने की अपेक्षा गिराण्डिस्टों ने पेरिस के विरुद्ध देश से भी सहायता माँगी। उन्होंने राष्ट्रीय सम्मेलन को पेरिस से मारसिलेस ले जाने का प्रस्ताव पास किया। उन्होंने पेरिस कम्यून को भंग करने की चर्चा भी की। मई, १७९३ में उन्होंने राष्ट्रीय सम्मेलन के विरुद्ध षड्यन्त्रों की जाँच के लिए एक विशेष समिति की स्थापना की। समिति ने षड्यन्त्रों के नेता हरबर्ट को कैद करने की आज्ञा दी। इससे परिस्थिति और भी जटिल हो गई। जैकोबिनों और पेरिस कम्यून ने गिराण्डिस्टों के विरुद्ध कदम उठाने का निर्णय किया। ३१ मई, १७९३ को इस समिति को भंग कर दिया और २ जून, १७९३ को राष्ट्रीय सम्मेलन को धमकाकर गिराण्डिस्ट दल के २२ नेताओं को कैद करने की स्वीकृति ले ली। इन लोगों को पकड़ कर फाँसी दे दी गयी। जब उन्हें फाँसी के लिए ले जाया जा रहा था वे क्रान्ति-गीत गाते रहे और उनका गीत मृत्यु ने ही बन्द किया। श्रीमती रोलाँ ने कहा, "ओ स्वतंत्रता! तेरे नाम पर कितने अपराध किये जाते हैं!" गिराण्डिस्ट नेताओं के दुःखद अन्त से सारे देश में क्षोभ फैल गया। लायन्स, मारसिलेस दयुलोन और बेरिडो ने पेरिस की सरकार के विरोध की घोषणा की। फ्रांस के

अनेक प्रदेशों ने विद्रोह का झण्डा उठाने की तैयारी की। संगठित राष्ट्र पेरिस की ओर सब ओर से बढ़े आ रहे थे। इंगलैण्ड का समुद्री बेड़ा फ्रांस के कई बन्दरगाहों को रोके खड़ा था। कुछ गिराण्डिस्ट पेरिस से बच निकले और उत्तर में जाकर विद्रोह की तैयारियाँ करने लगे। किन्तु जैकोबिनों ने सारी परिस्थिति को बड़ी मजबूती से सँभाला। विद्रोहों को कुचल दिया गया और शत्रुओं को मारकर पीछे खदेड़ दिया गया। देश को आन्तरिक परेशानियों से और विदेशी आक्रमण से बचा लिया गया।

गिराण्डिस्टों का पतन हुआ, किन्तु इस तथ्य को मानने से कौन मना कर सकता है कि उनके आदर्शों से सहानुभूति तथा उनकी उद्दाम आशाएँ और साहस सर्वदा सम्मान का पात्र रहेगा! किन्तु ये लोग सर्वदा अयोग्य शासक माने जायेंगे।

जैकोबिन्ज[1] (The Jacobins)—गिंराण्डिस्टों की तुलना में जैकोबिन्ज असंस्कृत, लगभग अशिक्षित, असभ्य और आचारहीन व्यक्ति थे। कभी-कभी वे अत्यन्त निर्दय हो जाते थे। वे बहुधा भ्रष्टाचारी थे। किन्तु वे क्रियाशील जागरूक राजनीतिज्ञ थे और अवसर पड़ने पर अधिक-से-अधिक खतरे का मुकाबला करने को तैयार रहते थे। वे अपने शत्रुओं के प्रति निर्दय थे, किन्तु परास्त होने पर अत्यन्त घोर कष्ट सहन करने के लिए भी तैयार रहते थे।

जैकोबिनों का सिद्धान्त था कि सारे अधिकार और सारी सत्ता जनता में निहित है और सारे कानून और सरकार को उसकी इच्छानुसार चलना चाहिए। जनता का कार्य अपने शासकों की निगरानी, ध्यान से उनके चरित्र का नियन्त्रण और उन्हें सदा यह ध्यान दिलाना है कि वे उनके प्रतिनिधि मात्र हैं। जनता की आज्ञा मानना सरकार का कर्त्तव्य है भले ही यह आज्ञा किसी प्रकार की हो। जन-साधारण के आन्दोलन ही कानूनों का सर्वोच्च स्पष्टीकरण हैं। दंगे और हत्याएँ भी सर्वाधिकार-सम्पन्न शक्ति के कार्य हैं तथा वैध हैं। जो भी लोग जनता की इच्छा में बाधा डालते हैं वे देशद्रोही हैं और जो जनता को दण्ड देता है वह अपराधी है।

इस प्रकार की विचारधारा का परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति अपने को छोटा शासक मानने लगा। वह सरकार से अपनी मनचाही बात कराने की इच्छा करने लगा। देश में फूट की मनोवृत्ति घर करने लगी। छोटी-छोटी नगर-पालिकाएँ भी अपनी स्वतंत्रता जताने लगीं तथा उच्च सत्ता की आज्ञा को मानना छोड़ दिया। कहा जाता है कि एक छोटे से नगर के पादरी ने उस स्थान पर अपनी तानाशाही स्थापित कर ली। शासन को चलाने के लिए पूर्ण नियम प्रसारित किये, कर लगाये, अपने विरोधियों को कैद कर लिया, उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली और सारे अधिकारों का प्रयोग किया। यह समझा जाने लगा कि यदि जनता सर्वसत्ता की स्वामी है तो इसका यह अर्थ है कि जनता का कुछ भाग भी उतनी ही सत्ता का स्वामी है। इस प्रकार की नीति से निश्चित रूप से अराजकता बढ़नी ही थी।

---

१. नेपोलियन के मतानुसार जैकोबिन पागल और बुद्धिहीन लोग थे।

मजदूरों ने भी अपने अधिकार जताने शुरू किये। उन्होंने किराया, कर, दशमांश और अन्य धनराशियाँ देने से इन्कार कर दिया। किसानों ने भी यही किया। उन्होंने लगाये गए नए करों को देने से इन्कार कर दिया। उन्होंने राज्य की सम्पत्ति को गैरकानूनी रूप से हथियाकर अपनी सहायता करनी आरम्भ कर दी। राज्य की धरती से पेड़ों को काट लिया गया और चर्च की सम्पत्ति को भी नहीं छोड़ा गया। करों की उगाही रोकने के लिए सशस्त्र समितियाँ बना ली गईं। चुंगी के कार्यालयों पर आक्रमण करके वहाँ के कर्मचारियों को निकाल दिया गया।

उपरोक्त घटनाओं से स्पष्ट हो गया कि जैकोबिनों के इस सिद्धान्त से देश में अराजकता फैल गई। स्थान-स्थान पर दंगे, हत्याएँ और डकैतियाँ होने लगीं। देश में एक प्रकार का गृह-युद्ध आरम्भ हो गया। शान्ति और व्यवस्था टूट गई। कोई भी किसी की हत्या विना भय के कर देता था। भीड़ के नेता कानून बनाने लगे। विरोधियों के प्रति कोई दया नहीं दिखाई जाती थी तथा जहाँ-तहाँ हत्याएँ होती थीं। इस प्रकार की परिस्थिति में जैकोबिन दल आगे आया और गिराण्डिस्टों से सत्ता छीनने के लिए बिगड़ी हुई परिस्थिति का पूरा-पूरा लाभ उठाया।

जैकोबिन दल की संगठन-व्यवस्था के विषय में भी लिखा जाना आवश्यक है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि जैकोबिन दल इस बात का प्रथम आधुनिक उदाहरण है कि सुप्रबन्ध राजनीति में कितना सफल रहता है। सच्चे जैकोबिनों की संख्या अधिक नहीं थी। सम्भवत: जब जैकोबिन शक्ति के शिखर पर थे, पेरिस में उनकी संख्या दस या ग्यारह हजार से अधिक नहीं थी। देश में उनकी संख्या तीन या चार लाख आँकी जाती थी। जैकोबिन दल के लगभग सारे नेता मध्यम वर्ग के थे। वे वकील, व्यवहारी, लेखक और सम्पादकीय कार्य करने वाले थे। जैकोबिन दल के सब से बड़े नेता डेण्टन, रोब्सपायर, सेन्ट जस्ट, डिस्मोलिन्स, फ्रीरोन, राबर्ट, च्युमेट, मारट, कोलोट, ग्रिगोरी इत्यादि थे। ये लोग दार्शनिक, भावुक, उच्चाकांक्षी, धर्माचार्य तथा नाटकों में काम करने वाले कलाकार थे।

जैकोविन दल का मुख्य कार्यालय पेरिस में था। किन्तु देश में इसकी शाखाओं की बहुत बड़ी संख्या थी। १७६० के अन्त में देश में दल के १२० से अधिक क्लब थे। १७६१ के अन्त में इनकी संख्या ४०० थी। जून, १७६२ में १,२०० और अगस्त १७६२ में फ्रांस में इन क्लबों की संख्या २६,००० थी। इन क्लबों के द्वारा ही जैकोबिन दल फ्रांस के राजनीतिक क्षेत्र पर अपना आधिपत्य बनाये रहा। सदस्यों में विश्वास, उत्साह, दुस्साहस और महत्त्वाकांक्षाएँ थीं।

जैकोबिनों ने पेरिस कम्यून पर अधिकार जमाकर अपनी शक्ति और बढ़ा ली। ऐसा करने से राष्ट्रीय रक्षक सेना पर इनका अधिकार हो गया। राजधानी के सारे साधन इनके हाथों में आ गये। जैकोबिन दलों का पेरिस के कम्यून पर, पेरिस कम्यून का पेरिस की राजधानी पर तथा पेरिस की राजनीति का फ्रांस पर अधिकार था। अपने अच्छे साधनों, अपनी अच्छी संगठन-व्यवस्था, अपनी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मतान्धता, और लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आचार-विचार की हीनता से, जैकोबिन्स

गिराण्डिस्टों से सरकार छीन लेने में समर्थ हुए। इसके पश्चात् इन्होंने देश में आतंक राज्य की स्थापना की, किन्तु जब आतंक-राज्य का लक्ष्य पूर्ण हुआ, देश में विरोध को कुचल दिया गया, तथा शत्रुओं को निकाल दिया गया, जैकोबिन दल के नेताओं में परस्पर मतभेद उत्पन्न हो गया। आरम्भ में उग्रदलीय हर्बरटिस्टों (Herbertists) को ठिकाने लगाया गया। उसके बाद डेण्टन के अनुगामियों की बारी आई। उसे और उसके समर्थकों को रोब्सपायर ने ठिकाने लगवा दिया। २८ जुलाई, १७९४ को रोब्सपायर और उसके मित्र सेण्ट जस्ट को मृत्यु-दण्ड दिया गया। आतंक-राज्य को समाप्त करने के पश्चात् देश में धीरे-धीरे शांति की स्थापना हुई। पेरिस की कम्यून भंग कर दी गई। क्रांतिकारी न्यायालयों को समाप्त कर दिया गया। जैकोबिन क्लबों को बंद कर दिया गया तथा जन-सुरक्षा समिति पर नियंत्रण लगा दिया गया। इस प्रकार घोर विध्वंस करके जैकोबिन क्रान्ति के रंगमंच से लुप्त हो गये, किन्तु अपनी समाप्ति होने से पहले उन्होंने देश को विदेशी आक्रमणों से बचा लिया और मातृभूमि के सम्मान की पुनःस्थापना कर दी गई।

क्रोपोटकिन के मतानुसार, "उनके अधिकारवादी प्रशिक्षण को श्रद्धांजलि देते हुए बहुत से इतिहासकार यह मानते हैं कि जैकोबिन क्लब पेरिस और उसके प्रान्तों में समस्त क्रांतिकारी आन्दोलनों का प्रारम्भकर्त्ता तथा अध्यक्ष था तथा दो पीढ़ियों से सभी को इस तत्त्व में विश्वास है। लेकिन अब हमें ज्ञात होता है कि स्थिति ऐसी नहीं थी। २० जून व १० अगस्त का आरम्भ जैकोबिन्स से नहीं हुआ। इसके विपरीत, पूरे वर्ष तक उनमें से बहुत से क्रान्तिकारी तक लोगों से पुनः अपील करने के विपक्ष में थे। केवल जब उन्होंने यह देखा कि उन्हें लोकप्रिय आन्दोलन ने हटा दिया है, तभी उन्होंने निर्णय किया और फिर उनमें से भी केवल एक वर्ग ने उनका अनुकरण किया।

"किन्तु किस कायरता के साथ! वे यह चाहते थे कि लोग बाहर सड़कों पर निकल कर लड़ें और राजतन्त्रवादियों से टक्कर लें! किन्तु उन्होंने उसके परिणाम भोगने का साहस नहीं किया। क्या अब भी लोग राजसी सत्ता को उखाड़ फेंकने के पक्ष में नहीं थे? यदि लोगों का क्रोध धनवानों, सत्तावानों और चालाकों के विरुद्ध घूम जावे जिन्हें क्रान्ति में अपने को धनी बनाने के साधन की अपेक्षा और कुछ नहीं दिखाया? यदि ट्युलरीज़ के बाद जनता भी नेशनल असेम्बली को एक तरफ़ समेट दे? यदि पेरिस की कम्यून, उग्रवादी, अराजकतावादी—वे जिन्हें स्वयं रोब्सपायर ने अपने आक्षेपों से स्वतन्त्रतापूर्वक लाद रखा था—वे गणतन्त्रवादी, जिन्होंने 'दशाओं की समानता' पर उपदेश दिए थे—क्या उन्हें 'ऊपरी हाथ' मिलना चाहिए?

"यही कारण है कि उन सारे सम्मेलनों में, जो २० जून से पूर्व हुए, हमें क्रांतिकारियों के ऊपर इतना अधिक संकोच देखने को मिलता है। यही कारण है कि जैकोबवादियों को दूसरी लोकप्रिय क्रान्ति की आवश्यकता स्वीकार करने पर इतनी अनिच्छा थी। केवल जुलाई ही में ऐसा हुआ जबकि लोगों ने संवैधानिक विधियों को हटाकर विभागों का स्थायित्व घोषित किया, सामान्य शस्त्रीकरण का आदेश दिया

और यह घोषणा करने पर बाध्य किया कि 'देश संकट में है—केवल तभी रोब्सपायरवादियों, दान्तोवादियों, और बिल्कुल अन्तिम समय पर, गिराण्डिस्टों ने लोगों के पथप्रदर्शन का अनुकरण करने का निश्चय किया और अपने को लगभग क्रांति के साथ सम्बद्ध घोषित कर दिया।" (The Great French Revolution, PP. 257-58)

Suggested Readings

Brinton, C. : *The Jacobins, 1930.*
Goodwin, A. : *The French Revolution.*

अध्याय ६

क्रान्ति के महान् व्यक्ति

(Great Personalities of the Revolution)

मिरावो (Mirabeau)—नेपोलियन के उत्थान से पहले फ्रांसीसी क्रान्ति के महान् व्यक्तियों का उल्लेख आवश्यक है और इन महान् व्यक्तियों की सूची में मिरावो का नाम सर्वप्रथम आता है। एक निर्दय पिता का पुत्र, जीवन में अनेक संघर्ष, ऊँच-नीच देखने के पश्चात् केवल बयालीस वर्ष की अवस्था में अपनी जीवन-लीला समाप्त कर गया। वह अत्यन्त सूक्ष्मदर्शी और दूरदर्शी व्यक्ति था। उसके पास बुद्धि और ज्वाला से भरा हृदय था। वह अस्थिर, उग्र, महत्त्वाकांक्षी, आचारहीन और सनकी था। वह बदसूरत था और कहा जाता है कि उसकी असुन्दरता भी उसकी शक्ति थी। उसने अनेक द्वन्द्व-युद्ध लड़े। उसके पिता ने उसे कैद में डाल दिया। वह दुराचारी था और कई रोगों से पीड़ित था। किंतु वह एक क्रियाशील, तीव्र-बुद्धि और दूरदर्शी शासक था।

मिरावो

वह सिद्धांतवादी नहीं था। वह फ्रांसीसी क्रांति का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति था। उसे 'खण्डित होते हुए समाज में दुस्साहसिक कार्य करने वाल बुद्धिमान्' कहा जाता था। "इसी व्यक्ति ने बूढ़े फ्रांस की जड़ों को पकड़कर हिला दिया और मानो अकेले ही इस गिरते हुए भवन को डगमगाता हुआ थामे रहा, गिरने नहीं दिया।" कहा जाता है १७९१ में इसकी अर्थी के पीछे सम्राट् के प्रतिनिधियों और जैकोबिन क्लब के सदस्यों का ६ मील लम्बा जलूस था। पेरिस में तीन दिन तक शोक मनाया गया। इन बातों से उसके व्यक्तित्व की महानता का पता लगता है।

मिरावो ने अपनी युवावस्था में बहुत पर्यटन किया और इस प्रकार बड़ा अनुभव प्राप्त किया। कार्लायल (Carlyle) ने इस विषय में लिखा है, "इन अद्भुत यात्राओं में उसने क्या नहीं देखा और क्या नहीं आजमाया? ड्रिल-शिक्षक से प्रधान मंत्री, विदेशियों से लेकर देश के पुस्तक बेचने वाले सभी प्रकार के व्यक्ति उसने

देखे। मिराबो ने इंगलैण्ड की यात्रा की और वहाँ की संसदीय प्रणाली से बड़ा प्रभावित हुआ, जिस प्रणाली से सम्राट् और उत्तरदायी मंत्री मिल-जुल कर काम करते थे।

यद्यपि मिराबो सामन्तवर्ग का था, किन्तु १७८९ में जब संसद् के चुनाव हुए तो वहाँ तीसरे विभाग का सदस्य चुना गया। उसके महान् व्यक्तित्व ने उसे शीघ्र ही प्रकाश में ला खड़ा किया। जब यह प्रश्न उठा कि संसद् के तीनों विभाग एक साथ अथवा अलग बैठें तो मिराबो ने तीसरे विभाग का नेतृत्व करके यह माँगा कि तीनों विभाग एक ही स्थान पर बैठें। जब तीसरे विभाग के सदस्यों ने टेनिस-कोर्ट में प्रतिज्ञा की तो मिराबो ने ही घोषणा की कि मैं और मेरे अनुयायी तब तक नहीं जायेंगे जब तक हमारी माँगें पूरी नहीं हो जातीं। इन परिस्थितियों में लुई सोलहवें को झुकना पड़ा और तीन विभागों वाली संसद् को राष्ट्रीय सभा के रूप में बदलने के लिए राजी हुआ। मिराबो राष्ट्रीय सभा का नेता तथा प्रधान था।

मिराबो नम्र विचारों का था अतः जैकोबिन दल की उग्र विचारधारा से सहमत न होने के कारण उसने दल का परित्याग कर दिया। वह इंगलैण्ड की संसदीय प्रणाली को फ्रांस में प्रचलित करना चाहता था। इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए उसने सम्राट् से एक वैधानिक प्रमुख की स्थिति स्वीकार करने की माँग की तथा राष्ट्रीय सभा को सम्राट् के साथ सहयोग करने का सुझाव दिया। उसकी यह योजना असफल हुई क्योंकि दोनों ओर से अपने-अपने कार्यों को नहीं किया गया था। फ्रांस के वैधानिक ढांचे के विषय में उसके विचार थे कि, "सम्राट् सभा की सलाह माने जो उससे सहयोग करने की अत्यन्त इच्छुक है और सभा का नेता, अर्थात् स्वयं मिराबो, प्रधानमंत्री बने। उस समय लुई सोलहवाँ, मिराबो और राष्ट्रीय सभा फ्रांस की ओर के तट पर जार्ज, पिट और हाउस ऑफ कामन्स जैसी शानदार व्यवस्था स्थापित कर देंगे।"

यह बात उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय सभा ने मिराबो का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया, क्योंकि उस पर सन्देह किया जाता था। जैकोविनों ने उसको देशद्रोही कह कर निन्दा की। सभा को मिराबो का सम्राट् से हिल-मिल कर कार्य करना अच्छा नहीं लगा। सभा ने सम्राट् के प्रतिक्रियावादी सम्बन्धियों तथा मित्रों के हाथों में खेलना पसन्द नहीं किया। इसी कारण सभा ने यह राजाज्ञा प्रसारित की कि सभा के सदस्य सम्राट् के मन्त्री नहीं बन सकेंगे। इस प्रकार राष्ट्रीय सभा ने मिराबो की योजना को बिना परखे रद्द कर दिया। यदि राष्ट्रीय सभा का यह रुख था, तो मिराबो के साथ सम्राट् ने भी कुछ अच्छा व्यवहार नहीं किया। दिखावे के रूप में सम्राट् उसके प्रस्तावों का स्वागत करता तथा उसकी योजनाओं के लिए धन भी देता था किन्तु वह अन्तस्तल से उसका समर्थक नहीं था। वह मिराबो की इच्छानुसार राजनैतिक रंग-मञ्च पर अपना पार्ट खेलने को तैयार न था। सम्राट् को वैधानिक प्रमुख बनाने के विचार से ही वह घृणा करता था। मिराबो ने सम्राट् को यह सलाह दी कि वह पेरिस राजधानी से दरबार को हटा कर राउन (Rouen) ले

जाकर वहाँ से पेरिस की भीड़ के शासन के विरुद्ध देश को अपील करे। सम्राट् ने कुछ तो गृह-युद्ध के डर से और कुछ अपनी स्वाभाविक कायरता के कारण इस सम्मति के अनुसार कार्य करने से इन्कार कर दिया। सम्राज्ञी ने भी इस सलाह को नहीं माना और पेरिस से बाहर जाने की अपेक्षा आस्ट्रिया से सहायता माँगना अच्छा समझा। सम्राट् और सम्राज्ञी हृदय से मिराबो पर विश्वास नहीं करते थे।[1] वे यह कभी भी नहीं भुला सके कि आरम्भ में मिराबो ही सारे विरोध का उत्तरदायी था। परिणामतः उन्होंने अपना हार्दिक सहयोग मिराबो को भी नहीं दिया और सदा जनता की दृष्टि में उसका अपमान करने और यह दिखाने को प्रस्तुत रहते कि उसने राज्य से बहुत-सा धन प्राप्त किया है। वे भूल गये कि मिराबो ही अकेला वह व्यक्ति है जो राजशाही के हित के लिए सच्चा प्रयत्न कर रहा है और उनकी रक्षा करने की शक्ति केवल इस व्यक्ति में ही है। उसे अपना कार्यशील सहयोग न देकर उन्होंने अपने हितों का नाश किया।

प्रो० हालैण्ड के मतानुसार देश-व्यापी वातावरण में मिराबो के समझौते का सिद्धान्त सफल नहीं हो सकता था। राष्ट्रीय सभा ईर्ष्यालु तथा स्वयं सम्राट् आलसी था। समझौते का सिद्धान्त उसी समय सफल हो सकता था जबकि अन्य सारे साधनों को परख लिया गया होता और वे असफल हुए होते। उनके शब्दों में, "जब तक राजनैतिक प्रयोग करके देखे न गए होते और वे असफल न हो गए होते, तब तक सत्ता और प्रजातंत्र के बीच समझौते के सफल होने की आशा नहीं की जा सकती थी।" मिराबो सम्राट् और राष्ट्रीय सभा के असहयोग से इतना विचलित हो गया कि उसे यह कहते सुना गया था, "यह स्पष्ट है कि हम राजशाही, सभा और

---

१. प्रो० साल्वेमिनी ने ऐसा कहा है, "मिराबो, जिसका निजी जीवन और पिछला राजनीतिक भाग पुनः विश्वसनीय होने से बहुत दूर था—जिसने गुप्त रूप से दरबार में सेवा करने का बहाना किया, वरन् जनता में अपने राजतन्त्र सम्बन्धी विचारों की सामयिक सहायता के होते हुए भी, कभी भी क्रान्तिकारी हिंसा को पृथक् नहीं किया—वह ऐसा व्यक्ति नहीं था जिसे ट्युलरिज में बन्द दो अभागे कैदी पहचान लेते। उनकी दृष्टि में वह केवल एक चतुर चालबाज था जिस पर विश्वास करना मूर्खता थी और जो उन्हें ऐसी शीघ्रता से धोखा देता जैसा कि वह अभी क्रान्तिकारियों को धोखा दे रहा था; ठीक उसी प्रकार जैसे कि एक गद्दार कुलीन पुरुष! उसने क्रान्ति में भाग लेकर राजा के साथ गद्दारी का काम किया। इसके अतिरिक्त, उसने राजा से छः हजार लिवर्स की मासिक वृत्ति लेकर अपने को सारी नैतिक सत्ता से वंचित कर लिया था। राजा ने यह भी प्रतिज्ञा की थी कि वह उसके ऋणों का भुगतान करेगा और असेम्बली बन्द हो जाने पर १० लाख लिवर्स और देगा। मिराबो के लिए यह बताना बहुत बढ़िया चीज थी कि दरबार से पाया हुआ धन कोई रिश्वत नहीं थी क्योंकि अपनी कोई भी उपाधि त्यागे बिना, वह यह प्रयत्न कर रहा था कि राजा उन्हें स्वीकार कर ले या यों कहने लगे: 'मुझ जैसा व्यक्ति एक लाख क्राउन्स ले सकता है, लेकिन इतने धन से खरीदा नहीं जा सकता।' उन लोगों की दृष्टि में जिन्होंने भुगतान किया था, वह स्वयं को बेच रहा था और इस सौदेबाजी ने उसकी सारी ध्वनि को नीचा कर दिया और उसे एक राजनीतिक लौटे हुए कोट में परिणत कर दिया, जिसकी जेबों को राजा व रानी केवल इसलिए भरने पर तैयार रहते थे कि कहीं वह विरोधी न हो जाय।"

(The French Revolution, p. 185)

समूचे राष्ट्र को विनाश की ओर ले जा रहे हैं। सभा आत्मघात करने के साथ हमें अपने साथ मारे डाल रही है।" २ अप्रैल, १७६१ को उसकी मृत्यु हुई। वह अत्यन्त दुःखी होकर मरा, किन्तु उसने यह भविष्यवाणी की, "मैं अपने हृदय में राजशाही का मृत्यु-गान लेकर मर रहा हूँ, जिसके मृत अवशेषों को लूटने के लिए देश में फूट पड़ेगी।" नवीन फ्रांस ने एक मार्गदर्शक खो दिया। यह ध्यान देने योग्य है कि, "मिराबो के साथ क्रान्तिकारी युग का सबसे महान् व्यक्ति समाप्त हो गया। वह व्यक्ति, जो फ्रांस में राजशाही की रक्षा की अन्तिम आशा थी।" यदि वह अधिक जीवित रहा होता, तो सम्भवतः उसकी मृत्यु के पश्चात् फ्रांस में हुआ महान् विध्वंस न होता। वह ही एक व्यक्ति था जो राष्ट्रीय सभा के 'जंगली गधों' और दरबार के 'शाही घोड़ों' में समझौता करा सकता था। मदाम दे काम्पेन (Madame de Campan) के अनुसार, "मिराबो अपने को विश्व का मानचित्र (Atlas) मानता था।" इसमें क्या आश्चर्य है कि उसकी मृत्यु के पश्चात् देश में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं रहा जो उसके उत्तरदायित्व को सँभाल सकता और सम्राट् तथा जनता दोनों का पथप्रदर्शन कर सकता। मिराबो को सब से बड़ा दुःख यह था कि "मैं यह सोच कर दुःख में डूबा जाता हूँ कि जितना भी कार्य मैंने किया वह एक महान् विध्वंस में सहायक होगा।" यदि ४२ वर्ष की छोटी अवस्था में उसकी मृत्यु न होती तो उसने देश को अराजकता से बचा लिया होता।

जब मिराबो संसद् का सदस्य बना, वह ऋण से दबा हुआ था। उसने अपने ऋण को उतारने के लिए सम्राट् से एक बहुत बड़ी धनराशि ली। उसे २४० पौण्ड मासिक वेतन मिलता था। यदि मिराबो ने यह गुप्त रखा होता तो वह शायद राष्ट्रीय सभा का सहयोग प्राप्त कर सकता। किन्तु उसके छिछोरेपन और दिखावे के मोह ने उसे यह गुप्त नहीं रखने दिया। परिणामतः राष्ट्रीय सभा को उसमें बिल्कुल विश्वास नहीं रहा। यदि मिराबो ने अपने जीवन में अधिक संयम से काम लिया होता तो घटनाचक्र किसी और ही दिशा में चला होता।

प्रो० साल्वेमिनी के मतानुसार, "मिराबो की क्या दशा हुई होती—जबकि उसका सामना सन्देह व लांछनों और उस अपमानजनक सत्य से था जिसके विषय में उससे अधिक कौन जानता था—यदि उसकी उत्तेजना, उसका क्रोधयुक्त व उपभोग-युक्त कार्य और पाशविक सुख जिनमें उसने अपने दर्द व हतोत्साह को डुबाने का प्रयास किया, उन्होंने उसे उसके तूफानी जीवन के युवाकाल में डुबो नहीं दिया होता; उदाहरणार्थ, यदि वह तब तक जीवित रहता जब तक कि पेरिस से राजसी वंश के निकल भागने पर उसके विचारों व राजा के विचारों के बीच खाई का उसे पता चल जाता ? वस्तुतः, अपने व्यक्तिगत जीवन की नैतिकता, जिससे उसने राजनीति की महान् लीक को छोड़ दिया, उसने चालबाजी के टेढ़े रास्तों में फँसकर अपना मार्ग छोड़ दिया; तब उसकी स्थिति क्या होती उस दरबार में, जिसने उसे समझे बिना उसका प्रयोग करने का बहाना किया और क्रान्ति के चलाने वालों के बीच में जिन्होंने उसकी वास्तविक नीयत पहचाने बिना उसका अनुकरण किया था ? वह

संक्षिप्त व हिंसात्मक रोग, जो २ अप्रैल १७६१ को उसे दूर ले गए, उन्होंने उन सारे संघर्षों व संकटों का अन्त कर दिया जिनमें धीरे-धीरे वह फँस चुका था। वह उस संसार के दुःखात्मक अन्तिम लक्षणों में अदृश्य हो गया जो अपने को स्वयं भी नहीं बचा पाता और उसका सारा जीवन महानता व नीचता, यश व अपयश के बीच गाथा बनकर रह गया।" (The French Revolution, p. 187.)

मरात (१७४२-६३)—यदि मरात (Marat) ने राजनीति में अभिरुचि न ली होती, तो इतिहास में वह एक विद्वान् व वैज्ञानिक के रूप में प्रसिद्ध होता। वह एक चिकित्सक था और अपने धंधे में इतना निपुण था कि स्काटलैण्ड के सेंट ऐंड्रयूज़ विश्वविद्यालय ने उसे एक सम्मान की डिग्री प्रदान की थी। कुछ समय तक वह काउण्ट ऑफ आरटियोज़ की सेवा में भी रहा।

मरात

किन्तु १७८६ में संसद् (Estates-General) के आगमन के बाद उसका ध्यान राजनीति में खिच गया। फ्रांस में यह भावना चल रही थी कि फ्रांस वालों को ब्रिटिश संविधान की व्यवस्था की नकल करनी चाहिए। मरात ने इसका विरोध किया क्योंकि ब्रिटिश व्यवस्था सम्बन्धी उसने ज्ञान ने उसे विश्वास दिला दिया था कि ग्रेट ब्रिटेन पर शासन जनता नहीं बल्कि एक कुलीन वर्ग करता है। उसने स्वयं वास्तविक सुधार का समर्थन किया, जिसमें फ्रांस के लोगों की आवाज़ होगी और जिससे उनको लाभ भी पहुँचेगा। १७८६ से १७६२ तक, उसने एक समाचार-पत्र का सम्पादन किया, जिसका नाम 'लोगों का मित्र' (Ami Du Peuple) था। उस समाचार-पत्र में उसने दरबार की आलोचना की और पादरियों, कुलीन सामन्तों व नेशनल असेम्बली तक पर आघात किया। उस पर किसी भी पार्टी ने आघात नहीं किया और अपने लक्ष्य के लिए उसने सब कुछ बलिदान कर दिया। दरिद्रता, संकट व अत्याचार तक उसको शान्त न रख सके। वह गन्दी कोठरियों व नालियों में रहने पर विवश हो गया जिससे उसे एक भयानक चरम रोग लग गया।

मरात लोगों से प्यार करता था और लोग उससे प्रेम करते थे। लोगों के कार्य के हेतु वह कोई भी बलिदान करने पर उद्यत रहता था। वह रक्तपात के लिए भी तैयार था यदि उससे जनता के ध्येय को लाभ पहुँचे। ३१ मई, १७६३ के विद्रोह, असेम्बली से जिरोंडिस्ट सदस्यों के बहिष्कार और अन्त में उनकी हत्या का

उसी पर उत्तरदायित्व है। वही ऐसा व्यक्ति था जिससे अधिकारी वर्ग डरता था और इसलिए उससे घृणा करता था, किन्तु जिसका जनसाधारण सम्मान करता था व उससे स्नेह रखता था। जुलाई, १७९३ में एक युवती कोर्डे (Corday) ने उसका वध कर दिया जो कट्टरता के साथ जिरोण्डिस्ट ग्रुप से सम्बद्ध थी।

मरात की हत्या से लोगों का एक अत्यधिक प्रिय मित्र जाता रहा। यह सच है कि जिरोण्डिस्ट लोगों ने उसे खून का प्यासा पागल व्यक्ति माना, जिसे यह भी पता नहीं था कि उसे क्या चाहिए। फिर भी इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि जब १७९० और १७९१ में लोगों की सारी वीरता राजसी सत्ता को तोड़ने में असमर्थ रही, तब मरात ने ही यह निर्णय दिया था कि क्रान्ति को सफल बनाने के लिए कुछ हजार कुलीन जनों के अध्यक्षों का बलिदान कर देना चाहिए। उसने जो कुछ भी किया वह सब क्रान्ति को सफल बनाने लिए ही किया था। यह कहा जाता है कि लोगों को पथप्रदर्शित करने के लिए जनता का सच्चा हितैषी और प्रेमी मरात ही ऐसा क्रान्तिकारी नेता था जिसे घटनाओं का सच्चा ज्ञान था और उसी को यह समझने की शक्ति प्राप्त थी कि उनका पेचीदा प्रभाव एक-दूसरे पर कैसा पड़ेगा। उसने अपने सब समकालीन नेताओं की अपेक्षा यह उत्तम रूप से समझ लिया था कि आगे क्या होने वाला है।

डैण्टन (Danton)—डैण्टन एक किसान का पुत्र था। क्रान्ति आरम्भ होने से पहले वह एक उदार व्यक्ति तथा प्रतिभाशाली युवक वकील के रूप में प्रसिद्ध हो चुका था। उसे पुस्तकों से प्रेम था तथा उसका पारिवारिक जीवन सुखमय था। वह विशालकाय और शक्तिशाली था। उसकी आवाज़ में गम्भीर गर्जना थी। वह एक कुशल तार्किक और प्रभावशाली वक्ता था। मिराबो के स्वभाव के विपरीत जब श्रोता उत्तेजना के वेग में बहते तो वह स्वयं शान्त और स्थिर बना रहता। मिराबो की तरह वह भी अपने वर्ग से नीचे के वर्ग के लाभ के लिए उत्सुक था। जहाँ सामन्तवर्ग का मिराबो, बुर्जुआ मध्यमवर्ग के लिए था, वहाँ मध्यमवर्गी डैण्टन पेरिस की जनता के लिए था।

फ्रांस की क्रान्ति के प्रथम प्रहर में मिराबो की कृपा से डैण्टन प्रकाश में आया। उसने थोड़े ही समय में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। १७९० में डैण्टन ने मरात और डिसमोलिन्स की सहायता से कार्डिलियर क्लब की स्थापना की और १७९१ और १७९२ में शाही परिवार के विरुद्ध इस क्लब के कार्य का संचालन किया। वह पेरिस कम्यून का प्रभावशाली सदस्य था और कम्यून को प्रजातन्त्रवाद की ओर झुका देने का बहुत-सा उत्तरदायित्व डैण्टन का ही था। यह सत्य है कि डैण्टन अक्खड़ और साहसी था, किन्तु वह रक्त-पिपासु नहीं था। वह एक कार्यकुशल शासक था जिसे अपने कार्यों को अवसर के अनुसार ढाल लेना आता था।

१७९२ में जब फ्रांस को संगठित राष्ट्रों ने चारों ओर से घेर लिया था और ड्यूक ऑफ ब्रुन्सविक ने घोषणा की थी कि फ्रांस की जनता आत्मसमर्पण कर दे तथा धमकी दी कि यदि शाही परिवार को किसी भी प्रकार की हानि पहुँचाई गई तो

उन्हें घोर परिणाम भुगतने पड़ेंगे। पेरिस में इस घोषणा के उत्तर में विद्रोह हुआ और डैण्टन इसका नेता बना। शाही महल पर आक्रमण हुआ। महल के रक्षकों की हत्या कर दी गयी, स्वयं सम्राट् को निलम्बित कर दिया गया। डैण्टन की तानाशाही ने आन्तरिक तथा बाहरी शत्रुओं के हृदय में भय का संचार कर दिया। उस अवसर पर डैण्टन ने अपनी नीति का स्पष्टीकरण इन शब्दों में किया कि "मेरी सम्मति में शत्रु को रोकने का एकमात्र यही तरीका है कि सम्राट् के समर्थकों को भयभीत कर दिया जाय। "दुस्साहस, अधिक दुस्साहस और सर्वदा दुस्साहस ही हमारा नारा होना चाहिए।" इस नीति के परिणामस्वरूप हजारों स्त्री, पुरुष और बालक मौत के घाट उतार दिये गए। जिन न्यायाधीशों, पुजारियों और धर्माचार्यों पर सम्राट् के प्रति सहानुभूति रखने का सन्देह था उन्हें भी निर्दयता से मार डाला गया। डैण्टन ने फ्रांस की सेनाओं में नया रक्त और स्फूर्ति फूंक दी। इन सेनाओं ने ही संगठित राष्ट्रों को फ्रांस की सीमाओं से पीछे खदेड़ दिया और खोए हुए प्रदेशों पर पुनः अधिकार जमाया। उसने आतंक-राज्य के काल में रोब्सपायर के साथ सहयोग किया। किन्तु १७९४ के आरम्भ में उसने यह अनुभव किया कि आतंक-राज्य को अधिक चलाने से कोई लाभ नहीं है और सहिष्णुता की नीति अपनाने की सलाह दी। इस सम्मति को रोब्सपायर, सेण्ट जस्ट जैसे व्यक्तियों ने पसन्द नहीं किया। परिणामतः डैण्टन और उसके मित्र डिसमोलिन्स को मृत्यु-दण्ड दिया गया। इसकी मृत्यु के साथ-साथ फ्रांस ने एक ऐसा शासन-कुशल नेता खो दिया, जो घटनाचक्र के प्रवाह को बदल सकता था।
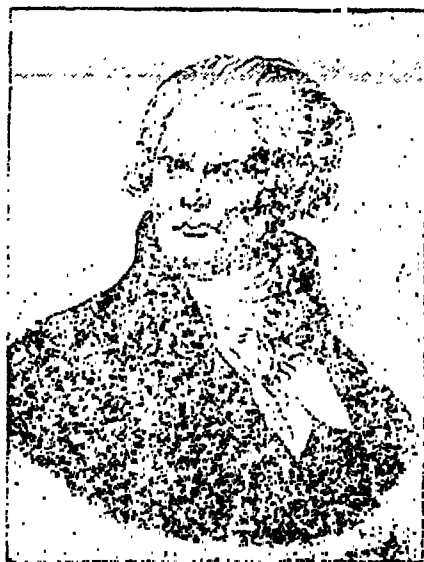
डैण्टन

एक सच्चे शासक की तरह डैण्टन ने सारे प्रजातंत्र के समर्थकों को फ्रांस के हित के लिए सामूहिक रूप से संघर्ष के लिए जैकोबिनों और गिराण्डिस्टों के मतभेदों को मिटाकर समझौता कराने का प्रयत्न किया। किन्तु गिराण्डिस्टों के विरोध के कारण डैण्टन अपने इस प्रयत्न की असफलता पर बड़ा दुःखी हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि गिराण्डिस्ट दल ही समाप्त हो गया।

ग्रांट और टैम्परले के अनुसार, "क्रान्ति के इतिहास में डैण्टन का व्यक्तित्व अद्भुत प्रकार का है। बहुधा उसे जैकोबिनों में सबसे अधिक रक्तपिपासु मानते हैं। उसने अगस्त १७९२ के विद्रोह का समर्थन किया। किन्तु जितना अधिक हम उसके राजनीतिक जीवन का विश्लेषण करते हैं उतना ही हमें स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर

होता है कि यद्यपि वह समय की पुकार के अनुसार घोर हिंसा के कार्य करने का समर्थक था, किन्तु उसने, जैसा भविष्य में पता लगा, क्रान्ति को अव्यवस्था और रक्तपात के गहन गर्त में गिरने से रोकने का भी निरन्तर प्रयत्न किया। बहुत-से विषयों में वह देश की प्राचीन परिपाटी को अपनाना चाहता था। उसने उस वातावरण में दया, व्यवस्था और शासन के प्रति आदर का सन्देश दिया, जब कि ऐसी सम्मति देना उसके लिए अत्यन्त भयानक था। यद्यपि वह जैकोबिन था, किन्तु उसका ध्येय गिराण्डिस्ट दल के साथ मिलकर कार्य करने का था और इस दिशा में उसने अनेक बार अपनी सामर्थ्य से बढ़कर भी उनकी मित्रता पाने का प्रयत्न किया।"

फिलेनली के अनुसार, डैण्टन और रोब्सपायर सब प्रकार से परस्पर इतने विरोधी स्वभाव के थे कि वे शत्रु का नाश करने अथवा आपत्ति के समय के अतिरिक्त उनका मिलकर कार्य करना असम्भव था। यद्यपि ये दोनों व्यक्ति मध्यमवर्ग के थे, दोनों वकील, प्रजातंत्रवादी, जैकोबिन और हत्या के समर्थक थे ; किन्तु विशालकाय, उदार, बेफिक्र, हँसोड़, गम्भीर गर्जना जैसी वाणी वाले डैण्टन की छोटे, दुर्बल, ईर्ष्यालु और उग्र रोब्सपायर, जिसके भाषणों को बुद्धि भले ही मान ले किन्तु जिनका हृदय पर प्रभाव नहीं होता था, तुलना करने पर दोनों व्यक्तियों की समानता समाप्त हो जाती है। डैण्टन का चरित्र अपने समकालीन मिराबो और अपने बाद के गेम्बाटा (Gambetta) के चरित्र से अधिक मिलता है। उसमें मिराबो जैसी विशाल-हृदयता और मन को मथ देने वाली भाषण-शक्ति और गेम्बाटा जैसी उग्र अदम्य देश-भक्ति थी। मिराबो की तरह उसमें दुर्गुण भी थे। उस पर भ्रष्टाचार का लांछन लगाया जाता है और सम्भवतः वह बड़ी शीघ्रता से किसी को भी मित्र बना लेता था। पुनः उसके जीवन पर सितम्बर १७९२ के हत्याकांड का दाग है। १७९३ में अत्यन्त प्रभावशाली होने पर भी राजनीति से, देश की सुरक्षा को छोड़कर, उसका मन-हट सा गया था। अब वह दलबन्दी की भावना को शान्त करना चाहता था, वह कहने लगा था, "मुझे अब घृणा से क्या प्रयोजन ?" उसकी पत्नी का देहान्त हो गया और दूसरा विवाह करके वह अपने जन्मस्थान आरसिस-सर-ऐबे (Arcis-sur-Aube) नामक कस्बे के एकान्त में चला गया और थोड़े-थोड़े समय पश्चात् कभी पेरिस आया करता था। यह व्यवहार उसकी सुरक्षा के लिए अच्छा नहीं था, क्योंकि रोब्सपायर सत्ता को हथियाना चाहता था।

उस विषाक्त वायुमण्डल में सन्देह के बीज रातों-रात पनप कर वृक्ष बन जाया करते थे। वह कहा करता, "ग्युलोटिनी पर किसी का सिर काटने से अच्छा है कि अपना ही सिर कटा लिया जाय।" उस पर आक्रमण किया गया और कैद कर लिया गया। वह अपनी रक्षा करने के लिए बहुत देर बाद जागा और जब जागा तो इतनी शक्ति से क्रान्तिकारी न्यायालय के समक्ष अपना बचाव पेश किया कि न्यायालय की दीवारें उसकी घोर गर्जना से काँपती प्रतीत होती थी। मुकदमा रोक दिया गया और उसे मृत्यु-दण्ड दिलाने के लिए एक नया षड्यन्त्र रचा गया और ५ अप्रैल, १७९४ को सूर्यास्त के समय जैकोबिन दल के सर्वश्रेष्ठ महान् नेता ने थोड़े साथियों

के साथ पेरिस की जानी-पहिचानी गलियों में से गुजर कर अपनी महा-यात्रा समाप्त की ।

रोब्सपायर (Robespierre) (१७५८-९४)—रोब्सपायर एक मध्यमवर्गीय परिवार में पैदा हुआ और पेरिस विश्वविद्यालय की विधि-संकाय (Law Faculty)

रोब्सपायर (१७५८-९४)

में डिसमोलिन्स का सहपाठी था। वह अपने जन्म-स्थान अरास (Arras) में काफी अच्छी वकालत करता था। यद्यपि उसे फौजदारी न्यायालय में न्यायाधीश नियुक्त कर दिया गया था, किन्तु अपराधियों को मृत्यु-दण्ड देने के विरुद्ध होने के कारण, उसने पद से त्याग-पत्र दे दिया। उसने वक्ता और लेखक के रूप में ख्याति प्राप्त की। साधारण वक्ताओं की तरह वह अनर्गल बोलने वाला नहीं था। वह मूलतः सुसंस्कृत व्यक्ति था। वह लगन वाला और सच्चा व्यक्ति था। वह रूसो का कट्टर अनुयायी था और उसकी दार्शनिकता को कार्य-रूप में परिणत कर देना चाहता था। ऐसा करते हुए उसे जनता की पीड़ा की कोई परवाह नहीं थी। यद्यपि उसने सर्वहारावर्ग के लिए घोर परिश्रम किया, किन्तु वह इनके स्वभाव को नहीं अपना सका। कहा जाता है कि जीवन के अन्तिम दिन तक वह घुटने तक की ब्रिजिस और रेशमी मोजे पहनता रहा और अपने बालों में पाउडर लगाता रहा।

१७८९ में वह संसद् के तीसरे विभाग का सदस्य चुना गया। उसने अपना स्थान अत्यन्त उग्र विचारों के सदस्यों में चुना, जिन्हें मिराबो व्यंग से 'तीस आवाजें' (The Thirty Voices) कहा करता था, क्योंकि सभा में उसके समर्थकों की संख्या कम थी और मिराबो का प्रभुत्व था। रोब्सपायर राष्ट्रीय सभा में अधिक नहीं चल सका। इस परिस्थिति में उसने पेरिस-निवासियों की सहायता प्राप्त करने का निर्णय किया। वह जैकोबिन क्लब का सदस्य तो था ही, अतः उदार सदस्यों के चले जाने के बाद वह क्लब का नेता बन बैठा। इसके पश्चात् वह जैकोबिन क्लब को समाजवाद के प्रसार का साधन बना कर स्वयं उसका मुख्य प्रतिपादक बन बैठा।

उसने आतंक-राज्य के काल में डैण्टन के साथ सहयोग किया और जब डैण्टन की शक्ति का ह्रास होने लगा तो वह सर्वेसर्वा बन बैठा। वह जैकोबिनों का नेता था, इस कारण राष्ट्रीय सम्मेलन, पेरिस कम्यून और सुरक्षा समिति पर उसका बहुत दबाव था। उसने 'तर्क' की उपासना को बन्द करा दिया और इसके स्थान पर 'सर्वशक्तिमान्' की उपासना प्रचलित की और स्वयं इसका मुख्य गुरु बन गया। इस नये मत के उद्घाटन के लिए एक विशेष उत्सव हुआ। रोब्सपायर के नेतृत्व में राष्ट्रीय सम्मेलन के सदस्यों का एक जलूस निकाला गया और ट्युलरीज़ (Tuileries) के बाग में बहुत-सी मूर्तियाँ जलाई गईं। अन्त में यह समारोह बहुत से भाषणों के पश्चात् समाप्त हुआ। यह नया मत फ्रांस की जनता की अवस्था के अनुसार नहीं था, परिणामतः यह रोब्सपायर की मृत्यु के साथ ही समाप्त हो गया।

१० जून, १७९४ में एक कानून पारित हुआ, जिसके अनुसार क्रांतिकारी न्यायालयों की कार्य-प्रणाली में परिवर्तन हुआ और इनका कार्य शीघ्रता से चलने लगा। फ्रांस की जनता को देशद्रोहियों के विरुद्ध अभियोग लगाने के लिए कहा गया और राष्ट्रीय सम्मेलन के सदस्य भी कहे से नहीं बच सकते थे। क्रांतिकारी न्यायालय कोई नियम कठोरता से पालन नहीं करते थे। परिणामतः, १० जून से २७ जुलाई की अवधि में केवल पेरिस में ही १३७६ व्यक्तियों को मौत के घाट उतार

दिया गया। इस प्रकार रोब्सपायर ने अपने विरोधियों को सीधी चुनौती दी। वह स्वयं ही फ्रांस का तानाशाह बनने का दृढ़ संकल्प कर चुका था। उसके कामों में सेण्ट जस्ट सहायक था।

२६ जुलाई, १७९४ को राष्ट्रीय सम्मेलन में रोब्सपायर ने एक भाषण दिया; जिसमें उसने अपने कार्यों का समर्थन और अपने विरोधियों के रुख की निन्दा की। यद्यपि उसने अपने विरोधियों का नाम नहीं लिया, किन्तु संकेत अवश्य दे दिया। यह उल्लेखनीय है कि यदि उस दिन रोब्सपायर ने राष्ट्रीय सम्मेलन के सम्मुख अपने विरोधियों की सूची कैद करने के विचार से प्रस्तुत कर दी होती तो राष्ट्रीय सम्मेलन ने उसकी माँग स्वीकार कर ली होती। किन्तु अपने आक्रमण की अस्पष्टता के कारण वह बाजी खो बैठा। इस प्रकार सांकेतिक आक्रमण करने के कारण राष्ट्रीय सम्मेलन के सदस्यों में बेचैनी पैदा हो गई और प्रत्येक को अपने जीवन का भय होने लगा। इस प्रकार के वातावरण में राष्ट्रीय सम्मेलन के सदस्यों ने साहस करके रोब्सपायर के भाषण को अस्वीकार कर दिया। इस दिशा में फाउच (Fouche) से, जो परोक्ष में अपना कार्य कर रहा था, सम्मेलन के सदस्यों को बड़ा प्रोत्साहन मिला। रोब्सपायर इस झाड़ के लिए तैयार नहीं था। वह इतना अपमान अनुभव करता था कि वह जैकोबिन क्लब गया और उसने अपने भाषण को पुनः दोहराया, तो उसे सब ओर से प्रशंसा प्राप्त हुई। इस प्रकार प्रोत्साहन पाकर उसने दुबारा चोट करने का निर्णय किया।

२७ जुलाई, १७९४ को वह राष्ट्रीय सम्मेलन में गया और सदस्यों को सम्बोधित करके भाषण देने लगा, किंतु उसके विरोधियों ने इतना शोर मचाया कि वह भाषण नहीं दे सका। सभा-भवन में बड़ी अव्यवस्था, क्रोध और हिंसा भड़की। अंत में यह प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ तथा स्वीकार भी हुआ कि रोब्सपायर, सेण्ट जस्ट और उसके निकट-समर्थकों को कैद कर लिया जाय। उन्हें पकड़ कर सम्मेलन के अधिकारियों को सौंप दिया जाय और कैदखाने में ले जाया जाय। किंतु जेलें पेरिस की कम्यून के अधिकार में थीं जो रोब्सपायर और उसके मित्रों के अधिकार में थी। परिणाम यह हुआ कि रोब्सपायर और उसके साथी छोड़ दिये गए और उन्हें नगर-भवन में ले आया गया। जब राष्ट्रीय सम्मेलन को पता लगा कि शत्रु छूट गया तो इसने एक विज्ञप्ति प्रसारित की, जिसमें रोब्सपायर को अपराधी घोषित कर दिया। २७ जुलाई, १७९४ को दोनों ओर से सशस्त्र तैयारियाँ होने लगीं। होटल-डे-विले, जहाँ रोब्सपायर और उसके साथी छिपे हुए थे, के स्थान को घेर लिया गया और थोड़े समय के पश्चात् सुरक्षा-पंक्ति टूट गई। जब रोब्सपायर पकड़ा गया तो उसका जबड़ा बुरी तरह घायल पाया गया। बहुत सम्भव है कि यह आघात उसने स्वयं ही कर लिया हो। वह मेज पर घायल अवस्था में पड़ा था। क्योंकि उसे अपराधी घोषित किया जा चुका था, इसलिए उस पर मुकदमा चलाने की आवश्यकता भी नहीं रही। अतएव २८ जुलाई, १७९४ को उसे ग्युलोटिनी के नीचे काट दिया गया।

यह बात उल्लेखनीय है कि यद्यपि रोब्सपायर आतंक-राज्य का निर्माता नहीं था तथापि वह इसका अत्यन्त क्रिया-शील विकास करने वाला था। उसने आतंक-राज्य को अपने स्वार्थ के लिए नहीं, अपितु अपने आदर्शों को कार्य-रूप में परिणत करने के उद्देश्य से अपनाया। उसकी सबसे बड़ी आकांक्षा सदाचार-राज्य स्थापित करना थी और ऐसा केवल आतंक-राज्य के माध्यम से ही हो सकता था।[1] अपने सम्पूर्ण श्रेष्ठ काल्पनिक राज्य की स्थापना के लिए वह रक्त-शक्ति-हीन रूसो की दार्शनिकता को कार्य में परिणत करने का प्रयास कर रहा था।

ग्रांट और टैम्परले के अनुसार, "रोब्सपायर निस्सन्देह पेरिस में अत्यन्त प्रसिद्ध व्यक्ति था, जिसके प्रशंसकों और भक्तों की बहुत बड़ी संख्या थी। उसके जीवन की असफलता और अत्यन्त दुःखद अन्त का कारण यह था कि उसने फ्रांस को पुनर्गठन और नवजीवन देने का प्रयत्न युद्ध और हिंसा के वातावरण में किया। यद्यपि उसकी असफलता अन्ततः होती ही, किन्तु तत्कालीन परिस्थितियों में उसका पतन शीघ्र और उसके लिए घातक सिद्ध हुआ। हमें अध्ययन से पता लगता है कि उसकी विजय कुछ ही क्षणों की थी और उनके बीतते ही उसका पतन हो गया। उसके गुणों के कारण हमें उसके अवगुणों की ओर से आँखें बन्द नहीं कर लेनी चाहिएँ। वह अत्यन्त डरपोक व्यक्ति था और डरपोक व्यक्तियों के स्वभावानुसार वह शीघ्र ही निर्दयतापूर्ण कार्यों को करने पर उतारू हो जाता था। वह घमण्डी था और मित्रों की सराहना के कारण उसका घमण्ड और भी बढ़ गया। इस सबसे हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि जिस काल में मानवता के अवतार और दार्शनिक रूसो का अनुगामी रोब्स-पायर फ्रांस में उन्नति के शिखर पर था, वही काल देश में आतंक-राज्य और अत्यन्त विध्वंस की चरम पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ था।"

क्रोपोटकिन के विचार में, "रोब्सपायर को बहुधा एक तानाशाह बताया गया है; कन्वेन्शन में उसके शत्रु उसे आततायी कहते थे और यह सच है कि जैसे-जैसे क्रान्ति का अन्त निकट आया, उसने इतना प्रभाव प्राप्त कर लिया कि उसे फ्रांस व आस-पास के क्षेत्रों में गणतन्त्र का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति माना जाने लगा।

"लेकिन उसे एक तानाशाह बताना गलत होगा, यद्यपि निस्सन्देह उसके बहुत से प्रशंसकों ने उसको ऐसा ही बनाने की इच्छा की। वास्तव में हमें ज्ञात है कि कैम्बों ने अपने विशेष क्षेत्राधिकार (कमेटी ऑफ़ फ़ाइनेन्स) के भीतर काफी सत्ता का प्रयोग किया, और कार्नो ने युद्ध सम्बन्धी विषयों में विस्तृत शक्तियाँ धारण कीं, जबकि रोब्सपायर व सेंट जस्ट के साथ उसका काफ़ी मनमुटाव था। लेकिन लोक-सुरक्षा की कमेटी को उसकी इस नियन्त्रणात्मक शक्ति से अति ईर्ष्या थी कि वह

---

१. रोब्सपायर के शब्दों में, "शान्तिकाल में शासन-यन्त्र का मुख्य स्रोत सदाचार होता है, क्रान्ति के समय यह स्रोत सदाचार और धमकी देना है। बिना सदाचार के भय दिखाना विनाशकारी है, और सदाचार बिना शक्ति के भय के नपुंसक है।"

तानाशाही का विरोध न करे, और, इसके अतिरिक्त, उसके कुछ सदस्यों को रोब्सपायर से भी घृणा थी। इसके अलावा, कन्वेन्शन में यदि कुछ ऐसे लोग भी थे जो वस्तुतः रोब्सपायर के चढ़ते हुए प्रभाव से घृणा नहीं करते थे, लेकिन वे इस बात से कभी भी प्रसन्न नहीं हो सकते थे कि, वह माण्टेगनार्ड की तानाशाही के अधीन आ जावें जो अपने सिद्धान्तों में इतना अधिक कड़ा था। इसके अलावा, रोब्सपायर की सत्ता भी अत्यधिक थी। लगभग उसका प्रत्येक प्रशंसक व शत्रु सोचता था कि राजनीतिक क्षेत्र में से निकल जाने पर उसका दल, और ऐसा ही वास्तव में हुआ, प्रतिक्रिया की विजय का मार्ग खोल देगा।

"फिर रोब्सपायर व उसके ग्रुप की सत्ता की कैसे व्याख्या की जाय? सर्व-प्रथम, रोब्सपायर ऐसे लोगों के बीच रहते हुए भी अभ्रष्ट रहा जो आसानी से शक्ति व धन की लालसा में फँस गए और यह क्रान्ति-काल का एक बड़ा महत्त्वपूर्ण लक्षण है। उसके इर्द-गिर्द रहने वालों की बहुसंख्या के मध्यवर्गी लोगों ने राष्ट्रीय सम्पत्ति की लूट-मार में हिस्सा लिया जबकि क्रान्ति के समय उसका विक्रय किया गया, और उन्होंने आढ़त व नौकरी की लूट-मार में हाथ मारा, और जबकि हज़ारों जैकोबवादियों ने उस सरकार के अधीन अपनी-अपनी नौकरियाँ पाईं, रोब्सपायर फिर भी एक न्यायी अधिकारी बना रहा, उन्हें गणतन्त्रवाद के उच्चतर सिद्धान्तों का स्मरण कराता रहा और लूट-मार मचाने वालों को हत्या की सज़ा देने की धमकी देता रहा।

"क्रान्ति के इन पाँच वर्षों में उसने जो कुछ भी किया और कहा, उसका हमें अब तक आभास होता है जबकि उसके समकालीनों पर उसका कहीं अधिक प्रभाव पड़ा होगा कि वह उस समय के कुछ ही राजनीतिज्ञों मे से था जो अपने क्रान्तिकारी विश्वास से कभी नहीं डगमगाया और न उसके लोकतन्त्र के प्रति प्रेम में कभी हल-चल आई। इस दृष्टि से रोब्सपायर एक वास्तविक शक्ति हुआ। यदि कम्युनिस्ट लोग अपनी दूसरी शक्ति का, जो उसकी अपनी इच्छा व बुद्धि की शक्ति के तुल्य थी, विरोध करने के योग्य हो सकते, तो वे अवश्य महान् क्रान्ति पर अपने विचारों की बड़ी छाप डालने में सफलता पा सकते।

"ये विशेषताएँ, जो रोब्सपायर के शत्रुओं तक ने उसमें स्वीकार की हैं, भी उस व्याख्या को पूरा करने में पर्याप्त नहीं जिनसे उसकी वह महान् सत्ता सिद्ध हो सके जो कि क्रान्ति के अन्त के समय उसके पास थी। तथ्य की बात यह है कि उसके कट्टरवाद ने, जो उसकी इच्छाओं की शुद्धता से उपजा, उस भ्रष्टाचार के संसार में भी उसे भ्रष्ट होने से रोका। इसी के साथ वह यह भी प्रयत्न कर रहा था कि मनुष्यों के मस्तिष्क पर उसका अधिकार हो सके और इसे प्राप्त करने के लिए वह, यदि आवश्यक हो तो, अपने विरोधियों के मृतक शरीरों के ऊपर तक से उतरने को तैयार था। अपनी सत्ता स्थापित करने के कार्य में उसे बढ़ते हुए मध्य-वर्गीय लोगों की बड़ी सहायता मिली। ज्योंही उन लोगों ने 'सुन्दर मध्यमार्ग' को पहचाना और देखा कि वह गरम दल व नरम दल दोनों से ही बराबर अलग है और

उसी ने उन्हें लोगों की ज्यादतियों के खिलाफ सुरक्षा की गारण्टी की।

"धनी वर्ग ने अनुभव किया कि वही ऐसा व्यक्ति था जिसने अपने लक्ष्यों के नरम विस्तार तथा सत्ता के प्रति अपने संकोच से, लोगों में अपने प्रति सम्मान भरा और वही ऐसा ठीक व्यक्ति था जो शक्तिशाली सरकार स्थापित कर सके और क्रान्तिकारी काल का अन्त कर सके। जब तक मध्य वर्गों को बढ़ती हुई पार्टियों से कोई भय रहा, तभी तक उन्होंने रोब्सपायर के ऐसे कार्यों में बाधा डालने से अपने को बचाया जिनका उद्देश्य लोक-कल्याण समिति की सत्ता और कन्वेन्शन में उसके ग्रुप का आधिपत्य स्थापित करना था। लेकिन जब रोब्सपायर ने उन्हें उन पार्टियों को कुचल डालने में सहायता दी, तो बदले में उन्होंने उसे कुचल डाला जिससे मध्यवर्गीय गिरोण्डिन्स को कन्वेन्शन में पुनः शक्ति मिल सके जिसके बाद थर्मीडोरियन (Thermidorean) प्रतिक्रिया अपने विकास की चरम सीमा पर पहुँच गई।" (The Great French Revolution, pp. 550-52)

थॉमसन के मतानुसार, "फ्रांस के महान् क्रांतिकारी व्यक्तियों में से, किसी प्रकार रोब्सपायर अत्यन्त स्मरणीय और क्रांति का प्रतिनिधि रहेगा। मिराबो से भी अधिक, जो इससे अच्छा वक्ता और अधिक कुशल शासक था; लफाइट से भी अधिक, जिसकी प्रतिष्ठा उसकी शासन-दक्षता से भी अधिक थी; जो डैण्टन से कहीं अधिक आकर्षक व्यक्तित्व वाला तथा आक्रमण और प्रतिक्रिया का विरोध करने में राष्ट्र के लिए प्रेरणा का स्रोत था। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि फ्रांसीसी क्रांति जैसी क्रांतिकारी और वीरतापूर्ण घटना इस क्षीणकाय, चश्मा पहनने वाले एक प्रादेशिक वकील के रूखे व्यक्तित्व में समा जाये। कहीं ऐसा तो नहीं कि क्रांति में सफल होने वाली सामाजिक और सैद्धान्तिक प्रेरणाओं का यह व्यक्ति प्रतिनिधि रहा हो! सामाजिक दृष्टिकोण से यह प्रदेशों में काम करने वाले वकीलों जैसा था, जिनका क्रान्ति से पूर्व की विधान-सभाओं में बहुमत होता था, जो साधारणतः उग्र दलबन्दी करने वाले, कटु आलोचक तथा जिनके भाषण उस समय की अनुभव-हीन विधानसभाओं में धाराप्रवाह सिद्धान्तों से लदे होते थे। वह एक गरीब परिवार का था जिसे क्रांति की उथल-पुथल ने महान् बना दिया। सिद्धांत और कार्य में वह आधुनिक इतिहास में जैकोबिनों की राजनीतिक विचारधारा का पूर्ण समर्थक था जो नियमों से, पूर्ण सिद्धांतवाद, जनता की सर्वाधिकार सम्पन्नता के सिद्धांत, स्वतन्त्रता, एकता और मानव की मित्रता, तथा एक और अविभाज्य प्रजातंत्र के प्रतिपादक थे। रोब्सपायर ने अपने जीवन और कार्यों को जैकोबिनों की क्रांतिकारी भावनाओं से इतना ओत-प्रोत कर डाला कि यह विचारधारा मानो उसके व्यक्तित्व में पूर्ण रूप से मूर्त हुई।" (Europe Since Napoleon, p. 18)

ग्रांट तथा टैम्परले के मत में, "रोब्सपायर निस्संदेह पेरिस में एक अत्यधिक लोकप्रिय व्यक्ति था जिसे अपने सच्चे मित्रों और प्रशंसकों की विशाल संख्या की सहायता प्राप्त थी। यह उसके जीवन की दुर्घटना और उसकी असफलता का कारण था कि जो प्रयत्न उसने फ्रांस के पुर्ननिमाण व पुनर्जन्म के लिए किए उन्हें युद्ध व

हिंसा के वातावरण में बनाना पड़ा। किसी भी दशा में उनकी असफलता निश्चित थी; उन परिस्थितियों में यह शीघ्र थी, लगभग तत्कालीन भी और उसके अपने लिए घातक भी। जैसा कि हम देखेंगे, उसे विजय का बहुत थोड़ा-सा समय मिला और तुरन्त बाद उसका पतन हो गया। उसके गुणों को देखकर उसके दोषों से मुख नहीं मोड़ना चाहिए। वह अनिवार्यतः एक डरपोक व्यक्ति था और बहुत से अन्य डरपोक व्यक्तियों की भाँति सुगमता से निर्दयता के प्रयत्न करने को लालायित हो जाता था। वह घमण्डी था और उसके घमण्ड को उसके मित्रों की प्रशंसा अधिक बढ़ावा देती थी। अतः यह ज्ञात होता है कि जिस काल में मानव जाति के इस पैगम्बर और रूसो के शिष्य ने फ्रांस पर आधिपत्य रखा, वह ऐसा भी समय है जबकि आतंक का युग अपने सबसे बुरे और सबसे अधिक विनाशकारी चोटी पर पहुँच चुका था।"

सेण्ट जस्ट (St. Just)—सेण्ट जस्ट रोब्सपायर का मित्र और सहकारी था तथा उसे उसके साथ एक ही दिन मृत्यु-दण्ड दिया गया। उसने आतंक-राज्य के काल में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग लिया। यदि कार्नोट को 'विजय-प्रबन्धक' कहा जा सकता है तो सेण्ट जस्ट का भी योग-दान किसी से कम नहीं था। उसने ही फ्रांस की जनता में स्वतन्त्रता, समानता और मित्रता के लिए कट्टर भावना भर कर उसके लिए जीवन उत्सर्ग करने के लिए प्रेरणा दी। वह निरन्तर पेरिस से युद्ध के मोर्चों पर जाता और सेनाओं को मातृ-भूमि की रक्षा के लिए वीरता से युद्ध करने के लिए उत्साहित करता। उसने देश-भक्तों को प्रोत्साहित और देशद्रोहियों तथा कायरों को भयभीत किया। फ्रांस को 'सशस्त्र राष्ट्र' में परिणत करने का बहुत-सा श्रेय सेण्ट जस्ट को ही दिया जाता है।

कार्नोट (Carnot) (१७५३-१८२३)—राष्ट्रीय सम्मेलन के काल में कार्नोट फ्रांस के सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों में से था। इस व्यक्ति के दृढ़संकल्प-पूर्ण नेतृत्व में ही राष्ट्रीय सम्मेलन ने संसार के इतिहास में सबसे अनोखी सैन्यवाद की प्रणाली का सूत्रपात किया। फरवरी, १७९३ में ५ लाख जवानों की आवश्यक लामबन्दी की आज्ञा निकाली। अगस्त, १७९३ में १० और २५ वर्ष के सारे फ्रांसीसी नागरिकों के लिए अनिवार्य सैन्य सेवा की आज्ञा हुई। कार्नोट ने इन दोनों आज्ञाओं को कार्यरूप करने के लिए दिन-रात अनथक परिश्रम किया। उसके परिश्रम के परिणामस्वरूप १७९३ के अन्त तक ७,७०,००० व्यक्ति सशस्त्र सेना में थे। इन सैनिकों में अधिकांश अपने ध्येय के प्रति कट्टर भक्ति रखते थे और देश के लिए जान देने के लिए तैयार थे। मध्यवर्गीय बुर्जुआ लोगों ने भी उसके सैनिक अभियान का समर्थन किया। कारीगर और किसान बहुत बड़ी संख्या में सेना में भरती हुए और स्वतन्त्रता, समानता और मित्रता के ध्वज फहराते और क्रान्तिगान गाते हुए मोर्चों पर जा डटे।

कार्नोट ने सेना में बहुत से सुधार किये। उसने सेना में 'डिवीज़न' (Division) को सेना की इकाई माना। उसने रसद पहुँचाने की व्यवस्था को सुधारा और इस प्रकार अपनी सेनाओं को शत्रु की सेनाओं से अधिक शीघ्रगामी बनाया। उसने

सरकारी पदाधिकारियों को सेनापतियों और सैनिकों की गतिविधि पर निगरानी रखने के लिए मोर्चों पर 'विशेषाधिकारी' (Deputies on Mission) बना कर भेजा। किसी भी व्यक्ति के ऊपर अभियोग होने की स्थिति में उसे बिना सफाई के मृत्यु-दण्ड दे दिया जाता था।

कार्नोट का 'सैन्यवाद' (Militarism), 'सशस्त्र राष्ट्र' के क्रान्तिकारी सिद्धान्त पर आधारित था। सैनिक केवल वेतन-भोगी (Mercenaries) नहीं, अपितु अपने लक्ष्य के सेवक (Missionaries) बन कर लड़ते थे। इस प्रकार की भावना के उदय होने पर इसमें क्या आश्चर्य है कि आक्रमणकारियों को फ्रांस की धरती से भगा दिया गया और युद्ध फ्रांस से हटकर नीदरलैंड्स, र्‌हायन के किनारे, सेवाय में और पेरीनीज़ के पार पहुँच गया। कार्नोट अपने कार्य में इतना सफल हुआ कि उसकी प्रसिद्ध उपाधि 'सुरक्षा का प्रबन्धक' से 'विजय का प्रबन्धक' बन गई।

Suggested Readings

Beesly : *Life of Danton.*
Belloc, H. : *Life of Robespierre.*
Belloc, H. : *Danton: A Study.*
Bradly, E. D. : *A Short History of the French Revolution.*
Carlyle, Thomas : *The French Revolution.*
Chevallier, J.J. : *Mirabeau, 1947.*
Madelin, L. : *Danton.*
Mme. Roland : *Memoirs.*
Stern, A. : *Mirabeau.*
Thompson, J.M. : *Leaders of the French Revolution, 1932.*
Thompson, J.M. : *Robespierre, 1935.*
Welch, O.J.G. : *Mirabeau, 1951.*

अध्याय ७

संचालक-पंचायत (१७९५-९९)

(The Directory, 1795-99)

राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा वनाये गये १७९५ के संविधान के अनुसार देश के प्रवन्ध की सत्ता 'संचालक-पंचायत' (Directory) के हाथों में निहित कर दी गई, जिसके पाँच सदस्य थे। संचालक-पंचायत ने चार वर्ष (१७९५-९९) तक देश का कार्यभार सँभाला, किन्तु सेनापति नेपोलियन ने इसे भंग कर दिया। पंच लोग मध्य श्रेणी के लोग थे और वे घूँसखोरी और भ्रष्टाचार करने से संकोच नहीं करते थे। वे लोग समय की माँग के अनुसार न तो अपने आप को ही ऊँचा उठा सके और न ही उस समय देश की जटिल समस्याओं को सुलझा सके।

संचालक-पंचायत के प्रथम संचालक, कार्नोट (Carnot) विजय का प्रवन्धक, लेटरनियर (Letourneur) एक इंजीनियर, लारेविलेरी (Larevellier) एक गिराण्डिस्ट, र्‌युवैल (Rewbell) एक जैकोविन और वार्रास (Barras) थे। वार्रास दक्षिण का रहने वाला था। १७८९ में उसे संसद् के तीसरे विभाग का सदस्य चुना गया था। कालान्तर में वह एक अच्छा जैकोविन वन गया। इसने साहस करके रोव्सपायर का विरोध किया। १७९५ में इसने नेपोलियन वोनापार्ट को नियुक्त करके राष्ट्रीय सम्मेलन की रक्षा की। परिणामतः उसे संचालक वना दिया गया। वह एक चतुर राजनीतिज्ञ, सनकी, नितान्त आचारहीन और पदलोलुप तथा सर्वदा ऋण में डूवा रहने वाला व्यक्ति था। उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली तथा सुसभ्य था। वह पेरिस के विलासी समाज का अग्रणी था।

षड्यन्त्र और कूटनीति (Plots and Intrigues)—संचालक-पंचायत का काल देश में षड्यन्त्रों और कूटनीति का काल है। राजशाही के समर्थक और प्रतिक्रियावादी लोग वहुत वड़ी संख्या में संसद् के लिए चुने गए और ये लोग सरकार को असफल वनाने के लिए तोड़-फोड़ करने में तनिक भी संकोच नहीं करते थे। सरकार केवल शक्ति-प्रयोग के द्वारा ही उन्हें नियन्त्रण में रखती थी।

१७९६ के वेवुफ षड्यन्त्र का उल्लेख इस प्रकार है कि अक्तूबर, १७९५ में पेन्थियन सोसायटी (Society of the Pantheon) के नाम से एक राजनीतिक क्लव की स्थापना हुई। इसमें पुराने जैकोविन क्लव से वहुत से सदस्य आ गये और इसकी वैठकें मशालों की रोशनी में हुआ करती थीं। यह एक 'ट्रिव्यून' (Tribun) नाम की पत्रिका भी निकाला करते थे और इसका सम्पादन वेवुफ नाम का कट्टर विचारों का

आन्दोलनकर्ता करता था। संचालक-पंचायत ने फरवरी, १७९६ में इस सभा के विरुद्ध कार्रवाई की और सेनापति बोनापार्ट ने स्वयं इसके सम्मेलन-स्थान को बन्द करके सभा को भंग कर दिया। किन्तु सदस्यों ने इसका बदला ६ सदस्यों की एक गुप्त संचालन समिति की स्थापना करके विद्रोह की तैयारियाँ करके दिया। इसका ध्येय १७९३ में जैकोबिन दल द्वारा बनाये गए संविधान को, जिसे स्वीकार करके भी लागू नहीं किया गया था, देश पर लागू करना था। उसका उद्देश्य क्रान्ति-आन्दोलन को पूर्वकालीन सिद्धान्तवाद और स्वच्छता तथा लक्ष्य के प्रति लगन के आधार पर पुनर्जीवित करना था। उनका ध्येय देश में 'समान-अधिकार गणतन्त्र' (Republic of Equals) की स्थापना करना था। इसका दूसरा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य गरीब और अमीर का भेद-भाव समाप्त कर देना था। इनका प्रोग्राम अपने सदस्यों को सेना, पुलिस और शासन-यन्त्र में घुसेड़ कर प्रचार करना था। अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे किये गये। यह निर्णय हुआ कि पेरिस के जिलों के नागरिक सेना के विद्रोहियों का समर्थन करने के लिए ध्वज के पीछे चलें। सत्ता को हस्तगत करने के पश्चात् गुप्त संचालन समिति देश की बागडोर उस समय तक सँभाले रहे जब तक देश में पूर्ण वैधानिक सरकार की स्थापना न हो जाय। किन्तु इस आन्दोलन में पुलिस के गुप्तचर आरम्भ से ही कार्य कर रहे थे। परिणामतः विद्रोह होने के ठीक पहले ही नेताओं को पकड़ लिया गया और लोगों को शक्ति-प्रयोग द्वारा भगा दिया गया। १७९७ में विद्रोहियों पर एक विशेष न्यायालय में मुकदमा चलाया गया। मुकदमा तीन महीने तक चला और इस अवसर पर बेबुफ ने संचालक-पंचायत के शासन की बड़े कठोर शब्दों में घोर निन्दा की। बेबुफ को मृत्यु-दण्ड दिया गया किन्तु ध्येय की लगन के कारण लोगों ने उसकी प्रशंसा की। यह ध्यान देने योग्य बात है कि आधुनिक साम्यवाद बेबुफ के सिद्धान्तों का अनेक बातों में ऋणी है।

फ्रांस की आर्थिक स्थिति (Finances of France)—संचालक-पंचायत के शासन-काल में देश की आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी। चारों ओर आचारहीनता फैली हुई थी। देश के व्यय में घोर अपव्यय होता था। दस लाख सैनिकों की सेना की पूर्ति के लिए महान् धनराशि की आवश्यकता थी। पेरिस की जनता को देश के खर्चे पर रोटी दी जाती थी। राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा प्रचलित नोटों की स्थिति पहले ही असंतोषजनक थी। मुद्राप्रसार (Inflation) की नीति के कारण परिस्थिति और भी खराब हो गई। इतनी अधिक संख्या में नोट छापे गए कि इनका मूल्य गिर गया और हालत इतनी खराब हो गई कि ३०० लिवर के नोटों के बदले केवल एक सिक्का लिवर मिलता था। १७९७ में सरकार को आंशिक रूप से दिवालियापन घोषित करना पड़ा। राष्ट्रीय ऋणों पर सूद देना रोक दिया गया और अन्ततः नोटों को पूर्णतः अवैध घोषित करना पड़ा। स्पष्ट है कि ऐसी परिस्थिति में सरकार को और ऋण मिलना असम्भव था, इसलिए संचालक-पंचायत द्वारा देश की आर्थिक अवस्था सँभालने में असमर्थ रहने के कारण जनता को घोर कष्ट सहना पड़ा और पंचायत की बड़ी निन्दा हुई।

संचालकों और संसद् के दोनों भवनों में परस्पर मेल नहीं था। सभाओं के एक-तिहाई और पंचों में से एक पंच प्रत्येक वर्ष अवकाश प्राप्त करते थे। संचालक-पंचायत की न तो विधान-सभाओं से और न मतदाताओं से कोई सहानुभूति थी।

धर्म की परिस्थिति भी विचारणीय थी। क्रान्तिकाल में स्थापित हुए वैधानिक चर्च पूर्णतः लुप्त हो चुके थे। 'थियोफिलेन्थ्रोपी' नाम की एक नई धार्मिक विचारधारा थी किन्तु इसके भी बहुत अनुयायी नहीं थे। लोग अब भी बड़ी श्रद्धा से रोमन कैथोलिक धर्म में आस्था रखते थे।

तीन लाख से अधिक लोग देश छोड़ कर भाग गये थे। उनकी सम्पत्ति ज़ब्त कर ली गई थी। बहुत से लोगों को भगोड़ा घोषित किया गया, ताकि उनकी सम्पत्ति जब्त की जा सके। क्या आश्चर्य है कि उनके सम्बन्धियों ने इस प्रकार के अन्यायपूर्ण कार्यों के विरुद्ध आवाज उठाकर अशान्ति को उत्पन्न किया हो।

मार्च, १७९७ में विधान-सभाओं के एक-तिहाई सदस्यों के रिक्त स्थानों को भरने के लिए चुनाव हुए। चुनाव के परिणामों से उदार और जैकोबिन दल के विरोधियों की जीत स्पष्ट हो गई। संचालक झुकने को तैयार नहीं थे। उन्होंने हुचे (Hoche) से हस्तक्षेप करने की अपील की, किन्तु उसने ऐसा करने से मना कर दिया। उन्होंने नेपोलियन से कहा। उसने अपने अधिकारी ऑगरयू (Augereau) को आदेश-पूर्ति के लिए भेजा। शक्ति-प्रदर्शन भी काफी हुआ और कार्नोट को संचालक-पंचायत से हटा दिया गया। अनेक सदस्यों को कैद कर लिया गया। उसके पश्चात् १५४ सदस्यों के चुनाव को रद्द कर दिया गया।

विदेश-नीति (Foreign Policy)—जिस समय संचालक-पंचायत ने कार्य-भार सँभाला, उस समय भी फ्रांस आस्ट्रिया, सारडीनिया और ब्रिटेन के साथ युद्ध करने में संलग्न था। युद्ध की मूल योजना यह थी कि फ्रांस की एक सेना र्‌हायन नदी के पार जर्मनी में से होती हुई आस्ट्रिया पहुँचे और दूसरी सेना आल्प्स पर्वत को पार करके उत्तरी इटली से होती हुई विआना पहुँचे। र्‌हायन नदी वाली सेना मोरो, जुआन्र्डन और पिचुगेरस जैसे महान् सेनानियों के नेतृत्व में थी। नेपोलियन को इटली की ओर जाने वाली सेना का नियन्त्रण सौंपा गया। र्‌हायन नदी की ओर भेजी गई सेना ने कुछ विशेष कार्य नहीं किया, किन्तु नेपोलियन ने आश्चर्यजनक सफलताएँ प्राप्त कीं। नेपोलियन ने विद्युत्गति से व्यक्तिगत वीरता द्वारा आल्प्स को पार किया। एक वर्ष में ही उसने पाँच आस्ट्रियन सेनाओं को परास्त करके उत्तरी इटली के सारे दुर्गों पर अधिकार कर लिया। सारडीनिया वाले परास्त हुए और उन्हें नाईस और सेवाय फ्रांस को देने पड़े। १७९७ में 'कैम्पो फोर्मियो' की सन्धि करके आस्ट्रिया ने नेपोलियन से सन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार फ्रांस को आस्ट्रिया से आस्ट्रियन नीदरलैण्ड्ज़ अर्थात् बेल्जियम और इयोनियन द्वीपसमूह प्राप्त हुआ। आस्ट्रिया को वेनिस का गणतन्त्र सौंप दिया गया और उसने यह स्वीकार किया कि वह इटली के अन्य प्रदेशों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। यह समझौता हुआ कि जिन जर्मन सामन्तों के र्‌हायन नदी के बायें तट के प्रदेश फ्रांस ने छीन लिये हैं उनकी क्षति-

पूर्ति करने के उद्देश्य से पवित्र रोमन साम्राज्य के मानचित्र को पुनर्गठित किया जाए और इसके लिए एक सम्मेलन किया जाये। नेपोलियन की इटली पर विजय का तुरन्त परिणाम यह हुआ कि फ्रांस के विरुद्ध प्रथम संगठन टूट गया। आस्ट्रिया और सारडीनिया दोनों ने संगठन छोड़ दिया और ग्रेट ब्रिटेन अकेला रह गया। दूसरा परिणाम यह हुआ कि नेपोलियन को बड़ी शीघ्रता से प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। वह फ्रांस की जनता की चर्चा का विषय वन गया और जब कि जनता उसकी प्रशंसा करती थी सरकार ऊपर से उसकी खुशामद करती, किन्तु आन्तरिक रूप से वह उससे भयभीत हो गई थी।

संचालक-पंचायत द्वारा देशवासियों के प्रति एक घोषणा प्रसारित हुई जिसमें डींग मारी गई कि "आप लोगों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि लाखों मनुष्यों को स्वतन्त्र कर दिया गया है और फ्रांस राष्ट्र मानवता का उपकार करने वाला है। यूरोप महाद्वीप में अटल आधार पर शान्ति की स्थापना होगी। अब हमें केवल लन्दन के विश्वासघातकों को ही दण्ड देना वाकी रह गया है। वहाँ यूरोप भर के सारे अनाचार पनप रहे हैं और इन्हें समाप्त करना ही होगा।"

१७९७ में नेपोलियन को इंग्लैण्ड पर आक्रमण करने के लिए बनाई गई 'इंगलैण्ड की सेना' (Army of England) का सेनापति नियुक्त किया गया। १७९८ के आरम्भ में उसने फ्रांस के तट का निरीक्षण किया और इस निर्णय पर पहुँचा कि फ्रांस और इंग्लैण्ड की बीच की समुद्री गली को उस समय तक पार करना असम्भव है जब तक फ्रांस के पास शक्तिशाली समुद्री बेड़ा नहीं होगा। किन्तु उसने ब्रिटिश साम्राज्य पर अन्य दिशा से आक्रमण करने का निश्चय किया। उसने अन्धमहासागर (Mediterranean Sea) को अपने सम्मुख खुला पाया और परिणामतः १७९८ में वह फ्रांस की एक सेना को मिस्र (Egypt) ले गया। उसका ध्येय ब्रिटेन के समुद्री वेड़े का ध्यान अन्धमहासागर की ओर आकृष्ट करके सुअवसर पाकर इंग्लिश खाड़ी को पार करके इंग्लैण्ड पर आक्रमण करना था। उसे मिस्र से भारतवर्ष जाकर वहाँ मराठों और सुलतान टीपू की सहायता से भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का अन्त कर देने की भी आशा थी। वहाँ से उसे ओरोमान साम्राज्य पर आक्रमण करके उसे समाप्त कर देने की भी सम्भावना प्रतीत हुई। नेपोलियन के दुर्भाग्य से उसकी सारी योजनाएँ रखी रह गईं। १७९८ में समुद्री सेनापति नेलसन ने उसका मिस्र तक पीछा किया और नील नदी के युद्ध में उसे परास्त किया। मिस्र की प्रजा ने भी उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उसकी सेना थोड़ी थी और वह अकेला रह गया। नेपोलियन किसी प्रकार मिस्र से भागकर फ्रांस पहुँचा। समुद्र-तट पर जहाँ वह उतरा, वहाँ से लेकर पेरिस तक जनता ने उसकी खूब सराहना की। जनता ने नेपोलियन की सफलताओं की संचालक-पंचायत की सफलताओं से तुलना की और पंचायत की घोर निन्दा की।

संचालक-पंचायत का अपदस्थ होना (Overthrow of the Directory)—पेरिस आने के पश्चात् नेपोलियन एक नम्र अध्ययनशील नागरिक बन गया। एक

बार उसने 'मिस्र-पुरातत्त्व अध्ययन संस्था' (Egyptian Archaeological Institute) के सम्मुख एक अनुसंधान-लेख पढ़ा। वह साधारण नागरिकों की भाँति पेरिस की गलियों में घूमा करता था। इस प्रकार के व्यवहार से उसका लक्ष्य स्वयं को साम्राज्यों के दाँव पर खेलने वाले व्यक्ति के रूप में नहीं, अपितु एक जिज्ञासु तथा शांति-व्यवस्था के प्रचारक के रूप में अपना प्रचार करना था। कई सप्ताह तक नेपोलियन ने देश में, विशेषतः पेरिस में, प्रचलित राजनीतिक प्रवाहों का गहन अध्ययन करके ही सन्तोष किया। अध्ययन करते समय वह किसी दल में नहीं मिला।

बहुत सोच-विचार करने के पश्चात् उसने पंचायत को उलटने के लिए ऐब्बे साईयस के साथ षड्यन्त्र रचा। ये दोनों षड्यन्त्रकारी विचारों में एक-दूसरे से पूर्णतः भिन्न थे। नेपोलियन बोनापार्ट मूलतः क्रियाशील तथा तलवार के शासन में विश्वास रखने वाला व्यक्ति था। किन्तु ऐब्बे साईयस सत्ता को सन्तुलित रखने में विश्वास करने वाला दार्शनिक था। किन्तु संचालक-पंचायत को उखाड़ने के ध्येय में दोनों सहमत थे। यह कार्य निश्चित रूप से अत्यन्त कठिन कार्य था; क्योंकि गणतन्त्रवाद देश में एक महान् राजनीतिक शक्ति थी। जुआरडन (Jourdan) और मोरेयु (Moreau) जैसे सेनानायकों तथा पाँच में से दो संचालकों की विचारधारा यही थी। विधानमण्डल के सदस्यों की बहुत बड़ी संख्या भी गणतंत्रवाद की समर्थक थी। गणतंत्र शासन-प्रणाली को हटाने के उद्देश्य से होने वाली किसी भी क्रान्ति के सफल होने की बहुत कम आशा थी। यह सत्य है कि अगम्य कठिनाइयाँ थीं, किन्तु नेपोलियन अपनी योजना को पूर्ण करने के लिए कटिबद्ध था। ९ और १० नवम्बर, १७९९ को यह योजना पूरी की गई। पूर्वज सभा (Council of Ancients) ने ९ नवम्बर को एक आज्ञप्ति प्रसारित की कि षड्यन्त्र के कारण विधान-मण्डल सेण्ट-क्लाउड ले जाया जाय। नेपोलियन एक शानदार घुड़सवार सेना का संचालन करता हुआ टुलरियस पहुँचा और वहाँ गणतंत्र की रक्षा की शपथ ग्रहण की। उसके बाद उसने संचालक-पंचायत के सचिव से कहा, "जिस फ्रांस को मैंने इतना चमकता हुआ छोड़ा था, उसको तुमने क्या कर डाला ? मैंने तुम्हारे लिए शान्ति की स्थापना की किन्तु मुझे युद्ध मिला। मैंने तुम्हें विजयी छोड़ा था किन्तु अब मुझे पराजय मिल रही है। मैंने तुम्हारे लिए इटली से आई हुई अपार धनराशि छोड़ी थी, किन्तु मुझे अब घाटा और निर्धनता प्राप्त हुई।" नेपोयलिन के ये शब्द देश के कोने-कोने में गूँजने लगे।

१० नवम्बर को सेण्ट क्लाउड के महल में संसद् का अधिवेशन हुआ। उन्होंने अपने को क्रोधित सेना से घिरा हुआ पाया। जब नेपोलियन प्रथम सदन में घुसा तो उसके विरुद्ध क्रोध का ज्वार उमड़ रहा था और उसे सदन से बेहोशी की हालत में बाहर ले जाया गया। ल्युसीन, जो उस समय प्रथम सदन की अध्यक्षता कर रहा था, उसके कारण नेपोलियन की जान बच गई। सैनिकों ने सदन को घेर लिया और सदस्य भाग निकले। संसद् के दोनों सदनों ने एक आज्ञप्ति द्वारा बोनापार्ट,

साईयस और ड्यूकोस की सदस्यता में एक छोटी-सी समिति द्वारा अस्थायी सरकार बना दी। एक महीने पश्चात् जो नया संविधान बनाया गया, उसमें देश की सर्वोच्च सत्ता प्रथम सलाहकार (First Consul) के रूप में वोनापार्ट को सौंप दी गई। नेपोलियन ने धोखे और हिंसा द्वारा संचालक-पंचायत को उलट दिया। उसके शब्दों में, "यह मेरे जीवन का वह युग है, जिसमें मैंने असम्भव योग्यता प्रदर्शित की है।"

थॉमसन के अनुसार, "यह षड्यन्त्र इसलिए सफल हुआ क्योंकि विधानमंडल और संचालक-पंचायत जनता का आदर और विश्वास खो चुके थे और सारी जनता ने पेरिस-सहित, बिना विरोध के, जो तथ्य वास्तविक रूप से सम्पन्न हो चुका था, उसे स्वीकार कर लिया।" (Europe Since Napoleon, p. 28)

Suggested Readings

Thomson, D. : *The Babeuf Plot : The Making of a Republican Legend. 1947.*

Thomson : *Europe Since Napoleon.*

अध्याय ८

राष्ट्रों के संगठन

(The Coalitions)

आरम्भ में यद्यपि ब्रिटिश सरकार और इंग्लैण्ड की जनता दोनों फ्रांसीसी क्रान्ति के प्रति सहानुभूति रखते थे, किन्तु क्रान्तिकारियों के अत्याचारों के कारण उनके इस रुख में बड़ा तीव्र परिवर्तन आया। यह परिवर्तन लुई सोलहवें और सम्राज्ञी मेरी एन्टोइनटे की हत्या करने के पश्चात् तो और भी अधिक हो गया। ग्रेट ब्रिटेन ने फ्रांस को परास्त करने के लिए चार संगठन बनाने का प्रयत्न किया और कुछ समय पश्चात् यह प्रयास सफल भी हुआ।

प्रथम संगठन (The First Coalition) (१७९३-९७)—ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री छोटे पिट की फ्रांस के प्रति निष्पक्षता की नीति की असफलता से प्रथम संगठन का जन्म हुआ। जब फ्रांस ने इंग्लैण्ड से युद्ध की घोषणा की, तो पिट ने प्रशिया, आस्ट्रिया, रूस, स्पेन, हालैण्ड और सारडीनिया से परस्पर सहयोग देने की सन्धि कर ली। पिट का उद्देश्य यूरोप भर में प्रचलित शासन-प्रणाली को चुनौती देने वाले सब शत्रुओं विरुद्ध सारे यूरोप को संगठित करना था। उसकी योजना थी कि मित्रराष्ट्रों को खूब सहायता देकर यूरोप महाद्वीप को युद्ध की टक्कर लेने योग्य बना दिया जाय जिससे कि इंग्लैण्ड का समुद्री बेड़ा समुद्रों पर अजेय बना रहे और फ्रांस के उपनिवेशों को जीता जा सके। आरम्भ में ही मित्र-राष्ट्रों ने यह निर्णय कर लिया था कि वे अपनी क्षति-पूर्ति फ्रांस से कर लेंगे। यह युद्ध आत्म-रक्षा का युद्ध होने के साथ, उपनिवेशवाद और लूटमार का युद्ध भी था।

आरम्भ में मित्रराष्ट्र सारे मोर्चों पर विजयी हुए और फ्रांस की बुरी तरह हार हुई। १७९३ में सैनिक दृष्टिकोण से फ्रांस की अवस्था बड़ी निराशाजनक थी। फ्रांस को चारों ओर से भय हो गया और देश के अनेक भागों में विद्रोह होने लगे।

इस आपत्ति से निपटने के लिए फ्रांस को अत्यन्त दृढ़ता से काम करना पड़ा। जनसुरक्षा-समिति की स्थापना की गई और उसे असीम अधिकार दिये गए। देश में एक प्रकार का आतंक-राज्य स्थापित हुआ। यह सत्य है कि कहीं-कहीं देश में व्यर्थ का रक्तपात भी हुआ, किन्तु आतंक-राज्य का सही परिणाम यह हुआ कि देश में विद्रोह को कुचल दिया गया। कार्नट, डेण्ट और सेण्ट जस्ट के नेतृत्व में समूचा फ्रांस राष्ट्र शस्त्र लेकर उठ खड़ा हुआ और इतनी भयंकरता, कट्टरपन तथा लगन से युद्ध हुआ कि मित्रराष्ट्रों को मार भगाया गया। फ्रांस ने बेल्जियम और हालैण्ड को विजय कर लिया। १७९५ की बेसील की सन्धि के अनुसार प्रशिया और स्पेन संगठन

छोड़ गये। प्रतीत होता है कि यूरोप के राष्ट्र इस युद्ध में भाग लेने की अपेक्षा पोलैण्ड के बँटवारे में अधिक दिलचस्पी रखते थे। इस प्रकार की परिस्थिति में संचालक-पंचायत के शासन-काल में नेपोलियन को इटली भेजा गया। उसने आल्पस को पार करके अनेक टक्करों में आस्ट्रिया के पैर उखाड़ दिये। उसने सारडीनिया के सम्राट् को 'मित्र-संगठन' छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया तथा नेपल्स और पोप के अन्य राज्यों को सिर झुकाने के लिए बाध्य कर दिया। नेपोलियन की सफलता के दो परिणाम हुए : प्रथम, स्पेन ने फ्रांस के साथ आक्रमण और सुरक्षा दोनों में साथ देने की सन्धि कर ली; दूसरे, स्पेन का समुद्री बेड़ा फ्रांस के हाथ आ गया। परिणामतः इंग्लैण्ड को अन्ध महासागर को खाली करना पड़ा और वहाँ फ्रांस का प्रभाव स्थापित हो गया। पिट ने कई बार शान्ति का प्रस्ताव किया किन्तु संचालक समिति ने उसे ठुकरा दिया। १७९७ का वर्ष इंग्लैंड के लिए बड़ा कष्टमय था। तीन समुद्री बेड़े आक्रमण की धमकी दे रहे थे और आस्ट्रिया इस संघर्ष से निकल भागने की कोशिश में था। इंग्लैण्ड अकेला रह गया, इससे देश में बड़ा असन्तोष और बेचैनी फैली। किन्तु इंग्लैंड की दो समुद्री युद्धों में विजय से कुछ परिस्थिति सँभली। केप सेण्ट विनिसेण्ट के युद्ध में स्पेन का बेड़ा परास्त हुआ। कॉम्पर-डाउन पर डच बेड़ा परास्त हुआ।

नेपोलियन से कई युद्धों में हार खाने से आस्ट्रिया में वियना को भय हुआ, इस कारण उसने १७९७ में कैम्पो फोर्मीयो की सन्धि पर हस्ताक्षर किये। इस सन्धि के अनुसार आस्ट्रिया ने फ्रांस को आस्ट्रियन-नीदरलैंड्ज़ (बेल्जियम) दे दिया। उसने राइन के बाएँ तट पर भी फ्रांस का प्रभुत्व स्वीकार किया। उत्तरी इटली में आस्ट्रिया के प्रदेशों को फ्रांस के संरक्षण में एक 'सिस-अल्पाइन गणतन्त्र' बना दिया गया। लगभग इन्हीं दिनों पुर्तगाल ने भी फ्रांस से सन्धि कर ली और इस प्रकार प्रथम मित्रराष्ट्रीय संगठन समाप्त हो गया। यूरोप महाद्वीप में फ्रांस के शत्रु समाप्त हुए और इंग्लैण्ड का कोई साथी नहीं रहा। इंग्लैण्ड को फ्रांस से युद्ध करने के लिए अकेला छोड़ दिया गया और दूसरी ओर संचालक-पंचायत ने इंग्लैण्ड पर आक्रमण की तैयारियाँ आरम्भ कर दीं। नेपोलियन को इस आक्रमण का सेनानायक नियुक्त किया गया, किन्तु १७९८ के आरम्भ में वह इस निर्णय पर पहुँचा कि बिना इंग्लिश खाड़ी को पार किये आक्रमण करना असम्भव है। इंग्लैण्ड पर आक्रमण करने की योजना रद्द कर दी गई, किन्तु यह निर्णय हुआ कि ब्रिटिश साम्राज्य पर अन्य स्थानों से आक्रमण किया जाए और इस विचार को लेकर नेपोलियन १७९८ में मिस्र गया।

प्रथम संगठन की असफलता के कारण (Causes of failure of First Coalition)—यह प्रश्न उठता है कि प्रथम संगठन की असफलता के लिए कौन सी परिस्थितियाँ उत्तरदायी थीं? बड़ा आश्चर्य होता है कि दिवालिया तथा आन्तरिक फूट से बिखरा हुआ फ्रांस समूचे यूरोप के आधे से अधिक शक्तिशाली राष्ट्रों को परास्त करने में सफल हुआ। यह एक ऐतिहासिक चमत्कार है। किन्तु संगठन की असफलता के कारण स्पष्ट हैं। संगठित राष्ट्रों में तालमेल नहीं था। उनमें परस्पर मतभेद थे और प्रत्येक राष्ट्र अपनी मनमानी करता था। उनके निजी ध्येय भी भिन्न-

भिन्न थे। इंग्लैण्ड का लक्ष्य फ्रांस को नीदरलैण्ड्ज़ से निकाल कर उस प्रदेश को आस्ट्रिया को देना था। किन्तु आस्ट्रिया नीदरलैण्ड्ज़ को प्राप्त करके उसका बवेरिया से तबादला करना चाहता था। ब्रिटिश सरकार इस प्रकार के तबादले को नहीं चाहती थी। रूस और प्रशिया, आस्ट्रिया की फ्रांस के विरुद्ध सहायता करने की अपेक्षा, पोलैण्ड के बँटवारे में अधिक दिलचस्पी रख रहे थे। निस्सन्देह ध्येय की एकता न होने से कार्य की एकता भी नहीं रही थी। पेरिस पर सम्मिलित चढ़ाई करने की अपेक्षा प्रत्येक मित्र-राष्ट्र फ्रांस के सीमान्त पर स्थित दुर्गों पर अधिकार जमाने में प्रयत्नशील था। ब्रिटिश डन्कर्क दुर्ग को प्राप्त करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने इस दुर्ग पर घेरा डाला। आस्ट्रिया अलसेस और लोरॅनि पर, और प्रशिया पोलैण्ड पर आँखें लगाये राइन नदी के किनारे पर ही रहा। अपने-अपने स्वार्थ के कारण मित्रराष्ट्र इस संघर्ष के वास्तविक रूप और फ्रांस की ओर से आने वाले भय के महत्त्व को नहीं पहचान पाये। उन्हें लगा कि फ्रांस इस समय क्रांति में उलझा हुआ है इसलिए उसे परास्त करना सरल होगा। उन्होंने यह अनुभव नहीं किया कि इस समय वे बुरवोन राजशाही के विरुद्ध नहीं, अपितु स्वतन्त्रता, समानता और मित्रता के सिद्धान्तों से प्रेरित और अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए प्राण देने को तैयार सशस्त्र राष्ट्र से टक्कर ले रहे हैं। ये राष्ट्र अपने स्वार्थ और परस्पर की ईर्ष्या को छोड़ नहीं सके।

मित्र-राष्ट्र स्वयं पोलैण्ड में क्रांति कराने के लिए संलग्न थे। १७९३ में पोलैण्ड का दुबारा बँटवारा हुआ जिसमें रूस और प्रशिया ने अपना भाग लिया। १७९५ में शेष पोलैण्ड को रूस, प्रशिया और आस्ट्रिया ने बाँटा और इस तरह पोलैण्ड का अस्तित्व समाप्त हो गया। इस काल में यूरोप की शक्तियों में पोलैण्ड के बँटवारे के लिए आपस में होड़ लगी थी। प्रत्येक राष्ट्र दूसरे से अधिक प्रदेश प्राप्त करने के प्रयत्न कर रहा था। परिणामतः संगठित राष्ट्रों की सेनाएँ निष्क्रिय हो गईं और उन्हें सब मोर्चों पर परास्त होना पड़ा।

कार्नट ने अपने अद्‌भुत सैन्य-संचालन कौशल और दक्षता द्वारा राष्ट्र के सारे साधन जुटाये। आतंक-राज्य ने देश में विरोध का नाश कर दिया। कायर वीर बन गए और देशद्रोहियों को भयभीत कर दिया गया। परिणाम यह हुआ कि समूचा फ्रांस राष्ट्र बड़ी लगन से लड़ा और उसने मित्रराष्ट्रों को हरा दिया। फ्रांस के सेनापतियों को स्पष्टतः बता दिया गया था कि उन्हें विजय प्राप्त करनी ही है, अन्यथा उन्हें मृत्युदण्ड दिया जायगा।

नीदरलैण्ड्ज़ में ब्रिटेन की सेनाओं का सेनापति ड्यूक ऑफ यार्क था जो बिलकुल निकम्मा व्यक्ति था और इस प्रकार के व्यक्ति से अच्छे परिणामों की कोई आशा नहीं की जा सकती थी। उसका युद्ध-कौशल इस प्रकार वर्णन किया जाता है :—

"बिचारा बुड्ढा ड्यूक ऑफ यार्क,
दस हजार थी सेना पास।
कभी चढ़ाता उन्हें चोटी पर,
फिर उतार ले आता पास।"

द्वितीय संगठन (The Second Coalition) (१७९८-१८०१)—द्वितीय संगठन १७९८ के नील-युद्ध का सीधा परिणाम था, जिसमें नेल्सन ने नेपोलियन को परास्त किया था। यूरोप की शक्तियाँ संचालक-पंचायत की आक्रामक नीति से बड़ी चिन्तित थीं। अतः जब उन्हें यह सूचना मिली कि नेपोलियन मिस्र में भटक गया है तो उन्होंने कार्रवाई करने का निर्णय किया। १७९८ में दूसरा संगठन बनाया गया, जिसमें इंग्लैंड, रूस, आस्ट्रिया, तुर्की और नेपल्स सिम्मलित हुए। इस संगठन का ध्येय पेरिस-स्थित क्रांतिकारी सरकार को कुचल कर फ्रांस को उसकी प्राचीन सीमाओं में घुसा देना था। इस संगठन से प्रशिया अलग रहा। फ्रांस ने आस्ट्रिया से, अपने प्रदेश से सभी सेना को हटाने की माँग की और उसके मना करने पर युद्ध आरम्भ हुआ।

आरम्भ में परिस्थिति मित्र-राष्ट्रों के अनुकूल प्रतीत हुई। आस्ट्रिया के आर्क-ड्यूक-चार्ल्स ने फ्रांस की एक सेना को हराकर राइन नदी के पार खदेड़ दिया। आस्ट्रिया और रूस की सम्मिलित सेना ने दो बड़ी लड़ाइयों में फ्रांस की सेना को बुरी तरह हराया। अन्धमहासागर में मिनोरका द्वीप पर अधिकार कर लिया और माल्टा पर घेरा डाल दिया गया। किन्तु १७९९ का वर्ष मित्र-राष्ट्रों के लिए आपत्तिपूर्ण सिद्ध हुआ। फ्रांस ने अपनी स्थिति सँभाल ली। अंग्रेज परास्त हुए और उन्हें हालैण्ड खाली करना पड़ा। फ्रांस तत्कालीन खतरे से बच गया।

नेपोलियन मिस्र से लौटा। फ्रांस की जनता ने उसका बड़े उत्साह से स्वागत किया। वह संचालक-पंचायत को उलटने में सफल हुआ और १७९९ में स्वयं प्रथम सलाहकार (First Consul) बन बैठा।

नेपोलियन का पुनरागमन मित्र-राष्ट्रों के लिए अत्यन्त चिन्ताजनक हुआ। रूस ने संगठन छोड़ दिया और ज़ार पॉल, इंग्लैण्ड और आस्ट्रिया दोनों से बड़ा नाराज़ हुआ। ज़ार यूरोप में फ्रांस को कुचलकर प्राचीन शासन-प्रणाली स्थापित करना चाहता था किन्तु आस्ट्रिया पीडमोण्ट को प्राप्त करने का अधिक इच्छुक था। आस्ट्रिया के इस रुख से ज़ार नाराज़ हो गया। इंग्लैंड से ज़ार इसलिए नाराज़ हुआ कि वह आस्ट्रिया की नीति का समर्थन करता था। फिर, बोनापार्ट का वह सम्मान करने लगा और परिणामतः इस संगठन से अलग हो गया।

ज़ार्ज तृतीय

बोनापार्ट ने इंग्लैंड के सम्राट् को एक पत्र लिखा जिसमें उसने शान्ति की इच्छा प्रकट की। उसका आशय शान्ति का प्रस्ताव करके अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना था, क्योंकि फ्रांस युद्ध से थक चुका था। ब्रिटिश सरकार ने रोषपूर्ण उत्तर दिया और कहा कि शान्ति-व्यवस्था का एक ही आश्वासन है कि फ्रांस में बुरबोन वंश के राज्य की स्थापना हो। इस पत्र के कटु शब्दों से फ्रांस की जनता में इंग्लैण्ड के प्रति और भी कटुता बढ़ गई तथा इससे नेपोलियन का कार्य पर्याप्त रूप में सफल हुआ। नेपोलियन ने मोरेयू के नेतृत्व में आस्ट्रिया के विरुद्ध एक सेना भेजी और स्वयं दूसरी सेना लेकर आस्ट्रिया के विरुद्ध बढ़ा। मोरेयू ने होहेनलिण्डेन (Hohenlinden) के स्थान पर एक शानदार विजय प्राप्त की और स्वयं नेपोलियन ने मारेंगो (Marengo) के युद्ध में आस्ट्रिया को परास्त किया। अन्य स्थानों पर भी फ्रांस की जीत हुई और १८०१ में आस्ट्रिया को लुनेविले की सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े। इस सन्धि में कम्पो फ़ोर्मीयो (१७९१) की सन्धि की शर्तों को पुनः पक्का किया गया। १८०१ के पश्चात् इंग्लैण्ड फिर अकेला रह गया। फ्रांस और इंग्लैण्ड दोनों युद्ध में थक चुके थे, १८०१ में शान्ति-सन्धि हुई। ऐमिन्स की सन्धि केवल युद्ध-रोको प्रस्ताव सिद्ध हुई। १८०३ में दोनों देशों में युद्ध पुनः आरम्भ हो गया।

तृतीय संगठन (The Third Coalition) (१८०५)—पिट (Pit, the Younger) ने तीसरा संगठन बनाया जिसमें प्रशिया, आस्ट्रिया, स्वीडन और इंग्लैण्ड थे। नेपोलियन लुनेविले-सन्धि की शर्तों की अवहेलना कर रहा था और स्विट्ज़रलैण्ड जैसे पड़ोसी राष्ट्रों के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप कर रहा था। नेपोलियन द्वारा ड्यूक ऑफ युग्हीन (Duke of Eughien) को उठा लेने और उसकी हत्या कर देने के कारण, सारे यूरोप में नेपोलियन के विरुद्ध बड़ा रोष फैल गया था। इस घटना से फ्रांस और रूस के बीच सम्बन्धों में खिंचाव आ गया। नेपोलियन ने इंग्लैण्ड के अधिकार में आये हुए 'होनोवर' प्रदेश को प्रशिया को देने का लालच दिया। अतः प्रशिया ने संगठन में शामिल होने से साफ इन्कार कर दिया, क्योंकि वह इस चाल को समझ गया था।

तीसरे संगठन का ध्येय उत्तरी जर्मनी से फ्रांस की सेनाओं को निकाल देना, हालैण्ड को तथा स्विट्ज़रलैण्ड को स्वतन्त्रता दिलाना और सारडीनिया के राजा को पीडमौण्ट (Piedmont) दिलाना था। पहले के अनुसार इंग्लैण्ड ने मित्र-राष्ट्रों को खुले हाथों सहायता देना स्वीकार किया। यह भी स्वीकार किया गया कि युद्ध के पश्चात् यूरोप की सारी शक्तियों का एक सम्मेलन हो जिसमें राष्ट्रों के परस्पर व्यवहार के कानून बनाने जायँ और एक यूरोपीय संघ (European Federation) बनाया जाए। किंतु तीसरे संगठन का ध्येय फ्रांस की शासन-प्रणाली को बदलना नहीं था।

नेपोलियन भी इग्लैंड पर आक्रमण करने की योजना बना रहा था और खूब जोरों से तैयारियाँ कर रहा था। 'इंग्लैण्ड-सेना' के नाम से एक शानदार सेना इंग्लैण्ड पर आक्रमण के लिए सुसज्जित की गई और इसी ध्येय से तीन समुद्री बेड़े भी इकट्ठे किये गये। इंग्लिश चैनल की नेल्सन और कार्नवालिस रक्षा कर रहे गये थे।

कार्नवालिस द्वारा ब्रेस्ट का रास्ता सफलता से रोक देने से नेपोलियन की योजना में बाधा पड़ गई। इस बात का प्रयत्न किया गया कि नेलसन से बिना लड़े ही इंग्लैण्ड

पिट दि यंगर

पर आक्रमण किया जाए। फिर भी १८०५ में ट्राफलार (Trafalgar) का युद्ध हुआ और फ्रांस को पूर्णतः परास्त कर दिया गया। इस विजय से केवल इंग्लैण्ड की रक्षा ही नहीं हुई, अपितु ब्रिटेन की समुद्री जल-सेना की समुद्र पर निर्विवाद रूप से अखण्ड सत्ता स्थापित हो गई।

यद्यपि नेपोलियन समुद्र पर हार गया, किन्तु थल पर उसने अपनी उच्च स्थिति का पूर्ण लाभ उठाया। आस्ट्रियन सेनापति को घेर लिया गया और उसे उल्म (Ulm) के स्थान पर शस्त्र-समर्पण करने के लिए वाध्य कर दिया गया। उसने १८०५ में रूस और आस्ट्रिया की सम्मिलित सेनाओं को आस्टरलिट्ज़ (Austerlitz) के स्थान पर अत्यन्त करारी हार दी थी। परिणाम यह हुआ कि आस्ट्रिया ने संगठन छोड़ दिया और उसे प्रेसबर्ग (Pressburg) की सन्धि करनी पड़ी, जिसके अनुसार उसे फ्रांस के इटली प्रदेश को वेनिशिया (Venetia) तथा बवेरिया को टायरोल लौटना

पड़ा। पवित्र रोम साम्राज्य के दो राज्यों के शासकों को फ्रांस से मित्रता रखने के उपहार में आस्ट्रिया के प्रभाव से स्वतन्त्र कर दिया गया। रूस ने सहायता के लिए प्रशिया पर विश्वास किया था किंतु प्रशिया के सम्राट् की अस्थिर नीति के कारण, ज़ार ने भी संगठन छोड़ दिया। प्रशिया ने फ्रांस से आक्रमण और सुरक्षा में साथ देने की सन्धि कर ली और इसके उपहारस्वरूप उसे होनोवर प्रदान किया गया। इस प्रकार तीसरा संगठन भी समाप्त हुआ और इसका प्रवर्त्तक पिट, आस्टरलिट्ज़ की हार की सूचना सुनते ही मर गया।

चतुर्थ संगठन (The Fourth Coalition) (१८१३)—१८१२ में नेपोलियन द्वारा रूस पर आक्रमण करने तथा पीछे हटने में उसकी सेनाओं के विनाश के पश्चात्, १८१३ में चौथा संगठन बनाया गया। इस संगठन के प्रमुख सदस्य रूस, प्रशिया और इंग्लैण्ड थे। आस्ट्रिया वाद में आ मिला। इसका सारा व्यय इंग्लैण्ड सहन करता था। यद्यपि मित्र-राष्ट्रों की सेनाएँ ड्रेसडन पर परास्त हुईं, किंतु अन्य स्थानों पर उन्हें विजय प्राप्त हुई। १८१३ में लिपज़िग के स्थान पर नेपोलियन की हार हुई। कालान्तर में नेपोलियन की शक्ति क्रमशः क्षीण होती गई और मित्रराष्ट्रों की स्थिति शक्तिशाली होती गई। परिणामतः १८१४ में उसे पूर्णतः परास्त कर दिया गया। १८१५ में वह फ्रांस लौट आया। वाटरलू के युद्ध में वह फिर हारा। इस प्रकार चतुर्थ संगठन नेपोलियन को पूर्णतः उखाड़ फेंकने में तथा बुरबोन वंश का राज्य स्थापित करने में सफल हुआ।

Suggested Readings

Kessinger, H. A. : *A World Restored: Metternich, Castlereagh and the Problems of Peace, 1812-1822.*

अध्याय ६

नेपोलियन बोनापार्ट (१७६९-१८२१)

(Napoleon Bonaparte, 1769-1821)

नेपोलियन विश्व में उत्पन्न सर्वश्रेष्ठ सेनानियों में से एक था। उसने अपने युग पर शासन किया और उसका नाम केवल फ्रांस या यूरोप के इतिहास में ही नहीं अपितु विश्व के इतिहास में अमर है। वह महान शक्तिशाली, आत्मविश्वासी, निर्भीक और साधन-सम्पन्न व्यक्ति था। वह भाग्य में विश्वास करने वाला व्यक्ति था, क्योंकि बाल्यकाल से ही उसे यह विश्वास था कि कोई गुप्त शक्ति ही उसे विजय और सम्मान प्रदान कर रही है। उसमें अपने अनुगामियों को प्रेरणा देने की क्षमता थी। वह अपने सैनिकों से प्रेम करता था और वे भी प्रतिदान में उसे प्रेम करते थे। उसकी स्मरण-शक्ति अद्भुत थी। कहा जाता है कि उसे अपनी सेना की टुकड़ियों और सैनिकों के नाम कण्ठस्थ थे।

किंवदन्ती है कि नेपोलियन ने कहा था कि "मैं उस समय उत्पन्न हुआ था जब मेरा देश मृत्यु-शैय्या पर पड़ा था। तीस हज़ार फ्रांसीसी हमारे समुद्र-तट पर जबरदस्ती स्वतन्त्रता के सिंहासन को लहू के समुद्र में डुबोये दे रहे थे। इस प्रकार के घृणित दृश्य मुझ बालक की आँखों द्वारा देखे नहीं गए।" १७६९ में फ्रांस ने जिनोआ से कोर्सिका[1] का द्वीप खरीदा तथा इसी द्वीप में आजाशियो (Ajaccio) नामक स्थान पर, इसी वर्ष की १५ अगस्त को नेपोलियन का जन्म हुआ। उसने फ्रांस में सैन्य-शिक्षा ग्रहण की और १७ वर्ष की आयु में एक तोपखाने के अधिकारी के रूप में सेना में कार्य करने लगा। १७८९ में जब फ्रांस में क्रांति हुई, वह मुश्किल से २० वर्ष का था। दिसम्बर, १७९३ में अपने तोपखाने का क्षमता से संचालन करने के कारण उसने ट्युलोन को पुनः प्राप्त कर लिया तथा विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की। इस विजय के पारितोषिक-स्वरूप उसे ब्रिग्रेडियर-जनरल का पद प्रदान किया गया। ५ अक्टूबर, १७९५ को उसने राष्ट्रीय सम्मेलन के विरुद्ध सम्राट् के समर्थकों का विन्डिमियर का विद्रोह कुचला। परिणामतः उसे देश में आन्तरिक सेना का सेनापति बना दिया गया। ९ मार्च, १७९६ को उसने जोसेफाइन से विवाह किया।

प्रथम संगठन के कारण जिस समय फ्रांस बड़ी कठिन परिस्थिति में फँसा था, नेपोलियन को इटली के मोर्चे का सेनापति नियुक्त किया गया और इटली में ही उसने अपने अक्षय सैन्य-यश की नींव डाली।

---

१. १७६२ में रूसो ने लिखा, 'मुझे दैवी प्रेरणा हुई है कि यह छोटा-सा द्वीप (कोर्सिका) एक दिन यूरोप को आश्चर्यचकित कर देगा।' यह कितनी सत्य भविष्यवाणी थी।

नेपोलियन का इटली पर अभियान अप्रैल, १७९६ से अप्रैल, १७९७ तक चला। इसे इन शब्दों में अंकित किया गया है—"वह आया, उसने देखा, उसने विजय पाई।" नेपोलियन को बड़ी कठिनाइयों के सामने लड़ना पड़ा। उसे आस्ट्रिया व सार्डीनिया की सेनाओं का मुकाबला करना पड़ा। उसके सिपाहियों की सेना कम ही नहीं थी, वल्कि उनका सामान भी बहुत अपर्याप्त था। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि नेपोलियन ने अपने शत्रुओं से अलग-अलग मुकाबला करने का निश्चय किया और उन्हें एक होने की अनुमति नहीं दी। वह आस्ट्रिया वालों और सार्डीनिया वालों के बीच घुस गया और आस्ट्रिया वालों को हरा कर उन्हें पूर्व की ओर खदेड़ दिया। उसके बाद वह सार्डीनिया वालों की ओर मुड़ा और उन्हें हरा दिया। इस प्रकार उसने सार्डीनिया की राजधानी ट्युरिन का मार्ग खोल दिया। सार्डीनिया की सरकार ने शान्ति की माँग की और सेवाय व नाइस फ्रांस को देने की शर्त मान ली। नेपोलियन ने अपने सिपाहियों के सामने अपनी सफलता को इन शब्दों में व्यक्त किया—"पन्द्रह दिनों के भीतर तुमने छः विजयें पाई हैं, इक्कीस प्रकार के यश, पचपन प्रकार की तोपें और अनेकों दुर्गों को प्राप्त किया है और पीडमांट के सर्वोत्तम भागों को जीता है। तुमने १,५०० लोग कैदी बनाये हैं और १०,००० व्यक्तियों को मारा या घायल किया है। लेकिन, ऐ सिपाहियो, तुम ने कुछ नहीं किया है क्योंकि अभी तुम्हारे लिए करने को बहुत कुछ शेष है। तुम्हें अभी और लड़ाइयाँ लड़ना है, नगरों को पाना है और नदियों को पार करना है।"

सार्डीनिया की पराजय के बाद नेपोलियन ने अपना ध्यान आस्ट्रिया की ओर बढ़ाया। उसने पो नदी को पार किया तथा आस्ट्रिया के कमाण्डर ब्यूला (Beaulieu) ने अड्डा नदी को पार कर लिया। अब लोदी का पुल पार किये बिना नेपोलियन किसी भी प्रकार आस्ट्रिया के उस कमांडर को पराजित नहीं कर सकता था। यह पुल ३५० फीट लम्बा था और आस्ट्रिया वालों की ओर से होने वाली तेज गोलाबारी के कारण उसे पार करना व्यावहारिक दृष्टि से असंभव था। नेपोलियन ने अपने तोपचियों को आगे बढ़ने की आज्ञा दी, लेकिन वे आधी दूर भी नहीं पहुँच पाए थे, कि उन्हें आस्ट्रिया की गोलाबारी ने हिला दिया और वे लौटने लगे। नेपोलियन व अन्य सेनानियों ने टुकड़ी की ओर बढ़ना शुरू किया। अपनी जानों को संकट में डाल कर उन्होंने अपने सिपाहियों का उत्साह बढ़ाया, फल यह हुआ कि उन्होंने आस्ट्रिया वालों की युद्ध-सामग्री पर कब्जा कर लिया। तब नेपोलियन ने डायरेक्टरी को यह शब्द लिख कर भेजे, "उन समस्त क्रियाओं में जिनमें मेरे आधीन सिपाहियों ने भाग लिया है, उसमें लोदी के पुल को पार करने वाली घटना के समान अन्य कोई नहीं हुई।" तब उसके सिपाही नेपोलियन को 'लिटिल कारपोरल' कहने लगे।

जब आस्ट्रिया वाले मंटुआ (Mantau) के दुर्ग में जा छिपे तो नेपोलियन ने उसका घेरा डाल दिया। जून, १७९६ व अप्रैल, १७९७ के बीच में आस्ट्रिया वालों ने अपने मंटुआ में घिरे हुए कैदियों को सहायता पहुँचाने के चार प्रयत्न किए।

लेकिन उन्हें नेपोलियन ने बेकार कर दिया। वह शत्रुओं को मिलकर एक होने से पहले ही टुकड़ों में पराजित करने की नीति पर चलता रहा। उसने सदैव यही नीति अपनाई कि शत्रु पर तभी आघात करो जबकि वह बँटा हुआ हो। विवशतापूर्ण गमनों की नीति से उसने इसे पूर्ण किया। उसके सिपाहियों ने यह ठीक ही कहा था कि 'हमारी टाँगों से उसे विजय प्राप्त होती है।' उसने अपनी सेनाओं को कभी आगे कभी पीछे ऐसे किया जैसे वह कोई खेल की चिड़िया हो। अपने शीघ्र आन्दोलनों से उसने अपनी कम संख्या की त्रुटि दूर की। उसके शत्रु भी उसकी सफलता के लिए उत्तरदायी थे; क्योंकि उन्होंने अपनी सारी सेनाएँ एकदम संग्राम-क्षेत्र में नहीं रखीं। आरकोला (Arcola) पर तीन दिन तक युद्ध चलता रहा। यहाँ भी विजय पुल पर अधिकार जमा लेने पर आश्रित थी। पुल ने ही आस्ट्रिया के विभाजन को बना रखा था। यदि वे पुल को अपने आधीन कर पाते, तो आस्ट्रिया की सेनाएँ नेपोलियन के विरुद्ध मिलकर लड़ सकतीं। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। नेपोलियन ने अपने कर्मचारियों के साथ झण्डा छीन लिया और आगे बढ़ा। आस्ट्रिया वालों ने उन पर गोली चलाई। आस्ट्रिया वालों ने बहुत से फ्रांस के अधिकारियों को मार दिया, फिर भी उन्होंने अपने सेनापति का साथ नहीं छोड़ा और उसे उसके शस्त्रों व वस्त्रों के साथ खींच लिया। नेपोलियन कीचड़ में गिर गया और उसकी साँस डूबने लगी। फौरन शोर मच गया, 'जनरल को बचाने के लिए आगे बढ़ो', फल यह हुआ कि फ्रांस वालों ने अपनी सारी शक्ति से चोट की, और आस्ट्रिया वालों को पीछे हटाकर अपने नेता को बचा लिया। नेपोलियन की सेना को सफलता मिली तथा आस्ट्रिया वाले वापस लौट गए। आरकोला का युद्ध १५ नवम्बर से १७ नवम्बर १७९६ तक चला।

दो मास बाद आस्ट्रिया की एक अन्य सेना ने मंटुआ को सहायता पहुँचाने का प्रयत्न किया और तब रिवोली पर दूसरा निराशाजनक युद्ध हुआ। १३-१४ जनवरी १७९७ को नेपोलियन ने आस्ट्रिया वालों को बड़ी आघातपूर्ण पराजय पहुँचाई। उस पराजय के दो सप्ताह बाद मंटुआ ने हथियार डाल दिए। नेपोलियन एलपस तक बढ़ गया और आस्ट्रिया वाले पीछे हट गए। ७ अप्रैल, १७९७ को वह ल्यूबेन (Leuben) पहुँचा जो वेयाना से लगभग १०० मील दूर है। इस स्थल पर आस्ट्रिया ने शान्ति की माँग की। नेपोलियन काफ़ी प्राप्त कर चुका था। वह १८ बड़े व ६५ छोटे युद्ध लड़ चुका था। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि एक सैनिक विज्ञप्ति में उसने कहा, "इसके अतिरिक्त, तुम पेरिस को लोक-कोष से ३,००,००,००० फ्रैंक भेज चुके हो। तुमने पेरिस के संग्रहालय को प्राचीन व आधुनिक इटली की ३०० अद्भुत कलाओं की वस्तुओं से भर दिया है, जिनके बनाने में ३० युग लगे थे। तुमने यूरोप के सबसे अधिक सुन्दर देश को पा लिया है। सबसे पहली बार एड्रियाटिक की सीमाओं पर फ्रांस की ध्वजा फहराई गई है।"

यह देखने योग्य बात है कि अपने सारे इटली के अभियान में नेपोलियन बोनापार्ट ने इस प्रकार कार्य किया जैसे वह फ्रांस का प्रधान हो। कभी-कभी उसने डायरेक्टरी का परामर्श माना, लेकिन प्रायः उसे ठुकरा दिया। इटली में अपने

ठहरने के समय, वह केवल सैनिक विषयों ही में व्यस्त नहीं रहा, वरन् राजनीतिक विषयों में भी व्यस्त रहा। उसने राज्यों के निर्माता व नष्टकर्ता के रूप में कार्य किया। उस समय इटली एक संगठित देश नहीं था और बहुत से राज्यों के अस्तित्व ने ही नेपोलियन को मनमानी करने की योग्यता प्रदान की। नेपोलियन बोनापार्ट ने जेनोआ के रिपब्लिक को लिगूरियन रिपब्लिक में बदल दिया और फ्रांस जैसा संविधान दिया। ड्यूक ऑफ पारमा और ड्यूक ऑफ मोडेना को आधीनता मानने तथा बड़े भुगतान करने पर विवश कर दिया गया। पोप तक को आधीनता माननी पड़ी। उससे कुछ राज्यों को छीन लिया गया और शेष को उसके पास इस शर्त पर छोड़ दिया गया क्योंकि उसने विजेता को काफी धन दिया।

नेपोलियन बोनापार्ट ने वेनिस का रिपब्लिक जीता जो यूरोप के सर्वश्रेष्ठ तथा सबसे अधिक गर्वधारी राज्यों में से एक था। उसने इसे कूटनीति के खेल में मोहरे की तरह रखा। जब नेपोलियन बोनापार्ट ने वेनिस के गणतन्त्र को उखाड़ फेंका, तब वर्ड-स्वर्थ ने इस प्रकार लिखा था :

> "Once did she hold the gorgeous East in fee,
> And what the safeguard of the West; the worth
> Of Venice did not fall below her birth,
> Venice the Eldest Child of Liberty."

नेपोलियन बोनापार्ट ने अप्रैल, १७९७ में लियोबेन की प्रारम्भिक संधि की थी। १७ अक्तूबर, १७९७ को उसने कैम्पो फोर्मीयो की अन्तिम संधि की। इस सारे काल में नेपोलियन बोनापार्ट ने एक वैभवपूर्ण जीवन बिताया। उसने विद्वानों, राजदूतों व कलाकारों का स्वागत किया। उसके चारों ओर जवान अधिकारी रहते थे जो उस में विश्वास रखते थे और हर काम करने को तैयार रहते थे। उसके पास जोसेफाइन, अपने भ्रातागण, बहनें और माता भी थीं। नेपोलियन बोनापार्ट स्वयं स्वाभिमानी होने लगा। उसने अपने विषय में कहा—"अब तक जो कुछ मैंने किया वह कुछ नहीं है। मैं तो जीवन के आरम्भ पर हूँ जो मुझे व्यतीत करना है। क्या आप यह सोचते हैं कि मैंने इटली को इसलिए जीता है कि डायरेक्टरी के वकीलों को आगे बढ़ाया जाय।······डायरेक्टरी को मुझे अपने आदेश से वंचित करने का प्रयत्न करने दो और तब उन्हें पता चल जावेगा कि कौन स्वामी है। राष्ट्र का प्रधान ऐसा होना चाहिए जिसे यश ने देदीप्यमान बनाया हो।"

कैम्पो फोर्मीयो की संधि से आस्ट्रिया ने फ्रांस को आस्ट्रियन-नीदरलैंड्स (बेल्जियम) दे दिया, आइयोनियन द्वीपों पर फ्रांस का अधिकार मान लिया और र्‌हायन तक फ्रांस के प्रदेश का प्रसार स्वीकार कर लिया। आस्ट्रिया ने सिस-ऐल्पायन रिपब्लिक व लिगूरियन रिपब्लिक को भी मान लिया, जिन्हें इटली में नेपो-लियन ने बनाया था। कैम्पो फोर्मीयो की संधि के महत्त्व की अधिक चर्चा नहीं की जा सकती। इसने फ्रांस को उसकी प्राकृतिक सीमाएँ प्रदान कीं जिन्हें लुई चौदहवां अपने सर्वोत्तम प्रयत्नों के बावजूद भी न पा सका था। आइयोनियन द्वीपों ने मिस्र के लिए

उठने का अवसर दिया था। इसने प्रथम सम्मिलित सरकार को घातक चोट पहुँचाई। अब फ्रांस का कोई शत्रु न रहा और यूरोप में, इंग्लैण्ड का कोई साथी न रहा। इंग्लैण्ड को अब फ्रांस के विरुद्ध अकेले हाथ लड़ना पड़ा।

प्रो० मरकहम (Markham) के विचार से यह शान्ति फ्रांस और नेपोलियन के लिए बहुत चमत्कारी हुई किन्तु इसने भावी युद्ध के बीज बो दिये। नेपोलियन सफलताओं के यश और संचालक-पंचायत की निर्बलता के कारण, फ्रांस के शान्ति-लक्ष्य, देश की प्राकृतिक सीमा र्‌हाइन, एलपस और पारीनीस (Pyrenees) को छोड़ इटली के प्रदेशों की ओर बढ़ गया और इसका परिणाम उपनिवेशवाद और युद्ध हुआ।[1]

नेपोलियन बोनापार्ट ने इटली को केवल जीता ही नहीं बल्कि उसे लूटा भी। इटली पर अभियान का उद्देश्य केवल शत्रु को हराना ही नहीं वरन् उससे अधिक पाना भी था, जितना फ्रांस के कोष को इसमें व्यय करना पड़ा था। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि नेपोलियन बोनापार्ट ने उन राजकुमारों से, जिन्हें उसने इटली में हराया था, अधिक माँगा व पाया। पोप को बीस मिलियन फ्रैंक, जेनोआ के रिपब्लिक को पन्द्रह मिलियन फ्रैंक व मोडेना के ड्यूक को दस मिलियन फ्रैंक देने पड़े। उसने मिलान से भी काफी धन लिया। इस प्रकार से नेपोलियन ने अपनी सेना के खर्चे पूरे कर बहुत-सा धन फ्रांस भेज दिया।

इटली को केवल नकद ही नहीं, बल्कि दूसरे रूपों में भी भुगतान करना पड़ा। उसे अपनी कलात्मक कृतियों से वंचित होना पड़ा। नेपोलियन बोनापार्ट के एजेण्टों ने कला के केन्द्रों को क्षति पहुँचाई और जो कुछ उन्हें अच्छा लगा उसे भी फ्रांस ले गए। जैसे रैफेल का 'दि ट्रांसफिग्रेशन', टिटियन का 'दि क्राइस्ट', 'दि अपालो बेलविडियर', 'दि नाइन म्यूसेज़', 'दि लाकून', 'दि वेनिस डि मिन्सी'। अपने जीवन-काल में नेपोलियन बोनापार्ट ने लोवरे के संग्रहालय को रैफ़ेल, रेम्ब्रांट, टिटियन, वान डायक, रूबेन्स इत्यादि की १५० से अधिक चित्रकलाओं से सुसज्जित कर दिया। नेपोलियन के पतन के बाद ऐसी बहुत-सी कलाओं के धन को उनके पिछले स्वामियों को वापस कर दिया गया।

इटली के प्रथम अभियान के पश्चात् नेपोलियन का नाम फ्रांस के प्रत्येक घर में गाया जाने लगा और उसे असीम प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। वह अपने प्रतिद्वन्द्वियों में बहुत ऊँचा उठ गया और फ्रांस की राजनीति में उसका अग्रनी बनना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। संचालक-पंचायत ने इंग्लैण्ड से युद्ध करने का निर्णय किया जिसका आशय इंग्लैण्ड पर आक्रमण करना था। परिणामतः नेपोलियन को मुख्य सेनानायक नियुक्त किया गया। १७९८ के आरम्भ में ही नेपोलियन ने फ्रांस के समुद्री तट का निरीक्षण किया और इस निर्णय पर पहुँचा कि इंग्लैण्ड के समुद्री बेड़े की अभेद्य शक्ति के कारण इंग्लिश चैनल को पार कर सकना असम्भव

---

1. *Napoleon and the Awakening of Europe*, p. 33.

है। किन्तु उसने यह सोचा कि ब्रिटिश साम्राज्य संसार के अनेक भागों में फैला हुआ है और किसी अन्य स्थान से इस पर आक्रमण करके साम्राज्य को चोट पहुँचाई जा सकती है। इन परिस्थितियों में नेपोलियन ने मिस्र पर आक्रमण करने का निश्चय किया। उसकी योजना थी कि मिस्र को विजय करने के पश्चात् वह मराठों और सुल्तान टीपू की सहायता से अंग्रेजों को भारतवर्ष से निकाल देगा। तुर्की भी दुर्बल हो रहा था, इसलिए वह भी इसके आक्रमण सहन करने में असमर्थ था और उस पर विजय पाई जा सकती थी। उसने सोचा कि ब्रिटिश समुद्री बेड़े को चक्कर में डालकर अन्धमहासागर में ले जाकर इंग्लैण्ड पर आक्रमण किया जाये।

नेपोलियन ने ट्यूलोन (Toulon) छोड़ा और गई, १७६८ में मिस्र के लिए समुद्री मार्ग से उसने प्रस्थान किया। वह ब्रिटिश बेड़े से बचकर मिस्र पहुँचने में सफल हो गया। रास्ते में उसने माल्टा (Malta) को विजय किया। उसने पैरामिड (Pyramids) युद्ध को जीता जिससे वह नील के मैदान का स्वामी बन बैठा। किन्तु १७६८ में सेनापति नेल्सन (Nelson) ने उसे नील (Nile) नदी के युद्ध में बुरी तरह हराया। फ्रांस का समुद्री बेड़ा पूर्णतः नष्ट कर दिया गया और नेपोलियन का फ्रांस से यातायात का सम्बन्ध पूर्णतः छिन्न-भिन्न हो गया। उसने सीरिया पर आक्रमण किया, किन्तु आकरे (Acre) को विजय नहीं कर पाया। किसी प्रकार बड़ी कठिनाई से १७६६ में वह फ्रांस पहुँच गया।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि पंचायत के संचालकों ने फ्रांस का शासन सफलता से नहीं किया अतः देश में उनके विरुद्ध बड़ा क्षोभ फैल गया था। नेपोलियन ने इस स्थिति का लाभ उठाया और ६ नवम्बर, १७६६ को साइयस (Sieyes) की सहायता से संचालक-पंचायत को उलट दिया। इस घटना को ब्रुमेयर (Brumaire) का आठवां सशस्त्र षड्यंत्र (Coup d' etat of VIIIth) कहा जाता है।

प्रथम सलाहकार के रूप में नेपोलियन (Napoleon as First Consul) (१७६६-१८०४)—संचालक पंचायत की समाप्ति पर १७६६ में फ्रांस का नया संविधान बना। इस संविधान के अनुसार देश के कार्यमण्डल की सत्ता तीन सलाहकारों के हाथों में सौंपी गई, जिन्हें विधानमण्डल दस वर्ष के लिए चुनता था। इन तीन सलाहकारों में एक प्रमुख सलाहकार होता था। इस प्रथम सलाहकार को लगभग सम्पूर्ण सत्ता प्राप्त थी। केवल यह व्यक्ति ही देश में कानून लागू कर सकता तथा समूचे देश में सारे नागरिकों अथवा सैनिकों और पदाधिकारियों को नियुक्त और पदच्युत कर सकता था। बोनापार्ट को प्रथम सलाहकार नियुक्त किया गया और उसने अपने अन्य दो सहकारियों, साइयस (Sieyes) और ड्यूकोस (Ducos) को पदच्युत करके दो अन्य ऐसे सलाहकार नियुक्त किये, जिनमें विरोध करने का साहस ही नहीं था और इस प्रकार उसने अपनी शक्ति को ठोस बनाया। राज्य-परिषद् (Council of State) को कानूनी मसविदा तैयार करने, साधारण विधेयक बनाने, कानूनों की व्याख्या करने तथा उच्च न्यायालय का कार्य करने के अधिकार

दिए गए। १०० सदस्यों की एक सभा (Tribunate) वनाई गई और उसे यह अधिकार दिया गया कि यह सरकार द्वारा भेजे गए विधेयकों को स्वीकार अथवा अस्वीकार करे, किन्तु इसे विधेयकों में संशोधन करने का अधिकार नहीं था। विधान-सभा ३०० सदस्यों की एक 'मूक-सभा' थी जो सरकार या राज्यसभा (Tribunate) अथवा राज्यसभा द्वारा भेजे गए कानूनों को विना विवाद या विचार के स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकती थी। सीनेट के ८० सदस्य थे, जो जीवन भर के लिए सदस्य वना दिये गए थे और उन्हें अपदस्थ नहीं किया जा सकता था। सीनेट सलाहकार (Consuls), ट्रिब्यूनेट और विधान सभा वनाती थी। संविधान के प्रतिकूल किसी भी कानून को रद्द करने का इसे अधिकार प्राप्त था। सिद्धान्त रूप से देश में वयस्क मतदान का विधान किया गया किन्तु वास्तविक रूप से सार्वजनिक मतदान को अक्रियात्मक वना दिया गया था। प्रत्येक कम्यून के निर्वाचित सदस्य अपनी संख्या के दशमांश सदस्य चुनकर एक 'कम्यूनल लिस्ट' वनाते थे! कम्यूनल लिस्ट के सदस्य अपनी संख्या के दशमांश चुनकर 'डिपार्टमैण्टल लिस्ट' वनाते और डिपार्टमैण्टल लिस्ट के सदस्य अपनी संख्या के दशमांश सदस्य चुनकर एक 'राष्ट्रीय लिस्ट' वनाते थे। स्थानीय पदाधिकारियों को प्रादेशिक सूची से चुना जाता था तथा राष्ट्रीय लिस्ट अथवा सूची से सीनेट, ट्रिब्यूनेट और विधान-सभा के सदस्यों को चुनती थी। डिपार्टमैण्टों के प्रमुख प्रिफेक्ट होते थे और कम्यूनों के प्रमुख मेयर होते थे। इन दोनों पदाधिकारियों की नियुक्ति प्रमुख सलाहकार करता था। स्पष्ट है कि १७९९ का संविधान केवल धोखा-मात्र था। जनतन्त्र का ढाँचा केवल जनता को भ्रम में डाले रखने के लिए वनाये रखा गया था, किन्तु सारी वैधानिक सत्ता प्रमुख सलाहकार के हाथों में सौंप दी गई थी। देश में एक पूर्णतः केन्द्रीय तथा अत्यन्त स्वेच्छाचारी शासन-प्रणाली स्थापित कर दी गई थी। कहा जाता है कि जव संविधान की घोषणा हुई तो किसी स्त्री ने अपनी पड़ोसिन से पूछा, 'मैंने तो एक शब्द भी नहीं सुना। संविधान में क्या है?' उत्तर मिला, 'वहाँ वोनापार्ट है।'

नेपोलियन वोनापार्ट

१८०२ में नेपोलियन को जीवन भर के लिए प्रमुख सलाहकार नियुक्त किया गया और उसे यह भी अधिकार दिया गया कि वह अपना उत्तराधिकारी भी नियुक्त

करेगा। ट्रिब्यूनेट के प्रस्ताव को सीनेट ने स्वीकार किया और १८०४ में नेपोलियन सम्राट् बना दिया गया। इस प्रस्ताव पर सार्वजनिक मतदान लिया गया और लगभग ३० लाख ५० हजार मतों के बहुमत से यह प्रस्ताव देश ने स्वीकार किया। पोप स्वयं २ दिसम्बर, १८०४ को पेरिस आया और नेपोलियन को शाही तलवार और राज-दण्ड का अधिकार प्रदान करके उसका अभिषेक किया। किन्तु जब पोप उसके सिर पर मुकुट रख रहा था, उसने उसके हाथ से मुकुट लेकर स्वयं ही पहिन लिया।

प्रमुख सलाहकार के रूप में नेपोलियन का कार्य (Work of Napoleon as First Consul)—नेपोलियन की प्रतिष्ठा मुख्यतः उसकी सैनिक सफलताओं के कारण थी, किन्तु प्रमुख सलाहकार के रूप में उसने बहुत से सुधार किये जिनके कारण वह अमर हो गया। ठीक ही कहा जाता कि यदि नेपोलियन की विजय अल्प-जीवी थी, तो उसके नागरिक सुधार के कार्य की नींव चट्टान पर खड़ी की गई थी।

(१) नेपोलियन ने स्थानीय प्रशासन की सारी व्यवस्था को केन्द्रित कर दिया। १८०० में उसने तमाम प्रादेशिक प्रशासन अपने अधिकार में कर लिया। डिपार्टमैंटों और अरोण्डिस्मेण्टों (Arrondissements) की निर्वाचित संभाओं के सारे अधिकार नेपोलियन द्वारा नियुक्त तथा उसके प्रति उत्तरदायी प्रिफैक्ट और उप-प्रिफैक्टों के हाथों सौंप दिये गये थे। स्थानीय सभाओं को बनाये रखा गया, किन्तु वे वर्ष में केवल राजस्व का अनुमान तथा दर निर्धारित करने के लिए १५ दिन के लिए बैठती थीं। ये सभाएँ प्रिफैक्टों और उप-प्रिफैक्टों की सलाहकार समितियों के रूप में काम करती थीं। छोटी-छोटी कम्यूनों के मेयर, प्रिफैक्ट नियुक्त करते थे, किन्तु जिनकी जनसंख्या १ लाख से अधिक होती थी उनके मेयर की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार करती थी। स्थानीय प्रशासन की इस व्यवस्था से केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रसारित सारे कानून और आज्ञाएँ समान रूप से सब जगह शीघ्रता से लागू होने की सम्भावना प्रकट की गई।

नेपोलियन ने राष्ट्र के सचिवालय का भी विकास किया। इसने मॉरेट के नियन्त्रण में राज्य-मंत्रालय बनाया, जो देश का केन्द्रीय लेखा कार्यालय बन गया। इससे नेपोलियन प्रत्येक विभाग के कार्यों की देखभाल कर सकता था अतः किसी भी मंत्रालय का सामूहिक उत्तरदायित्व नहीं रहा। राजस्व और करों के अनुमान लगाने और उगाही करने के लिए केन्द्रीय शासन-व्यवस्था की गई। करों की उगाही करने वालों को अनुमानित कर का थोड़ा-सा भाग पेशगी जमा करना पड़ता था। ये सुधार प्राचीन शासन (Ancien Regime) के एक अर्थव्यवस्था-विशेषज्ञ गावडिन (Gaudin) का कार्य था। १८०० के समाप्त होते-होते कर की उगाही सम्पूर्ण हो चुकी थी।

हेरोल्ड के विचार में, "वह पूर्ण निर्भीकता, जिससे उस नौजवान और गैर-अनुभवी सैनिक अधिकारी ने अपने को उन समस्याओं से ग्रस्त किया जो देखने में

एक व्यक्ति की शक्ति से परे थीं, यह सब नेपोलियन के मस्तिष्क के वीर तत्वों का लक्षण प्रस्तुत करता हैं। इसमें हरकुलीज़ जैसा गुण निहित है। उदाहरण के लिए, यह सोचिए कि कैसे ३० वर्षीय फर्स्ट कौंसुल ने अपनी सत्ता को पाये हुए कुछ ही दिनों में ऐसा सविनय प्रशासन स्थापित कर दिया जिसने ऐसी स्थायी व्यवस्था का प्रमाण दिया जो फ्रांस ने पिछले डेढ़ सौ वर्षों में कभी नहीं देखा था। ऐसे लोग भी हैं जो नेपोलियन को केवल एक मजबूत व्यक्ति, एक सैनिक तानाशाह की तरह देखते हैं और उन्होंने उसकी ऐसी प्रशंसा की है जैसे हरकुलीज का उसकी बुद्धि की जगह उसकी बाँहें देखकर सम्मान किया जाता है। फिर भी अपवादजनक मानसिक शक्तियों की आवश्यकता एक साधारण पर उत्साही योजना की रचना के हेतु होती है जैसा कि हरकुलीज ने आजियन के अस्तबलों को साफ कराने की रीति निकाली थी। किसी ऐग्रीकल्चरल कालेज का स्नातक इसके विषय में कभी सोच नहीं पाता। सिकन्दर ने महान् गुत्थी को सुलझाने का जो उपाय किया, वह शायद भद्दा मालूम हो, अरस्तू नें कभी भी उसे यह युक्ति नहीं सिखाई, किन्तु शायद उसने डायोजीन्स, महान् साधारणता-प्रेमी सिनिक, से यह शिक्षा ग्रहण की।" (The Mind of Napoleon, p. XVIII)

(२) नेपोलियन ने देश की आर्थिक अवस्था को भी सुधारने का प्रयत्न किया। बड़ी सावधानी से करों की उगाही करके उसने राष्ट्र के धन को बढ़ाया। कठोर मितव्ययिता करके, भ्रष्ट अधिकारियों को कड़ा दण्ड देकर और अन्य राष्ट्रों को फ्रांस की सेनाओं का भार उठाने के लिए बाध्य करके, नेपोलियन ने देश का खर्चा कम किया। १८०० में उसने 'बैंक ऑफ फ्रांस' की स्थापना की जो विश्व की सबसे ठोस आर्थिक संस्था थी।

(३) नेपोलियन ने शिक्षा के क्षेत्र में भी बहुत से सुधार किये। प्रिफेक्ट या सबप्रिफेक्ट के नियन्त्रण में सब कम्यूनों का प्राथमिक स्कूल चलाना अनिवार्य था। दूसरे फ्रेंच भाषा, लैटिन भाषा और मौलिक विज्ञान की शिक्षा के लिए विद्यालय स्थामित किये गए। यद्यपि ये विद्यालय जनता अथवा सरकार द्वारा खोले हुए थे, परन्तु नियन्त्रण केन्द्रीय सरकार के हाथ में था। सभी महत्त्वपूर्ण नगरों में महाविद्यालय (Lycees) खोले गये, जहाँ सरकार द्वारा नियुक्त शिक्षकों द्वारा उच्च शिक्षा दी जाती थी। विशेष प्रकार के विद्यालय, यथा औद्योगिक, प्रशासनिक तथा सैनिक विद्यालय, इस प्रकार की शिक्षा के लिए खोले गए जो सीधे केन्द्रीय सरकार के नियंत्रण में थे। फ्रांस के विश्वविद्यालय (University of France) की स्थापना देश में शिक्षा-व्यवस्था में समानता रखने के लिए की गई थी। इसके प्रमुख अधिकारियों की नियुक्ति प्रमुख सलाहकार करता था। बिना विश्वविद्यालय के प्रमाण-पत्र के किसी को भी नया विद्यालय खोलने अथवा सार्वजनिक रूप से शिक्षा देने का अधिकार नहीं था। शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए एक शिक्षक-विद्यालय (Normal School) खोला गया। प्रत्येक शिक्षा-संस्था को ईसाई धर्म के सिद्धान्त, देश के प्रमुख के प्रति भक्ति और विश्वविद्यालय के आदेशों को शिक्षा के मूल आधार मानने पड़ते

थे। राज्य द्वारा बालकों को पाठ्यक्रम में दिये गए प्रश्नोत्तर के एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा कि देश की सन्तान को किस प्रकार की शिक्षा दी जाती थी—

प्रश्न—प्रत्येक ईसाई का अपने शासकों के प्रति क्या कर्त्तव्य है? हमारे सम्राट् नेपोलियन प्रथम के प्रति, विशेषतः हमारे, क्या कर्त्तव्य हैं?

उत्तर—प्रत्येक ईसाई का अपने शासकों के प्रति और हमारा विशेषतः नेपोलियन प्रथम के प्रति यह कर्त्तव्य है कि हम उसे प्रेम, आदर, आज्ञापालन, स्वामिभक्ति, सैनिक सेवा अर्पण करें तथा साम्राज्य और राज्य-सिंहासन की रक्षा के लिए लगाये गए करों को देना हमारा कर्त्तव्य है। सम्राट् की रक्षा तथा उसकी आत्मिक और राज्य-सम्बन्धी प्रगति के लिए हार्दिक प्रार्थना करना भी हमारा कर्त्तव्य है।

प्रश्न—हम अपने सम्राट् के प्रति इन कर्त्तव्यों से क्यों बँधे हैं?

उत्तर—प्रथम, क्योंकि जो परमेश्वर साम्राज्य बनाता है और स्वेच्छा से इन्हें बाँटता है, उसने सम्राट् पर अपने आशीर्वादों की वर्षा की है और उसे हमारा सर्वेसर्वा नियुक्त किया है तथा अपनी प्रतिमूर्ति और अपनी शक्ति का प्रतीक बना कर भेजा है। इसलिए अपने सम्राट् का सम्मान करना तथा उसकी सेवा करना परमेश्वर का आदर करना और उसकी सेवा करना है। दूसरे, हमारे प्रभु ईसामसीह ने अपने उदाहरण तथा उपदेश से हमें शिक्षा दी है कि अपने सम्राट् के प्रति हमारे क्या कर्तव्य हैं: ईसा मसीह सीजर अगस्टस की आज्ञा मानता हुआ बड़ा हुआ और वह नियत कर देता रहा। उसने जिस श्वास में यह कहा था, 'जो प्रभु की वस्तु है, उसे प्रभु को दो'; उसी श्वास में उस ने यह भी कहा कि 'जो सीजर की वस्तु है वह सीजर को दे दो।'

प्रश्न—क्या विशेष कारण हैं, जिनके लिए हमें अपने सम्राट् नेपोलियन प्रथम के प्रति अधिक भक्त होना चाहिए?

उत्तर—हाँ, विशेष कारण यह है कि यह वह व्यक्ति है जिसे प्रभु ने कठिन समय में हमारे पूर्वजों के धर्म की पूजा को पुनःस्थापित करने के लिए भेजा और रक्षक बनाया। यही वह व्यक्ति है, जिसने अपनी कुशलता और बुद्धिमत्ता से देश में व्यवस्था की पुनःस्थापना की तथा उसे बनाये रखा है। वह अपनी बलवान् भुजाओं से देश की रक्षा करता है और विश्व के चर्च के प्रमुख पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न पोप द्वारा अभिषेक पाकर वह प्रभु का परम प्रिय पुत्र बन गया है।

प्रश्न—जो लोग हमारे सम्राट् के प्रति अपने कर्त्तव्य पूरे करने में पीछे रहते हैं उनके विषय में क्या विचार रखे जायँ?

उत्तर—सेण्ट पॉल के वचनानुसार वे स्वयं परमेश्वर द्वारा स्थापित व्यवस्था का विरोध करते हैं और अपने-आपको घोर नरक का भागी बनाते हैं।

प्रश्न—क्या सम्राट् के प्रति हमारे कर्त्तव्य शाही संविधान में विहित व्यवस्था के अनुसार उसके कानूनी उत्तराधिकारी के प्रति भी उसी प्रकार लागू होंगे?

उत्तर—हाँ, निस्सन्देह रूप से; हमने पवित्र पुस्तक में पढ़ा है कि परमेश्वर स्वेच्छा से और अपने विधान के अनुसार अपने राज्य को केवल एक व्यक्ति को ही नहीं, अपितु उनके परिवारों को भी प्रदान करता है।

१७९५ में इन्स्टीट्यूट दि फ्रांस की स्थापना हुई। नेपोलियन ने इसका समर्थन किया और भौतिक विज्ञानों, ललित कलाओं, गणित और साहित्य में इसके कार्यों की सराहना की गई। किन्तु वह आचार और राजनीतिक विज्ञान विषयों के अध्ययन को प्रोत्साहन नहीं देता था। जनवरी, १८०३ की एक आज्ञप्ति द्वारा नेपोलियन ने इन विषयों की शिक्षा देने वाले विभागों का दमन कर दिया।

(४) नेपोलियन ने देश में बहुत संख्या में सर्व-साधारण के लाभ के लिए इमारतें वनवाईं। किन्तु इनके निर्माण पर उसने स्वयं अधिक धन व्यय नहीं किया। यह इसलिए हुआ कि उसने इन कार्यों के लिए युद्धवंदियों से वेगार ली। उसने यातायात और व्यापार के साधनों का देश में विस्तार किया। फ्रांस के महान् राजपथ (Highways) नेपोलियन की ही देन हैं। १८११ में नेपोलियन २२९ वृहत् सैनिक राजपथ गिना जा सकता था, जो उसने स्वयं वनवाये थे। पेरिस से सीमान्त तक ३० राजपथ विभिन्न दिशाओं में फैले हुए थे। आल्पस पर्वत पर से गुजरने वाली दो वड़ी सड़कों के कारण पेरिस का ट्युरिन, मिलान, रोम और नेपल्स से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया। वहुत संख्या में पुल वनाए गए। प्राचीन नहरों और जलाशयों की मरम्मत करा कर व्यवस्था को सम्पूर्ण कर दिया गया। दलदल से भरे इलाकों से पानी निकालकर उन्हें उपयोगी वना दिया गया। पानी के वाँधों को दृढ़ किया गया। महत्त्वपूर्ण वन्दरगाहों को वड़ा करके व्यापार और युद्ध के वेड़े के दृष्टिकोण से उनकी सुरक्षा का प्रवन्ध किया गया। ट्युलोन और शरवर्ग (Cherbourg) को विशेष रूप से सुदृढ़ वनाया गया।

(५) कोनकार्डट (The Concordat) (१८०२)— चर्च के मामलों को सुलझाना एक कठिन कार्य था। उस युग में वुद्धिमान् वर्ग का यह रिवाज वन गया था कि धर्म को एक मूर्खतापूर्ण झूठ और चर्च को शोषण, विशेषाधिकार और अस्पष्टता का प्रचार करने वाली संस्था समझने लगे थे। पुजारियों को मृतवत् भ्रमों पर जीवित रहने वाले, विदेशियों के मित्र और देशद्रोही माना जाता था। यह एक कारण था कि राष्ट्रीय विधान सभा द्वारा चर्च की सम्पत्ति जव्त कर ली गई और देश में नागरिक चर्च संविधान लागू किया गया। किन्तु ईमानदार और कट्टर कैथोलिकों ने शपथ लेने से मना कर दिया। परिणामतः बहुत अत्याचार हुआ। शपथ न लेने वाले पादरियों (non-juring clergy) के अनुयायी खेतों और वनों में थे जब कि शपथ लेने वाले पादरी (juring clergy) खाली गिरजों की शान को वढ़ाया करते थे। सरकार के लिए पादरियों को वेतन देना कठिन हो गया। कैथोलिक चर्च की मान्यता छीन ली गई और शासन धर्म-सम्वन्धी मामलों में निष्पक्ष हो गया।

जव नेपोलियन प्रमुख सलाहकार वना, देश में इस प्रकार की स्थिति वर्तमान थी। नेपोलियन का विचार था कि धर्म विश्व में मरणोन्मुख शक्ति नहीं है। उसने

पाया कि सारे कैथोलिक-चमत्कारों और सन्तों में आस्था रखते हैं। उसके विचार से दैवी शक्तियाँ किसानों और सैनिकों के जीवन का नियन्त्रण करती हैं, अतः उसने इन दैवी शक्तियों पर प्रभाव डालने और नियन्त्रण करने का निर्णय किया। धर्म और विज्ञान में दोनों को वह एक-सा स्थान न देता था। वह सामाजिक व्यवस्था का अगम्य रहस्य है। नेपोलियन स्वयं लिखता है कि वह रूएल के चर्च की घण्टियों की ध्वनि सुनकर प्रभावित हुआ और इस निर्णय पर पहुँचा कि "जनता का धर्म होना ही चाहिए और यह धर्म सरकार के नियन्त्रण में हो। लोग कहेंगे कि मैं पोप का अनुयायी हूँ। किन्तु मैं कुछ नहीं हूँ। मिश्र में मैं एक मुसलमान था। यहाँ मैं जनता के हित के लिए एक कैथोलिक बन जाऊँगा। मैं किसी धर्म में नहीं, अपितु ईश्वर में आस्था रखता हूँ। देश के पचास भगोड़े अंग्रेजों के वेतनभोगी धर्माचार्य, फ्रांस के पादरियों के नेता हैं। उनका प्रभाव अवश्य नष्ट होना चाहिए और इसके लिए मुझे पोप की अनुमति चाहिए।" नेपोलियन अपने को चार्लेमेन्गे (Charlemange) का उत्तराधिकारी मानता था तथा वह पोप के अधिकार को केवल धर्म के मामलों तक ही सीमित कर देना चाहता था। पेरिस में पोप से विचार-विमर्श हुआ और अगस्त, १८०२ में कोनकार्डट स्वीकार हुआ। यह व्यवस्था १०३ वर्ष तक फ्रांस में शासन और चर्च के सम्बन्धों का नियन्त्रण करती रही।

कोनकार्डट (Concordat) के अनुसार पोप ने शपथ ग्रहण करने वाले पादरियों को मान्यता प्रदान की, गिरजाघरों के नौकर-चाकर कम कर दिये गए तथा क्रान्तिकारी अचल सम्पत्ति की व्यवस्था को मान्यता दी गई। देश में कैथोलिक चर्च देश का मान्य धर्म माना गया। इससे सार्वजनिक उपासना के अधिकार प्राप्त हुए। धर्माचार्यों को पादरियों पर पूर्ण अधिकार दिया गया, वे लोग सरकार के प्रति भक्ति की शपथ लेते थे और एक नियत वेतन प्राप्त करते थे। सारे धर्माचार्यों को अपनी विशेष भेंट छोड़नी पड़ी और अवज्ञा करने वालों को पोप अपदस्थ कर देता था। फ्रांस को ५० 'विशप-मण्डलों' और १० 'मुख्य विशप-मण्डलों' में विभाजित किया गया, जिनके धर्माचार्यों को नेपोलियन मनोनीत करता था। मनोनीत व्यक्तियों को स्वयं पोप नियुक्त करता था। विशेष विधान-व्यवस्था (Organic Articles) द्वारा कैथोलिक न्यायालय (Catholic Liturgy) की स्थापना हुई और पोप की निषेधाज्ञाओं तथा विशेष आदेशों को लागू करने के लिए सरकार की अनुमति प्राप्त करनी पड़ती थी। विवाह के लिए धार्मिक परिपाटी के पूर्व न्यायालय में विवाह (Civil marriage) करना आवश्यक था।

कोनकार्डट की व्यवस्था की नीति के समर्थन में नेपोलियन ने कहा है, "बिना असमानता के समाज का रहना असम्भव है, बिना सदाचार के नियमों के असमानता असम्भव है तथा बिना धर्म के सदाचार के नियम असम्भव हैं। धर्म में मुझे परमेश्वर के अवतार का रहस्य नहीं, अपितु सामाजिक सुव्यवस्था दीख पड़ती है। जो लोग परमेश्वर में आस्था नहीं रखते, उनपर शासन नहीं किया जाता, अपितु उन्हें गोली मार दी जाती है। जनता को एक धर्म की आवश्यकता है इसलिए धर्म की व्यवस्था शासन के हाथों में होनी चाहिए।"

मार्कहम के मतानुसार, "उसके प्रिफेक्टों व पुलिस की रिपोर्टों ने उसका यह अनुभव पक्का कर दिया कि धनी वर्ग व मनीषी वर्ग की चाहे सामान्य बुद्धि कुछ भी हो, कृषक लोग अब भी अपने चर्चों व पुरोहित से अपना सम्बन्ध बनाये रखने पर जमे हुए थे। बुद्धिजीवी लोगों तक में धार्मिक संदेहवाद एक विवादहीन तथा चलन-युक्त सिद्धान्त नहीं रहा था। धार्मिक पुनर्जागरण एक साहित्यिक रोमांची आन्दोलन और एक प्रतिक्रिया-क्रान्तिकारी राजनीतिक सिद्धान्त के साथ, जो पुनःस्थापन के समय में अपनी चरम सीमा पर पहुँचा, वह पहले ही से ज्ञान के वास्तविकवाद को चुनौती दे रहा था। बोनाल्ड, चैत्युब्रियां व फान्तेन्स उस बुद्धिजीवी आन्दोलन के नेता थे जिसने क्रान्ति की अराजकता को धार्मिक विश्वास व सत्ता के पतन तक पहुँचाया। निष्कासित सामन्त वर्ग पहले ही से सन्देहवाद का त्याग कर रहा था और धार्मिक कट्टरता की ओर लौट रहा था।

"पोप के साथ एक समझौता राजतन्त्रवाद व कैथोलिकवाद के बीच फूट डालता, अन्त में ला वेन्ड (La Vendee) को सन्तुष्ट करता और चर्च की भूमियों का क्रय करने वालों को पुनः विश्वास प्रदान करता। दरारदार संवैधानिक चर्च पर था प्रोटेस्टेंटवाद पर आश्रित समझौता ऐसा कोई लाभ प्रदान नहीं करता। पोप के साथ केवल एक व्यापक समझौता ही काफी था। जैसा कि नेपोलियन ने संकेत किया, "इंग्लिश पंक्ति के पचास निष्कासित पादरी आजकल फ्रांस के पादरियों के नेता बने बैठे हैं। उनका प्रभाव नष्ट किया जाना चाहिए और इसके लिए मुझे पोप की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए।" नेपोलियन भी जानता था कि "ऐसे समझौते का लाभ यह होगा कि फ्रांस का प्रभाव इटली, बेल्जियम व र्‌हायन के प्रदेशों की कैथोलिक जनसंख्या पर पड़ेगा।"

इस समझौते के ऊपर जनरल डेल्मास ने यह भाव व्यक्त किया: "एक उत्तम साधुवाली युक्ति—केवल एक ही वस्तु की हानि हुई—१०,००० व्यक्ति; जिन्होंने उसकी मदद के वास्ते अपने प्राण दिए।"

फ़िशर के विचार में, "स्थापना का सिद्धान्त, जैसा तब था और अब, अपने कई शत्रु रखता था, किन्तु यह झगड़ा करना कठिन है कि उस व्यवस्था, जिसने कृषक वर्ग के भयों का समाधान किया, के मूल्य ने फ्रांस के चर्च की खाई पाट दी और, गैर-विधिवेत्ताओं की थोड़ी-सी संख्या को छोड़कर, फिर उसने उस समय की सरकार व कैथोलिक अन्तःकरण के बीच समन्वय स्थापित कर दिया।" लेकिन यह बताया जाता है कि उन अत्याचारी पादरियों के विरुद्ध छोटे पादरी पोप से प्रार्थना कर सकते थे या बड़े पादरी सरकार के विरुद्ध, इस बात ने फ्रांस में गैलिकन स्वतन्त्रताओं के पतन व गरम-मान्टेनज़्म (Ultra-montanism) का मार्ग खोल दिया।

यह बात उल्लेखनीय है कि कोनकार्डट के होने पर भी नेपोलियन और पोप में बहुत मतभेद पैदा हो गये। पोप को अपना शक्ति-क्षेत्र केवल धर्म और पादरियों के शासन तक ही सीमित रखना पसंद नहीं था। उसे नेपोलियन-संहिता (Code Napoleon) का, जिसके अनुसार तलाक कानूनी था, इटली पर भी लागू होना

रुचिकर नहीं हुआ। उसने नेपोलियन की प्रार्थना को ठुकरा दिया और पिटरसन द्वारा जिरोम को तलाक देने की स्वीकृति देकर उसे यूरोप के किसी राजघराने में विवाह करने की अनुमति दे दी गई। नेपोलियन की यूरोप महाद्वीप की नीति पोप की क्षेत्रीय सर्वशक्तिमत्ता से मेल नहीं खाती थी। नेपोलियन द्वारा इटली के राज्य में मिला लिए गए बोलोग्ना और फिरारी के प्रदेशों को पुनः पोप को देने से मना कर दिया गया। पोप के अधिकृत प्रदेशों—पोन्टे, कोर्वो और विनिवेन्टो—को नेपोलियन ने जब्त कर लिया। उसने १८०५ में अन्कोना को छीन लिया और पोप को देने से मना कर दिया। १८०५ में पोप का झुकाव स्पष्टतः तीसरे संगठन (Third Coalition) की ओर था और उसने १८०० में जोसेफ बोनापार्ट को नेपल्स का राजा बनाने का विरोध किया। पोप ने १८०६ में नेपोलियन की इस माँग को भी ठुकरा दिया कि वह अपने राज्यों में से फ्रांस के शत्रुओं को निकाल दे तथा इन राज्यों की बन्दरगाहों को इंग्लैंड के व्यापार के लिए बन्द कर दे। अक्टूबर, १८०६ में पोप ने नेपोलियन के मनोनीत व्यक्ति को वेनिस का बिशप नियुक्त करने से मना कर दिया। १८०७ में फ्रांस की सेनाओं ने इटली का कुछ प्रदेश छीन कर अपने राज्य में मिला लिया। १८०८ में रोम पर अधिकार करने पर पोप के अधिकृत सारे राज्य वस्तुतः फ्रांस के प्रदेश बन गए। १८०९ में 'अपने महान् पूर्वज चार्लेमेन्गे' के दान को वापस छीन कर रोम को औपचारिक रूप से फ्रांस के साम्राज्य में मिला लिया। जून, १८०९ में पोप ने नेपोलियन का बहिष्कार कर दिया और जुलाई, १८०९ में पोप को बन्दी बना कर बन्दी-गृह में डाल दिया गया।

पोप ने फ्रांस के धर्माचार्य (Bishop) नियुक्त करने से मना कर दिया और नवम्बर, १८०९ में नेपोलियन ने फ्रांस के लिए एक धर्म-आयोग (Ecclesiastical Commission) बैठाया। किन्तु आयोग ने नेपोलियन की इच्छा के अनुकूल कार्य करने से इनकार कर दिया। इसलिए जनवरी, १८१० में इसे समाप्त कर दिया गया। फरवरी, १८१० में सीनेट ने आज्ञप्ति निकाली कि सारे पोप अपने अभिषेक के समय तथा सारे धर्माचार्य, जो फ्रांस के साम्राज्य में हैं, उन्हें गैलेशियन आरटिकिल्स (Gallican Articles) स्वीकार करने पड़ेंगे। इस आज्ञा की अवज्ञा करने के कारण बहुत से पादरियों को कोर्सिका द्वीप में देश-निकाला देकर भेज दिया गया। अगस्त, १८११ में राष्ट्रीय सभा ने आज्ञा दी कि धर्माचार्यों के स्थान बारह महीने से अधिक समय तक रिक्त नहीं रहने चाहिएँ। यदि पोप छः महीने की अवधि में धर्माचार्यों की नियुक्ति नहीं करता तो मेट्रोपॉलिटन (Metropolitan) को नियुक्ति का अधिकार दे दिया जाये। इस आज्ञा को वैध बनाने के लिए पोप की स्वीकृति अनिवार्य थी किन्तु पोप ने अनुमति देने से इनकार कर दिया। जून, १८१२ में पोप को फोन्टेनब्ल्यू (Fontainbleau) लाया गया और जनवरी, १८१३ में पोप ने नेपोलियन के साथ एक नया कोनकार्डट किया जिसके अनुसार मेट्रोपोलिटन (Metropolitan) को अधिकार दिया कि वह नेपोलियन द्वारा नियुक्त धर्माचार्यों को मान्यता दे सकेगी। पोप ने अपना निवास-स्थान आविग्नोन (Avignon) बना कर और २० लाख

फ्रैंक वार्षिक का राजस्व लेकर अपने सारे प्रशासनिक और क्षेत्रीय अधिकार स्वतः छोड़ दिये। किन्तु पोप ने इस अनुबन्ध का विरोध किया और घोषणा की कि उसने बन्दी होने की अवस्था में इस पर हस्ताक्षर किये थे। १८१४ में जब नेपोलियन ने अपनी स्थिति दुर्बल देखी तो उसने पोप को आस्ट्रिया को सौंप दिया, जहाँ उसे मुक्त कर दिया गया। १८१४ में पोप को पुनः उसके पद पर बैठा दिया गया।

(६) संहिताएँ (Codes) (१८०४-१०)—नेपोलियन के सारे कार्यों में सबसे दीर्घजीवी कार्य कानून-संहिताएँ थीं। इन संहिताओं का निर्माण समितियों ने किया जिन्हें नेपोलियन ने नियुक्त किया था और उसने स्वयं इनके अनेक सम्मेलनों में भाग लिया। उसने अपनी 'कुशाग्र बुद्धि और वैधानिक सूझ' द्वारा इन समितियों के कार्य में सहायता दी। यह कहना कि स्वयं नेपोलियन को इन संहिताओं के बनाने का श्रेय है, गलत होगा। हाँ, इतना अवश्य है कि इन संहिताओं को व्यवस्थित करने तथा प्रयोग में लाने का श्रेय नेपोलियन को ही है। कुछ एक त्रुटियों को छोड़कर ये संहिताएँ सम्पूर्ण, सरल और न्याययुक्त थीं। इन संहिताओं ने क्रांति के कार्य को ठोस बनाया, जिसके द्वारा एक ऐसे शासन की स्थापना हुई जिसमें भू-स्वामी वर्ग का आधार, धर्म के अत्याचारों से अछूते नागरिक कानून, अधिकतम समानता के आधार पर राजस्व और ऐसे कानून जिनके द्वारा, प्रत्येक मानव के समान अधिकार हैं, घोषणा की गई है, समान कानूनों की व्यवस्था जो सरल तथा क्रियात्मक रूप से शीघ्रता से कार्य करने वाली थी, वास्तव में फ्रांस के लिए एक महान् वरदान थी।

इन संहिताओं के बनाने में विधि-विशेषज्ञों के सहयोग के विषय में नेपोलियन ने कहा, "पहले मेरा यह विचार था कि कानूनों को ज्यामिति के सिद्धान्तों की तरह इतना सरल बना सकना सम्भव होगा कि जो भी इन्हें पढ़े और दो विचारों का सम्पर्क स्थापित करे, इनके आधार पर न्याय कर सकेगा। किन्तु मुझे तुरन्त ही इस धारणा की मूर्खता का पता लगा। मैंने अनुभव किया कि कानूनों में अत्यन्त सरलता, सूक्ष्मता की शत्रु है। अत्यधिक सरल कानून बनाना असम्भव है क्योंकि ऐसा करने पर गुत्थी सुलझाने की अपेक्षा बहुधा काटनी पड़ेगी।"

अगस्त, १८०० में नेपोलियन ने चार विधि-विशेषज्ञों की एक समिति नागरिक कानून-संहिता (Civil Code) बनाने के लिए स्थापित की जिसने अपना कार्य पूर्ण किया। इसके अनुसार परिवार पर पिता का अधिकार दृढ़ हो गया और परिवार को पूर्णरूपेण प्रमुख के अधिकार में रखा गया। पिता को अपने पुत्रों को बन्दी बनाने का अधिकार था तथा विवाह से पूर्व पिता की आज्ञा आवश्यक थी। वह अपनी सन्तान की सम्पत्ति की आय उनकी १८ वर्ष की आयु तक ले सकता था। पत्नी अपने पति के अधिकार में थी, वह बिना पति की आज्ञा के सम्पत्ति को खरीद अथवा बेच नहीं सकती थी। रोमन कैथोलिक धर्म की नीति के विरुद्ध 'विवाह विच्छेद' को मान्यता दी गई थी। तलाक केवल पारस्परिक अनुमति, व्यभिचार, अत्याचार और गम्भीर अपराधों की अवस्थाओं में ही वैध था। ब्याज की दर कानून द्वारा नियत

कर दी गई थी। कोई भी व्यक्ति वसीयत द्वारा अपनी आधी सम्पत्ति से अधिक बेच नहीं सकता था।

नेपोलियन के आदेशानुसार एक संहिता दीवानी की व्यवस्था के लिए बनाई गई थी। इसका मूल सिद्धान्त था कि न्यायालय में आने से पूर्व आपसी समझौते का प्रयत्न अवश्य ही किया जाना चाहिए। किन्तु संहिता द्वारा निर्देशित व्यवस्था धीमी और खर्चीली सिद्ध हुई, अतः इसमें संशोधन करने पड़े। 'फौजदारी' के लिए भी व्यवस्था की गई। मृत्यु-दण्ड, कैद या जीवन भर के लिए देश-निकाला, दाग देना, अथवा सम्पत्ति को ज़ब्त करने की व्यवस्था थी। भिन्न-भिन्न अपराधों के लिए अधिकतम और निम्नतम दण्ड निर्धारित किये गए। आरम्भिक न्यायाधीश तथा प्रादेशिक न्यायालय नियुक्त किये गये। अपराध सिद्ध करने के लिए नहीं, अपितु न्याय-गर्भित निर्णय पर पहुँचने के लिए ज्यूरी-प्रणाली की व्यवस्था भी की गई थी। अपराधियों पर सार्वजनिक रूप से अभियोग चलाया जाना अनिवार्य था। उन्हें वकील की सहायता प्राप्त करने का अधिकार था। अपने बचाव के लिए अपराधी साक्षियों से विवाद कर सकता था। 'बंदी प्रत्यक्षीकरण' (Habeas Corpus) प्रार्थना द्वारा अपराधियों को मुक्त कराने की व्यवस्था नहीं थी। 'फौजदारी' व्यवस्था-संहिता १८०८ में और 'दण्ड-संहिता' १८१० में प्रचलित हुई। इन दोनों संहिताओं में कठोर स्वेच्छाचारिता के आदेश थे, जिन्हें नेपोलियन ने देश में राजनैतिक अपराधों को रोकने लिए बनाया था।

व्यापार-संहिता साधारण व्यापार, समुद्री व्यापार, दिवालियापन और अन्य व्यापारिक मामलों के लिए बनाई गई थी। यह एक बहुत असंतोषजनक संहिता थी।

फिशर (Fisher) के शब्दों में, "आलोचकों ने दीवानी संहिता की, 'शीघ्रतापूर्वक खड़ा किया गया एक खोखला ढाँचा' तथा तथा कानून के मूलाधार सिद्धान्तों का एक 'छोटी-सी नोटबुक' कहकर आलोचना की है। जिस कार्य के लिए आधुनिक जर्मनों ने पन्द्रह वर्ष तक अथक परिश्रम किया, नेपोलियन ने दुस्साहस से वही कार्य चार महीनों में कर दिखाया। उसके दुस्साहस की निन्दा की गई है। यह दीवानी संहिता कितनी ही अपूर्ण क्यों न हो, न होने से तो अच्छी ही है। यदि उस समय और उस प्रकार यह कार्य पूर्ण न हुआ होता तो आज फ्रांस विधि-संहिता-विहीन होता। एक कानून २०० रिवाजों और विशेष सुविधाओं से कहीं अच्छा है। 'दीवानी संहिता' नाम की यह छोटी-सी पुस्तक, जिसे देश का प्रत्येक स्त्री-पुरुष पढ़ और समझ सकता है, एक सभ्य और प्रजातन्त्रवादी समाज की रूपरेखा को दर्शाती है तथा इसमें अनेक जातियों की प्राचीन और रूढ़ परिपाटियों को क्रान्ति-काल के असंख्य क्रांतिकारी कानूनों को साथ मिलाकर समाज के लिए उपयोगी बना दिया गया है। फिर महिला सुधारवादी और समाजवादियों को नेपोलियन के कानूनी ग्रंथों में प्रशंसायोग्य शायद ही कुछ मिले तथा वह शायद ही इनकी निन्दा का पात्र बनना चाहता था। दीवानी-संहिता समाजवादी ग्रंथों की श्रेणी में नहीं, अपितु उदार ग्रंथों

की श्रेणी में आती है। सभ्यता के इतिहास में इसका महत्त्व इस तथ्य में निहित है कि यह फ्रांसीसी क्रांति द्वारा यूरोप में लाये गये महान् सुधारों का लेखा है तथा यह इन सुधारों को अनन्त काल तक जीवित रखेगी। इन संहिताओं में क्रान्ति की मूल विजय की भावनाएँ अर्थात् नागरिक एकता, धार्मिक सहिष्णुता, खेती की उन्नति, सार्वजनिक अभियोग और पंचायत द्वारा न्याय का निर्णय सुरक्षित हैं। जर्मनी और इटली के लिए ये संहिताएँ नव-सन्देश का प्रथम सन्देश तथा इसका पूर्ण प्रौढ़ रूप था। इन्होंने यूरोप के सम्मुख स्पष्ट और समुचित रूप से वे मुख्य नियम रखे, जिनके द्वारा एक सभ्य समाज पर शासन किया जा सकता है।

नेपोलियन की संहिता केवल फ्रांस में ही नहीं, अपितु नेपोलियन की सेनाओं द्वारा विजित प्रत्येक देश पर लागू की गई। यह सत्य है कि इस संहिता के अनुसार अनेक कठोर दण्ड रखे गये थे। स्त्रियों की स्थिति स्पष्टतः पुरुषों से हीन रखी गई थी, किन्तु विश्व भर में फ्रांस की संहिताएँ सबसे सुविधाजनक और उदार तथा ज्ञानपूर्ण कानून मानी गई हैं। इसलिए नेपोलियन की 'दूसरा जस्टीनियन' कहकर प्रशंसा की जाती है।

सम्मानित सेना (Legion of Honour) की प्रथा नेपोलियन ने ही चलाई। राजशाही-काल की उपाधियाँ और सम्मान-चिह्न राष्ट्रीय सम्मेलन ने समाप्त कर दिये थे। बहुधा विशेष आज्ञा द्वारा लोगों को नागरिक मुकुट (Civic Crowns) प्रदान कर, सम्मानित किया जा सकता था। १८०२ में नेपोलियन ने 'सम्मानित सेना' प्रथा की एक समुचित योजना प्रस्तुत की। इसमें १६ कोहार्टस (Cohorts) बनाये गये। विभिन्न प्रकार के उपाधिधारियों को, यथा ग्रांड आफिसर, कमाण्डर, कवैलियर इत्यादि को कुछ भेद के साथ आजीवन अवकाश-वेतन (Life Pensions) प्राप्त होता था। नेपोलियन की अध्यक्षता में इस सेना के सदस्यों का चुनाव महती सभा (Grand Council) करती रही। जब लोगों ने विभिन्न सम्मान-चिह्नों की 'खिलौना' कहकर आलोचना की तो नेपोलियन ने उत्तर दिया कि "आप इन चिह्नों को खिलौना कहते हैं, अच्छा, किन्तु मानव-जाति पर खिलौने द्वारा ही शासन किया जाता है।"

(७) कला (Art)—अत्यधिक व्यस्तता के होने पर भी नेपोलियन कला के संरक्षण के लिए समय देता था। इसके राज्य-काल में राज्य के महलों का केवल पुनर्निर्माण ही नहीं हुआ था, अपितु इन्हें बढ़ाया भी गया था। पेरिस नगर को सुन्दर बनाया गया था। पेरिस नगर यूरोप का आनन्द नगर कहा जाने लगा। नेपोलियन के काल में इसकी जनसंख्या लगभग दुगनी हो गई थी।

(८) औपनिवेशिक साम्राज्य (Colonial Empire)—नेपोलियन ने फ्रांस के लिए एक नये औपनिवेशिक साम्राज्य की नींव डालने का निर्णय किया और इस दिशा में आशातीत तैयारियाँ भी की गई, किन्तु ब्रिटेन के समुद्री बेड़े की अजेय शक्ति के सम्मुख उसके प्रयत्न विफल हो गए। अपनी शक्ति को दुर्बल होते देख १८०३ में नेपोलियन ने ल्युसीनिया (Louisiana) का प्रदेश संयुक्त राज्य अमेरिका के हाथों बेच दिया।

यह उल्लेखनीय बात है कि नेपोलियन ने देश के आन्तरिक विरोध का बड़ी कठोरता से दमन किया। षड्यन्त्रकारियों को मृत्युदण्ड दिया गया या उन्हें देश से निकाल दिया गया। समाचार-पत्रों पर इतना कठोर नियन्त्रण था कि १८०५ की ट्राफलगर की पराजय को नेपोलियन के पतन के समय तक किसी भी समाचारपत्र ने नहीं छापा।

प्रो० मारकहम (Markham) के मतानुसार, "प्रमुख सलाहकार का मुख्य कार्य क्रांतिकाल में आरम्भ किये गए सुधारों को कार्य-रूप में परिणत कर देना था। नेपोलियन की अध्यक्षता में राज्य-सभा ने देश में विधान का निर्माण किया तथा नेपोलियन के मन्त्रियों और प्रिफैक्टों में उसे योग्य सहकारी तथा विशेषज्ञ मिले। नेपोलियन का मुख्य ध्येय कार्यों को पूर्ण करना था, १७८९ से प्रथम बार (१७९३-९४ की जन-सुरक्षा समिति को छोड़कर) फ्रांस ने एक संगठित तथा शक्तिशाली कार्य-सत्ता का अनुभव किया।" नेपोलियन ने जिन भूतपूर्व क्रांतिकारियों को शासन-यंत्र चलाने के लिए नियुक्त किया, उनके विषय में उसने कहा है कि "इन लोगों में बड़े अच्छे कारीगर थे, किन्तु इनके साथ कठिनाई यह थी कि प्रत्येक निर्माण-विशेषज्ञ बनना चाहता था। नेपोलियन के शासन को नागरिक और राष्ट्रीय, सैनिक बनाने में जितना श्रेय नेपोलियन को था उतना ही उसके मन्त्रिमण्डल को भी था।" नेपोलियन इस बात को विशेष जोर देकर कहा करता था कि "मैं एक सेनापति के रूप में फ्रांस पर शासन नहीं कर रहा हूँ, मैं तो एक नागरिक शासक हूँ। मेरे राष्ट्र को भी इस बात का विश्वास है कि मुझ में एक नागरिक शासक के गुण विद्यमान हैं।" उसने अपने शासन को चलाने के लिए सुयोग्य व्यक्तियों को बिना उनके अतीत पर ध्यान दिये, निमन्त्रण दिया था। राजशाही-काल के पुराने कर्मचारी गॉडिन (Gaudin), पोरटेलिस (Portalis), भूतपूर्व क्रांतिकारी मरलिन दे दुवाय (Merlin de Douai), ट्रिलहार्ड (Treilhard) और थिबोड्यू (Thibaudeau) नेपोलियन के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर कार्य करते थे। श्रेष्ठ प्रिफक्टों में १७८९ की प्राचीन संसद् में राजशाही का समर्थक माउनियर (Mounier) और भूतपूर्व जन-सुरक्षा समिति का नेता हत्यारा जीन-बोन-सेन्ट आन्द्रे (Jean Bon St. Andre) थे। (Napoleon and the Awakening of Europe, pp. 54-55).

विदेश नीति (Foreign Policy)—प्रमुख सलाहकार की विदेश-नीति का उल्लेख इस प्रकार है: नेपोलियन की अनुपस्थिति में मित्र-राष्ट्रों के मिस्र में होने वाले द्वितीय संगठन से उत्पन्न खतरे का मुकाबला करना उसका सर्वप्रथम कार्य था। नेपोलियन ने अपनी सूझ-बूझ के बल पर रूस के जार पर प्रभाव डाला और उसको संगठन से अलग करा दिया। इस प्रकार मैदान में केवल इंग्लैण्ड और आस्ट्रिया ही रह गये। नेपोलियन ने मोरेयु (Moreau) को आस्ट्रिया पर जर्मनी के रास्ते से आक्रमण करने के लिए भेजा और उसने स्वयं आस्ट्रिया पर आक्रमण करने के लिए इटली की ओर प्रयाण किया। उसने विशाल 'बर्नार्ड' (Bernard) दर्रे को पार

करके आस्ट्रिया की सेना से मुकावला किया और उन्हें १८०० में मारेंगो[१] के स्थान पर परास्त किया। मोरेयु ने भी होहेनलिण्डेन (Hohenlinden) में आस्ट्रिया की सेनाओं पर निर्णायक विजय पाई और इस प्रकार आस्ट्रिया का प्रतिरोध समाप्त हुआ। १८०० में लुनेविले (Luneville) की सन्धि होने पर युद्ध समाप्त हो गया और इस सन्धि से १७६७ की कैम्पो फोर्मियो की सन्धि की सारी शर्तें पुनः दोहराई गईं और फ्रांस को थोड़ा-सा लाभ भी हुआ।

अब केवल इंग्लैण्ड[२] ही मैदान में रह गया था। इस पर आक्रमण करना बड़ा कठिन कार्य था। क्योंकि फ्रांस के पास शक्तिशाली समुद्री बेड़ा नहीं था और यूरोप महाद्वीप पर इंग्लैण्ड की स्थल सेना नहीं थी जिस पर आक्रमण किया जा सकता। इसी प्रकार फ्रांस के पास समुद्री बेड़ा न होने के कारण इंग्लैण्ड भी इस पर आक्रमण नहीं कर सकता था। किन्तु नेपोलियन ने चतुरता से इंग्लैण्ड के विरुद्ध रूस, प्रशा, स्वीडन और डेन्मार्क का एक सशस्त्र निष्पक्ष (Armed Neutrality) घेरा डाल दिया। इस घेरे का उद्देश्य था कि इंग्लैण्ड निष्पक्ष जहाजों की फ्रांस के माल के लिए तलाशी न ले सके। ब्रिटेन ने बड़ी करारी चोट की। सेनापति नेल्सन ने कोपेनहेगन पर गोलाबारी की और डेनिश बेड़े को पकड़ लिया जिससे वह नेपोलियन

---

१. मोरेंगो के संग्राम के विषय में, थाम्पसन का यह मत है, "मोरेंगो अभियान को किंवदंतियों से इतनी बुरी तरह लाद दिया गया है कि इतिहासकार को बोनापार्ट के लिए उसकी विजय का भाग्यशाली श्रेय देने से डर लगता है। यह सच नहीं है (जैसा कि बोरीन का कथन है) कि उसने तीन महीने पूर्व ही नक्शे पर एक सुई लगा रखी थी कि वह उसी स्थान पर आस्ट्रिया वालों को पराजित करेगा। यह भी सच नहीं है कि उसने अपनी सेनाओं को (जैसा डेविड ने उसके विषय में कहा है) सेंट बर्नार्ड के ऊपर चढ़ा दिया, उसका खिच्चर वर्थेयर की सेना की अगली टुकड़ी से कई दिन पूर्व ही पीछे हो गया था। यह सच नहीं है कि वह एल्ब्रेडो की सड़क के किनारे सो गया था, जबकि उसकी सेनाएँ उसे न जगने देने के भय से उसके पास से धीरे-धीरे छुपकर निकल गईं।... मोरेंगो के अभियान का चतुरतापूर्ण लक्ष्य यह था कि जेनुआ को मुक्त किया जाय और लम्बार्डी से आस्ट्रिया वालों को निकाल दिया जाय। इसका समर-कला सम्बन्धी लक्ष्य यही था कि सम्राट् को शान्ति-संधि करने पर विवश किया जाय।" (Napoleon Bonaparte: His Rise and Fall, p.p. 162-64)

२. थाम्पसन के मतानुसार, "बोनापार्ट ने इस आक्रमण में चार लाभ देखे। प्रथम एकान्त में सोचा जाय, तो यह पूर्ण विजय के लिए सबसे अधिक शीघ्र तथा सबसे अधिक प्रभावशाली मार्ग था। आयरलैंड में क्रान्ति, जिसे फ्रांस की अभियानात्मक शक्ति की सहायता प्राप्त हो—उससे भी अधिक उत्तम, इंग्लैण्ड ही में एक क्रान्ति; जिसका कारण आकस्मिक आगमन और लन्दन की ओर तीव्र गमन हो, वह एक सप्ताह के भीतर युद्ध का अन्त कर सकता है। दूसरे, यदि किसी कारण से यह आक्रमण असफल रहा, तो इस प्रयोजन से फैलाई हुई गड़बड़ ब्रिटिश सरकार को शर्तों की माँग करने पर विवश करेगा। तीसरे, डोवर से केवल बीस मील दूर पर एक अभियान करने वाली शक्ति का निरन्तर भय एक मनोवैज्ञानिक संग्राम (War of Nerves) को स्थायी बनायेगा और यह एक घेरे की आवश्यकता को दुगुना कर देगा। चौथे, अभियान की धमकी रूम सागर व बिस्के की खाड़ी में से घेरा डालने वाली टुकड़ियों को शायद हटा सकेगी।" (Napoleon Bonaparte: His Rise and Fall, p. 229)

के हाथों में न पड़े। सौभाग्य से इसी समय रूस के जार पॉल की हत्या कर दी गई और यह सशस्त्र निष्पक्ष घेरा टूट गया। इंग्लैण्ड की सेनाएँ मिस्र में भी सफल हुईं और फ्रांस को मिस्र छोड़ने पर बाध्य होना पड़ा। दोनों पक्ष युद्ध से ऊब गये थे। यह किसी भी पक्ष की विजय होकर समाप्त ही नहीं होता था। इस प्रकार की परिस्थिति में इंग्लैण्ड और फ्रांस में १८०२ में अमीन्स की सन्धि हुई। इंग्लैण्ड ने फ्रांस तथा इसके मित्र-राष्ट्रों से जीते हुए सारे प्रदेश, लंका और ट्रिनिडाड को छोड़ कर, लौटा देने की प्रतिज्ञा की। उसने माल्टा द्वीप भी खाली करने की प्रतिज्ञा की। फ्रांस ने नेपल्स और पोप के राज्य वापस करने की प्रतिज्ञा की। सत्य ही कहा है कि दोनों पक्ष इस सन्धि से प्रसन्न नहीं थे फिर भी दोनों ने इसका स्वागत किया; क्योंकि इससे दोनों को साँस लेने का अवकाश मिल गया। अमीन्स की सन्धि केवल एक युद्ध-रोको समझौता सिद्ध हुई और १८०३ में पुनः दोनों देशों में युद्ध छिड़ गया। नेपोलियन को देश में अपनी शक्ति संग्रहीत करने का समय मिल गया। उसने पीडमोण्ट जीता। उसने मध्यस्थ बनकर अपनी सेनाएँ भेज कर स्विट्जरलैण्ड के मामले में हाथ डाला। हालैण्ड को उसने फ्रांस में लगभग मिला ही लिया था। उसने ब्रिटेन के विरुद्ध भारतीय राजाओं को उकसाने के लिए एक शिष्ट-दल भारत भेजा। ब्रिटेन को परेशान करने के लिए एक और दल मिस्र भेजा। ये सब चालें दोनों देशों में पुनः युद्ध आरंभ होने के लिए उत्तरदायी थीं।

मारकहम लिखता है कि अमीन्स की सन्धि टूटने के विषय में बहुत-कुछ लिखा गया है। वास्तविक रूप से ब्रिटिश सरकार त्रुटि पर थी और उसने माल्टा के द्वीप को खाली न करके इस सन्धि-पत्र को भंग किया। इस सन्धि को आरम्भ से ही 'अवकाश-काल' तथा 'प्रयोगात्मक सन्धि' माना जा रहा था। कुछ फ्रांसीसी इतिहासकारों, विशेषतः सोरेल (Sorel) ने, नेपोलियन के कार्य का समर्थन इस तर्क से किया है कि इंग्लैण्ड वास्तविक रूप से बेल्जियम फ्रांस के पास छोड़ने के लिए कभी भी तैयार नहीं था। इस आधार पर नेपोलियन का इंग्लैण्ड से बहुत से युद्ध करना उचित था, क्योंकि वह 'क्रांति के उत्तराधिकारी' के रूप में देश की प्राकृतिक सीमा को बनाये रखने के लिए उत्तरदायी था। किन्तु यह स्पष्ट है कि १७९७ में और १८०१ में इंग्लैण्ड फ्रांस की प्राकृतिक सीमा को मान्यता देने के लिए तैयार था, यदि फ्रांस की सीमा इनसे आगे न बढ़े। इंग्लैण्ड की किसी भी सरकार के लिए यह स्वीकार करना असम्भव था कि यूरोप में शक्ति का संतुलन पूर्णतः नष्ट हो जाय और महाद्वीप में फ्रांस का प्रभुत्व छा जाय, जिससे कि भविष्य में जर्मनी के विलियम द्वितीय और हिटलर की धमकियों का प्रतिरोध किया गया। महाद्वीप पर प्रभाव रखने वाली शक्ति समुद्री बेड़े बनाने के यूरोप भर के साधनों को जुटा सकती थी और इंग्लैण्ड की सामुद्रिक शक्ति को चुनौती देकर उसके अस्तित्व तक को मिटा सकती थी।

नेपोलियन ने इंग्लैण्ड के अधिकृत हेनोवर को छीना। १८०३-४ के समय में इंग्लैण्ड पर आक्रमण करने की तैयारियाँ होती रहीं। फिशर (Fisher) कहता है कि इंग्लैण्ड पर एक सफल आक्रमण करने के लिए तीन चीजों का होना अनिवार्य

था—यथा एक शक्तिशाली सेना, सेना को पहुँचाने के लिए पर्याप्त संख्या में समुद्री जंहाज और उनकी रक्षा के लिए शक्तिशाली युद्ध के जहाज। नेपोलियन इस कार्य के लिए पर्याप्त सेना संगठित करने में सफल हुआ। पूरी शक्ति लगाकर भी वह
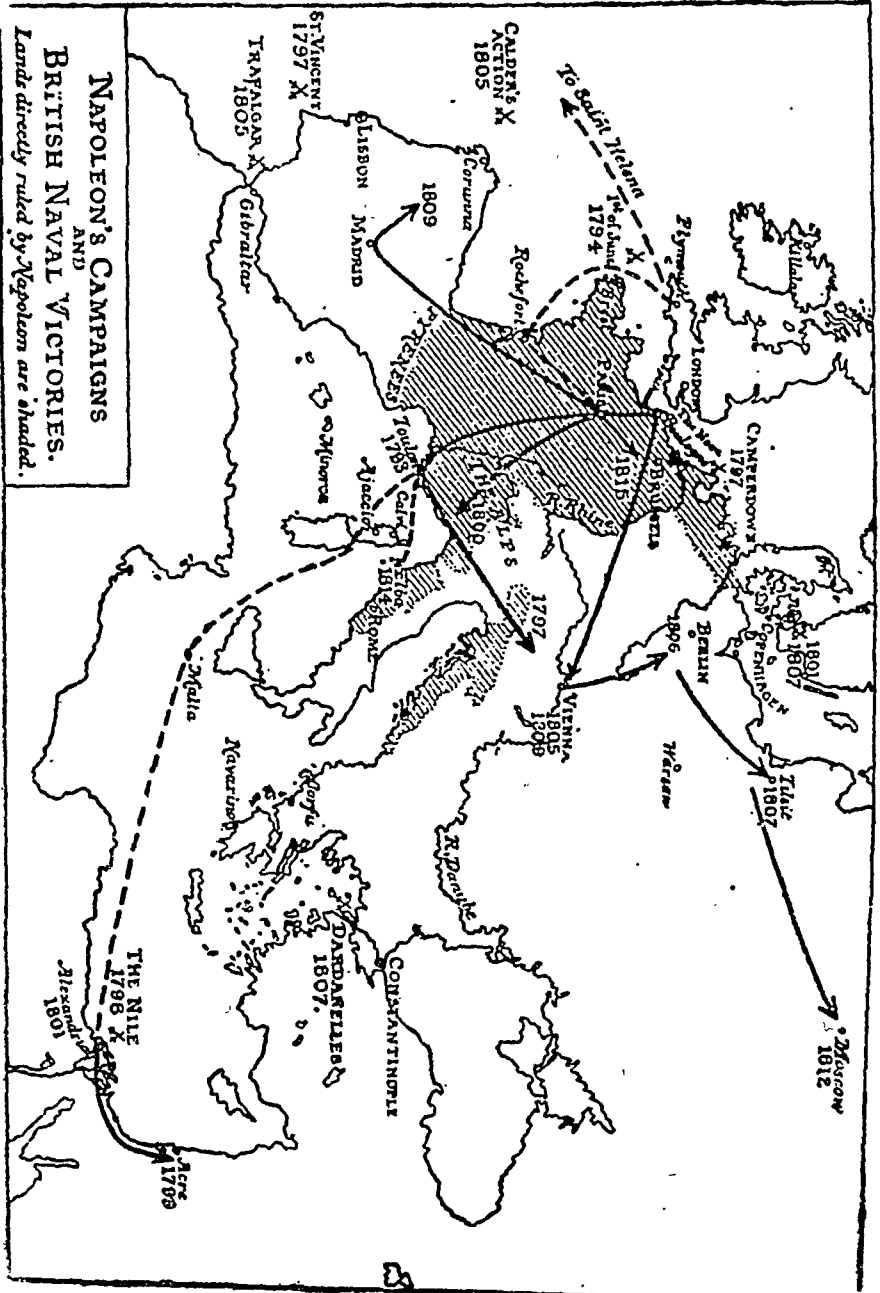
अपनी सेना को ले जाने के लिए पर्याप्त संख्या में जहाज इकट्ठे नहीं कर पाया। जहाँ तक सेना तथा सेना को ले जाने वाले जहाजों की रक्षा के लिए शक्तिशाली

जहाजी बेड़े का सम्बन्ध है, नेपोलियन पूर्णतः असफल रहा। १८०५ की ट्रेफलगर की लड़ाई में नेपोलियन की पराजय इन परिस्थितियों में आश्चर्यजनक नहीं है। लार्ड नेल्सन युद्ध में काम आया, किन्तु ब्रिटेन ने इंग्लिश चैनल पर अपना प्रभुत्व जमा लिया।

नेल्सन

प्रो० मारकह्म (Markham) के अनुसार, नेपोलियन द्वारा इंग्लैण्ड के विरुद्ध १८०३ से १८०५ की आक्रामक तैयारियाँ एक धोखा था, जिसकी आड़ में वह सारे महाद्वीप की शक्तियों को उलट देने में समर्थ एक शानदार सेना का संग्रह और उसे शिक्षित करना चाहता था। सबसे पहले स्वयं नेपोलियन ने आक्रमण की असफलता के लिए यह सफाई दी। उसने जनवरी, १८०५ में राज्य-सभा में कहा कि बोलोने की छावनी महाद्वीप की शक्तियों को भ्रम में डालने के लिए एक धोखा है। किन्तु नेपोलियन द्वारा किये गये उस समय के पत्र-व्यवहार को देख कर, जिसमें आक्रमण के विषय में निरन्तर ज़ोरदार तैयारियों का वर्णन है, इस तथ्य पर पहुँचे बिना नहीं रहा जा सकता, कि कुछ भी हो, १८०५ में आक्रमण करने का उसका पूर्ण और दृढ़ निश्चय था। यह बात सन्देहास्पद है कि क्या वह युद्ध-पोतों की रक्षा के बिना ही अपनी सेना को डोंगियों में बिठाकर इंग्लिश चैनल को पार करता? अमीन्स (Amiens) की सन्धि से पूर्व ही डोंगियों की एक बड़ी सेना तैयार करनी आरम्भ कर दी गई थी और नेपोलियन इस आक्रमण के साधन की बजाय, इंग्लैण्ड को डराने का साधन मात्र मानता था। १८०३-४ में इस बेड़े को और बहुत बड़ा कर दिया गया और इसमें विभिन्न प्रकार की नावों की संख्या २००० थी। ये बड़ी कठिनाई से

एक लाख व्यक्ति और उनके प्रसाधन को ले जा सकती थीं। इसमें तनिक भी संशय नहीं है कि एक बार इंग्लैण्ड के तट पर उतर जाने के बाद वे अवश्य ही लन्दन को विजय कर लेते। उस समय ब्रिटेन भर में १० लाख सेना थी, तथा पिट द्वारा संगठित गृह-सेना नेपोलियन के कुशल योद्धाओं के सम्मुख कुछ भी शक्ति नहीं रखती थी। बहुत सम्भव है कि नेपोलियन नावों के इस बेड़े को अकेला चैनल पार करने के लिए न भेजना चाहता हो और उसने इसे उस समय तक के लिए एक शक्तिशाली भय के रूप में बनाये रखा हो जब तक कि उसका बेड़ा, चैनल को पार करते समय सेना की रक्षा करने योग्य पर्याप्त शक्तिशाली न बन जाय।"

सम्राट् के रूप में नेपोलियन (Napoleon as Emperor) (१८०४-१४)—१८०२ में नेपोलियन ने प्रमुख सलाहकार के पद की १० वर्ष की अवधि को जीवन भर के लिए बढ़वा दिया तथा अपने उत्तराधिकारी को नियुक्त करने का अधिकार भी प्राप्त कर लिया। १८०४ में सीनेट ने नया संविधान पारित किया तथा नेपोलियन को सम्राट घोषित किया; क्योंकि "यह परिवर्तन फ्रांस की जनता के हित के लिए अत्यन्त आवश्यक है।" नेपोलियन ने स्वयं यह कहा कि "मैंने फ्रांस के राजमुकुट को धरती पर पड़े पाया और मैंने इसे अपनी तलवार की नोक से ऊपर उठा लिया।" वह १८१४ तक सम्राट् रहा और लिपजिग की लड़ाई के पश्चात् उसे सम्राट् पद त्याग कर ऐलबा के द्वीप में अवकाश-ग्रहण करना पड़ा। ऐलबा से वापस आकर वह पुनः १०० दिन फ्रांस का सम्राट् बना और १८१५ में फिर वाटरलू की लड़ाई में हार गया। उसके बाद वह पेरिस चला गया और उसे ब्रिटेन के सम्मुख आत्मसमर्पण करने के लिए विवश होना पड़ा। उसे सेण्ट हेलेना द्वीप में भेज कर देशनिकाला दे दिया गया और वहाँ सात वर्ष पश्चात् १८२२ में उसकी मृत्यु हो गई। उसकी वसीयत थी, "मेरी अन्तिम इच्छा है कि मुझे सीन नदी के तटों पर फ्रांस की जनता के बीच जिसे मैं अत्यधिक प्रेम करता हूँ, दफनाया जाय।"

यह लिखा जा चुका है कि १८०५ में ट्रैफलगर के समुद्री युद्ध में नेपोलियन परास्त हुआ। किन्तु अपनी असफलता पर शोक करने में समय नष्ट न करके उसने स्थल पर अपनी शक्ति की महत्ता का पूरा लाभ उठाने का निर्णय किया। उसने दिसम्बर, १८०५ में आस्टरलिट्ज के स्थान पर आस्ट्रिया और रूस को बड़ी करारी हार दी। यह विजय इतनी निर्णायक हुई कि इसके साथ ही तृतीय मित्रराष्ट्र-संगठन टूट गया। इस सूचना को सुनकर पिट ने कहा, "यूरोप के मानचित्र को लपेट दो, क्योंकि आगामी दस वर्ष तक इसकी आवश्यकता नहीं होगी।"[1]

रूसियों ने संधि नहीं की और बड़ी अव्यवस्था में वापस निकल आए। लेकिन आस्ट्रिया वालों ने प्रेसबर्ग की अपमानजनक संधि कर ली। इस सन्धि के अन्तर्गत आस्ट्रिया ने वेनेशिया इटली के राज्य को दे दिया जिसका नरेश भी नेपोलियन स्वयं ही था। आस्ट्रिया के हाथ में केवल ट्रीस्टे का बन्दरगाह रहा। अब आस्ट्रिया नहीं, बल्कि फ्रांस ही भविष्य में मुख्य एड्रियाटिक सत्ता हो सकता था। बैवेरिया

1. "Roll up the map of Europe, it will not be wanted these ten years."

और बेडेन ने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध में नेपोलियन का साथ दिया था और इसलिए आस्ट्रिया दक्षिणी जर्मनी में उन्हें अपने कुछ कीमती भाग देने पर बाध्य हो गया था। एड्रियाटिक और इटली से निकाल दिए जाने पर आस्ट्रिया को तीस लाख जन-संख्या की हानि हुई। व्यावहारिक दृष्टि से आस्ट्रिया एक भूमि से गिरा देश हो गया। वह अन्य ऐसे परिवर्त्तन करने के लिए भी बाध्य हो गया जोकि नेपोलियन ने किए थे या अन्य देशों में वह करने वाला था।

१८०६ के प्रारम्भिक महीनों में नेपोलियन ने चार राजाओं का निर्माण किया। जो उपकारजनक क्षतिपूर्ति उन्होंने अपना राजा के साथ सम्बन्ध बनाए रख कर की, उसके बदले में नेपोलियन ने बैवेरिया व बुर्टेमबर्ग की जागीरदारी को राज्यों के स्तर पर उठा दिया। चूँकि नेपल्स के राजा ने शत्रुओं का साथ दिया था, नेपोलियन ने वहाँ का बोरबोन नरेश हटा दिया और वहाँ की गद्दी पर उसी के भाई जोसेफ़ को बिठा दिया। नेपोलियन ने हालैण्ड के बैवेरियन गणतन्त्र को राजतन्त्र में बदलने और अपने भाई लुई नेपोलियन को वहाँ का राजा स्वीकार करने पर विवश कर दिया। १८०६ में नेपोलियन ने पवित्र रोमन साम्राज्य का भी अन्त कर दिया और उसकी जगह र्‌हायन का अर्ध-संघ स्थापित किया।

१८०६ में प्रशिया जेना और ऑरस्टाड (Jena and Aurstadt) की लड़ाइयों में परास्त हुआ और नेपोलियन ने बर्लिन में विजयोल्लास से पदार्पण किया। इसी स्थान से 'बर्लिन-आज्ञप्ति' के नाम से प्रसिद्ध आज्ञा १८०६ में प्रसारित हुई जिसके अनुसार यूरोप महाद्वीप प्रणाली (Continental System) का प्रारम्भ हुआ। १८०७ में प्रशिया फ्रिडलैण्ड की लड़ाई में परास्त हुआ और ज़ार को टिलसिट की सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े। इस सन्धि के अनुसार ज़ार ने स्वीकार किया कि वह रूस में ब्रिटेन का माल नहीं आने देगा। रूस और फ्रांस के बीच यूरोप को परस्पर बाँटने का समझौता हुआ। किंवदन्ती है कि ज़ार अलेक्जेण्डर ने नेपोलियन से कहा "यूरोप क्या है? यह कहाँ है? यदि यह तुम और मैं नहीं हैं तो?"

जर्मनी (Germany)—आस्ट्रिया और प्रशिया की पराजय के पश्चात् सारा जर्मनी नेपोलियन के हाथों में आ गया। उनके हृदय में पवित्र रोमन साम्राज्य के प्रति कोई श्रद्धा नहीं थी। उसने रूस की संसद् को 'बन्दरों का एक दयनीय घर' बताया। अनेक योजनाएँ बनाई गईं और अन्त में जुलाई १८०६ में र्‌हायन-संघ की स्थापना हुई। संघ का मुख्य उद्देश्य जर्मनी के सारे प्रदेशों को तीन मुख्य टुकड़ों में बाँट देना था: "प्रशिया उत्तर में, आस्ट्रिया दक्षिण और पूर्व में शासन करे। पश्चिम में र्‌हायन-संघ का एक नया, आस्ट्रिया और प्रशिया दोनों से स्वतन्त्र, राज्य बनाया जाय जो फ्रांस की संरक्षकता में रहे। इस संघ के सदस्य १६ राज्य स्वतन्त्र और पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न होंगे।" फ्रैंकफर्ट में एक संसद् की स्थापना हुई जिसमें संघ के सामूहिक हितों पर विचार होता था। किन्तु इस संसद् का कोई अधिवेशन नहीं हुआ और इसका संविधान निरर्थक रहा। नेपोलियन को संघ का संरक्षक नियुक्त किया गया। उसे इस निर्णय का अधिकार सौंपा गया कि युद्ध होने की स्थिति में किस राष्ट्र को

कितनी सेना देनी होगी। इसके सदस्यों को किसी भी सदस्य राष्ट्र के युद्धग्रस्त होने पर अनिवार्य रूप से युद्ध में भाग लेना पड़ता था। ६ अगस्त, १८०६ को सम्राट् फ्रांसिस ने अपनी उपाधि को त्याग दिया और इस प्रकार पवित्र रोमन साम्राज्य का अन्त हो गया।

१८०६ में आस्ट्रिया के परास्त होने पर राष्ट्रवादियों को शासन पर नियंत्रण रखने का अवसर प्राप्त हुआ। फ्रेड्रिक विलियम को हार्डनबर्ग और स्टाईन को मन्त्री नियुक्त करने के लिए विवश कर दिया गया। सितम्बर, १८०७ में हार्डनबर्ग ने कहा कि "फ्रांस की क्रांति ने, वर्तमान युद्ध जिसके अनुगामी हैं, फ्रांस को उथल-पुथल और रक्तपात के बीच एक अप्रत्याशित शक्ति प्रदान की है। नये सिद्धान्तों की शक्ति इस प्रकार है कि जो भी राष्ट्र इन्हें स्वीकार नहीं करेगा, वह या तो परास्त करके घुटने टेकने को विवश कर दिया जायेगा या नष्ट हो जायेगा। वर्तमान युग की भावना ही यह है कि राजशाही सरकार में प्रजातंत्रीय सिद्धान्तों का समावेश हो।"

इस नीति से मन्त्रिमण्डल में सुधार हुए, मुजारेदारी तथा जागीदारों के कर समाप्त हो गए, नागरिकों को स्वायत्त शासन मिला और सेना में सुधार हुआ। स्वतन्त्रता की घोषणा के शब्द थे, "१८१० में सेण्ट मार्टिन दिवस से प्रशिया में केवल स्वतन्त्र नागरिक ही निवास करते हैं।" मुजारों को बेगार से तथा जागीरदारों को अमलदारी से छुटकारा मिला। उन्हें सेना में अपमानजनक शारीरिक दण्ड नहीं दिया जा सकता था। जिन खेतों को वे अन्य लोगों के लिए बोते-जोतते थे वे उनकी अपनी सम्पत्ति बन गए और उन्हें धरती बेचने का अधिकार भी प्राप्त हुआ। स्टाईन स्वतन्त्र व्यापार का समर्थक था। प्रशिया के नगरों के बीच तथा देश के अन्य प्रदेशों के बीच कानूनी प्रतिबन्ध तोड़ दिये गये।

स्कार्नहोर्स्ट, जिनीसेनू और क्लाजविट्ज, इन तीन व्यक्तियों ने सेना में सुधार किये। स्कार्नहोर्स्ट ने धार्मिक उत्तेजना की तरह एक नई सेना का संगठन किया। जिनीसेनू आदर्शवादी था; उसने सेना के कार्य में अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति की। क्लाजविट्ज सैनिक मोर्चेबन्दी की विद्या का पण्डित था। जर्मनी की परिस्थिति के अनुसार उसने नेपोलियन द्वारा प्रचालित सब बातों को अपनाया। १८१४, १८६६ और १८७० में जिन चालों और मोर्चेबंदियों से प्रशिया की विजय हुई, उन सब का जन्मदाता इसे ही माना जाता है। सुधारों के कारण प्रशिया की सेना राष्ट्रीय सेना बन गई। सभी विदेशियों को निकाल दिया गया। विशेषाधिकारों की परिपाटी समाप्त कर दी गई। पदाधिकारियों का चुनाव सामाजिक स्थिति के आधार पर नहीं अपितु योग्यता के आधार पर होने लगा। प्रत्येक नागरिक के लिए सैनिक सेवा अनिवार्य हो गई। सेना अब अनाचार का घर नहीं रहा, अपितु एक सम्मानित व्यवस्था बन गई। सैनिकों की सेवा-अवधि घटा दी गई, जिससे कि अधिकाधिक लोगों को सैन्य-शिक्षा मिल सके और उन्हें सुरक्षित सेना में रखा जा सके।

बर्लिन विश्वविद्यालय की स्थापना हुई और बहुत बड़ी संख्या में महान् विद्वान् इसकी ओर आकर्षित हुए। जमनी की जनता के लिए यह विश्वविद्यालय

प्रेरणा का स्रोत बन गया । फिश्ट (Fichte) और स्कलियरमाचर (Schleiermacher) ने जनता में देशभक्ति की भावना जगाई । आर्नडट के काव्यों ने भी यही किया । १८०८ में कोइन्सवर्ग में सदाचार-संघ (Tugendbund) की स्थापना हुई । इस संस्था ने देश-भक्ति और आदर्शवाद की भावनाओं को शक्ति प्रदान की । एफ़ एल. जाहन (F. L. Jahan) ने जिमनास्टिक समिति की स्थापना की और देश में जनमत को बढ़ावा मिला ।

स्पेन के विद्रोह के समाचारों से उत्तेजित होकर १८०८ में स्टाईन ने जर्मनी में भी विद्रोह करने का प्रयत्न किया । स्टाईन का एक पत्र नेपोलियन के हाथ लग गया, अतः उसने स्टाईन को तत्काल निकाल देने की माँग की । राजा को झुकना पड़ा और नवम्बर १८१४ में स्टाईन को पदच्युत कर दिया गया । स्टाईन ने ज़ार के यहाँ नौकरी कर ली और नेपोलियन के विरुद्ध कार्य करता रहा ।

यह स्मरणीय है कि जुन्करवर्ग के जागीरदारों के विरोध के कारण स्टाईन की सारी योजनाएँ धरी-की-धरी रह गईं । स्टाईन के निकालने की खबर को सुनकर सेनापति वान यार्क ने कहा—"अच्छा हुआ, इन पागल व्यक्तियों में एक कम हो गया; बाकी के साँप स्वयं अपने विष से ही मर जायेंगे ।" केवल एक ही प्रभावशाली सुधार हुआ कि १८१४ के समाप्त होते-होते प्रशिया की सेना इतनी शिक्षित हो गई कि नेपोलियन से लोहा ले सके ।

महाद्वीप की व्यवस्था (The Continental System)—फ्रांस के विरुद्ध
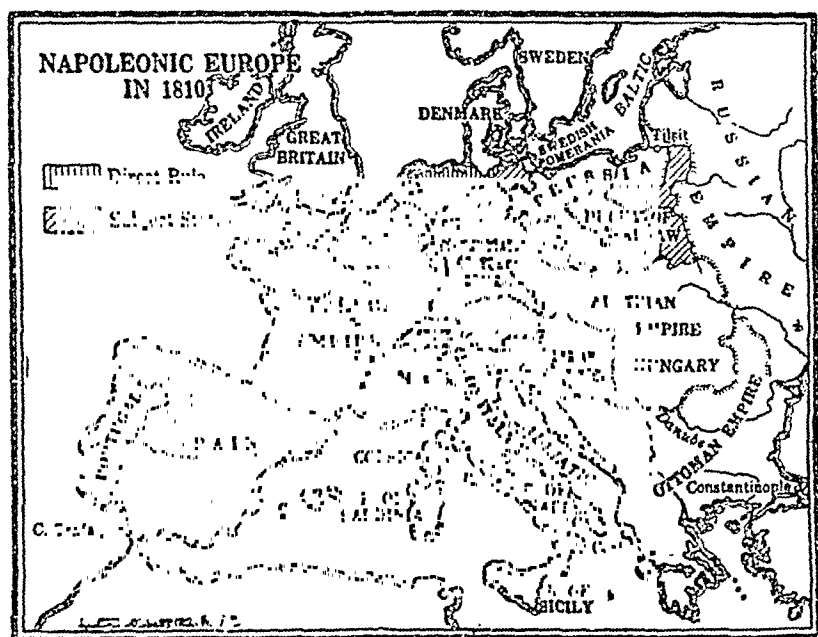
बनने वाले सारे संगठनों की आत्मा इंग्लैण्ड था । नेपोलियन ने इंग्लैण्ड के घुटने झुकाने के लिए अत्यन्त प्रयत्न किया, किन्तु १८०५ में वह ट्रेफलगर की लड़ाई में

हार गया । इंग्लैण्ड व्यापारियों का राष्ट्र होने के कारण, व्यापार के माध्यम से इस पर आक्रमण किया जा सकता था। नेपोलियन ने आस्ट्रिया को आस्टरलिट्ज़ के युद्ध (१८०५) में, प्रशिया को जीना की लड़ाई (१८०६) में, और रूस को फ्रीडलैण्ड की लड़ाई (१८०७) में परास्त करके यह अनुभव किया कि वह इंग्लैण्ड पर उसके सबसे कोमल स्थान पर आक्रमण करने में समर्थ था। इस प्रकार का सुझाव फ्रांस के सम्राट् को एक स्मृति-पत्र देते समय १८०५ में मोण्ट गिलार्ड ने दिया था । यह स्मृति-पत्र महाद्वीप-प्रणाली का आधार माना जाता है । मोण्ट गिलार्ड के शब्दों में, "इंग्लैण्ड पर व्यापार के माध्यम से ही आक्रमण करना चाहिए, उसे एशिया, अमरीका और यूरोप में धन कमाने देना, उसे हाथों सहित छोड़ देना और संघर्षों और युद्धों को अनन्तकाल तक चलाना है। ब्रिटेन के व्यापार को नष्ट करना मानो इंग्लैण्ड के हृदय पर आघात करना है।"

थाम्पसन ने नेपोलियन के विचारों को इन शब्दों में रखा है : "उसने कहा, प्रथम, फ्रांस एक आत्म-संतुष्ट राज्य है जो अपने उत्पादन पर निर्भर है और न कि अपने समुद्र-पार के प्रदेशों पर, जैसे कि एक झोंपड़ी का स्वामी अपनी भूमि व अपने उद्यान की पैदावार पर निर्भर रहता है। वह बाह्य साधनों से अपना धन प्राप्त नहीं करता है, सिवाय उन बलातमक अनुदानों के जो वह अपने विजित देशों से पाता है। लेकिन ब्रिटेन तो एक उत्पादन व व्यापार करने वाला देश है जो इतना अधिक माल बनाता है कि उसे दूसरे राज्यों में बेचा जाता है और अन्य व्यापारियों की तरह उस माल के वाहन तथा विक्रय के बदले में धन कमाता है। यदि उसे उस व्यापार चलाने से रोक दिया जाए तो उसके धन की पूर्ति रुक जायेगी, उसका दिवाला निकल जायेगा और फिर वह अपने द्वारा या अपने मित्रों द्वारा चलाए युद्ध को संचालित न रख सकेगा।

"दूसरे, इंग्लैण्ड को (सोने के रूप में) धन की आवश्यकता है जिससे वह अपनी ओर जमा हुए विशाल राष्ट्रीय ऋण का भुगतान कर सके और अपनी बढ़ी हुई कागजी मुद्रा को सँभाल सके, और वह अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। वस्तुतः १८०२ में यह ऋण ५०७ मिलियन पौंड था। १९१४ में युद्ध छिड़ने के समय केवल ८० मिलियन ऋण घट चुका था, जबकि इस पर औसतन १८ मिलियन पौंड प्रति वर्ष व्याज देना पड़ता था। १७९७ में बैंक आफ इंग्लैंड में सुरक्षित सोना घट कर लगभग एक मिलियन पौंड रह गया था और यह पुनः खतरे के विंदु तक पहुँच सकता था यदि धन के बदले में वस्तुओं का निर्यात करने की जगह इंग्लैंड को निर्यात करने से रोक दिया जाता या आयात किए हुए माल के बदले में तुरन्त धन का भुगतान करना पड़ता।

"उसने कहा कि तीसरे, क्रान्ति से फ्रांस ने कृषि, नागरिकता और फर्स्ट कौंसुल, जो देश की आवश्यकता को पहचानता था और प्राप्ति के सारे साधनों को कण्ट्रोल करता था, के आधार पर अपने सामाजिक वर्गों को मिला लिया था और अपने प्रशासन में एकता बना ली थी। जबकि ब्रिटेन में अब भी राजनीतिक सत्ता राजतन्त्र, कुलीन-तन्त्र, कृषकों व दूकानदारों के बीच झगड़े का करण बनी हुई थी। देश को

जमींदारों के विरोधी हितों ने फाड़ रखा था व इसी के कारण लन्दन का नगर व्यापारिक दिवालियेपन के किनारे पर था, श्रम वर्गों में हड़तालें और खाद्य वस्तुओं के मूल्य में भयानक उतार-चढ़ाव—सारे वही चिह्न जो १७८६ की क्रान्ति से पहले हो चुके थे—की स्थिति आ चुकी थी। ऐसा विश्वास किया जाता था कि इन कठिनाइयों को उन सस्ती वस्तुओं के उत्पादन ने पैदा किया था जो देश की आवश्यकताओं से अधिक था। ऐसी स्थिति में विदेशी बाजारों का बन्द होना स्वयं ही आर्थिक दिवालियापन, बेकारी व राजनीतिक व्याकुलता उत्पन्न करता जो सरकार को शान्ति की माँग पर बाध्य करने के लिए पर्याप्त था।"

(Napoleon Bonaparte : His Rise and Fall, pp. 224-25)

नेपोलियन को अपने हृदय में इस बात का पूर्ण विश्वास हो गया था कि इंग्लिश चैनल को पार करके इंग्लैण्ड पर आक्रमण करना उसके लिए असम्भव कार्य है। उसके अपने शब्दों में, "बोलोने से फोकस्टोन सेना भेजने की अपेक्षा पेरिस से देहली सेना भेजना सरल कार्य है।" ब्रिटेन की समुद्री सेना उसके लिए एक अगम्य रोक थी। इंग्लैण्ड की उन्नति मुख्यतः व्यापार पर निर्भर थी और यदि इसे नष्ट कर दिया जाता तो इंग्लैण्ड के घुटने टिक जाते। जो योजना उसने बनाई वह एक भयानक जुआ था, लेकिन इंग्लैण्ड को नीचा दिखाने के लिए नेपोलियन इस भयानक कार्य को करने के लिए भी तैयार था। जिस योजना को उसने अपनाया वह महाद्वीप-प्रणाली के नाम से प्रसिद्ध है और इसका उद्देश्य इंग्लैण्ड का आर्थिक प्रतिरोध करना था।

प्रसिद्ध 'बर्लिन-राजाज्ञा' द्वारा १८०६ में नेपोलियन ने इस योजना की घोषणा की। इस आज्ञप्ति में इस बात का आदेश था कि अब से इंग्लैण्ड के द्वीपों पर रोक लगा दी गई है। इनसे सब प्रकार का व्यापार करना निषिद्ध है। इंग्लैण्ड को जाने वाले जहाज, पत्र और माल की गाँठें तथा यूरोप महाद्वीप में फ्रांस की अथवा इसके मित्र-राष्ट्रों की सीमाओं के भीतर इंग्लैण्ड के माल के गोदाम, सब ज़ब्त कर लिए जायेंगे। इंग्लिश माल, इसके तमाम जहाज तथा इसके उपनिवेशों से लाये गए कच्चे माल से लदे जहाज़ों को सारे यूरोप तथा निष्पक्ष देशों की बन्दरगाहों में ठहरने नहीं दिया जाएगा। महाद्वीप-व्यवस्था को, वारसा (१८०७), मिलान (१८०७) और फोण्टेनब्ल्यू (१८१०) की राजाज्ञा द्वारा और भी बल प्राप्त हुआ। मिलान की राजाज्ञा में घोषणा की गई थी कि ब्रिटेन की किसी भी बन्दरगाह से चलने वाले जहाज़ों को फ्रांस के युद्धपोत या अन्य जहाज़ पकड़ लें। १८१० की आज्ञप्ति में तो सारे फ्रांस-साम्राज्य में इंग्लैण्ड के माल को ज़ब्त करने तथा सार्वजनिक रूप से जला देने का आदेश दिया गया। १८०७ में संसद् के आदेशों (Orders-in-Council) द्वारा ब्रिटेन की सरकार ने भी इसका उत्तर दिया। इन आदेशों के अनुसार फ्रांस तथा इसके मित्र-राष्ट्रों के साथ व्यापार करने वाले सभी जहाजों को पकड़ने का आदेश दिया गया। किन्हीं निष्पक्ष देशों के जहाजों को यूरोप के किसी भाग की ओर आगे बढ़ने से पहले इंग्लैण्ड की बन्दरगाहों पर जाना होता था।

निष्पक्ष राष्ट्रों से ब्रिटिश सरकार को पर्याप्त कठिनाइयाँ हुईं। डेन्मार्क ने इंग्लैण्ड का साथ देने से जब इनकार कर दिया तो ब्रिटेन के एक अभियान ने १८०७ में कोपेनहेगन पर गोलाबारी कर दी और डेनिश जहाजी बेड़े के जहाज़ों को पकड़ लिया या नष्ट कर दिया। इस बात ने डेन्मार्क को नेपोलियन का साथी बना दिया। ब्रिटिश सरकार की ज़िद के कारण कि यूरोप महाद्वीप में जाने वाले सारे अमरीकी जहाज़ों की तलाशी होगी, इंग्लैण्ड और संयुक्त राज्य अमेरिका के पारस्परिक सम्बन्ध बिगड़ गए। १८१२ में इस विवाद पर दोनों देशों में एक प्रकार से युद्ध छिड़ गया था। किन्तु इस संघर्ष में नेपोलियन की अपेक्षा ब्रिटेन को निष्पक्ष राष्ट्रों से कम कष्ट मिला।

नेपोलियन द्वारा महाद्वीप-व्यवस्था को क्रियान्वित कर सकना एक असम्भव बात थी। उसका साम्राज्य बहुत विशाल था और एक शक्तिशाली समुद्री बेड़े की कमी के कारण उसके द्वारा ब्रिटेन के तट पर जहाज़ों के पहुँचने पर रोक लगाना एक असम्भव कार्य था। वह केवल यूरोप के देशों को इंग्लैंड के साथ व्यापार करने से रोक सकता था, किन्तु यह भी असम्भव था। यूरोप इंग्लैण्ड पर निर्भर था और उसके माल के बिना उसका गुजारा ही नहीं था। इस परिस्थिति में यूरोप के लोग महाद्वीप-व्यवस्था को मानने की अपेक्षा, नेपोलियन की अवहेलना करने को तैयार हो गए। ब्रिटेन, फ्रांस की बनी रेशम की वस्तुओं और अन्य विलास-साधनों के बिना, अपना काम ऊनी और सूती कपड़ों से बड़ी आसानी से चला सकता था; किन्तु इंग्लैण्ड के जहाजी बेड़े ने यूरोप में उपनिवेशों से आने वाली आवश्यक वस्तुएँ ही नहीं, अपितु पक्का माल तैयार करने के लिए अत्यावश्यक कच्चे माल के आयात को भी बन्द कर दिया। नेपोलियन के सैनिकों के लिए कपड़ा और चमड़ा महाद्वीप-व्यवस्था की अवहेलना करके मँगाया जाता था। ग्रेट ब्रिटेन ने कहवा, चाय, शक्कर इत्यादि, जिनके बिना र्‌हायन-संघ के जर्मन जीवित नहीं रह सकते थे, पर एकाधिकार (Monopoly) स्थापित कर रखा था। इन वस्तुओं को नेपोलियन फ्रांसीसियों और इटली वालों के लिए भी पूरी तरह बन्द नहीं कर सकता था। 'विशेष आज्ञा' (Permits) की आड़ में ब्रिटेन का माल, स्पेन और पुर्तगाल के रास्ते से सारे यूरोप महाद्वीप में डेन्यूब नदी तक पहुँचता था। चोरी से माल ले जाने के अनोखे तरीके अपनाये जाने लगे। जगह-जगह बहुत-सी अर्थियाँ निकलती दिखाई देने लगीं और जाँच करने पर पता लगा कि मुर्दागाड़ियाँ शक्कर से भरी हुई थीं। शक्कर, तम्बाकू, कहवा और रुई के बढ़ते हुए दामों से यूरोप के निवासियों को बड़ा कष्ट पहुँचा, किन्तु इंग्लैंड को कोई हानि नहीं हुई। इंग्लैण्ड को केवल अपनी जनता की भुखमरी का डर था। किन्तु नेपोलियन ने फ्रांस के गेहूँ को भेजने के लिए विशेष आज्ञा दे दी।

यद्यपि नेपोलियन को अनेक कठिनाइयाँ सहनी पड़ीं, तो भी वह इंग्लैण्ड के बहिष्कार की नीति पर अड़ा रहा। १८०७ की टिल्सिट की सन्धि के द्वारा उसने रूस के ज़ार से उसके देश में इंग्लैण्ड के माल को न आने देने का वचन ले लिया। प्रशिया के राजा ने भी इसी प्रकार का वचन दिया। स्वयं नेपोलियन ने फ्रांस,

इटली, राइन-संघ और वारसा के देशों में इस व्यवस्था को लागू करने का वचन दिया। इसके भाई जोसेफ ने नेपल्स में, जिरोम ने वेस्टफेलिया में, इलिस ने टुस्कने में उसकी इच्छा को पूरा करने का वचन दिया। १८०८ में स्वीडन-युद्ध के परिणाम-स्वरूप ब्रिटेन के जहाज़ों का स्केवेण्डिया की सारी बन्दरगाहों में घुसना बन्द हो गया। अपने आदेशों को पोप के राज्य में लागू करने के दृढ़ निश्चय के कारण ही नेपोलियन को रोम से पोप को निकाल देना पड़ा और १८०९ में पोप के सम्पूर्ण राज्य को फ्रांस साम्राज्य में मिला लिया गया। १८१० में लुई बोनापार्ट ने नेपोलियन के विरुद्ध डच जनता का साथ देने का स्पष्ट संकेत दिया, क्योंकि उसे अनुभव हुआ कि महाद्वीप-व्यवस्था हालैण्ड के लिए घातक सिद्ध हो रही है। अतः उसने उसे अपदस्थ करके हालैण्ड को फ्रांस के साम्राज्य में मिला लिया।

महाद्वीप-व्यवस्था को लागू करने के लिए ही नेपोलियन को पुर्तगाल और स्पेन में हस्तक्षेप करना पड़ा। उसने पुर्तगाल से माँग की कि वह इंग्लैण्ड से सारा व्यापार वन्द कर दे तथा सारे ब्रिटिश निवासियों को पकड़ ले और उनकी सम्पत्ति जब्त कर ले। संरक्षक राजकुमार जोन कुछ समय तक तो झिझकता रहा, किन्तु अन्त में उसने इनकार कर दिया। परिणामतः फ्रांस की सेना स्पेन से होती हुई पुर्तगाल में घुस आई। नेपोलियन का शाही परिवार को पकड़ने का प्रयत्न विफल हुआ। ब्रिटेन पुर्तगाल की सहायता को आया और इस तरह प्रायद्वीप-युद्ध आरम्भ हो गया।

स्पेन की जनता को फ्रांस की सेना का अपने देश से होकर पुर्तगाल जाना अच्छा नहीं लगा। उन्होंने अपने राजा पर भीरुता का अभियोग लगाया। देश में अनेक स्थानों पर दंगे हुए। बुरबोन-दरवार के प्रतिद्वन्द्वी गुटों में मध्यस्थता करने के बहाने नेपोलियन ने राजा तथा राजकुमार को फ्रांस के सीमान्त पर एक स्थान पर ठहरा दिया और धमकी देकर तथा फुसला कर राजा और राजकुमार को स्पेन के सिंहासन के सारे अधिकार त्याग देने के लिए मना लिया। १८०८ में जोसेफ बोनापार्ट को स्पेन का राजा घोषित किया गया। पुर्तगाल और स्पेन में हस्तक्षेप करने के कारण दोनों देशों की जनता में तुरन्त ही असन्तोष और विद्रोह फैल गया। पुर्तगाल और स्पेन दोनों देशों के निवासियों की ब्रिटेन ने सहायता की। सर आर्थर वेलेज़ली के नेतृत्व में ब्रिटेन ने सहायता की। सर आर्थर वेलेज़ली के नेतृत्व में ब्रिटेन ने पुर्तगाल में सेना भेजी जिसने फ्रांसीसी सेनाओं को १८०८ में विमीरो के स्थान पर परास्त किया। सिण्ट्रा की सन्धि के अनुसार फ्रांसीसियों द्वारा पुर्तगाल खाली कर देने का वचन देने के थोड़े ही दिनों पश्चात् नेपोलियन ने स्वयं कमान सँभाली और मैड्रिड पर अधिकार कर लिया। ब्रिटिश सेनापति सर जोन मोर स्पेन की ओर बढ़ा और बहुत बड़ी फ्रांस की सेना को हटा कर लिस्वन को बचा लिया। नेपोलियन ने सेनापति सोल्ट (Soult) को ब्रिटेन की सेना को स्पेन के उत्तर की ओर खदेड़ने के लिए तथा ब्रिटिश चीतों (Leopards) को समुद्र में धकेल देने के लिए भेजा। कोरुन्ना के स्थान पर सर जॉन मारा गया, किन्तु उसकी सेना बच निकली।

सर आर्थर वेलेज़ली को १८०९ में पुनः *पुर्तगाल के मोर्चे की कमान सौंपी*

गई। वह स्पेन की ओर बढ़ा और उसने टैलाविरा (Talavera) की लड़ाई को जीता, किन्तु उसे फिर लिस्बन तक पीछे हटना पड़ा। सेनापति मैस्सेना (Massena) ने अंग्रेज चीते को समुद्र में डुबो देने के लिए आक्रमण किया, किन्तु वैलिंगटन की चालों ने उसके प्रयत्नों को विफल कर दिया। जिस प्रायद्वीप पर लिस्बन स्थित था उस पर अंग्रेज सेनापति ने आर-पार खाइयों की पंक्तियाँ खुदवा दीं। इन खाइयों की पंक्तियों को 'लाइन ऑफ टोरेंस विडरास' (Lines of Torres Vedras) कहा जाता था तथा ये शस्त्रास्त्र से इतनी सुसज्जित थीं कि मैस्सेना के लिए इन पर आक्रमण कर सकना असम्भव हो गया। वैलिंगटन ने इन खाइयों के निकट का प्रदेश बुरी तरह उजाड़ दिया और परिणामतः फ्रांस की सेनाएँ भूख से मरने लगीं। खाइयों के मोर्चों के पीछे वैलिंगटन की स्थिति बहुत शक्तिशाली थी और उसने लिस्बन को अपनी मुख्य छावनी बना रखा था, जहाँ रसद समुद्री मार्ग से पहुँचाई जाती रही। १८११ में मैस्सेना को बहुत हानि उठाकर पीछे हटना पड़ा और इसके बाद फ्रांस ने कभी पुर्तगाल पर आक्रमण नहीं किया।

वैलिंगटन की चालों ने फ्रांस को बुरी तरह थका दिया, क्योंकि इनकी रसद बहुत दूर से आती थी। स्पेन-निवासियों ने भी इस समय छापामार युद्ध के द्वारा फ्रांस की सेनाओं पर सब स्थानों पर धावे किए। नेपोलियन आस्ट्रिया और रूस से युद्ध में व्यस्त होने के कारण प्रायद्वीप में स्थित फ्रांस की सेनाओं की कोई भी सहायता नहीं कर सकता था।

१८१२ में वैलिंगटन ने अपने को इतना शक्तिशाली अनुभव किया कि वह स्पेन की ओर बढ़ सकने के स्वप्न लेने लगा। उसने पुर्तगाल और स्पेन की ओर जाने वाले दो मुख्य मार्गों पर नियन्त्रण करने वाले दो दुर्गों को जीत कर अपने आक्रमण को प्रारम्भ कर दिया। वह सलामान्का (Salamanca) तक बढ़ गया और वहाँ एक शानदार विजय साप्त करके मैड्रिड (Madrid) में घुसा। जोसेफ बोनापार्ट भाग गया। इस विजय के पश्चात् वैलिंगटन पुर्तगाल लौट गया। १८१३ में दूसरी बार वह पुर्तगाल से स्पेन की ओर बढ़ा और उसने फ्रांस की सेनाओं को भगा दिया। विट्टोरिया (Vittoria) की लड़ाई में जोसेफ को अपनी सारी रसद और तोपखाना छोड़ जाना पड़ा। वैलिंगटन का १८१४ का अभियान दक्षिणी फ्रांस में आरम्भ हुआ किन्तु उस समय तक राष्ट्रों का युद्ध आरम्भ हो चुका था और १८१४ में स्वयं नेपोलियन को परास्त करके ऐलबा द्वीप में भाग जाने के लिए विवश कर दिया गया।

प्रायद्वीप युद्ध (Peninsular War) के प्रभाव के विषय में थॉमसन लिखता है कि "नेपोलियन का स्पेन-युद्ध उसके विनाश का प्रथम चरण था, क्योंकि उसे एक राष्ट्रीयता से प्रेरित विरोध का सामना करना पड़ा था, जिसे वह घूस या कूटनीति से नहीं जीत सकता था। वह ग्रामों तथा पर्वतों में होने वाले युद्ध के खतरे से परिचित था, किन्तु उसने यह कभी नहीं समझा कि एक युद्ध, धर्म-युद्ध (Crusad la puissance de l'ame) भी बन सकता है। वह केवल शस्त्र-शक्ति में विश्वास करता था, जो स्पेन में इंग्लैण्ड की सेना के आने से पहले बहुत थोड़ी थी। उसने उस शक्ति

का, जिसे किसी भी प्रकार की शस्त्र-शक्ति नहीं जीत सकती, अर्थात् जनता की देश-भक्ति का अनुमान नहीं लगाया। यह सत्य है कि जो ज्वाला स्पेन में जली, वह टायरोल (Tyrol) तक फैली जहाँ उसे बड़ी कठिनाई से दबाया जा सका, किन्तु वह प्रतीक के रूप में तीन वर्ष बाद पुनः मास्को के अग्निकाण्ड में प्रज्वलित हुई।"

(Napoleon Bonaparte : His Rise and Fall, p. 247)

१८१२ में लार्ड लिवरपूल इंग्लैण्ड का प्रधान-मन्त्री तथा लार्ड कैसलरे (Castlereagh) विदेश-सचिव बने। कैसलरे ने ब्रिटेन, रूस, प्रशिया और बाद में आस्ट्रिया को मिला कर 'चतुर्थ संगठन' बनाया। स्वातन्त्र्य-युद्ध आरम्भ हुआ। १८१३ में लिपज़िग (Leipzig) के स्थान पर राष्ट्रों के युद्ध (Battle of Nations) में नेपोलियन परास्त हुआ।

१८१४ में वैलिंगटन ने फ्रांस को टूलूस (Toulouse) के स्थान पर परास्त किया। जब नेपोलियन ने अपने को निस्सहाय पाया तो १८१४ में उसने राज्य त्याग दिया। यद्यपि वह ऐलबा द्वीप से फ्रांस चला आया था तो भी संयुक्त राष्ट्र उसे समाप्त करने के लिए कटिबद्ध थे। इस कारण वाटरलू (१८१५) की लड़ाई हुई जिसमें नेपोलियन की सेना पूर्णतः छिन्न-भिन्न हो गई। इस युद्ध में ड्यूक ऑफ वैलिंगटन ने सबसे महत्त्वपूर्ण भाग लिया।

१८१२ में नेपोलियन का रूस पर आक्रमण उसके लिए घातक सिद्ध हुआ। ज़ार एलेक्ज़ेण्डर इस निर्णय पर पहुँच चुका था कि नेपोलियन की इच्छानुसार कार्य करना उसके लिए असम्भव है, क्योंकि उसकी इच्छाएँ जनता के हित के विरुद्ध थीं। उसने 'महाद्वीप व्यवस्था' (Continental System) की शर्तों को नहीं माना। नेपोलियन ने, जिसने "महाद्वीप-व्यवस्था पर सब कुछ दाँव पर लगा पर रखा था, दुस्साहस की भावना से प्रेरित होकर रूस पर आक्रमण किया।" उसके शब्दों में "मास्को, भारतवर्ष तक पहुँचने के रास्ते में एक सराय है।" उसने ६ लाख सैनिकों की एक महान् सेना तैयार की और आक्रमण आरम्भ कर दिया। रूसियों ने 'पीछे हटने' की नीति अपनाई और रास्ते की सारी सामग्री नष्ट करते गये। मास्को नगर में भी आग लगा दी गई। परिस्थितियों ने नेपोलियन को मास्को से पीछे हटने के लिए विवश कर दिया और उसका पीछे हटना मानव-इतिहास की सबसे भयानक घटना है। लगभग पाँच लाख व्यक्ति रूस में ही समाप्त हो गये। नेपोलियन की अजेय शक्ति का चमत्कार नष्ट हो गया। 'महाद्वीप-व्यवस्था' को रूस में लागू करने के प्रयत्न में नेपोलियन की सफलता के साथ ही यह व्यवस्था भी समाप्त हो गई।

मास्को-अभियान के विषय में स्वयं नेपोलियन ने कहा, "सम्भवतः मैंने मास्को जाकर भूल की। मुझे वहाँ अधिक समय तक ठहरना नहीं चाहिए था; किन्तु महानता और नीचता में केवल एक ही कदम का तो अंतर है; किन्तु इसका निर्णय तो भावी संतानें ही कर सकती हैं।"

थॉमसन के अनुसार, "१८१२ का वर्ष नेपोलियन के जीवन का जटिल वर्ष

था, किन्तु परिवर्तन मास्को के बाद हुआ, पहले नहीं। चैपटल (Chaptal), जो नेपोलियन को सबसे अधिक जानता था, लिखता है—"मास्को से लौटने के पश्चात्, जो लोग नेपोलियन के सन्निकट थे, उन्होंने उसकी शारीरिक और मानसिक स्थिति में एक महान् परिवर्तन देखा......मैं स्वीकार करता हूँ कि इस दुर्भाग्यपूर्ण समय के पश्चात् उसके विचारों और चरित्र में वह तारतम्य और शक्ति देखने को नहीं मिली जो पहले थी। केवल कल्पना की उड़ानें ही देखने को मिलती थीं। पहले जैसे कठोर परिश्रम के लिए न तो उसमें चाह रही थी और न ही शक्ति, जैसा कि मैं बहुधा कहा करता हूँ कि उसके मस्तिष्क के १०० ज्ञान-तन्तु केन्द्रों (nerve centres) में से आधे से अधिक अब स्वस्थ नहीं रह गये थे'।"

(Napoleon Bonaparte : His Rise and Fall, p. 340)

महाद्वीप-व्यवस्था (Continental System) के इंग्लैण्ड पर हुए प्रभाव के विषय में थॉमसन लिखता है कि, "१८०३ से १८१० तक नेपोलियन ने फ्रांसीसी और डच बन्दरगाहों पर, इम्स (Ems) और ऐल्बी (Elbe) के मुहानों पर तथा १८०६ के पश्चात् जर्मनी की बाल्टिक सागर की बन्दरगाहों पर जो रोकें लगाईं, उनसे ब्रिटिश व्यापार पर कोई गम्भीर प्रभाव नहीं पड़ा। इंग्लैण्ड का बना माल, जो विदेशों में भेजा गया उसकी कीमत १८०५ में ४१ लाख पौंड, १८०६ में ४४ लाख पौंड, १८०७ में ४० लाख ५० हजार पौंड, १८०८ में लगभग ४० लाख ७५ हजार पौंड, १८०९ में ५० लाख २५ हजार पौंड और १८१० में लगभग ५० लाख पौंड आँकी जाती है। उपनिवेशों से आए हुए माल की दुबारा निकासी की कीमत, १८०५ में १० लाख पौंड, १८०६ में १० लाख पौंड से कुछ कम, १८०७ में पूरे १० लाख पौंड १८०८ में ९ लाख पौंड और १८१३ में १२ लाख ७५ हजार पौंड आँकी जाती है। यदि यह मान लिया जाय कि इग्लैण्ड अपने विदेशी व्यापार के सहारे जीवित था, तो हमें मानना पड़ेगा कि इसे नष्ट करने का नेपोलियन का प्रयास सर्वथा गलत था। यह भी कहा जा सकता है कि जिस समय इंग्लैण्ड के जहाजों के लिए यूरोप महाद्वीप की बन्दरगाहें उत्तरोत्तर बन्द होती जा रही थीं, उस समय उसने समुद्र-पार की अन्य नई मंडियों में अपना माल खपाना आरम्भ कर दिया था। यह तथ्य भी किसी हद तक सच है और बोनापार्ट अपनी योजना बनाते हुए इसको बिल्कुल भूल गया। कुछ भी हो, यदि इन आँकड़ों की पड़ताल की जाय तो स्पष्ट हो जायेगा कि यूरोप में ब्रिटेन के माल की निकासी प्रगति करती रही। १८०५ में ३७.८ प्रतिशत माल यूरोप में गया, १८०६ में ३०.९ प्रतिशत, १८०७ में २५.५ प्रतिशत, १८०८ में २५.७ प्रतिशत, १८०९ में ३५.४ प्रतिशत और १८१० में ४२ प्रतिशत गया। तथा उपनिवेशों और अन्य देशों का आया हुआ जो माल पुनः भेजा गया उसका जो भाग यूरोप में गया वह कुल विदेशी व्यापार का १८०५ में ७८.७ प्रतिशत, १८०६ में ७२.९ प्रतिशत, १८०७ में ८० प्रतिशत, १८०८ में ७१.१ प्रतिशत, १८०९ में ८३.१ प्रतिशत और १८१० में ७६.१ प्रतिशत था। इस प्रकार महाद्वीप-व्यवस्था का प्रतिबन्ध अपने प्रमुख प्रयास में १८१० तक पूर्णतः असफल रहा।

(Napoleon Bonaprte : His Rise and Fall, pp. 235-36)

मारकहम (Markham) के मतानुसार, 'महाद्वीप-व्यवस्था' द्वारा नेपोलियन ने अपने साम्राज्य के विरुद्ध केवल यूरोप की जनता को ही नहीं उभारा, अपितु उसने 'फ्रांस के मध्यमवर्ग का भी विश्वास खो दिया। इस वर्ग के लोग वे लोग थे जो क्रांति के प्रमुख उपभोक्ता थे और जिन्होंने उसे सत्तारूढ़ किया था। १८१० से १८११ तक फ्रांस में जो निरन्तर आर्थिक संकट बना रहा उसका कारण 'महाद्वीप-व्यवस्था' को बताया गया। इसी समय से फ्रांस की जनता तत्कालीन शासन और राजवंश के भविष्य से उदासीन हो गई और उनकी यह उदासीनता १८१४ में अत्यन्त स्पष्ट प्रतीत होने लगी। देश का मध्यमवर्ग नेपोलियन की रक्षात्मक (Protectionist) नीति से सहमत था और यद्यपि उन्होंने उस समय से नेपोलियन का साथ छोड़ दिया जबसे उसके द्वारा उन्हें लाभ होना बन्द हो गया, तथापि वे ज़िद कर के उन्नीसवीं शताब्दी भर इस नीति का समर्थन करते रहे। १८१२ में मास्को से पीछे हटते समय मालेट (Malet) षड्यंत्र से बहुत विचलित हुआ। मालेट एक घोर कट्टरपंथी गणतंत्रवादी सेनापति था। उसने घोषणा करा दी कि नेपोलियन की मृत्यु हो गई है तथा गणतंत्र की स्थापना की घोषणा कर दी। उसका यह षड्यन्त्र उसके कैद किये जाने से पहले कुछ सफल तो हुआ, किन्तु सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि जिन सेनानायकों को मालेट ने धोखा दिया, उनमें से किसी ने भी नेपोलियन के पुत्र नेपोलियन द्वितीय का राजसिंहासन पर अभिषेक करने की बात भी नहीं सोची।"

इसमें कोई सन्देह नहीं कि नेपोलियन द्वारा 'महाद्वीप-व्यवस्था' को लागू करने के प्रयत्न में, फ्रांस के आर्थिक साधन छिन्न-भिन्न हो गये और वह अनेक देशों की सहानुभूति खो बैठा। ब्रिटेन इतना दुःखी हो गया कि कुछ भी करने के लिए तैयार था। 'महाद्वीप-व्यवस्था' एक महान् आर्थिक सहिष्णुता की परीक्षा थी और ब्रिटेन इसमें सफल हुआ।

नेपोलियन की असफलता के कारण (Causes of Napoleon's Failure)—नेपोलियन १८०८ में सत्ता के उच्चतम शिखर पर पहुँचा और इसके पश्चात् उसका पतन आरम्भ हुआ। इस व्यक्ति के, जिसने सारे यूरोप को अपने नियन्त्रण में कर लिया था, इतनी शीघ्रता से पतन के अनेक कारण हैं।

(१) एक प्रमुख कारण था मानव-बुद्धि का सीमित होना। यह सत्य है कि नेपोलियन एक अत्यन्त बुद्धिमान् व्यक्ति था; किन्तु यह भी सत्य है कि वह एक मनुष्य था। उसके लिए सब-कुछ स्वयं कर सकना असम्भव था। क्योंकि उसने एक ही बार अनेक कार्य करने प्रयत्न किया था, तब क्या आश्चर्य है कि वह सब कार्यों में असफल रहा।

(२) मनुष्य की जीवन-शक्ति की सीमा होती है और एक विशेष आयु पाने पर वह अपने-आपको श्रान्त और क्लान्त अनुभव करने लगता है। डा० स्लोअने (Dr. Sloane) के शब्दों में, "उसके पतन के सारे कारण एक ही शब्द 'थकान' (Exhaustion) में निहित हैं। मानव के कार्यों का इतना परिपूर्ण लेखा कहीं भी

नहीं है जितना कि नेपोलियन के जीवन में देखने को मिलता है। आरम्भ में हम इस शक्ति के उपासक को व्यर्थ ही अपनी अपरिपक्व शक्ति को उत्तेजना देते हुए देखते हैं, जबकि उसने सहसा तीव्र निराशा के आवेश में अपनी शिक्षा-अवधि को समाप्त करके बर्रास के साथ निम्न स्तर का सौदा किया। उसके पश्चात् सहसा अनिर्वचनीय तीव्रता से धनी बन गया तथा अच्छी वेश-भूषा, भोजन और निवास-स्थान को पाकर शारीरिक रूप से अत्यन्त शक्तिशाली बनकर वह मानो अपना निर्माण करता प्रतीत होता है। किन्तु शीघ्र ही उसका नेतृत्व, कुशाग्रता, अदम्य शक्ति प्रत्यक्ष रूप से एक महामानवीय सीमा के साथ प्रस्फुटित होकर विश्व को चकाचौंध कर देती हैं। उसकी सफलता की अवधि थोड़ी किन्तु राजनीति के क्षेत्र में यशस्वी है और उसके प्रभुत्व का युग दीर्घ और स्फूर्तिदायक है। किन्तु दोनों ही अवस्थाओं में उसकी अजेय, अथक क्रियाशीलता और मानसिक उत्तेजना ओत-प्रोत है। इसके बाद उसके जीवन का मोड़ आया। प्रत्येक युग में भविष्य के बीज होते हैं, हम सब जन्म-काल से मृत्यु की ओर बढ़ते जाते हैं, वर्तमान अवस्था के गुण और शक्तियाँ घटती जाती हैं तथा आने वाली अवस्था के गुणों और शक्तियों की वृद्धि होती जाती है। नेपोलियन के साथ भी यही हुआ। घटनाओं की संख्या और महत्त्व के दृष्टिकोण से उसने थोड़े-से स्थान में इतना कुछ ठूँस-ठूँसकर भर दिया कि उसका युग एक जापानी झुर्रीदार चित्र की तरह बन गया जिसे छोटे-से स्थान में समेट कर बना दिया जाता है जो तीव्र, गम्भीर और अवास्तविक हुआ करता है। दूसरे शब्दों में, हम नेपोलियन के जीवन के विषय में यह कह सकते हैं कि उसने देश की नौका को चारों ओर से थपेड़े खाते और तीव्र गति से प्रगति करते पाया, कोई भी उसका मार्गदर्शक नहीं था। ऐसे कठिन समय में उसने थपेड़ों को समाप्त कर उसकी प्रगति को गतिशील स्थिरता प्रदान की। किन्तु उसके पास भाप अथवा अन्य कल या यन्त्र की शक्ति नहीं थी, जिसकी वह सहायता ले सकता। वह इसे अकेला ही सँभालता रहा। तूफान बढ़ता गया और वह अधिकाधिक श्रान्त और क्लान्त होता गया। जब वह इस नौका का पथ-प्रदर्शन कर रहा था, वास्तव में उसके कार्य घटनाचक्र से प्रेरित थे, वह नियन्त्रण नहीं कर रहा था, किन्तु फिर भी वह इसके चट्टान पर टकराकर नष्ट-भ्रष्ट होने तक अपना कार्य अनवरत गति से करता ही चला गया।"

प्रो० हालैण्ड और फ्रांस का प्रधान टीयर्स (Thiers) इस विचार से सहमत नहीं हैं। यह बात उल्लेखनीय है कि वाटरलू की लड़ाई से पूर्व और पश्चात् नेपोलियन के सारे कार्य एक स्वस्थ मनुष्य के कार्य थे। उसकी निर्णायक बुद्धि ही उसके ह्रास और असफलता की कारण थी। यह सत्य है कि अनेक युद्धों में उसकी निरन्तर विजय ने उसे घमण्डी और तुनुक-मिजाज बना दिया था। उसका घमण्ड एक सनक बन गया और उसने दूसरों की सलाह मानने से इनकार कर दिया। टैलेरैण्ड (Talleyrand) और फोच (Fouche) जैसे व्यक्तियों को भी उसने अपना विश्वासपात्र नहीं माना। नेपोलियन यह समझने लगा था कि उसकी बुद्धि सर्वश्रेष्ठ है, अतः उसके निर्णय भी सर्वश्रेष्ठ हैं। उसके निर्णय में कभी-कभी बड़े महत्त्वपूर्ण तथ्य छूट जाते

थे जो सलाह देने पर उसे सुझाये जा सकते थे। उसके अनुमान त्रुटिपूर्ण होने लगे और अन्त में उसके अनुमान ही उसके पतन का कारण बने।

(३) उसकी असफलता का एक कारण उसका 'सैन्य-वाद' (Militarism) था। राष्ट्रीय सम्मेलन के नवीन सैन्य-वाद का नेपोलियन उत्तराधिकारी था। किन्तु उसने इसे सम्पूर्ण किया तथा बढ़ाया। उसने बड़ी-बड़ी सेनाओं की भरती की, उन्हें शिक्षित किया और शीघ्रता से युद्ध के मोर्चों पर पहुँचाया तथा इंग्लैंड को छोड़कर यूरोप भर की समस्त महान् शक्तियों को एक-एक करके परास्त किया। किन्तु उसके युद्धों ने अधिकाधिक नर-बलि लेनी आरम्भ कर दी अतः उसे अपनी सेना में छोटी आयु के लड़के भी भर्ती करने पड़े। यह तरीका अधिक देर तक नहीं चल सकता था और इसका परिणाम केवल विनाश ही था। जिस सैन्यवाद के द्वारा नेपोलियन यूरोप को विजय कर सका, वही सैन्यवाद उसकी पराजय का कारण बना। फ्रांस के सैन्यवाद से अन्य देशों में, विशेषतः प्रशिया, रूस और आस्ट्रिया में इसका प्रसार हुआ। दूसरे देशों के सामूहिक सैन्यवाद के कारण ही नेपोलियन का पतन हुआ। नेपोलियन कहा करता था, "परमात्मा बड़ी सेना के साथ चलता है", इसलिए जब शत्रुओं की सेनाएँ उसकी सेनाओं से बड़ी हो गईं तो स्पष्ट है कि परमात्मा उनके साथ चलने लगा होगा और उनकी जीत हुई होगी। पुनश्च, जैसे-जैसे समय बीतता गया, नेपोलियन को अपनी सेनाओं में अधिकाधिक पोल, जर्मन, इटालियन, डच, स्पेनियार्ड और डेन भर्ती करने पड़े। नेपोलियन की महान् सेना अधिकाधिक विषम तत्त्वों का झुण्ड बनती चली गई, परिणामतः उसकी सामरिक शक्ति घट गई। नेपोलियन ने फ्रांस की सेनाओं को अपने शत्रु और मित्र देशों में ठहराने की नीति अपनाई। इस नीति द्वारा वह खर्चे में तो बचत कर पाया, किन्तु इससे बहुत कटुता बढ़ गई। जिन देशों में इन सेनाओं को ठहराया जाता था, वे इनसे घृणा करते थे और यही घृणा नेपोलियन के पतन का कारण बनी।

(४) असफलता का एक कारण 'महाद्वीप-व्यवस्था (Continental System) भी थी। नेपोलियन इंग्लैण्ड को अपना सबसे बड़ा शत्रु मानता था और उसे नीचा दिखलाने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ था। उसके विचार में इंग्लैण्ड की शक्ति और सौभाग्य उसके व्यापार पर निर्भर थे इसलिए उसने यूरोप भर में उसके माल की पहुँच को पूर्णतः रोकने का निर्णय किया। उसने अनेक प्रसिद्ध आज्ञाएँ प्रसारित कीं और ब्रिटेन के व्यापार को चोट पहुँचाने के लिए वह जो कुछ भी कर सकता था, उसने किया। उसने इस बात को नहीं सोचा कि इंग्लैण्ड की वास्तविक शक्ति उसके तैयार माल में निहित है। शक्तिशाली समुद्री बेड़े की कमी और इंग्लैण्ड को गेहूँ भेजने के कारण, नेपोलियन इंग्लैण्ड के घुटने टिकाने में असमर्थ रहा। 'महाद्वीप-व्यवस्था' के कारण उसे अनेक राष्ट्रों से झगड़ना पड़ा, परिणामतः वहाँ के लोगों में राष्ट्रीयता की भावना जागी। 'महाद्वीप-व्यवस्था' ने एक उल्टी तोप का काम करके इस व्यवस्था के निर्माता को ही नष्ट कर दिया।

(५) नेपोलियन ने स्वयं माना है कि यह स्पेन का 'जख्म' ही था, जिसने उसका नाश किया। इंग्लैण्ड के माल और नागरिकों को पुर्तगाल और स्पेन से निकालने के निश्चय के कारण ही उसे इन देशों में हस्तक्षेप करना पड़ा। इन देशों में उसका सतत और कड़ा विरोध हुआ। इन देशों की भौगोलिक विशेषताओं और समुद्र के रास्ते से इंग्लैण्ड की सहायता निरन्तर मिलते रहने के कारण, स्पेन और पुर्तगाल की जनता फ्रांस की सेनाओं को प्रायद्वीप से मार भगाने में सफल हुई। स्थल पर ड्यूक आफ वेलिंगटन की जीतों ने नेपोलियन की अजेय शक्ति के भ्रम को नष्ट कर दिया।

(६) १८१२ में नेपोलियन का रूस पर आक्रमण एक भारी भूल थी। उसके सम्मान के साथ-साथ उसकी महान् सेना भी पूर्णतः नष्ट हो गई। मास्को से उसके असहाय अवस्था में पीछे हटने से ही उसके शत्रुओं को संगठन करके उसका नाश करने में प्रोत्साहन मिला।

(७) नेपोलियन का अपने सम्बन्धियों के प्रति मोह भी उसके पतन का एक कारण है। वह जितना उनके प्रति दयालु था, वे उसके प्रति उतने ही कृतघ्न थे। जर्मनी और इटली में उसकी सत्ता के विनाश के लिए केरोलीन (Caroline) और जिरोम (Jerome) उत्तरदायी थे। पॉलीन (Pauline) को छोड़कर उसके अन्य सम्बन्धी विपत्ति के समय उसकी अवज्ञा करने में आनन्द लेते थे। कहा जाता है कि नेपोलियन ने सब भाइयों को गरुड़ बनाने का प्रयत्न किया, किन्तु वे साधारण मुर्गे ही बने रहे, जिनका कार्य केवल अपने अन्तःपुर के सामने कुड़कुड़ाना और नाचना रह गया था। यदि वह एक बुरा भाई हुआ होता तो वह अधिक अच्छा शासक हुआ होता। नेपोलियन अपने भाइयों के व्यवहार से अत्यन्त दुःखी था। १८१० में नेपोलियन ने मैटरनिक (Metternich) से शिकायत की कि "जितना लाभ मैंने अपने सम्बन्धियों को पहुँचाया, उससे कहीं अधिक हानि उन्होंने मुझे पहुँचाई है।"

(८) कालान्तर में नेपोलियन ने चालाकी और धोखे का आश्रय लेना आरम्भ कर दिया। उसकी चालाकी का एक उदाहरण स्पेन के राजा को उसके देश से निकाल लाना था। कहा जाता है कि १८१४ में उसके पूर्ण पतन का कारण एक पत्र था जो इसने सन्धि-वार्ता के समय लिखा और जो रास्ते में शत्रुओं के हाथ पड़ गया। इस पत्र से उसकी चालाकी खुल गई कि वह वास्तविक रूप से सन्धि का इच्छुक नहीं था। वह युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए अच्छे और बुरे, सब प्रकार के तरीके प्रयोग करने के लिए कटिबद्ध था। उसे कहते सुना गया था, "मैं जानता हूँ कि मुझे किस समय शेर की खाल छोड़कर लोमड़ी की खाल पहननी है।" ऐसी परिस्थिति में संगठित राष्ट्रों का इसके प्रणों और घोषणाओं पर से विश्वास उठ गया और यूरोप के रंगमंच से उसे पूरी तरह उखाड़ फेंकने के लिए निर्णय किया गया। धोखे की नीति सर्वदा सफल नहीं होती।

(९) प्रो० हालैण्ड रोज़ के मतानुसार, "नेपोलियन के स्वभाव का ज़िद्दी हो

जाना उसके पतन का उत्तरदायी है। एक कुशल प्रबन्धक, जो सर्वदा त्रुटिहीन कार्य करता था, जो हर स्थिति का उपाय रखकर सन्तुलन बनाये रखता था, जो शीघ्रता से निर्णय करने वाला था, उसने अपनी पूर्वकालीन विशेषताएँ तो बनाए रखीं किन्तु ये उसके नियन्त्रण से बाहर हो गईं। अब वह घटनाओं को मोड़-तोड़ कर अपनी इच्छाओं के अनुसार बनाने लगा और तथ्यों को भूल कर अपनी सनक को ही तथ्य मानने लगा। यह चारित्रिक ह्रास अनेक योद्धाओं के जीवन में पाया जाता है, किन्तु नेपोलियन के जीवन में यह टिलसिट के बाद तथा १८०९ के आस्ट्रियन अभियान के पश्चात् और भी शीघ्रता से आया। १८१० में उसके साम्राज्य की वृद्धि उसके हठ के बढ़ने का एक संकेत है जिसने उसका उत्तरदायित्व बढ़ाया तथा विजयों को शांति-पूर्वक तथा ठीक प्रकार सँभाल सकने की शक्ति को क्षीण कर दिया।

(१०) जीवन के उत्तरार्ध में नेपोलियन अपने कार्यों से हताश होकर दुस्साहसी बन गया जो उसकी सफलता के लिए किसी प्रकार हितकर नहीं था। मैटरनिक ने ड्रेसडन के स्थान पर नेपोलियन से प्रस्ताव किया कि उसकी शर्तें मानकर यूरोप को शांति प्रदान करे। किन्तु नेपोलियन ने उससे पूछा, "तुम मुझसे क्या चाहते हो? क्या मैं अपना अपमान करूँ? कभी नहीं। मैं राज्य का एक इंच भी छोड़ने की अपेक्षा मृत्यु अधिक पसन्द करूँगा। तुम्हारे राजा लोगों का जन्म राज्यसिंहासन पर हुआ है और बीस बार हारने पर भी वे अपनी राजधानी में पुनः पदासीन हो सकते हैं। मैं ऐसा नहीं कर सकता क्योंकि मैंने छावनी से उन्नति पाई है।" मैटरनिक ने पूछा कि यदि तुम्हारी भर्ती की हुई सेना समाप्त हो जाय तो तुम क्या करोगे? इसका उत्तर नेपोलियन ने दिया, "तुम एक सिपाही नहीं हो। तुम क्या जानो, एक सैनिक के हृदय में क्या होता है। मैं युद्ध-स्थल में जवान हुआ और मेरे जैसा मनुष्य लाखों मनुष्यों की जानों की क्या चिन्ता करता है।"

(११) नेपोलियन को समझौते का सुझाव सुहाता ही नहीं था। उसे यह खूब मालूम था कि 'र्‌हायन संघ' (Confederation of the Rhine) एक 'बुरा हल' है, 'महाद्वीप-व्यवस्था' (Continental System) एक 'मृगमरीचिका है,' और विशाल साम्राज्य (Grand Empire) एक न लौट आने वाली शान है; किन्तु वह इस स्थिति को मानने के लिए कभी तैयार नहीं था। उसने राज्य-सभा के सदस्यों को इस प्रकार कहा, "जिस उच्च शिखर पर मैंने फ्रांस को पहुँचा दिया है, तुम उससे नीचे उतर कर एक गर्वपूर्ण साम्राज्य बनाने की अपेक्षा पुनः केवल मात्र एक छोटा-सा राज्य बनाना चाहते हो?" नेपोलियन ने कभी यह कल्पना भी नहीं की थी कि जब वह फ्रांस को छोड़ेगा, देश पहले से भी निर्बल होगा, जब उसने इसकी बागडोर सँभाली थी। उसके मित्रों द्वारा उसका साथ छोड़ने के विचार से ही वह क्रोध में भर कर बदला लेने की प्रतिज्ञा कर बैठता। वह चीखा करता, "म्युनिच को जलना ही चाहिए और इसे जलना पड़ेगा।" जब तक उसे सफलता का थोड़ा-सा अवसर भी दीख पड़ता रहता, वह अपने शत्रुओं से कभी समझौता नहीं करता था। क्योंकि, आशा ने अन्त तक उसका पीछा नहीं

छोड़ा, अतः शान्ति और सन्धि की कोई आशा नहीं थी। अन्त तक नेपोलियन को यह विश्वास रहा कि वह शत्रु की त्रुटियों से लाभ उठाकर विजय प्राप्त कर लेगा। इसका कारण कुछ तो उसकी हठधर्मी तथा कुछ युवा अवस्था में अत्यधिक सफलताएँ प्राप्त करने का सौभाग्य था। आरम्भ की सफलताएँ उसका सबसे बड़ा दुर्भाग्य था। इनके कारण उसने अन्य लोगों की सलाह मानना बन्द कर दिया। अन्त तक उसे यह विश्वास रहा कि वह 'भाग्य-विधाता पुरुष' (Man of Destiny) है। यदि नेपोलियन के दुर्भाग्य के आरम्भ होने के समय उसने समझौता कर लिया होता तो उसके ससुराल के सम्बन्धियों ने फ्रांस का सिंहासन उसके लिए सुरक्षित करने में उसकी सहायता की होती।

(१२) नेपोलियन की पराजय का कारण, यूरोप में जिनिसेन्यु (Gneisenau) जैसे मोर्चेबन्दी में कुशल तथा ब्लुचर (Blucher) जैसे योद्धाओं और सेनापतियों का उदय होना भी था। यह उसका सौभाग्य था कि आरम्भ में उसे कोई ऐसा योग्य सेनापति नहीं मिला जो उससे लोहा ले सकने की हिम्मत रखता। अपनी सेना के प्रति उसकी उपेक्षा भी उसकी हार का कारण थी। वैलिंगटन और ब्लुचर को वह बहुत अयोग्य समझता था और शत्रु-शक्ति का ठीक अनुमान न लगा सकने की कीमत उसे अपना साम्राज्य देकर चुकानी पड़ी।

(१३) नेपोलियन अत्यन्त शेखीमार हो गया था और बहुधा शेखी बघारने वाले व्यक्ति का पतन हो जाता है। स्पेन के अभियान के दिनों में उसने लिखा, "स्पेन में मुझे हरिक्युलिस की शक्ति-सीमा के स्तम्भ भले ही मिल जायें, किन्तु अपनी शक्ति की सीमा कहाँ पा सकूँगा···मैंने स्पेन के सामन्तों और सेनाओं से बढ़कर कायर कहीं नहीं देखे।" ये वाक्य स्पेन में फ्रांस की सेनाओं के शस्त्र डालने के कुछ ही दिन पूर्व लिखे गये थे।

(१४) नेपोलियन जनता के कुछ वर्गों का समर्थन खो चुका था, जिनके द्वारा वह सत्ता के शिखर पर पहुँच पाया था। कालान्तर में उसने जैकोबिनवाद के सिद्धान्तों को छोड़ दिया और राजशाही का कट्टर समर्थक बन गया। १७९३ में वह देश को दमन के चंगुल से छुड़ाने वाला और गणतन्त्रवाद की भावना को प्रसारित करने वाला सच्चा नेता माना जाने लगा। किन्तु १८०० के आते-आते उसका सारा जीवन बदल गया और उसका झुकाव राजशाही की ओर हो गया। स्वयं नेपोलियन ने इस प्रकार कहा है, "भविष्य ही इस बात को स्पष्ट कर पायेगा कि क्यों संसार की शान्ति के लिए यह अच्छा नहीं था, कि रूसो और मैंने जन्म ही न लिया होता ?"

(१५) नेपोलियन को अन्य लोगों से अपनी उच्चता का विश्वास था और इसलिए उसने राज्य की सारी सत्ता अपने हाथों में केन्द्रित कर ली। यह भी उसके पतन का कारण था।

(१६) गम्भीर विचार द्वारा समस्याओं का हल निकालने की शक्ति, जिसके कारण आरम्भ में उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ सीमित रहीं, जीवन के उत्तरार्ध में आडम्बर और शान की ओर झुक गई।

हेरॉल्ड (Herold) के मतानुसार, "यद्यपि यहाँ यह बात युक्ति-युक्त प्रतीत नहीं होती तो भी यह पूछा जाना कि नेपोलियन क्यों असफल हुआ, आवश्यक है।" विक्टर ह्यूगो ने इसका उत्तर दिया, "उसने परमात्मा के कार्य में हस्तक्षेप किया।" यह एक उत्तर है। अन्य लोग उसके पतन का कारण कुछ त्रुटियों और त्रुटि-पूर्ण निर्णयों को मानते हैं; कुछ लोग कहते हैं कि नेपोलियन ने इतना बड़ा ग्रास खाया कि वह उसे चबा नहीं सका; कुछ लोग उसकी राज्य-प्रणाली में दोष निकालते हैं, या उसे अदम्य ऐतिहासिक शक्तियों के हाथों खेलता देखते हैं; या यह कहते हैं कि उसकी जनता और साथियों ने उसका साथ छोड़ दिया; या उसकी पराजय को 'अच्छाई की बुराई पर जीत' बताते हैं; या निर्लिप्त भाव से दुर्भाग्य की बात कहते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि उसकी उन्नति आकस्मिक थी और उसके पतन ने उसे उचित स्थान पर पहुँचा दिया था।

फॉच के शब्दों में, "नेपोलियन इस बात को भूल गया कि मनुष्य परमात्मा नहीं बन सकता। वह भूल गया कि राष्ट्र व्यक्ति से और चारित्रिक नियम मानवता से ऊँचे हैं। वह भूल गया कि युद्ध ही सर्वोच्च लक्ष्य नहीं है, क्योंकि शान्ति युद्ध से उच्च है।"

नेपोलियन का चरित्र (Character of Napoleon)—नेपोलियन अन्धमहासागर का निवासी था और इस कारण उसका जीवन तीव्रता, लगन और चमत्कारी कल्पना से परिपूर्ण था। उसमें निर्दय, रूखा, विलासी, विचारशील और कवित्वमय होने की सामर्थ्य थी। कोलिनकोर्ट (Caulaincourt) लिखता है, "सम्राट् की भावनाएँ उसके रोम-रोम से प्रकट होती थीं और जब उसकी इच्छा होती तो कोई अन्य व्यक्ति उससे अधिक लुभावना नहीं हो सकता था। वह एक शिष्ट व्यक्ति था। विवाद में बहुत कम लोग उसका मुकाबला कर पाते थे। जिनसे भी वह बात-चीत करता वे सब उससे बड़े प्रभावित होते थे।

वह अत्यन्त हँसोड़ था। एक बार एक पागल ने नेपोलियन से कहा कि मुझे महारानी से प्रम है। नेपोलियन ने उसे उत्तर दिया, "आपको यह गुप्त भेद किसी और व्यक्ति को बताना था।" १८१२ में जब वह कोलिनकोर्ट के साथ मास्को से अकेला लौट रहा था तो उसने इस बात को लेकर, कि यदि प्रशिया वाले उन्हें पकड़ लें और दोनों को लोहे के पिंजरे में बन्द करके लन्दन में तमाशे के तौर पर दिखाया करें तो कितना मजा आये, उसने कोलिनकोर्ट को चिढ़ाने की सोची। इस मज़ाक से दोनों, कई मील तक, कहकहे लगाते रहे। कहा जाता है कि विआना में एक रात्रि को नेपोलियन ने 'ठंडा मुर्गा' (cold chicken), जो उसके भोजन के लिए तैयार रखा जाता था, माँगा। जब मुर्गा लाया गया, नेपोलियन ने उसकी ओर देख

कर कहा, "कब से मुर्गे एक टाँग और एक पंख के पैदा होने लगे । मैं देखता हूँ कि अब मुझे अपने नौकरों से बचे हुए भोजनों को खा कर जीना पड़ेगा ।" नेपोलियन ने अपने नौकर को, जिसने मुर्गा खाया था, कान खींचकर छोड़ दिया ।

नेपोलियन अपनी युवावस्था के साथियों और मित्रों से विशेष लगाव और मोह के बन्धन से बँधा था । लेनज़ (Lannes), ने (Ney), मरमोण्ट (Marmont), मुराट (Murat) और जुनो (Junot) जैसे मित्र, जो मन में आता, नेपोलियन को कह दिया करते थे । कहा जाता है लेनज़ और ड्यूरेक की मृत्यु पर नेपोलियन फूट-फूट कर रोया था ।

उसे एक 'पत्थर-दिल अत्याचारी' कहना भूल है । वह 'नीति' के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के रूप बदला करता था । स्वयं नेपोलियन कहा करता था कि मुझ में दो भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यक्ति हैं : एक केवल बुद्धि वाला और दूसरा हृदय वाला ।

उसने अपने भाई-बहिनों पर धन और पदों की वर्षा कर दी । उसने जोसेफ को पहले नेपल्स और फिर स्पेन का राजा बनाया । उसने लुई को हालैण्ड का राजा बनाया । उसने जिरोम को वेस्टफेलिया (Westphalia) का राजा बनाया । किन्तु इतना करने पर भी वे संतुष्ट नहीं हुए । नेपोलियन ने दुःखी होकर कहा, "जिस तरह ये लोग बात करते हैं उसे सुनकर कोई यह सोचेगा कि मैंने अपनी पैतृक सम्पत्ति बरबाद कर दी है ।"

नेपोलियन की स्मरण-शक्ति अद्भुत थी और इसकी सहायता से वह अपनी कल्पना में योजनाओं और आकांक्षाओं का ताना-बाना बुना करता था । उसके शब्दों में वह "दो वर्ष पहले का जीवन जिया करता ।" एमरसन के शब्दों में, "नेपोलियन को कभी भी विजय आकस्मिक रूप से प्राप्त नहीं हुई; अपितु युद्ध-स्थल में लड़ाई जीतने से पहले वह युद्ध को अपने मस्तिष्क में ही जीत लिया करता था ।"

उसे अपने बौद्धिक साधन हर समय उपलब्ध थे । उसके अपने शब्दों में "दराजों वाले सन्दूक की तरह मेरे मस्तिष्क में भिन्न-भिन्न प्रकार के मामले इकट्ठे होते रहते हैं । जब मैं किसी कार्य को बन्द करना चाहता हूँ तो उसका दराज़ बन्द करके दूसरा दराज़ खोल लेता हूँ । इनमें से एक भी कभी आपस में नहीं मिलता और इनमें कभी गड़बड़ नहीं होती । अतः मुझे असुविधा का सामना नहीं करना पड़ता । जब मुझे नींद आती है मैं इन सब दराज़ों को बन्द करके सो जाता हूँ ।"

नेपोलियन का मूल्यांकन (Estimate of Napoleon)—नेपोलियन विश्व के सबसे महान् विजेताओं और शासकों में से था । वह एक उच्च स्तर का बुद्धिमान् व्यक्ति था । उसके विषय में बहुत बड़ी संख्या में लिखे गये ग्रंथ उसके व्यक्तित्व के परिचायक हैं । यूरोप में एक नई व्यवस्था की नींव डालने वाले के रूप में उसका अनन्त काल तक स्मरण होता रहेगा । इटली और जर्मनी को मिला देने में उसके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता । उसके विषय में लिखने वालों के हृदय में उसके विरुद्ध

घोर विरोध होने के कारण उसके चरित्र का सत्य समीक्षण करना असम्भव है। एबट (Abbot) जैसे व्यक्तियों ने उसकी भरसक प्रशंसा करने का प्रयत्न किया है, किन्तु अन्य लोगों ने उसकी निन्दा की है। सत्य इन दो अत्यन्त विपरीत विचारों के मध्य में स्थित है। यह कहना कि या तो वह अत्याचारी था या लुटेरा, उसके साथ घोर अन्याय करना है। उसने "गुणवानों के लिए पदों के द्वार खोल दिये (careers open to talent) तथा विशेषाधिकारों को समाप्त करके समानता पर जोर दिया।" "अन्तिम उदार स्वेच्छाचारी शासक होने के साथ वह प्रथम आधुनिक महान् शासक था।"

नेपोलियन एक उच्च स्तर का वक्ता था। जन-साधारण पर उसकी अपील सफल होती थी। किसी ने उसे महान् लेखक भी कहा है। फिशर के शब्दों में, "वह पत्रकारों का राजा और युद्ध के संवाददाताओं का पिता था। उसकी शैली नाटकीय थी तथा उसमें आत्मश्लाघा का अनुपम तत्त्व विद्यमान था।"

कहा जाता है कि वह अत्यन्त स्वार्थी था और अपने स्वार्थ के लिए अपने परम मित्रों तथा सब वस्तुओं को छोड़ सकता था। क्या आश्चर्य है कि उसकी विपत्ति के समय सब ने, उसकी पत्नी तक ने, उसका परित्याग कर दिया हो। वह अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए लाखों सिपाहियों की जानों की बलि दे सकता था। कहा जाता है कि बोरोडिनों के युद्ध में सबसे अधिक नर-हत्या हुई और उसे देख कर नेपोलियन ने कहा, " यह सबसे शानदार युद्ध है जो मैंने अब तक देखा है।" उसका व्यक्तित्व इतना महान् था कि जो भी उससे मिलता सम्मोहित हो जाता; विशेषत: उसके सैनिक, जो कि उसके लिए अपना जीवन देने को तैयार रहते थे।

नेपोलियन कहा करता था, "मैं और व्यक्तियों की तरह कापुरुष नहीं हूँ।" उसका सिद्धान्त था कि धर्म और सदाचार के बन्धनों से वह मुक्त है। यद्यपि रोमन कैथोलिक धर्म में वह अपनी आस्था जताया करता था, तो भी मन से एक पूर्ण भौतिकवादी था तथा स्वयं ईसा में भी उसका विश्वास नहीं था। उसके शब्दों में, "मिस्र में मैं मुसलमान था, फ्रांस में रोमन कैथोलिक हूँ।"

वह बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्ति था। मनुष्य की शक्ति का जहाँ तक हमें ज्ञान है, नेपोलियन ने उन सब शक्तियों को पराकाष्ठा को पहुँचा दिया था। मिगनेट (Mignet) के शब्दों में, "नेपोलियन आधुनिक युग का सबसे महान् व्यक्तित्व है।"

वह देश का सर्वसत्ताधारी तथा सेना का सैनिक अधिकारी भी था। देश का निर्माण सैनिक आधार पर किया गया था। विजय के उद्देश्य से अपनी सेनाएँ रचने और बनाये रखने के लिए इसकी सारी संस्थाओं का संगठन किया गया था। राज्य के सारे पद व पुरस्कार सबसे पहले केवल सेना ही के लिए सुरक्षित रहते थे। एक अधिकारी, और सेना का एक प्राइवेट सिपाही तक, राज्य की सर्वोच्च सत्ता को अपनी सेवाओं का फल बता सकता था। यह स्पष्ट है कि ऐसी निर्मित सेना के साथ राज्यसत्ता की उपस्थिति उनके प्रयोजनों को अत्यधिक प्रोत्साहन दे सकती है। यह

बिल्कुल निश्चित था कि फ्रांस के राज्य के सारे साधन—सविनय, राजनीतिक, धन व सेना-सम्बन्धी तक—संचालन की गद्दी की ओर झुक गए थे जिसे नेपोलियन ही स्वयं निर्देशित करता हो। सेना को आदेशित रखने वाला प्रत्येक अधिकारी उसके विरुद्ध लाभ प्राप्त करता था जिसे प्रदत्त सत्ता का प्रयोग मिला हुआ था या जो आदेशों व उत्तरदायित्वों के आधीन रहता थो। लेकिन अन्य किसी सत्ताधारी, जो अब तक हुआ था की अपेक्षा नेपोलियन को इस प्रकार के अभूतपूर्व सुख प्राप्त थे। जैसा कि कई लोगों ने बताया है, उसकी उपस्थिति ऊपर कहे हुए सारे लाभ ही फ्रांस की सेना को नहीं मिल सकते थे, वरन् वह फ्रांस के मार्शलों की सारी ईर्ष्याओं और एक-दूसरे के कार्यों की प्रतिक्रियाओं को समाप्त कर सकता था, चाहे, वह दूषित सिद्धान्तों व भावनाओं पर आश्रित हों या केवल उनके बीच मतभेद हों। इस तरह फ्रांस की सेना को क्रिया की एकता प्राप्त थी।"

(Napoleon Bonaparte: His Rise and Fall, p. 285.)

नेपोलियन बहुत कुशल शासक और व्यवस्थापक था। उसने प्राचीन काल के विचारों को वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयोग किया। वह छोटी से छोटी बात का पूरा ध्यान रखता तथा उसका प्रत्येक कार्य सुचारु रूप से व्यवस्थित होता था। अपनी सेना के निर्माण में 'योग्यता' को महत्त्व देकर उसने कुशल व्यक्तियों की सेवाएँ प्राप्त कीं। वह दिन में १८ घण्टे काम कर सकता था और दूसरों से अधिक-से-अधिक कार्य की माँग करता था। १८१४ में ड्रेस्डन के युद्ध के बाद वह ३ दिन में ९० मील चला। वाटरलू के युद्ध के चार दिनों में वह ३७ घण्टे घोड़े पर सवार रहा और ९६ घण्टों में केवल २० घण्टे सोया। अपनी अद्भुत तीव्र बुद्धि के कारण वह शत्रु की सेना में दुर्बल स्थान आसानी से देख लिया करता था। संयुक्त राष्ट्रों की सेनाओं में तारतम्य की कमी के कारण तेजी से शत्रु के दुर्बल स्थानों पर करारी चोट करने की शक्ति उसमें बड़ी महत्त्वपूर्ण थी। वह अपनी विजय के बाद अन्य विजयों के लिए प्रयत्न करता रहता था। वह प्रत्येक सुअवसर से अधिकाधिक लाभ उठाता था।

नेपोलियन ने फ्रांस की बड़ी सेवा की। उसकी सफलताओं ने फ्रांस को विदेशी शत्रुओं से बचाया। उसने तशाली कुशल केन्द्रीय सरकार की स्थापना करके देश को अराजकता से बचाया। देश में और गृह-युद्ध में केवल उसका जीवन ही एक रोक था। उसने फ्रांस को 'ठोस कानून-प्रणाली' प्रदान की। उसने शिक्षा की उन्नति की, व्यापार और उद्योग की वृद्धि के लिए सक्रिय कदम उठाये। उसने दूसरे देशों पर फ्रांस की सेनाओं का व्यय-भार डाल कर देश के कोष को सहायता प्रदान की। उसने कागज के नोट नहीं चलाये और आय-कर भी नहीं लगाया। किन्तु टिलसिट की सन्धि के पश्चात् नेपोलियन फ्रांस में दुर्भाग्य ले आया। यदि १८०७ में ही नेपोलियन की मृत्यु हो गई होती तो फ्रांस उसका कृतज्ञ होता। इंग्लैण्ड को नीचा दिखाने का संकल्प ही उसकी सारी विपत्तियों की जड़ था।

आलोचक कहते हैं कि "नेपोलियन यूरोप का आततायी था। वह फ्रांस की प्राकृतिक सीमाओं से सन्तुष्ट नहीं रहा। वह यूरोप के अन्य देशों पर भी अपना शासन जमा कर उन पर स्वेच्छाचारिता से शासन करना चाहता था। युद्ध और अत्याचार उसके चरित्र के अभिन्न तत्त्व थे जो उसके रोम-रोम में पैठ गये थे।" "वह यूरोप को फ्रांस द्वारा और इंग्लैण्ड को यूरोप के माध्यम से नीचा दिखाना चाहता था।" महाद्वीप-व्यवस्था इंग्लैण्ड के विरुद्ध यूरोप को संगठित करने का एक प्रयत्न था। इंग्लैण्ड के प्रति उसकी कटुता उसके शब्दों से प्रकट है कि, "हमारी सरकार को इंग्लैण्ड की राजशाही समाप्त करनी ही चाहिए, अन्यथा इन क्रियाशील द्वीपों के निवासियों द्वारा अपना विनाश स्वीकार करना चाहिए।" नेपोलियन, अलेग्जेण्डर महान् और चार्लेमेग्ने दोनों के पदचिह्नों पर चलना चाहता था। उसकी महत्त्वाकांक्षा केवल यूरोप तक ही सीमित नहीं थी, उसकी इच्छा पूर्व को भी विजय करने की थी। जैसा कि १८१२ में दिये हुए उसके वक्तव्य से स्पष्ट है, "हम यूरोप का अन्त करने वाले हैं और फिर पूर्व की ओर जाकर भारतवर्ष के स्वामी बनेंगे।"

एमर्सन के शब्दों में, "उस काल में वह उन्नति करने वाले मध्यम वर्ग के सारे गुणों का मूर्त रूप था। वह व्यापार के धन्धे में नहीं खप सका, इस कारण वह इस नाटक में खलनायक बन गया।" सोरेल के मतानुसार, "नेपोलियन विशाल फ्रांस का समर्थक तथा उसकी 'प्राकृतिक सीमाओं' की माँग का निर्माता था।" लेवी के मतानुसार, "नेपोलियन एक आदर्श बुर्जुआ था जो शांति-व्यवस्था को चाहने वाला था, किन्तु यूरोप के सारे देशों के उसकाये जाने के कारण युद्ध करने पर विवश हो गया।"

ग्राण्ट और टैम्परले के मतानुसार, "नेपोलियन निर्विवाद रूप से एक असाधारण मस्तिष्क और चरित्र का व्यक्ति था जिसने किन्हीं भी परिस्थितियों अथवा किसी देश में अपना उच्च स्थान प्राप्त किया होता। उसमें कार्य तथा व्यवस्था करने की असाधारण शक्ति, तीव्र अन्तर्दृष्टि, साहस, उत्तरदायित्व निभाने की इच्छा, एक बार कार्य को हाथ में लेकर उसे पूरा करने का दृढ़ संकल्प तथा एक सैनिक के गुणों की पराकाष्ठा थी। इन सब के साथ-साथ उसमें बुद्धिमत्ता थी; वह प्रतिभा थी जिसे कोई भी जान नहीं पाता। किन्तु उसकी उन्नति, एक योग्य व्यक्ति द्वारा संसार में उच्च पद प्राप्त करने की कहानी से कहीं अधिक है। उसकी उन्नति में इतिहास के मौलिक सिद्धान्त की झलक है। हम इतिहास में देखते हैं कि अव्यवस्था और क्रान्ति के युग प्रायः एक व्यक्ति की शक्तिशाली सत्ता की स्थापना में समाप्त हुआ करते हैं। नेपोलियन के जीवन के इतिहास की तुलना के लिए जो उदाहरण दिये जाते हैं वे रोम में एक शताब्दी तक अव्यवस्था और क्रान्ति के युग के पश्चात् जूलियस सीजर द्वारा रोमन साम्राज्य की स्थापना और प्यूरिटन-क्रान्ति के पश्चात् ओलिवर क्रोमवेल का शासन है। किन्तु ये उदाहरण अत्यन्त स्पष्ट हैं। 'वार ऑफ रोज़ेज़' के पश्चात् ट्यूडर-राजशाही की स्थापना में भी हम इसी प्रकार के तत्त्वों को देखते हैं जब फ्रांस में 'शताब्दी युद्ध' द्वारा घोर अशान्ति पैदा की गई, तब उस अराजकता और संताप का अन्त चार्ल्स सप्तम और लुई ग्यारहवें के नेतृत्व में फ्रांस

के राजाओं ने किया। किन्तु जर्मनी के 'तीस वर्षीय' युद्ध के पश्चात् भी एक व्यक्ति का ही राज्य स्थापित हुआ।"

डा० हॉलैण्ड रोज़ के मतानुसार, "एक ही व्यक्ति नेपोलियन को तुलना में चुनौती दे सकता है। रोम की दुनिया पर जूलियस सीजर का व्यक्तित्व इसी प्रकार छाया हुआ है जिस प्रकार इस कोर्सिका के निवासी का व्यक्तित्व फ्रांस के क्रान्ति-युग पर छाया है। दोनों व्यक्ति युगपरिवर्तन के सन्धि-काल में उत्पन्न हुए थे। यह वह समय था जब पुरानी व्यवस्था बीत रही थी और नवीन सिद्धान्त मान्यता प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रहे थे। बहुत प्रकार से जूलियस सीज़र और नेपोलियन प्राचीन को नवीन से जोड़ने में सफल हुए। यद्यपि युवावस्था में ये नवीनता के प्रतिपादक रहे, किन्तु कालान्तर में प्रौढ़ावस्था में अधिक रूढ़िवादी बन गये। परन्तु सीज़र नेपोलियन से अधिक महान् व्यक्ति था। यद्यपि उसने अपने जीवन का गम्भीर भाग जीवन के उत्तरार्ध में आरम्भ किया, तथापि युद्ध और शासन-कला में उसने इस प्रकार की निर्विवाद महत्ता स्थापित कर ली थी कि उसे उसकी हत्या के अतिरिक्त अन्य कोई घटना हिला ही नहीं सकती थी। उसने युद्ध-विद्या के नवीन सिद्धान्तों की स्थापना की तथा इसके साथ-साथ शीघ्रता से बढ़ते हुए साम्राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समूचे रोम के लिए एक-जैसी नागरिक व्यवस्था की स्थापना भी की। उसके क्षमा-दान और व्यवहार ने रोम के साम्राज्य में मिलाये जाने वाले विजित लोगों के हृदय जीत लिए। उसने पद सँभालने के समय से अधिक बड़ा तथा शक्तिशाली राष्ट्र छोड़ा। देश तथा विदेश में उसकी अद्वितीय जीतों ने उसकी दूरदर्शिता को कम नहीं किया और न उसके स्वभाव को बिगाड़ा। वे उसके क्षमादान से अच्छे तथा अधिक मानवीय बन गये। यह बात नेपोलियन के लिए नहीं कही जा सकती। एलेग्जेण्डर महान् के विषय में लिखते हुए नेपोलियन ने अपनी त्रुटि को माना है। उसने लिखा है, 'मैं एलेग्ज़ेण्डर के युद्धों को नहीं पसन्द करता, क्योंकि मैं उन्हें समझ नहीं पाता; परन्तु उसके नीति के तरीकों को पसन्द करता हूँ। बत्तीस वर्ष की अवस्था में उसने एक सुव्यवस्थित साम्राज्य छोड़ा जिसे बाद में उसके सेनापतियों से आपस में बाँटा। उसमें यह कला थी कि उसके विजित लोग भी उससे प्रेम करते थे'।"

डा० हॉलैण्ड रोज़ के अनुसार, "नेपोलियन का व्यक्तित्व परस्पर-विरोधी प्रेरणाओं से ओत-प्रोत था। दक्षिण की जल-वायु से उष्णता पाकर उसमें उत्तर के निवासियों जैसा शान्ति से समस्या हल करने का स्वभाव था। वह नम्र और कठोर, क्षमाशील और निर्दय, उदार परन्तु घमण्डी, कल्पना करने वाला किन्तु दूरदर्शी था। प्रत्येक घटना और समस्या को सुलझाने के लिए उसने विभिन्न प्रकार की शक्तियों को केन्द्रित किया। हर बार हमें यह प्रश्न पूछना पड़ता कि किन विशेषताओं के कारण उसने यह कार्य इस प्रकार किया, अन्य प्रकार से क्यों नहीं किया? इस खोज के अन्त में हम अत्यन्त अद्भुत बात से विमूढ़ हो जाते हैं कि इतिहास के सबसे बड़े सम्राट् और व्यवस्थापक ने फ्रांस को निर्बल और अपने शत्रुओं को बलवान छोड़ा।"

डा० स्लोन (Sloane) के अनुसार, "नेपोलियन इसलिए महान् बना, क्योंकि उसकी प्रतिभा केवल मध्यम श्रेणी की नहीं थी। अन्यथा वह अपने युग के अन्य लोगों की तरह व्यक्तिगत चरित्र से मध्यमवर्गीय, युद्ध में सैनिक, शान्ति में स्वेच्छाचारी, और राजनीति में आदर्शवादी था। उसके सभी गुणों का विश्लेषण किया जा सकता था। उसके व्यक्तित्व को समझा जा सकता था। वह थक भी जाता था और इस कारण उसमें अनेक गुणों का समावेश भी था। काल के निर्झर में नेपोलियन का साम्राज्य 'एक चमकता हुआ बुलबुला' था। एलेग्जेण्डर ने अपने युग की सभ्यता को हेलिना की सभ्यता से रँग दिया और ईसाई धर्म के प्रसार के लिए संसार को तैयार किया। चार्लेमेग्ने (Charlemagne) ने बर्बर यूरोप की धरती में हल चलाया, इसे समतल किया तथा इसमें सभ्यता के बीज बोकर शिष्ट आदर्शों में श्रेष्ठ राष्ट्रीयता के आदर्श को धारण करने योग्य बनाया। नेपोलियन ने सर्व-शक्तिमत्ता को आमूल उखाड़ फेंका और व्यक्तिगत अधिकारों के आधुनिक विचारों को यूरोप के दूरस्थ प्रदेशों में फैलाया। उसने रोम-जर्मन साम्राज्य के जर्जर ढाँचे को उखाड़ फेंका और न चाहते हुए भी राष्ट्रीयता और पितृ-भूमि के विचारों को, जिन्हें युग-युगान्तर से गलत तरीके से अपनाया जा रहा था, नवजीवन प्रदान किया।"

शेटोब्रियान्ड (Chateaubriand) के मतानुसार, "नेपोलियन एक कार्यशील कवि था।" वह मिट्टी से बने मानव-शरीर के पुतले में जीवन डालने वाला अमर प्राण था। "लियोन ब्लाय के अनुसार, "वह अँधेरे में छुपा हुआ परमात्मा का मुख था।"

हैरोल्ड के विचार में, "बुद्धि व शक्ति के सर्वोच्च संयोग ने नेपोलियन के मस्तिष्क को एक चुम्बक वाली—लगभग अप्राकृतिक विशेषता दी—वह शक्ति उसके चित्रांकित अङ्गों से टपकती मालूम होती है और उसके नाम को जादू से युक्त करती है। यदि आधुनिक समय में कोई दैवी व्यक्ति उत्पन्न हुआ है तो वह नेपोलियन ही है। अब्राहम लिंकन उसका सम्भवतः प्रतिद्वन्द्वी हो, किन्तु पौराणिक गाथाओं का जीव होने के कारण नेपोलियन को बड़ा लाभ प्राप्त हुआ। ओलम्पिया वालों की तरह वह भलाई व बुराई से परे है, एक सच्चा पेपन देवता है, जो ख्याति के साथ प्राचीन व यूनानी है। लिंकन, जो अमेरिका के जंगली भागों से उपजा हुआ मसीहा था, एक और ही क्षेत्र का व्यक्ति है।"

कुछ ही लोगों ने इतने संकेत के साथ नेपोलियन के रहस्यवाद की चर्चा की है जितनी कि हेन (Heine) ने इन शब्दों में की है; "उसकी आकृति की भी ऐसी बनावट थी जिसे हम यूनानियों व रोम वालों के पत्थर के सिरों पर देखते हैं। उसके अङ्ग इतनी सुन्दरता से गठित थे जैसा कि प्राचीन मूर्तियों में देखने को मिलता है। उसके चेहरे पर यह अङ्कित था, 'तुझे सिवाय मेरे और कोई देवता नहीं मिलेगा'।"

(Introduction, The Mind of Napoleon, p. XIX)

"Death makes no conquest of this conqueror.
For now he lives in fame."

टैलीरैण्ड (Talleyrand) के मतानुसार, "नेपोलियन का ज्ञान अनुपम था। पिछले कई हजार वर्षों में उस जैसा आश्चर्यजनक जीवन देखा नहीं गया। वह वास्तव में सब से असाधारण व्यक्ति था। उस जैसा व्यक्ति आज तक न कभी मैंने देखा है, और न ही मेरे विचार से आने वाली कई शताब्दियों में उस जैसा असाधारण व्यक्ति जन्म ले सकेगा।"

नेपोलियन की वाटरलू की पराजय के बाद हार्डी ने ये शब्द कहे :—

"I came too late in time
To assume the prophet on the demi-god,
Apart past playing now. My only course
To make good showance to posterity
Was to implant my line upon the throne.
And how shape that if now extinction nears !
Great men are meteors that consume themselves
To light the earth. This is my burnt-out hour."

१७९९ और १८१५ के बीच फ्रांस में आने वाला अन्तर नेपोलियन का काम था। पिछला फ्रांस परम्परागत और गड़बड़ग्रस्त था, जबकि बाद वाला व्यक्ति, प्रसंविदा व सम्पत्ति के लिए सम्मान रखता था। प्रशासन एकात्मक, सचेष्ट व समरूपी था। यद्यपि नियंत्रित नहीं थे, पर आर्थिक साधनों में भी उत्साह था। ऐसी प्रक्रियाओं का निर्माण किया गया था जिनसे फ्रांस का महान् नगर स्वस्थ व सुन्दर बन गया। क्रान्तिकारी सिद्धान्त इतने संशोधित व मिश्रित हो चुके थे कि राजवंशों के प्रयत्न उन्हें बदलने में असफल रहे। उसकी एक यह भी राय थी कि 'राष्ट्रों को प्रयोग में लाने से पहले तुम्हें उनकी सेवा करने का अधिकार होना चाहिए।' टर्की के ईसाइयों में नेपोलियन ने असंतोष के बीज बोये और उसके दूतों ने उनके दिलों को प्रज्ज्वलित किया। इसी प्रकार का एक उदाहरण सर्विया था और यूनानियों में राष्ट्रीय जागरण इसी प्रकार की आशाओं को जगाकर किया गया था।

यह बताया जाता है कि अप्रत्यक्ष रूप से नेपोलियन ने अमेरिका को पूर्णतया इंग्लैण्ड से मुक्त कराया। वही इंग्लैण्ड और अमेरिका के बीच युद्ध कराने के लिए उत्तरदायी था जिसके कारण अमेरिका को यश व पूर्णरूपेण व्यापारिक मुक्ति प्राप्त हुई। नेपोलियन से लुइसियाना (Louisiana) के क्रय ने अमेरिका की राष्ट्रीय व्यवस्था में अन्दर व बाहर दोनों रूपों में क्रान्ति पैदा कर दी।

नेपोलियन व हिटलर के बीच तुलना—हैरोल्ड के विचार में, "नेपोलियन व हिटलर के चरित्र के बीच कई बाह्य, तथा किसी प्रकार से आकस्मिक नहीं, समानताओं के कारण कई लोगों ने इनके चरित्रों में पाई जाने वाली महत्त्वपूर्ण असमानताओं से आँखें मींच लीं। नेपोलियन से भिन्न, हिटलर को इतिहास में वही स्थान मिलेगा जो कभी अटीला या चंगेज़खाँ को मिला था। हिटलर ने कानून का नाश किया, जबकि नेपोलियन कानूनदाता था जिसकी संहिताएँ महाद्वीप के पार तक पहुँचीं। यही

अन्तर तुलना के पलड़ों को विषम करने के लिए पर्याप्त होगा। हिटलर को सनक हो गई थी और वह एक विचारधारा के पीछे दीवाना हो गया था, जबकि नेपोलियन जो सद्बुद्धि वाला और आत्म-अभिमानी था, ऐसे सिद्धान्तों से घृणा करता था। हिटलर घृणा की दुहाई देता था, जबकि नेपोलियन सम्मान की। हिटलर उस अंधे प्रवृत्तियुक्त दानव की प्रशंसा करता था जिसे वह 'जनता' कहता था और जिसे टेन (Taine) ने गोरिल्ला (Gorilla) कहा था, नेपोलियन ने उसे आतङ्क के युग में देखा था और वह उस दानव की सत्ता की माँग करने से पूर्व मर जाना उत्तम समझता था। जब नेपोलियन ने अपना जीवन शुरू किया, तब उसमें एक सद्बुद्धि वाले व सज्जन लोगों की आशाएँ निहित थीं जो बीथोविन से किसी प्रकार कम न थीं, जबकि हिटलर शुरू से अन्त तक मुट्ठी भर मनोवैज्ञानिकों से घिरा रहा। लेकिन उस अन्तर पर क्यों आग्रह किया जाय ? कदाचित् उनके बीच कोई अन्तर नहीं है सिवाय यह कि एक विवेक के युग में हुआ और दूसरा घृणा के युग में—और यही सारगर्भित अन्तर है।

"यह देखना कठिन है कि कैसे हिटलर (एक व्यक्ति होने के नाते) को सिवाय जनरोग के रोगी नाशक के और कुछ मान लिया जाय। दूसरी ओर, नेपोलियन ने अपनी ऐतिहासिक क्रियाओं में अपने पीछे अपनी प्रत्यक्ष सफलताएँ छोड़ीं। हिटलर से भिन्न, उसने यूरोप को खंडहरों में नहीं, वरन् उसे परिपूर्ण बनाकर छोड़ा। जहाँ उसकी बुद्धि ने उसके उद्देश्य का साथ नहीं दिया, उसका स्वभाव ऐसा रहा कि वह मन या बेमन के इतिहास की रचनात्मक शक्तियों के साथ रहा। जर्मनी व इटली का एकीकरण, लोकतन्त्रात्मक उदारवाद का प्रसार इत्यादि हो सकता है कि उसकी इच्छाओं के अनुकूल न हुए हों, किन्तु अवश्य ही अधिक मात्रा में वे उसी के प्रति ऋणी हैं। एक प्रतीक या एक पौराणिक गाथा के रूप में उसने मानवीय योग्यताओं की सीमाओं को पीछे हटा दिया। नेपोलियनों को जन्म देना मानव जाति के लिए एक कीमती वस्तु होगा, किन्तु यदि वह उन्हें उत्पन्न करने से बिल्कुल रुक जाय तो यह पता चलेगा कि उसकी शक्तियाँ बिल्कुल सूख गई। अपने नेपोलियनों को युद्ध व विजय से अधिक उत्तम प्रयोजनों की ओर घुमाने के उद्देश्य से पहले मानव जाति को ही युद्ध से बचना पड़ेगा। नेपोलियन को गलत समझने के लिए मानव जाति को बदलना चाहिए।" (The Mind of Napoleon, pp. XXXVIII—XXXIX)

नेपोलियन फ्रांसीसी क्रान्ति के बालक के रूप में (Napoleon the Child of French Revolution)—नेपोलियन का विश्वास था कि 'वह क्रान्ति का बालक है।' फ्रांसीसी क्रांति ने प्राचीन राजनीतिक व्यवस्था समाप्त करके और सैन्य स्वेच्छा-चारिता की नींव डालकर, नेपोलियन को अपनी शक्ति जमाने का अवसर प्रदान किया। यदि क्रान्ति से एक असाधारण परिस्थिति पैदा न हो गई होती तो नेपोलियन जैसे व्यक्ति को सत्ता प्राप्त करने का अवसर ही न मिला होता। 'प्रमुख सलाहकार' के रूप में शक्ति ग्रहण करके उसने १८०४ में जनता से अपना चुनाव 'सम्राट्' के रूप में स्वीकार करा लिया। 'नेपोलियन-संहिता' (Code Napoleon) में उसने क्रान्ति के श्रेष्ठ सिद्धान्त और कानून संग्रहीत किये। उसने समानता के सिद्धान्त को मानकर

अपने सेवक तथा सेनापति, सबको सामाजिक स्थिति के आधार पर नहीं, वरन् योग्यता के आधार पर चुना। उसने फ्रांसीसी क्रान्ति के प्रभाव को अमरत्व प्रदान किया। आलोचक कहते हैं कि "यद्यपि नेपोलियन 'क्रान्ति-पुत्र' था, किन्तु वह ऐसा बालक था जिसने अपनी माता की हत्या कर दी थी।" क्रान्ति के जन्मदाताओं ने जिन 'स्वतन्त्रता' और 'मित्रता' के सिद्धान्तों पर बल दिया, उनकी इसने उपेक्षा कर दी। फ्रांस और यूरोप की जनता की स्वतन्त्रता सब प्रकार से कुचलकर उसने अपनी इच्छा को प्रजा पर थोपा। उसका अपना विचार था कि जनता स्वतन्त्रता नहीं, अपितु समानता चाहती है और इसी धारणा से उसने लोगों को विचार व्यक्त करने की आज्ञा नहीं दी। समाचारपत्रों पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाये रक्खे और विरोध को प्रत्येक रूप तथा प्रकार से कुचल दिया गया। उसने जनता पर सैनिक अनुशासन लागू करने का प्रयत्न किया। नेपोलियन ने जो सम्पूर्ण प्रभुत्वशाली सरकार की स्थापना की, वह स्वयं जनता की प्रभुत्वपूर्णता की शून्यता थी। वह अन्तिम महान् स्वेच्छाचारी विधान-निर्माता था जिसने उस स्वतन्त्रताहीन युग में राज्य किया।

ग्रांट और टैम्परले के मतानुसार, "नेपोलियन क्रान्ति का बालक था, किन्तु उसने उस आन्दोलन के लक्ष्यों और सिद्धान्तों को, जिनसे इसका जन्म हुआ था, उल्टा कर दिया। यह बात इसकी बनाई संहिताओं से सिद्ध होती है। क्रांति ने केवल सामंत-शाही के अवशेषों तथा राज्य पर धर्माचार्यों के नियन्त्रण को ही नहीं उखाड़ा, अपितु उसने फ्रांस के विधि-विशेषज्ञों की अभिलषित परिपाटियों पर भी चोट की। संहिताओं में समानता की प्राप्ति का प्रयास किया गया था। इनके अनुसार पैतृक सम्पत्ति का बँटवारा समान रूप से सारे बालकों में होना था। तलाक को प्रचलित करके इसने रोमन-कैथोलिक धर्म की धारणाओं पर चोट की थी। जन्म-मृत्यु और विवाह-सम्बन्धी सब प्रकार की शंकाओं और आक्षेपों को हटा दिया गया। इन संहिताओं में जो कुछ निहित किया गया, उसका स्वयं नेपोलियन अनुमोदन नहीं करता था। उसने चर्च से मित्रता कर ली। उसे सत्ता प्यारी थी, उसे समानता से विशेष प्रेम नहीं था।"

फिशर के अनुसार, "नेपोलियन फ्रांसीसी क्रान्ति का बालक और उत्तरा-धिकारी था। जिसने यदि समानता को नष्ट भी किया तो भी उसने समानता की रक्षा अपने बनाये हुए कानूनों में इसे निहित करके की।" नेपोलियन ने कहा था कि "मैंने अराजकता की खाई को पाट दिया है। मैंने क्रान्ति का परिमार्जन किया है।"

प्रो० मारकहम के अनुसार, "यदि हम नेपोलियन द्वारा किये गये सुधारों का समीक्षण करें तो ये द्वयर्थक प्रतीत होंगे। ये एक प्रकार से क्रान्ति के सिद्धान्त को स्थिरता प्रदान करते हैं तो दूसरी ओर परोक्ष रूप से बुरबोन राजशाही की परि-पाटियों को परोक्ष रूप में प्रतिपादित करते हैं। इनसे क्रान्ति द्वारा कानूनी और प्रशासनिक समानता में हुए राष्ट्र के लाभों को स्थिरता और सुरक्षा प्राप्त हुई और योग्यता के लिए सुअवसरों के द्वार खोल दिये गये। इस दृष्टिकोण से नेपोलियन द्वारा

क्रान्ति का प्रतिनिधित्व करना युक्ति-युक्त है। उसके लिए और फ्रांस के जनसाधारण, मजदूरों और किसानों के लिए क्रान्ति के सामाजिक और प्रशासनिक लक्ष्य, मध्यम वर्ग को राजनीतिक स्वतन्त्रता से कहीं अधिक मूल्यवान हैं। १७८९ की क्रान्ति एक नहीं, अपितु सामाजिक, प्रशासनिक और राजनीतिक, तीन प्रकार की क्रान्ति थी। १८०० में फ्रांस की जनता राजनीतिक क्रान्ति को छोडकर सामाजिक और प्रशासनिक क्रान्ति को स्थिर करने के लिए उद्यत थी।

मिराबो की तरह नेपोलियन भी, क्रान्ति को राजशाही से बेमेल नहीं मानता था। मिराबो ने दरबार से गुप्त पत्र-व्यवहार में सम्राट् से यह प्रार्थना की थी कि वह रिशिल्यु के कार्य को जारी रखे और सामन्तशाही का नाश करके शासन को आधुनिक परिपाटी पर चलाकर क्रान्ति का नेतृत्व करे। नेपोलियन के विचार से सम्राट् का विनाश मध्यमवर्ग के घमण्ड और लुई सोलहवें की दुर्बलता के कारण हुआ। बुरबोन राजशाही की कुछ बातों को वह बहुत पसंद करता था। प्रमुख सलाहकार के पद पर आने के तुरंत बाद में नेपोलियन कहा करता था कि 'प्राचीन शासन सबसे अधिक पूर्ण और श्रेष्ठ था।' क्रान्ति ने जो लाभदायक नवीनताएँ हमें प्रदान की हैं उन्हें सुरक्षित रखते हुए वह प्राचीन व्यवस्था की अच्छाइयों को अपनायेगा जो क्रान्ति ने भूल से नष्ट कर दी हैं। १८०९ में वह कहा करता था, 'क्लोविस से जन-सुरक्षा समिति तक के युग को मैं गले लगाता हूँ।' बुरबोन वंश अवसर के अनुसार अपने को बना नहीं पाया और नेपोलियन को ही राजमुकुट गन्दी नाली से उठाना पड़ा। उसके विचार से, 'क्रान्ति द्वारा लाये गये परिवर्तनों के आधार पर फ्रांस में चतुर्थ वंश के राज्य करने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती।'

जोसेफ़ायन—जोसेफ़ायन (Josephine) का वर्णन किए बिना नेपोलियन की कोई व्याख्या पूर्ण नहीं हो सकती। उसने १७९६ में उसके साथ विवाह किया। उस समय वह नेपोलियन से ६ वर्ष बड़ी थी। उसका पहला पति रोब्सपायर के पतन से कुछ दिनों पूर्व मारा जा चुका था। पिछले विवाह से उसके दो बच्चे थे और वस्तुतः उसके पास जीवन-निर्वाह का कोई साधन न था। फिर भी वह हतोत्साहित नहीं थी।

वह नेपोलियन के उत्साह की गहनता व उसकी दृष्टि की तीक्ष्णता से अत्यधिक प्रभावित थी। वह तुरन्त उससे विवाह करने को तैयार हो गई। वह नेपोलियन के आत्म-विश्वास से भी प्रभावित थी। नेपोलियन ने उसे इन शब्दों में सम्बोधित किया था, "क्या वे (डायरेक्टर्स) यह सोचते हैं कि मुझे उटने के लिए उनके संरक्षण की आवश्यकता है? किसी दिन वे बहुत प्रसन्न होंगे यदि मैं उन्हें अनुमति दिया करूँगा। मेरी तलवार मेरे साथ है और इसी से मैं दूर तक जा सकता हूँ।" अपनी आन्तरिक भावनाओं के विषय में जोसेफ़ायन ने उसे यह लिखा था, "इस विवेकरहित विश्वास ने इस मात्रा तक इसे प्रभावित किया है कि मेरी समझ में इस व्यक्ति को किसी भी समय कुछ हो सकता है और उसकी विचार-शक्ति ऐसी मालूम होती है कि कोई नहीं कह सकता कि किस समय वह क्या कर बैठे।"

नेपोलियन के जोसेफ़ायन के साथ सबसे अच्छे दिन कटे। वस्तुत: वही एक ऐसी स्त्री थी जिसकी उसे चिन्ता हुई। यह स्थान श्रीमती वेलेवस्का को भी न मिल सका, जिससे उसका पुत्र हुआ। यह ठीक ही कहा जाता है कि नेपोलियन ने यूरोप जीता और उसे जोसेफ़ायन के क़दमों पर रख दिया। यदि जोसेफ़ायन न होती, तो नेपोलियन भी न होता। उसी ने उसे प्रेरणा दी। वह उसे अपने क्रोध से प्रसन्न कर सकती थी व अपने आँसुओं से हिला सकती थी। अपना परिवार त्याग कर उसने उसी के पास शरण ले रखी थी। वही संसार में ऐसी वस्तु थी जिसे वह अपने मस्तिष्क की बात बता सकता था और वह उसी के साथ अपना हृदय खोल कर रख सकता था।

दुर्भाग्यवश, नेपोलियन के परिवार के सारे सदस्य उसके विरुद्ध हो गये। नेपोलियन ने भी मूर्खतावश यह विचार किया कि किसी अन्य राजकुमारी के साथ विवाह करे और उससे उत्पन्न पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बनावे। इसने संकट उत्पन्न कर दिया और अन्ततः १८०९ में जोसेफ़ायन का परित्याग कर दिया गया। उसके शीघ्र बाद उसने ट्यूलेरेस (Tuileries) छोड़ दिया व मेलमेसाँ (Malmaison) में रहने लगी। वहीं वह एकान्त में मर गई। १८१५ में वाटरलू की लड़ाई के बाद जब नेपोलियन ने पेरिस को आखिरी बार छोड़ा, तो वह जोसेफ़ायन की प्रेतात्मा देखने मेलमेसाँ गया।

यह ठीक ही कहा गया है कि उसने अपने जीवन में एक महान् भूल की जब कि उसने जोसेफ़ायन को तलाक दिया। जब उसने ऐसा किया तो उसने अपना आधा जीवन काट दिया और उसका अधिक उत्तम आधा भाग फेंक दिया।

फ्रांसीसी क्रान्ति के परिणाम (Results of the French Revolution)—(१) फ्रांसीसी क्रान्ति कोई स्थानीय घटना नहीं थी। इसने फ्रांस की जनता को ही नहीं, अपितु यूरोप और सारे विश्व की जनता पर गहरा प्रभावित किया। फ्रांसीसी क्रान्ति किन्हीं विशेष सिद्धान्तों के समर्थन में हुई थी और वे सिद्धान्त स्वतन्त्रता, समानता और मित्रता थे। फ्रांस का उदाहरण पहले यूरोप का तथा वहाँ से सारे विश्व की प्रेरणा बना। इसकी विचारधारा यूरोप की राजनीति में सारी उन्नीसवीं शताब्दी तथा इसके बाद भी ओत-प्रोत रही।

(२) राष्ट्रीय सभा द्वारा 'मानव-अधिकारों की घोषणा' (Declaration of Rights of Man) ने इस तथ्य पर जोर दिया कि 'सर्वाधिकार-सम्पन्नता' जनता में निहित है और कानून केवल जनसाधारण की इच्छा की अभिव्यक्ति है। शासन-यंत्र को इस प्रकार चलाया जाय कि जनता का अधिकाधिक हित हो। यह सत्य है कि रूस की कैथरीन महान्, प्रशा के फ्रेडरिक महान्, आस्ट्रिया के जोसेफ द्वितीय ने, फ्रांसीसी क्रान्ति से पहले ही जनता की हालत को सुधारने की आवश्यकता अनुभव की, किन्तु यह दृष्टिकोण समस्त यूरोप की सरकारों का नहीं था। फ्रांसीसी क्रान्ति का दावा था कि जनता को अपने आप ही स्वयं पर राज्य करना चाहिए और

शासन केवल 'जनता के लिए' ही नहीं, अपितु 'जनता द्वारा' भी होना चाहिए। यह मान्यता दी गई कि 'सर्वाधिकार-सम्पन्नता' एक सम्पत्ति नहीं है जिससे उसका स्वामी लाभ उठाये, अपितु वह एक न्याय-पंचायत है जिसकी स्थापना कतिपय कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए हुई है। यह सत्य है कि इस सिद्धान्त के विरुद्ध आरम्भ में प्रतिक्रिया हुई, किन्तु अन्त में यह सिद्धान्त यूरोप के सारे देशों में दृढ़ता से जड़ पकड़ गया। विरोध का काल १८१५ से १८४८ तक चला जिस समय मैटरनिक (Metternich) आस्ट्रिया में सर्वेसर्वा था। मध्यम वर्ग की जनता ने अपनी सर्वाधिकार-सम्पन्नता की स्थापना और मान्यता स्थापित करने में वड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

(३) फ्रांसीसी क्रान्ति का दावा था कि प्रत्येक मनुष्य कानून के समक्ष वरावर है। जन्म और धन पर आधारित विशेषाधिकारों को कोई मान्यता नहीं दी गई थी। परिणाम यह हुआ कि मुज़ारेदारी, सामन्तशाही प्रतिवन्ध तथा व्यापारिक संघों द्वारा स्थापित सारे प्रतिवन्ध समाप्त कर दिए गए। धार्मिक सहिष्णुता का आश्वासन दिया गया। समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता स्थापित हुई तथा प्रत्येक व्यक्ति का शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार, मान्य ठहराया गया। १७९२ के 'स्त्रियों के अधिकारों की मान्यता' (Vindication of the Rights of Women) के प्रस्ताव द्वारा मेरी वुलस्टोन क्राफ्ट (Mary Wollstonecraft) ने माँग की कि स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार प्राप्त हों।

(४) फ्रांस सारी मानवता का प्रतिनिधि वन गया और स्वतन्त्रता की विचार-धारा सव सुधारकों तथा क्रान्तिकारियों का मूलमन्त्र वन गया। स्वतन्त्रता विश्व की परिपाटी वन गई। केवल व्यक्तिगत स्वतन्त्रता ही नहीं, अपितु राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए भी प्रयत्न किया गया। सर्वसाधारण की माँग थी कि आम चुनावों द्वारा न्यूनाधिक अधिकार वाले विधानमण्डल चुने जाने चाहिएँ। इस क्षेत्र में इंग्लैण्ड ने नेतृत्व किया और फ्रांस ने उसका अनुसरण किया।

(५) फ्रांसीसी क्रांति ने राष्ट्रीयता के सिद्धान्त का भी दावा किया। फ्रांसीसी क्रांति से पूर्व सामन्तों के प्रति स्वामि-भक्ति और राजा के प्रति जनता के प्रेम ने देश-भक्ति का स्थान लिया हुआ था। फ्रांसीसी क्रांति ने फ्रांस के राज्य को फ्रांस राष्ट्र में बदल दिया। १७९१ में लुई सोलहवें के देश से भागने के प्रयत्न से सिद्ध होता है कि राजा तथा जनता के हित भिन्न-भिन्न थे। ११ जून, १७९२ को 'पितृभूमि पर आपत्ति है' की घोषणा से लोगों में राष्ट्रीयता की भावना ने जोश मारा और फ्रांस को अपने शत्रुओं से टक्कर लेने की प्रेरणा दी। यूरोप के अन्य देशों पर फ्रांस के आक्रमण के कारण वहाँ राष्ट्रीयता की भावना जाग उठी। इटली, पुर्तगाल, स्पेन, प्रशिया, रूस और आस्ट्रिया में भी यह भावना जागी। स्पेन और पुर्तगाल के निवासियों में राष्ट्रीयता की भावना जागने से वहाँ की जनता नेपोलियन की सेनाओं को प्रायद्वीप से निकालने में समर्थ हुई। यही भावना थी जिसके कारण १८१२ में रूस ने 'जली धरती' (scorched earth) की नीति अपनाई। इसी भावना के कारण पुर्तगाल को पुनर्जीवन मिला। स्पेन ने यह सिद्ध कर दिया कि अनुशासनशील सेनाओं से

सारी जनता कहीं अधिक बलवान् है। इसी भावना ने राष्ट्रीय सम्मेलन के दिनों में फ्रांस की सेना को संगठित राष्ट्रों को मार भगाने के योग्य बनाया। 'सशस्त्र राष्ट्र' की विचारधारा विश्व के लिए एक महान् देन थी।

६. यह सत्य है १८१५ के विआना-सम्मेलन के पश्चात् राष्ट्रीयता के विचार के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई और ट्रोप्पू (Troppau) की नीति द्वारा इसका दमन करने का प्रयत्न किया गया, किन्तु अन्त में राष्ट्रीयता के सिद्धान्त का समस्त यूरोप में बोलबाला हुआ। इसी सिद्धान्त के कारण इटली और जर्मनी ने अपनी स्वतन्त्रता तथा पुनर्गठन प्राप्त किया। यही बात बेल्जियम, सरबिया, ग्रीस, रूमानिया और बलगेरिया के साथ हुई। इसी सिद्धान्त ने रूस को खूब तंग किया, जब पोलैण्डवासियों ने अपनी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष किया। १८४८-४९ का कासूथ (Kossuth) के नेतृत्व में हुआ हंगरी का विद्रोह भी राष्ट्रीयता की शक्ति के कारण ही हुआ।

(७) फ्रांस की क्रान्ति ने व्यक्तिवाद का समर्थन कर विचित्र-विचारवाद (Romanticisin), परम्परा के उल्लंघन और केवल युद्ध-भावना के आधार पर मानवीय जीवन की स्थापना में सहायता दी। फ्रांस की क्रान्ति का प्रभाव विक्टर ह्यूगो के Les Miserables, साउथे के Joan of Arc, वर्ड्सवर्थ के Prelude, शैले के Mask of Anarchy, गेटे के Faust और कोलरिज की प्रारम्भिक रचनाओं में दीख पड़ता है।

(८) उस सन्तोष के कारण जिससे पोप ने उन अपमानों को सहन किया जिनकी उस पर नेपोलियन ने बौछारें कीं, रोमन कैथोलिक चर्च की शक्ति भी मजबूत हो गई। शेटोब्रियाण्ड (Chateaubriand) ने नास्तिकवाद के विरुद्ध ईसाई मत का समर्थन किया और मेस्तर (Maister) ने पोप की सत्ता की रक्षा की।

९. नेपोलियन द्वारा किये गये अत्याचारों को जिस सहनशीलता से पोप ने सहन किया, उससे रोमन कैथोलिक चर्च का प्रभाव और भी बढ़ गया। शेटोब्रियाण्ड ने ईसाई धर्म का, नास्तिकवाद के विरुद्ध, समर्थन किया तथा मेस्तर ने पोप के अधिकारों का समर्थन किया।

(१०) फ्रांसीसी क्रान्ति का एक और प्रभाव भी पड़ा। आक्रमणों से ही नहीं, सरकार द्वारा सम्पत्ति के जब्त करने से सम्पत्ति के अधिकार की पवित्रता भी जाती रही। परिणामतः प्रजातन्त्रवाद एक काल्पनिक सिद्धान्त ही नहीं रहा, अपितु एक राजनीतिक कार्यक्रम भी बन गया। इस प्रकार फ्रांसीसी क्रान्ति की विचारधारा विश्व के कोनेकोने में फैल गई और विश्व-भर में उसे मान्यता प्राप्त हुई। २६ जनवरी, १९५० में लागू हुए भारतीय संविधान की प्रस्तावना का मसविदा बनाने वालों के मस्तिष्कों पर इस विचारधारा का प्रभाव देखा जा सकता है।

(११) क्रोपोटकिन के विचार में, "फ्रांस की क्रान्ति ने फ्रांस को मजबूत व समृद्धिशाली बना दिया। इससे पहले उसके बहुत से भागों में अभाव चल रहा था,

लेकिन क्रान्ति के फल के कारण फ्रांस १७८९ की अपेक्षा अब जीवन की जरूरी वस्तुओं को बहुत मात्रा में उत्पन्न करने लगा। १७९२ की अपेक्षा फ्रांस में कभी भी पहले इतने उत्साह के साथ कृषि-कार्य नहीं हो सका। उस समय कृपकों ने अपने स्वामियों, अधिकारियों व धर्माचार्यों से छीन कर अपनी भूमियों पर स्वयं कृषि-कार्य किया। उन्होंने यह चिल्लाकर Allons Prusse ! Allons Autriche अपने बैलों को बढ़ाया। जितना काम खेतों को साफ करने का क्रान्ति के दिनों में हुआ, उतना, पहले कभी भी न हो पाया। १७९४ में पहली अच्छी फसल हुई जिसने कम से कम गाँवों में, दो-तिहाई फ्रांस को सुख-चैन दिया, वरना इस समय तक नगरों में खाद्याभाव का प्रश्न बना रहता था। क्रान्ति के उन चार वर्षों में एक नये फ्रांस का जन्म हुआ था। शताब्दियों में सर्वप्रथम बार कृषकों ने भर पेट खाना पाया, अपनी पीठ सीधी की और बोलने का साहस किया। एक नए राष्ट्र का जन्म हुआ। इसी नए जन्म के कारण फ्रांस अपने गणतन्त्र और नेपोलियन के दिनों में अपने युद्धों का संचालन करने योग्य हो सका और अपनी क्रांति के सिद्धान्तों को इंग्लैण्ड, इटली, जर्मनी, हालैण्ड, स्विट्जरलैण्ड, स्पेन, बेल्जियम और रूस की सीमाओं तक भेज सका। जब ये सब लड़ाइयाँ समाप्त हो गईं और लोगों को यह आशंका हुई कि १८१५ में फ्रांस में संकट पड़ जायेगा और उसकी भूमि ऊसर हो जायेगी, तो यह पता चला कि अब फ्रांस लुई सोलहवें की अपेक्षा कहीं अधिक समृद्धिशाली था। क्रान्ति द्वारा पुनः उत्पन्न की हुई शक्ति इतनी बड़ी थी कि कुछ ही वर्षों में फ्रांस सुखी कृषकों का देश बन गया। यहाँ शत्रुओं ने पाया कि सारा खून जो उसने बहाया और सारी हानियाँ जो उसने उठाईं उनके बाद भी फ्रांस अपनी उत्पादकता की दृष्टि से यूरोप का सबसे धनी देश था। उसका धन भारतीय द्वीपों या विदेशी व्यापार पर आश्रित नहीं था, वरन् वह उसी की भूमि से उपजा था, उसी के भूमि के प्रति प्रेम का फल था और उसके अपने उद्योग व अपनी कुशलता का पुरस्कार था।"

क्रोपोटकिन यह भी संकेत करता है कि फ्रांस की क्रान्ति ने कृषक-दासता (Serfdom) व सर्वोच्चवाद (Absolutism) का अन्त किया। व्यक्तियों को वे व्यक्तिगत स्वतन्त्रताएँ दी गईं जिनका स्वामियों के कृषकों तथा निरंकुश राजा की प्रजा ने कभी स्वप्न भी न देखा था। यह दो सफलताएँ उन्नीसवीं शताब्दी के मुख्य कार्य का प्रतिनिधित्व करती हैं जो १७८१ में फ्रांस में शुरू हुआ और अगली शताब्दी में यूरोप के ऊपर छा गया। फ्रांस के कृषकों द्वारा शुरू किये गये मताधिकार के कार्य को नेपोलियन की सेनाओं ने इटली, जर्मनी, स्पेन, स्विट्जरलैंड और आस्ट्रिया तक में चालू रखा। यूरोप में कृषक-दासता का उन्मूलन उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्ध के भीतर पूरा हो जाता यदि १७९४ में अराजकतावादियों, कोर्डेलियर्स व जेकोबिन्स के मृतक शरीरों के ऊपर सत्ता पाने वाला फ्रांस का धनिक वर्ग क्रान्तिकारी भावना को नियंत्रित न करता, राजतन्त्र को फिर से स्थापित न करता और फ्रांस को नेपोलियन के हाथों में न देता। नेपोलियन ने कुलनीतन्त्र को उठाना शुरू किया, लेकिन इसके होते हुए भी कृषक-दासता की संस्था पहले ही घातक चोट खा चुकी थी। प्रतिक्रिया

के अस्थायी विजय के होते हुए भी स्पेन व इटली में इसका उन्मूलन हो चुका था। १८११ में इसे जर्मनी में दबा दिया गया और वहाँ यह १८४८ में निश्चित रूप में समाप्त हो गई। १८६१ में रूस अपने कृषकों को मुक्त करने पर विवश हो गया और १८७८ के संग्राम ने बाल्कन प्रायद्वीप में कृषकदासतावाद का अन्त किया। इस सर्वोच्चसत्तावाद के उन्मूलन ने सारे यूरोप की यात्रा करने में लगभग १०० वर्ष लिये। १६४८ में इंग्लैण्ड में घायल होकर, १७८९ में फ्रांस में परास्त होकर, राजसत्ता जो दैवी शक्ति पर आश्रित थी, वह यूरोप के सारे भागों से अदृश्य हो गई। कानून की दृष्टि में समानता व जनतन्त्रीय प्रशासन यूरोप के सारे भागों में स्थापित हुए।

क्रोपोटकिन ने बताया है कि साम्यवादी सिद्धान्तों को फ्रांस की क्रान्ति से कुछ वसीयत भी मिली। सारी फ्रांस की क्रान्ति के समय साम्यवादी विचार सामने उपस्थित रहा। गिरोंडिन्स (Girondins) के पतन के बाद इसी दिशा में अगणित प्रयत्न किए गए। एक ओर L'Ange की ओर से फोरियरवाद की प्रत्यक्ष रेखा आई और दूसरी ओर से शेलियर की। बेबुफ उन विचारों का सीधा उत्तराधिकारी हुआ जिन्होंने १७९३ में जनता को जोश से भर दिया। १७९३ के प्रत्यक्ष Enrages और १७९५ बेबुफ षड्यन्त्र के एक ओर १८६६-७८ की अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संस्था के बीच प्रत्यक्ष रेखा पड़ी हुई थी। गणतन्त्र के पहले दो वर्षों में लोकप्रिय साम्यवाद आधुनिक समाजवाद की अपेक्षा अधिक गहरी व्याख्या के आधीन रहा। केवल उत्पादन ही में नहीं, वरन् जीवन की आवश्यकताओं के उपभोग तक में साम्यवाद था। यह समुदायीकरण व राष्ट्रीयकरण ही था जिसे उपभोग कहा जाने लगा। रोब्सपायर ने घोषित किया कि केवल खाद्य-पदार्थों की अनावश्यक मात्रा ही व्यापार की वस्तु बन सकती है, किन्तु अनिवार्य वस्तुएँ सभी को प्राप्त होंगी। १७९३ के साम्यवाद, जिसने सब को उत्पादन के वास्ते भूमि व जीवन-निर्वाह के अधिकार का समर्थन किया, जिसने यह अस्वीकार किया कि कोई भी व्यक्ति अपने या अपने परिवार के आधीन उतनी ही भूमि रख सकता है जितनी वह कृषि के हेतु प्रयोग में ला सके तथा सारे व्यापार व उद्योग का समुदायीकरण करने के विषय में उसके प्रयोजन, ने हमारे समय के सारे न्यूनतम कार्यक्रमों या ऐसे कार्यक्रमों की अधिकतम प्रस्तावनाओं की अपेक्षा सीधे वस्तुओं के हृदयों में स्थान ग्रहण किया। वस्तुतः फ्रांस की क्रान्ति आधुनिक साम्यवादी अराजकतावादी व समाजवादी विचारों की उत्पत्ति का स्रोत थी। (The Great French Revolution, pp. 573-81).

प्रो० गुडविन के मतानुसार, "हमारे युग में १७८९ की फ्रांस की क्रांति १९१७ की रूसी क्रांति की छाया में दब गई है और इसके आदर्श नाज़ी और फासिस्ट क्रान्तियों से अस्थायी रूप से धुंधले पड़ गये थे। फ्रांस के देशी आलोचकों ने क्रान्ति द्वारा समाज और शासन से अधिक व्यक्ति को महत्त्व देने पर आक्षेप किया है, किन्तु विदेशी समीक्षकों ने सर्वदा यह प्रश्न पूछा है कि क्या यह सब एक 'त्रुटि' थी ? क्या स्वतन्त्रता और समानता प्राप्त करने के युद्ध में फ्रांस की बलि ज्यादा थी ? इस विषय में इतिहासकार १७८९ की क्रान्ति का विश्लेषण अठारहवीं शताब्दी में हुए

अनेक विप्लवों से तुलना करके करते हैं तथा इस तथ्य पर विशेष बल देते हैं कि इस क्रान्ति का आधुनिक प्रजातन्त्र की स्थापना में इतना योगदान था कि इसने सिद्धान्तों को निर्धारित किया और जनसाधारण की सर्वाधिकार-सम्पन्नता को स्पष्ट कर दिया। आधुनिक तानाशाही का स्रोत भी किसी सीमा तक फ्रांस की क्रान्ति को ही माना जा सकता है, क्योंकि १७९३ की जैकोबिन तानाशाही और क्रान्तिकारी सरकार, अस्थायी व्यवस्था थी जिसके आगे फ्रांस को गृह तथा विदेशी युद्ध, अपनी राष्ट्रीयता तथा उदार सिद्धान्तों की रक्षा के लिए थोड़े समय तक झुकना पड़ा था।"

Suggested Readings

Butterfield, H. : *The Peace Tactis of Napoleon (1806-8), 1929.*
Fisher, H. A. L. : *Napoleon, 1913.*
Fournier : *Napoleon.*
Geyl, P. : *Napoleon—For and Against, 1949.*
Gooch, G. P. : *Germany and the French Revolution, 1948.*
Hales, E. E. Y. ; *Nepoleon and the Pope.*
Hassall : *Life of Napoleon.*
Hazen : *The French Revolution and Napoleon.*
Hecksher, E. F. : *The Continental System : An Economic Interpretation*, 1922.
Herold. J. C. : *The Mind of Napoleon, 1955.*
Johnston, R. M : *The Corsican.*
Langsam, W.C. : *The Napoleonic Wars and German Nationalism in Austria, 1930.*
Ludwig : *Napoleon.*
Markham, F. M. H. : *Napoleon and the Awakening of Europe, 1554.*
Rose, J. H. : *The Personality of Napoleon*, 1912.
Rose, J. H. : *Life of Napoleon.*
Rose J. H. : *Napoleonic Studies.*
Rosebery, Lord : *Napoleon, the Lost Phase.*
Seeley : *Napoleon.*
Sloane : *Napoleon Bonaparte.*
Thompson, J. M. : *Napoleon Bonaparte, His Rise and Fall, 1953.*
Thomson : *Europe Since Napoleon.*

(1)

अध्याय १०

विश्राना-व्यवस्था (१८१५)

(Vienna Settlement, 1815)

नेपोलियन ने यूरोप के मानचित्र को बुरी तरह नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। उसने अपनी सुविधा के लिए एक देश के प्रदेशों को नोंच कर दूसरे देश से जोड़ दिया था। परन्तु जब १८१४ में उसे परास्त करके ऐलवा द्वीप में भेज दिया गया तो यूरोप के शासकों के सम्मुख यह समस्या खड़ी हुई कि यूरोप के मानचित्र का किस प्रकार पुनर्निर्माण किया जाय। क्योंकि नेपोलियन की पराजय में मैटरनिक ने बड़ा महत्त्वपूर्ण भाग लिया था, विश्राना को विचार-विमर्श और यूरोप की व्यवस्था का निर्णय करने के लिए चुना गया। बहुत से राजा, विदेश-मन्त्री और शासक विश्राना में इकट्ठे हुए और १८१४-१५ के शीतकाल में विचार करते रहे। इन विजय प्राप्त करने वालों में पोलैण्ड और सैक्सोने के भाग्य-निर्णय के विषय में बड़ा मतभेद था। अन्त में एक समझौता हुआ जिस पर १८१५ की वाटरलू की लड़ाई के कुछ ही दिन पहले हस्ताक्षर किये गये।

(१) विश्राना-व्यवस्था तीन सिद्धान्तों पर आधारित थी—पुनःस्थापन, न्याययुक्तता और क्षतिपूर्त्ति। पुनःस्थापन के सिद्धान्त का आशय था कि यथासम्भव फ्रांस की क्रान्ति तथा नेपोलियन के उदय से पहले जिस देश की जो सीमा थी और जो राज-वंश-शासन स्थापित थे, उनका पुनःस्थापन किया जाय। पुनःस्थापन का सिद्धान्त न्याययुक्तता से सम्बन्धित था, जिससे फ्रांस का कूटनीतिज्ञ टैलेरेण्ड (Talleyrand) फ्रांस के क्षेत्र को छीनने से बचाने के लिए तथा अपने पराजित देश को यूरोप के विचार-विमर्श में भाग लेने योग्य बनाने के लिए प्रयुक्त कर रहा था। विश्राना-व्यवस्था ने स्पेन, सिसली और नेपल्स में बुरबोन वंश की पुनःस्थापना की। ओरेंज वंश (House of Orange) को हालैण्ड में स्थापित किया गया। सवाय वंश को पीडमोण्ट और सारडीनिया में पुनःस्थापित किया गया। इटली में सारे राज्यों सहित पोप को पुनःस्थापित किया गया। अनेक जर्मन जागीरदारों की जागीरें, जो 'र्हायन संघ' में मिला ली गई थीं, वापस कर दी गई। स्विस-संघ की पुनःस्थापना हुई। टायरोल आस्ट्रिया को वापस कर दिया गया। आस्ट्रियन नीदरलैण्ड्ज़ पर आस्ट्रिया का अधिकार माना गया, किन्तु उसे इस प्रदेश को किसी अन्य प्रदेश से बदल लेने की अनुमति दे दी गई।

(२) नेपोलियन के युद्धों में ब्रिटेन ने डच उपनिवेश लंका, केप कॉलोनी, दक्षिणी अफ्रीका तथा गायना छीन लिये थे। ये प्रदेश ब्रिटेन के पास ही रहने दिये

गए। किन्तु हालैण्ड की क्षतिपूर्ति तथा फ्रांस की उत्तरी सीमा पर एक शक्तिशाली देश बनाने के विचार से हालैण्ड को आस्ट्रियन नीदरलैण्ड्ज़ दे दिए गए। हालैण्ड के राजा को संयुक्त नीदरलैण्ड्ज़ का राजा बना दिया गया। नीदरलैण्ड्ज़ की क्षतिपूर्ति के रूप में आस्ट्रिया को इटली में लोमबार्डी और विनिशिया दे दिये गये। टुस्कने, परमा और मोडिना के सिंहासनों पर हैप्सबर्ग वंश के राजाओं को बैठा दिया गया। स्वीडन से पोमेरेनिया और फिनलैण्ड छीन कर क्रमशः प्रशिया और रूस को दे दिये गये। स्वीडन की क्षतिपूर्ति डेन्मार्क से नार्वे लेकर स्वीडन को देने से हुई। डेन्मार्क को नेपोलियन का बहुत समय तक साथ देने के कारण दण्ड दिया गया।

(३) प्रशिया को भी बहुत लाभ हुआ। नेपोलियन द्वारा उसके जर्मनी के छीने हुए प्रदेश उसे पुनः प्राप्त हुए। उसे स्वीडन के अधिकृत पोमेरेनिया, सेक्सोने का २/५वाँ भाग, सारा वेस्टफेलिया और बहुत-सा र्‌हायनलैण्ड प्राप्त हुआ। इन सब प्रदेशों को प्रशिया को देने का यह भी आशय था कि फ्रांस के विरुद्ध प्रशिया को मुख्य रोक बनाया जाय। इस विस्तार का परिणाम यह हुआ कि प्रशिया जर्मनी का नेता बन गया। इससे उसके खनिज पदार्थों के स्रोत बढ़ गए जिनसे उसे एक विशाल औद्योगिक देश बनने में सहायता प्राप्त हुई। पोलैण्ड के प्रदेश को रूस को लौटा देने के कारण प्रशिया विशुद्ध जर्मन देश बन गया।

(४) शक्ति का संतुलन बनाये रखने तथा फ्रांस के चारों ओर घेरा बनाने के उद्देश्य से यह निर्णय हुआ कि सारडीनिया के राज्य का विस्तार किया जाय और इसे शक्तिशाली बनाया जाय। इस राज्य को सवाय और पीडमोण्ट लौटा दिये गये, तथा जिनोआ भी दिया गया।

(५) जर्मनी के विषय में यह निर्णय किया गया कि फ्रांस की क्रान्ति के पहले के इसके छोटे-छोटे राज्य न लौटाये जायँ। १८०६ में नेपोलियन ने पवित्र रोमन साम्राज्य को नष्ट कर दिया था, अतः इसे पुनः बनाने का प्रयत्न नहीं किया गया। यह सत्य है कि स्टाईन जैसे व्यक्तियों ने एक शक्ति के अन्तर्गत जर्मनी को संगठित करने का समर्थन किया, किन्तु फ्रेडरिक विलियम द्वितीय ने इसमें कोई रुचि नहीं दिखाई तथा दक्षिण जर्मनी के जागीरदारों को मैटरनिक ने आश्वासन दिलाया था कि उनकी सत्ता अक्षुण्ण रखी जाएगी। प्रशिया, आस्ट्रिया और छोटी-छोटी जर्मन रियासतों के राजाओं में से किसी ने भी संगठित जर्मनी को बनाने में उत्साह नहीं दिखाया और इस प्रकार जर्मनी को संगठित करने का अवसर जाता रहा। ३८ राज्यों का एक ढीला जर्मन-संघ बनाया गया। फ्रेंकफर्ट में एक संसद् बनी जिसमें विभिन्न राज्यों से प्रतिनिधि आते थे। इस संसद् की अध्यक्षता आस्ट्रिया का चान्सलर करता था। इस संसद् में ६ प्रतिनिधि भेजने का अधिकार आस्ट्रिया को दिया गया। सारे राज्यों को इसने प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया। सदस्यों को समूचे संघ अथवा संघ के किसी भी सदस्य के विरुद्ध, किसी भी विदेशी शक्ति से सम्बन्ध स्थापित करने की मनाही थी। यद्यपि औपचारिक रूप से यूरोप के सारे देशों ने जर्मन-संघ को मान्यता दी थी किन्तु वास्तव में आस्ट्रिया का राजनीतिक क्षेत्र में बोलबाला था।

(६) फिनलैण्ड को रूस के पास रहने दिया गया, क्योंकि इसे उसने स्वीडन से जीता था। तुर्कों से जीता हुआ बसारेविया भी दे दिया गया। उसे ग्रांड डची ऑफ वारसा (Grand Duchy of Warsaw) का भी बड़ा भाग प्राप्त हुआ।

इंग्लैण्ड ने उत्तरी समुद्र में हेलिगोलैण्ड, अन्धमहासागर में माल्टा और इयोनियन (Ionian) द्वीपसमूह, दक्षिण अफ्रीका में केप का उपनिवेश, लंका और अन्य द्वीपों पर अधिकार जमा लिया।

आस्ट्रिया-हंगरी को अपने पोलैण्ड के प्रदेश मिले। क्योंकि हालैण्ड को वेल्जियम आस्ट्रिया-हंगरी से लेकर दिया गया, अतः उसके एवज़ में आस्ट्रिया-हंगरी को लम्बार्डी और विनिशिया दिये गए। उसे ऐड्रियाटिक के पूर्वी किनारे का इल्लेरियन प्रान्त भी मिला। नेपोलियन की पत्नी मेरिया लुईसा को, जो आस्ट्रिया की राजकुमारी थी, परमा की रियासत दी गई। आस्ट्रिया के राजवंश से सम्बन्धित राजकुमारों को मोडिना और टुस्कने के सिंहासनों पर आसीन किया गया।

न्याययुक्तता के नाम पर फ्रांस का देश लौटा दिया, किन्तु उसे नीदरलैण्ड्ज़, प्रशिया और सारडीनिया के घेरे में डाल दिया गया। यूरोप का नेतृत्व फ्रांस के हाथ से आस्ट्रिया के हाथों में चला गया। आस्ट्रिया के राज्य-विस्तार ने उसे यूरोप की एक महान् शक्ति बना दिया। उसका जर्मनी और इटली दोनों पर प्रभुत्व छा गया। वह पहले से अधिक जर्मन वन गया। यद्यपि आस्ट्रिया के राजा से 'पवित्र रोमन सम्राट्' का पद छिन गया, तथापि आस्ट्रिया ने जर्मनी पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया।

आलोचना (Criticism)—प्रो० फ़ाइफ़ (Prof. Fyffe) के मतानुसार "दो युगों के सन्धि-काल में हुई विश्राना-व्यवस्था इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है।" इसमें कोई संदेह नहीं कि १८१५ की विश्राना-व्यवस्था १९१९-२० की 'फ्रांस-व्यवस्था' जितनी बुरी नहीं थी। केसलरे के प्रभाव के कारण १८१५ की व्यवस्था प्रतिशोधात्मक नहीं थी। उसने विश्राना में उपस्थित कूटनीतिज्ञों को ठीक ही कहा था कि "आप लोग यहाँ युद्ध की लूट बाँटने के लिए नहीं, अपितु एक इस प्रकार की व्यवस्था स्थापित करने के लिए आए हैं, जिससे यूरोप में शान्ति की स्थापना हो सके। समझौते के सिद्धान्त का जहाँ भी सम्भव हो सका प्रयोग किया गया, परिणामतः फ्रांस को दण्ड या ताड़ना नहीं दी गई। १९१९ में जर्मनी को विलियम द्वितीय की सब भूलों और त्रुटियों का उत्तरदायी ठहराया गया और उसका राज्य, उपनिवेश तथा धन इत्यादि छीन लिये गए और उसे करोड़ों डालर की युद्ध-क्षति की पूर्ति करने को कहा गया जो स्पष्टतः उसकी सामर्थ्य से परे की चीज़ थी। इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि जिस अत्याचारपूर्ण आक्रमण ने यूरोप की व्यवस्था को बहुत बुरी तरह बिगाड़ दिया था, उसके लिए नेपोलियन पूर्णरूप से उत्तरदायी था; किन्तु फ्रांस को उसके दुष्कर्मों का दोषी नहीं माना गया। उस समय भी, जब १८१५ में नेपोलियन वाटरलू के युद्ध में दूसरी बार परास्त हुआ, फ्रांस पर एक बहुत

नरम सन्धि लागू की गई। उसकी सीमा को १७९१ की सीमा माना गया। १७८९ में जब क्रान्ति हुई तब फ्रांस की जो सीमा थी, उसे नहीं माना गया। विभिन्न देशों से नेपोलियन द्वारा लूटे गए कला-भण्डार को फ्रांस को लौटाना पड़ा। उसे केवल ७० करोड़ फ्रैंक ही युद्ध-क्षति के रूप में देने पड़े। संयुक्त राष्ट्रों की सेना की, फ्रांस में ठहरने की अवधि को १८१८ में क्षति-पूर्ति कर देने के पश्चात् घटा दिया गया। फ्रांस के प्रति इस प्रकार के दयालु व्यवहार का यह परिणाम हुआ कि ९० वर्ष (१८१५-१९१४) तक यूरोप में कोई बड़ा युद्ध नहीं हुआ।

सीमैन के अनुसार, "केवल विआना-व्यवस्था को ही हम एक शताब्दी तक युद्ध न होने देने का कारण नहीं मान सकते। इसकी वजाय यह सम्भव है कि इस व्यवस्था की किसी भी धारा में बड़ी शक्तियों में परस्पर युद्ध होने के बीज नहीं थे और इस कारण इसे युट्रिक्ट (Utrecht) और वरसाई की सन्धियों से यूट्रेच को अच्छी शान्ति वाली सन्धि माना जा सकता है। युट्रिक्ट की सन्धि हेब्सवर्ग वंश की छाती में आग की तरह जलती रही तथा इसकी औपनिवेशिक तथा व्यापारिक शर्तें ब्रिटेन के लिए कालान्तर में फ्रांस और स्पेन पर आक्रमण करने के लिए साहस प्रदान करती थीं। वरसाई की सन्धि से जर्मनी के घुटने टिका दिये गये। इस सन्धि ने आधारहीन काल्पनिक अधिकारवाले, प्रजातन्त्रात्मक नवीन राज्य बनाये, प्राचीन अल्पमत की समस्याओं को समाप्त करके नई समस्याएँ खड़ी कर दीं, इटली को निराश करके फ्रांस को भड़काया दिया तथा बहुसंख्यक जनसाधारण की युक्ति-हीन शक्तियों को अपील करके एक ऐसी अव्यवस्था उत्पन्न कर दी, जो विआना-व्यवस्था के बहुसंख्यक जनसाधारण को महत्त्व न देने के कारण, इससे दुःखान्त रूप से भिन्न प्रतीत होती है। विआना में प्रजातन्त्रवाद और राष्ट्रवाद को महत्त्व न देने से युद्ध नहीं हुआ। १८१५ में उन लोगों ने यह ठीक ही सोचा कि क्रान्ति द्वारा युद्ध उत्पन्न होने से पहले युद्ध होते हैं, जिनसे क्रान्तियों को प्रोत्साहन मिलता है। उन्होंने देखा कि शक्ति और युद्ध के मामले केवल बड़ी शक्तियाँ ही निपटा सकती हैं। इसलिए यह सरल सत्य है कि विआना-व्यवस्था में कोई ऐसी धारा ही नहीं थी जिससे बड़ी शक्तियों को युद्ध का कोई बहाना मिलता, इस व्यवस्था का सम्पूर्ण और न्यायपूर्ण होना ही इसका परिचायक है।" (From Vienna to Versailles, pp. 8-9)

(२) यह नहीं कहा जा सकता कि विआना-व्यवस्था एक आदर्श समझौता था, क्योंकि इसमें भी अनेक न्यूनताएँ थीं। प्रो० हेयस के मतानुसार, "क्षेत्रों की इस सब काट-छांट में बहुत कम स्थायी था, बाकी सब केवल अस्थायी व्यवस्था थी। हालैण्ड और बेल्जियम का संघ केवल १५ वर्ष ही चला। इटली और जर्मनी की व्यवस्था केवल ५० वर्ष तथा पोलैण्ड की व्यवस्था कठिनाई से एक शताब्दी ही चली। लुई द्वारा महाद्वीप-व्यवस्था को ठीक प्रकार से लागू करने से मना करने पर नेपोलियन ने हालैण्ड को १८११ में अपने राज्य में मिला लिया था। किन्तु हालैण्ड और बेल्जियम का गठबन्धन करने में कोई युक्ति नहीं थी। हालैण्ड प्रजातन्त्रवादी, प्रोटेस्टैण्ट और ट्यूटोनिक था। बेल्जियम रूढ़िवादी कैथोलिक था और उसकी अधिकांश

जनता फ्रांस की भाषा बोलती थी। बेल्जियम की जनता को हालैण्ड की प्रमुखता रुचिकर नहीं थी और इस कारण उसने १८३० में विद्रोह करके अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। यह बात स्मरणीय है कि इस अप्राकृतिक गठजोड़ का उत्तरदायी इंग्लैण्ड था। उसे डर था कि हालैण्ड के बिना बेल्जियम फ्रांस के दबाव का विरोध नहीं कर पायेगा और इसलिए यह आवश्यक है कि इसे हालैण्ड के साथ जोड़ दिया जाय जिससे फ्रांस इसे एक ही ग्रास में न हड़प सके।

१९१७ में रूस और फिनलैण्ड तथा १९०५ में स्वीडन और नार्वे के संघ टूट गये। बिस्मार्क ने जर्मन संघ को इसके सारे आडम्बर के साथ नष्ट कर दिया। केवूर ने इटली के समझौते को पूर्णतः उलट दिया।

(२) इस व्यवस्था में यह अवगुण था कि इसमें पोलैण्ड, स्पेन, इटली और जर्मनी की जनता में हलचल मचा देने वाले राष्ट्रीयता के आन्दोलन को पूर्णतः नगण्य माना गया। पोलैण्ड का क्रान्तिकारी नेता जारटोरस्की (Czartorysky) जार एलैग्जेण्डर प्रथम से इसलिए मिला कि इस प्रकार उसके देश को स्वतन्त्रता मिल जायेगी, किन्तु उसे प्रयत्नों में असफलता मिली। पोलैण्ड को रूस के नियन्त्रण में रखकर उसका शासन एक पृथक् राज्य की तरह चलाया गया। पोलैण्ड-निवासियों को उन्नीसवीं शताब्दी भर अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना पड़ा और इस संघर्ष में उन्हें काफी हानि उठानी पड़ी। वे रूस के अत्याचारी शासन से कुचल दिये गये थे। इसी प्रकार स्टाईन के जर्मनी को एक करने के स्वप्न भी अधूरे रह गये। एक ढीला जर्मन-संघ बनाया गया। आस्ट्रिया पर जर्मनी को एकता और वैधानिक शासन न देने का आरोप लगाया जाता है। यह बात उल्लेखनीय है कि इंग्लैण्ड की शासन-प्रणाली भी असंतोषजनक मानी गई थी। विश्राना सम्मेलन ने जर्मनी के 'संविधान-वाद' की उपेक्षा नहीं की, किन्तु बाद में मैटरनिक की प्रतिक्रियावादी नीति के कारण कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं। इटली के विषय में यह उल्लेखनीय है कि यदि विश्राना में उपयुक्त समय पर सरकार बना दी जाती तो इटली में जनता की सरकार की स्थापना हो गई होती। विश्राना सम्मेलन के पास ऐसा कोई अधिकार नहीं था, जिसके द्वारा आस्ट्रिया पर इटली को स्वायत्त शासन प्रदान करने पर विवश कर दिया जाता। सम्मेलन ने सवाय और पीडमोण्ट के राज्यों को जिनोआ और नाइस के गणतंत्रों से मिला दिया। यह संगठन अस्थायी प्रतीत होता था और इससे जिनोआ और नाइस की जनता में असन्तोष उत्पन्न हुआ। इसके होने पर भी परोक्ष रूप से इन छोटी-छोटी इटली की रियासतों के संगठित होने से सारे इटली की एकता हो गई। इटली के स्वातंत्र्य-युद्ध का देवता मेज़िनी जिनोआ का निवासी था। इटली के प्रसिद्ध गैरीबाल्डी का जन्म नाइस में हुआ था। जिनोआ से ही प्रसिद्ध 'सहस्र' लाल कुर्त्ते वाले सैनिकों ने सिसली को स्वतंत्र कराने के लिए समुद्री यात्रा की थी। १८५९ में केवूर ने विनीशिया और लम्बार्डी से आस्ट्रिया वालों को निकालने के लिए नाइस और सवाय देकर नेपोलियन तृतीय की सहायता खरीदी।

(३) उदारदलीय लोगों की आशाएँ नष्ट हो गईं। जिन शासकों को वित्रआना-व्यवस्था के अनुसार पुनः राज्य-प्राप्ति हुई, उन्होंने अपने देशों में प्रतिक्रियावादी शासनों की स्थापना की जिससे सब जगह दमन का बोलवाला हुआ। स्पेन और नेपल्स में विशेष रूप से दमन-चक्र चला जहाँ बुरबोन वंश पुनः सत्ता आसीन हुआ। मेटरनिक ने स्वयं सारे यूरोप में पुलिस का कार्य करने का प्रयत्न किया। जहाँ कहीं भी उदार विचारों ने सिर उठाया, उन्हें कुचल दिया गया। उदार विचारों को छुरी समझा जाता था। ट्रापो (Trappau) के विधान ने यूरोप के देशों को अन्य देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने में सहायता प्रदान की। मैटरनिक की निजी धारणा थी कि, "यूरोप की जनता स्वतंत्रता नहीं, अपितु शान्ति चाहती है।"

(४) प्रो० हेयस के अनुसार, "वित्रआना व्यवस्था इसलिए त्रुटिपूर्ण थी कि जनता को राजवंशों की शान बढ़ाने के खेल में दाँव पर लगाया गया था।"

(५) क्रटवैल (Cruttwell) के मतानुसार, "गणतंत्रों पर न्याययुक्तता के सिद्धान्त को न लागू करना नीचता तथा धोखेबाजी थी। वेनिस और जिनोआ ने अनेक राजाओं से कहीं अधिक दीर्घ तथा यशस्वी स्वतन्त्रता का उपभोग किया था, किन्तु इन दोनों को उत्तरी इटली की फ्रांस से काल्पनिक सुरक्षा के उद्देश्य से नष्ट कर दिया गया।"

(६) ग्रांट और टैम्परले के अनुसार, "वित्रआना के शान्ति-स्थापकों को अत्यन्त प्रतिक्रियावादी और अनुदार बताना एक परिपाटी बन गई है। यह पूर्णतः सत्य है कि वे लोग प्राचीन परिपाटी का प्रतिनिधित्व करते थे और अधिकांश रूप से नवीन विचारधाराओं से अछूते थे। किन्तु वे प्राचीन परिपाटी की निकृष्टता का नहीं, अपितु श्रेष्ठता का प्रतिनिधित्व करते थे तथा उनकी व्यवस्था ने ४० वर्ष तक यूरोप को बड़े युद्धों से बचाये रखा। उनके मापदण्ड से यह व्यवस्था न्यायपूर्ण थी। फ्रांस के साथ उदारता से व्यवहार किया गया। शक्ति का संतुलन और क्षेत्रों की काट-छाँट, एक पंसारी की तरह नाप-तोल कर अथवा किसी साहूकार के खाता मिलाने की निपुणता से हुई। अकेले रूस को अपने भाग से अधिक मिला और इसका कारण यह था कि उसकी सेना अनुपात से कहीं अधिक थी। व्यवस्था में राष्ट्रीयता के दावों की उपेक्षा की गई, हालैण्ड और बेल्जियम तथा नार्वे और स्वीडन पर अप्राकृतिक गठबन्धन थोपे गये। किन्तु प्रत्येक गठजोड़ में शक्तिशाली सहकारियों (स्वीडन और हालैण्ड) ने इसकी माँग की और संगठित राष्ट्र सोच नहीं पाये कि उनकी इस माँग का किस प्रकार विरोध किया जाय। अन्य कटु आलोचना यह है कि छोटे देशों के दृष्टिकोण का सम्मान नहीं किया गया। यद्यपि यह व्यवस्था प्राचीन परिपाटी की तथा वर्तमान अधिकारों की समर्थक मानी जाती थी, तथापि छोटे राष्ट्रों का बड़े राष्ट्रों के हित के लिए निर्दयता से बलिदान कर दिया गया। शान्ति के व्यवस्थापकों के इन कार्यों के लिए कोई औचित्य नहीं है और यही उनके कार्यों की सबसे बड़ी और गम्भीर आलोचना है।"

(७) आलोचक इस बात का निर्देशन करते हैं कि विश्राना सम्मेलन ने पूर्व की समस्या का सन्तोषजनक हल नहीं निकाला। किन्तु यह भी सत्य है कि विश्राना सम्मेलन द्वारा इस समस्या को हल करना भी असम्भव था। यह प्रश्न यूरोप के कूटनीतिज्ञों द्वारा उन्नीसवीं शताब्दी भर प्रयत्न करने पर भी नहीं सुलझा। यूरोप की सारी शक्तियाँ कुस्तुन्तुनिया (Constantinopole) को प्राप्त करना चाहती थीं और इस विषय में कोई भी निर्णय नहीं हो सका। फिर रूस की तुर्की से सन्धियाँ थीं, विशेषतः १८१२ की बुखारेस्ट (Bucharest) की सन्धि ने इस समस्या को और भी जटिल बना दिया।

हेज़न लिखता है कि "विश्राना का सम्मेलन सामन्तों का सम्मेलन था, जिनके लिए फ्रांसीसी क्रान्ति द्वारा प्रतिपादित स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्र के विचार समझ में न आने वाले तथा घृणास्पद थे। शासकों ने अपनी इच्छानुसार यूरोप की पुनर्व्यवस्था की। उन्होंने इसका बँटवारा जनता की इच्छाओं की अवहेलना करते हुए किया तथा उस समय अद्भुत रूप से जाग्रत राष्ट्रीयता की भावना की उपेक्षा भी की। इस व्यवस्था को स्थायी बनाने वाले तत्त्वों की उपेक्षा करने के कारण यह समझौता, व्यवस्था का रूप धारण नहीं कर पाया। १८१५ के पश्चात् यूरोप के इतिहास में विश्राना सम्मेलन की महान् भूल सुधारने के बहुधा सफल प्रयासों की पुनरावृत्ति देखी जाती है।"

एच० ए० किसिंगर, "विश्राना के शासकों की मानवता का संशोधन करने में रुचि नहीं थी क्योंकि उनकी दृष्टि में इसी प्रयत्न ने उस दुर्घटना का मार्ग खोला था जो शताब्दी के चतुर्थ भाग तक चलती रही। इच्छाकृत क्रिया से मानवता में संशोधन करना, जर्मनी के नाम में फ्रांस के राष्ट्रवाद को लाँघना उन्हें ऐसा मालूम होता जैसा क्रान्ति द्वारा शान्ति स्थापित करना, अंधकार में स्थायित्व लाना, और यह मानना कि एक बार की टूटी हुई हवा फिर नहीं स्थापित हो सकती। अतः विश्राना पर उठाया गया विषय प्रतिक्रिया के विरुद्ध सुधार नहीं था। यही व्याख्या आगामी संतानों की है। वस्तुतः समस्या ऐसी व्यवस्था लाने की थी जिसमें परिवर्तन सत्ता का प्रयोग करने के वजाय उपकार के भाव द्वारा हो सके।" (A World Restored, p. 172)

इसके आगे, "उनके द्वारा दिए गए नैतिक समाधान के विषय में कोई कुछ भी सोचे, इसने यूरोपीय महाद्वीप से किसी भी बड़ी सत्ता को पृथक् नहीं किया और इस प्रकार असमाधानीय खाइयों के अभाव का प्रमाण दिया। यह समझौता केवल सद्-विश्वास पर आधारित नहीं था जो कि आत्म-नियंत्रण पर बहुत बड़ा भार डालता, और न यह सत्ता के विकास की शुद्धता पर ही आश्रित था जो गणना को अत्यधिक अनिश्चित बना देता। इसके विपरीत, वहाँ ऐसे संगठन की रचना हो गई थी जिसमें शक्तियाँ पर्याप्त रूप से संभारित थीं, जिसमें आत्म-नियन्त्रण आत्मत्याग से कहीं अधिक बड़ा दीख पड़ता, किन्तु जिन्होंने इसके अंगों के ऐतिहासिक दावों को ध्यान में रखा जिससे इसकी सत्ता को स्वीकृति में परिणत किया जा सका। नई अन्तर्राष्ट्रीय

व्यवस्था में कोई भी शक्ति इतनी असन्तुष्ट नहीं थी जिसने कि विआना समझौते के ढाँचे के भीतर ही उपाय खोजने की रुचि नहीं ली। चूँकि राजनीतिक व्यवस्था एक क्रान्तिकारी सत्ता की धारक नहीं थी, इसके सम्बन्ध वृद्धि के साथ रुचिकर हो गए जो इस बढ़ती हुई निश्चितिता पर आश्रित थे कि एक विनाशकारी उथल-पुथल की आशा नहीं की जा सकती।

"विआना समझौते की ऐसी सामान्य स्वीकृति कोई भाग्यशाली वस्तु नहीं थी। सारे युद्धकाल में कैसलरे व मैटरनिक ने यही आग्रह किया था कि उनका प्रयत्न स्थायित्व के लिए था, प्रतिकार के लिए नहीं, जो शत्रुता को कुचलने की बात से नहीं बल्कि उसकी मजबूरियों को मान्यता देने में उचित था। यदि हम विआना समझौते की रूपरेखा की पिट योजना और उसके औचित्य की श्वारजेनबर्ग को दिए हुए निर्देशों से तुलना करें, तो हम पायेंगे कि भाग्य, जैसा कि राजनीति में वैसा ही अन्य कार्यों में, केवल नमूने का शेष भाग है। कहने का यह तात्पर्य नहीं कि इस समझौते ने किसी भविष्यवाणी का प्रदर्शन किया, जिसने सारी घटनाओं को किसी दृश्य के अनुकूल बना दिया। कैसलरे ने एक ऐतिहासिक संभारता के हेतु कठोर संतुलन में अपने विश्वास को हटाकर, इसके सदस्यों के बीच गोपनीय लेन-देन की व्यवस्था की ओर अपने को अपने राज्य की आत्मा से बढ़ती हुई मात्रा में अलग कर दिया। मैटरनिक, जो इटली व जर्मनी दोनों ही में अपना प्रभुत्व रखने का प्रयत्न कर रहा था, उस नीति को ग्रहण करने पर विवश हो गया जो उसके साधनों से परे थी। औचित्य के हेतु उसकी बढ़ती हुई कठोर लड़ाई ने यूरोपीय काम के लिए आस्ट्रिया के महत्त्वपूर्ण आधार की अपर्याप्तता के प्रति बढ़ती हुई चेतना का प्रदर्शन किया जो आधार उसने उसी के लिए बनाया था। यदि एक महाद्वीप के बीच में स्थित साम्राज्य के लिए केवल शक्ति की नीति घातक है, तो सहायताहीन औचित्य पर विश्वास भी साहसदायक नहीं हो सकता और वह पतन की ओर ले जाता है। चतुराई शक्ति का स्थान ले सकती है, यदि लक्ष्य निश्चित हों परन्तु यह विचारों का स्थान नहीं ले सकती यदि चुनौतियाँ आन्तरिक हो जावें। और प्रशा, जो सन्देहों व संकोचों से युक्त था, जो राष्ट्रीय अपमान लाने वाले समर्पण के भाव से व्याकुल था, वह अपनी सत्ता रखते हुए भी जर्मन उद्देश्य में विलीन होने पर विवश हो गया। अब विस्चुला से लेकर र्‌हायन तक विस्तृत होने के कारण इसने जर्मनी की एकता के लिए खोज का प्रतीक उपस्थित किया। केन्द्रीय यूरोप के आर-पार घेरों में तितिर-बितिर, इसकी सुरक्षा के लिए आवश्यकता ने, यदि राष्ट्रीय लक्ष्य के लिए इसके विचार ने नहीं, इसे, चाहे अनिच्छा के साथ, जर्मन नीति का दास बनने पर बाध्य कर दिया। मुख्य जलमार्गों व थलमार्गों के इधर-उधर स्थित होने के कारण, प्रशिया ने जर्मनी को उसकी भौतिक एकता आने से पूर्व ही आर्थिक दृष्टि से अपने प्रभुत्वाधीन कर लिया था। सैक्सोनी में पराजय, जिसका इतनी क्रूरता के साथ विरोध किया गया, प्रशिया की आस्ट्रिया के ऊपर अन्तिम विजय का यन्त्र बन गई।"
(Ibid; pp. 173-74)

पवित्र गठबन्धन (Holy Alliance) (१८१५)—स्वप्नद्रष्टा, रहस्यमय, अस्थिर स्वभाव और कल्पना वाले जार एलेग्जेण्डर प्रथम द्वारा कृत १८१५ के पवित्र गठबंधन की चर्चा भी आवश्यक है। इस प्रकार की योजना पहले फ्रांस के हेनरी चतुर्थ के मन्त्री सुले (Sully) ने भी प्रस्तुत की थी। इस 'महान् योजना' (Grand Design) का उद्देश्य था, यूरोप में नित्य प्रति भयानक रक्तपात से छुटकारा प्राप्त करना तथा यूरोप के राजाओं के लिए एक अपरिवर्तनशील शान्ति प्राप्त करना, जिससे इस योजना के पश्चात् सारे राजा परस्पर भाईयों की तरह रह सकें। एक महासमिति या सीनेट की स्थापना करने की योजना थी, जिसमें विभिन्न देशों के ६० प्रतिनिधि हों जिनका कर्त्तव्य झगड़ों का निपटारा करना तथा यूरोप में शान्ति बनाये रखना हो। किन्तु १६१० में हेनरी नेवारे की अकाल-मृत्यु के कारण कुछ नहीं हो पाया।

नेपोलियन के पतन के पश्चात् यूरोप में जार एलेग्जेण्डर का सर्वोपरि प्रभाव होने के कारण उसे अपनी 'पवित्र गठबन्धन' की योजना रखने का प्रोत्साहन मिला। अपने स्विस शिक्षक के प्रभाव के कारण वह उदार विचारों वाला था। एलेग्जेण्डर यह चाहता था कि यूरोप के देशों के शासक परस्पर व्यवहार में ईसाई धर्म के सिद्धान्तों का प्रयोग करें। एलेग्जेण्डर के शब्दों में, "वर्तमान कार्य की, संसार के सम्मुख घोषणा करने का इसके अतिरिक्त अन्य कोई उद्देश्य नहीं है कि वे अपने देशों के आन्तरिक प्रशासन तथा अन्य राज्यों से उनके कूटनीतिक व्यवहार में पवित्र धर्म, न्याय, ईसाई धर्म, विशाल-हृदयता और शान्ति की मान्यताओं का प्रयोग करेंगे। ये मान्यताएँ केवल निजी व्यवहार से कहीं अधिक राजाओं के सलाहकारों पर आवश्यक रूप से लागू होती हैं और उनकी प्रजा का पथ-निर्देशन करती हैं तथा मानव की मान्यताओं को शक्ति प्रदान करती हैं और उनकी अपूर्णताओं को नष्ट करके सम्पूर्ण बनाती हैं।"

यह बात ध्यान रखने योग्य है कि पवित्र गठबन्धन को लोगों ने अधिकतः तोड़ कर ही सम्मानित किया है। यह सत्य है कि रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया ने आवश्यक घोषणाएँ कीं, किन्तु इन घोषणाओं को कार्यरूप में परिणत नहीं किया गया। पवित्र गठबन्धन अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति के क्षेत्र में सदाचार की भावना को पैदा करने का तथा यूरोप में राजनीतिक आत्मा (political conscience) की उत्पत्ति करने का प्रयास था जो अपने ध्येय में असफल रहा। जार 'पवित्र गठबन्धन की पारदर्शी आत्मा को भौतिक शरीर प्रदान नहीं कर सका' और यह योजना केवल योजना ही रही।

ग्रेट ब्रिटेन ने पवित्र गठबन्धन के सिद्धान्तों को मानने से इनकार कर दिया। केसलरे के अनुसार, "पवित्र गठबन्धन अलौकिक रहस्यवाद तथा मूर्खता थी।" मैटरनिक इसे, 'थोथी गर्जना' या 'सदाचार का ढोंग' कहा करता था। उसके शब्दों में "पवित्र गठबन्धन धर्म के चोले में एक उदारतापूर्ण महत्त्वाकांक्षा थी।" यह जनता के अधिकारों का दमन करने, स्वेच्छाचारिता की उन्नति करने अथवा अन्य अत्याचारों को बढ़ाने का साधन-मात्र ही थी। यह सम्राट् एलेग्जेण्डर की धार्मिक भावना का उबाल और राजनीति में ईसाई धर्म के सिद्धान्तों का प्रयोग करने का प्रयास था।

धार्मिक गठबन्धन का क्रियात्मक रूप से बहुत थोड़ा महत्त्व है। इसके

सिद्धान्तों को कभी भी कार्य-रूप में परिणत नहीं किया गया। यूरोप की जनता ने पवित्र गठबन्धन और चतुर्मुखी सन्धि को भूल से एक ही बात समझा। क्योंकि चतुर्मुखी सन्धि को राष्ट्रवाद और उदारवाद के कुचलने के लिए यूरोप भर में प्रयुक्त किया गया, पवित्र गठबन्धन की भी निन्दा की गई और इसे भी प्रतिक्रियावादी, जनता के विरुद्ध, राजाओं के गुट तथा उदार नीति के विरुद्ध षड्यन्त्र समझा गया था। इस योजना के प्रति विभिन्न राष्ट्रों के रुख से इन शक्तियों में ध्येय की एकता नहीं थी और समय आने पर उनका इससे पृथक् हो जाना सम्भव था।

सीमैन का विचार है कि "पवित्र गठबन्धन यूरोप में शान्ति को बनाये रखने का महत्त्वपूर्ण साधन था। जब तक यह व्यवस्था आस्ट्रिया, रूस और प्रशिया को एकता के सूत्र में बाँधे थी उस समय तक शान्ति निश्चित थी और युद्ध की सम्भावना कम थी। पवित्र बन्धन के कारण ही प्रशिया और आस्ट्रिया रूस के विरुद्ध क्रीमिया के युद्ध में नहीं लड़े। इस प्रकार युद्ध का क्षेत्र यूरोप के प्रदेश से दूर ही रहा। १८५६ के पश्चात् इस व्यवस्था का टूटना इटली और जर्मनी में १८१५ की व्यवस्था के समाप्त होने की प्रस्तावना थी। आस्ट्रिया को पीड़ित रूस से अलग कर दिया गया था, ताकि नेपोलियन तृतीय तथा विस्मार्क आस्ट्रिया के व्यय पर नया इटली और नया जर्मनी बना सकें (परोक्ष रूप से स्वायत्त शासनयुक्त हंगरी भी)। ट्रोप्पू की व्यवस्था के अनुसार १८७२ की 'तीन राजाओं की समिति' (League of Three Emperors) भी गणतन्त्रवाद को रोकने के लिए सामूहिक विरोध पर आधारित थी। विस्मार्क की बाद की विदेश नीति की चतुरता भी उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए थी जिसके लिए मैटरनिक प्रयत्न कर रहा था; अर्थात् पूर्व के प्रश्न पर रूस और आस्ट्रिया को युद्ध से रोका जाय। इस प्रकार की स्थिति बन जाने पर ही यूरोप को महायुद्ध से बचाया जा सकता था।"

Suggested Readings

Fyffe : *History of Modern Europe.*
Kissinger, H. A. : *A World Restored.*
Lipson : *Europe in the Nineteenth Century.*
Nicholson, Sir Harold : *The Congress of Vienna, 1945.*
Phillips : *Modern Europe.*
Seaman : *From Vienna to Versailles.*
Seignobos : *Political History of Europe Since 1814.*
Thomson, David : *Europe Since Napoleon, 1957.*
Webster, C. K. : *The Congress of Vienna, 1934.*
Webster : *The European Alliance.*
Ferrero, G. : *The Reconstruction of Europe 1941.*
Cresson, W. P. : *The Holly Alliance, 1922.*

अध्याय ११

कैसलरे और कैनिंग

(Castlereagh and Canning)

कैसलरे (१८१२-२२)—कैसलरे उन लोगों में से एक व्यक्ति है जिन्हें बड़ी नाजुक परिस्थितियों का सामना करना पड़ा और जिन्होंने अपना कार्य अत्यन्त योग्यता से कर दिखाया। उसके शान्त तथा शीघ्र ही उत्तेजित न हो जाने वाले स्वभाव ने उसे उसके कार्य में बड़ी सहायता दी।

उसका जन्म १७३९ ई० तथा मृत्यु १८२२ ई० में हुई। इंग्लैण्ड और आयरलैण्ड के मेल के समय वह इंग्लैण्ड की ओर से आयरलैंड के लिए सैक्रेटरी नियुक्त था। रिश्वत आदि देकर आयरलैंड के लोगों को आयरलैंड और इंग्लैंड के एकीकरण के लिए तैयार करवाने में उसका भी हाथ था। वह कैथोलिक लोगों को कुछ अंश तक धार्मिक स्वतन्त्रता देने के हक में था। वह कुछ समय के लिए युद्ध-मंत्री और फिर बस्तियों का मंत्री भी रहा। १८०७ में उसने सेना का पुनर्संगठन किया। परन्तु उसके द्वारा सेना का यह पुनर्निर्माण पुरानी सेना के आधार पर ही किया गया था। १८०९ ई० में उसने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया और कैनिंग से मुकाबला किया। १८१२ ई० में वह विदेश-मंत्री (Foreign Secretary) बन गया और १८२२ ई० में आत्महत्या करने तक वह इसी पद पर रहा। लार्ड ब्रोहम के शब्दों में "कैसलरे एक सरल और अत्यन्त बुद्धिमान् व्यक्ति था। तड़क-भड़क वाले काल्पनिक विचार और व्यर्थ की कल्पना की उड़ानें उसे धोखा नहीं दे सकती थीं। वह सीधा बात की तह तक पहुँचता। राजनैतिक दृष्टि से ही नहीं, अपितु व्यक्तिगत रूप में भी वह बड़ा वीर था।"

जब १८१२ ई० में वह विदेश-मन्त्री बना, उस समय नेपोलियन के विरुद्ध यूरोप के राष्ट्रों की शक्ति विशेष संगठित नहीं थी। प्रत्येक देश अपना उल्लू सीधा करना चाहता था। परिणामस्वरूप नेपोलियन के विरुद्ध कोई सामूहिक पग नहीं उठाया जा सकता था। इन्हीं परिस्थितियों में कैसलरे यूरोप गया और वहाँ जाकर उसने मित्र राष्ट्रों को संगठित किया। उसके इन्हीं प्रयत्नों की बदौलत राष्ट्रों का युद्ध (Battle of Nations) आरम्भ हुआ और १८१४ ई० में नेपोलियन की शक्ति समाप्त कर दी गई। १८१४ ई० में यूरोप में होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंसों में इंग्लैण्ड को वही स्थान प्राप्त था जो कि १९१९ ई० में अमेरिका को प्राप्त था। उस समय केवल इंग्लैंड ही एक ऐसा देश था जिसके पास युद्ध करने की शक्ति और साधन थे और जिसे युद्ध करने की इच्छा भी थी। वह अपने समय के यूरोप का भाग्य-

विधाना था। इंग्लैंड को ऊँचे स्थान पर पहुँचाने का श्रेय लार्ड कैसलरे को है जिसके उच्च आदर्शों, ठोस व्यवहार, बुद्धि और राजनैतिक कार्यों को करने की ईश्वरदत्त प्रतिभा ने उसे ऐसा करने में समर्थ किया। वह केवल अंग्रेजी पार्लियामैन्ट और मन्त्रिमण्डल में कार्य करने वाले अपने सहकर्मचारियों का ही विश्वासपात्र नहीं, अपितु यूरोप भर के राजनीतिज्ञों की अच्छी सम्मतियाँ और विश्वास प्राप्त करने में सफल हुआ।

कैसलरे का यूरोप जाने और मित्र-राष्ट्रों की राजधानियों की यात्रा करने का एकमात्र उद्देश्य इन चार बड़े-बड़े राष्ट्रों को संगठित करके नेपोलियन के मुकावले में खड़ा करना था। साथ-ही-साथ वह एक ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय संघ की स्थापना करना चाहता था जो यूरोप के राजनीतिज्ञों के सम्मुख उपस्थित समस्याओं को सुलझा सके। कैसलरे के विचार में राष्ट्रों की नीति में मतभेदों को दूर करने, युद्ध में विजय प्राप्त करने और इस प्रकार शान्ति स्थापित करने के लिए शत्रु के सामने सामूहिक रूप से उपस्थित होने का सर्वोत्तम ढंग बड़े-बड़े राष्ट्रों के प्रधानमंत्रियों में विचारों का विश्वस्त और खुला आदान-प्रदान था। बीसवीं सदी में तो अन्य राष्ट्रों से अपनी रक्षा करने के लिए कान्फ्रेंसें बुलाकर योजनाएँ बनाने का विचार कोई नया नहीं प्रतीत होता परन्तु कैसलरे के समय में ऐसा विचार क्रान्ति मचा देने वाले किसी विचार से कम नहीं समझा जाता था। अपने इसी एक कार्य से कैसलरे इतिहास के एक महान् शान्ति स्थापित करने वाले व्यक्ति के रूप में प्रसिद्ध हो गया।

कैसलरे चार बड़े-बड़े राष्ट्रों को परस्पर एक दूसरे के निकट लाने के उद्देश्य से ही यूरोप गया था और दो मास के अन्दर-अन्दर की गई मार्च, १८१४ ई० की शामोण्ट (Chaumont) की सन्धि उसकी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और एक बड़ी भारी सफलता थी। इस सन्धि के द्वारा चारों राष्ट्रों ने युद्ध को तब तक जारी रखने की प्रतिज्ञा की जब तक फ्रांस शान्ति का समझौता करने के लिए तैयार नहीं हो जाता। इन राष्ट्रों में से प्रत्येक राष्ट्र ने युद्ध के लिए शस्त्र आदि देने स्वीकार किये। इंग्लैंड ने शस्त्रों के साथ-साथ प्रति वर्ष ५० लाख पौंड की राशि देनी भी स्वीकार की। यह समझौता बीस वर्षों के लिए किया गया और मित्र-राष्ट्रों ने बीस वर्षों तक फ्रांस के द्वारा शान्ति के समझौतों की शर्तों को तोड़ने का प्रयत्न करने पर सामूहिक रूप से यूरोप की ओर से फ्रांस के विरुद्ध लड़ने का वचन दिया। इस सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किए जाने के कुछ ही समय पश्चात् नेपोलियन को फ्रांस के सिंहासन से उतार दिया गया और अब पैरिस में समझौते की बातचीत आरम्भ हो गई। शान्ति के समझौते का पहला भाग पैरिस में और शेष का भाग विआना (Vienna) में तैयार किया गया। नवम्बर, १८१५ में ई० शान्ति के सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिए गए।

इस सन्धि को तैयार करने में कैसलरे ने बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया। ड्यूक ऑफ वैलिंगटन, मैटर्निक और एलेक्जेण्डर प्रथम ने उसे उसके इस कार्य में सहायता दी। कैसलरे और एलेक्ज़ेण्डर प्रथम इस बात पर तुले हुए थे कि फ्रांस के साथ अधिक

कठोर व्यवहार न किया जाए। कैसलरे का कहना था कि हमारा कार्य विजयोपहार इकट्ठे करना नहीं अपितु संसार के लोगों को फिर से शान्तिपूर्ण रहना सिखाना है। वह फ्रांस से उसके साम्राज्य के किसी भी ऐसे भाग को जबर्दस्ती छीनने के विरुद्ध था, जिसको फिर प्राप्त करने के लिए फ्रांस के द्वारा युद्ध किए जाने की सम्भावना हो। उसने लिवरपूल को लिखा—"मैं जितना और विचार करता हूँ, उतना ही मुझे उसकी (फ्रांस की) शक्ति कुरेदने का यह ढंग पसंद नहीं आता। हमें उसे नीचा दिखाकर उसके नाखूनों को काट देना चाहिए जिससे वह कई वर्षों तक हमें घायल न कर सके। परन्तु मुझे विश्वास है कि जिन चीजों को वापिस प्राप्त करने के लिए फ्रांस अवश्य ही प्रयत्न करेगा उन चीजों की रक्षा के लिए यूरोप में होने वाले युद्ध में यूरोप के राष्ट्रों की सहायता करने के लिए वचनबद्ध होने की नीति अवश्य ही इंग्लैंड के लिए हानिकारक है।"

चूँकि यूरोप के राजनीतिज्ञों ने कैसलरे के द्वारा दिखाए जा रहे रास्ते पर चलकर फ्रांस के साथ न्यायपूर्ण और नर्म व्यवहार किया, इस लिए फ्रांस ने विआना के समझौते को मानना स्वीकार कर लिया। लगभग बीस वर्षों से यूरोप में गड़बड़ मचाते चले आने पर भी फ्रांस के साथ आश्चर्यजनक नर्मी का व्यवहार किया गया। युद्ध-काल में उसके द्वारा जीते गए प्रदेशों में से बहुत से प्रदेश वापिस ले लिए गए परन्तु उसे अपनी उत्तरी तथा पूर्वी सीमाओं को कुछ अंश तक बढ़ाने की इजाजत मिल गई। युद्ध में होने वाली हानि के बदले उससे कोई हर्जाना न माँगा गया। लुई अठारहवें को फ्रांस के सिंहासन पर बिठा दिया गया। १८१५ ई० की वाटरलू की लड़ाई में नेपोलियन की हार होने पर भी सन्धि की शर्तें फ्रांस के लिए विशेष कठोर न रखी गईं। केवल अपनी सीमा बढ़ाने के सम्बन्ध में दी गई रियासतें उससे वापिस ले ली गईं और उसे युद्ध के हर्जाने के रूप में छोटी-सी राशि देने के लिए कहा गया। उसे महान् कलाकारों की कृतियाँ भी वापिस लौटानी पड़ीं। यह भी निश्चय किया गया कि जब तक फ्रांस हर्जाने की राशि नहीं देगा तब तक फ्रांस के कुछ भाग पर मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ रहेंगी। फ्रांस के साथ इस प्रकार से नर्मी से सिद्ध होता है कि कैसलरे लायड जार्ज से अधिक योग्य राजनीतिज्ञ था। क्योंकि लायड जार्ज ने १९१९ ई० में जर्मनी के साथ एक अत्यन्त कठोर शर्तों वाली सन्धि की, जिसके परिणामस्वरूप बीस वर्षों के अन्दर-अन्दर ही एक दूसरा महायुद्ध छिड़ गया। कैसलरे के द्वारा तैयार की गई यह सन्धि लगभग एक शताब्दी तक चली।

पेरिस और विआना में चल रही लम्बी और पेचीदा समझौते की बातचीत को चलाते हुए लार्ड कैसलरे ने एक क्षण भी अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के आदर्श को अपने ध्यान से परे न किया। जिस समय नवम्बर, १८१५ की सन्धि की छोटी धारा पर वाद-विवाद हो रहा था उस समय उसे अपनी योजना को क्रियात्मक रूप देने का अवसर मिल गया। जिस समय यह धारा पेश की गई थी उस समय तो इसमें यह लिखा था कि फ्रांस के सम्बन्ध में सलाह-मशवरा करने के लिए यूरोप के राजनैतिक विद्वानों को समय-समय पर एकत्रित होना चाहिए परन्तु कैसलरे को इस धारा के

शब्द और भाव दोनों ही पसन्द न आए। उसने इस धारा को बदल कर इसके स्थान पर नीचे दी जा रही धारा रखी—

"इस सन्धि को क्रियात्मक रूप देने के कार्य को सरल करने और इसकी रक्षा करने के लिए, तथा संसार के लिए हितकर इन चारों राष्ट्रों के मेल-मिलाप को बढ़ाने वाले सम्बन्धों को और भी दृढ़ करने के लिए इस सन्धि में भाग लेने वाले मुख्य देशों के द्वारा इस बात को स्वीकार किया जाता है कि वे निश्चित समय के पश्चात् जलसे बुलाते रहेंगे। अपने सामान्य स्वार्थों के विषय में सलाह-मशवरा करने के लिए और समय को देखकर आवश्यक और लाभदायक पग उठाने के लिए देशों को फिर से समृद्ध बनाने और यूरोप में शान्ति को बनाए रखने के लिए या तो इन राष्ट्रों के राजा या उनके प्रतिनिधि इन कान्फ्रेंसों में भाग लेंगे।"

यूरोप में शान्ति स्थापित करने की दिशा में यह धारा कैसलरे की एक बड़ी भारी देन थी। इसमें हमें राष्ट्र संघ (League of Nations) के कौनवेनैण्ट और संयुक्त राष्ट्र संघ (United Nations) के चार्टर की झलक मिलती है। कन्सर्ट ऑफ यूरोप (Concert of Europe) की स्थापना भी इसी के आधार पर हुई थी। कैसलरे को आशा थी कि यूरोप में शान्ति भङ्ग करने वाली सभी समस्यायें इस सन्धि की छठी धारा के अनुसार बुलाई जाने वाली कान्फ्रेंसों में सुलझा ली जाया करेंगी और इस प्रकार यूरोप में शान्ति स्थापित रह सकेगी। परन्तु कैसलरे की इस योजना का असफल रहना निश्चित ही था क्योंकि उसके समकालीन राजनीतिज्ञ "कान्फ्रेंसें बुला कर झगड़े निपटाने" के महत्त्व को न समझ सके। जब शान्ति भंग होने का खतरा उपस्थित हुआ तो स्वयं इंग्लैण्ड भी शान्ति की रक्षा के लिए आगे न बढ़ा।

कई बार कहा जाता है कि कैसलरे ने इंग्लैण्ड को होली एलॉयंस की दुम के साथ बांध दिया परन्तु ऐसा कहना ऐतिहासिक तथ्यों के विरुद्ध है। यह सत्य है कि कैसलरे को इस बात पर बड़ा विश्वास था और वह इस बात का प्रबल समर्थक भी था कि यूरोप के राजनीतिज्ञ अपने बीच में पैदा हुए झगड़ों को सहयोग की नीति पर चलकर स्वयं ही निपटायें। इसी उद्देश्य से एक्स-लॉ-चैपल, ट्रोपाऊ, लाइबैंक और वेरोना के स्थान पर चार कान्फ्रेंसें हुई। इसमें संदेह नहीं कि कैसलरे आपसी झगड़ों को विचार-विनिमय के द्वारा निपटाने के पक्ष में था। विचार-विनिमय की उपयोगिता में उसे निश्चय ही बहुत विश्वास था परन्तु यह कहना सर्वथा गलत है कि वह Holy Alliance की इस नीति का समर्थक था जो (नीति) क्रियात्मक रूप में अपनाई जाने पर सारे यूरोप में से उदार विचारों और स्वतन्त्रता के लिए किए जा रहे आन्दोलनों को बाहर निकाल देने के लिए रूस, प्रशिया और आस्ट्रिया-हंगरी के हाथों में एक अत्यन्त उपयोगी शस्त्र के रूप में आ गई। यह सच है कि इंग्लैण्ड चार देशों के समझौते (Quadruple Alliance) का एक सदस्य था और यूरोप के राजनीतिज्ञों के सामने उस समय उपस्थित समस्याओं को सुलझाने के लिए उन्हें सहयोग देने के लिए तैय्यार था। यह भी सच है कि कैसलरे आस्ट्रिया को इटली में मनचाही करने की खुली छुट्टी देने के लिए तैयार था। उसने नेपल्ज़ और सिसली में निरंकुश शासन के

स्थापित रहने दिए जाने के सम्बन्ध में आस्ट्रिया और नेपल्ज़ के राजा फर्डिनैण्ड चतुर्थ में की गई गुप्त सन्धि को मान लिया। यही कारण था कि उसने इटली के रिसोर्जिमैण्टो (Resorgimento) के विद्रोह को एक नर्म और दयालु सरकार के प्रति सैनिक विद्रोह और साम्प्रदायिक षड्यन्त्र का नाम दिया। कैसलरे एक 'अच्छा यूरोपियन' और 'शान्ति का मित्र' था। वह आपसी झगड़ों को मिटाने के लिए समय-समय पर बुलाई जाने वाली कान्फ्रेंसों का प्रबल समर्थक था। इन कान्फ्रेंसों के द्वारा झगड़े निपटा कर वह युद्ध के कारणों को ही दूर कर देना चाहता था परन्तु वह इन कान्फ्रेंसों को अन्य राष्ट्रों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का साधन नहीं बनाना चाहता था। वह रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया के अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस के रूप में कार्य करने का घोर विरोधी था। यही कारण था कि उसने होली एलॉयंस (Holy Alliance) को अन्य राष्ट्रों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार देने वाले ट्रोप्पू प्रोटोकोल (Protocol of Troppau) का बड़ा विरोध किया।

१८२० ई० में कैसलरे ने अपने सब विचारों को एक स्टेट पेपर (State Paper) में संग्रहीत किया। उसके पश्चात् लार्ड कैनिंग ने इस स्टेट पेपर को अपनी नीति का आधार बनाया। उसने स्टेट पेपर को उस समय घोषित किया जिस समय स्पेन के राजा फर्डिनैण्ड सप्तम के अत्याचारों और जुल्मों के विरुद्ध स्पेन में एक सैनिक विद्रोह हो रहा था। उसने अपने इस पेपर में इंग्लैण्ड की अन्य देशों के आन्तरिक झगड़ों में हस्तक्षेप न करने की नीति पर प्रकाश डाला। इसमें उसने इस बात की ओर संकेत किया कि देश के आन्तरिक झगड़ों में अन्य देशों के हस्तक्षेप को न सह सकने में स्पेन के लोग यूरोप के सब देशों के लोगों से बढ़कर हैं। इस विषय में उसके विचार वेलिंगटन के विचारों पर आधारित थे। परन्तु स्पेन के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने की नीति अपनाने का केवल एक ही कारण नहीं था। होली एलॉयंस में भाग लेने वाले देश फर्डिनैण्ड सप्तम को पुनः स्पेन का राजा बनाने के लिए स्पेन के मामलों में हस्तक्षेप करना चाहते थे परन्तु कैसलरे उन्हें नवम्बर, १८१५ की सन्धि की छठी धारा के अनुसार स्थापित किए गए चार राष्ट्रों के समझौते (Four Powers Alliance) की याद दिलाकर उन्हें ऐसा करने से रोकना चाहता था। वह समझौता १८१५ ई० की सन्धि के द्वारा स्थापित की गई व्यवस्था की रक्षा करने के उद्देश्य से किया गया था, न कि अन्य देशों के आन्तरिक मामलों की देख-रेख करने या संसार के सब देशों की सरकारों के संगठन करने के उद्देश्य से। कैसलरे ने यह भी कहा कि "इस समझौते को इसके आधारभूत सिद्धांतों और वास्तविक उद्देश्यों से प्रकट होने वाले कर्त्तव्यों से भी आगे धकेलने से अधिक इसकी उपयोगिता नष्ट करने वाली कोई और चीज नहीं है।" उसने होली एलॉयंस के द्वारा १८१५ ई० की सन्धि की छठी धारा का दुरुपयोग किए जाने की कड़ी समालोचना की। जहाँ तक इंग्लैण्ड का प्रश्न था, कैसलरे ने कहा कि इंग्लैण्ड एक बुरे व्यवहार करने वाले राजा के पक्ष में किसी देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए तैयार नहीं। कैसलरे ने कहा कि सचमुच ही यूरोप की शान्ति भङ्ग हो जाने का खतरा उपस्थित हो जाएगा तो हमारा यह देश अपने कर्त्तव्य को पूरा करने के लिए उचित स्थान पर पहुँच जाएगा। परन्तु

हमारा यह देश खतरे से बचने के लिए परहेज़ के तौर पर थोथे और काल्पनिक सिद्धान्तों पर नहीं चलेगा। जहाँ एक ओर वास्तविक खतरा उपस्थित होते ही इंग्लैण्ड उसका सामना करने के लिए सामने आ जाएगा, वहाँ दूसरी ओर वह अपने राष्ट्रों के द्वारा काल्पनिक खतरे से लड़ने में और अत्याचार करने वाले के पक्ष की ओर से लड़ने में उनकी सहायता नहीं करेगा।

अपनी दृढ़ नीति के कारण कैसलरे चार राष्ट्रों के समझौते से अलग नहीं होना चाहता था। परन्तु वह इस बात पर तुला हुआ था कि वह अन्य राष्ट्रों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप की नीति को यूरोप के राष्ट्रों के द्वारा नहीं अपनाया जाने देगा। अपनी मृत्यु से कुछ ही समय पहले कैसलरे वेरोना की कांग्रेस में भाग लेने के लिए तैयार हो रहा था। इस कांग्रेस में स्पेन के झगड़े के विषय में भी वाद-विवाद होना था। उसने पहले ही यह निश्चय कर लिया था कि वह यूरोप के राष्ट्रों को स्पेन में पुनः फर्डिनैण्ड सप्तम को गद्दी पर बैठने से रोकेगा। यद्यपि उसने वेरोना की कांग्रेस के मौके पर आत्म-हत्या कर ली, उसका कार्य लार्ड कैनिंग पूरा करता रहा। वेरोना की कांग्रेस में भाग लेने के लिए वेलिङ्गटन को भेजा गया। उसने कैसलरे के द्वारा स्थापित किए गए सिद्धान्तों पर ही आचरण किया। वुडवर्ड (Woodward) ने ठीक ही कहा कि कैनिंग कैसलरे के सिद्धान्तों और उद्देश्यों से सहमत था। उसका तो केवल उन उद्देश्यों को प्राप्त करने के ढंग से कैसलरे से मतभेद था। जहाँ एक ओर कैसलरे अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को सुलझाने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय कांफ्रेंसों को बुलाने के पक्ष में था, वहाँ दूसरी ओर कैनिंग झगड़ों को निपटाने के इस ढंग का विरोधी था। उसके विचार हम उसके अपने शब्दों से जान सकते हैं। उसने कहा "परमात्मा का धन्यवाद है कि अब और कान्फ्रेंसें नहीं होंगी।" उसकी इस नीति का परिणाम था कि कान्फ्रेन्सों का युग समाप्त हो गया।

यह कहना ग़लत है कि कैसलरे ने इंग्लैंड को Holy Alliance की दुम के साथ बाँध दिया। वह निश्चय ही Holy Alliance के उन सिद्धान्तों का विरोधी था जो कि एलॉयंस में भाग लेने वाले राष्ट्रों को अन्य देशों के राष्ट्रों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार देते थे। असल बात तो यह है कि कैसलरे Holy Alliance का घोर विरोधी था। वह इसे "असंगत प्रलाप और उत्कृष्ट गूढ़ विद्या" का टुकड़ा कहा करता था। उसने लिवरपूल को स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि ज़ार के (जिसे होली एलॉयंस करने की सूझी थी) मस्तिष्क में अवश्य ही कुछ गड़बड़ थी। वह होली एलॉयंस को स्वतन्त्र विचारों के विरुद्ध युद्ध में प्रयोग किये जाने के पक्ष में न था। कैसलरे स्वयं स्वतन्त्र विचारों का विशेष समर्थक नहीं था, परन्तु दूर अन्य देशों के आन्तरिक झगड़ों में हस्तक्षेप करने की नीति से उसे बड़ी घृणा थी। उसे इंग्लैड को होली एलॉयंस की दुम के साथ बाँधने वाला इस लिए कहा जाता है कि ऐसा कहने वाले लोग होली एलॉयंस और चार राष्ट्रों के समझौते (Quadruple Alliance) में भेद को नहीं समझते। स्वतन्त्रता के विदेशी शत्रुओं के साथ उसके मित्रतापूर्ण घने सम्बन्धों ने लोगों के ऐसे विचार को और भी दृढ़

कर दिया। कैसलरे कोई विशेष अच्छा वक्ता न था। न तो उसमें इतनी योग्यता थी और न ही उसकी इच्छा थी कि वह लोगों को इस बात का विश्वास दिलाए कि वह होली एलॉयंस (Holy Alliance) का विरोधी है और यह तो केवल आधुनिक अनुसंधान-कर्त्ताओं ने इस बात की खोज की है कि होली एलॉयंस और क्वाडरूपल एलॉयंस (Quadruple Alliance) दो अलग-अलग चीजें थीं। इन समझौतों के दो पृथक्-पृथक् समझौते होने के रस्योद्घाटन ने कैसलरे की वास्तविक महत्ता को प्रकट किया है। उसके समकालीन विद्वान् जो कि होली एलॉयंस और क्वाडरूपल एलॉयंस को एक ही चीज समझते थे, उसे मैटर्निक के समान ही यूरोप का एक अन्य कन्सर्वेटिव और रूढ़िवादी राजनीतिज्ञ मानते थे। शैली की इसी अज्ञानता ने उसे Masque of Anarchy (१८१७) में निम्नखिलित पंक्तियाँ लिखने के लिए प्रेरित किया—

"I met Murder on the way;
He had a mask like Castlereagh;
Very smooth he looked, yet grim.
Seven blood hounds followed him.
All were fat and well they might
Be in admirable plight,
For one by one and two by two,
He tossed them human hearts to chew."

केवल आधुनिक युग में आकर ही कैसलरे की महत्ता को समझा जाने लगा है। यह सच है कि वह यूरोप के राष्ट्रों को शान्ति भंग करने वाले आपसी झगड़ों को परस्पर सहयोग से सुलझाने के लिए मनवाने के अपने आदर्श को क्रियात्मक रूप देने में सफल न हो सका परन्तु साथ ही इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि उसी ने सबसे पहले वे सुझाव पेश किये जो कि आगे चलकर लीग ऑफ़ नेशन्ज़ के कौनवेनेण्ट और संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के आधार बने। कैसलरे की रचनाओं का बड़ी गम्भीरता से अध्ययन करने वाले इतिहास-वेत्ताओं के द्वारा ही उसकी योग्यता का अनुमान लगाया जा सकता है। 'कैसलरे की विदेश-नीति' नाम की अपनी पुस्तक में वैब्स्टर ने कैसलरे को इंग्लैंड के इतिहास में सर्वश्रेष्ठ विदेश-मंत्री माना है। सीटन-वाट्सन (Seton-Watson) ने कैसलरे को इंग्लैंड के इतिहास में हुए विदेश-मंत्रियों में से एक श्रेष्ठ और सम्बन्धों को बनाने वाला विदेश-मंत्री कहा है। कैसलरे के अपने शब्दों में "शान्ति स्थापित करने के लिए की गई सन्धि की सफलता के लिए उसका न्यायपूर्ण और परिमित होना आवश्यक है। आदर्श रूप में और क्रियात्मक रूप में आन्तरिक सहयोग की भावना को पैदा करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। ग्रेट ब्रिटेन को यूरोप के मामलों में अपना कर्त्तव्य पूरा करना चाहिए।" वैब्स्टर के विचार में कैसलरे यह समझ चुका था कि युद्ध से बचने के लिए शान्ति के लिए तैयार होना आवश्यक है।

जार्ज कैनिंग (१८२२-२७)—जार्ज कैनिंग का जन्म १७७० ई० में हुआ।

यद्यपि उसका जन्म एक छोटे घराने में हुआ था तो भी ईटन और आक्सफोर्ड में अच्छी शिक्षा प्राप्त कर वह एक ऊँचे पद पर पहुँच गया। वह एक अत्यन्त बुद्धिमान् व्यक्ति था। १८०७ ई० से १८०६ तक वह इंग्लैंड का विदेश-मंत्री रहा। १८०६ ई० से १८१६ ई० के बीच के समय में वह किसी विशेष ऊँचे पद पर न रहा। परन्तु १८१६ ई० में वह बोर्ड ऑफ़ कण्ट्रोल का अध्यक्ष बन गया। १८२१ ई० में उसने रानी कैरोलीन के प्रति राजा के दुर्व्यवहार के कारण अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। वह भारत का गवर्नर जनरल बनकर इंग्लैंड से यहाँ आने की तैयारी कर ही रहा था कि कैसलरे की आकस्मिक मृत्यु हो जाने के कारण उसे इंग्लैंड का विदेश-मंत्री बना दिया गया। १८२२ ई० से १८२७ तक वह इंग्लैंड का विदेश-मंत्री रहा। वह एक हाज़िरजवाब, निपुण वक्ता और वाद-विवाद करने में अत्यन्त योग्य व्यक्ति था। वह हाउस ऑफ़ कामन्ज़ का नेता था। कैसलरे के समान कैनिंग भी पिट् दी यंगर का मित्र और शिष्य था परन्तु उसके और कैसलरे के स्वभावों में बड़ा अन्तर था और दोनों अपने सार्वजनिक जीवन में एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी रहे। दोनों के दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न-भिन्न थे। कैसलरे एक शाही तबियत का व्यक्ति था और शान्त ढंग से सोचता था। वह क्रियात्मक रूप दिये जा सकने वाली योजनायें बनाता था। वह अपने देश का अन्य देशों के साथ मेल-मिलाप करवा कर शान्ति तथा सहयोग की नीति पर चलते हुए उसके हितों की रक्षा करना चाहता था। परन्तु उसकी नीति की सफलता उसके अपने व्यक्तित्व और यूरोप के राजनीतिज्ञों पर उसके आश्चर्यजनक प्रभाव पर निर्भर थी। कैनिंग भी शान्ति का समर्थक था परन्तु उसे सहयोग की नीति पर चलते हुए शान्ति स्थापित किये जा सकने पर विश्वास नहीं था। उसका विचार था कि इंग्लैंड को यूरोप के अन्य देशों के साथ तब तक कोई विशेष सन्धि या समझौता नहीं करना चाहिए जब तक वह अपनी रक्षा करने के लिए ऐसा करने पर विवश न हो जाए। जब उसे अपनी रक्षा के लिए आक्रमणकारियों को रोकना पड़े तब उसे अवश्य ही और बड़े ज़ोर-शोर के साथ यूरोप के अन्य राष्ट्रों के साथ आवश्यक समझौते करने चाहियें। शान्ति काल में उसे यूरोप के राजनतिक झगड़ों से अलग ही रहना चाहिए। उसकी नीति कैसलरे की नीति से अधिक राष्ट्रीयता का पुट लिए हुए थी। अपने पद को ग्रहण करते हुए उसने कहा कि यूरोप में कोई कदम उठाने के लिए मैं चाहूँगा कि इंग्लैंड वहाँ की परिस्थिति का समय-समय पर अध्ययन करता रहे। उसका आदर्श था कि प्रत्येक देश अपने लिए और परमात्मा सब देशों के लिए सोचे। सीटन वाट्सन ने इन वाक्यों को पूरा करने के लिए इसके आगे लिख दिया है कि शैतान के लिए सबसे पिछला भाग रह गया (Devil take the hindmost)।

कैनिंग कैसलरे की अपेक्षा अपने युग के अधिक अनुकूल था। उन्नीसवीं शताब्दी राष्ट्रीयता का युग था और कैसलरे की अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना इसके अनुकूल नहीं बैठती थी। १८३१ ई० में इंग्लैंड में एक निर्वाचक ने ग्लैडस्टोन को कहा "भाड़ में जाएँ सारे अन्य राष्ट्र। इंग्लैंड ने उन राष्ट्रों से क्या लेना-देना है ?"

इन दो वाक्यों से हमें उस समय के इंग्लैंड के लोगों के यूरोप के प्रति दृष्टिकोण का पता चलता है। इंग्लैंड के लोगों के भावों को प्रकट करते हुए स्वयं कैनिंग ने कहा कि हमें ऐसा सोचने की मूर्खता नहीं करनी चाहिए कि हम अकेले यूरोप का पुर्ननिर्माण कर सकते हैं।

वुडवर्ड ने उचित ही कहा है कि कैसलरे और कैनिंग का उद्देश्य तो एक ही था केवल उस उद्देश्य को प्राप्त करने के ढग भिन्न-भिन्न थे। कैनिंग ने उसी नीति को अपनाया जो कि कैसलरे के १८२२ ई० के स्टेट पेपर में लिखी हुई थी। विदेश-मंत्री बनने पर उसने उसी स्टेट पेपर को अपनी नीति का आधार बनाया, चाहे उसमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर लिए गए। उसने इस बात को स्वीकार कर लिया कि इंग्लैंड और उसके यूरोपियन मित्र-राष्ट्रों में अनबन है परन्तु उसने इसे दूर करने का कोई प्रयत्न न किया। उसने कहा कि परमात्मा का धन्यवाद है कि अब कान्फ्रेन्सें नहीं होंगी। इस प्रकार कैसलरे के द्वारा समर्थित की जा रही राष्ट्रों में सहयोग की भावना को पैदा करने की नीति का अन्त हो गया। कैनिंग होली एलॉयंस में भाग लेने वाले देशों के साथ मेल-मिलाप बढ़ाने के हक में न था। इसका कारण यह था कि उसे अपने देश की पुरानी संस्थाएँ और रीति-रिवाज बड़े पसन्द थे। उसे विश्वास था कि अन्य राष्ट्र भी इंग्लैंड की संस्थाओं के नमूने पर प्रथाएँ और संस्थाएं चला कर लाभ उठा सकते हैं। वह अंग्रेजी संस्थाओं को यूरोप के अन्य राष्ट्रों के द्वारा आदर्श संस्थाओं के रूप में देखा जाना चाहता था।

स्पेन (Spain)—कैनिंग को सबसे पहले स्पेन के साथ निपटना पड़ा। वेरोना की कांग्रेस में स्पेन में पुनः पुराने राज्य की स्थापना करने का भार फ्रांस पर छोड़ा गया। कैनिंग ने अन्य देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की इस नीति का विरोध किया और इस विरोध के कारण ही इंग्लैण्ड ने अपने आपको कांग्रेस से अलग कर लिया। यह अन्य देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की और रूस आदि पुरानी पद्धति के अनुसार शासित किए जाने वाले प्रतिक्रियावादी राष्ट्रों के द्वारा अन्य देशों का मुआयना किये जाने के सिद्धान्त का विरोधी था। इंग्लैण्ड के द्वारा विरोध किए जाने पर भी फर्डिनैण्ड सप्तम को स्पेन का सिंहासन वापिस दिलवाने के लिए ड्यूक आफ़ ऐंगोलीम को स्पेन भेजा गया। पुनः गद्दी प्राप्त करने पर फर्डिनैण्ड ने बदला लेने की नीति अपनाई। कैनिंग को फ्रांस के हस्तक्षेप करने की इस नीति पर बड़ा क्रोध आया। परन्तु वह विवश था क्योंकि फ्रांस का विरोध करने का अर्थ यूरोप के सब राष्ट्रों से खुला युद्ध छेड़ना था। उसे केवल शब्दों से ही इस नीति का विरोध करके सन्तोष करना पड़ा। जब फर्डिनैण्ड ने दक्षिणी अमेरिका में स्पेनिश बस्तियों पर अधिकार करने की सोची, उस समय कैनिंग ने निश्चय कर लिया कि वह उसे ऐसा नहीं करने देगा। उसके भाषणों की शैली भी बदल कर तेज़ हो गई। उसने कहा "मेरा निश्चय था कि यदि फ्रांस स्पेन को ले लेगा तो यह स्पेन बस्तियों से रहित स्पेन होगा। फ्रांस को स्पेन की बस्तियों सहित स्पेन नहीं मिल सकेगा।" उसने दक्षिणी अमेरिका में स्पेन की बस्तियों की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया।

उसके इस एक ही वार ने एक साथ कई कार्य कर दिखाए। इससे अंग्रेज़ी व्यापार की रक्षा हो गई, विद्रोह के लिए हर समय तैयार रहने वाली बस्तियों को फ्रांस के आक्रमण का खतरा न रहा और होली एलॉयंस के आधारभूत सिद्धान्तों की अवहेलना कर उनकी समाप्ति कर दी गई। हाऊस ऑफ़ कॉमन्ज़ में उसने अपने कार्य की डींग मारते हुए कहा कि पुरानी अव्यवस्था के बैलेंस को पूरा करने के लिए मैंने संसार में एक नई व्यवस्था स्थापित कर दी है। परन्तु यह दावा उचित नहीं कहा जा सकता। यद्यपि स्पेन की बस्तियों को स्वतन्त्रता मिल चुकी थी तो भी अन्य देशों द्वारा उनके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप किये जाने से उनका बचाव अभी तक अंग्रेज़ों की जल-शक्ति के कारण ही हो रहा था। अंग्रेज़ों की सामुद्रिक शक्ति के डर से फ्रांस स्पेन के अतिरिक्त अन्य कहीं अपने हाथ फैलाने के यत्न करने का साहस नहीं कर सकता था। इस प्रकार स्पेन की बस्तियों की स्वतन्त्रता की रक्षा अंग्रेज़ों की धमकियों के ज़ोर पर ही हो रही थी।

कैनिंग की पुरानी दुनिया के संतुलन को पुनः वापिस लौटाने के लिए एक नए संसार के निर्माण करने की नीति किसी आकस्मिक भावावेश का परिणाम न थी। यह एक सोच-विचार के पश्चात् निश्चित् की गई, चिरकाल से उसके द्वारा सोची जाती हुई और बड़ी सख्ती से क्रियात्मक रूप दी जाने वाली नीति थी। १७१९ ई० में पिट् मीरण्डा को बता चुका था कि स्पेनिश अमेरिका का उद्धार एक ऐसा विषय था जो इंग्लैंड के प्रत्येक मंत्री का ध्यान आकृष्ट करेगा। १८०८ ई० में दक्षिणी अमेरिका में इंग्लैंड की सुरक्षा (British Protection) में स्पेन की बस्तियों के अलग कर दिये जाने का विचार कैनिंग और कैसलरे दोनों के दिलों में ही विद्यमान था। कैनिंग के विदेश-मन्त्री बनने के दिन से लेकर जब तक यह कार्य पूरा नहीं कर लिया गया उस दिन तक कैनिंग का ध्यान इसी विचार ने अपनी ओर लगाये रखा। १८२२ ई० में कैनिंग ने ड्यूक ऑफ़ वेलिंगटन को, जो विआना की कांग्रेस में इंग्लैण्ड का प्रतिनिधित्व कर रहा था, इस प्रकार लिखा "दिन-प्रति-दिन मेरा यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा है कि प्रायद्वीप की ओर अपने देश की आज की अवस्था में हमारे लिए यूरोप से सम्बन्धित प्रश्नों की अपेक्षा अमेरिका से सम्बन्धित प्रश्न कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। और यदि हम यत्न करके उन्हें अपने लाभ के अनुसार ठीक समय पर ही हल नहीं कर लेते तो हमें एक ऐसे अवसर के हाथों से निकल जाने पर पछताना पड़ेगा जो कभी भी पुनः लौटाया नहीं जा सकता।"

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि स्पेन को अपनी बस्तियों का शासन-प्रबन्ध करने में कठिनाई का सामना करना पड़ चुका था। १८१७ ई० में फ्लोरिडा (Florida) का प्रदेश पचास लाख डालर में अमेरिका को बेच दिया, परन्तु इसके पश्चात् भी हालात न सुधरे। दक्षिणी अमेरिका में अराजकता थी और अंग्रेज़ लोगों को उनके जहाज़ों पर आक्रमण किये जाने के कारण बहुत कष्ट उठाने पड़े। इंग्लैंड इन कष्टों और नुकसानों के बदले हर्जाना प्राप्त करने में असफल रहा।

१८२३ ई० में कैनिंग ने अंग्रेजी व्यापार की रक्षा के लिए स्पेन की बस्तियों में कौन्सल (Consul) नियुक्त किये। अंग्रेजी सरकार ने फ्रांस को यह स्पष्ट कर दिया था कि इंग्लैंड स्पेन के अतिरिक्त अन्य किसी शक्ति को स्पेनिश बस्तियों को दुबारा जीतने की इजाजत नहीं देगा। इंग्लैंड की सरकार यह भी जानती थी कि अकेला स्पेन इन बस्तियों को नहीं जीत सकता। १ जनवरी, १८२५ ई० को अन्य शक्तियों को सूचना दे दी गई कि इंग्लैंड ने बुएनस ऐयरज़ (Buenos Airs), कोलम्बिया और मैक्सिको के राज्यों की सरकारों की सत्ता स्वीकार कर ली है। अन्य राष्ट्रों ने इंग्लैंड के इस कार्य के विरुद्ध आवाज़ उठाई परन्तु क्रियात्मक रूप में वह कुछ भी नहीं कर सकते थे। यूरोप के बड़े-बड़े राष्ट्रों की नाराज़गी के बावजूद भी कैनिंग अपनी इस नीति पर चलता रहा।

अमेरिका के रूप में कैनिंग को एक बड़ा शक्तिशाली मित्र-राष्ट्र प्राप्त हुआ। दिसम्बर, १८२३ ई० में प्रेसिडेण्ट मुनरो ने प्रसिद्ध मुनरो सिद्धान्त (Monroe Doctrine) की घोषणा की। उसने घोषित किया कि यूरोप के बड़े-बड़े राष्ट्रों के द्वारा स्पेनिश अमेरिकन राज्यों को (Spanish American States), जो अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर चुके हैं, दबाने या इनके भाग्य को निश्चित करने के उद्देश्य से किया जाने वाला किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप अमेरिका की शान्ति और सुरक्षा के लिए खतरनाक होगा और अमेरिका के प्रति शत्रुता की भावना का प्रदर्शन समझा जाएगा। कैनिंग ने १८२४ ई० में इस प्रकार लिखा : "मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि प्रेसिडेण्ट को दक्षिणी अमेरिका के राज्यों के प्रति ऐसी घोषणा करने में हमारी भावनाओं की जानकारी द्वारा प्रोत्साहन मिला होगा। हमारे यैंकी (Yankee) सहयोगियों की इस महान् उदारता का ऐक्स-ला-चेपल के कानूनों के घोर अत्याचारों पर जो प्रभाव पड़ा है उससे हमें ठीक वही संतुलन प्राप्त हो गया है जो मैं चाहता था।" अगले वर्ष उसने फिर लिखा "काम हो चुका है। यह एक ऐसा काम है जो इस संसार में इतना भारी परिवर्तन लायेगा जितना परिवर्तन अब स्वतन्त्र होने वाले काण्टीनैण्ट की ख़ोज (Discovery) होने पर हुआ था। मित्र-राष्ट्र कुढ़ेंगे परन्तु अब वह इस दिशा में कोई गम्भीर पग उठाने का साहस नहीं करेंगे। फ्रांस भूल जाएगा परन्तु वह दक्षिणी अमेरिका में शीघ्र अति शीघ्र हमारा अनुकरण करने की दृष्टि से भूलेगा।" इंग्लैंड और अमेरिका का यह पग निर्णयकारी पग था। १८३० ई० तक दक्षिणी अमेरिका में स्पेन का साम्राज्य समाप्त हो चुका था और परिणामस्वरूप मैक्सिको, गाटेमाला, कोलम्बिया, पीरू, चाईल, बोलीविया, पैरागुए, रियो डी ला प्लाटा और बुएनस एयरज़ नाम के स्वतन्त्र गणराज्य स्थापित हुए।

पुर्तगाल (Portugal)—पुर्तगाल के मामले में कैनिंग को भारी कदम उठाना पड़ा। उसने यह स्पष्ट कर दिया कि इंग्लैंड किसी भी दशा में पुर्तगाल में निरंकुश शासनपद्धति के विचारों (Reactionary Forces) का प्रचार नहीं सहन करेगा। उसने फ्रांस से ज़बरदस्ती यह घोषणा करवा दी कि वह स्पेन में निरंकुश राजतन्त्र के हक में किये जा रहे प्रतिक्रियावादी आन्दोलन को दी जाने वाली सहायता को

पुर्तगाल तक नहीं फैलाएगा। उसने पुर्तगाल के राजा को ब्राज़ील की स्वतन्त्रता मानने के लिए भी मनवा लिया। १८२६ ई० में पुर्तगाल के राजा की मृत्यु हो गई। ब्राज़ील पर अधिकार छोड़ने की इच्छा न होने के कारण डौन पेड्रो (Don Pedro) ने पुर्तगाल के लोगों के सम्मुख देश के लिए एक संविधान (Constitution) उपस्थित किया। स्पेन के राजा फर्डिनैण्ड सप्तम ने तत्कालीन शासन-व्यवस्था को पलटने के लिए पुर्तगाल में षड्यन्त्र रचने आरम्भ किये। पुर्तगाल की सरकार ने इंग्लैंड से सहायता के लिये अपील की। सहायता के लिए की गई अपील के इंग्लैंड पहुँचते ही चार दिनों के अन्दर-अन्दर अंग्रेजी सैनिक दस्ते पुर्तगाल पहुँच गये। इस प्रकार अंग्रेजी गोलों की सहायता से पुर्तगाल के संविधान की रक्षा की गई। पार्लियामैण्ट में अपने द्वारा उठाये गये इस कदम का वर्णन करते समय कैनिंग ने शानदार भाषण दिया जिसमें उसने घोषणा की कि हम पुर्तगाल पर शासन करने के लिए या उससे कुछ विशेष शर्तें मनवाने के लिये या उसके सम्मुख संविधान रखने के लिए नहीं अपितु एक मित्र राष्ट्र की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए जा रहे हैं। हम लिज़्बन की ऊँची चढ़ाइयों पर इंग्लैंड की धाक जमाने जा रहे हैं और जहाँ कहीं भी यह जमा दी जाएगी वहाँ विदेशी शासन असम्भव हो जाएगा।

ग्रीक का स्वतन्त्रता-युद्ध (Greek War of Independence)—ग्रीक के स्वतन्त्रता युद्ध में भी कैनिंग ने एक भारी कदम उठाया। वह तुर्की के द्वारा ग्रीक के निवासियों पर अत्याचार अधिक देर तक सहने के लिए तैयार नहीं था। इस मामले में हस्तक्षेप करने से केवल इंग्लैंड को एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने में ही नहीं अपितु होली एलॉयंस को तोड़ने में सफलता मिली। लेवैण्ट (Levant) के साथ अंग्रेजी व्यापार को आक्रमण से बचाने के लिए उसने १८२३ ई० में ग्रीस को युद्ध की दृष्टि से एक स्वतन्त्र राष्ट्र मान लिया। १८२७ ई० में उसने रूस और फ्रांस के साथ लन्दन की सन्धि (Treaty of London) की। इस सन्धि का उद्देश्य ग्रीस की स्वतन्त्रता की रक्षा करना था। लन्दन की यह सन्धि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी। इसने बड़ा भारी कार्य कर दिखाया। इसने आस्ट्रिया को अन्य राष्ट्रों से अलग कर दिया। अब वह अकेला रह गया। साथ-ही-साथ उसने होली एलॉयंस में भी फूट डाल दी। रूस को इंग्लैंड के साथ मिलाकर कैनिंग ने रूस के पूर्वी मैडीटिरेनियन में अपना साम्राज्य बढ़ाने की महत्त्वाकांक्षाओं को समाप्त कर दिया। एक नए स्वतन्त्र ग्रीक साम्राज्य की स्थापना भी अंग्रेजी व्यापार के लिए लाभकारी सिद्ध होनी निश्चित थी। ग्रीक के मामले में अपनाई जा रही नीति में कैनिंग को फ्रांस और इंग्लैंड में ग्रीक का समर्थन करने वाले आन्दोलनों से भी सहायता मिल रही थी। यह सच है कि उसके उत्तराधिकारी वेलिंगटन ने तुर्की के साथ मिलकर और उसके साथ थोड़ी देर के लिये सन्धि करके कैनिंग के किये-कराए को नष्ट करने का यत्न किया। परन्तु फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि लन्दन की इस सन्धि से ग्रीक की स्वतन्त्रता सुरक्षित हो गई। उसकी मृत्यु के कुछ ही समय पश्चात् अक्टूबर १८२७ ई० में रूस, फ्रांस और इंग्लैंड के सामूहिक जल-बेड़ों ने नैवारिनो की खाड़ी

(Bay of Navarino) में तुर्की और मिस्र के जहाजी बेड़ों को नष्ट कर दिया। यद्यपि इन सब घटनाओं से सारा लाभ रूस ने ही प्राप्त किया तो भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि कैनिंग की ग्रीक के प्रति अपनाई गई नीति सफल सिद्ध हुई।

विदेश-मंत्री का पद ग्रहण करने के बाद पाँच वर्षों के अन्दर-अन्दर ही कैनिंग ने इंग्लैण्ड को उस मार्ग पर ला कर खड़ा कर दिया जिस पर वह अगले पचास वर्षों तक चलता रहा। उसने इंग्लैण्ड के हितों की रक्षा की और विदेशों में उदार और वैधानिक आन्दोलनों को प्रोत्साहन दिया। उसने यूरोप और समुद्र पार अन्य देशों में नागरिक तथा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के विकास में वैधानिक शासन-पद्धति के विरोधी राष्ट्रों के हस्तक्षेप को रोका। बड़े-बड़े मामलों को अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से सुलझाने की प्रथा का अन्त हो गया। कैनिंग को इस बात का गर्व था कि उसने होली एलॉयंस को छिन्न-भिन्न कर दिया है। उसके बताए हुए मार्ग पर चलता हुआ इंग्लैण्ड फिर से मनमानी करने की स्वतन्त्रता को पाने में समर्थ हो गया। अब वह यूरोप के राजनैतिक झगड़ों में जिस समय चाहे, जहाँ पर जिस किसी ढंग से हस्तक्षेप कर सकता था। अब उसे यूरोप के देशों के हाथ में उनके अपने लाभ के लिए अपने कठपुतली बनाए जाने का भय नहीं रहा था। अपनी इस नीति में कैनिंग को इंग्लैण्ड की जनता का सहयोग प्राप्त था। वह विदेश-नीति में राष्ट्रीय एकता के महत्त्व को समझता था। उसकी इच्छा थी कि इंग्लैण्ड के सारे नागरिक उसके साथ हों जिससे विदेशी सरकारों को पता हो कि वह सारे इंग्लैण्ड की ओर से बोलता है और इंग्लैण्ड की सारी शक्ति, सब साधन उसके लिए खुले पड़े हैं और वह उन सब का प्रयोग कर सकता है। उसके भाषणों और सन्देशों ने जनता को विदेश-नीति निश्चित करने के सम्बन्ध में अपनी सम्मति देने के साधन प्रदान किये। टैम्परले के शब्दों में हम कह सकते हैं कि कैनिंग का विचार था कि यह आवश्यक है कि भविष्य में विदेशी-नीति लोकप्रिय और सरलता से समझ में आ सकने वाली हो। परन्तु कैनिंग ने जनता को उस विदेश-नीति निश्चित करवाने की छूट न दी। उसने विदेश-नीति को निरर्थक बनाए बिना उसे लोकप्रिय बनाया। वह जनता के सामने केवल उतनी ही बात पेश करता जितनी कि उसका समर्थन पाने के लिए आवश्यक होती थी क्योंकि जनतन्त्र की ओर उसका कोई विशेष झुकाव नहीं था। इतना होने पर भी निरंकुश राज्यतंत्र शासन-पद्धति द्वारा शासित किये जा रहे राष्ट्रों में उसकी इस नीति को क्रान्तिकारी नीति का नाम दिया गया।

सेसिल (Cecil) के शब्दों में, कैनिंग के राजनैतिक विचार सम्मतियों का एक अच्छी प्रकार से इकट्ठा किया गया संग्रह था। इसका कुछ गिने-चुने वाक्यों में वर्णन किया जा सकता है। उसके सब विचारों के मूल में यह विचार था कि राजनीति के ज्ञान की इकाई राष्ट्र है। यहाँ तक उसे सब कुछ स्पष्ट था। इसके आगे जाने का उसने यत्न ही नहीं किया। हम देखते हैं कि उसने कैसलरे के अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के विचारों को अपनाया। हम उसे केवल होली एलॉयंस के विरुद्ध ही नहीं

अपितु कन्सर्ट ऑफ यूरोप, राष्ट्रों को कांग्रेस के अधिवेशनों और कान्फ्रेंसों का विरोध करते देखते हैं। उसने प्रत्येक राष्ट्र को अपने कामों की ओर ध्यान देने और अन्य राष्ट्रों को ईश्वर के सहारे छोड़ने के लिए कहा। उसने अपने भाषणों में शक्ति के संतुलन (Balance of Power) के विचार को बड़ी महत्ता दी। उसने स्वार्थों, गुटों और सिद्धान्तों के परस्पर संघर्ष को एक स्वाभाविक वस्तु माना और अपनी विदेश-नीति को इसी विश्वास पर आधारित किया। कैसलरे ने एक बार कहा "कि कुछ वर्ष पहले मैंने कहा था कि केवल अन्य देशों के पारस्परिक झगड़ों में ही नहीं अपितु विरोधी सिद्धान्तों के संघर्ष में भी यह देश उदासीन और निष्पक्ष रहेगा और इस उदासीनता की नीति पर चलकर ही यह शक्ति के उस संतुलन की, जिसे मैं मानवता के अस्तित्व और उसकी भलाई के लिए अनिवार्य समझता हूँ, रक्षा कर सकेगा।" कैनिंग भी यह मानता था कि हमारे लिये यह अच्छा है और इससे हमें आराम भी रहेगा कि हमारे पड़ोसी राष्ट्रों के रीति-रिवाज और प्रचलित व्यवस्थायें ऐसी हों जिनका हमारी व्यवस्थाओं से मुकाबला न किया जा सके। कैनिंग भी नैतिकता का विरोधी नहीं था। उसका सन्धियों में और सन्धि की शर्तों को पूरा करने में बड़ा विश्वास था। उसे शान्ति और न्याय पसन्द थे। समाज के अदृश्य आधारों में उसका कोई विशेष विश्वास नहीं था। अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के आधारभूत सिद्धान्त 'समान रूप से सब की भलाई' करने के आदर्श को क्रियात्मक रूप देने के लिए आवश्यक ऐसा करने की सामूहिक रूप से सब की इच्छा की भी उसे विशेष परवाह नहीं थी।

कैनिंग की सहानुभूति भी समाज के उसी वर्ग के साथ थी जो वर्ग देश की रीढ़ की हड्डी का काम देता था। उसमें क्रियात्मक रूप से कार्य करने की योग्यता, आत्मविश्वास, वास्तविक परिस्थितियों को भांपने की योग्यता और भौतिकवादी दृष्टिकोण था। इन्हीं विशेषताओं की सहायता से वह विक्टोरिया के शासनकाल के मध्य भाग में इंग्लैण्ड को राजनैतिक और व्यापारिक दृष्टि से इतना उन्नत कर सका। उसमें अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कार्य करने के लिये आवश्यक नम्रता, यूरोप को संगठित करने की इच्छा और शान्तिप्रिय स्वभाव की कमी थी। प्रतिस्पर्धा करने वाले लड़ाकू तथा उद्दण्ड कैनिंग ने अंग्रेजी विदेश-नीति के लिए मार्ग विस्तृत कर दिया जिस पर थोड़ी ही देर बाद पामस्टर्न ने गर्व से भाल ऊँचा करके चलना था। लार्ड एक्टन के शब्दों में इंग्लैण्ड का कोई भी विदेश-मंत्री कैनिंग के मुकाबले का नहीं था। परन्तु दूसरी ओर ऐसे भी व्यक्ति हैं जो उसकी इतनी अधिक प्रशंसा नहीं करते परतु वे भी उसके गुणों और भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में पाई गई सफलताओं की सराहना करते हैं।

Suggested Readings

Webster	: *Castlereagh.*
Marriott	: *Castlereagh.*
Stewart	: *Memoirs of Castlereagh.*
Temperly	: *Canning.*
Hill, F. H.	: *George Canning.*

Cambridge Theory of British Foreign Policy, Vol II, Chapter I.

(१)

अध्याय १२

यूरोप का संघ (१८१५-२२)

(Concert of Europe, 1815-22)

१७९१ में आस्ट्रिया के चान्सलर कोनिट्ज़ ने यूरोप-संघ के प्रस्ताव को प्रस्तुत किया और इस प्रस्ताव की पूर्ति मार्च, १८१४ की च्योमोण्ट की सन्धि द्वारा हुई। यह सन्धि ब्रिटेन, रूस, प्रशिया और आस्ट्रिया में हुई। इन्हीं चार शक्तियों ने विआना सम्मेलन में 'यूरोप की राजनीतिक व्यवस्था को पुनर्जीवित' करने का प्रयत्न किया था। विआना-सम्मेलन में प्रतिक्रियाशील तत्त्वों की विजय हुई और यथासम्भव क्रान्ति से पहले की स्थिति की स्थापना हुई। किन्तु क्रान्ति का इतना अधिक भय था कि यूरोप की शक्तियाँ उस समय तक सन्तुष्ट नहीं हो सकती थीं जब तक विआना-व्यवस्था को स्थायी बनाने के साधन उनके पास इकट्ठे न हो जाते। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए ब्रिटेन, आस्ट्रिया, प्रशिया और रूस ने नवम्बर, १८१५ में एक चतुर्मुखी सन्धि की जिससे फ्रांस के साथ किये गये प्रतिज्ञा-पत्रों की शर्तों की रक्षा हो तथा संसार के हित के लिए इन चार शक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध दृढ़ बने रहें। इन शक्तियों ने यह भी निर्णय किया कि इन देशों के सम्राट् अथवा इनके मन्त्री समय-समय पर विचार-विमर्श के लिए मिला करेंगे। इनकी बैठकों में परस्पर हित की प्रमुख समस्याओं तथा राष्ट्रों और सारे यूरोप में शान्ति और उन्नति के लिए सर्वश्रेष्ठ तरीकों पर विचार होता था। इस प्रकार यूरोप-संघ की स्थापना हुई। सम्मेलनों द्वारा कूटनीति की यह परिपाटी उन्नीसवीं शताब्दी का सबसे अनोखा प्रयोग था। इस चतुर्मुखी सन्धि के बाद के काल को 'सम्मेलनों का काल' (Era of Congresses) कहा जाता है। यूरोप-संघ के सदस्य बहुत बार भिन्न-भिन्न स्थानों पर मिलते रहे और सामूहिक रूप से विचारणीय समस्याओं पर विचार करते रहे। इन सम्मेलनों में मैटरनिक का व्यक्तित्व छाया रहता। इसके नेतृत्व और पथ-निर्देशन द्वारा चतुर्मुखी सन्धि से इन शक्तियों की तानाशाही स्थापित हुई। किन्तु एक्स-ला-चेपल में १८१८ में, १८२० में ट्रोप्पू में, १८२१ में लॉयबैक में तथा १८२२ में वेरोना में, चार सम्मेलनों के पश्चात् १८२३ में यह संघ समाप्त हो गया।

ऐक्स-ला-चेपल का सम्मेलन (Congress of Aix-La-Chapelle) (१८१८)—प्रथम सम्मेलन १८१८ में ऐक्स-ला-चेपल नामक स्थान पर हुआ, जहाँ पर कभी नेपोलियन ने यूरोप के हित के लिए अपनी योजना रखी थी। इस सम्मेलन के विषय

में मैटरनिक ने कहा था, "मैंने इससे सुन्दर छोटा-सा सम्मेलन कभी नहीं देखा।" यह सम्मेलन संगठित राष्ट्रों द्वारा यूरोप भर के देशों पर अपना नियन्त्रण रखने का उच्चतम प्रयास था। यह सम्मेलन यूरोप की सर्वोच्च सभा मान्य हुई अतः इसे सब प्रकार के मामलों की अपीलें सुननी पड़ती थीं।

इस सम्मेलन के सम्मुख सबसे बड़ी समस्या फ्रांस की थी, किन्तु सौभाग्य से इस प्रश्न पर समझौता हो गया। क्योंकि फ्रांस युद्ध-क्षति की पूर्ति कर चुका था। यह निर्णय हुआ कि फ्रांस देश से संगठित राष्ट्रों की अधिकार रखने वाली सेनाओं को हटा लिया जाय और फ्रांस को यूरोप-संघ में सदस्यता प्रदान की जाय। इस प्रकार यह चतुर्मुखी सन्धि 'पंचमुखी सन्धि' बन गई। फ्रांस को 'पंचमुखी' संगठन में सम्मिलित करने की शर्तों के विषय में एक ओर रूस तथा दूसरी ओर ब्रिटेन और आस्ट्रिया के विचारों में मतभेद था। रूस का प्रस्ताव था कि 'पवित्र गठबन्धन' के सिद्धान्त को माना जाय, किन्तु इंग्लैंड और आस्ट्रिया का मत था कि फ्रांस को चारों देशों से प्रतिज्ञा-सन्धि करनी चाहिए, और अन्त में यही हुआ। 'पंचमुखी सन्धि' को पृथक् रूप से पुनः दोहराया गया जिससे फ्रांस की ओर से कोई गड़बड़ न हो। ज़ार एलेग्जेण्डर को प्रसन्न करने की इच्छा से इस गठबन्धन के उद्देश्य की बड़े सुन्दर शब्दों में घोषणा की गई। इस घोषणा में कहा गया कि "यह सन्धि जनता के अधिकारों, शान्ति और ललित कलाओं की सुरक्षा, राष्ट्र की उन्नति की प्रगति, धर्म और सदाचार के नियमों को प्रोत्साहन देने तथा न्याय और सहयोग का आदर्श स्थापित करने के उद्देश्य से की गई है।"

इस सम्मेलन ने स्वीडन के राजा से नार्वे और डेन्मार्क के साथ सन्धि-शर्तों का उल्लंघन करने के विषय में सफाई माँगी। मोनाको के शासन से शासन-प्रणाली को सुधारने के लिए कहा गया। हैसे (Hesse) के निर्वाचित प्रमुख ने याचना की कि उसे 'राजा' की उपाधि धारण करने की अनुमति दी जाय, किन्तु उसकी याचिका अस्वीकार कर दी गई। सम्मेलन ने बाडिन की डची (Duchy of Baden) के विवाद-ग्रस्त उत्तराधिकारी के प्रश्न पर विचार किया। आस्ट्रिया और रूस में यहूदी नागरिकों की स्थिति पर भी विचार किया गया।

ऐक्स-ला-चेपल की उपरोक्त सफलताओं के होने पर भी सदस्य-राष्ट्रों में मतभेद हो गये और ये मतभेद कालान्तर में बढ़ते ही गये। ये मतभेद निजी स्वार्थ और परस्पर ईर्ष्या के कारण हुए।

दक्षिणी अमेरिका में स्पेन के विद्रोही उपनिवेशों के प्रश्न के विषय में, वहाँ फ्रांसीसी क्रान्ति के समय ही इंग्लैंड और इन उपनिवेशों में बहुत-सा व्यापार हो रहा था। क्योंकि ब्रिटेन ने इन उपनिवेशों में बहुत-सा धन लगा रखा, था, इंग्लैंड के विदेश-मंत्री केसलरे ने किसी भी प्रस्ताव को, चाहे वह इन उपनिवेशों को स्पेन को वापिस देने का हो या इनके और स्पेन के बीच मध्यस्थता करने का हो, तब तक मानने से इन्कार कर दिया जब तक ब्रिटेन के हितों की रक्षा का आश्वासन नहीं दिया जाता।

दासों के व्यापार को रोकने के विषय में ब्रिटेन ने यह सुझाव दिया कि सदस्य राष्ट्रों को एक-दूसरे के जहाजों की तलाशी लेने का अधिकार हो। इस सुझाव को इसलिए नहीं माना गया क्योंकि ब्रिटेन के बेड़े की शक्ति से सब राष्ट्र ईर्ष्या करते थे। कोई भी देश अपने व्यापार में ब्रिटेन का हस्तक्षेप सहन करने के लिए प्रस्तुत नहीं था। परिणामतः दासता के विरुद्ध कोई भी प्रभावशाली कदम नहीं उठाया जा सका।

बर्बर समुद्री लुटेरों की गतिविधि पर रोक लगाने के लिए रूस ने सुझाव दिया कि विभिन्न शक्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाला एक अन्तर्राष्ट्रीय बेड़ा अन्धमहासार में रखा जाय। ब्रिटेन ने इस सुझाव को नहीं माना। वह अन्धमहासागर में रूस के वेड़े की स्थिति नहीं चाहता था। क्योंकि बर्बर लुटेरे यूनियन जैक का सम्मान करते थे, इसलिए उनके हित सुरक्षित थे। परिणामतः बर्बर समुद्री लुटेरों का आतंक बना रहा।

कहा जाता है कि ऐक्स-ला-चेपल का वास्तविक महत्त्व बड़ा गहरा था। पहली बार ब्रिटेन को यूरोप-संघ के सदस्यों की इच्छा का ज्ञान हुआ। इस अवसर पर ज़ार एलेग्ज़ेण्डर ने प्रस्ताव रखा कि उपस्थित शक्तियों को एक विज्ञप्ति पर हस्ताक्षर करने चाहिएँ कि वे विभिन्न राष्ट्रों की वर्तमान सीमाओं तथा राजाओं की सर्वाधिकार-सम्पन्नता की मान्यता अक्षुण्ण रखेंगे। क्योंकि यह प्रस्ताव मैटरनिक के विचारों से मिलता था अतः आस्ट्रिया ने इसे मान लिया। प्रशिया ने भी इसका अनुकरण किया। यह सत्य है कि यदि सार्वभौमिक रूप से तत्कालीन स्थिति को मान्यता प्रदान कर दी जाती तो यूरोप में राष्ट्रीयता, प्रगतिवाद और विधानवाद को क्रमशः समाप्त कर दिया जाता। यह विज्ञप्ति यूरोप की प्रगतिशील शक्तियों के विरुद्ध एक धार्मिक युद्ध-घोषणा होती और विश्व में उनके प्रभुत्व के लिए घातक सिद्ध होती। इटली और जर्मनी का संगठन नहीं हो पाता। बेल्जियम को हालैण्ड से अलग करना असम्भव होता। नार्वे और स्वोडन इकट्ठे बने रहते। ग्रीस, रूमानिया, बल्गेरिया और सर्बिया को स्वतन्त्रता न मिलती। पोलैण्ड अनन्त काल तक विदेशी दासता में न रहता। यूरोप में स्वतन्त्रता और सर्वाधिकार के मूल्य पर शान्ति की स्थापना होती।

इस योजना को असफल करने का श्रेय ब्रिटेन को है जिसने रूस के इस प्रस्ताव का घोर विरोध किया। प्रश्न यह था कि क्या राष्ट्रों को किसी देश में केवल वर्तमान व्यवस्था के परिवर्तित हो जाने के कारण ही उसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार है अथवा नहीं? यूरोप-संघ का दिखावटी रूप से कुछ भी उद्देश्य रहा हो, इसका वास्तविक उद्देश्य यूरोप के देशों के, आन्तरिक और विदेशी, सब मामलों में हस्तक्षेप करना था। ब्रिटेन इस नीति का विरोधी था और अन्य राष्ट्रों की योजनाओं के विरुद्ध कार्य किया करता था। ब्रिटेन किसी भी प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण को सहन करने के पक्ष में नहीं था। किन्तु किसी भी देश में आपत्तिकालीन स्थिति में हस्तक्षेप करने के प्रश्न पर विचार करने को तैयार अवश्य था। ब्रिटेन ने संगठित राष्ट्रों की सम्मिलित सेना की वर्तमान व्यवस्था को बनाये

रखने के प्रस्ताव को भी नहीं माना। वाह्य रूप से उसका ध्येय कैसा ही प्रतीत क्यों न हो; उसका वास्तविक ध्येय यूरोप के राजाओं के आन्तरिक और वाह्य मामलों नियन्त्रण रखना था। केसलरे के शब्दों में, "इस संगठन को संसार के शासनों का संगठन बनाने का उद्देश्य कभी नहीं था, या अन्य देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का उद्देश्य भी नहीं था। इसका उद्देश्य यूरोप के प्रत्येक कोने में क्रान्तिकारी आन्दोलनों का, बिना उनके गुणावगुणों को जाने, दमन करना भी नहीं था।"

किसिंगर का विचार है कि यद्यपि ऐक्स-ला-चेपल की कांग्रेस में वाह्य मधुरता दीख पड़ी, किन्तु "विभिन्न प्रेरणाओं की प्रतिकूलता भी प्रगट हो रही थी। फ्रांस के शक्तियों के संघ में मिल जाने के बाद राजनीतिक संघर्ष अन्तिम रूप से समाप्त हुआ और इसी के साथ वह उद्देश्य भी जाता रहा जो महाद्वीप के विषयों में ब्रिटिश हस्तक्षेप को आभ्यन्तरिक रूप से स्वीकरणीय कर सकता। चूँकि ब्रिटिश लोगों ने इसकी प्रतिज्ञाओं को अधिकता के साथ फाँस लिया, एक गन्दे चक्र की चाल शुरू हो गई। ब्रिटेन की एकान्तवादी प्रवृत्तियाँ जितनी अधिक दृढ़ हुई, उतना ही आस्ट्रिया की भौतिक हीनताओं से प्रभावित मैटरनिक को ज़ार के रोकने के सबसे अधिक प्रभावशाली यंत्र के प्रयोग करने पर विश्वास हो गया। उसने ज़ार के नैतिक उत्साह की प्रशंसा की, किन्तु उसने ज़ार की महानता की जितनी अधिक चापलूसी की, उतना ही कैसलरे को किसी संयुक्त कार्यवाही में भाग लेना कठिन हो गया। ज्यों ही एक्स-ला-चेपल की कांग्रेस का अन्त हुआ, दोनों हीं उसे धुन्धला बनाने के इच्छुक हो गए—मैटरनिक क्योंकि उसकी रूस के प्रति सौदेबाजी की स्थिति ब्रिटिश विकल्प के निराकरण पर निर्भर थी और कैसलरे अपने यूरोपीय दृष्टिकोण के कारण जिसके विषय में उसे यह अब भी आशा थी कि वह उसे महाद्वीप की मूढ़ता और, उसके लिए, उसके मित्रों की सुरक्षा की तुच्छ खोज के विरुद्ध भी चला सकेगा। फिर भी उसने यह जान लिया होगा कि स्वप्नों का समय पूरा हो रहा था क्योंकि इस समय मैटरनिक एक ऐसे कार्य में व्यस्त था जिसने इस बारे में बहुत थोड़ा सन्देह रखा कि अगला युद्ध उस मैदान में होगा जहाँ कैसलरे चाहे उसकी व्यक्तिगत सहानुभूतियाँ कुछ भी हों, उसका पीछा नहीं कर सकता। उसने प्रशा के राजा के सामने दो स्मरणपत्र रखे जिनमें उसने उसे अपने राज्य के प्रशासकीय ढाँचे के विषय में राय दी व अपनी वह अयोग्यता प्रगट की कि उस प्रतिज्ञा को पूरा नहीं किया जा सकता जो उसने १८१३ के उत्तेजनाशील दिनों में की थी कि वह अपनी प्रजा को एक संविधान की स्वीकृति दिलायेगा। मैटरनिक के प्रथम प्रयोजन की अपेक्षा उसके प्रयोग किए हुए निश्चित तर्क अधिक रोचक नहीं हैं, जिन्होंने उसकी यह नियत स्पष्ट की कि वह यूरोप के रूढ़िवादी अन्तःकरण के अनुकूल कार्य करना चाहता है।" (A World Restored, pp. 230-31)

ट्रोप्पू सम्मेलन (Congress of Troppau) (१८२०)—द्वितीय सम्मेलन १८२० में ट्रोप्पू के स्थान पर हुआ। नेपल्स, स्पेन और पुर्तगाल में विद्रोह हुए और जनता ने अपने राजाओं को उदार संविधान देने को विवश कर दिया। शक्तिशाली

राष्ट्रों ने विद्रोहों की निन्दा की किन्तु इस परिस्थिति को निपटाने के लिए क्या किया जाय, इस विषय में मत-भेद था। रूस ने स्पेन के राजा को विद्रोह का दमन करने के लिए सेना देने को कहा। किन्तु मैटरनिक ने उसे रोक दिया, क्योंकि क्रान्ति के प्रति घृणा होने के साथ उसे रूस की यश-प्राप्तियों का डर भी था। नेपल्स अन्य मामलों से अधिक महत्त्वपूर्ण समझा गया, परिणामतः इस क्रान्ति पर ही ट्रोप्पू में आये हुए कूटनीतिज्ञों का ध्यान लगा रहा। सब ने यह माना कि इटली में आस्ट्रिया का स्वार्थ अधिक है इसलिए उसे नेपल्स की क्रान्ति का दमन करने की अनुमति दे दी जाय। कैसलरे के विचार से आस्ट्रिया नेपल्स में दो कारणों से हस्तक्षेप कर सकता था। इस क्रान्ति से लोम्बार्डी और विनीशिया की सुरक्षा को भय था और ये दोनों ही आस्ट्रिया के साम्राज्य में थे। यही अवस्था परमा, मोडिना और टुस्कने की थी जहाँ हैप्सबर्ग वंश के सदस्य शासन कर रहे थे। पुनश्च, नेपल्स और आस्ट्रिया के राजाओं में एक सन्धि हुई थी जिसके कारण आस्ट्रिया नेपल्स की सहायता के लिए वचनबद्ध था।

मैटरनिक केवल आस्ट्रिया और इटली के आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप करने के अधिकार से ही संतुष्ट नहीं था, कानूनी आधार के अतिरिक्त वह हस्तक्षेप के लिए न्याय के आधार की आवश्यकता चाहता था। ब्रिटेन का विदेश मन्त्री कैसलरे इसके लिए तैयार नहीं था। उसकी धारणा थी कि कोई भी देश किसी अन्य देश के आन्तरिक मामले से केवल किसी सन्धि के आधार पर ही हस्तक्षेप कर सकता है। पुनश्च, नेपल्स का विद्रोह ब्रिटेन के क्षेत्र के बाहर था इसलिए ब्रिटेन द्वारा हस्तक्षेप करने में कोई न्याययुक्ति नहीं थी। कैसलरे यह मानने के लिए तैयार नहीं था कि जनता द्वारा किये गए सारे विद्रोह या आन्दोलन यूरोप के सर्वसाधारण कानून के विपरीत हैं।

मैटरनिक का रूस और प्रशिया ने समर्थन किया। ट्रोप्पू के सम्मेलन में ज़ार एलेग्ज़ेण्डर ने स्वयं को मैटरनिक का अनुयायी बताया। मैटरनिक पहले रूस की चालों से सदैव भय खाता था, क्योंकि यूरोप भर में रूस के गुप्तचर फैले हुए क्रान्तिकारी आन्दोलनों को प्रोत्साहन दिया करते थे। ज़ार के विचार-परिवर्तन से मैटरनिक को बड़ी शान्ति मिली। एलेग्ज़ेण्डर में यह परिवर्तन कोटज़ब्यु की हत्या तथा पिट्रोग्रेड में शाही अंगरक्षकों के विद्रोह के कारण हुआ। ज़ार एलेग्जेण्डर ने मैटरनिक से बातचीत करते हुए कहा, "राजकुमार! अब हम एक हैं और इसका श्रेय भी तुम्हें ही है। मुझे समय नष्ट करने से घृणा है तथा जो हो चुका उसे सँभालना चाहिए। मैं यहाँ बिना किसी निश्चय अथवा योजना के आया हूँ, किन्तु मैं तुम्हें अपरिवर्तनशील और दृढ़ आश्वासन दे सकता हूँ। मैं यह बात तुम्हारे सम्राट् पर छोड़ता हूँ कि वह इसे जिस प्रकार चाहे, प्रयोग में लाये। तुम कहो कि क्या चाहते हो? अथवा मुझे जो कुछ करने को कहोगे मैं अवश्य पूरा करूँगा।" परिणाम यह हुआ कि पंचमुखी-संगठन दो गुटों में बँट गया, एक ओर रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया की प्रतिक्रियावादी सरकारें थीं और दूसरी ओर ब्रिटेन और फ्रांस थे।

सम्मेलन ने प्रसिद्ध ट्रोप्पू की व्यवस्था बनाई जिसके अनुसार एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्रों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार मान्य हुआ। इसमें यह व्यवस्था की गई थी कि "जिन देशों की सरकारों में क्रान्ति के कारण परिवर्तन हो गया है जिसके परणिाम से अन्य देशों को भय हो, वे तुरन्त ही यूरोप के संगठन की सदस्यता से अलग हो जाएँगे तथा उस समय तक अलग रहेंगे जब तक उनकी स्थिति से व्यवस्था और स्थिरता का आश्वासन प्राप्त नहीं होता। यदि इस प्रकार के परिवर्तनों से अन्य देशों को भय होगा तो सारी शक्तियाँ यह प्रण करती हैं कि शान्ति द्वारा और यदि आवश्यकता पड़े तो शक्ति-प्रयोग द्वारा अपराधी देश को पुनः इस महान् संगठन में ले आएँ।"

ब्रिटेन ने इस विज्ञप्ति में साथ देने से इनकार कर दिया। केसलरे ने इसे "एक काल्पनिक नियम द्वारा स्वतन्त्र राष्ट्रों के आन्तरिक मामलों में सम्भावित हस्तक्षेप का प्रयत्न बताया।" उसकी धारणा थी कि इस व्यवस्था को प्रजा के विरुद्ध राजाओं का संगठन माना जायगा और इससे क्रान्तिकारी भावनाओं को प्रेरणा मिलना संभव है। उसके शब्दों में, "क्या यूरोप के शक्तिशाली राष्ट्र इस सिद्धान्त को मानने को तैयार हैं कि काल्पनिक आवश्यकता अथवा औचित्य के आधार पर वे अपने देशों की सीमाओं को अन्य राष्ट्रों के हस्तक्षेप के लिए खुली छोड़ देंगे, विशेषतः जबकि हस्तक्षेप की आवश्यकता और औचित्य का निर्णय उनके ऊपर नहीं, अपितु हस्तक्षेप करने वाले पर निर्भर होगा।" ब्रिटेन ने ईस पुलिस-व्यवस्था में सहयोग नहीं दिया, क्योंकि इसका परिणाम यूरोप में इस प्रकार के शासन की स्थापना था जिसमें राष्ट्रों की सर्वाधिकार-सम्पन्नता को भय था।

किसिंगर के मतानुसार, "ट्रोप्पू की कांग्रेस मैटरनिक की कूटनीतिक कुशलता का विशाल लक्षण प्रस्तुत करती है। उस समय की प्रधान प्रवृत्तियाँ जिन्हें वह आस्ट्रिया में लागू करने के अयोग्य या अनिच्छुक था और राष्ट्रवाद व उदारवाद के विरुद्ध संग्राम की आशंका से प्रभावित होकर, वह उसे आस्ट्रिया के संघर्ष की अपेक्षा यूरोपीय विषय बनाने में सफल हुआ और इस तरह उसने आस्ट्रिया के आन्तरिक ढाँचे की अनुपयुक्तता का प्रतीक बनाने वाली वस्तु हटा दी। इस भय का सामना कर कि कही पुनः उन्नत फ्रांस अपने पारिवारिक सम्बन्ध और संविधानवाद की दुहाई देकर अपनी इटली वाली स्थिति पुनः स्थापित न करले, उसने फ्रांस का अकेला करने व उसे शक्तिहीन बनाने का प्रबन्ध किया। ट्रोप्पू में फ्रांस के प्रतिनिधि का भाग इससे अधिक दयनीय नहीं हो सकता था। समस्त राजदूतों में सबसे अधिक मिलनसार प्रतीत होने के कारण, मैटरनिक ने उन्हें एक के बाद दूसरे जाल में फाँसने का प्रलोभन प्रस्तुत कर दिया।" (A World Restored, pp. 266-67)

लायबेक सम्मेलन (Congress of Laibach) (१८२१)—तीसरा सम्मेलन लायबेक में हुआ। आस्ट्रिया को नेपल्स-विद्रोह का दमन करने के लिए सेना भेजने की अनुमति मिल गई। आस्ट्रिया की सेना ने यह कार्य सरलता से कर दिखाया।

पीडमोण्ट और उत्तरी इटली में भी विद्रोह हुआ जिसे वापस लौटती हुई आस्ट्रिया की सेना ने दबा दिया।

विरोना-सम्मेलन (Congress of Verona) (१८२२)—चौथा और अंतिम सम्मेलन विरोना में १८२२ में हुआ। सम्मेलन के सम्मुख दो प्रश्न थे जिनमें से एक हल हुआ। ग्रीक लोगों ने तुर्की के विरुद्ध विद्रोह किया और इस प्रकार यह समस्या विरोना-सम्मेलन के सामने विचारार्थ आई। आस्ट्रिया ने जिस प्रकार नेपल्स और पीडमोण्ट में कदम उठाया उसी प्रकार जार एलेग्ज़ेण्डर इस मामले में स्वय ही कार्य करना चाहता था। किन्तु बलकान में आस्ट्रिया, रूस का प्रतिद्वन्द्वी था। मैटरनिक ग्रीक-समस्या में रूस का हस्तक्षेप रोकने के लिए दृढ़-संकल्प था। मैटरनिक को ब्रिटेन का समर्थन प्राप्त था, क्योंकि वह बलकान में रूस के हस्तक्षेप का समर्थक नहीं था। इस परिस्थिति में विरोना-सम्मेलन ने ग्रीक-प्रश्न पर विचार नहीं किया, अतः केवल स्पेन की समस्या ही रह गई।

१८२० में स्पेन में क्रान्ति हुई और स्पेन के राजा फर्डिनेण्ड सप्तम को धार्मिक न्यायालय समाप्त करने तथा संविधान की घोषणा करने के लिए विवश कर दिया गया। किन्तु आरम्भ से ही उसने बड़ी चतुरता से काम लिया और अपनी प्रजा के विरुद्ध फ्रांस के राजा की सहायता माँगी। इस एक बुरबोन (Bourbon) वंश के राजा की अन्य बुरबोन (Bourbon) राजा से सहायता की याचना, प्राचीन बुरबोन-वंश के गुट के समान प्रतीत हुई और इससे ब्रिटेन बड़ा बेचैन हुआ। विरोना-सम्मेलन में फ्रांस ने स्पेन को सहायता देने की इच्छा प्रकट की और अन्य देशों का समर्थन चाहा। आस्ट्रिया, प्रशिया और रूस ने फ्रांस का समर्थन किया किन्तु ब्रिटेन ने इस प्रभाव का विरोध किया। विरोना में ब्रिटेन के प्रतिनिधि ड्यूक ऑफ वेलिंगटन को कैनिंग ने आदेश दिया कि स्पेन के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप करने का कड़ा विरोध किया जाय। परिणाम यह हुआ कि ब्रिटेन का हस्तक्षेप न करने का सुझाव नहीं माना गया और ब्रिटेन सम्मेलन से बाहर निकल आया। इस प्रकार 'सम्मेलनों के युग' की समाप्ति हुई। इंग्लैण्ड का नया विदेश मन्त्री कैनिंग यूरोपीय गठबन्धन के टूट जाने से प्रसन्न हुआ। उसने कहा, "विरोना के मामले से एक और अटूट संगठन इंग्लैण्ड, फ्रांस और मसकोवि संविधानों की तरह स्पष्ट रूप से तीन भागों में बँट गया। परिस्थितियाँ फिर से ठीक होती जा रही हैं। प्रत्येक राष्ट्र अपने लिए और परमेश्वर सबके लिए रहेगा। अरियोपेगस और उसके अन्य अनुयायियों का समय समाप्त हुआ।"

असफलता के कारण (Causes of Failure)—यूरोपीय गठबन्धन की असफलता के अनेक कारण हैं। देशों में आन्तरिक हस्तक्षेप के सिद्धान्त से शक्तियाँ दो गुटों में बँट गईं। १८१८ में ब्रिटेन ने इस सिद्धान्त का विरोध किया था। किन्तु फिर भी ट्रोप्पू की व्यवस्था १८२० में बनाई गई। १८२२ में दूसरी बार ब्रिटेन ने स्पेन में फ्रांस के हस्तक्षेप का विरोध किया और उसके विरोध की उपेक्षा करके फ्रांस ने स्पेन में हस्तक्षेप किया। उसके कार्य का समर्थन रूस, प्रशिया और आस्ट्रिया ने

किया। ब्रिटेन अन्य देशों के इस रुख को सहन न कर सका और इस संगठन से अलग हो गया। 'सम्मेलन-युग' ब्रिटेन के अलग होते ही समाप्त हो गया था। ब्रिटिश सरकार का रुख उस गुप्त पत्र में स्पष्ट हो जाता है जो कैनिंग ने १८२३ में विरोना स्थित अपने राजदूत को लिखा—"इंग्लैण्ड किसी भी प्रकार से स्वतन्त्र राष्ट्रों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने अथवा हस्तक्षेप में सहायता देने के लिए दाध्य नहीं है। फ्रांस में हस्तक्षेप करने के लिए जो विशेष रूप से संगठन हुआ वह एक इस प्रकार का विशिष्ट अपवाद है कि उससे नियम प्रमाणित हो जाता है। नियम से मेरा आशय तो शान्ति-स्थापना के समय क्षेत्रीय अधिकार की निर्णीत सीमाओं और राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्धों की स्थिति से तो है किन्तु सीमाओं की स्थिति से नहीं। (केवल उपरोक्त अपवाद को छोड़ कर) इस संगठन में विचार-विमर्श से हमें क्या प्राप्त हुआ? हमने लायबेक में विरोध किया, विरोना में भी शिकायत की। हमारे विरोध को रद्दी कागज समझा गया, हमारी शिकायतें वायु में विलीन हो गईं। हमारा प्रभाव, यदि इसे विदेशों में बनाये रखना है, तो हमारे देश की निजी शक्ति के स्रोत के आधार पर ही रखा जा सकता है। इस शक्ति के स्रोत हमारी सरकार और जनता की पारस्परिक सहानुभूति, जनता की भावनाओं और जनता की अनुमति में हैं। सम्राट् और हाउस ऑफ कामन्स के बीच परस्पर के विश्वास और सहयोग पर भी यह आधारित है।"

स्वेच्छाचारी शासन और संविधानवाद साथ-साथ नहीं चल सकते। इसमें क्या आश्चर्य है कि इंग्लैंड अपनी संसदीय प्रणाली के साथ यूरोप के अन्य स्वेच्छाचारी शासनों के साथ सहयोग नहीं कर पाया। यूरोपीय गठबन्धन स्वेच्छाचारी शासनों की रक्षा के लिए प्रजातन्त्रवाद और राष्ट्रीयता के सब प्रकारों के दमन के लिए एक षड्यन्त्रकारी गुट के रूप में बदल गया।

आरम्भ से ही शक्तियों में परस्पर ईर्ष्या थी। ऐक्स-ला-चेपल के सम्मेलन में शक्तियाँ दासों के व्यापार और बर्बर समुद्री लुटेरों के प्रश्न पर, असहमत थीं। १८२० में हस्तक्षेप के प्रश्न पर ये असहमत हो गईं। शक्तियों में आन्तरिक सहयोग नहीं था। थोड़े समय के लिए केवल दिखावटी सहयोग रहा। इस प्रकार की परिस्थिति अधिक समय तक नहीं चल सकती थी और यह परिस्थिति फ्रांस के स्पेन में हस्तक्षेप से और भी जटिल हो गई।

यह भी कहा जाता है कि यूरोप का गठबन्धन नेपोलियन के युद्धों की उपज था, जिसका लक्ष्य सामूहिक शत्रु, फ्रांस के विरुद्ध संगठित होना था। किन्तु जब फ्रांस का खतरा समाप्त हुआ तो उसके साथ संगठित राष्ट्रों की एकता भी समाप्त हो गई। प्रत्येक राष्ट्र पृथक् रूप से अपनी कूटनीति चलाना चाहता था।

थॉमसन के मतानुसार, "जहाँ तक सम्मेलन प्रणाली के उद्देश्य का प्रश्न था, वहाँ तक यूरोप के शक्तिशाली राष्ट्र समय-समय पर आपसी झगड़ों का निपटारा करने और यूरोप महाद्वीप में शक्ति का संतुलन बनाये रखने के लिए मिलते रहे, इसे कुछ सफलता मिली और शान्ति बनी रही। बाद के सम्मेलनों में दासता की

प्रथा की समाप्ति, डेन्यूब में समुद्री व्यापार और झगड़ों की मध्यस्थता की समस्याओं पर विचार हुआ। किन्तु जहाँ तक पवित्र गठबन्धन के उद्देश्यों की पूर्ति तथा पंचमुखी संगठन के सदस्यों के स्वार्थों की पूर्ति का प्रश्न है, यूरोप में यह एक अशांति उत्पन्न करने वाली शक्ति थी। सामूहिक हस्तक्षेप का सिद्धान्त अपने शत्रु फ्रांस के सम्बन्ध में सब मानते थे। यह सिद्धान्त सभी स्थानों में व्यर्थ का पचड़ा मोल लेने के लिए प्रयुक्त होने लगा। इससे मैटरनिक अथवा ब्रिटेन किसी के भी हित की पूर्ति नहीं होती थी। बारी-बारी से सारे राष्ट्रों को हस्तक्षेप करने के लिए उकसाया गया। आस्ट्रिया को पीडमोण्ट और नेपल्स में, फ्रांस को स्पेन और ग्रीस में, ब्रिटेन को ग्रीस और पुर्तगाल में तथा रूस को ग्रीस में हस्तक्षेप करने के लिए कहा गया। ब्रिटेन प्रतिक्रियावादी राजाओं के हस्तक्षेप से, रूस के तुर्की के मामले में गुप्त उद्देश्यों से घबरा गया और उसे हस्तक्षेप को रोकने के लिए हस्तक्षेप करने की अद्‌भुत नीति अपनानी पड़ी। युद्ध से रोकने की कठोर और लम्बी अवधि के अन्त में ग्रीक-क्रान्ति आरम्भ हुई और इस दौरान में ग्रीकों को बहुत हानि उठानी पड़ी। मुनरो सिद्धान्त द्वारा वर्तमान व्यवस्था के पक्ष अथवा विपक्ष में हस्तक्षेप करने के विरोध ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के उस मौलिक प्रश्न पर जनसाधारण का ध्यान केन्द्रित कर दिया। प्राचीन परिपाटी की समर्थक शक्तियों अथवा राष्ट्रीयता और उदारता की समर्थक शक्तियों में से किसी को भी इस नीति से लाभ नहीं पहुँचा। यह हस्तक्षेप स्पेन और नेपल्स में राजाओं तथा पुर्तगाल और ग्रीस में प्रजातन्त्र के समर्थक विद्रोहियों के हित में था। किन्तु वंश-परम्परागत राजशाही अथवा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के आन्दोलन इस सिद्धान्त को मानकर चले कि कोई बाहर की शक्ति उचित रूप से हस्तक्षेप करके अन्ततः लाभ नहीं उठा सके। अनुभव से यह पता लगा कि सम्मेलन-प्रणाली का अर्थ सब बातों में एक-जैसा दृष्टिकोण रखना है तथा प्रत्येक झगड़े को बढ़ा-चढ़ा देना तथा जहाँ कहीं झगड़ा हो, वहाँ शासन को बदल देना होता है। शान्ति को अविभाज्य बना कर इसे अत्यन्त नाजुक बना दिया गया। इसका कारण था कि प्रत्येक क्रान्तिकारी घटना में बड़ी शक्तियों की प्रतिद्वन्द्विता छिपी रहती थी। यूरोपीय गठबन्धन को रूढ़िवादी शक्तियाँ क्रान्ति के विरुद्ध एक बाँध मानती थीं किन्तु ब्रिटेन इसे राष्ट्रीयता और उदार विचार-धाराओं की प्रगति के प्रवाह को नियंत्रित करने वाले बाँध का फाटक मानता था। (Europe Since Napoleon, pp. 119-20)

ग्रांट और टैम्परले के मतानुसार, "अन्तर्राष्ट्रीय शासन के इस गम्भीर प्रथम प्रयास को बताये बिना महत्त्वहीन मानकर रद्द कर देना उचित नहीं। शासकों में व्यक्तिगत विचार-विमर्श और परस्पर विश्वास का विचार बहुत सुन्दर था। केसलरे पुनर्गठन करने में संलग्न था और किसी हद तक मैटरनिक भी इस कार्य में लगा हुआ था। किन्तु एलेग्जेण्डर इन दोनों से ही अधिक आगे और अधिक तीव्रता से बढ़ गया। १८२० के पश्चात् सम्मेलन प्रणाली कार्य रूप से राजाओं की जनता की स्वतन्त्रताओं को कुचलने के लिए एक संसदीय प्रणाली वाला इंग्लैंड अपनी अनुमति नहीं दे सकता था तथा क्रान्तिकारी फ्रांस इसमें अनचाहा सहयोगी था। छोटे राष्ट्र जो इसमें सम्मिलित नहीं थे स्वतः ही इसके विरोधी थे। बाद में भी

यूरोप में अनेक सम्मेलन हुए जिनसे बहुत भलाई हुई। यद्यपि अब भी नेतृत्व बड़े राष्ट्रों के हाथ में ही था तथापि राजशाही को पुनर्जीवित करने या क्रांति की निन्दा करने या सशस्त्र हस्तक्षेप करने की कोई आम नीति की घोषणाएँ नहीं की गईं। इस कारण संसदीय प्रणाली वाले इंग्लैंड और फ्रांस दोनों ही पूर्वी यूरोप के तीन सर्वेसर्वा राजाओं के साथ सरलता से विचार-विमर्श करते रहे। जिस सम्मेलन ने बेल्जियम को स्वतन्त्रता दिलाई, वह इस बात का अच्छा उदाहरण है कि किस प्रकार बड़े राष्ट्र बिना झिझक के मिलकर स्थायी भलाई कर सकते हैं, क्योंकि वे एक-दूसरे की विचार-धाराओं और कठिनाइयों को समझते थे।"

कैनिंग (Canning)—फ्रांस द्वारा स्पेन पर आक्रमण को न रोक सकने के कारण कैनिंग ने कहा, "मैंने एक नया संसार पुरानी दुनिया का सन्तुलन रोकने के लिए बनाया है।" ब्रिटेन यूरोप के अन्य देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का विरोधी था। १८१८ में यूरोप की राजनीति में इस सिद्धान्त को प्रचलित करने के लिए उसने रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया की चालों का विरोध किया। किन्तु इंग्लैण्ड के विरोध करने पर भी १८२० में ट्रोप्पू-व्यवस्था लागू कर दी गई। इसके अनुसार यूरोप के देशों को अपने पड़ोसी देशों में विद्रोह होने पर अथवा विद्रोह से उनकी सुरक्षा को डर होने की स्थिति में उनके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की छूट मिल गई। इस नीति के अनुसार १८२१ में आस्ट्रिया ने नेपल्स और पीडमोण्ट में हस्तक्षेप किया। १८२२ में विरोना सम्मेलन में ब्रिटेन ने स्पेन के मामले में किसी भी देश के हस्तक्षेप का विरोध किया। किन्तु फिर भी फ्रांस ने स्पेन पर आक्रमण कर ही दिया और इसके राजा को पुनः सारे अधिकार दिला दिये। जहाँ तक स्पेन का सम्बन्ध है, ब्रिटेन असफल हुआ। उस समय कैनिंग ने यह स्पष्ट कर दिया था कि वह दक्षिणी अमेरिका में, स्पेन के उपनिवेशों को पुनः जीतने नहीं देगा तथा यूरोप की हानि की अमेरिका में क्षतिपूर्ति नहीं होने देगा।

पुरानी दुनिया का सन्तुलन बनाने के लिए कैनिग की नई दुनिया बनाने की नीति सहसा प्रेरणा का फल नहीं था। यह बहुत सोच-विचार के पश्चात् तथा दृढ़ता से पालन की गई नीति थी। १७९० में पिट ने मिराण्डा को यह बता दिया था कि अमेरिका में स्पेन के उपनिवेशों का हित एक ऐसा मामला है, जिस पर इंग्लैण्ड का प्रत्येक मन्त्री ध्यान देगा। १८०८ में ब्रिटेन की संरक्षता में स्पेन के उपनिवेशों का अलग कर देना कैनिंग और कैसलरे दोनों के विचार में था। यह विचार कैनिंग द्वारा विदेश-मन्त्री का पद सँभालने के पहले दिन से ही उसके मस्तिष्क में था और इस कार्य के पूर्ण होने तक बराबर रहा। १८२२ में केनिंग ने, ड्यूक ऑफ़ वेलिंगटन को जो विरोना में ब्रिटेन का प्रतिनिधित्व कर रहा था, पत्र में लिखा, "प्रायद्वीप की वर्तमान स्थिति तथा देश की स्थिति को देखते हुए नित्य-प्रति मेरे मस्तिष्क में यह विचार घर करता जा रहा है कि हमारे लिए यूरोप के प्रश्नों से कहीं अधिक महत्त्व-पूर्ण प्रश्न अमेरिका के हैं। यदि हमने वर्तमान अवसर का उपयोग करके इसे अपने हित के लिए प्रयुक्त नहीं किया तो भविष्य में एक अमूल्य अवसर को खो देने के लिए सर्वदा पश्चात्ताप करते रहेंगे।"

यह सत्य है कि स्पेन को अपने अमेरिका के उपनिवेशों का शासन करने में बड़ी कठिनाइयाँ आ रही थीं। १८१७ में स्पेन ने ५० लाख डालर में फ्लोरिडा का प्रदेश बेच दिया। उसके पश्चात् भी परिस्थिति नहीं सँभली। दक्षिणी अमेरिका में अराजकता थी और अंग्रेजों को उनके जहाजों पर होने वाले आक्रमणों के कारण बड़ी कठिनाइयाँ होती थीं। १८२३ में कैनिंग ने ब्रिटिश व्यापार की रक्षा के लिए स्पेन के उपनिवेशों में अपने प्रतिनिधि नियुक्त किये। ब्रिटिश सरकार ने फ्रांस को स्पष्ट रूप से यह बता दिया था कि स्पेन के उपनिवेशों की वापसी स्पेन के अतिरिक्त अन्य किसी शक्ति को नहीं की जायगी। १ जनवरी, १८२५ में अन्य शक्तियों को बताया गया कि ग्रेट ब्रिटेन ने ब्यूनस एयर्स, कोलम्बिया और मैक्सिको के प्रदेशों की स्वतन्त्रता को मान्यता दे दी है। शक्तियों ने ब्रिटेन के इस कार्य का विरोध किया, किन्तु कुछ भी नहीं कर सके। कैनिंग यूरोप के राष्ट्रों की अनिच्छा होते हुए भी अपनी नीति का अनुसरण करता रहा।

कैनिंग को संयुक्त राज्य अमेरिका के रूप में एक शक्तिशाली मित्र प्राप्त हुआ। दिसम्बर, १८२३ में राष्ट्रपति मुनरो ने मुनरो-सिद्धान्त की घोषणा की। उसने घोषणा की—"यूरोप की महान् शक्तियों द्वारा, दक्षिणी अमेरिका को स्पेन के उपनिवेशों का नियन्त्रण करने अथवा दमन करने के उद्देश्य से हस्तक्षेप करना संयुक्त-राज्य अमेरिका की सुरक्षा के लिए घातक कार्य समझा जायगा। क्योंकि ये प्रदेश अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर चुके हैं। इसलिए किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप उनके प्रति अमैत्रीपूर्ण कार्य समझा जायगा।" १८२४ में कैनिंग ने लिखा, "मुझे तनिक भी सन्देह नहीं कि राष्ट्रपति ने यह घोषणा दक्षिणी अमेरिका में स्पेन के उपनिवेशों के प्रति हमारी भावना को जान कर की है। हमारे अमेरिकी सहयोगियों की कट्टर गणतंत्रीय विचारधारा का जो प्रभाव हमारे ऐक्स-ला-चेपल के कट्टर रूढ़िवादी कानूनों पर हुआ है, उसने ठीक उसी प्रकार का शक्ति-संतुलन कर दिया है जिसकी इच्छा मैं सदा से कर रहा था।" अगले वर्ष १८२५ में उसने लिखा, 'कार्य पूरा हो चुका··· एक ऐसा कार्य जो संसार का चेहरा बदल डालेगा और जो लगभग उतना ही महान् है जितना कि अमेरिका महाद्वीप का पाया जाना था। मित्र-राष्ट्र तिलमिलायेंगे। किन्तु वे कोई गम्भीर कदम नहीं उठायेंगे। फ्रांस भूल जायेगा, किन्तु दक्षिणी अमेरिका हमारे उदाहरण का शीघ्रता से अनुगमन करेगा। ब्रिटेन और अमेरिका के कदम निर्णायक थे। १८३० के आरम्भ होते ही दक्षिणी अमेरिका में स्पेनिश साम्राज्य का अस्तित्व समाप्त हो गया और परिणामतः मैक्सिको, ग्वाटेमाला, कोलम्बिया, पीरू, चिली, बोलीविया, पैराग्वे और रियो डी ला प्लाटा अर्थात् ब्यूनस एयर्स के स्वतन्त्र गणतन्त्रों की स्थापना हुई।

स्पष्ट है कि जहाँ यूरोप में कैनिंग असफल रहा वहाँ अमेरिका में सफल हुआ। वह स्पेन में फ्रांस का हस्तक्षेप नहीं रोक सका, किन्तु वह स्पेनिश अमेरिका में स्पेन तथा अन्य किसी भी देश का हस्तक्षेप रोकने में सफल हुआ और इस प्रकार अमेरिका में वह स्पेन के उपनिवेशों की स्वतन्त्रता की स्थापना करा सका। कैनिंग का यह

कहना सत्य ही था कि उसने दक्षिणी अमेरिका में एक नई दुनिया की सृष्टि की है और जो सन्तुलन आस्ट्रिया, रूस, प्रशिया और फ्रांस के इकट्ठे हो जाने से बिगड़ गया था, पुनः ठीक हो गया है।

Suggested Readingo

Fyffe : *History of Modern Europe.*
Phillips, W. A. : *The Confederation of Europe : A Study of the European Alliance (1813-23), 1920.*
Phillips : *Modern Europe.*
Schenk, H. G. : *The Aftermath of the Napoleonic Wars : the Concert of Europe—an Experiment, 1947.*
Seignobos : *Political History of Europe Since 1814.*
Thomson : *Europe Since Napoleon.*
Kissinger : *A World Restored.*
Ward, Sir A. W. : *The Period of the Congreses, 1919.*

अध्याय १३

लुई अठारहवें से नेपोलियन तृतीय तक

(Louis XVIII to Napoleon III)

लुई अठारहवाँ (Louis XVIII) (१८१४-२४)—नेपोलियन के १८१४ में राज त्याग देने और ऐलबा द्वीप में निष्कासित होने के पश्चात् फ्रांस के राजसिंहासन पर लुई अठारहवें को बैठाया गया। वह लुई सोलहवें का भाई था। राज्यारोहण के समय उसकी आयु ५९ वर्ष की थी। वह अस्वस्थ और गठिया से पीड़ित था तथा घोड़े पर सवारी नहीं कर सकता था। मानसिक तथा चारित्रिक रूप से वह राजा होने योग्य था। वह अनुभवी व्यक्ति था और आरम्भ से ही उसने यह जान लिया था कि कालचक्र को पीछे की ओर चलाना असम्भव है। वह इंग्लैंड के चार्ल्स द्वितीय की तरह पुनः झंझट में नहीं पड़ना चाहता था, तथा समझौते और शान्ति की नीति का समर्थक था। १८१८ में उसनेलिखा था, "जिस प्रणाली को मैंने अपनाया है तथा जिसे बड़े परिश्रम से मेरे मंत्री पालन कर रहे हैं, वह इस कहावत पर आधारित है कि 'दो प्रकार की जनता का राजा होना कभी उचित नहीं है'। क्योंकि प्रजा के दो भाग स्पष्ट हैं, इसलिए मेरे शासन का पूरा प्रयत्न यह है कि उनका भेद क्रमशः समाप्त कर दिया जाय।"

१८१४ का अधिकार-पत्र (Charter of 1814)—४ जून, १८१४ को लुई अठारहवें ने एक उदार अधिकार-पत्र प्रसारित किया। इस विज्ञप्ति पर ज़ार एलेग्जेण्डर प्रथम का प्रभाव था। इस विज्ञप्ति में १८४८ तक फ्रांस के सारे संविधान विहित हैं। इसकी प्रस्तावना थी, "अपने पूर्वज राजाओं के आदर्श का अनुकरण करते हुए यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम ज्ञान की उत्तरोत्तर होती हुई प्रगति के परिणामों, इस प्रगति द्वारा समाज में हुए नवीन सम्बन्धों, पिछली अर्धशताब्दी में जो प्रभाव इसने जनसाधारण के विचारों पर डाला है तथा जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन इस काल में हुए हैं, उन सब की हम प्रशंसा करते हैं। हमने अनुभव किया है कि हमारी प्रजा की इच्छा एक आवश्यकता है। किन्तु प्रजा की इस इच्छा को मान्यता देते हुए हमने ध्यान रखा है कि यह संविधान हमारे तथा जिन प्रजाजनों पर हम शासन करते हैं, उनकी शान के उपयुक्त हो।"

इस अधिकार-पत्र के अनुसार सम्राट् को देश का प्रमुख माना गया। उसे सब नियुक्तियाँ, कानून, युद्ध, शान्ति, सन्धि और व्यापार-सम्बन्धी प्रतिज्ञा पत्र इत्यादि करने का अधिकार दिया गया। जल और स्थल की सेनाओं के संचालन तथा

कानूनों की स्वीकृति का अधिकार दिया गया। दो सदन अर्थात् चेम्बर ऑफ पीयर्स और चेम्बर ऑफ़ डिपुटीज की संसद् की व्यवस्था की गई। चेम्बर ऑफ पीयर्स के सदस्य आजीवन अथवा वंशपरम्परागत अधिकार के अनुसार सम्राट् नियुक्त करता था। इसके अधिवेशन गुप्त होते थे तथा यह देश का सर्वोच्च न्यायालय भी था। यह मन्त्रियों के विरुद्ध अविश्वास-अभियोगों की सुनवाई भी करता था। चेम्बर ऑफ डिपुटीज़ के सदस्य ३०० फ्रैंक सीधा कर (Direct taxes) देने वाले लोग ही चुन सकते थे। इसकी अवधि पाँच वर्ष थी तथा इसका पाँचवाँ भाग प्रत्येक वर्ष अवकाश प्राप्त करता था। इसका अधिवेशन वार्षिक होता था। यह सम्राट् से किसी विशेष विषय पर कानून बनाने की प्रार्थना कर सकता था।

रोमन कैथोलिक चर्च को मान्यता दी गई, किन्तु अन्य धर्मों को भी स्वतंत्रता प्रदान की गई। नेपोलियन के काल के तथा क्रान्ति से पूर्व के सारे सामन्तों को मान्यता दी गई। समाचारपत्रों को स्वतन्त्रता का आश्वासन दिया गया। फ्रांस के सारे नागरिकों को राज्य-पद प्राप्त करने की स्वतन्त्रता दी गई। क्रान्ति-काल में जब्त की गई सम्पत्ति के वर्तमान स्वामियों को आश्वासन दिया गया कि यह सम्पत्ति उनसे छीनी नही जायेगी।

इस घोषणा का मुख्य महत्त्व यह था कि इससे क्रान्ति तथा नेपोलियन द्वारा किये गए कार्यों को मान्यता दी गई। यह मान्यता, जनसाधारण की समानता, पद प्राप्त करने की योग्यता धार्मिक सहिष्णुता, नेपोलियन-संहिता तथा कानकार्डट इत्यादि की मान्यता से स्पष्ट है। यह अधिकार-पत्र 'राजा के दैवी अधिकार' के सिद्धान्त के प्रतिकूल भी नहीं था। वास्तव में सम्राट् ने उदारता से यह अधिकार जनता को सौंप दिया था। शेटोब्रियांड के अनुसार, "अधिकार-पत्र फ्रांस में बने हुए दो दलों के बीच समझौता था, जिसमें दोनों ही दलों ने अपनी कुछ मान्यताएँ छोड़कर देश के लिए इकट्ठा होकर कार्य करने का निर्णय किया।"

टैलीरैण्ड (Talleyrand)—फ्रांस में उत्पन्न चतुर व्यक्तियों में सबसे अधिक कुशल व्यक्ति टैलीरैण्ड था। यह क्रान्ति-काल में नेपोलियन के राज्य में तथा सम्राट् के आसीन होने पर किसी न किसी पद पर काम करता ही रहा। वह सामन्त-वर्ग का था तथा चर्च का सदस्य भी था। नेपोलियन ने उसे बहुत कठिन कार्यों के लिए नियुक्त किया था। वह बहुत चतुर और चालाक व्यक्ति था। वह परिस्थितियों के अनुसार चालाकी से अपनी स्वामि-भक्ति बदल लेता था। नेपोलियन सब जटिल समस्याओं में उसकी सलाह लिया करता था। इतना विश्वस्त होने पर भी अन्त में वह नेपोलियन का साथ छोड़कर आस्ट्रिया से जा मिला। अपनी चतुरता के कारण ही उसने वियाना-सम्मेलन में महत्त्वपूर्ण भाग लिया। इसने ही 'न्याययुक्तता' के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके अपने देश की रक्षा की। यद्यपि फ्रांस परास्त हो गया, किन्तु इसकी कुशलता के कारण उसके प्रदेश नहीं छीने गये।

टैलीरैण्ड आकर्षक व्यक्तित्व वाला नहीं था। नेपोलियन ने एक बार उसे 'रेशमी मोजे पहिननेवाला गन्दगी का ढेर' कहा था। एक बार नेपोलियन ने यह भी

कहा, "तुम इन्सान नही शैतान हो। मैं तुम्हें अपने मामलों के बारे में बताने या तुम्हें पसन्द करने से रोक नहीं सकता।"

टैलीरैण्ड

राजनैतिक दल (Parties)—फ्रांस में दो राजनैतिक दल अर्थात् 'मॉडरेट्स' (Moderates) और 'आल्ट्रा-रायलिस्ट' (Ultra-Royalists) थे। मॉडरेटस् अर्थात् उदार दलीय १८१४ के संविधान के समर्थक थे और आल्ट्रा-रायलिस्ट, अर्थात् राजशाही दल, सम्राट् की सर्वाधिकार-सम्पन्नता और विशेपाधिकारों के समर्थक थे। वे चर्च और सम्राट् में मैत्री चाहते थे। वे चाहते थे कि प्रशिक्षण-कार्य चर्च के हाथ में रहे। वे समाचारपत्रों पर सेन्सर के समर्थक और जागीरदारों की जागीरों की जब्ती के विरुद्ध थे। लुई अठारहवें ने उदार नीति का पालन किया और इनकी माँगों पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह सेना और किसानों का प्रिय नहीं हो पाया। वेलिंगटन के मतानुसार, "फ्रांस का सम्राट् बिना सेना के सम्राट् नहीं हो सकता।" किसानों और सेना की अप्रियता का परिणाम यह हुआ कि नेपोलियन ऐलवा से लौट आया और किसान और सेना उससे जा मिले। किन्तु सौ दिन बाद लुई अठारहवें को पुनः राज्य प्राप्त हुआ।

श्वेत आतंक (White Terror)—जैसे ही फ्रांस में वाटरलू की लड़ाई में नेपोलियन की हार की खबर पहुँची, सम्राट् के समर्थकों ने देश में आतंक फैला दिया। राजशाही दल ने बोनापार्ट के समर्थकों पर आक्रमण किये। कैथोलिकों ने प्रोटैस्टैण्टों

पर आक्रमण किये। देश भर में लूट-मार और हत्याएँ आरम्भ हो गईं और इस उथल-पुथल को 'श्वेत आतंक' के नाम से पुकारा गया। इस प्रकार से हिंसा और आतंक के वातावरण में आम चुनाव हुए; और यह कोई हैरानी की बात नहीं कि राजशाही दल बहुत बड़ी संख्या में जीत गया। टैलीरैण्ड और फॉच को अपदस्थ कर दिया गया। नये मन्त्रिमण्डल का प्रमुख रिशेलु बना और उसका मुख्य सहायक डिकाजेस (Decazes) था। नवीन चेम्बर ऑफ डिपुटीज़ 'सम्राट् से कहीं अधिक राजशाही का समर्थक था।' यद्यपि सम्राट्, उसके मन्त्री और चेम्बर ऑफ पीयर्स के सदस्य उदारता की नीति के समर्थक थे, तो भी सम्राट् के भाई काउन्ट ऑफ आर्टोइस (Count of Artois) के नेतृत्व में चेम्बर ऑफ डिपुटीज ने शत्रुओं से प्रतिशोध की माँग की। काउण्ट ऑफ आर्टोइस १८२४ में फ्रांस का सम्राट् बना। वीरशिरोमणि मार्शल नियें को देशद्रोही कहकर गोली मार दी गई। बोनापार्ट के हजारों समर्थकों को कैद कर लिया गया या देशनिकाला दे दिया गया। कुछ लोगों को मृत्युदण्ड दिया गया एवं बाकी सब को पदच्युत कर दिया गया। सितम्बर, १८१६ में चेम्बर ऑफ डेपुटीज़ को भंग कर दिया गया।

उदार दल सत्तासीन (Moderates in Power)—१८१६ में फिर चुनाव हुए और उदार दल बहुसंख्या में चेम्बर आफ डेपुटीज़ में आया। वह १८२० तक सत्तासीन रहा। १८१८ में ऐक्स-ला-चेपल के सम्मेलन में फ्रांस द्वारा युद्ध-क्षति की पूर्ति करने पर, संगठित राष्ट्रों की सेनाओं को फ्रांस से हटा लिया गया। १८१७ में उदारदल के हित में चुनाव सम्बन्धी एक नया कानून बनाया गया। १८१९ में एक नया कानून बना जिससे समाचारपत्रों पर से प्रतिबन्ध हटा लिया गया। समाचारपत्रों द्वारा किये गए अपराधों का निर्णय पंच-फैसले द्वारा करने का निर्णय किया गया।

फरवरी, १८२० में एक मदान्ध व्यक्ति द्वारा ड्यूक डी बेरी की हत्या कर दी गई। ड्यूक काउन्ट ऑफ आर्टोइस का पुत्र था और इससे बुरबोन (Bourbon) राजवंश को बड़ी आशाएँ थीं। यद्यपि हत्या एक व्यक्ति का कार्य था, तो भी राजशाही के समर्थकों ने इसे सम्राट् की उदार नीति का परिणाम बताया। किसी ने कहा, "जो छुरा ड्यूक डी बेरी की छाती में घुसाया गया वह एक 'उदार विचार' था।" अन्य लोगों ने कहा, "पदासीन राजवंश और सम्राट् की समाप्ति से पहले डिकाजेस को अपदस्थ होना चाहिए।" स्वयं डिकाजेस ने कहा कि "ड्यूक के साथ हम लोगों की भी मृत्यु हो गई है।" डिकाजेस को अपदस्थ कर दिया गया और राजशाही दल सत्ता में आया।

१८२० में पुनः रिशेलु मन्त्रिमण्डल का नेता बना और १८२१ तक पदासीन रहा। उसके काल में प्रतिक्रिया का युग आरम्भ हुआ। समाचारपत्रों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। चुनाव के कानून बदल दिए गए। गुप्त मतदान-प्रणाली समाप्त कर दी गई। मतदान का क्षेत्र संकीर्ण कर दिया गया। भूस्वामियों को दो मत (Double Vote) प्रदान किए गए।

रिशेलु का उत्तराधिकारी विल्लेली (Villele) बना, जो एक योग्य और सचेत शासक था, किन्तु प्रसिद्ध प्रतिक्रियावादी था। वह अपने पद पर १८२७ तक रहा। १८२२ में समाचारपत्रों पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। सम्राट् और चर्च का प्रचार करने के लिए चर्च को शिक्षा का कार्य सौंप दिया गया। जागीरदारों और उद्योगपतियों के हितों की रक्षा के लिए विदेशों से माल मँगाने पर बहुत कठोर चुंगी लगा दी गई। १८२३ में बुरबोन (Bourbon) वंश को पूर्ण सत्ता दिलवाने के लिए स्पेन में फ्रांस की सेनाएँ भेजी गईं। चेम्बर ऑफ पीयर्स में उदार सदस्यों के बहुमत को समाप्त करने के लिए उपाधियाँ प्रदान की गईं। सप्तवर्षीय कानून (Septennial Act) द्वारा चेम्बर ऑफ डेपुटीज़ की अवधि पाँच वर्ष से बढाकर सात वर्ष कर दी गई।

चार्ल्स दशम (Charles X) (१८२४-३०)—१८२४ में लुई अठारहवें की मृत्यु के पश्चात् काउण्ट ऑफ आर्टोइस (Count of Artois) चार्ल्स दशम के नाम से गद्दी पर बैठा। काउण्ट होते हुए वह देश से भागे हुए सामन्तों का नेता रहा था। लुई अठारहवें के शासन में वह राजशाही दल का नेता था। वह एक दृढ़ धारणा और कलुषित हृदय का व्यक्ति था। उसके विषय में कहा जाता था कि "उसने कोई नवीन धारणा नहीं अपनायी तथा वह कुछ भी भूला नहीं।" उसे गर्व था कि उसमें और लफ़ायट (Lafayette) में समय में इतनी उलट-फेर होने पर भी कुछ परिवर्तन नहीं आया। वह चर्च की महत्ता का समर्थक था और चर्च के लिए अपना सिंहासन भी छोड़ने के लिए प्रस्तुत था। वेलिंगटन (Wellington) के शब्दों में, "इसने धर्माचार्यों की सरकार, धर्माचार्यों के द्वारा, धर्माचार्यों के लिए स्थापित की।" वास्तव में उसकी तुलना स्पेन के फिलिप द्वितीय से की जा सकती है।

इसके शासन-काल में शक्तिशाली विदेश-नीति से फ्रांस का सम्मान बढ़ा। अल्जीयर्स (Algiers) पर विजय हुई और फ्रांस ने ब्रिटेन से गठजोड़ करके तुर्कों के विरुद्ध ग्रीक लोगों की सहायता की। जब १८२७ में नवारिनो (Navarino) की लड़ाई में तुर्की का बेड़ा नष्ट हुआ, उस अभियान में फ्रांस भी था। यद्यपि फ्रांस ग्रीक के स्वातंत्र्य युद्ध से हट गया परन्तु उसने बलकान में रूस के प्रभाव को कम करने के लिए इंग्लैण्ड का साथ दिया।

विल्लेली (Villele)—१८२७ तक विल्लेली मन्त्रिमण्डल का नेतृत्व करता रहा। क्योंकि देश के समाचारपत्र सम्राट् की चर्च-नीति के विरोधी थे, समाचारपत्रों को शासन का अङ्ग बनाने का निर्णय किया गया। आदेश प्रसारित किया गया कि सम्राट् की आज्ञा के बिना कोई भी समाचारपत्र प्रकाशित न किया जाय। पत्रों के सारे समाचार शासन द्वारा स्वीकृत हों। किसी ऐसे लेख के लेखक को अथवा चित्र के चित्रकार को, जिसके द्वारा देश के धर्म पर आक्षेप या व्यंग्य किया गया हो, अथवा जिससे किसी वर्ग के विरुद्ध घृणा का प्रचार हो, बहुत बड़े जुर्माने या सात वर्ष की कैद से दण्डित करने की घोषणा हुई। १८२७ में एक ऐसा कानून बनाने का प्रयास किया गया, जिससे समाचारपत्रों की स्वतन्त्रता पूर्णतः समाप्त हो गई। सब ओर से

विरोध होने पर भी चेम्बर ऑफ डेपुटीज़ ने इस कानून को स्वीकार कर लिया, किन्तु चेम्बर ऑफ पीयर्स के घोर विरोध के कारण सरकार को यह विधेयक रद्द करना पड़ा।

१८२५ में क्रान्ति के दिनों में भागे हुए जागीरदारों की जागीरों की क्षति-पूर्ति के लिए एक कानून बनाया गया। जनसाधारण से लिये हुए ऋण पर सूद की दर पाँच प्रतिशत से घटाकर चार प्रतिशत कर दी गई और यह क्षति-पूर्ति की गई। सूद की दर घटा देने से मध्यवर्ग को हानि पहुँची और इससे यह वर्ग अवश्य ही रुष्ट हुआ होगा। कुछ अनुबन्धों के साथ स्त्रियों के लिए भी धार्मिक संस्थाओं की स्थापना हुई। ज्येष्ठाधिकार के कानून को पुनः लागू करने का प्रयत्न किया गया, किन्तु चेम्बर ऑफ पीयर्स के विरोध के कारण यह विफल रहा। गिरजाघरों से पूजा के पवित्र बर्तनों को चुराने के अपराध पर मृत्यु-दण्ड देने के लिए एक कानून बनाने का प्रस्ताव रखा गया। पूजा की वेदी को अपवित्र करने वालों के हाथ काटने का भी कानून बनाने का प्रयत्न किया गया। कुछ संशोधनों के साथ यह कानून स्वीकृत तो हो गया, किन्तु जनता के घोर विरोध के कारण यह लागू नहीं किया जा सका।

१८२७ में राष्ट्र रक्षक (National Guards) सेना भङ्ग कर दी गई। यह इसलिए हुआ कि एक बार सम्राट् सेना के निरीक्षण के पश्चात् लौट रहा था, राष्ट्र-रक्षक सेना के सदस्यों ने 'मंत्रियों का नाश हो', 'जैसुइट्स (Jesuits) का नाश हो' आदि नारे लगाने आरम्भ कर दिये। पेरिस के निवासी इस सेना के भङ्ग होने पर अत्यधिक क्षुब्ध हुए और इसका परिणाम बड़ा ही घातक हुआ।

मार्टिगनक (Martignac)—विल्लेली (Villele) का उत्तराधिकारी मार्टिगनक बना और यह जनवरी १८२८ से जुलाई १८२९ तक सत्तासीन रहा। यह एक योग्य, अनुभवी और उदार व्यक्ति था। इसने समझौते की नीति का अनुसरण किया। जैसुइट्स (Jesuits) का शिक्षा पर से नियन्त्रण हटा दिया गया। समाचार-पत्रों का सेन्सर बन्द कर दिया गया। मताधिकार प्रान्तीय सभाओं को दिया गया। स्थानीय स्वायत्त शासन के लिए अनेक सुधार प्रस्तावित हुए। प्रतिक्रियावादी इससे बहुत नाराज़ हुए, परिणामतः इसे त्याग-पत्र देना पड़ा।

पोलिगनक (Polignac)—चार्ल्स दशम की धारणा थी कि "रियायतों (concessions) ने लुई सोलहवें का नाश किया था", अतः उसने प्रजा को कोई भी सुविधा न देने का निर्णय किया। "इन लोगों के साथ व्यवहार का यह तरीका नहीं है अब इन सुविधाओं को बन्द करना चाहिए।" संभ्रांत प्रतिक्रियावादी और क्रान्ति-काल में भगोड़े राजकुमार पोलिगनक को सरकार का प्रमुख बनाया गया। चेम्बर ऑफ डेपुटीज़ में उसके समर्थकों का बहुमत नहीं था। इससे सरकार की सारे देश में घोर आलोचना हुई। मार्च १८३० में चेम्बर ऑफ डेपुटीज़ में चार्ल्स दशम ने भाषण दिया, "अधिकार-पत्र ने फ्रांस की स्वतन्त्रताओं को सम्राट् के अधिकारों के अन्तर्गत रखा है। ये अधिकार पवित्र हैं और यह मेरा कर्त्तव्य है कि मैं इन्हें अपने उत्तराधिकारी को अक्षुण्ण सौंपूँ। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि तुम लोग मेरी इस

सद्भावना को कार्य-परिणत करने में सहायता दोगे तथा विदेशों में अनिष्टकारियों द्वारा जो लज्जाजनक आक्षेप लगाये जा रहे हैं, उनका निराकरण करोगे। यद्यपि मुझे आशंका नहीं है फिर भी यदि षड्यंत्रों ने मेरी सरकार के कार्य में रोड़ा अटकाया, जो मेरे लिए असह्य है, तो मुझे देश में शान्ति बनाए रखने के लिए फ्रांस की प्रजा में विश्वास रखते हुए तथा उनके सम्राट् के प्रति प्रेम को देखते हुए और अपने संकल्प में दृढ़ रहकर इन अड़चनों को दूर करने के साधन जुटाने पड़ेंगे।" सम्राट् के इस भाषण को जनता ने चुनौती समझा। थीयर्स (Thiers) जैसे लोग सम्राट् की इस प्रतिक्रिया-पूर्ण नीति का विरोध करने के लिए अगुआ बने। पोलिगनक-मन्त्रिमण्डल को हरा दिया गया। सम्राट् ने चेम्बर ऑफ डेपुटीज को पहले स्थगित किया और बाद में भंग कर दिया गया। जून और जुलाई १८३० में नये चुनाव हुए, किन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि विरोध-पक्ष और अधिक बलवान हो गया।

२५ जुलाई, १८३० को चार्ल्स दशम ने चार अधिनियम (Ordinances) प्रसारित किए और इनके समर्थन में यह सफाई दी कि, "अराजकता फैलाने वाली एक प्रजातन्त्र की लहर कानून द्वारा स्थापित शासन को नीचा दिखाने का प्रयत्न कर रही है। यह संगठनों और समाचारपत्रों द्वारा चुनावों पर छा जाना चाहती है। यह सम्राट् के अधिकारों को बन्धन में डालकर संसद् को भंग करना चाहती है।"

"वह सरकार, जिसे देश की सुरक्षा का अधिकार प्राप्त न हो, अपना अस्तित्व बनाए नहीं रख सकती। यह अधिकार, जो कानूनों से भी प्राचीन है, प्राकृतिक विधान में निहित है। एक अत्यन्त कठिन परिस्थिति इस अधिकार के प्रयोग की माँग करती है कि इस विषय में कदम उठाए जायें। यदि परिस्थिति साधारण वैधानिक कार्यों से नियन्त्रण में न आए तो जो भी कार्य किया जाएगा वह इस अधिकार-पत्र की विज्ञप्ति के अनुसार होगा।" चार अधिनियमों के द्वारा चार्ल्स दशम ने समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता छीन ली, नवनिर्वाचित चेम्बर ऑफ डेपुटीज को भंग कर दिया, विधानमण्डल की अवधि सात वर्ष से पाँच वर्ष कर दी और नियन्त्रित मतदान द्वारा नये चुनावों की घोषणा की।

ये अधिनियम जनता के लिए चुनौती थे और इसे स्वीकार किया गया। पेरिस की गलियों में मोर्चाबन्दी की गई, किन्तु सरकार ने इसे नष्ट कर दिया। राष्ट्रीय रक्षक सेना और नियमित सेना जनता से मिल गई, और २९ जुलाई, १८३० को पेरिस पर जनता का राज्य स्थापित हो गया। थीयर्स, ग्युजोट और टैलीरैण्ड ने ड्यूक ऑफ ओरलीन्स लुई फिलिप को राजसिंहासन सौंपने की योजना बनाई और उसने इसे स्वीकार कर लिया। चार्ल्स दशम ने अपने पौत्र हेनरी-ड्यूक ऑफ बोरडो के लिए राज्य का परित्याग किया। किन्तु इसकी उपेक्षा कर दी गई। परिणामतः चार्ल्स दशम और उसका परिवार इंग्लैंड चला गया। इस प्रकार के वातावरण में फ्रांस में जुलाई, १८३० की क्रान्ति हुई।

जुलाई की क्रांति का महत्त्व (Importance of July Revolution)—फ्रांस के इतिहास में जुलाई-क्रान्ति का बड़ा महत्त्व है। इससे राजवंश का परिवर्तन हुआ।

बुरवोन वंश के स्थान पर ओरलीन्स वंश की स्थापना हुई। प्रजातन्त्रवादियों के विरोध पर भी राजशाही चलती रही। १८१४ के अधिकार-पत्र में कुछ थोड़े से वैधानिक परिवर्तन किये गए। आपत्तिकालीन अथवा साधारण रूप से अधिनियम प्रसारित करने का अधिकार सम्राट् से छीन लिया गया। विधानमण्डल को कानून बनाने का अधिकार दिया गया। कैथोलिक मत फ्रांस का राज्य-धर्म माना गया। समाचारपत्रों को पुनः स्वतन्त्रता प्रदान की गई। मतदान बढ़ा दिया गया। यद्यपि सार्वजनिक वयस्क मतदान की प्रतिज्ञा की गई थी किन्तु २८० व्यक्तियों का एक मत माना गया। सम्राट् को दैवी अधिकार के आधार की अपेक्षा जनता की इच्छा से शासक माना गया। उसे 'फ्रांस निवासियों का सम्राट्' कहा जाने लगा। राजशाही दल अपने कार्यक्रम के साथ बुरवोन वंश के साथ-साथ फ्रांस के रंगमंच से अदृश्य हो गया। १८३० की क्रान्ति १७८९ की पूरक थी। इससे समानता, स्वतन्त्रता और सम्पत्ति का अधिकार मान्य हुआ। १८१४ का अधिकार-पत्र सम्राट् द्वारा दिया गया 'कृपादान' नहीं, वल्कि राष्ट्र का 'अधिकार' वन गया। जो भी नागरिक अपने गणवेश के लिए व्यय कर सकता था उसे राष्ट्र-रक्षक सेना में भर्ती कर लिया गया। इस सेना का कार्य इस अधिकार-पत्र की रक्षा करना था।

लुई फिलिप (Louis Philippe) (१८३०-४८)—लुई फिलिप गरुड़चिह्न (Egalite) वाले ओरलीन्स (Orleans) वंश का पुत्र था। इस वंश ने १७८९ की क्रान्ति में वड़ा महत्त्वपूर्ण भाग लिया था। युवा अवस्था में इसने वाल्मी (Valmy) के स्थान पर फ्रांस की क्रान्तिकारी सेना के साथ युद्ध में भाग लिया था। इसके वाद उसने फ्रांस से भागकर दक्षिणी यूरोप, सिसली, संयुक्तराज्य अमेरिका, इंग्लैण्ड, स्विट्जरलैण्ड इत्यादि संसार के अनेक देशों में भ्रमण किया। स्विट्ज़रलैण्ड में उसने शिक्षक का कार्य किया। १८१४-१५ में राजशाही की स्थापना के पश्चात् वह फ्रांस लौटा और अपनी पैतृक सम्पत्ति प्राप्त करके चेम्बर ऑफ पीयर्स का सदस्य वन गया। उसने पेरिस के मध्यमवर्गीय श्रमिकों के साथ अपना सम्वन्ध रखा। यद्यपि वह धनी था फिर भी वह नम्र स्वभाव का और

लुई फिलिप

मिलनसार व्यक्ति था। परिणामतः जनता को प्रजातन्त्र और गणतन्त्र में उसकी आस्था पर विश्वास हो गया। जुलाई १८३० के विकट समय में चार्ल्स दशम को

अनुभव हुआ कि यह केवल एक 'विद्रोह' नहीं, अपितु 'क्रान्ति' है; फलतः अपने चारों आदेश रद्द कर दिये और पोलिगनक को अपदस्थ कर दिया। किन्तु बहुत देर हो चुकी थी और लुई फिलिप फ्रांस के सिंहासन पर बैठाया जा चुका था।

लुई फिलिप ने अठारह वर्ष तक राज्य किया और इस अवधि में मध्यमवर्ग बड़ा प्रसन्न रहा। उसे 'नागरिक सम्राट्' (Citizen King) कहा जाता था। वह 'राज' करता था, 'शासन' नहीं। उसने सम्राट् पद के प्राचीन चिह्नों को धारण करना छोड़ दिया था। 'मुकुट और राजदण्ड' उठाकर रख दिए गए थे। वह सफेद टोपी और हरी छतरी का प्रयोग करता था। उसने अपने बच्चों को साधारण विद्यालयों में भेजा तथा वह स्वयं जनसाधारण की तरह बाजार में सामान खरीदने जाया करता था। 'उसने फ्रांस और नवारें का सम्राट्' की उपाधि छोड़कर 'फ्रांसीसियों का सम्राट्' (King of the French) की उपाधि धारण की। पुष्टि-वाक्य 'परमेश्वर की कृपा से' (By the Grace of God) के साथ 'और राष्ट्र की इच्छा से' (And by the Will of the Nation) वाक्य और जोड़ दिया गया। तिरंगे झण्डे को राष्ट्र-ध्वज माना गया। उपाधिधारी जागीरदारों को पदों से हटाकर उनका स्थान साधारण योग्य प्रजाजनों को दिया गया और यह घोषित किया गया कि यह शासन प्रतिनिधि और संसदीय शासन है।

डी टोक्युविले (De Tocqueville) के मतानुसार "लुई फिलिप में वे सब गुण और अवगुण थे जो विशेषतः समाज के मध्यम वर्ग में हुआ करते हैं। उसका जीवन नियमित था और वह अपने सम्पर्क में रहने वालों से भी ऐसा ही चाहता था। वह चरित्र से संयमी और स्वभाव से सादा था। वह नियम का कठोर समर्थक, सब प्रकार के सीमोल्लंघन और अति का शत्रु तथा महत्त्वाकांक्षाओं से मुक्त गम्भीर स्वभाव का स्वामी था। वह भावुकता से दूर मानवता का प्रतिपादक, लोभी तथा नम्र था। उसे किसी भी व्यसन से लगाव नहीं था और न ही उसमें उसे नष्ट करने वाली कोई दुर्बलता ही थी। उसमें स्पष्ट रूप से प्रतीत होने वाली कोई बुराई भी नहीं थी; हाँ, उसमें एक राजोचित गुण था, अर्थात् साहस। वह अत्यन्त मिष्ट-भाषी था, किन्तु उसकी नम्रता में किसी प्रकार की विशेषता या महानता नहीं थी। उसकी नम्रता एक सम्राट् की महानता न होकर एक व्यापारी की नम्रता थी। उसने शायद ही कभी साहित्य या कला की प्रशंसा की हो। हाँ, उसे उद्योग से अवश्य प्रेम था। उसकी स्मरण-शक्ति अगाध थी और छोटी-से-छोटी बात भी उसे भूलती नहीं थी। उसकी बातचीत बड़ी लम्बी, वर्णनपूर्ण, मौलिक, साधारण, मनोरंजन-पूर्ण, छोटी-छोटी बातों से भरी हुई, तीखी और सारगर्भित हुआ करती थी। वह बुद्धिमान्, तीव्र बुद्धि, दूसरों की बात मानने वाला था। जीवन में उसका दृष्टिकाण केवल लाभदायक बातों के मानने के लिए ही रहा, इसलिए गुणों में उसे अरुचि थी। वह अठारहवीं शताब्दी की विचारधारा के अनुकूल धर्म में आस्था नहीं रखता था। वह ठीक उन्नीसवीं शताब्दी की तरह राजनीति के प्रति आस्थाहीन या उसका स्वयं में विश्वास न होने के कारण वह किसी भी अन्य व्यक्ति का भी विश्वास नहीं करता था।

यह बात उल्लेखनीय है कि लुई फिलिप के राज्य के आरम्भ में लैफाईट (Lafyette) और केसिमिर पेरियर (Casimir-Perrier) जैसे पूंजीपति और आर्थिक सुधारवादी सत्तारूढ़ थे, इसलिए उसकी सरकार का उदार और बुर्जुआ होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। इस काल की फ्रांस की सरकार, इंग्लैंड के प्रथम सुधार-कानून १८३२ के पश्चात् बनी सरकार का प्रतिरूप थी। केसिमिर पेरियर ने अपनी नीति की 'बिल्कुल संतुलित' (just mean) कहकर परिभाषा की है। वह 'क्रमश: प्रगति' का समर्थक था। उसका ध्येय देश के विदेशी व्यापार की उन्नति करना तथा अन्य देशों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना था। उसकी मृत्यु के पश्चात् समय-समय पर गुईज़ोट और थीयर्स ने शासन की बागडोर सँभाली। दोनों ही महत्त्वाकांक्षी, तीव्र और महान् लेखक थे। गुईज़ोट १८३२ से १८३६ तक शिक्षा-मन्त्री और १८४० से १८४८ तक मुख्य मन्त्री रहा। वह 'किसी भी मूल्य पर शान्ति' की नीति का समर्थक था। वह शान्ति बनाये रखने के लिए कुछ भी कर सकता था। वह अत्यन्त भ्रष्ट व्यक्ति था और भ्रष्टाचार के सहारे ही वह ८ वर्ष तक विधान-मण्डल पर छाया रहा। थीयर्स एक स्वतन्त्र विचारक और अवसरवादी व्यक्ति था। उसे विवाह में बहुत धन मिला था। राजनीति में उसे टैलिरैण्ड ने शिक्षा दी थी। यद्यपि उसने जनसाधारण से ही उठकर इतनी उन्नति प्राप्त की थी, तो भी वह इन पर विश्वास नहीं करता था। वह अठारहवीं शताब्दी की सुधारवादी विचारधारा को मानने वाला था और लुई फिलिप के स्वेच्छाचारी शासन का विरोधी था। वह एक महान् लेखक था तथा चार्ल्स दशम को हटाने वाले व्यक्तियों में से वह भी एक था। वह शक्तिशाली विदेश-नीति का समर्थक और १८३२ से १८३८ तक मन्त्रिमण्डल के मन्त्रियों में मुख्य रहा और १८४० में प्रधान मन्त्री बना। उसे इस-लिए हटा दिया गया कि वह इंग्लैंड से युद्ध होने के खतरे पर भी मेहमत अली की सहायता करना चाहता था।

लुई फिलिप का शासन, कार्य-प्रणाली, ध्येय और कार्यकर्ताओं में मध्यमवर्गीय (Bourgeois) था। उद्योगों को प्रोत्साहन दिया गया। इंग्लैण्ड से मशीनें मँगाकर देश में उद्योगों की स्थापना की गई। देश-भर में रेलों का जाल बिछाने की योजना बनाई गई और उनमें से कुछ बना भी दी गईं। सार्वजनिक हित के कार्यों को ठेके पर व्यापारियों को दिया गया। उसने कोई भी ऐसा कार्य नहीं किया जिसे समाज-प्रणाली का कार्य कहा जा सके। वह जनता के नेतृत्व और व्यक्तिगत अल्पव्यय का समर्थक था। एक अच्छे मध्यवर्गीय गृहस्थ की तरह सम्राट् ने अपने परिवार की सारी आय उद्योग-धन्धों में लगा दी।

देश में स्वतन्त्र व्यापार की स्थापना के लिए आन्दोलन हुआ। किन्तु यह सोच कर कि फ्रांस के नवनिर्मित उद्योग इंग्लैंड के उद्योग से मुकाबला नहीं कर सकेंगे, उद्योगों की रक्षा की नीति अपनाई गई। इंग्लैंड की तरह फ्रांस में कॉर्न लॉ (Corn Law) जैसा कोई कानून नहीं बना। १८४६ में बास्टिया (Bastiat) नाम के एक अर्थशास्त्री और व्यापारी ने फ्रांस में एक 'स्वतन्त्र व्यापार-संघ' (Free Trade Association) की स्थापना की।

देश में औद्योगिक क्रान्ति के कारण श्रमिकों की अवस्था बड़ी असन्तोषजनक हो गई, किन्तु नगण्य वैधानिक नियमों के अतिरिक्त श्रमिकों के हित के लिए कोई कानून नहीं बनाया गया। १८४१ में एक 'उद्योग कानून' (Factory Act) बनाया गया जिसके अनुसार आठ वर्ष से कम आयु के बालकों से मजदूरी कराना बन्द कर दिया गया, सोलह वर्ष से कम आयु के बालकों के लिए कार्य-दिवस बारह घंटे का रखा गया तथा बारह वर्ष से नीचे की आयु तक के बालकों के लिए शिक्षा की व्यवस्था की गई। इस कानून का कोई प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि इसे लागू करने के लिए कोई व्यवस्था नहीं की गई।

गुईज़ोट (Guizot) के निर्देशन में १८३३ में शिक्षा सम्बन्धी एक कानून बनाया गया। प्रारम्भिक शिक्षा चर्च के लिए छोड़ दी गई। माध्यमिक और उच्च शिक्षा पर सरकारी नियन्त्रण कठोर कर दिया गया। सारी शिक्षा-संस्थाओं के लिए आध्यात्मिक और सामाजिक कर्त्तव्यों की शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। यद्यपि विद्यालयों की संख्या में वृद्धि कर दी गई तो भी विद्यार्थियों की उपस्थिति अनिवार्य नहीं थी।

धर्म के विषय में शासन की निष्पक्ष नीति थी। पोप के साथ हुई कोनकार्डेट-व्यवस्था प्रचलित रही और सरकार विशप इत्यादि नियुक्त करके उनको वेतन देती रही। सरकार सब धर्मों को समान समझती थी और १८३१ में यहूदी धर्म को ईसाई धर्म के समान मान्यता दी गई। जिस प्रकार कैथोलिक और प्रोटैस्टैन्ट पादरियों को वेतन दिये जाते थे, उसी प्रकार यहूदी रब्बीयों (Rabbis) को भी वेतन मिलने लगा था।

यह काल फ्रांस में साहित्यिक दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण काल रहा है। १८३० में विक्टर ह्यूगो का 'हिरनानी' (Hernani) नाटक प्रस्तुत हुआ। शेटोब्रियांड, मदाम डी स्टील ने एक नई प्रेरणा दी जिसको ला मार्टिनी, विक्टर ह्यूगो, अल्फ्रेड डी मुस्सेट ने इसे कविता में जीवन-दान दिया। बल्ज़ाक, जार्ज सेण्ड और ह्यूमस ने इसे कला में परिणत कर दिया। शास्त्रीय और नवीन कला में संघर्ष चल रहा था और इस प्रकार हमें गेरीकोल्ट और डिलाक्रोइक्स के प्राकृतिक और सुन्दर चित्र देखने को मिलते हैं। '१८३० की दार्शनिक विचारधारा' के (School of 1830) कारोट, ह्यूपरे और थ्योडोर रूसो अग्रणी थे। इस काल ने मूर्ति-निर्माण कला के क्षेत्र में रयूडे, आर्क-डी-ले-इटोले की महान् कला के प्रदर्शन देखे। शेटोब्रियाड की प्रेरणा से इस काल में महान् ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना हुई। ऐतिहासिक ग्रन्थों में थियरे (Thierry), मिचलेट (Michelet), गुइज़ोट, मिगनेट और थीयर्स के लेख उल्लेखनीय हैं। इस राज्य-काल ने साहित्य और कला के अनेक महान् फ्रांसीसी निर्माताओं के दर्शन किए।

विदेश-नीति (Foreign Policy)—वस्तुतः लुई फिलिप विदेशी मामलों में शान्ति की नीति का अनुसरण करता था। किन्तु वह अपने देशवासियों की यश की इच्छा (La Glorie) की पूर्णतः उपेक्षा नहीं कर पाया। यद्यपि वह पामर्स्टन से अधिक अच्छे सम्बन्ध नहीं रख पाया, तथापि सम्राज्ञी विक्टोरिया से उसके अच्छे

सम्बन्ध थे। इस प्रकार की नीति का अनुसरण करने का प्रयत्न किया गया जो इंग्लैण्ड की नीति के अनकूल हो। आरम्भ में जब बेल्जियम ने हालैण्ड के विरुद्ध विद्रोह किया तो लुई फिलिप की इच्छा हस्तक्षेप करने की थी, किन्तु बाद में वह इंग्लैण्ड की नीति अपनाने के लिए सहमत हो गया कि उन्हें स्वतन्त्रता प्राप्त करके अपना राजा चुनने दिया जाय। उसने यूनान के नये राज्य को एक उदार राजा पाने में सहायता दी। वह बलकान में रूस का प्रभाव बढ़ने नहीं देना चाहता था।

थीयर्स इंग्लैण्ड से स्वतन्त्र शक्तिशाली विदेश-नीति का समर्थक था। १८३६ में वह सम्राज्ञी इसावेला के विरुद्ध विद्रोह को दबाने के लिए फ्रांस की सेनाएँ स्पेन भेजने का समर्थक था। किन्तु सम्राट् ने उसे अपदस्थ कर दिया। १८४० में इंग्लैण्ड और फ्रांस में युद्ध की सम्भावना थी। इसका कारण यह था कि थीयर्स उस समय प्रधान मन्त्री था और वह मिस्र के पाशा मेहमतअली की सहायता करने के लिए दृढ़-संकल्प था। इंग्लैण्ड का विदेश-मन्त्री पामर्स्टन मेहमतअली की बढ़ती हुई शक्ति को कुचलकर उसके विरुद्ध तुर्की की सहायता करना चाहता था। ब्रिटेन को आस्ट्रिया और रूस का समर्थन प्राप्त था। यदि लुई फिलिप ने थीयर्स को मनमानी करने दी होती तो इंग्लैण्ड और फ्रांस में युद्ध अवश्य ही होता। उस समय थीयस को पदच्युत कर दिया गया और युद्ध टल गया। गुईज़ोट को प्रधान मन्त्री नियुक्त किया गया जो स्वयं शान्ति में विश्वास रखता था। परिणामतः मेहमतअली को अदन और सीरिया छोड़ने पड़े और उसे मिस्र का वंश-परम्परागत राज्यपाल मान लिया गया।

चार्ल्स दशम के काल में फ्रांस की सेनाओं ने अल्जियर्स नगर पर अधिकार करके उसके शासक को देश-निकाला दे दिया था। बहुत वर्षों तक लुई फिजिप अल्जीरिया के विषय में नीति का निर्णय नहीं कर पाया। सरकार के सम्मुख तीन मार्ग थे—सारे देश पर अधिकार कर लिया जाय, देश के थोड़े से भाग पर अधिकार किया जाय या इस देश को बिलकुल छोड़ ही दिया जाय। उदार दल वाले इससे अपनी सेनाएँ बुला लेने के पक्ष में थे। १८३४ से १८३९ तक फ्रांस की सरकार ने अल्जियर्स और कुछ समुद्री तट के छोटे कस्बों पर अधिकार किये थे। सम्राट् ने इस देश में धीरे-धीरे अन्दर घुसने की आज्ञा दे दी। १८३९ में अबेद-अल-कादिर द्वारा फ्रांसीसियों के विरुद्ध जिहाद की घोषणा करने पर नक्शा बदल गया। सम्राट् को सेनापति ब्युग्योड (Bugeaud) के नेतृत्व में अबेद-अल-कादिर का दमन करने और सारे देश पर अधिकार करने के लिए एक लाख सेना भेजने के लिए विवश होना पड़ा। लड़ाई बहुत लम्बी चली और बड़ी हानि हुई। १८४७ में अबेद-अल-कादिर पकड़ लिया गया और अल्जीरिया में शान्ति हुई। लगभग ४० हजार फ्रांसीसी इस उपनिवेश में बसा दिये गए। यह फ्रांस के औपनिवेशिक साम्राज्य का आरम्भ था।

लुई फिलिप अपने परिवार के हित के लिए बड़ा जागरूक था। उसकी एक पुत्री का विवाह बेल्जियम के राजा लियोपोल्ड प्रथम के साथ और दूसरी का वुरटेम्बर्ग के राजा से हुआ। १८४६ में उसने अपने एक पुत्र का विवाह स्पेन की सम्राज्ञी इसाबेला द्वितीय की बहन से किया।

क्रान्ति की ओर (Towards Revolution)—१८४६ के आरम्भ होने से पहले लुई फिलिप की मध्यमवर्गीय राजशाही से देश के सारे वर्ग बड़े असन्तुष्ट हो गये। 'न्याय युक्ति' के समर्थक (Legitimist) लुई फिलिप को राज्य के अधिकारी नहीं मानते थे, क्योंकि उनके विचार से सिंहासन पर चार्ल्स दशम के पौत्र काउण्ट ऑफ चेम्बोर्ड का अधिकार था। वे उसकी सरकार को क्रान्तिकारी और बुर्जुआ मानते थे। गणतन्त्र के समर्थक राजशाही को समाप्त करके देश में गणतन्त्रीय शासन की स्थापना करना चाहते थे। वे सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के समर्थक थे और लुई फिलिप की बुर्जुआ राजशाही से नितान्त असन्तुष्ट थे।

समाजवादी भी लुई फिलिप की बुर्जुआ सरकार की निन्दा करते थे। मज़दूरों की हालत बड़ी असंतोषजनक थी और सरकार ने उनके हित के लिए कुछ भी नहीं किया था। वास्तव में सरकार ने मज़दूरों की मीटिंगों को तोड़ने के लिए शक्ति का प्रयोग किया था और श्रमिक संगठनों को रोकने के लिए कानून भी बनाये थे। फ्रांस के प्रमुख समाजवादी नेता सेण्ट साइमन, फोरियर, काबेट लुई, ब्लान्क और प्राउढन थे। सेण्ट साइमन वैज्ञानिकों और इंजीनियरों द्वारा संचालित एक सहकारी सरकार का समर्थक था। उसके शिष्यों ने पेरिस के पास समाजवादी सेवामत की स्थापना की, जिसने १८३० में सरकार को पर्याप्त रूप से परेशान किया। फोरियर देश में सहकारी बस्तियाँ बसाने का समर्थक था। १८३० से १८४० तक फ्रांस में इसके कुछ अनुयायी थे। लुई ब्लान्क एक लोकप्रिय क्रान्तिकारी था, जिसकी माँग थी कि सरकार को सब मज़दूरों को जीवनयापन के लिए उपयुक्त वेतन देना चाहिए। उसकेश ब्दों में, "स्वस्थ शरीर लोगों के लिए सरकार को काम; वृद्धों और अशक्तों के लिए सहायता और सुरक्षा देनी चाहिए। यह सब बिना प्रजातन्त्रीय शक्ति के असम्भव है। प्रजातन्त्रीय शक्ति वह शक्ति है, जिसका सिद्धान्त जनता की सर्वाधिकार-सम्पन्नता है, जिसका उद्गम वयस्क मताधिकार में है और जिसका चरम ध्येय स्वतन्त्रता, समानता और मैत्री की प्राप्ति है।" प्राउढन एक उग्र क्रान्तिकारी था। वह व्यक्तिगत सम्पत्ति और अधिकारपूर्ण शासन के विनाश तथा स्वेच्छा से सहयोग के आधार पर निर्मित नवीन व्यवस्था का प्रतिपादक था। प्राउढन के अनुयायी थोड़े थे, किन्तु वे लोग किसी निर्माण की अपेक्षा विनाश के लिए अधिक उत्सुक थे। समाजवादी प्रचार से भी जनता में असंतोष फैला।

फ्रांस के कैथोलिक गुइज़ोट की भ्रष्टाचार-पूर्ण नीति से प्रसन्न नहीं थे। वे धर्म के मामले में सरकार की उदार नीति को भी नहीं चाहते थे। वे जुलाई की राजशाही के अप्रजातान्त्रिक ढंग की निन्दा करते थे और श्रमजीवियों के हित के लिए कानून बनाने की माँग करते थे। देशभक्त, लुई फिलिप की दब्बू विदेश-नीति की निन्दा करते थे। वे अपनी विदेश-नीति को इंग्लैण्ड की नीति की अनुचरी नहीं देखना चाहते थे। वे राष्ट्रीय सम्मान और यश के समर्थक थे। उन्होंने थीयर्स को अपदस्थ करने पर सम्राट् की निन्दा की। थीयर्स गुईज़ोट के विरुद्ध देशभक्तों का अग्रणी बना।

लुई फिलिप के राज्यकाल में नेपोलियन की विजयों की बड़ी प्रसिद्धि हुई।

नेपोलियन की कमियों को भूलकर उसकी सफलताओं का बड़ा यशोगान हुआ। उसे एक महान् नेता तथा समाज का पुनःसंस्थापक कहा जाने लगा। लुई फिलिप ने नेपोलियन की सफलताओं को चिरस्मरणीय बनाने के लिए 'नेपोलियन विजय-स्तम्भ' का निर्माण कराया। उसने नेपोलियन द्वारा जीते गए युद्धों के नाम पर सड़कों के नाम रखे। उसने ब्रिटिश सरकार को राजी करके सेण्ट हेलेना द्वीप से नेपोलियन के अवशेषों को लाकर फ्रांस में बड़ी धूमधाम से दफनाया। लुई बोनापार्ट, जो नेपोलियन का भतीजा था, के लेखों से भी नेपोलियन की यशोगाथा का और भी प्रचार हुआ। नेपोलियन के यशोगान का परिणाम यह हुआ कि जनता ने नेपोलियन की सफलताओं की तुलना में लुई फिलिप की सरकार की सफलताएँ नगण्य पाईं।

सुधारवादियों ने भी लुई फिलिप की सरकार की बड़ी निन्दा की। इसका कारण यह था कि इन लोगों की असाधारण माँगें, कि मताधिकार का क्षेत्र बढ़ा दिया जाय और भ्रष्टाचार को समाप्त किया जाय, इत्यादि पर भी गुइज़ोट और लुई फिलिप ने कोई ध्यान नहीं दिया और 'अकर्मण्यता' की नीति पर अड़े रहे। ये शक्ति-प्रयोग समाचारपत्रों पर प्रतिबन्ध तथा श्रमिकों के सम्मेलनों पर रोक लगाने की नीति का व्यवहार करते रहे।

१८४७ में उदार सुधारवादियों ने जलसे करने शुरू कर दिये जिनमें सुधारों पर वाद-विवाद होता तथा इस प्रकार उन्होंने जनमत को अपनी ओर आकर्षित किया। कई अवसरों पर 'श्रमिकों की अवस्था में सुधार' के नाम पर शराब के प्यालों पर शपथें उठाई जाती थीं। एक अवसर पर ले मार्टिने ने राजशाही के अन्त की भविष्यवाणी की। २२ फरवरी, १८४८ को सुधारवादियों ने एक 'विशिष्ट भोज' (Monster Banquet) का आयोजन किया किन्तु सरकार ने इस पर रोक लगा दी। इससे परिस्थिति और भी जटिल हो गई। नियत दिवस पर श्रमिकों और विद्यार्थियों ने इकट्ठे होकर सुधारों की माँग के लिए नारे लगाये। मारसिलेस का क्रान्ति-गीत गाया गया और सड़कों पर जगह-जगह आग (bonfire) जलाई गई। २३ फरवरी, १८४८ को राष्ट्रीय रक्षक सेना (National Guards) को व्यवस्था स्थापित करने का आदेश मिला, किन्तु सरकार की आज्ञा पालन करने की अपेक्षा वे जनता से जा मिले। जनता ने 'गुईज़ोट का नाश हो' के नारे लगाये और सम्राट् ने गुईज़ोट से त्याग-पत्र देने को कहा। परिस्थिति बिगड़ती नहीं, यदि गुईज़ोट के निवास-स्थान की रक्षा करने वाले सैनिकों ने जनता की भीड़ पर गोली न चलाई होती। इस गोली चलाने से २३ प्रदर्शनकारी मारे गये और ३० घायल हुए। प्रदर्शनकारियों ने मृतकों को गाड़ी पर लादकर मशालें जलाकर सारे पेरिस नगर में घुमाया और इस कृत्य का परिणाम क्रान्ति हुआ। सड़कों पर मोर्चाबन्दी कर दी गई और 'लुई फिलिप हमारी हत्या उसी तरह कर रहा है जिस तरह चार्ल्स दशम ने की थी, इस लिए उसे भी चार्ल्स की राह जाना चाहिए,' इस प्रकार के सूचना-पत्र सारे पेरिस भर में लगाये गये। लुई फिलिप ने स्थिति सँभालने का प्रयत्न किया, किन्तु असफल रहा। अन्ततः उसने अपने पौत्र काउन्ट ऑफ़ पेरिस के लिए राज्य-त्याग करके 'मिस्टर स्मिथ' के रूप में इंग्लैण्ड को प्रस्थान किया।

१८४८ की क्रान्ति का वर्णन किसी ने इस प्रकार किया है, "मैं अभी पूरे चार वर्ष का भी नहीं हुआ था कि एक प्रातः मेरी माता ने मुझे बिस्तरे पर से गोदी में उठाया और मेरे पिता ने, जिसने 'नेशनल गार्ड' का गणवेश पहिन रखा था, बड़ी भावुकता से मुझे प्यार किया। गली से रणभेरी बजी और सड़क पर घोड़ों की टापें गूँज उठीं। कभी-कभी हमें चिल्लाने की आवाज़ और दूर गोली चलाने की धमक सुनाई पड़ जाती थी। मेरी माता ने खिड़की से कपड़े का पर्दा उठाकर बाहर झाँका और फूट-फूटकर रोने लगी। यह क्रान्ति थी।" (Anatole France, Le Petit Pierre)

यह बात ध्यान रखने योग्य है कि लुई फिलिप का अंत इसलिए हुआ कि वह देश के सब वर्गों का प्रिय नहीं हो पाया था। वह अल्पसंख्यक मध्यमवर्ग के समर्थन पर निर्भर रहा, जिसका न कोई चरित्र ही था और न ही सरकार का नियंत्रण सँभालने का ऐतिहासिक आधार; पर ये लोग समान्तवर्ग तथा साधारण जनता दोनों से घृणा करते थे। यदि लुई फिलिप ने सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में सुधार के प्रयत्न किये होते तो वह जनता का समर्थन प्राप्त करने में सफल हुआ होता, किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। वह फ्रांस की जनता का प्रेम शक्तिशाली विदेश-नीति का अनुसरण करके प्राप्त कर सकता था, किन्तु उसने यह भी नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि जुलाई की राजशाही का पतन हो गया।

१८३० और १८४८ की क्रान्तियों की तुलना

१८३० की क्रान्ति मूलतः मध्यमवर्ग की क्रान्ति थी। बुर्जुआ-वर्ग पर चार्ल्स दशम की नीति से बड़ा आघात पहुँचा था और इस कारण जुलाई-क्रान्ति हुई। १८२५ में 'क्षतिपूर्ति विधेयक' लागू हुआ, इसके अनुसार भगोड़े सामन्तों की सम्पत्ति जो फ्रांसीसी क्रान्ति के समय जब्त कर ली गई थी, क्षतिपूर्ति करने की व्यवस्था की गई। यह क्षतिपूर्ति राष्ट्रीय ऋण के सूद की दर ५ प्रतिशत से घटाकर ४ प्रतिशत करके की गई। इससे मध्यमवर्ग को बड़ी हानि हुई। दूसरा कारण था 'अपमान-विधेयक' (Sacribge Act) जिसके अनुसार आधुनिक काल में निर्दयता से दण्ड देने का विधान था। चार्ल्स दशम के चरित्र ने भी मध्यमवर्ग को अपने विरुद्ध कर लिया। प्रो० हेयस के अनुसार, "चार्ल्स जिन सिद्धान्तों को मानता और प्रतिपादित करता था, वे थे: सिंहासन और पूजा की वेदी की एकता; प्राचीन युग के राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और बौद्धिक सिद्धान्त की स्थापना; और क्रान्तिकारी सिद्धान्तों से घृणा करना।" चार्ल्स स्वयं कहा करता था कि समय मुझे और लफायट को १७८९ से बदल नहीं पाया। इस प्रकार के विचारों वाला व्यक्ति, समानता, स्वतन्त्रता और मित्रता के सिद्धान्तों से प्रभावित फ्रांस के निवासियों पर राज्य करने के उपयुक्त नहीं था। उसकी व्यवस्था का घोर विरोध अवश्यम्भावी था। जनता जेसुइटों को देश की शिक्षा का नियन्त्रण देने को उद्यत नहीं थी। वे अपनी सन्तानों को धर्म-निरपेक्ष शिक्षा दिलाना चाहते थे। समाचारपत्रों पर प्रतिबन्ध लग जाने से भी बड़ा असन्तोष फैला। सम्राट् की अनुमति के बिना कुछ भी प्रकाशित नहीं हो सकता था। चार्ल्स दशम की सरकार ने मताधिकार में सम्पत्ति की योग्यता का स्तर ऊँचा कर

दिया जिससे मध्यम श्रेणी के लोगों का मताधिकार बहुत कम हो गया। गुप्त मतदान-प्रणाली समाप्त कर दी गई और जागीरदारों को दुगने मतदान का अधिकार दिया गया। १८२७ में राष्ट्रीय रक्षक सेना को भंग कर दिया गया। संक्षेप में चार्ल्स की अनेक भूलों और त्रुटियों के कारण मध्यमवर्ग की जनता का उसके प्रति विरोध बढ़ता गया और अन्त में १८३० में उसकी सरकार का अन्त हो गया।

१८३० की क्रान्ति मूलत: एक मध्यवर्गीय क्रान्ति थी, किन्तु १८४८ की क्रान्ति मूलत: एक समाजवादी क्रान्ति थी। लुई फिलिप की सरकार के पतन में समाजवादियों का बड़ा हाथ था। फ्रांस में औद्योगिक प्रगति के कारण देश में एक जागरूक श्रमिक वर्ग का जन्म हुआ। क्योंकि सरकार ने श्रमिकों की अवस्था में सुधार करने के लिए कुछ नहीं किया, अत: समाजवादी नेताओं ने परिस्थिति से लाभ उठाया। सेण्ट साइमन, फोरियर, प्राउढन और लुई ब्लेन की विचारधारा ने श्रमिकों में हलचल पैदा कर दी और सामाजिक और राजनीतिक सुधारों की माँग होने लगी। श्रमिक चिल्लाते थे, 'हमें रोटी दो या गोली दो!' लुई फिलिप की सरकार ने जनता द्वारा आन्दोलन करने पर भी सुधार की ओर ध्यान नहीं दिया। जनता में असंतोष बढ़ता गया और जिसका परिणाम फरवरी-क्रान्ति हुई।

इन दो क्रान्तियों के तात्कालिक कारण भिन्न-भिन्न हैं। १८३० में इसके तात्कालिक कारण चार्ल्स दशम के चार अपमानजनक विधेयक थे, किन्तु १८४८ में तात्कालिक कारण २२ फरवरी के 'महान् उत्सव' पर रोक लगाना और प्रदर्शन-कारियों पर गोली चलाना था।

चार्ल्स दशम का समझौता न करने वाला व्यक्तित्व जुलाई-क्रान्ति का कारण था। लुई फिलिप की अलोकप्रियता उसके पतन का कारण थी। देश भर में उसका एक भी समर्थक नहीं था। थीयर्स (Thiers) को इसके पद से हटाने और १८४० में १८४८ तक गुइज़ोट के घूसखोर शासन से जनता के सारे वर्ग उसके विरुद्ध हो गये थे। प्रो० हर्नशॉ के मतानुसार "उसे कोई भी नहीं चाहता था, केवल कुछ ही लोग उसका आदर करते थे और बहुत ही थोड़े मध्यमवर्गीय लोग उसके समर्थक रहे।"

दोनों ही शासनों की अवधि में फ्रांस की जनता सरकार से शक्तिशाली विदेश-नीति अपनाने की माँग करती रही, किन्तु सरकारों ने जनता की माँग की उपेक्षा की, इस कारण दोनों का पतन हुआ। चार्ल्स दशम के समय १८३० में अल्जियर्स जीत लिया गया था किन्तु यह सूचना उपयुक्त समय पर नहीं पहुँची जिससे उसकी रक्षा हो पाती। लुई फिलिप की 'अकर्मण्य नीति' से फ्रांस की जनता तंग आ गई थी। उसके अपने शब्दों में, "मैं युद्ध करने की अपेक्षा बारह संसदों का दमन करने के लिए तैयार हूँ।" वह विदेश-नीति का देश के हित के लिए संचालन करने की अपेक्षा अपने परिवार के हित में संचालन करता था। उसने पोलैण्ड और उत्तरी इटली के लोगों की सहायता नहीं की। जब थीयर्स तुर्की के सुलतान मेहमत अली की सहायता करना चाहता था तब लुई फिलिप ने उसे पदच्युत करके पामर्स्टन से समझौता कर लिया। गुइज़ोट निरन्तर शान्ति की नीति का अनुसरण करता

रहा। उसका आदर्श था, "सब कालों और स्थानों में शान्ति की सुरक्षा करना।" ले मार्टिने ने इसका उत्तर दिया कि "इस नीति को केवल एक पाषाण-स्तम्भ चला सकता है।" १८४७ में फ्रांसीसी संसद् के एक सदस्य ने पूछा, "इन लोगों ने गत वर्षों में क्या किया? कुछ नहीं, कुछ नहीं।"

यह बात उल्लेखनीय है कि जहाँ जुलाई-क्रान्ति चार्ल्स दशम की कैथोलिक-समर्थक नीति का परिणाम थी, वहाँ फरवरी-क्रान्ति गुइज़ोट की धर्म-विरोधी नीति का परिणाम थी। प्रधान मन्त्री पादरियों के विरोधी विश्वविद्यालयों को सहायता देता था। वह धार्मिक सहिष्णुता का समर्थक था जिसके कारण कैथोलिक बड़े रुष्ट थे।

जुलाई क्रान्ति ने देश के सिंहासन पर एक अन्य बुर्जुआ सम्राट को बैठाया, फरवरी क्रान्ति ने प्रजातन्त्र की स्थापना की। १८३० में सार्वजनिक मताधिकार का वचन दिया गया था, किन्तु १८४८ में यह अधिकार वास्तव में जनता को प्राप्त हुआ। १८३० की क्रान्ति ने सामाजिक-व्यवस्था में उथल-पुथल नहीं की तथा जुलाई क्रान्ति अत्यन्त अल्पजीवी थी। लुई फिलिप के राज्यासीन होते ही व्यवस्था स्थापित हो गई थी। किन्तु फरवरी क्रान्ति में फ्रांस को जून, १८४८ में घोर रक्तपात देखना पड़ा। १८३० में क्रांति ने 'दैवी अधिकारपूर्ण राजशाही' को उखाड़ा किन्तु १८४८ की क्रान्ति ने मध्यमवर्ग की सीमित राजशाही को उखाड़कर एक प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली की स्थापना की, जो चार वर्ष तक चली।

प्रो० हेयस के शब्दों में, "फरवरी, १८४८ की क्रान्ति आधारभूत रूप से जुलाई, १८३० की क्रान्ति से भिन्न नहीं थी। दोनों ही क्रान्तियाँ पेरिस नगर की घटनाएँ थीं। दोनों ही मूलतः राजनीतिक तथा केवल सूक्ष्म रूप से सामाजिक थीं। दोनों ही प्राथमिक रूप से सुधारवादी थीं। यह सत्य है कि एक ने सीमित मताधिकार सहित राजशाही की स्थापना की तो दूसरी ने प्रजातन्त्र की स्थापना करके वयस्क मताधिकार प्रणाली प्रचलित की। दोनों ने ही जनता की सर्वाधिकार-सम्पन्नता के सिद्धान्त को मान्यता दी, दोनों ने ही 'तिरंगे' ध्वज को तथा मारसिलेस के क्रान्ति-गान को अपनाया। दोनों में ही सम्पत्ति के स्वामियों की विजय हुई तथा दोनों ने ही उन नीतियों का अनुसरण किया जिनमें सम्पत्ति के स्वामियों की इच्छाओं का प्रतिविम्ब झलकता था।"

सामयिक सरकार (Provisional Government)—लुई फिलिप के पतन के पश्चात् २६ फरवरी, १८४८ को द्वितीय गणतंत्र की घोषणा हुई। लिमार्टिने के मतानुसार, "राजशाही की समाप्ति और गणतन्त्र की स्थापना हुई।" पुनश्च, "सामयिक सरकार ने काम देकर श्रमजीवियों का अस्तित्व सुरक्षित किया।" सरकार ने प्रत्येक नागरिक को काम देने का दावा किया। कामचलाऊ सरकार में लिमार्टिने एक उदार कैथोलिक, लिटरु-रोलन एक जेकोबिन प्रजातंत्रवादी, लुई ब्लांक समाजवादी नेता, तथा एल्बर्ट एक श्रमजीवी थे।

लिमार्टिने के विचार से गणतंत्र एक लक्ष्य था किन्तु लुई ब्लांक इसे लक्ष्य का

साधन मानता था। ब्लांक द्वारा तैयार की गई एक आज्ञप्ति में व्यवस्था थी कि "सामयिक सरकार अपने श्रमजीवियों को काम देकर उनका अस्तित्व बनाए रखने में संलग्न होगी। सरकार प्रत्येक नागरिक को काम देने का दावा करती है।" २७ फरवरी, १८४८ की एक आज्ञप्ति में कहा गया था, "सामयिक सरकार राष्ट्रीय कारखानों की स्थापना की घोषणा करती है। सार्वजनिक निर्माण विभाग के मन्त्री (Minister for Public Works) को इस आज्ञप्ति की पूर्ति का कार्यभार सौंपा गया है।"

लुई ब्लांक को एक आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। इस आयोग का कार्य था कि यह श्रमजीवियों के दावों पर विचार करे तथा उनके हितों की रक्षा करे। उसका कार्यालय लक्समवर्ग महल में था। लक्समवर्ग में लुई ब्लांक कामः चलाऊ सरकार का गम्भीर प्रतिद्वन्द्वी बन गया और सरकार को अपदस्थ करके 'जन-सुरक्षा-समिति' की स्थापना के कई प्रयास किये गए। लक्समवर्ग-आयोग की चार माँगें थीं अर्थात् दिन में दस घण्टे की कार्य अवधि, काम के बँटवारे पर प्रतिबन्ध, काम को तोड़ने की प्रथा की समाप्ति और उचित निम्नतम वेतन। इस आयोग ने अनेक योजनाओं पर विचार किया किन्तु लक्समवर्ग-आयोग को एक ही बात का श्रेय दिया जा सकता है कि इससे सहकारी उत्पादन के विचार को प्रोत्साहन मिला। कहा जाता है कि दर्जियों, घोड़ों के साज बनाने वालों, जुलाहों और अन्य श्रमजीवियों की लगभग एक सौ सहकारी समितियों की स्थापना की गई।

पेरिस की भीड़ की हिंसावृत्ति से भी बड़ा भारी खतरा था। १७ मार्च, १६ अप्रैल और १५ मई को इन तीन अवसरों पर आंतरिक मतभेद से पीड़ित सामयिक सरकार को अपदस्थ करने के प्रयत्न किये गए। इसके एक गुट का नेता लिमार्टिने, और दूसरे का लुई ब्लांक और एल्बर्ट थे।

सार्वजनिक चुनाव २३ और २४ अप्रैल, १८४८ को हुए और राष्ट्रीय सभा का प्रथम अधिवेशन ४ मई, १८४८ को हुआ। मतदान वयस्क मताधिकार के आधार पर हुआ किन्तु उग्रदलीय व्यक्ति नहीं चुने गये। निर्वाचित सदस्यों का बहुत बड़ा बहुमत नरमदलीय व्यक्तियों का था। सामयिक सरकार ने अपनी सारी सत्ता राष्ट्रीय सभा के हाथों सौंपकर पदत्याग कर दिया। सभा ने एक कार्यकारिणी चुनी जिसमें लुई ब्लांक और एल्बर्ट दोनों में से कोई भी नहीं था। इन्हें मन्त्रिमण्डल में भी नियुक्त नहीं किया गया।

राष्ट्रीय सभा को राष्ट्रीय उद्योगों की समस्या को सुलझाना था। यह ध्यान रखने योग्य बात है कि २५ फरवरी, १८४८ को सामयिक सरकार ने राष्ट्रीय कारखानों की स्थापना को सिद्धान्त रूप से स्वीकार कर लिया था तथा २७ फरवरी की आज्ञप्ति द्वारा इनकी स्थापना तुरन्त ही करनी थी। किन्तु वास्तव में कोई कारखाने नहीं थे और कुछ हज़ार व्यक्तियों को काम दिलाया जा सका था। काम माँगने वालों की संख्या प्रतिदिन बढ़ती गई, परिणामतः सरकार को बिना काम के भी वेतन देने को विवश होना पड़ा। केवल पेरिस निवासी ही काम की माँग नहीं करते थे

अपितु देश के ग्रामों से विभिन्न प्रकार के व्यक्ति काम प्राप्त करने के लिए पेरिस चले आए। इनकी संख्या इतनी अधिक हो गई कि सार्वजनिक व्यवस्था को खतरा पैदा हो गया और राष्ट्रीय सभा असमंजस में पड़ गई कि क्या करे? इस प्रकार की परिस्थिति में ऐमिली थामस को राष्ट्रीय कारखानों का संचालक नियुक्त किया गया। यद्यपि थामस सभी बेरोजगार व्यक्तियों को काम नहीं दे सका तथापि वह घोर अव्यवस्था में कुछ व्यवस्था स्थापित कर पाया। उसने कामदिलाऊ कार्यालय की स्थापना की। उसने आर्थिक सहायता के बाँटने के कार्य को केन्द्रित किया और बेकार व्यक्तियों के प्रशिक्षण का प्रबन्ध भी किया। धोखाधड़ी और अव्यवस्था की आशंका घट गई। कहा जाता है कि १६ अप्रैल, १८४८ को ६६ हज़ार बेकार व्यक्तियों के नाम लिखे गये किन्तु मई समाप्त होते-होते यह संख्या एक लाख बीस हज़ार हो गई।

१५ मई को लगभग एक लाख व्यक्तियों की भीड़ ने राष्ट्रीय सभा भवन पर आक्रमण किया और नई सामयिक सरकार बनाई। किन्तु लिमार्टिने और लेडरु-रोलिन ने दक्षता से परिस्थिति सँभाली। सेना की सहायता से उन्होंने भीड़ को हटा कर भगा दिया और विद्रोही नेताओं को पकड़ लिया। राष्ट्रीय कारखानों से उत्पन्न अव्यवस्था को ठीक करने के लिए तैयारियाँ की गईं। सेनापति केविगनेक (Cavaignac) को युद्ध-मंत्री नियुक्त किया गया और सेना में बहुत संख्या में लोग भर्ती किए गये। आज्ञप्ति प्रसारित की गई कि जो लोग पेरिस में अपना निवास छः महीने का सिद्ध नहीं कर सकेंगे उन्हें पारपत्र देकर राजधानी से बाहर निकाल दिया जाएगा। ठेके के काम की प्रथा के स्थान पर दिन के काम की प्रथा प्रचलित हुई। उद्योगपतियों को आदेश हुआ कि रिक्त स्थानों को सरकार के माध्यम से पूरा करें। जो कर्मचारी गैर-सरकारी संस्थाओं में काम करने से मना करें तथा १८ से २५ वर्ष की आयु के बीच के सारे अविवाहित कर्मचारी जो सेना में भर्ती होने से मना करें उन्हें सरकारी कारखानों से निकाल दिया जाय। सरकार ने २२ जून, १८४८ को इन आज्ञाओं को लागू करने का प्रयत्न किया जिससे श्रमिकों ने बड़ा उत्पात किया। २३ जून को सारे पेरिस में बड़ा भारी दंगा हुआ और गलियों में मोर्चेबन्दी की गई। २४ जून से २६ जून तक पेरिस की गलियों में घोर युद्ध हुआ। बहुत रक्तपात हुआ और लगभग ४००० विद्रोहियों को समुद्र पार के उपनिवेशों में निष्कासित कर दिया गया। एक व्यवस्थित आन्दोलन के रूप में समाजवाद नष्ट कर दिया गया। लुई ब्लांक को मृत्युदण्ड का भय दिखाया गया। वह इंग्लैण्ड भाग गया। प्राउढन को कैद कर लिया गया। किन्तु समाजवाद को नष्ट करके सामयिक सरकार ने स्वयं अपना विनाश कर लिया।

यद्यपि केविगनेक ने अपनी तानाशाही सत्ता का परित्याग कर दिया था तो भी राष्ट्रीय सभा ने उसे कार्यकारिणी (Council) का अध्यक्ष चुना। दिसम्बर, १८४८ में राष्ट्रपति के चुनाव होने तक वह फ्रांस का शासक रहा। किन्तु वह गणतंत्र के प्रति भक्त रहा और बोनापार्ट-दल ने साम्यवादियों तथा न्यायवादियों से इसकी रक्षा का प्रयत्न किया। राष्ट्रीय कारखानों को समाप्त कर दिया गया। विद्रोही विचारों को फैलाने वाले क्लबों को बन्द कर दिया गया। कुछ समाचारपत्रों को

वन्द कर दिया गया। राष्ट्रीय रक्षक सेना का नियन्त्रण चर्गानियर को सौंप दिया गया।

वहुत विचार-विमर्श के पश्चात् राष्ट्रीय सभा ने गणतंत्रीय प्रणाली का संविधान तैयार किया। संविधान में व्यवस्था हुई कि वयस्क मताधिकार के आधार पर उपनिवेशों और प्रदेशों द्वारा ७५० सदस्य एक ही विधान सदन के लिए चुने जायेंगे। ये सदस्य वेतनभोगी होंगे। मतदान सीधा (direct) होगा। इस सदन को तीन वर्ष वाद भंग कर दिया जायेगा। राष्ट्रीय सभा द्वारा एक राज्य सभा (Council of State) वनाई जायेगी जो कानूनों का मसविदा तैयार करेगी। फ्रांस का एक राष्ट्रपति होगा जिसे जनता वयस्क मताधिकार के आधार पर सीधे मतदान (direct election) द्वारा चुनेगी। राष्ट्रपति अपने मंत्री नियुक्त करेगा किन्तु मन्त्री विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होंगे। राष्ट्रपति और मंत्री दोनों ही सर्वोच्च न्यायालय के प्रति उत्तरदायी होंगे। राष्ट्रपति को विधेयकों पर निलम्व-निषेधाधिकार (Suspensive Veto) होगा। राष्ट्रपति की कार्यअवधि चार वर्ष होगी तथा वह दूसरी वार नहीं चुना जाएगा। एम. ग्रीवे (M. Grevy) ने राष्ट्रपति से सम्वन्धित व्यवस्था का विरोध करते हुए कहा "क्या आप लोगों को विश्वास है कि एक वह महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति जिसे आप राष्ट्रपति के सिंहासन पर वैठायेंगे, अपनी शक्ति को निरन्तर वनाये रखने का प्रयत्न नहीं करेगा? विशेषतः यदि वह व्यक्ति फ्रांस पर शासन करने वाले राजवंशों वंशज हुआ तो क्या आपके पास कोई आश्वासन है कि वह व्यक्ति, वह महत्त्वाकांक्षी, गणतन्त्र की समाप्ति नहीं करेगा?" ग्रीवे के विरोध होने पर भी फ्रांस की संविधान सभा ने राष्ट्रपति से सम्वन्धित व्यवस्थाओं को स्वीकार करके गणतंत्र पर घातक प्रहार किया।

नये संविधान के अनुसार चुनाव हुए और लुई नेपोलियन को राष्ट्रपति चुना गया। उसे ५४,३४,२२६, केविगनेक को १४,४८,१०७ और लिमार्टिने को केवल १७,९१० मत प्राप्त हुए। लुई नेपोलियन के राष्ट्रपति वनने से फ्रांस के इतिहास में एक नए अध्याय का आरम्भ हुआ। इसलिए आवश्यक है कि उसकी जीवनी और सफलताओं का उल्लेख किया जाय।

लुई नेपोलियन (Louis Napoleon)—लुई नेपोलियन वोनापार्ट का जन्म १८०८ में पेरिस में हुआ था। वह हॉलैण्ड के सम्राट् के भाई लुई वोनापार्ट तथा नेपोलियन प्रथम की रानी जोसफीन के प्रथम विवाह से उत्पन्न सौतेली पुत्री होर्टेन्सी व्युहारनिऐस का पुत्र था। इसलिएं नामकरण के समय नेपोलियन प्रथम ने अपना नाम वोनापार्ट-वंश की नामावलि में लिखवाया था। १८१४ में जव संयुक्त-राज्य की सेनाओं ने पेरिस पर अधिकार किया, प्रशिया का राजा विलियम अपने वच्चों को होर्टेन्सी के वालकों के साथ खेलने के लिए ले आया था। लुई नेपोलियन की भावी जर्मन सम्राट् से यह प्रथम भेंट थी। वाटरलू की लड़ाई के पश्चात् होर्टेन्सी और उसके वालकों ने स्विटजरलैंड में शरण ली। १८३० की क्रान्ति के समय युव राजकुमार रोम में थे और वे एक गुप्त संस्था (Carbonari) के सदस्य थे। लुई नेपोलियन का वड़ा भाई इटली में मर गया तथा जुलाई १८३२ में आस्ट्रिया की

राजकुमारी से उत्पन्न नेपोलियन प्रथम के पुत्र नेपोलियन द्वितीय की मृत्यु हो गई। इसके पश्चात् लुई नेपोलियन को बोनापार्ट के समर्थकों का नेता और उत्तराधिकारी माना जाने लगा।

१८३६ में पहली बार लुई नेपोलियन ने अपने अधिकारों की माँग की। स्ट्रासबर्ग (Strasburg) जहाँ नेपोलियन की कट्टर समर्थक सेनाओं का पड़ाव था लुई बोनापार्ट आया और उसने माँग की कि वे देश में नेपोलियन साम्राज्य की स्थापना में उसकी सहायता करें। किन्तु वह लगभग तीन घण्टों में ही पकड़ा गया और लुई फिलिप ने इसके विरुद्ध कार्रवाई करने के बजाय इसे केवल संयुक्त राज्य अमेरिका भिजवा दिया। १८४० में यह पुनः बोलोने (Boulogne) नामक स्थान पर उतरा और घोषणा की 'नेपोलियन प्रथम के अवशेष केवल फ्रांस के पुनर्निर्माण होने पर ही शान्ति से रह सकेंगे।' उसे फिर कैद करके हैम (Ham) के किले में बन्द कर दिया गया। बन्दीगृह से भी उसने अपना आन्दोलन जारी रखा। १८३९ तक वह एक पुस्तक 'नेपोलियनवाद की विचारधारा' (Napoleonic Ideas) लिख चुका था जिसमें उसने निजी राजनीतिक विचारों का प्रतिपादन किया था। उसके विचारानुसार 'नेपोलियनवादी साम्राज्य' से ही १७८९ के सिद्धान्तों की पूर्ति की जा सकती है। इस साम्राज्य की नींव 'राष्ट्रीय सर्वाधिकार-सम्पन्नता' के सिद्धान्त पर आधारित थी। इसकी मुख्य नीति का आधार सार्वजनिक वयस्क मताधिकार था। विदेशनीति के क्षेत्र में इसका लक्ष्य राष्ट्रीय-संघ बनाना था जिसे रोम के सम्राट् सीज़र के सिद्धान्तों पर संगठित करना, संचालन करना तथा यशस्वी बनाना था। १८४१ में जब यह बन्दीगृह में ही था उसने 'Fragments of Historiques' लिखा जिसमें उसने गुईज़ोट द्वारा फ्रांस की १८३० की और इंग्लैण्ड की १६८८ की क्रान्तियों की तुलना का खण्डन किया था। १८४४ में उसने 'The Extension of Pauperism' लिखा जिसमें उसने देश में बेकारी हटाने और आर्थिक अवस्था सुधारने की योजना का उल्लेख किया। उसका दावा था कि "वह उद्योगों का नया क्षेत्र खोल कर देश के धनिकों के लिए नवीन योजनाएँ बनायेगा और किसानों को सहायता देकर खेती की उन्नति करेगा। प्रत्येक व्यक्ति को जीवन-यापन के साधन उपलब्ध होंगे और देश से गरीबी खदेड़ दी जाएगी। उसके शब्दों में ईसाई धर्म की विजय के कारण संसार से दासता की प्रथा समाप्त हुई; फ्रांस-क्रान्ति की विजय ने मुजारेदारी समाप्त कर दी और प्रजातन्त्र की विजय गरीबी को नष्ट कर देगी।" १८४५ में उसने 'History of Artillery' लिखा। मई, १८४६ में नेपोलियन हैम के दुर्ग से भागने में सफल हुआ और इंग्लैण्ड चला गया, जहाँ वह दो वर्ष टिका रहा।

फरवरी, १८४८ में जब क्रान्ति हुई तो लुई नेपोलियन ने द्वितीय गणतन्त्र को अपनी सेवाएँ समर्पित कीं। किन्तु उसकी सेवाएँ स्वीकार नहीं हुईं और उसे आज्ञा दी गई कि वह चौबीस घण्टों के भीतर ही देश छोड़ कर चला जाए। अप्रैल, १८४८ में जब चुनाव हुए तो उसने भाग नहीं लिया। किन्तु उसके समर्थक निरंतर उसके लिए प्रचार करते रहे। जून, १८४८ में जब चुनाव हुए वह अपने क्षेत्र से अनुपस्थित होने पर भी चुन लिया गया। लुई नेपोलियन ने राष्ट्रीय सभा को

लन्दन से इस प्रकार लिखा—"मेरा नाम ही व्यवस्था, राष्ट्रीयता और यश का प्रतीक है। मुझे अत्यन्त दुःख होगा यदि इसका प्रयोग देश में अशांति पैदा करने के लिए किया गया। किन्तु जनता ने यदि मुझ पर कार्य-भार डाला है तो मैं उसे पूर्णतया निभाना भी जानता हूँ।" राष्ट्रीय सभा बड़ी परेशान हुई किन्तु लुई नेपोलियन ने अपने स्थान से त्यागपत्र दे दिया। जून, १८४८ के रक्तपात के दिनों में नेपोलियन दूर था इसलिए उसका नाम इन घटनाओं में नहीं आया। सितम्बर में दूसरी वार वह पाँच चुनाव क्षेत्रों से चुना गया और २६ सितम्बर, १८४८ को उसने राष्ट्रीय सभा में अपना स्थान ग्रहण कर लिया। दिसम्बर, १८४८ में जब राष्ट्रीपति पद के लिए चुनाव हुआ तो वह आशातीत वहुमत से राष्ट्रपति के पद के लिए चुन लिया गया।

राष्ट्रपति नेपोलियन (Napoleon as President) (१८४८-१८५२)—१८४८ से १८५२ तक द्वितीय गणतंत्र के राष्ट्रपति होने के नाते लुई नेपोलियन ने इस प्रकार की नीति अपनाई कि वह फ्रांस देश की जनता का प्रेमपात्र बन सके। उसने कारखाने के श्रमिकों की प्रशंसा की। १८५० में उसने राष्ट्रीय सभा को एक कानून बनाने के लिए विवश कर दिया, जिसके अनुसार वृद्धावस्था के लिए स्वयमेव बीमा हो जाना था। उसने कैथोलिकों और बुर्जुआ वर्ग को भी प्रसन्न करने का प्रयत्न किया। उसने फ्रांस में उद्योगों की वृद्धि के लिए प्रोत्साहन भी दिया। पोप को पुनः पदासीन करने के लिए १८४९ में एक सैनिक अभियान को रोम भेजा गया। १८५० के एक कानून के द्वारा (Falloux Law of 1850) फ्रांस में शिक्षा के अधिकार जो पादरियों को चार्ल्स दशम के समय प्राप्त थे उन्हें पुनः दे दिये गये।

१८४९ की चुनी हुई सभा में वहुत थोड़े वोनापार्टवादी थे। ७५० सदस्यों में से ५०० राजशाही के समर्थक थे। गणतन्त्रवादी अल्पमत में थे। सभा में राजनैतिक दल के नाम से कोई भी दल संगठित नहीं था और यह वात नेपोलियन के लिए हितकर सिद्ध हुई। प्रतिक्रियाशील नीति का अनुसरण करने के कारण राष्ट्रीय सभा उसके हाथों में खेलती रही। जनता के जलसों और समाचारपत्रों पर प्रतिवन्ध लगाया गया। सभा के सदस्य वैतनिक वना दिए गए। १८५० में एक कानून बनाया गया जिसके अनुसार यदि किसी व्यक्ति ने एक ही क्षेत्र में तीन वर्ष तक निवास न किया हो और राजस्व न दिया हो तो उसे मतदान का अधिकार नहीं होगा। इस कानून का यह परिणाम निकला कि श्रमजीवी लोग जो रोजगार की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकते फिरते थे पूर्णतः मताधिकार से वंचित कर दिए गए। ९० लाख मतदाताओं में से ३० लाख मतदाता कम हो गए। इस कानून का विरोध हुआ। पेरिस में वड़ा असन्तोष फैल गया। लुई नेपोलियन ने इस परिस्थिति से लाभ उठाया और घोषणा की—"जनता का चुना हुआ प्रतिनिधि होने के नाते मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैं राष्ट्रीय सभा को जनता के अधिकार छीनने से रोकूँ।" सभा और राष्ट्रपति में लगभग एक वर्ष तक संघर्ष चलता रहा। किन्तु जब राष्ट्रीय सभा ने उसके विरुद्ध खुले रूप से युद्ध-घोषणा कर दी तो उसने राष्ट्रीय रक्षक सेना के सेनापति चंगार्नियर को पदच्युत कर दिया। चंगार्नियर के अपदस्थ कर दिए जाने से

परिस्थिति और भी जटिल हो गई। देश में राष्ट्रीय सभा की प्रतिष्ठा दिन-प्रतिदिन घटती जा रही थी और नेपोलियन की प्रतिष्ठा उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। फ्रांस में बहुत-से लोग ऐसे थे जो देश में राजशाही अथवा तानाशाही की स्थापना करने की सोच रहे थे। उस समय की अद्भुत परिस्थिति के विषय में किसी ने कहा था, "यदि विश्व की कोई पूर्णतया नई शासन-प्रणाली है तो फ्रांस उसे अपनाकर संसार को चकित कर देगा। देश राजशाही के समर्थकों से भरा है किन्तु वे इसकी स्थापना नहीं कर सकते तथा जो गणतंत्र के भार से तिलमिला रहे हैं तथा जिसकी रक्षा के लिए गणतन्त्रवादी नहीं हैं। इस अव्यवस्था में केवल दो ही व्यक्तित्व स्थिर हैं, एक नेपोलियन और दूसरा पर्वत। केवल दो ही घटनाएँ सम्भव हैं। अर्थात् तानाशाही या क्रान्ति। मेरी दृढ़ धारणा है कि शक्ति ही इसका हल निकालेगी।"

सभा ने मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव स्वीकार करके इसे त्यागपत्र देने के लिए विवश कर दिया। किन्तु राष्ट्रपति ने दूसरा मन्त्रिमण्डल नियुक्त करने से इन्कार कर दिया। इसके विपरीत उसने सभा द्वारा अपदस्थ मन्त्रिमण्डल को पुनः नियुक्त कर दिया। सभा ने राष्ट्रपति का वेतन बढ़ाने से इन्कार कर दिया। संविधान में संशोधन करने का विधेयक बहुमत से स्वीकार हुआ, किन्तु यह बहुमत संविधान के अनुसार पर्याप्त बहुमत नहीं था। किन्तु कालान्तर में संविधान में संशोधन की माँग बढ़ती गई।

नवम्बर, १८५१ में लुई नेपोलियन ने सभा को चुनौती दी कि वह सार्वजनिक मताधिकार की स्थापना करे। सभा ने यह आदेश नहीं माना तब राष्ट्रपति ने इस विषय में कदम उठाने का निर्णय किया। उसकी गुप्त योजना को सेंट अर्नाड, मोपस, मोर्ने, परसिगने, फ्लाहउट और मोकार्ड जानते थे। १-२ दिसम्बर, १८५२ की रात्रि को सरकार के विरोधियों को सोते हुए कैद कर लिया गया। पेरिस के नागरिक जिस समय जागे, उन्होंने दो घोषणा-पत्र सारे नगर में चिपके हुए देखे। जिनमें से एक जनता और सेना के प्रति था और दूसरा आज्ञप्ति था। आज्ञप्ति में घोषणा थी कि राष्ट्रीय सभा भंग कर दी गई है, सार्वजनिक मताधिकार पुनः प्रचलित कर दिया गया है तथा जनता को आश्वासन दिया गया था कि उन्हें अनुमति अथवा विरोध प्रकट करने का अवसर दिया जाएगा। महत्त्वपूर्ण स्थानों पर सेना तैनात कर दी गई और विरोधियों का दमन कर दिया गया। १८५१ की यह घटना सफल हुई। देश में कोई गम्भीर गड़बड़ नहीं हुई और यह लगता था मानो जनता ने अपनी अनुमति दे दी है। प्रसिद्ध नेता थीयर्स, चंगार्नियर इत्यादि रंगमंच छोड़ चुके थे। २० दिसम्बर, १८५१ को देश भर में मतदान हुआ जिसके अनुसार राष्ट्रपति को द्वितीय गणतन्त्र का संविधान बनाने का अधिकार दिया गया।

नवीन संविधान (New Constitution) (१८५२)—१४ जनवरी, १८५२ को राष्ट्रपति ने नया संविधान लागू किया। राष्ट्रपति की पदावधि १० वर्ष कर दी गई। उसे सारे कानून और आज्ञाएँ लागू करने का अधिकार दिया गया। मन्त्रिमण्डल केवल राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी था। राज्यसभा की नियुक्ति भी वह ही करता था तथा राज्यसभा उसके ही आदेशानुसार कानूनों का मसविदा तैयार

करती थी। विधान मण्डल में दो सदन थे। सीनेट में स्थल सेना और जल सेना के सेनापति तथा धर्माचार्य पदाधिकार (Ex-officio) के अनुसार सदस्य बनते थे। इसमें १५० सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये जाने थे, 'कोर लेजिसलेटिफ' (Corps Legislatif) में २६१ सदस्य थे, इसे निषेधाधिकार (Veto) प्राप्त था, किन्तु कानून को बनाने अथवा संशोधन करने का अधिकार नहीं था। फ्रांस की जनता ने नवीन संविधान की प्रशंसा की अर्थात्, "केवल यही संविधान आधुनिक फ्रांस की सामाजिक और प्रशासनिक परिपाटियों के अनुकूल है तथा देश में स्वतन्त्रता तथा नेपोलियनवाद के सिद्धान्तों का रक्षक है।" सार्वजनिक मताधिकार भी इस संविधान में था।

१८५२ के वर्ष में फ्रांस राजशाही के पथ पर अग्रसर हो रहा था। यद्यपि लुई नेपोलियन राष्ट्रपति था तो भी उसकी मूर्ति मुद्राओं पर छापी जाने लगी। सैनिक तथा सरकारी कार्यालयों पर गरुड़ का चिह्न लगाया गया। उसने देश के सभी वर्गों का समर्थन प्राप्त करने के लिए समूचे देश में भ्रमण किया और भाषण दिये। नवम्बर, १८५२ में सार्वजनिक मतदान द्वारा जनता ने राष्ट्रपति पद को वंशक्रमानुगत राजशाही में परिवर्तित करने के लिए अनुमति दे दी। २ दिसम्बर, १८५२ को लुई नेपोलियन को नेपोलियन तृतीय सम्राट् घोषित कर दिया गया। उसने १८५२ से १८७० तक फ्रांस पर शासन किया।

सम्राट् नेपोलियन तृतीय (Napoleon III as Emperor) (१८५२-७०)—नेपोलियन तृतीय के शासन के दो अंग हैं अर्थात् गृह-नीति और विदेश-नीति। उसने अक्टूबर, १८५२ में बोरडो (Bourdeax) में दिए गए भाषण में अपने कार्यक्रम की रूपरेखा बताई थी, "एक भय है जिसका निराकरण मुझे करना चाहिए। लोग शंका की भावना से कहा करते हैं: साम्राज्य युद्ध है। मैं कहता हूँ साम्राज्य शान्ति है··· तथापि मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझे भी, 'सम्राट्' की तरह, अनेक विजयें प्राप्त करनी हैं। मेरी इच्छा, उसकी तरह, कभी एक न हो सकने वाले निरन्तर झगड़ने वाले दलों की दुर्भावना को जीतने की है और किसी को भी लाभ न पहुँचाने वाले व्यर्थ के झगड़ों को नष्ट कर देने की है। मैं अपने देश की बहुसंख्यक जनता को, जो इस धर्म और आस्था के देश

सम्राट् नेपोलियन तृतीय

में भी ईसा के उपदेशों से अनभिज्ञ है तथा जो संसार के सब से अधिक उर्वर देश में रहते हुए भी दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को कठिनाई से जुटा पाती है; उसके लिए धर्म, सदाचार, समृद्धि जीतकर लाना चाहता हूँ। हमारे पास बहुत-सी बंजर धरती है जिसे मुझे खेती योग्य बनाना है। सड़कें बनानी हैं, बन्दरगाहों को गहरा करना है, नहरों को ठीक करना है, नदियों को यात्रा के योग्य बनाना है और देश में रेलों का जाल बिछाना है। मारसिलेस के सामने एक बहुत बड़ा देश है जिसे फ्रांस में मिलाना है। हमें अपर्याप्त यातायात के तीव्र साधनों की वृद्धि करके पश्चिम की सारी बड़ी बन्दरगाहों को फ्रांस के निकट लाना है। हमारे चारों ओर ध्वंसावशेष हैं, जिनका पुनर्निर्माण करना है, झूठे देवताओं को नष्ट करना है और सत्य की जय करानी है। मैं साम्राज्य की स्थापना का यही वास्तविक रूप समझता हूँ। इस प्रकार की विजय प्राप्त करना चाहता हूँ। आप लोग जो मेरे चारों ओर हैं, जो इस प्रकार के साम्राज्य को चाहते हैं, सब मेरे सैनिक हैं।"

गृह-नीति (Home Policy)— नेपोलियन तृतीय ने जनता को दिए गए वचनों को पूरा करने का प्रयत्न किया। अव्यवस्था फैलाने वाली शक्तियों का दमन किया गया। उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन मिला। डाक की व्यवस्था में सुधार हुआ। सड़कें, नहरें और बन्दरगाहें बनाई गईं। पूर्व से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक फ्रांस में रेलों का जाल बिछा दिया गया। खेती, व्यापार और उद्योग के लिए ऋण दिया जाने लगा। देश में दो केन्द्रीय बैंकों की स्थापना हुई—Credit Foncier and Credit Mobilier। पेरिस तथा अन्य प्रान्तों में खेती के लिए बैंक बनाए गए। यातायात के साधनों की उन्नति के कारण किसानों की हालत में बड़ा सुधार हुआ। सरकार किसानों की खेती और फलों के बागों में बड़ी दिलचस्प लेती थी। घोड़ों की नसल सुधारने के लिए सहायता दी जाती थी। दलदल वाले स्थानों को सुखा कर खेती कराई जाने लगी।

पेरिस का पुनर्निर्माण किया गया और इसे अधिक खुला, अधिक स्वच्छ, अधिक सुन्दर तथा अधिक सुरक्षात्मक बनाया गया। पेरिस में सुन्दर चौराहे और शानदार सरकारी इमारतें बनाई गईं। बेरन हाउसमैन (Baron Haussmann) के प्रबन्ध में पेरिस को संसार का सबसे सुन्दर तथा आकर्षक नगर बनाने का प्रयत्न किया गया।

नेपोलियन ने श्रमजीवियों में यह धारणा जमाने का यत्न किया कि वह स्वयं भी उनका एक सहयोगी है। वह रेलवे के इंजीनियरों के साथ इंजन के डिब्बों में बैठकर घूमता, सड़कों पर मिस्त्रियों और मजदूरों से बातें करता, उनके साथ बैठकर उनकी खुशहाली के लिए शराब पीता था। उनके संगठनों को वह आर्थिक सहायता देता था। सरायवालों को भी आर्थिक सहायता दी जाती थी, जिससे मजदूरों को सस्ते दामों पर रोटी प्राप्त हो। मजदूरों को त्योहारों पर छुट्टियाँ मिलती थीं। श्रमजीवियों के लिए घर बनाने, दुर्घटना तथा वृद्धावस्था के लिए बीमे की योजनाएँ भी चलाई गईं। श्रमिक-संघों को वैधानिक मान्यता प्रदान की गई थी। १८६३ के एक क़ानून

के अनुसार मजदूरों को सामूहिक क्रय-विक्रय के लिए सहकारी समितियाँ बनाने की अनुमति दी गई थी। १८६४ के एक अन्य कानून के अनुसार मज़दूरों द्वारा हड़ताल करने के अधिकार को मान्यता दी गई। १८६८ के एक कानून के अनुसार मृत्यु और काम करते समय दुर्घटना के शिकार होने की अवस्था में बीमें की व्यवस्था भी की गई थी।

औद्योगिक क्षेत्र में सरकार की नीति उदार थी। निजी व्यापार पर सरकार का नियंत्रण क्रमशः कम कर दिया गया। मशीनों के प्रयोग तथा औद्योगिक संघों के बनाने के लिए सुविधाएँ दी जाने लगीं। बचत के लिए बैंक चालू किए गए। कर क्रमशः कम कर दिए गए। १८६० में इंग्लैण्ड और फ्रांस के बीच एक व्यापारिक सन्धि हुई जिसके अनुसार दोनों देशों के बीच व्यापार सरल हो गया। १८५५ में महान् अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी पेरिस में हुई जिसका उद्देश्य लोगों पर देश की आर्थिक प्रगति और खुशहाली का प्रभाव डालना था।

नेपोलियन तृतीय ने कैथोलिकों को खुश रखने की नीति का निरन्तर अनुसरण किया। १८४९ में उसने रोम में पोप को पुनः पदस्थ करने के लिए फ्रांस की सेनाएँ भेजी थीं। उसने सार्वजनिक शिक्षालयों और विश्वविद्यालयों पर पादरियों का नियन्त्रण बढ़ाने में सहायता दी थी। १८५९ में इटली के अभियान को मध्य में ही बन्द करने का एक कारण यह भी था कि उसे फ्रांस के कैथोलिकों के विरोध का भय था। महारानी इयुगनी कैथोलिक चर्चों को बहुत दान दिया करती थी। नेपोलियन तृतीय ने फिलस्तीन (Palestine) के कैथोलिक साधुओं की सहायता के उद्देश्य से ही क्रीमिया के युद्ध में हस्तक्षेप किया था। वह संसार भर के कैथोलिकों का संरक्षक बनना चाहता था।

यह ध्यान रखने योग्य बात है कि कम-से-कम १८६० तक तो नेपोलियन तृतीय फ्रांस का तानाशाह बना रहा। वह देश में सब चीजों का नियंत्रण करता था। समाचारपत्रों पर कड़ा नियंत्रण था। जनता की गतिविधि पर देख-भाल रखने और प्रतिबन्ध लगाने के लिए गुप्तचरों का जाल फैला हुआ था। विधानमण्डल पर उसका नियन्त्रण इस प्रकार था कि सरकारी सदस्यों के चुनाव का खर्चा राष्ट्रीय-कोष से दिया जाता था जबकि अन्य सदस्यों को चुनाव के लिए स्वयं खर्च करना पड़ता था। चुनाव-यन्त्र पूर्णतः सम्राट् के वश में था। १८५८ के एक कानून के अनुसार प्रत्येक सदस्य को सम्राट् के प्रति वफादार रहने की सौगंध उठानी पड़ती थी। उस ही वर्ष में प्रचलित एक अन्य कानून के अनुसार फ्रांस अथवा अल्जीरिया को राजनीतिक अपराधियों को बिना अभियोग चलाए नज़रबन्द अथवा निष्कासित किया जा सकता था।

यह परिस्थिति उस समय तक बनी रही जब १८६० में संविधान को संशोधित किया गया तथा सरकार को अधिक उदार बनाया गया था। सीनेट और विधान-सभा के सम्राट् के भाषण पर प्रति वर्ष वाद-विवाद तथा मतदान करने की अनुमति दी गई थी। संसद् में हुए वाद-विवाद की अक्षरशः विज्ञप्ति प्रकाशित होने

लगी थी। कार्यमण्डल अपनी कार्रवाई की सूचना विधानमण्डल को दे देता था।

इन सब छूटों के होने पर भी १८६३ के सार्वदेशिक चुनावों में गणतन्त्रवादियों की बहुमत से जीत हुई। ज्युलिस साइमन, थीयर्स, फ़ैरी और गेमवट्टा संसद् में पुनः सदस्य बनकर आए। प्रिफेक्ट्स के प्रभाव के कारण सरकार को बहुमत प्राप्त हुआ तथापि विरोधी दल शक्तिशाली था और नेपोलियन तृतीय को परेशान करने के लिए पर्याप्त था।

१८६६ में ओलीवियर ने 'सुधारवादी' सरकार की विचारधारा का समर्थन करने के विचार से एक नया राजनीतिक दल बनाया। १८६७ में सम्राट् ने 'राष्ट्र की इच्छा से निर्मित वेदी को मुकुट पहनाने' की घोषणा की। समाचारपत्रों का प्रतिबन्ध ढीला कर दिया गया। सार्वजनिक जलसों को करने का सीमित अधिकार माना गया। मन्त्रियों को विधानमंडल में बैठकर प्रश्नों के उत्तर देने पड़ते थे तथा विवाद में भाग लेना पड़ता था।

१८६९ के सार्वदेशिक चुनावों के पश्चात् ओलीवियर को मंत्रिमंडल बनाने के लिए कहा गया। नया मन्त्रिमण्डल विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी तथा सुधारवादी था। विधानमण्डल को विवाद करने की, राष्ट्र-धन पर नियंत्रण रखने की प्रतिबन्धहीन छूट दी गई थी। ओलीवियर के शब्दों में "यह १७८९ के पश्चात सबसे पूर्ण और वास्तविक उदार संविधान था जिसका फ्रांस ने उपभोग किया है।"

२९ नवम्बर, १८६९ को नेपोलियन तृतीय ने राज्यसिंहासन से दिए भाषण में साम्राज्य पर किए गए आक्षेपों का उल्लेख तथा सार्वजनिक वयस्क मताधिकार पर आधारित फ्रांस साम्राज्य की शक्ति का वर्णन भी किया था। उसने घोषणा की, "स्पष्ट है कि फ्रांस स्वतंत्रता चाहता है किन्तु व्यवस्था सहित स्वतंत्रता चाहता है। भद्र पुरुषो! आप लोग स्वतंत्रता की रक्षा करने में मेरी सहायता करें और व्यवस्था को बनाए रखना मेरा उत्तरदायित्व है।" सम्राट् ने अधिक सुधारों के कार्यक्रम की रूप-रेखा भी बनाई। सत्ता विकेन्द्रित करने की घोषणा की गई। कम्यूनों द्वारा उनके महापौर चुने जाने की व्यवस्था हुई। जनता को परिषदों के सदस्यों को चुनने का अधिकार दिया गया। कैण्टनों को भी परिषद् बनाने की अनुमति दी गई। निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा में सुधार किया गया। कारखानों में बालकों द्वारा मजदूरी करने पर नियंत्रण रखा जाने लगा। जनता के हित के लिए ग्रामों में बचत के बैंक खोले गए। इन सुधारों की योजना जनता की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए प्रकाशित हुई तथा इनका अत्यन्त बहुमत से समर्थन हुआ। किन्तु १८७० में सीडान के युद्ध में नेपोलियन तृतीय की पराजय हुई और उसे आत्मसमर्पण करना पड़ा। इसके कारण द्वितीय राजशाही समाप्त हुई और तृतीय गणतंत्र की घोषणा सितम्बर, १८७० में हुई।

नेपोलियन तृतीय की विदेश-नीति (Foreign Policy of Napoleon III)—फ्रांस के गणतन्त्र के राष्ट्रपति होने के नाते तथा फ्रांस का सम्राट् होने के नाते, लुई नेपोलियन ने शान्ति के समर्थक होने का प्रचार किया किन्तु वास्तव में वह शक्ति-

शाली विदेश-नीति का अनुसरण करता रहा जिसके कारण फ्रांस को कई बार युद्धों में उलझना पड़ा। उसकी आक्रामक विदेश-नीति के अनेक कारण थे। लुई नेपोलियन एक राष्ट्रवादी व्यक्ति था और इटली, जर्मनी और पोलैण्ड की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करती हुई जनता के साथ उसे हार्दिक सहानुभूति थी। उसकी देशभक्ति ही थी जिसके कारण फ्रांस की जनता उसकी ओर आकर्षित हुई। उसका 'नेपोलियन' नाम ही १८४८ में उसके राष्ट्रपति चुने जाने तथा बाद में उसकी प्रतिष्ठा का मूल कारण था। वह अपने नाम को अपने चाचा के पदचिह्नों पर चल कर ही सार्थक कर सकता था किन्तु इसका अर्थ युद्ध-ग्रस्त हो जाना था। नेपोलियन ने यह भी अनुभव किया कि शक्तिशाली विदेश-नीति का पालन करने से ही वह देश की सारी जनता का प्रिय हो सकेगा क्योंकि फ्रांस की जनता यश की भूखी थी। वह षड्यन्त्रों का केन्द्र तथा यूरोप की दलित जातियों द्वारा सहायता प्राप्त करने का मुख्य स्रोत भी था। यूरोप के देशभक्त सहायता के लिए उसकी ओर देखा करते थे। स्वयं नेपोलियन को आशा थी कि वह अन्य प्रदेशों को अपने देश की सीमा में मिला कर राष्ट्र के यश और प्रतिष्ठा की वृद्धि कर सकेगा।

उपनिवेशों के क्षेत्र में नेपोलियन ने सारे अल्जीरिया को फ्रांस में मिला लिया और यह देश एक बड़ा धनधान्यपूर्ण संरक्षित प्रदेश बन गया था। चीन के विरुद्ध इसने इंग्लैण्ड के साथ सैनिक प्रदर्शन में भाग लिया जिसके परिणामस्वरूप चीन की अनेक बन्दरगाहें यूरोपीय देशों के लिए खुल गईं। १८५१ में उसने अन्नाम और कोचीन-चीन के विरुद्ध सैनिक अभियान किए तथा १९६३ में उसने कम्बोडिया को फ्रांस के संरक्षण में रख लिया था।

रोम (Rome)—१८४९ में लुई नेपोलियन ने रोम में फ्रांस की सेनाओं को गणतन्त्रीय शासन का दमन करके पोप की पुनर्स्थापना करने के लिए भेजा। गणतन्त्र पराजित हुआ और पोप का राज्य स्थापित हुआ। फ्रांस की सेनाएँ १८४९ से १८७० तक रोम में रहीं। उसने रोम में इसलिए हस्तक्षेप किया कि उसे फ्रांस के कैथोलिकों का समर्थन प्राप्त हो जाएगा, जिनकी इच्छा पोप को पुन प्रतिष्ठित देखने की थी।

क्रीमिया का युद्ध (Crimean War)—१८५४ में नेपोलियन तृतीय ने क्रीमिया के युद्ध में हस्तक्षेप किया। नेपोलियन और ज़ार निकोलस प्रथम के सम्बन्ध अत्यन्त कटु थे। ज़ार नेपोलियन को एक नीच व्यक्ति समझता था और नेपोलियन १८१२ में हुए फ्रांस के अपमान का प्रतिशोध लेना चाहता था। फ्रांस के व्यापारी, सुधारवादी और कैथोलिक अनेक कारणों से रूस से घृणा करते थे। फिलिस्तीन में किन्हीं कारणों से कैथोलिक और कट्टर-पन्थी साधुओं में झगड़े हुए। ज़ार निकोलस प्रथम ने तुर्की से तुर्क-साम्राज्य में ईसाइयों की रक्षा के लिए रूस के अधिकार को मान्यता देने के लिए कहा। नेपोलियन ने तुर्की के सुल्तान को 'रूसी आक्रमण' को रोकने के लिए सुझाव दिया। तुर्की के सुल्तान ने वैसा ही किया जैसा उसे कहा गया था। रूस और तुर्की में युद्ध छिड़ गया। तुर्क-साम्राज्य की रक्षा के लिए फ्रांस और इंग्लैंड का गठबन्धन हो गया था। आरम्भ में इंग्लैण्ड और फ्रांस, दोनों की ही सेनाओं ने मार

खाई और वहुत हानि उठाई। किन्तु निकोलस प्रथम की मृत्यु तथा १८५५ में पामर्स्टन के इंग्लैण्ड का प्रधान मन्त्री बन जाने के पश्चात् पासा पलट गया। रूस पराजित हुआ और १८५६ में 'पेरिस-सन्धि' द्वारा शांति स्थापित हुई। पेरिस के सन्धि सम्मेलन की अध्यक्षता करके नेपोलियन को निश्चय ही बड़ी संतुष्टि हुई होगी। इससे भी उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई।

इटली (Italy)—नेपोलियन ने इटली के मामलों में देश के संगठित होने में सहायता देने के विचार से हस्तक्षेप किया। युवावस्था में वह स्वयं एक गुप्त संस्था (Carbonari) का सदस्य था जो इटली से आस्ट्रिया को निकालने तथा देश को संगठित करने के लिए काम कर रही थी। वोनापार्ट के वंशजों के शरीर में इटली का रक्त था। इटली के संगठन के लिए आस्ट्रिया से युद्ध करना फ्रांस के उदारदलीय लोगों के लिए भी प्रिय था। नेपोलियन को भी कुछ क्षतिपूर्ति मिलने की सम्भावना थी। इन सव परिस्थितियों के होने पर भी नेपोलियन इटली के मामले में हाथ डालने से संकोच करता रहा। उसकी धारणा थी कि आस्ट्रिया की शक्ति को देखते हुए युद्ध करना एक खतरनाक कार्य है। पुनश्च, संगठित इटली अन्धमहासागर के क्षेत्र में फ्रांस का वलवान् प्रतिद्वन्द्वी वन सकता था। फ्रांस के कैथोलिक इटली में पोप की अद्भुत स्थिति के कारण इटली के संगठन के लिए फ्रांस के हस्तक्षेप का विरोध अवश्यमेव करते। ऐसी परिस्थिति में नेपोलियन का घोर असमंजस में पड़ जाना स्वाभाविक ही था। किन्तु १८५८ में ओरसिनी नाम के एक इटली के क्रान्तिकारी द्वारा इसकी हत्या के प्रयत्न करने पर इसकी हिचकिचाहट समाप्त हो गई। नेपोलियन ने इस प्रभावशाली इटली के हत्यारे की शिकायतों को दूर करने का निर्णय किया। उसने पोप और फ्रांस के कैथोलिकों का विरोध सहन करने का निर्णय भी किया।

१८५८ में नेपोलियन और केवूर में प्लोम्बीयर्स के स्थान पर यह समझौता हुआ कि नेपोलियन आस्ट्रियनों को लोम्वार्डी और विनिशिया से निकालने के लिए पीडमोण्ट की सहायता करेगा। इस सहायता के बदले में उसे सवाय और नाईस दिया जाएगा। अप्रैल, १८५९ में आस्ट्रिया की सरकार ने सारडीनिया को चुनौती दी कि वह अपनी सेनाओं को कम कर दे। सारडीनिया ने यह आदेश मानने से इन्कार कर दिया, परिणामतः सारडीनिया-पीडमोण्ट के विरुद्ध युद्ध छिड़ गया। क्योंकि आस्ट्रिया आक्रमणकारी था, नेपोलियन सारडीनिया-पीडमोण्ट की सहायता के लिए आगे बढ़ा और इनकी इकट्ठी सेनाओं की मगेन्टा और सोलफर्नो की लड़ाई में विजय हुई। सोलफर्नो की लड़ाई के बाद नेपोलियन ने यकायक लड़ाई बन्द करके आस्ट्रिया के साथ सुलह कर ली जिसका समर्थन ज्युरिच सन्धि में हुआ। ज्युरिच सन्धि के अनुसार जब आस्ट्रिया की सेना ने लोम्बार्डी खाली किया, परमा, मोडिना और टुस्कने की जनता ने विद्रोह करके अपने-अपने राजाओं को देशों से निकाल भगाया। इन लोगों ने सारडीनिया-पीडमोण्ट के साथ संगठित होने की योजना भी स्वीकार की। ट्युरिन की सन्धि के अनुसार नेपोलियन तृतीय ने पीडमोण्ट द्वारा टुस्कने, परमा, मोडिना और लोम्बार्डी को मिला लेने को मान्यता दी और स्वयं नाइस और सवाय पर अधिकार कर लिया।

टेलर के विचार में, "सेवाय के विलीनीकरण (Annexation) ने दूसरे साम्राज्य के इतिहास में महान् परिवर्त्तन किया। तब तक यह दलील देना स्वीकार करने योग्य था कि नेपोलियन फ्रांस के प्रत्यक्ष अभियान के बिना दूसरों को स्वतन्त्र कर यश की खोज कर रहा था। अब उसने प्राकृतिक सीमाओं की क्रान्तिकारी नीति ग्रहण कर ली थी जो प्रत्यक्षत: यूरोप के ऊपर फ्रांस का आधिपत्य जमाने की ओर बढ़ती मालूम होती थी। ब्रिटिश सरकार युद्ध के द्वारा घटनाओं के ऐसे चक्र का विरोध न कर सकी जो इटली के एकीकरण में सहायता दे सकता था, लेकिन उनमें नेपोलियन तृतीय के प्रति वह विश्वास न आ सका जो मार्च, १८६० ई० में जा चुका था।" (The Struggle for Mastery in Europe, p. 118)

यद्यपि नेपोलियन तृतीय को सवाय और नाइस मिल गए तथापि अन्तत: उसे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। रूस पहले से ही शत्रु था अब आस्ट्रिया एक नया शत्रु बन गया। इटली के देशभक्त अत्यन्त कठिन समय में दिए गए नेपोलियन के धोखे को नहीं भूल सकते थे। नेपोलियन तृतीय अकेला रह गया और इसके अतिरिक्त वह धोखेबाज कहा जाने लगा। इटली में हस्तक्षेप करने के कारण फ्रांस का राष्ट्रवादी दल दो दलों में बँट गया। फ्रांस के कैथोलिक उस पर इस मामले में औचित्य की सीमा लांघने का आरोप और दूसरी ओर उदार दल के लोग उस पर इस मामले में ढिलाई से काम लेने का आरोप लगाते थे। इन दो दलों के मतभेद दिन-प्रति-दिन बढ़ते ही गए और नेपोलियन इनको अपने वश में नहीं रख सकता था। १८६० में उदार दल का समथन प्राप्त करने के लिए उसे अपनी सरकार को सुधारवादी बनाने के लिए विवश होना पड़ा।

सोलफर्नो के युद्ध के बाद नेपोलियन द्वारा सहसा युद्ध बन्द करने के अनेक कारण बताए जाते हैं। कहा जाता है कि नेपोलियन हार्दिक रूप से कायर व्यक्ति था और वह सोलफर्नो के युद्ध में हुए घोर रक्तपात को सहन नहीं कर पाया। उसके गुर्दे (Kidnev) खराब हो गए थे और उसका स्वास्थ्य युद्ध के कठोर परिश्रम सहन कर सकने में असमर्थ था। उसने यह भी सोचा कि यदि सारा इटली एक हो गया तो इटली में पोप का कोई स्थान नहीं रहेगा और वह इस परिस्थिति के लिए तैयार नहीं था। यदि उसने इटली के राष्ट्रवादियों द्वारा पोप को इटली से बाहर निकालने दिया होता तो फ्रांस के कैथोलिकों की कटु आलोचना के कारण वह बड़ी कठिन परिस्थिति में हो जाता। आस्ट्रिया की सेनाएँ विनिशिया में दृढ़ता से जमी हुई थीं और वहाँ पर फ्रांस की सेनाओं की पराजय की पूरी सम्भावना थी। इस परिस्थिति में प्रशिया की ओर से भी खतरा था, क्योंकि र्‌हायन नदी के किनारे उसने अपनी सेनाएँ इकट्ठी कर रखी थीं।

रूमानिया (Rumania)—रूमानिया के संघर्ष में सहायता करने के कारण नेपोलियन तृतीय की प्रतिष्ठा बढ़ी। १८५६ में मोलडाविया और वाल्लाचिया को अपने प्रशासन के लिए स्वायत्तता दे दी गई थी। दो वर्ष बाद नेपोलियन ने उन्हें अपने राजा तथा संविधान प्राप्त करने का अधिकार दिला दिया था। तीन वर्ष बाद

नेपोलियन ने यूरोप की शक्तियों को इस बात के लिए राजी कर लिया कि दोनों प्रदेश संयुक्त हो जायें और उनका एक ही राजा हो। इस प्रकार उसने रूमानिया को संयुक्त होने में सहायता दी थी।

पोलैण्ड के निवासी (The Poles)—नेपोलियन तृतीय को फ्रांस के सब वर्गों का संगठित समर्थन प्राप्त था कि पोलैण्ड के निवासियों की रूस की दासता से छुटकारा प्राप्त करने के संघर्ष में सहायता की जाये। फ्रांस के उदार दल के लोग पोलैण्ड की स्वतन्त्रता के समर्थक थे। फ्रांस के कैथोलिक चाहते थे कि नेपोलियन पोलैण्ड निवासियों की सहायता करे क्योंकि ये कैथोलिक थे। किन्तु १८६३ में जब पोलैण्ड के लोगों ने विद्रोह किया तो नेपोलियन ने उनकी सहायता नहीं की थी। उसे डर था कि प्रशिया और आस्ट्रिया रूस का साथ देंगे और रूस के साथ युद्ध का परिणाम फ्रांस के लिए आत्मघात के बराबर था। परिणाम यह हुआ कि पोलैण्ड के विद्रोहियों का बड़ी निर्दयता से दमन किया गया और फ्रांस का उदार दल तथा कैथोलिक नेपोलियन से असंतुष्ट हो गए।

मेक्सिको (Mexico)—जब मेक्सिको की सरकार ने देश के कर्जे को देने से इन्कार कर दिया तो फ्रांस, इंग्लैण्ड और स्पेन ने अपने अधिकारों को मान्यता दिलाने का निर्णय किया था। इनमें से अन्य दो देशों ने सैनिक कार्रवाही न करके विचार-विमर्श द्वारा मामला सुलझाने का प्रयत्न किया किन्तु १८६२ में नेपोलियन ने तीस हज़ार सैनिकों की सेना मेक्सिको भेजी। उसका उद्देश्य मेक्सिको में एक कैथोलिक और लेटिन साम्राज्य स्थापित करना था। फ्रांस कैथोलिकों को मेक्सिको के लोगों को कैथोलिक धर्मानुयायी बनाने का अवसर देकर नेपोलियन को प्रसन्न करना चाहता था। फ्रांस के देशभक्तों को यश तथा व्यापारियों को कच्चा माल और नई मण्डियाँ प्राप्त होने की आशा थी। १८६४ में नेपोलियन ने आस्ट्रिया के सम्राट् के भाई मेक्सिमिलियन को मेक्सिको का राजा बनाया। संयुक्त राज्य अमेरिका, जब तक देश में गृह-युद्ध चलता रहा, तब तक चुप रहा किन्तु युद्ध समाप्त होते ही अमेरिका की सरकार ने मुनरो सिद्धांत (Monroe Doctrine) के आधार पर फ्रांस को मेक्सिको खाली करने का आदेश दिया। १८६७ में नेपोलियन तृतीय को मेक्सिको से अपनी सेनाएँ हटाने के लिए विवश होना पड़ा। मेक्सिमिलियन ने थोड़ी देर कर दी और उसे गोली मार दी गई। मेक्सिको का अभियान पूर्णत: असफल रहा और नेपोलियन तृतीय की प्रतिष्ठा को बड़ा गम्भीर धक्का पहुँचा। मेक्सिमिलियन की मृत्यु से आस्ट्रिया शत्रु बन गया था। फ्रांस की सेनाएँ मेक्सिको में व्यस्त होने के कारण नेपोलियन १८६६ के आस्ट्रिया-प्रशिया युद्ध में प्रभावशाली रूप से भाग नहीं ले सका।

हेज़न के मतानुसार, "फ्रांस के सम्राट् को इस अभियान का बहुत भारी मूल्य चुकाना पड़ा। १८६४-६६ के समय मध्य यूरोप की घटनाओं में वह उचित रूप से भाग नहीं ले सका। डेनिश युद्ध और आस्ट्रिया-प्रशिया के युद्धों के परिणामों ने यूरोप में फ्रांस का महत्त्व घटा दिया और प्रशिया जैसे महत्वाकांक्षी, आक्रमणकारी और

सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली राष्ट्र का महत्त्व बढ़ गया। यूरोप में उसको चरित्रहीन माना जाने लगा क्योंकि उसने संयुक्त राज्य की धमकी के सामने घुटने टेक कर अपने संरक्षित प्रदेशों को भयानक परिस्थितियों में उनके भाग्य पर छोड़ दिया था। इससे देश में भी उसकी प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का पहुँचा।"

आस्ट्रिया-प्रशिया युद्ध (Austro-Prussian War) (१८६६)—१८६६ में आस्ट्रिया और प्रशिया में युद्ध हुआ जो केवल सात सप्ताह चला। आस्ट्रिया की सेनाएँ साडोवा (Sadowa) के युद्ध में पराजित हुईं और आस्ट्रिया ने प्रशिया से सन्धि कर ली। जिस तेज़ी और पूर्णता से प्रशिया को विजय प्राप्त हुई उससे नेपोलियन तृतीय की सारी योजनाएँ उलट-पुलट हो गईं। उसे आशा थी कि यह युद्ध पर्याप्त अवधि तक चलेगा और वह इस युद्ध में प्रभावशाली रूप से हस्तक्षेप कर सकेगा। नेपोलियन की धारणा थी कि प्रशिया पराजित होगा और जर्मनी अत्यन्त शक्तिहीन हो जाएगा। किन्तु साडोवा के युद्ध में आस्ट्रिया की पराजय से सारी योजनाएँ असफल हो गईं। युग-युगान्तर से फ्रांस की नीति थी कि जर्मनी को विभाजित और निर्बल रखा जाय किन्तु प्रशिया की विजय और जर्मनी के संगठित हो जाने के कारण फ्रांस को बड़ा खतरा हो गया था। प्रशिया की सैनिक सफलता फ्रांस के लिये चुनौती तथा उसकी सुरक्षा के लिए एक बहुत बड़ा भय था। यह ठीक है कि 'साडोवा के युद्ध में वास्तव में फ्रांस की ही पराजय हुई।' नेपोलियन अपनी इस कूटनीतिक हार का बदला लेना चाहता था और इससे फ्रांस और प्रशिया के युद्ध की सम्भावना और भी दृढ़ हो गई।

फ्रांस-प्रशिया युद्ध (Franco-Prussian War) (१८७०-७१)—१८६५ में बियारिटज के स्थान पर नेपोलियन तृतीय बिस्मार्क से मिला। इस भेंट में बिस्मार्क ने नेपोलियन तृतीय को यह आश्वासन दिया कि फ्रांस को बेल्जियम या र्‌हायनलैण्ड का प्रदेश क्षतिपूर्ति के रूप में दिया जाएगा। १८६६ के युद्ध के पश्चात् नेपोलियन ने क्षतिपूर्ति के रूप में बेल्जियम की माँग की। किन्तु उसकी माँग ठुकरा दी गई। वह र्‌हायन पलेटाइनेट भी प्राप्त नहीं कर सका। उसने लक्सम्बर्ग को खरीदने का प्रस्ताव रखा। हालैण्ड का राजा लक्सम्बर्ग बेचने को तैयार था किन्तु बिस्मार्क ने आक्षेप किया। नेपोलियन तृतीय युद्ध के लिए तैयार नहीं था इसलिए उसने इस मामले को १८१५ की सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करने वाली शक्तियों की सभा को निर्णय के लिए भेजा। १८६७ में लन्दन में इसका निर्णय हुआ जिसके अनुसार लक्सम्बर्ग को एक स्वतन्त्र राष्ट्र बना दिया गया और सब महान् शक्तियों ने इसे मान्यता दी। इस प्रकार नेपोलियन को लक्सम्बर्ग भी नहीं मिला।

फ्रांस की जनता नेपोलियन तृतीय की कूटनीति से तंग आ गई थी। बहुत से लोग देश में बुरबोन या ओरलियन राजवंश की स्थापना की सोचने लगे थे। बहुत से मध्यमवर्गीय व्यापारी तथा कर्मचारी लोग फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना करने की सोचने लगे थे। फ्रांस में राजशाही तथा गणतन्त्रीय प्रवृत्तियों की प्रगति से भी नेपोलियन की स्थिति निर्बल हुई। नेपोलियन ने सोचा कि अपनी स्थिति बनाए रखने

के लिए जनता को सुविधाएँ देनी चाहिएँ। परिणामतः समाचारपत्रों के प्रतिवन्ध ढीले कर दिए गए। उसने सरकारी सदस्यों के चुनाव का व्यय भी वन्द कर देना स्वीकार किया। मन्त्रिमण्डल सम्राट् की अपेक्षा विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी वना दिया गया। उसने उदार-राजशाही के समर्थक ओलिवियर को अपना प्रधान मन्त्री वनाया। १८७० में द्वितीय साम्राज्य के लिए नया संविधान वनाया गया। इसमें व्यवस्था की गई कि विधानमण्डल का द्वितीय सदन सम्राट् के अधिकार में नहीं रहेगा। इन सुधारों से उदार-राजशाही के समर्थकों का समर्थन प्राप्त हुआ। किन्तु इनसे देश के न्यायवादियों और गणतन्त्रवादियों की संतुष्टि नहीं हुई।

फ्रांस में प्रशिया के प्रति अत्यन्त विरोधी विचारधाराएँ प्रचलित थीं। फ्रांस के सुधारवादी प्रशिया को एक प्रतिक्रियावादी राष्ट्र मान कर घृणा करते थे। फ्रांस के कैथोलिक प्रशिया को असहनीय प्रोटेस्टैण्ट राष्ट्र मानते थे। फ्रांस के देशभक्त प्रशिया से इसलिए घृणा करते थे क्योंकि इससे उनके देश को सर्वदा खतरा वना रहता था। फ्रांस १८६६ की कूटनीतिक पराजय का प्रतिशोध लेना चाहता था। निस्संदेह प्रशिया से युद्ध करना फ्रांस के सब ही वर्गों को प्रिय था। किन्तु नेपोलियन तृतीय में प्रशिया से युद्ध करने का साहस नहीं था। उसका स्वास्थ्य विगड़ चुका था। रूस क्रीमिया के युद्ध में फ्रांस के कार्य भूला नहीं था तथा उसका प्रशिया के प्रति मैत्री का भाव होना और फ्रांस से वैमनस्य रखना कोई आश्चर्यजनक वात नहीं थी। आस्ट्रिया का सम्राट् नेपोलियन तृतीय के हाथों किए गए अपने अपमान को भूल नहीं सका था। इटली के निवासियों का भी फ्रांस के प्रति मैत्री-भाव नहीं था क्योंकि नेपोलियन तृतीय ने उन्हें स्वातन्त्र्य-युद्ध के वीच में असहाय अवस्था में छोड़ दिया था। रोम में फ्रांस की सेनाओं के पड़ाव डाले रहने के कारण इटली के देशभक्त फ्रांस से चिढ़े हुए थे क्योंकि रोम को विना मिलाए उनके देश का संगठित होना अधूरा रह जाता था। इंग्लैण्ड की जनता और सरकार दोनों ही नेपोलियन तृतीय की गतिविधि को सन्देह की दृष्टि से देखते थे। जर्मनी की दक्षिणी रियासतों को विस्मार्क ने अपनी समझौते की नीति द्वारा अपने पक्ष में कर लिया था। इन परिस्थितियों में क्या आश्चर्य है कि नेपोलियन ने प्रशिया से युद्ध करने को देश का आत्मघात समझा। फिर भी नेपोलियन प्रशिया से युद्ध करने को प्रस्तुत हो गया क्योंकि इस चाल के द्वारा ही वह सारे फ्रांस के देशवासियों को संगठित करके कुछ प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता था।

विस्मार्क की भी धारणा यही थी कि फ्रांस से युद्ध अवश्यम्भावी है क्योंकि फ्रांस की पराजय हो जाने पर ही जर्मनी का संगठित होना सम्भव था। युद्ध छेड़ने के लिए एक वहाना चाहिए था और वह वहाना स्पेन के उत्तराधिकार के रूप में मिल गया। स्पेन का राजसिंहासन ल्योपोल्ड को दोवारा दिये जाने की योजना वनी। ल्योपोल्ड प्रशिया के राजवंश का राजकुमार था, किन्तु उसने इसे लेने से मना कर दिया था। विस्मार्क के उकसाने पर स्पेन का राजत्व एक वार फिर राजकुमार ल्योपोल्ड को देने का प्रस्ताव हुआ और विस्मार्क ने इस नए निमन्त्रण का पूरा लाभ उठाना चाहा। इस नई चाल की फ्रांस में वड़ी आलोचना हुई क्योंकि फ्रांस स्पेन और

प्रशिया के बीच में बसा हुआ था। नेपोलियन तृतीय ने प्रशिया और स्पेन को विरोध-पत्र भेजे और स्पेन में घोषणा हुई कि राजकुमार ने प्रस्ताव मानने से इन्कार कर दिया है। मामला यहीं समाप्त हो जाता यदि फ्रांस के सम्राट् पर उसके सलाहकारों ने यह दबाव न डाला होता कि इस अवसर को प्रशिया की एक खुली कूटनीतिक पराजय बनाया जाय। बर्लिन स्थित फ्रांस के राजदूत बिनिडिट्टी (Beneditti) को आदेश दिया गया कि वह प्रशिया के राजा से एक स्पष्ट प्रतिज्ञा कराए कि प्रशिया के राजवंश का कोई भी राजकुमार भविष्य में स्पेन के राजसिंहासन के लिए कभी भी उम्मीदवार नहीं बनेगा। इम्स (Ems) में बिनिडिट्टी की प्रशिया के राजा से भेंट का कोई निर्णायक परिणाम नहीं हुआ। कहा जाता है कि बिनिडिट्टी को फ्रांस से आदेश मिला कि "वह प्रशिया के राजा से राजवंश के उम्मीदवार के विषय में स्पष्ट आश्वासन प्राप्त करे अन्यथा युद्ध होगा।" प्रशिया का राजा विलियम प्रथम एक समझदार और मिलनसार व्यक्ति था और शान्तिपूर्ण समझौता पसन्द करता था। बिनिडिट्टी को बड़े आवश्यक आदेश दिये जा रहे थे कि वह एक स्पष्ट और शीघ्र उत्तर प्राप्त करे। विलियम प्रथम ने फ्रांस और स्पेन को तार भेजे कि स्पेन के राज-सिंहासन की स्वीकृति वापस ले ली गई है। किन्तु ग्रेमोन्ट तथा फ्रांस के सैनिक दल सन्तुष्ट नहीं हुए। राजदूत बिनिडिट्टी ने इस बात की प्रतिज्ञा करने पर जोर दिया कि स्पेन का सिंहासन भविष्य में कभी भी स्वीकार नहीं किया जाएगा। प्रशिया के राजा ने चिढ़ कर उससे भेंट बन्द कर दी।

बिस्मार्क राजसिंहासन के मामले में शान्ति हो जाने से प्रसन्न नहीं था। उसे जब 'इम्स' में हुई बिनिडिट्टी की और प्रशिया के राजा की भेंट के विषय का तार मिला तो उसे अवसर मिला। उसने इस तार को संक्षिप्त रूप से समाचारपत्रों में प्रकाशित होने के लिए भेजने का निर्णय किया। बिस्मार्क के शब्दों में, "यदि मैंने यह किया तो इसका प्रभाव फ्रांस रूपी सांड को लाल झण्डी दिखाने जैसा होगा" (If I do this, it will have the effect of red rag upon the Gallic Bull)। बिस्मार्क, रून और मोल्टके के युद्ध की सम्भावना से अत्यन्त प्रसन्न थे। रून ने कहा, "हमारा बूढ़ा खुदा अभी जीवित है और वह हमें अपमान की मृत्यु नहीं मरने देगा।" मोल्टके ने कहा, "यदि मैं इस युद्ध में अपनी सेनाओं का नेतृत्व करने के लिए जीवित रहा तो भले ही शैतान बाद में आकर मेरी बूढ़ी लाश उठा ले जावे मुझे कोई चिन्ता नहीं।" इस तार को इस प्रकार संक्षिप्त किया गया कि फ्रांस यह समझे कि उसके राजदूत का अपमान किया गया है और प्रशिया यह समझे कि उनके राजा का अप-मान हुआ है।

फ्रांस में प्रशिया के विरुद्ध युद्ध की सार्वजनिक मांग की जा रही थी। युद्ध और शान्ति के विषय में निर्णय करने के लिए मन्त्रिमण्डल की तीन बैठकें हुईं। ग्रेमोन्ट ने धमकी दी, "यदि आपने और बैठक बुलाई तो मैं अपना त्यागपत्र आपके सामने फेंक दूंगा।" परिणामतः फ्रांस ने प्रशिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। ग्रेमोन्ट ने कहा "हम आपको आश्वासन तो नहीं अपितु आपके लिए युद्ध ला रहे हैं।"

युद्ध का दोनों देशों में स्वागत हुआ। फ्रांस को आक्रमणकारी माना गया। जर्मनी की दक्षिणी रियासतें फ्रांस के विरुद्ध प्रशिया से मिल गईं। समूचे जर्मनी में स्वातन्त्र्य-युद्ध के गीत गूंजने लगे और संगठित जर्मनी राष्ट्रगीत (Die Wacht Am Rhein) की धुन पर मोर्चों पर जा जमा। जर्मनी वालों का नारा था 'पेरिस चलो' दूसरी ओर पेरिस वाले 'बर्लिन चलो' का नारा लगाते थे। मारसिलेस गीत गूंजने लगा। मार्शल ली बोयुफ (Marshall Le Boeuf) ने घोषणा की कि जेना (Jena) के सैनिक पूरी तरह लैस हैं, किन्तु फ्रांस की सेना के पास अत्यावश्यक युद्ध-सामग्री भी नहीं थी। उनके पास तोपखाना, सामान, दवाइयां तथा गोला-बारूद नहीं था। उनका प्रशिक्षण भी कम हुआ था। सैन्य-संचालक अकुशल और अपर्याप्त थे। रेलों में कम स्थान था तथा उनके गुप्तचर भी कम थे। फ्रांस की सेनाओं के पास जिस फ्रांस की रक्षा करना अनिवार्य था, उनके मानचित्रों की अपेक्षा उनके पास जर्मनी, जिस पर वे आक्रमण करने जा रहे थे, उसके मानचित्र अधिक थे। फ्रांस को किसी से भी सहायता नहीं मिली थी। बिस्मार्क ने रूस को १८५६ की पेरिस सन्धि की कालासागर (Black Sea) सम्बन्धी शर्तों को तोड़ देने की अनुमति देकर अपनी ओर मिला लिया था। इटली भी प्रशिया से प्रसन्न था क्योंकि १८६६ में उसने विनिशिया इटली को वापिस दिला दिया था। इटली को यह भी आशा थी कि यदि फ्रांस हार गया तो उसे रोम भी मिल जाएगा। ग्लैडस्टोन की नीति के कारण इंग्लैण्ड ने निष्पक्षता की नीति अपना ली थी।

जर्मनी ने आक्रमण करके फ्रांस को वीसिनबर्ग (Weissenburg), स्पीचिरेन (Spicheren), वोर्थ (Worth), ग्रेवलॉट (Gravelotte) और सीडन (Sedan) के युद्धों में हराया। सीडान की विजय निर्णायक थी। इसके पश्चात् फ्रांसीसी सेनाओं ने आत्मसमर्पण कर दिया और नेपोलियन तृतीय को वन्दी बना लिया गया। 'इस प्रकार फ्रांस की दूसरी राजशाही की समाप्ति होकर सितम्बर, १८७० में तृतीय गणतन्त्र की घोषणा हुई। बिस्मार्क इतने से संतुष्ट नहीं हुआ और पेरिस की ओर बढ़ता चला गया। उसका घोर मुकाबला हुआ और बहुत दिन घेरा डालने के पश्चात् पेरिस नगर ने आत्मसमर्पण किया। १८७१ की फ्रेन्कफर्ट की सन्धि के अनुसार युद्ध बन्द हुआ।

उपर्युक्त घटनाओं से यह स्पष्ट हो गया कि नेपोलियन तृतीय की विदेश-नीति आरम्भ में थोड़ी-सी चमक कर पूर्णतः असफल रही। १८६० के पश्चात् फ्रांस पर नियन्त्रण रखने के लिए सफलता प्राप्त करना अत्यावश्यक था किन्तु सफलता मिली नहीं। वह न तो शत्रु से सुलझ सका और न मित्रों को अपने साथ रख सका। डेन, पोलैण्ड और आस्ट्रिया के मामलों में से किसी से भी उसकी प्रतिष्ठा नहीं बढ़ पाई।

उसने मेक्सिको में लेटिन कैथोलिक साम्राज्य के प्रयत्न में व्यर्थ ही बहुमूल्य समय गँवा दिया जबकि दूसरी ओर प्रशिया क्रमशः शक्तिशाली होता जा रहा था और अत्यन्त दुःखद बात यह है कि मेक्सिको के मामले में भी वह बुरी तरह असफल

रहा। १८६४ तक क्रीमिया के युद्ध में बना इंग्लैण्ड-फ्रांस संगठन बिल्कुल निर्बल हो चुका था। पेरिस सम्मेलन के पश्चात् जो मित्रता नेपोलियन तृतीय ने रूस के साथ की थी वह १८६३ में पोलैण्ड के विद्रोह से सहानुभूति रखने के कारण समाप्त हो गई। विस्मार्क ने जब भी किसी के साथ भलाई की उसे अपना मित्र बना कर रखा किन्तु नेपोलियन तृतीय ने इटली को बहुमूल्य सहायता और पारितोषिक दिए किन्तु फिर भी उसकी कृतज्ञता प्राप्त नहीं कर पाया। पोप का समर्थन करने के करण वह पीडमोण्ट-सारडीनिया की मित्रता खो बैठा था। १८६६ में वह आस्ट्रिया की सद्भावना प्राप्त किए बिना ही प्रशिया से शत्रुता कर बैठा था। जो भी हो, उसकी नीति समकालीन यूरोपी शासकों की तरह स्वार्थी नहीं थी। वह अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति का प्रबल समर्थक था। उसकी सहानुभूति सारे देशों के राष्ट्रवादियों के साथ थी यद्यपि इस सहानुभूति का मूल्य वह साथ ही ले लिया करता था। उसने यूरोप का पथ-निर्देशन करने की अपेक्षा असमंजस में डाल दिया, परिणामतः लोग उसे समझ नहीं सके और न उस पर विश्वास कर सके। उसकी नीति अस्थिर और अविश्वसनीय थी। उसके अपने शब्दों में "मैं कभी लम्बे चौड़े नक्शे नहीं बनाता, मैं केवल वर्तमान की आवश्यकता को महत्त्व देता हूँ।" उसके विषय में सत्य ही कहा गया कि, "बेचारे शान्तिप्रिय नेपोलियन में नेपोलियन महान् जैसी बुद्धि नहीं थी।" ('Napoleon le petit' had not the genius of 'Napoleon le grand')

सीमैन के विचार में, "उस क्षेत्र के सबसे अधिक रोचक अभ्यासों में, जिसे तुलनात्मक जीविनी कहा जा सकता है, लुई नेपोलियन तथा एडोल्फ़ हिटलर के बीच समानताओं व असमानताओं का अध्ययन करना है। कई दशाओं में उनके जीवन समानान्तर रेखाओं पर चलते मालूम होते हैं और इसका अध्ययन एक के द्वारा दूसरे को समझने की शक्ति को चमकाने में सहायता देता है। वे संदिग्धताओं के नियमों को एक समान प्रकार से विलक्षणता के साथ हटाते हुए ऊपर उठे। उन्होंने एक-सा ही काम किया, पहले पुनःस्थापन और फिर, अपने ग्रहण किए हुए राज्यों की शक्ति का खण्डन और दोनों ने उस अन्तर्राष्ट्रीय नींव को नष्ट किया जिस पर उनके समय के यूरोप की स्थापना की गई थी। जैसे बड़ी चीज़ों में वैसे ही छोटी चीजों में दोनों विचित्र रूप से समान थे। दोनों उन लोगों से अपरिचित थे जिनका उन्होंने पथ-प्रदर्शन किया। हिटलर ने आस्ट्रियन स्वर में जर्मन भाषा बोली और लुई नेपोलियन ने जर्मन स्वर में फ्रांस की भाषा बोली। दोनों ने असफल आन्दोलन किए और उनके फलस्वरूप बन्दी हुए। स्ट्रेसबर्ग व बोलोन लुई नेपोलियन के लिए वही हुए जो हिटलर के लिए १९२३ में म्युनिक का उपद्रव। और लैंड्सबर्ग हिटलर को बहुत कम महत्त्वपूर्ण लगा जितना कि हैम लुई नेपोलियन को लगा था, फिर भी प्रथम नेपोलियन के संस्मरणों को मिलाकर The Extinction of Pauperism ने बहुत मात्रा में दूसरे साम्राज्य की उत्पत्ति से वही सम्बन्ध दिखाया जो Mein Kampf ने तीसरे जर्मन राज्य को बनाने में किया। अनिवार्य रूप से, दोनों का उत्पादक स्वभाव था और यह उनकी आँखों से ही टपकता था। हिटलर के बिखरे-बिखरे बाल और उसकी पेटीदार बरसाती पिछड़ी हुई असभ्यता

का अटल प्रभाव डालती थी और लुई नेपोलियन के यदि कुछ कम चाटुकारीपूर्ण चित्र देखे जावें तो कोई भी यह विचार बनाने से नहीं रुक सकता कि वह ऐसा लगता है जैसे कोई इटली का नीच नौकर हो, जिसे हाल ही में किसी चतुर्थ स्तर के होटल, से निकाल दिया गया हो। और यदि लुई नेपोलियन की आँखें बहुत कम दिखाई देती थीं तो हिटलर की आँखों से बचना असंभव था, लुई नेपोलियन की आँखें भी, जबकि वे आधी बंद मालूम होती थीं, ऐसी मालूम पड़ती थीं कि उन्होंने उसकी पीढ़ी के लोगों को जादू से प्रभावित कर दिया है, ऐसे जैसे हिटलर की आँखें जो हमेशा पूरी खुली रहती थीं।

"दोनों के पास गिरोह थे। दोनों ही उन राजनीतिज्ञों के इशारों से सत्ताधारी बने जिन्होंने अपनी योग्यताओं को हीन समझा। दोनों ने भौतिक समृद्धि पर केन्द्रित और लोक-प्रदर्शन को खूब प्रोत्साहित कर लोगों का ध्यान राजनीति से हटाया। दोनों का प्रारम्भिक प्रचार यह दिखाता है कि उन्होंने अपने समय की विरोधी राजनीतिक शक्तियों के नारे चुराने की कला का चतुर प्रयोग किया और यह बहाना किया कि उन्होंने उन बातों में समन्वय लाने का रहस्य ढूंढ लिया है जिन्हें उनके शासक समन्वय के अयोग्य बताते थे। अतः हिटलर ने राष्ट्रवाद की छाप अपनी धोखेबाजियों पर लगाई, और अपनी समाजवादी छाप अपने शत्रुओं पर और तब दोनों पक्षों को यह फुसलाकर मिलाया कि वह उनका मित्र है। इसी तरह लुई नेपोलियन ने फ्रांस को जनतन्त्र और व्यवस्था, सामाजिक कल्याण व सामाजिक अनुशासन, दोनों ही पेश किए। उसने जनता को सर्वमताधिकार दिया, सेना को साम्राज्य वाला वैभव, धर्म वालों को स्वतन्त्रता दी और व्यापारियों को लाभकारी विनियोग का खुला क्षेत्र, ठीक उसी प्रकार जैसे हिटलर ने साथ-साथ यह दावा किया कि वह बहुरूपी भंडारों के एकाधिकार से जर्मनी को मुक्त कर रहा है, और जबकि उसी के साथ वह उसे रूहर के उद्योगपतियों के लिए सुरक्षित कर रहा था। अन्त में, यह भी पता चल सकता है कि यदि दोनों ने निर्माण के कुछ काम किए तो वह भिन्न कारणों से नहीं।

"फिर भी लुई नेपोलियन व अन्य तानाशाहों व लुटेरों तथा हिटलर के बीच एक अनिवार्य अन्तर है जिसे यदि समझ लिया जाये, तो वह उसके चरित्र की कुंजी प्रदान करता है। इस प्रकार के बहुत से लोगों को महान् निर्दयता के साथ राक्षस जैसा अधिकार मिल जाता है। यह बात लुई नेपोलियन के बारे में सच नहीं। उसके पेट में ऐसी कोई ज्वाला नहीं थी जो उसे नेपोलियन प्रथम या हिटलर या मुसोलिनी तक के तुल्य करती। उसके पास न तो गति थी, न संगठन करने वाली योग्यता, और न अभ्यस्त प्रशासन के वास्ते निरन्तर प्रयोग का उपहार जो उसके चाचा, या महान् फ्रेडरिक, या लुई चौदहवें में स्पष्ट हुआ था। किसी भी वस्तु के विषय में एक स्पष्ट निर्णय करने की योग्यता का अभाव उसके चरित्र का का बड़ा लक्षण था। जब कभी कोई निर्णय हर हाल में उसी के ऊपर आ पड़ता था, तो बड़ी कठिनाई से उसे यह समझाया जा सकता था कि अब उससे पीछे हटा

जावे। क्रान्ति, क्रीमिया व इटली की लड़ाई में प्रवेश, १८६६ में कोई काम न करने का निश्चय और १८७० में क्रिया के सम्पन्न करने का विचार—ज्यों ही वे घटित हुए उसने खेद प्रकट किया और उनकी ओर फिर वापस जाने का प्रयत्न किया, सिवाये १८७० के निर्णय के—जो घातक सिद्ध हुआ।"

Suggested Readings

Arnaud, R. : *The Second Republic and Napoleon III, 1930.*

Aubry, O. : *The Second Empire, 1940.*

Dickinson, G. Lowes : *Revolution & Reaction in Modern France, 1927.*

Elton, G. : *The Revolutionary Idea in France, (1789-1871), 1923.*

Fisher, H. A. L. : *Bonapartism.*

Fisher : *The Republican Tradition in Europe.*

Forbes, A : *A Life of Napoleon, the Third.*

Guedalla, P. : *The Second Empire.*

Guerard, H. : *Napoleon III, 1943.*

Huddleston, S. : *France.*

Marriott, Sir, J. : *The French Revolution of 1848 in its Economic Aspect, 1913.*

Mckay, D. C. : *The National Workshops : A Study in the French Revolution of 1848, 1933.*

Plamenatz, J. : *The Revolutionary Movements in France (1815-1871) 1952.*

Partgate, R. : *Story of a Year : 1848.*

Schapiro, J. S. : *Liberalism and the Challenge of Fascism : Social Forces in England and France. (1815-1870), 1949.*

Seignobos, C. : *A History of the French People.*

Simpson, F. A. : *The Rise of Louis Napoleon, 1950.*

Simpson, F. A. : *Louis Napoleon and the Recovery of France (1848-1856), 1923.*

Thompson, J. M. : *Louis Napoleon and the Second Empire, 1954.*

Whitridge, A. : *Men in Crisis : The Revolutions of 1848.*

अध्याय १४

बेल्जियम की स्वतंत्रता

(Independence of Belgium)

हालैण्ड और बेल्जियम संघ (Union of Holland and Belgium)—चार्ल्स पंचम के राज्य काल में नीदरलैण्ड्ज़ के सत्रह प्रान्त स्पेन के आधीन थे। स्पेन के राजा फिलिप द्वितीय के शासनकाल में विद्रोह हुआ और अन्ततः उत्तर के सात प्रान्तों ने स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली और संयुक्त-प्रान्त (या हालैण्ड) के नाम से पुकारे जाने लगे तथा शेष दस प्रान्त स्पेन के ही आधीन रहे। १७१३ में स्पेन का उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्ध समाप्त हो गया और यूट्रिक्ट की सन्धि हुई। उसके अनुसार बेल्जियम के दस प्रान्त आस्ट्रियन के नाम से पुकारे जाने लगे। फ्रांस की क्रांति के समय फ्रांस ने आस्ट्रियन-नीदरलैण्ड्ज़ जीत लिया और ये प्रान्त बीस वर्ष तक फ्रांस का भाग रहे। फ्रांस ने हालैण्ड को जीत लिया और बहुत समय तक यह भी फ्रांस का एक भाग बना रहा था।

१८१४ में नेपोलियन के पतन के पश्चात् हालैण्ड के राजा को पुनः पदासीन किया गया तथा उसने हालैण्ड की जनता को एक नया संविधान दिया था। विआना सम्मेलन में फ्रांस के उत्तर-पूर्वी सीमान्त पर एक शक्तिशाली प्रतिरोध करने योग्य राज्य बनाने का निर्णय किया गया और परिणामतः आस्ट्रियन-नीदरलैण्ड्ज़ अर्थात् बेल्जियम और हालण्ड को संयुक्त कर दिया गया था।

कठिनाइयाँ (Difficulties)—पिट (Pitt) की उत्कट अभिलाषाओं की पूर्ति हुई किन्तु विआना में उपस्थित कूटनीतिज्ञों ने कतिपय तथ्यों की अवहेलना कर दी थी। नवीन राष्ट्र के दो भागों में राष्ट्रीयता और धर्म के मतभेदों की खाई थी। दोनों भाग शताब्दियों तक पृथक् रहे, इस कारण दोनों देशों में अधिक समन्वय नहीं रहा। हालैण्ड के निवासी प्रोटैस्टैण्ट और बेल्जियम के कैथोलिक थे। वे भाषा के दृष्टिकोण से भी परस्पर भिन्न थे। फ्रांस की भाषा बेल्जियम की साहित्यिक भाषा ही नहीं अपितु उच्चवर्ग की बोलचाल की भाषा भी थी। यद्यपि जनता का फेलिमश (Felmish) अंश डच लोगों से सम्बन्धित था तथापि डच सभ्यता इतनी विकसित नहीं हुई थी कि उसे भिन्न तत्त्व मान कर मान्यता दी जा सकती।

प्रो० फाईफ (Fyffe) के मतानुसार, "यद्यपि बेल्जियम और हालैण्ड की विषमता अजेय नहीं थी तथापि यह इतनी अधिक थी कि दोनों देशों में तारतम्य स्थापित करके कार्य चलाना कठिन था। हेग (Hague) स्थित सरकार ने विरोधी तत्त्वों में समझौता कराने के लिए ठीक मार्ग नहीं अपनाया था। संयुक्त-राज्य के

लिए एक संविधान का निर्माण करने के लिए आयोग की नियुक्ति की गई। बेल्जियम की जनता के विरोध करने पर भी इस बात की परवाह न की गई कि बेल्जियम की जनसंख्या हालैण्ड से कहीं अधिक है। दोनों देशों को राज्य-सभा (States-General) में बराबर का प्रतिनिधित्व दिया गया था। बेल्जियम की जनता द्वारा संविधान का निषेध कर देने पर भी इसे लागू कर दिया गया। आगामी पन्द्रह वर्षों में बेल्जियम की जनता को सारे राज्यपदों से वंचित कर दिया गया और अधिकांश पद हालैण्ड की जनता को ही दिए गए। इसमें आश्चर्य नहीं कि बेल्जियम की जनता ने इन विदेशियों का स्वागत नहीं किया। राज्यसभा का अधिवेशन हमेशा डच प्रदेश में ही होता रहा, कभी भी बेल्जियम प्रदेश में नहीं हुआ। इससे भी बड़ा असन्तोष फैला। डच भाषा को देश की राज्य-भाषा घोषित किया गया, इससे भी बेल्जियम की जनता में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ। डच सरकार की आर्थिक नीति को भी बेल्जियम की जनता अन्यायपूर्ण मानती थी। जिन करों को बेल्जियम की जनता पसन्द नहीं करती थी उन्हीं करों (Taxes) को जब लगा दिया गया तब जनता द्वारा उनका घोर विरोध हुआ। जो भी पत्रकार सरकार विरोधी लेख लिखते हुए पाये जाते उन्हें कड़ा दण्ड दिया जाता था। दोनों देशों का ऋणभार बराबर नहीं था। हालैण्ड, बेल्जियम की अपेक्षा अधिक ऋणी था। ऋण को चुकाने के लिए सारे देश पर समान कर लगाया गया इससे बेल्जियम की जनता बहुत असन्तुष्ट हुई। १८२१ में आटे और मांस पर नए कर लगाने से स्थिति और भी बिगड़ गई। धर्मभेद के विषय में तो देश के दोनों भाग बिल्कुल पृथक्-पृथक् थे। राज्य संयोजन के समय बेल्जियम के कैथोलिक बिशपों ने प्रोटेस्टैण्टों को धार्मिक सहिष्णुता प्रदान किये जाने का बड़ा विरोध किया। बेल्जियम के चर्च-अधिकारी शिक्षा पर पूर्णाधिकार रखने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ थे किन्तु सरकार ने 'शिक्षा' को धर्मनिरपेक्ष अधिकारियों को सौंपने का प्रयत्न किया। हालैण्ड का कठोर शत्रु बेल्जियम का चर्च था। बेल्जियम के धर्माधिकारी-दल ने बेल्जियम से डचों को निकालने के उद्देश्य से राजनीतिक विरोधी दल से गठजोड़ किया।

विद्रोह (Revolt)—१८३० के फ्रांस के जुलाई विद्रोह के कुछ महीने पूर्व बेल्जियम के निवासियों का अपने शासन से इतना विरोध था कि इसके प्रकट होने के लिए किसी अन्य झटके की आवश्यकता नहीं थी। जुलाई क्रान्ति से आवश्यक चिनगारी प्राप्त हुई। क्रान्तिकारी नाच समारोह इस विस्फोट का अग्रदूत था। पोलिगनेक (Polignac) द्वारा इस विद्रोह की योजना तैयार की गई तथा विदेशी आन्दोलनकारियों ने जो मुख्यतः फ्रांसीसी थे, इसे उभारा। फ्रांस बेल्जियम के विद्रोहियों से सहानुभूति रखता था क्योंकि विद्रोह के कारण सीमान्त का शत्रु-राष्ट्र निर्बल होता था तथा उन्हें बेल्जियम को फ्रांस में मिलाने का सुअवसर प्राप्त होता था। विद्रोह नगरों से ग्रामों में फैला।

हालैण्ड के राजा ने बेल्जियम के लिए एक अलग राज्य बनाने का आश्वासन दिया था किन्तु इससे बेल्जियम की जनता सन्तुष्ट नहीं हुई। ब्रुसेल्स में डच सेना के आने से शान्ति की सारी आशाएँ व्यर्थ हो गईं। कई बार आकस्मिक युद्ध हुए। सेना

के हट जाने पर एक अस्थायी सरकार की स्थापना हुई और बेल्जियम की स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी गई। हालैण्ड के उत्तराधिकारी राजकुमार को नए देश का राजा बनने की आशाएँ थीं, किन्तु विद्रोह की हिंसात्मक कार्रवाई, फ्रांस के दूतों और स्वयंसेवकों की गतिविधि और डच सेना द्वारा ऐन्टवर्प पर गोलाबारी के कारण समझौते की सारी आशाओं पर पानी फिर गया था।

इस झगड़े में यूरोपीय शक्तियों के टकरा जाने का भय था। बेल्जियम की स्वतन्त्रता और हालैण्ड से अलग हो जाना १८१५ के शान्ति-समझौते का अतिक्रमण था और यूरोप की सारी शक्तियों ने इस समझौते को निबाहने की प्रतिज्ञा की थी। केवल एक ही बात से बचाव हुआ था। यूरोप के अधिकांश देशों ने लुई फिलिप को फ्रांस का राजा मान लिया था तथा वे बेल्जियम के मामले में उसका समर्थन करने के लिए प्रस्तुत थे। लुई फिलिप का स्वार्थ था कि शान्ति बनी रहे क्योंकि उसे पता था कि यदि वह विद्रोहियों की सलाह पर चलेगा तो उसे अपना राज्यसिंहासन तथा जीवन खोने का डर है। उसे मालूम था कि वह यूरोप के देशों के संगठन के सम्मुख नष्ट हो जाएगा। टैलीरेण्ड बड़ी योग्यता से उसका पथप्रदर्शन कर रहा था और उसे विश्वास था कि उस समय सबसे बड़ी आवश्यकता यह थी कि फ्रांस को कुछ साथी मिल जाएँ जिससे वह अकेला न रहे। इस ध्येय को सामने रखते हुए टैलीरेण्ड फ्रांस का राजदूत बन कर इंग्लैण्ड गया। वहाँ उसने वेलिंगटन और विलियम चतुर्थ से भेंट करके आश्वासन दिया कि फ्रांस बेल्जियम के विद्रोह को अपनी शक्ति की वृद्धि करने के निमित्त उपयोग नहीं करेगा। उसने यूरोप के देशों की नीति का निर्देशन करने के लिए 'हस्तक्षेप मत करो' का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इस विषय में इंग्लैण्ड और फ्रांस का इतना गहरा विश्वास पैदा हुआ कि यूरोप के अन्य राष्ट्रों द्वारा फ्रांस के विरुद्ध युद्ध आरम्भ करने की चर्चा ही समाप्त हो गई। लन्दन सम्मेलन में बेल्जियम के मामलों की व्यवस्था करने के प्रस्ताव पर विचार हुआ। लड़ाई बन्द कर दी गई। १८३० के समाप्त होने से पहले ही बेल्जियम की स्वतन्त्रता को मान्यता दे दी गई थी। जनवरी, १८३१ में बेल्जियम की सीमाओं को निर्धारित करने के सम्बन्ध में बड़ी शक्तियों ने एक सन्धि पर हस्ताक्षर किये।

किन्तु मामला यहीं नहीं सुलझा क्योंकि बेल्जियम के राजा के विषय में समझौता नहीं हुआ था। हालैण्ड और बेल्जियम की सरकारों को उनकी सीमाओं के सम्बन्ध में किये गए निर्णय को मान्यता देनी थी। बेल्जियम की जनता लुई फिलिप के दूसरे पुत्र को राजा बनाने के पक्ष में थी। यद्यपि लुई फिलिप ने प्रकट रूप से इस प्रस्ताव का विरोध किया, परोक्ष रूप से वह इसे प्रोत्साहन देता रहा। परिणाम यह हुआ कि उसका पुत्र ड्यूक डी नीमोवर्स (Duc de Nemours) फरवरी, १८३१ में राजा चुन लिया गया। इस व्यवस्था को यूरोप की शक्तियाँ मानने के लिए तैयार नहीं थीं और इसलिए लुई फिलिप ने अपने पुत्र के लिए राजमुकुट लेने से इन्कार कर दिया। इंग्लैण्ड और फ्रांस के बीच यह समझौता हुआ कि सेक्से-कोबर्ग (Saxe Coburg) के ल्योपोल्ड को राज्यसिंहासन दिया जाय और वह लुई फिलिप की पुत्री से

विवाह करे। ल्योपोड ने राजसिंहासन को इस शर्त पर स्वीकार किया कि बेल्जियम के हित में सीमाओं में कुछ परिवर्तन कर दिया जाएगा।

बेल्जियम की सीमाओं में परिवर्तन करने में केवल ग्राण्ड-डची ऑफ लक्सम्बर्ग की स्थिति के कारण कठिनाई पड़ी। १८१४ में ग्राण्ड-डची हालैण्ड को दे दी गई थी। १८३० में ग्राण्ड-डची के निवासियों ने बेल्जियम की जनता से विद्रोह किया और दुर्ग को छोड़ कर सारा प्रदेश बेल्जियम के हाथ में चला गया। लन्दन सम्मेलन ने लक्सम्बर्ग को हालैण्ड का भाग माना था। किन्तु ल्योपोल्ड की प्रार्थना पर जब लक्सम्बर्ग पर पुनः भविष्य में विचार करने को कहा गया तो हालैण्ड ने शस्त्र उठाए और पचास हजार सैनिकों को बेल्जियम भेजा। ल्योपोल्ड ने फ्रांस से सहायता मांगी और फ्रांस की सेनाएँ तुरन्त सीमा पार कर गईं। डच सेना पीछे हट गई और फ्रांस की सेना भी वापिस बुला ली गई। लन्दन सम्मेलन में यह मामला पुनः विचारार्थ आया और सुझाव दिया गया कि लक्सम्बर्ग को हालैण्ड और बेल्जियम के बीच बाँट दिया जाए। बेल्जियम ने यह सुझाव स्वीकार कर लिया किन्तु हालैण्ड ने इसे ठुकरा दिया। परिणामतः ल्योपोल्ड और महान् शक्तियों में एक सन्धि हुई। १८३२ के आरम्भ तक बेल्जियम को सारी शक्तियों ने मान्यता दे दी थी तथा पामर्स्टन ने फ्रांस को बेल्जियम का थोड़ा-सा भाग भी देने से इन्कार कर दिया।

यद्यपि बेल्जियम राज्य की स्थापना हो गई थी तो भी हालैण्ड के राजा के विरोध से निपटने की समस्या शेष थी। डच राजा ऐन्टवर्प के दुर्ग पर अपना अधिकार किए बैठा था और वह तर्क अथवा शक्ति, किसी भी बात को मानने से इन्कार करता था। फ्रांस की सेना ने दुर्ग पर घेरा डाला और इंग्लैण्ड के समुद्री बेड़े ने शेल्डट नदी में यातायात पर रोक लगा दी। घोर गोलाबारी होने के पश्चात् दुर्ग का पतन और युद्ध का अन्त हो गया। शान्ति के लिए पुनः बातचीत आरम्भ हुई। बेल्जियम को मनचाहा स्थान मिल गया, इसलिए वह कोई जल्दी में नहीं था और हालैण्ड का राजा केवल हठ के कारण संकोच कर रहा था। यह स्थिति कई वर्षों तक बनी रही। अन्ततः १८३९ में लन्दन सन्धि के द्वारा हालैण्ड राज्य की स्वतन्त्रता और तटस्थता को सारी शक्तियों ने जिनमें हालैण्ड भी था, मान्यता प्रदान की। १९१४ में इस मान्यता के अतिक्रमण के कारण ही ब्रिटेन को जर्मनी से सहसा युद्ध में अड़ना पड़ा।

यह बात उल्लेखनीय है कि इस सारे काल में पामर्स्टन का रुख बुद्धिमत्तापूर्ण तथा सहनशीलता का रहा। उसने डचों के हठ और बेल्जियनों को चिढ़ाने वाले रुख से सुलझने में अत्यन्त सहनशीलता दिखाई। उसने बड़ी बुद्धिमत्ता से इस बात को माना कि १८१४ की व्यवस्था असफल रही और उसके स्थान पर नई व्यवस्था बनानी चाहिए।

Suggested Readings

Cambridge Modern History, Vol. X.
Ensor : *Belgium.*
Fyffe : *History of Modern Europe.*
Phillips : *Modern Europe.*

अध्याय १५

१८१५ से १९१८ तक आस्ट्रिया-हंगरी

(Austria-Hungary from 1815 To 1918)

आस्ट्रिया-हंगरी ने नेपोलियन की पराजय मे बहुत महत्त्वपूर्ण भाग लिया। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि विआना नगर को यूरोप के मानचित्र के पुर्निर्माण के लिए चुना गया हो। आस्ट्रिया के चांसलर मेटरनिक ने आस्ट्रिया की नीति को इतना शक्तिशाली और ठोस बनाया कि बाद में वह अपने आप को नेपोलियन का विजेता कहने लगा। आस्ट्रिया-हंगरी पर, १७९२ से १८३५ तक फ्रांसिस प्रथम ने, १८३५ से १८४८ तक फर्डिनेण्ड प्रथम ने तथा १८४८ से १९१८ तक फ्रांसिस जोसफ प्रथम ने राज्य किया।

मेटरनिक प्रणाली (Metternich System)—राजकुमार मेटरनिक का जन्म १७७३ में हुआ तथा १८५९ में उसकी मृत्यु हुई थी। वह जन्म से ही धनाढ्य था तथा बहुत छोटी आयु में वह आस्ट्रिया की कूटनीतिक सेवा में प्रविष्ट हुआ। बहुत थोड़े से समय में उसे बहुत सा कूटनीतिक अनुभव हुआ क्योंकि उसे यूरोप की एक राजधानी से दूसरी राजधानी में बदला जाता रहा था। जब उसकी आयु कठिनता से ३६ वर्ष की थी तो उसे आस्ट्रिया का चान्सलर नियुक्त किया गया तथा विआना से इंग्लैंड भाग जाने के अवसर तक लगभग ४० वर्ष तक वह इस पद पर आसीन रहा था।

मेटरनिक

मेटरनिक का व्यक्तित्व केवल आस्ट्रिया और जर्मनी की ही नही, अपितु सारे यूरोप भर की कूटनीति

का केन्द्र था। वह उन्नीसवीं शताब्दी का सबसे अधिक विख्यात आस्ट्रिया का राजनीतिज्ञ था। वह कूटनीतिज्ञों का शिरोमणि तथा यूरोप की कूटनीति के दाव-पेंचों से पूर्णरूपेण परिचित था। वह अत्यन्त घमण्डी व्यक्ति था। उसकी धारणा थी कि सारे संसार का क्रम उसके सहारे चल रहा है। उसके शब्दों में, "मेरी स्थिति में यह अद्भुत बात है कि जहाँ भी मैं होता हूँ सब की आशाएँ, सब की आँखें उसी स्थान पर लगी होती हैं। क्या कारण है कि असंख्य व्यक्तियों में केवल मैं ही विचार करता हूँ जब कि अन्य लोग कुछ भी नहीं सोचते, केवल मैं ही कार्य करता हूँ जबकि अन्य लोग कुछ भी नहीं करते तथा मैं ही लिखता हूँ क्योंकि अन्य लोग इस योग्य नहीं हैं।" उसकी धारणा थी कि उसकी मृत्यु से पूर्ण न होने वाली रिक्तता रह जायगी।

मेटरनिक फ्रांस की क्रान्ति तथा उसके ध्येय का शत्रु था। वह क्रान्ति को, "एक रोग जिसका उपचार करना चाहिए, एक ज्वालामुखी जिसे बुझाना चाहिए, एक गंदा फोड़ा जिसे गर्म सलाखों से जला देना चाहिए तथा एक दानव समझता था, जो समूची सामाजिक व्यवस्था को निगलने के लिए मुँह खोले खड़ा था। उसके विचार से प्रजातन्त्र दिम के प्रकाश को रात्रि के घोर अन्धकार में बदल सकता है।"

आरम्भ में उसे बड़ा कठिन कार्य करना था। नेपोलियन आस्ट्रिया के राजघराने का सम्बन्धी था, इस कारण उसके विरुद्ध कार्य करना बड़ा कठिन था। ठीक इसी प्रकार मेटरनिक रूस का पूर्ण नाश नहीं चाहता था क्योंकि इससे यूरोप में शक्ति-संतुलन के बुरी तरह से अस्तव्यस्त हो जाने का अन्देशा था। १८१० से १८१३ तक मेटरनिक नेपोलियन को ज़ार से भिड़ाने की नीति का अनुसरण करता रहा। जब १८१२ में नेपोलियन ने रूस पर आक्रमण किया उस समय मेटरनिक ने उसे सहायता का आश्वासन दिया किन्तु साथ-ही-साथ रूस को भी वचन दिया कि रूस के विरुद्ध आस्ट्रिया की सेना प्रयुक्त नहीं की जायगी। १८१३ में राष्ट्रों के युद्ध में (Battle of Nations) तथा १८१४ के युद्ध में आस्ट्रिया के हस्तक्षेप से नेपोलियन का पतन हो गया और विजेता राष्ट्रों में आस्ट्रिया को महत्त्व प्राप्त हुआ।

विआना सम्मेलन (१८१४-१५) में मेटरनिक को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया और उसके नेतृत्व में यूरोप की बागडोर फ्रांस से हटकर आस्ट्रिया के हाथों में आ गई। दूरस्थ आस्ट्रियन-नीदरलैण्ड्ज़ के बदले में उसे इटली में लोम्बार्डी और विनिशिया मिले थे। उसने परमा, मोडिना और टुस्कने के सिंहासनों पर हैप्सबर्ग राज्य-वंश के वंशजों को बैठाया था। इस प्रकार उसने इटली पर सक्रिय नियन्त्रण स्थापित किया था। इसी प्रकार उसने जर्मनी के मामलों में भी अपने देश के लिए महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया था। आस्ट्रिया 'जर्मन डायट' का नियन्त्रणकर्त्ता बना और उसके अनुमोदन के बिना वहाँ कुछ भी नहीं बन सकता था। उसने फ्रांस के चारों ओर शक्तिशाली सीमान्त देशों का निर्माण किया जिससे वह भविष्य में उत्पात न कर सके।

मेटरनिक यूरोप में 'यथा स्थिति' (status quo) बनाए रखने के पक्ष में था। वह विआना-व्यवस्था को स्थायी बनाना चाहता था इसलिए उसने रूस, प्रशिया

और ग्रेट ब्रिटेन के साथ चतुर्मुखी सन्धि की थी। महान् शक्तियों ने निर्णय किया कि वे समय-समय पर मिलते रहेंगे, जिससे कि वे आपस की समस्याओं पर विचार करके यूरोप में शान्ति बनाए रखें। १८१८ में ऐक्स-ला-चेपल में प्रथम सम्मेलन
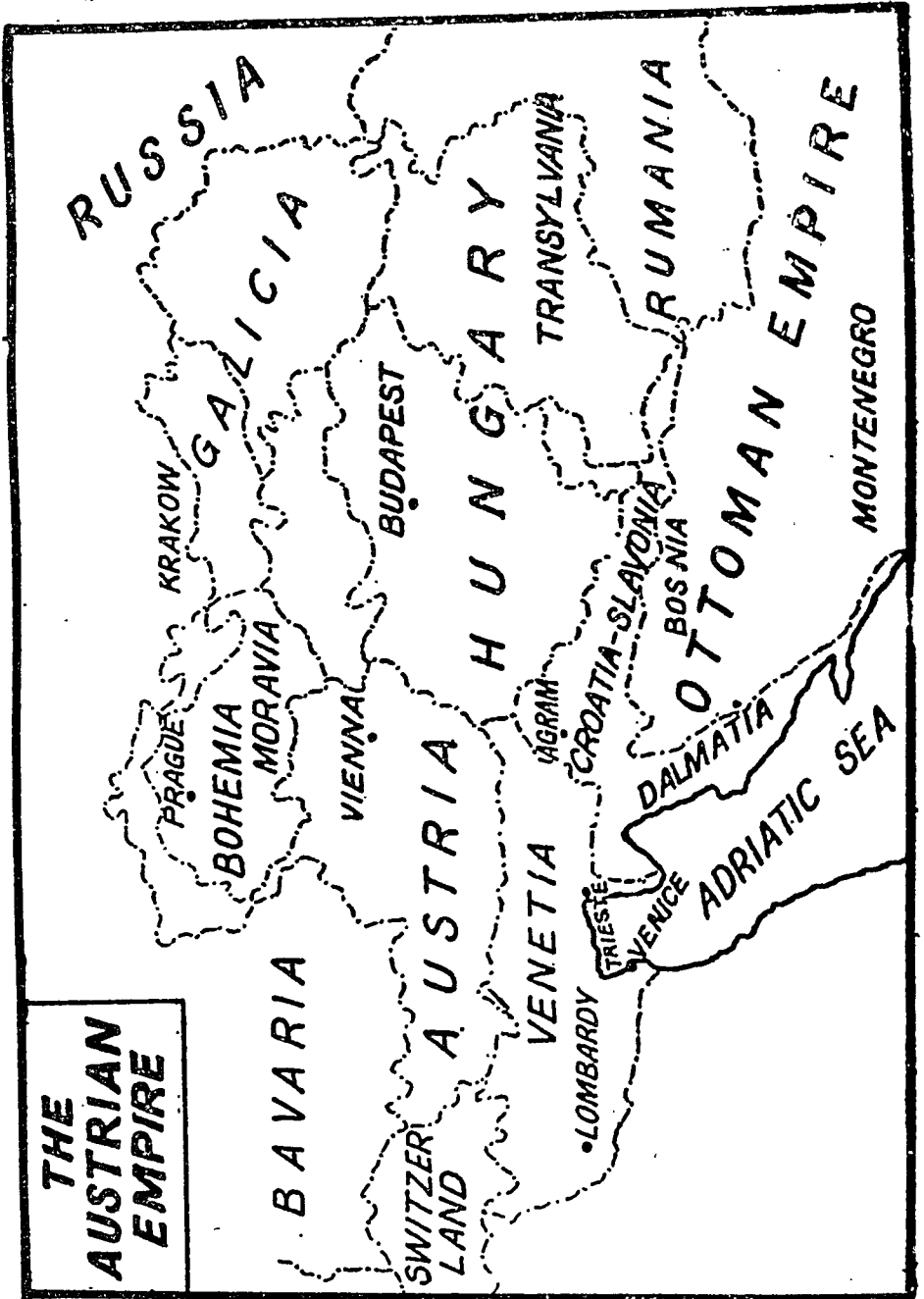
हुआ। इस सम्मेलन में यह प्रयत्न किया गया कि विआना में देशों की जो सीमा निर्धारित की गई थी उसे सारे राष्ट्र स्थायी मान लें, किन्तु ब्रिटेन नहीं माना। १८२०

में ब्रिटेन के न चाहने पर भी ट्रोप्पू की व्यवस्था ब्रिटेन के विरोध करते रहने पर भी मान ली गई। इस व्यवस्था के अनुसार यूरोप की शक्तियों को यह अधिकार दिया गया कि यदि किसी भी देश में क्रान्ति हो और उस क्रान्ति से अन्य देशों को खतरा हो तो उन्हें उस देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार होगा। इस व्यवस्था से मेटरनिक सारे यूरोप में पुलिस का कार्य करके जहाँ भी सुधारवाद और राष्ट्रवाद का आन्दोलन हो उन्हें कुचल देने में समर्थ हो गया था। इस नीति का अनुसरण करके आस्ट्रिया ने नेपल्स और पीडमोण्ट के विद्रोह का दमन किया था। इसी प्रकार फ्रांस को स्पेन में हस्तक्षेप करके स्पेन के राजा को पुनः आसीन करने की छूट दी गई थी। १८१२ में सम्मेलन-युग समाप्त हुआ। ब्रिटेन ने विआना-सम्मेलन में स्पेन और अपने अमेरिका के उपनिवेशों के मामलों को लेकर संगठन को छोड़ दिया। किन्तु मेटरनिक अपनी इच्छानुसार कार्य कर चुका था। हज़ारों राष्ट्रवादियों को कैद कर लिया गया था अथवा उन्हें देशनिकाला या मृत्यु दण्ड दिया जा चुका था। निकृष्ट तथा जनता से प्रतिशोध की प्यासी सरकारों की स्थापना हो चुकी थी। मेटरनिक इन परिणामों से अत्यन्त सन्तुष्ट था। मेटरनिक के शब्दों में, "मैं एक अच्छे दिन का उषाकाल देख रहा हूँ। प्रभु की इच्छा यही है कि विश्व का विनाश न हो।"

मेटरनिक और जर्मनी (Metternich and Germany)—जर्मनी के देश-भक्तों की इच्छा और प्रयत्नों के विरुद्ध जर्मनी में एक ढीला संघ बनाया गया क्योंकि इसमें आस्ट्रिया का स्वार्थ था। जर्मन-संघ में उनतालीस सम्पूर्ण अधिकारसम्पन्न राज्य थे जिन्हें आस्ट्रिया अपने स्वार्थ के लिए प्रयोग में ला सकता था। मेटरनिक ने छोटे-छोटे जर्मन देशों की प्रशिया के प्रति ईर्ष्या से लाभ उठाया। जर्मनी में गुप्त क्रान्तिकारी संगठनों पर रोक लगाने के लिए १८१९ में 'कार्ल्सबैड-आज्ञप्तियाँ' (Carlsbad Decrees) प्रसारित की गईं और समाचार पत्रों पर प्रतिबन्ध लगाए गए थे। विश्वविद्यालयों को राज्य के नियन्त्रण में रखा गया था। षड्यन्त्रों का पता लगाने तथा दमन करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति हुई। इन प्रतिबन्धों का परिणाम हुआ जनता की स्वतन्त्रता का दमन। देशभक्तों को बड़ी कठिन परिस्थितियों में अपना कार्य करना पड़ा। फ्रांस की जुलाई-क्रान्ति के परिणामस्वरूप जर्मनी के कुछ राज्यों में भी गड़बड़ हुई किन्तु मेटरनिक ने उसका दमन कर दिया था। १८४८ में जब मेटरनिक का शासन समाप्त हुआ, इस प्रकार की परिस्थिति बनी रही। प्रो॰ हेयस के शब्दों में "जर्मनी पर मेटरनिक का पूर्ण नियन्त्रण था।"

मेटरनिक और इटली (Metternich and Italy)—इटली को मेटरनिक केवल एक 'भौगोलिक वाक्य' मानता था। उसने लोम्बार्डी और विनिशिया को आस्ट्रिया में मिला लिया था। परमा, मोडिना और टुस्कने के राज्यों पर हेप्सबर्ग राजवंश के वंशज राज्य कर रहे थे। १८१५ में मेटरनिक ने सिसली और नेपल्स के राजाओं से एक गुप्त सन्धि की जिसके अनुसार आवश्यकता पड़ने पर वे आस्ट्रिया से सहायता माँग सकते थे। १८२० में नेपल्स में विद्रोह हुआ और इसके राजा ने आस्ट्रिया से

सहायता माँगी। आस्ट्रिया की सेना ने नेपल्स में जाकर इसके राजा को 'पूर्ण अधिकार' दिला कर पुनः पदस्थ कर दिया था। १८२१ में पीडमोण्ट में विद्रोह हुआ और नेपल्स से लौटती हुई आस्ट्रिया की सेना ने इसका भी दमन कर दिया। हेयस के शब्दों में, "इटली के हाथ और पाँव, जकड़ कर उसे आस्ट्रिया के प्रतिक्रियावादी युद्ध-रथ के साथ बाँध दिया गया था।"

मेटरनिक और स्पेन (Metternich and Spain)—फर्डिनैण्ड सप्तम १८१५ में पुनः राजा बना। उसने प्रतिक्रियावादी नीति का अनुसरण करके १८१२ के सुधारवादी संविधान को भंग कर दिया। १८२० में स्पेन की जनता ने १८१२ के संविधान को लागू करने की माँग करते हुए विद्रोह कर दिया। फर्डिनैण्ड ने कुटिलता से स्वीकार करते हुए यूरोप की शक्तियों से सहायता की अपील की। यूरोप की शक्तियों ने स्पेन में क्रान्ति का 'भूत' देखा और १८२२ के विआना-सम्मेलन ने फ्रांस को अधिकार दिया कि वह स्पेन में हस्तक्षेप करे और बोर्वन-वंश के राजा को पुनः पदासीन कर दे। जब फ्रांस की सेनाएँ स्पेन में घुसीं और फर्डिनैण्ड को पुनः पदस्थ किया गया तो मेटरनिक बहुत प्रसन्न हुआ था।

मेटरनिक और रूस (Metternich and Russia)—आरम्भ में जार एलेग्जेण्डर के विचार उदार थे किन्तु क्रमशः वह अपनी नीति को नहीं चला पाया। १८१५ के बाद जार के विचार बदल गए। १८१५ में जार के अंगरक्षक सैनिक अधिकारियों ने एक क्रान्तिकारी षड्यन्त्र रचा था। १८१६ में कोटजेब्यु जिसे जर्मनी में रूस का गुप्तचर समझा जाता था, मार डाला गया। १८२० में ड्यूक डी बेरी की फ्रांस में हत्या कर दी गई। इन सब घटनाओं से एलेग्जेण्डर बुरी तरह डर गया और उसकी यह धारणा बन गई कि उदार विचारधारा खतरनाक है। १८२० में ट्रोप्पू सम्मेलन के अवसर पर उसने सार्वजनिक रूप से घोषणा की कि वह मेटरनिक का अनुयायी है। उसने मेटरनिक को अपना गुरु मानकर आज्ञा देने के लिए कहा। १८२० से १८२५ तक वह पूर्णतः मेटरनिक के प्रभाव में था और इसी कारण जब ग्रीस ने तुर्कों के अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह किया तो एलेग्जेण्डर ने उनकी सहायता नहीं की थी।

मेटरनिक व पूर्वी प्रश्न—यूनानियों ने इजीलेंटी (Ypsilanti) के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया और उन्होंने विश्वास के साथ रूसी मदद की आशा की। रूस तुर्की से घृणा करता था और यूनान वालों की मदद कर सकता था जो उसी के धर्म के अनुयायी थे। हितों की समानता होते हुए भी, मेटरनिक ने फुसलाकर एलेग्जेण्डर को इजीलेंटी से अलग कर दिया। फल यह हुआ कि विद्रोह को तुर्की ने दबा दिया और मेटरनिक ने सात वर्षों तक इजीलेंट को आस्ट्रिया के बन्दीगृह में रखने का आनन्द लिया। १८२१ में मोरिया व एजियन द्वीपों में भी यूनानियों ने उपद्रव किया और इस बार पुनः मेटरनिक ने एलेग्जेण्डर को उनकी सहायता देने से रोक दिया। मेटरनिक ने रूखे स्वर में कहा कि "उपद्रव को यह चाहिए कि वह अपने को सभ्यता के दायरे से बाहर कर भस्म कर ले।"

मेटरनिक व फ्रांस—नेपोलियन का पतन कराने के बाद, मेटरनिक ने एक 'लौह चक्र' में फ्रांस को घेरना चाहा। इसी उद्देश्य से, बेल्जियम व हालैंड को मिला लिया गया और राइनलैण्ड प्रशिया को तथा जेनोआ पीडमोण्ट को दे दिया गया। मेटरनिक को इस तत्त्व का भी ज्ञान नहीं था कि क्रान्तिकारी विचार फ्रांस से आये थे जो एक बार फिर परेशानी का कारण हो सकता था, लेकिन जब १८१८ में फ्रांस ने युद्ध-क्षति का भुगतान कर दिया तो मित्र राष्ट्रों की सेना का कब्जा हटाने का निश्चय किया गया। फ्रांस को चौमुखी संघ (Quadruple Alliance) का सदस्य मान लिया गया जिसे पाँचमुखी संघ में बदल दिया गया। मेटरनिक अपनी रक्षा कर रहा था जबकि १८३० में फ्रांस में एक क्रान्ति हुई।

मेटरनिक और ग्रेट ब्रिटेन (Metternich and Great Britain)—मेटरनिक ने परस्पर के स्वार्थ अर्थात् नेपोलियन को हराने के लिए ब्रिटेन का साथ दिया था। जब यह स्वार्थ पूरा हुआ तो मेटरनिक और कैसलरे ने विआना सम्मेलन में सहयोग दिया। ब्रिटेन ने चतुर्मुखी सन्धि में सहयोग किया जिससे यूरोप में 'यथा स्थिति' (status quo) को बनाए रखा जाए। किन्तु इस प्रश्न पर कि "एक देश को दूसरे देश के मामले में हस्तक्षेप का अधिकार है" दोनों देशों में मतभेद हो गया। १८१८ में ऐक्स-ला-चेपल के सम्मेलन में यह मतभेद प्रकट हो गया था। १८१० में कैसलरे ने ट्रोप्पू व्यवस्था का विरोध किया था। यद्यपि विआना सम्मेलन से पूर्व ही कैसलरे ने आत्महत्या कर ली थी। ब्रिटेन ने स्पेन में फ्रांस के हस्तक्षेप का विरोध किया तथा सम्मेलन से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि सम्मेलन व्यवस्था का अन्त हो गया। कैनिंग ने स्पेन द्वारा दक्षिणी अमेरिका में अपने उपनिवेशों पर पुन: अधिकार जमाने के प्रयत्न का भी विरोध किया था। इस विषय में अमेरिका की सरकार ने उसकी सहायता प्रसिद्ध 'मुनरो सिद्धान्त' का प्रतिपादन करके की थी।

मेटरनिक और आस्ट्रिया (Metternich and Austria)—मेटरनिक आस्ट्रिया-हंगरी में प्रतिक्रियावादी नीति का अनुसरण करता रहा। उसने अपने देश में सुधार-वाद और राष्ट्रीयता का दमन करने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ी थी। उसकी धारणा थी कि आस्ट्रिया के साम्राज्य की तत्कालीन परिस्थिति में केवल ऐसी नीति की ही आवश्यकता थी। उसकी नीति 'ध्वंसात्मक' (negative) थी और जो कार्य उसे करना पड़ता था वह उसे अरुचिकर था। उसके अपने शब्दों में, "मैं इस संसार में आया हूँ। यदि मैं शीघ्र आया होता तो मैं युग का आनन्द भोगता, यदि देर से आया होता तो इसके पुनर्निर्माण में हाथ बटाता। किन्तु आज तो मुझे युग के सन्धि-काल में बनती हुई व्यवस्थाओं को सँवारने में अपना जीवन लगाना पड़ रहा है।" गृहनीति में उसका मूलमन्त्र 'प्रतिरोध' (Prevention) था। उसके कार्यक्रम का आदि और अन्त 'शासन करो किन्तु परिवर्तन मत करो' इस वाक्य में निहित था। उसके शब्दों में, "हम प्रतिरोध की नीति इसलिए अपनाए हुए हैं कि हमें दमन की नीति का अनुसरण न करना पड़े। हमारा दृढ़ विश्वास है कि सरकार

द्वारा दी गई प्रत्येक सुविधा इसके अस्तित्व पर कुठाराघात करती है। जिन्हें सुविधाएँ कहा जाता है वे राजा के स्वाधिकार में कमी करती हैं, इसलिए यदि राजा कोई सुविधा देता है तो वह अपने अस्तित्व पर कुठाराघात करता है।" मेटरनिक ने अपनी नीति की व्याख्या इस प्रकार की है, "जहाँ तक नीति का प्रश्न है आस्ट्रिया की कोई नीति नहीं है। हमारी नीति की सीमा केवल शान्ति बनाए रखना तथा सन्धि-प्रतिज्ञाओं का पालन करना है।" फ्रांसिस (Francis) द्वितीय ने अपनी सरकार की नीति का संक्षिप्त वर्णन इन शब्दों में किया है: "मेरी व्यक्तिगत जागीरें भी हैं, मैंने उन्हें विधान प्रदान कर रखा है और मैं उन्हें तंग नहीं करता। किन्तु यदि वे बहुत आगे बढ़ने का प्रयत्न करेंगे तो मैं उन्हें खदेड़ कर सीधा उनके घर भेज दूँगा। जो मेरी सेवा में है उसे मेरी आज्ञा का प्रचार भी करना होगा।"

अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए मेटरनिक ने समाचारपत्रों पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। सारे देश में गुप्तचरों का जाल फैला दिया गया था। विश्वविद्यालयों को कठोर सरकारी नियन्त्रण में रख दिया गया था। विदेश यात्रा को प्रोत्साहन नहीं दिया जाता था। आस्ट्रिया को यथासम्भव यूरोप के अन्य देशों से अलग करने का प्रयत्न किया गया था। शिक्षा का स्तर नीचा था और देश में व्यापार तथा उद्योग की उन्नति नहीं हो रही थी। कार्ल मार्क्स (Karl Marx) के अनुसार, "जहाँ कहीं भी आस्ट्रिया देश की सीमा किसी अन्य सभ्य देश की सीमा को छूती थी, वहाँ चुंगी की चौकियों के साथ-साथ बड़ा कठोर साहित्यिक प्रतिबन्ध लगा हुआ था। प्रत्येक चुंगी पर वहाँ के पदाधिकारी प्रत्येक विदेशी पुस्तक और पत्रिका उस समय तक देश में नहीं आने देते थे जब तक वे उसे कई बार पड़ताल करके संतुष्ट नहीं हो जाते थे कि उसमें युग की भावनाओं का लेशमात्र भी वर्णन नहीं है।"

इन सब प्रतिबन्धों के होने पर भी १८२१ में मेटरनिक को यह मानना पड़ा था कि, जनमत बुरी तरह बीमार है। वियाना में भी पेरिस, बर्लिन और लन्दन, सारे जर्मनी और इटली में भी रूस और अमेरिका की तरह हमारी विजयों को महान् अपराध, हमारी सफलताओं को महान् भूलें और हमारे प्रस्ताव महान् मूर्खताएँ मानी जाती हैं।"

यद्यपि आस्ट्रिया चीन जैसी 'अकर्मण्यता' की नीति का अनुसरण करता प्रतीत होता था, तथापि देश में गुप्त रूप से आन्दोलन चल रहा था जिसने मेटरनिक के प्रयास विफल कर दिये थे। चीजें बनाने वालों और व्यापारी लोगों तथा मध्यमवर्गीय लोगों का धन और प्रभाव बढ़ गया था। उद्योग-धन्धों में मशीनों और वाष्प-शक्ति के प्रयोग ने अन्य देशों की भाँति समाज के सारे वर्गों के पारस्परिक सम्बन्धों को एकदम बदल दिया था। इसके कारण मुजारे स्वतन्त्र व्यक्ति हो गए, छोटे किसान औद्योगिक प्रबन्धक बन गए तथा इस परिवर्तन से पुराने व्यापार-संघों को बड़ी हानि पहुँची और इन में से अनेक का तो जीवन ही समाप्त हो गया। नवीन उद्योगों तथा व्यापार में लगे हुए लोगों को लगभग सभी स्थानों पर समाज की प्राचीन मान्यताओं से टक्कर लेनी पड़ती थी। मध्यमवर्ग के लोग व्यापार के सम्बन्ध में अधिकाधिक

विदेश यात्रा करते थे और स्वदेश आकर आस्ट्रिया की चुंगी से परे बसे हुए देशों के विषय में अद्भुत बातें सुनाया करते थे। रेलमार्ग की प्रगति के कारण देशवासियों की औद्योगिक तथा मानसिक उन्नति को अधिक गति प्राप्त हुई। आस्ट्रिया के राज्यों के संगठन में साम्राज्य के लिए एक खतरनाक बात थी अर्थात् हंगरी का सामन्तशाही संविधान, जिसमें संसदीय विधान और निर्बल तथा सरकार के विरोधी सामन्तवर्ग में निरन्तर संघर्ष रहता था। हंगरी की विधान सभा (Diet) का आसन प्रेसबर्ग विआना के द्वार पर था। इन सभी चीजों ने नगरों में रहने वाले मध्यमवर्गीय लोगों में असन्तोष की भावना को उत्पन्न कर दिया। जन-साधारण की इच्छा थी कि सुधार होने चाहिएं। इन सुधारों से संवैधानिक सुधारों की अपेक्षा प्रशासनिक सुधारों की अधिक इच्छा थी। इन सुधारों की योजना अत्यन्त सीधी-सादी और राजनीतिक विचारधारा से नितान्त शून्य थी। आस्ट्रिया में संविधान और समाचार-पत्रों की पूर्ण स्वतंत्रता एक काल्पनिक धारणा थी। आस्ट्रिया के नम्र और सज्जन नागरिकों की इच्छा प्रान्तीय विधान सभाओं के अधिकारों में वृद्धि, विदेशी पुस्तकों को स्वदेश में लाने की अनुमति तथा समाचार-पत्रों पर साधारण प्रतिबन्धों से बढ़ कर और कुछ भी नहीं था। (Karl Marx)।

मेटरनिक का मूल्यांकन (Estimate of Metternich)—मेटरनिक यूरोप की राजनीति पर १८१५ से १८४८ तक छाया रहा। अतः इसमें कोई अत्युक्ति न होगी यदि इन ३३ वर्षों की अवधि को 'मेटरनिक युग' के नाम से पुकारा जाये। काफी लम्बे समय तक वह यूरोप में होने वाली घटनाओं का भाग्यनिर्णय करता रहा था। १८२४ में उसने एक बार कहा था, "ये लोग मेरी ओर इस प्रकार देखते हैं मानो मैं इनका 'मसीहा' हूँ।" किन्तु अन्त में मेटरनिक को मानना पड़ा कि वह एक बीते हुए युग के लिए संघर्ष कर रहा है। प्रो० हेयस के मतानुसार, मेटरनिक के प्रयत्नों के बावजूद भी प्राचीन परिपाटी का विनाश हो चुका था और इसे किसी भी प्रकार बचाया नहीं जा सकता था। प्रो० ऐलिसन फिलिप्स के शब्दों में, "एक डरपोक और श्रान्त पीढ़ी के लिए वह एक आवश्यक पुरुष था; किन्तु यह उसका दुर्भाग्य था कि वह उपयोगी होने के साथ-साथ इस तथ्य को भूल गया कि जब स्वयं दुर्बल और बूढ़ा हो रहा था; संसार अपनी जवानी पुनः प्राप्त कर रहा था।"

प्रो० फिशर के मतानुसार, "मेटरनिक प्रणाली में आस्ट्रिया के शासकों को एक पीढ़ी की प्रशंसा प्राप्त हुई। इन लोगों को उन दिनों युद्धों की कठिनाइयों का ही ज्ञान था। मेटरनिक में एक महान् राजनीतिक नेता के अनेक गुण थे। उसमें तीव्र और आकर्षक बुद्धि, शान्त चित्त, मामलों की गहरी सूझ-बूझ तथा एक देशभक्ति की भावना थी। अपने देश के मुक्तिदाता तथा नए यूरोप के निर्माता के रूप में उसका महान् सम्मान था। जर्मन-भाषा बोलने वाले देशों को तो उसमें असीम विश्वास था। स्वेच्छाचारी राजाओं के सम्मेलनों में वह उनका संचालक था। इसलिए १८१५ से १८४८ की अवधि को सत्य ही 'मेटरनिक युग' कहा जाता है। किन्तु यह महान् योग्य सामन्त जिसका चरित्र इतना हीन, जिसके सिद्धान्त अत्यन्त कठोर तथा

जिसका प्रभाव इतना विशाल था, एक अत्यन्त घोर मानसिक दुर्बलता का शिकार था, उसने 'क्रान्ति' और 'स्वेच्छाचारी शासन' इन दो प्रणालियों के बीच का कोई मार्ग खोजने का प्रयत्न ही नहीं किया। क्योंकि क्रान्ति से उसे घोर घृणा थी, इसलिए उसने उस भावना का दमन करने का बीड़ा उठाया जो समाज में मानवता-पूर्ण जीवन की आत्मा होती है अथवा जो स्वतन्त्रता के प्राण होते हैं।"

हेनरी ए० किसिंगर के मत में, "यह आस्ट्रिया का भाग्य था कि संकट के वर्षों में इसका पथ प्रदर्शन एक ऐसे व्यक्ति ने किया जिसने उसके सार ही को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया। लेकिन यह उसका भाग्य अवश्य था पर भाग्यशालिता नहीं, क्योंकि ग्रीक दुःखान्त नाटकों की भाँति, मेटरनिक की सफलता ने राज्य के उस पतन को भी अटल बना दिया जिस राज्य को सुरक्षित रखने के लिए वह इतने दिनों तक लड़ा था।

"जिस प्रकार के राज्य का उसने प्रतिनिधित्व किया, मेटरनिक उस युग की देन था जो लाँघे जाने की प्रक्रियाधीन था। वह अठारहवीं शताब्दी में पैदा हुआ था जिसके बारे में टेलीरैंड कहा करता था कि कोई भी जो फ्रांस की क्रान्ति के बाद रहा यह नहीं जान सकेगा कि जीवन कितना मधुर व उत्तम भी हो सकता है। और अपनी युवावस्था के समय के दृढ़ निश्चय ने मेटरनिक को कभी नहीं छोड़ा। उसके द्वारा दृढ़ विवेक के सिद्धान्तों की प्रार्थना पर, उसके सुगम दर्शनीकरण पर और उसके सजे हुए अलंकारों पर समकालीन हास्य कर सकते थे। वे यह नहीं समझते थे कि यह एक इतिहास की घटना है जिसने मेटरनिक को एक क्रान्तिकारी संग्राम में खींच लिया जो उसके स्वभाव से इतना परे था। जिस शताब्दी में उसकी रचना हुई, उसकी शैली यथा प्रदत्त तत्त्वों को मिलाने में अधिक उपयुक्त थी, अपेक्षाकृत निश्चय के संघर्ष के जो पैमाने की अपेक्षा अनुपात् द्वारा अधिक भली प्रकार प्राप्त हो सकता था। वह एक अनन्त सुन्दरतायुक्त प्रतिमा था, विषम, सुन्दरता के साथ कटा हुआ, बिल्कुल समतल जैसे कि कोई बारीकी से कटा हुआ, घनक्षेत्र का टुकड़ा। उसका मुख कोमल था लेकिन गहनताहीन और उसकी वार्तालाप चमकदार लेकिन अन्तिम, अर्थ में गम्भीरताहीन थी। जैसा कि घर पर वैसा ही कैबनिट में, मनोरम व सुगम वह अठारहवीं शताब्दी में कुलीनतन्त्र की सुन्दरता का आदर्श था जो अपने को अपनी सत्ता से, न कि अपने सत्य से औचित्यतापूर्ण बता रहा था। और यदि उसका नये युग से कभी मेल न हो सका, तो इस लिए नहीं कि वह उसकी गंभीरता समझने में असफल हुआ, वरन् इसलिए कि वह उससे घृणा करता था। उस में भी उसका भाग्य आस्ट्रिया का भाग्य रहा।"

फिर, "मेटरनिक के आत्म-प्रसन्न संतोष व कठोर आरूढ़ता के विरुद्ध प्रतिक्रिया ने अब एक शताब्दी से अधिक यह मनाही करने के स्वरूप में लगा दी है कि उसकी महानताओं में वास्तविकता नहीं थी, किन्तु एक व्यक्ति जिसने प्रत्येक उस मिश्रित शासन पर आधिपत्य रखा जिसमें भाग लिया, जिसे दो विदेशी राजाओं ने अपने निजी मंत्रियों से अधिक विश्वसनीय पाया, जो तीन वर्षों तक सारे यूरोप

का तथ्यतः प्रधानमन्त्री रहा, ऐसा व्यक्ति नीच परिणाम वाला नहीं हो सकता। विश्वास की बात यह है कि, वह सफलता जो कि वह अपने सिद्धान्तों की नैतिक उत्तमता को देना चाहता था, वह उसकी कूटनीति की असाधारण कुशलता ही के कारण थी। उसकी बुद्धिमत्ता सृजनात्मक नहीं वरन् प्रयोगात्मक थी; वह निर्माण में नहीं बल्कि जोड़-तोड़ में दक्ष था। अठारहवीं शताब्दी की कैबनिट कूटनीति में प्रशिक्षित होकर उसने सामने चोट करने की चतुर चाल को पसंद किया, जबकि उसके विवेकवाद ने प्रायः एक सफल क्रिया की जगह एक सुशब्दित उद्देश्यपत्र के प्रति दोषपूर्ण बनाया। नेपोलियन ने उसके बारे में कहा था वह नीति, और चालबाज़ी के बीच भ्रम पैदा करता है, और विआना में हेनोवर के दूत हार्डेनबर्ग ने १८१२ के संकट की पराकाष्ठा को देखते हुए मेटरनिक की कूटनीतिक विधियों की व्याख्या इस प्रकार की, 'अपनी योग्यता की उत्तमता के विषय में एक उच्च विचार से भरकर ...वह राजनीति में चालबाज़ी पसन्द करता है और उसे अनिवार्य समझता है। चूँकि उसके पास इतनी काफ़ी शक्ति नहीं है कि वह अपने देश के साधनों को गतिशील बना सके...'वह ऐसा प्रयत्न करता है कि शक्ति व चरित्र की जगह मक्कारी को मिल जाये। यह उसके लिए सबसे अधिक उपयुक्त होगा यदि एक भाग्यशाली घटना—नेपोलियन की मृत्यु या रूस की महान् विजय—ऐसी स्थिति पैदा कर दे जहाँ वह आस्ट्रिया को एक महत्त्वपूर्ण भाग पूरा करने योग्य बना सके।' फ्रेडरिक वॉन गेंटज जो काफ़ी समय तक मेटरनिक का निकट सहयोगी रहा, ने कदाचित् एक सर्वोत्तम संकेत दिया है जो कि मेटरनिक की रीतियाँ व व्यक्तित्व बताता है—'वह दृढ़ भावनाओं व साहसी प्रयत्नों का पुरुष नहीं था; विद्वान् नहीं वरन् बड़ा चतुर था। अपने शान्त, मन्द, अविघ्नीय स्वभाव में सबसे बढ़िया था'।" (A World Rostored, pp. 11-12)

१८४८-४९ की क्रान्तियाँ (Revolutions of 1848-49)—फ्रांस की फरवरी क्रान्ति का हंगरी के भाग्य पर बड़ा गम्भीर प्रभाव पड़ा। जब फ्रांस में क्रान्ति की खबर हंगरी पहुँची, तो कोस्सुथ (१८०२-९४) ने आस्ट्रिया के राजा के सम्मुख केवल उत्तरदायी मंत्रिमण्डल की ही नहीं अपितु आस्ट्रिया की जनता के एक 'भाईचारे' की हंगरी के नेतृत्व में माँग करने का निर्णय किया। ३ मार्च, १८४८ के भाषण में कोस्सुथ ने इस प्रकार कहा, "दम घोटने वाले शाप के धुएँ का बादल हम पर मँडरा रहा है। विआना के मन्त्रिमण्डल रूपी मुर्दाघर से एक सड़ांद भरी वायु हमारी इन्द्रियों को शिथिल करती हुई और हमारी राष्ट्रीयता की भावना को सुन्न करती हुई बहती है। हंगरी का भविष्य कभी भी सुरक्षित नहीं रह सकता जब तक अन्य प्रान्तों में, विशेषतः विआना में सब प्रकार के संविधानों के विरुद्ध सरकार वर्तमान है। यह हमारा कार्य है कि हम आस्ट्रिया की समस्त जातियों के भ्रातृ-भाव की नींव पर एक सुन्दर भविष्य का निर्माण करें तथा तलवार की धार पर थोपी गई एकता की अपेक्षा स्वतन्त्र संविधान के आधार पर अटूट एकता का निर्माण करें।" इस भाषण की हजारों प्रतियाँ छापकर हंगरी और आस्ट्रिया में बाँटी गईं। परिणाम यह हुआ कि मार्च १८४८ में विआना में ज़ोरदार प्रदर्शन हुए और मेटरनिक को भागना

पड़ा। बहुत से सुधार करने के बाद आस्ट्रिया का राजा भी विआना से इन्नसब्रुक भाग गया।

जैसे ही विआना के विद्रोह तथा मेटरनिक के पलायन की सूचना इटली पहुँची वैसे ही मिलान में भी विद्रोह हो गया और राज्यपाल भाग गया। लोम्बार्डी से भी आस्ट्रिया की सेनाएँ राडेटज़की (Radetzky) के नेतृत्व में वापिस लौट गईं। वेनिस में एक प्रजातंत्रात्मक सरकार की स्थापना हुई। परमा और मोडिना के भी राजा भाग गए। मार्च, १८४८ में पीडमोण्ट के शासक ने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। इटली भर में देश से आस्ट्रिया को भगा देने के लिए बड़ा उत्साह था। इटली के कोने-कोने से आस्ट्रिया से लड़ने के लिए सेनाएँ आईं। ऐसा प्रतीत होता था मानो इटली में आस्ट्रिया का प्रभाव बिल्कुल समाप्त हो जाएगा।

जर्मनी पर आस्ट्रिया का नियंत्रण १८१५ से था। मार्च १८४८ में बर्लिन में विद्रोह हुआ और प्रशिया के राजा ने विद्रोहियों का नेतृत्व किया। १८४८ में सारे जर्मनी में प्रतिनिधियों की एक संसद् फ्रैंकफर्ट में सारे जर्मनी के लिए एक संविधान का मसविदा बनाने के लिए एकत्रित हुई। देश भर में बड़ा उत्साह था और आस्ट्रिया का जर्मनी पर नियंत्रण समाप्त हो गया।

हंगरी में हंगरी के नेता कास्सुथ ने हंगरी के लिए एक अलग संसदीय प्रणाली की सरकार की माँग की और आस्ट्रिया के राजा ने यह स्वीकार कर लिया। हंगरी में प्रसिद्ध 'मार्च कानून' प्रचलित हुए जिनके अनुसार देश में सामन्तशाही, मुजारेदारी और विशेषाधिकार समाप्त कर दिए गए।

बोहीमिया में भी विद्रोह हुआ। चैक लोगों ने जर्मनों के आधिपत्य का विरोध किया तथा विआना विद्रोह के पश्चात् उन्होंने आस्ट्रिया के सम्राट् के सम्मुख अपनी माँगें पेश कीं किन्तु इन माँगों को नहीं माना गया। चैक लोगों ने प्रेग में एक सम्मेलन किया जिसमें चैक, सिलिसियन्स, पोल्स, रुथिनियन्स, सर्ब्स, क्रोट्स इत्यादि जातियों के प्रतिनिधि आए। प्रेग निवासी चैकों ने विद्रोह करके आस्ट्रिया के सैनिक राज्यपाल की पत्नी की हत्या कर दी। परिणामस्वरूप उनकी माँगें मान ली गईं और शान्ति हो गई।

अग्राम (Agram) एक अन्य क्रान्तिकारी आन्दोलन का केन्द्र बना हुआ था। इसका उद्देश्य क्रोट, स्लोवन और सर्ब कबीलों का संगठन करना था।

इस प्रकार की परिस्थिति में आस्ट्रिया-हंगरी की हालत बड़ी जटिल हो गई और ऐसा प्रतीत होता था कि सर्वनाश होने ही वाला है। किन्तु कुछ अपने प्रयत्नों से तथा कुछ विरोधियों की त्रुटियों के कारण आस्ट्रिया पुनः जीवन प्राप्त कर सका।

इटली में कस्टोज़ा (Custozza) की लड़ाई में चार्ल्स अलबर्ट पराजित हुआ। विनिशिया और लोम्बार्डी आस्ट्रिया के अधिकार में आ गए। मार्च १८४९ में चार्ल्स अलबर्ट ने आस्ट्रिया के विरुद्ध पुनः युद्ध छेड़ दिया किन्तु वह नोवारा (Novara) की लड़ाई में फिर हार गया। रोम का प्रजातंत्र फ्रांस की सेनाओं ने समाप्त कर दिया

और वेनिस का प्रजातंत्र आस्ट्रिया की सेनाओं ने नष्ट कर डाला। इस प्रकार इटली फिर एक बार आस्ट्रिया के अधिकार में आ गया।

जर्मनी में फ्रैंकफर्ट संसद् के सदस्यों ने अपना बहुमूल्य समय जनता के मौलिक अधिकारों तथा नवीन जर्मन देश की सीमाओं के विषय में साहित्यिक वादविवाद में नष्ट कर दिया। बहुत वादविवाद के पश्चात् यह निर्णय हुआ कि जर्मनी का सिंहासन प्रशिया के राजा को दिया जाए। किन्तु प्रशिया के राजा ने आस्ट्रिया के डर से, जो पुनः पनप रहा था, इस प्रस्ताव को मानने से इन्कार कर दिया। इस प्रकार १८४९ में प्रजातंत्र के आधार पर जर्मनी को संगठित करने का प्रयास विफल हो गया। फ्रैंकफर्ट संसद् द्वारा राज्य की भेंट अस्वीकार करने के पश्चात् प्रशिया के राजा ने हेनोवर, सेक्सोने, वुर्टमवर्ग और बावेरिया के राज्यों से प्रशिया के साथ एक संघ बनाने के लिए कहा। आस्ट्रिया ने इस संघ का विरोध किया और अन्ततः प्रशिया को १८५० में ओलमुट्ज़ (Olmutz) सम्मेलन में आस्ट्रिया के सम्मुख आत्मसमर्पण करना पड़ा।

हंगरी की समस्या बहुत कठिन थी। हंगरी निवासियों के आन्दोलन का उद्देश्य हंगरी की सीमा में बसने वाली सारी जातियों पर मेग्यार (Magyar) कबीले का अधिकार जमाना था। कास्सुथ ने एक बार कहा था, "मुझे मानचित्र पर क्रोशिया (Croatia) नज़र नहीं आता।" उसने, वही स्वतन्त्रता जो अपने लिए चाहता था, क्रोटस, रूमानिया, स्लोवेन्स और सर्ब्स जातियों को देने से इन्कार कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि इन अल्पसंख्यक जातियों ने मेग्यार जाति के प्रभाव को रोकने का आन्दोलन आरम्भ कर दिया।

हंगरी के नेताओं, विशेषकर कास्सुथ और गोर्गी, में भी परस्पर मतभेद था। दिसम्बर, १८४८ में गोर्गी को मेग्यार सेना का सेनापति नियुक्त किया गया। जैसे ही आस्ट्रिया की सेनाएँ हंगरी की राजधानी की ओर बढ़ने लगीं उदारदलीय हंगरी के लोगों ने डीक (Deak) के नेतृत्व में आस्ट्रिया से सुलह करने का प्रयास किया। किन्तु कास्सुथ और गोर्गी ने सुलह करने से इन्कार कर दिया। हंगरी की राजधानी को आस्ट्रिया ने जीत लिया किन्तु हंगरी वालों ने इसे पुनः जीत लिया।

मार्च, १८४९ में हैब्सबर्ग साम्राज्य का संविधान घोषित हुआ। इसमें सब कुछ विआना में केन्द्रित था किन्तु विभिन्न जातियों को अपनी प्रांतीय सभाएँ बनाने की छूट दी गई थी। हंगरी निवासियों को अन्य जातियों के समान ही एक स्तर पर माना जाना रुचिकर नहीं हुआ। परिणाम यह हुआ कि हंगरी ने स्वयं को आस्ट्रिया से स्वतंत्र घोषित कर दिया। अप्रैल, १८४९ में कास्सुथ को हंगरी के प्रजातन्त्र राज्य के राष्ट्रपति के रूप में चुना गया। यह कास्सुथ की महान् भूल थी। उसे इस प्रकार खुले रूप से आस्ट्रिया की अवहेलना नहीं करनी चाहिए थी। हंगरी को स्वतंत्रता की घोषणा से तो कुछ प्राप्त नहीं हुआ किन्तु इससे आस्ट्रिया को रूस के ज़ार निकोलस प्रथम से हंगरी के विरुद्ध सहायता मांगने का बहाना

मिल गया। परिणामतः आस्ट्रिया की सहायता के लिए रूस की लगभग एक लाख पचास हज़ार सेना आ पहुँची। हंगरी निवासियों की हार हुई। कास्सुथ भाग गया। गोर्गी बड़ी शान से लड़ा किन्तु बाद में पकड़ लिया गया। यद्यपि उसकी जान बख्श दी गई तो भी एक अन्य सेनापति को मृत्युदण्ड दे ही दिया गया। हंगरी की जनता पर घोर अत्याचार किए गए और आस्ट्रिया के सेनापति को 'कसाई' (Butcher) का उपनाम दिया गया। यह बात उल्लेखनीय है कि आस्ट्रिया को हंगरी के अल्पसंख्यकों के नेता जेलासिक (Jellacic) से बड़ी सहायता प्राप्त हुई। उसने आस्ट्रिया की सेना की उस समय सहायता की जब वह विआना को पुनः प्राप्त करने के लिए संलग्न थी। उसने कास्सुथ द्वारा विआना के विद्रोहियों की सहायता के लिए भेजी गई सेना से युद्ध किया और उसे पराजित किया।

कास्सुथ
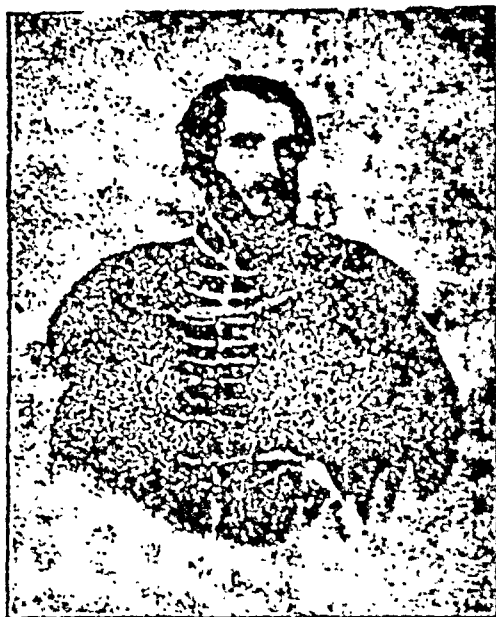
उसने आस्ट्रिया द्वारा हंगरी पर किए गए आक्रमण में भी हाथ बँटाया। इस प्रकार हंगरी के नेताओं की आपसी फूट तथा कास्सुथ की संकीर्ण राष्ट्रीयता के कारण आस्ट्रिया ने हंगरी के विद्रोह का दमन करके पुनः हंगरी पर अधिकार जमा लिया।

आस्ट्रिया और इटली (Austria and Italy)—१८५६ में एक ओर आस्ट्रिया और दूसरी ओर फ्रांस और पीडमोण्ट की लड़ाई का वर्णन आवश्यक है। केवूर (Cavour) की दृढ़ धारणा थी कि आस्ट्रिया की दासता से उसके देश का छुटकारा किसी ऐसे विदेश की सहायता से हो सकेगा, जिसकी सैन्य-शक्ति आस्ट्रिया जैसी ही विशाल हो। इस विचार से जुलाई, १८५८ में प्लोम्बियर्स (Plombieres) के स्थान पर नेपोलियन तृतीय के साथ समझौता किया। दोनों पक्षों में यह समझौता हुआ कि नेपोलियन तृतीय पीडमोण्ट की सहायता करके आस्ट्रिया के चंगुल से विनिशिया और लोम्बार्डी को मुक्त करा देगा तथा इसके बदले उसे नाइस और सवाय के राज्य दे दिए जायेंगे। इस समझौते के अनुसार १८५६ में नेपोलियन तृतीय ने आस्ट्रिया के विरुद्ध पीडमोण्ट के साथ रह कर युद्ध किया। आस्ट्रिया सोलफ़ेना के युद्ध में पराजित हुआ, किन्तु जुलाई, १८५६ में नेपोलियन तृतीय ने विलाफ्रेंका में आस्ट्रिया से सुलह कर ली और इसकी शर्तों की ज्यूरिच संधि में पुष्टि हुई। पीडमोण्ट को आस्ट्रिया से लोम्बार्डी मिल गया और नेपोलियन ने नाइस और सवाय नहीं माँगा। लोम्बार्डी से आस्ट्रिया की सेनाओं के चले जाने के पश्चात्, टुस्कने, परमा

श्रौर मोडिना की जनता ने विद्रोह करके अपने राजाओं को मार भगाया। अन्त में मार्च, १८६० में ट्यूरिन की संधि के अनुसार फ्रांस ने टुस्कने, परमा और मोडिना के पीडमोण्ट में सम्मिलित होने को मान्यता दी और १८५८ के वचन के अनुसार उसे नाइस और सवाय प्राप्त हुए।

१८६६ में इटली ने प्रशिया से मित्रता स्थापित कर ली तथा १८६६ में आस्ट्रिया और प्रशिया के युद्ध में उसने प्रशिया की ओर से युद्ध किया। यद्यपि इटली की सेना कुस्टोज्ज़ोआ के युद्ध में पराजित हुई तथापि क्योंकि इसके साथी ने आस्ट्रिया के दांत खट्टे कर दिए थे इस कारण उसे भी विनिशिया प्राप्त हुआ।

१८६७ का समझौता (Ausgleich of 1867)—यह पहले ही लिखा जा चुका है कि १८४९ में रूस और आस्ट्रिया की सम्मिलित शक्ति ने हंगरी की जनता को कुचल दिया था। उसके पश्चात् हंगरी के प्रति एक केन्द्रीय तथा तानाशाही सरकार स्थापित की गई। अधिकृत रूप से यह घोषित किया गया कि "हंगरी का क्रान्ति से पूर्व का संविधान विद्रोह के कारण रद्द कर दिया गया है।" स्थानीय स्वयात्त शासन समाप्त कर दिया गया तथा समस्त प्रशासनिक तथा न्यायिक पदों की पूर्ति आस्ट्रिया के पदाधिकारियों द्वारा कर दी गई। मेग्यार भाषा के स्थान पर जर्मन-भाषा को राज्य-भाषा घोषित किया गया तथा हंगरी को आस्ट्रिया का एक दास-राष्ट्र बना दिया गया था।

किन्तु इस प्रकार की स्थिति अधिक समय तक नहीं चल सकती थी। १८५९-६० के इटली के स्वातंत्र्य-युद्ध से यह स्पष्ट हो गया कि आस्ट्रिया अपने साम्राज्य की अक्षुण्णता बनाए रखने के लिए पर्याप्त शक्तिशाली नहीं है। यह अनुभव किया गया कि जिस देश पर विदेशों से आक्रमण हो रहा हो वह देश अपनी प्रजा से युद्ध नहीं कर सकता। परिणामतः आस्ट्रिया के शासकों को हंगरी से समझौता करने पर विवश कर दिया गया।

इस गुत्थी को किस प्रकार सुलझाया जाये—इस प्रश्न पर मतभेद था। जर्मन सुधारवादी केन्द्रस्थ और 'एकात्मक' (Unitary) प्रणाली की सरकार के समर्थक थे। किन्तु कुछ अन्य लोग 'संघीय' (Federal) प्रणाली की सरकार के समर्थक थे। इस प्रकार की परिस्थिति में अनेक प्रकार के अन्वेषण करके दोनों पक्षों के मानने योग्य हल पर पहुँचने का प्रयत्न किया गया था।

१८६० के अक्टूबर अधिकार-पत्र द्वारा हंगरी को १८४८ की वस्तुस्थिति पर स्थिर किया गया। पाँच शासन-प्रांत समाप्त कर दिए गए। हंगरी की विधान सभा पुनः स्थापित हुई तथा हंगरी में स्थानीय स्वायत्त शासन पुनः लागू कर दिया गया। हंगरी के लोगों को ही राज्य के पदों पर लगाया जाने लगा। निस्संदेह १८६० के अधिकार-पत्र द्वारा हंगरी से समझौते का मार्ग बन गया था।

किन्तु हंगरी की मेग्यार जाति (Magyars) केवल १८४८ की व्यवस्था तथा परिपाटी की पुनस्स्थापना से प्रसन्न नहीं थी। उन्होंने मार्च, १८४८ के कानूनों के लागू करने की माँग की थी। विभिन्न दलों के हठ के कारण फिर झगड़ा हुआ।

शिमरलिंग (Schmerling) मन्त्रिमण्डल का ध्येय सत्ता को केन्द्रस्थ करना तथा आस्ट्रिया के साम्राज्य की अक्षुण्णता को बनाए रखना था। मन्त्रिमण्डल ने फरवरी, १८६१ में एक घोषणा की थी। समूचे आस्ट्रियायी साम्राज्य के लिए एक संविधान बनाया गया और हंगरी की स्थिति केवल एक प्रांत जैसी रह गई। हंगरी की विधान सभा ने इस घोषणा-पत्र को अस्वीकार कर दिया। हंगरी ने विआना की केन्द्रीय सभा (Reichsrath) में अपने प्रतिनिधि भेजने से इन्कार कर दिया। हंगरी के नेता डीक (Deak) का नारा था '१८४८ के कानूनों को मान्यता दो।' हंगरी की जनता का दावा था कि वे बहुत समय से एक भिन्न राष्ट्र रहे हैं। आस्ट्रिया से उनका सम्बन्ध केवल एक व्यक्तिगत सम्पर्क है। आस्ट्रिया का सम्राट् तभी हंगरी का राजा बन सकता है जब वह हंगरी के मौलिक कानूनों की रक्षा करने की शपथ लेता है तथा जब उसका सेंट स्टेफन के मुकुट को धारण करके अभिषेक होता है। हंगरी के मौलिक कानून शताब्दियों पुराने थे और १८४८ मार्च के कानूनों द्वारा इनकी पुष्टि मात्र हुई थी। इन कानूनों में बिना हंगरी की अनुमति के कोई परिवर्त्तन नहीं हो सकता था। आस्ट्रिया का सम्राट् अपनी निरंकुशता के द्वारा इन्हें रद्द नहीं कर सकता था। हंगरी एक प्राचीन ऐतिहासिक देश था जिसकी सुविख्यात सीमाएँ थीं जिन्हें आस्ट्रिया का सम्राट् अपनी इच्छा द्वारा नहीं बदल सकता था।

यह मामला १८६१ से १८६५ तक उलझा रहा। इसे सुलझाने के लिए विचार-विमर्श चलता रहा था। १८६६ की आस्ट्रिया-प्रशिया की लड़ाई के कारण यह वार्ता बन्द हो गई किन्तु १८६७ में पुनः चालू हो गई थी। परिणाम यह हुआ कि उसी वर्ष 'समझौता' हो गया था। कहा जाता है कि १८६६ में आस्ट्रिया की पराजय के पश्चात् डीक से पूछा गया कि हंगरी क्या चाहता है? उसने उत्तर दिया कि, "हंगरी जो कोनिग्राटज (Konnigratz) के पहले माँगता था, उसके पश्चात् उससे अधिक नहीं माँगता।" डीक के समझौता करने के रुख से फैसला अत्यन्त शीघ्रता से हो गया। पुनश्च, आस्ट्रिया-प्रशिया के युद्ध के बाद आस्ट्रिया को जर्मनी से बाहर निकाल दिया गया था। यह आवश्यक हो गया था कि वह किन्हीं अन्य देशों से सहायता प्राप्त करे जिससे कि वह प्रशिया के विरुद्ध जमने योग्य हो जाए। यह उसी स्थिति में सम्भव हो सकता था जब हंगरी से सुलह हो जाती। समझौते को आस्ट्रिया के सम्राट् फ्रांसिस जोसेफ तथा दोनों देशों की संसदों ने भी मान्यता दी थी। फ्रांसिस जोसेफ का हंगरी के राजा के रूप में अभिषेक किया गया।

१८६७ के समझौते से एक अनोखा राज्य बन गया जो न तो 'संघीय' और न 'एकात्मक' प्रणाली का था। इससे आस्ट्रिया-हंगरी में दोहरी राजशाही बन गई। आस्ट्रिया-हंगरी दो भिन्न-भिन्न, पूर्णतः स्वतन्त्र तथा एक दूसरे के बराबर के दो राज्य बन गए। इनका राजा तथा राष्ट्र-ध्वज एक ही था किन्तु राजा को आस्ट्रिया में सम्राट् (Emperor) तथा हंगरी में राजा (King) कहा जाता था। आस्ट्रिया और हंगरी दोनों में अलग-अलग संसदें, मन्त्रिमण्डल तथा सरकारें थीं। दोनों राज्य आन्तरिक मामलों में पूर्णतः स्वतन्त्र थे। किन्तु विदेश, युद्ध, तथा वित्त मंत्रालय

दोनों के संयुक्त थे। दोनों देशों की कोई सामूहिक संसद् नहीं थी किन्तु 'प्रतिनिधि-मण्डल' प्रणाली की व्यवस्था थी। प्रत्येक देश की संसद् ६० सदस्यों का एक प्रतिनिधिमण्डल चुनती थी और ये प्रतिनिधिमण्डल बारी-बारी से कभी विग्राना में और कभी बुडापेस्ट में मिलते थे। वास्तव में ये प्रतिनिधिमण्डल दोनों संसदों की दो समितियाँ थीं। इनके अधिवेशन अलग-अलग होते थे, दोनों ही भिन्न-भिन्न भाषाओं का प्रयोग करते थे तथा अपने विचार लिखित रूप में भेजा करते थे। दोनों प्रतिनिधिमण्डलों में मतभेद की अवस्था में दोनों के संयुक्त अधिवेशन की व्यवस्था थी। संयुक्त अधिवेशन का निर्णय बहुमत के आधार पर होता था। कर-व्यवस्था और मुद्रा-व्यवस्था इत्यादि संयुक्तमण्डलों के अधिकार में नहीं थी। इस विषय में दोनों राज्यों की संसदें दस-वर्षीय प्रतिज्ञा-पत्र द्वारा निर्णय करती थीं और इस व्यवस्था का यह परिणाम होता था कि प्रत्येक दस वर्ष की अवधि के पश्चात् दोनों राज्यों में पर्याप्त तनाव रहा करता था।

यह बात उल्लेखनीय है कि आस्ट्रिया-हंगरी की दोहरी राजशाही व्यवस्था ही तत्कालीन परिस्थिति का एकमात्र निपटारा था। आस्ट्रिया-सम्राट् फ्रांसिस जोसेफ कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन करने को उद्यत नहीं था। यह समझौता प्राचीन परिपाटी के अनुकूल था और इसका उद्देश्य सम्राट् की महत्ता को बनाए रखना था। यद्यपि मेग्यार-राष्ट्रीयता को अनेक सुविधाएँ दी गईं तथापि समझौते से कई लाभ हुए। इससे सैनिक तथा दूतावास की सेवाएँ यथायोग्य बनी रहीं और इनको आस्ट्रिया का सम्राट् अत्यन्त महत्त्व देता था। इस समझौते से इन महत्त्वपूर्ण मामलों का संचालन सम्राट् के हाथों में सुरक्षित रहता था तथा आस्ट्रिया और हंगरी को दो पृथक् स्वाधिकारपूर्ण राष्ट्र बनने से रोकता था। दोनों देशों के प्रशासन सामन्त तथा धनी मध्यमवर्ग के लोग चलाते थे। सम्राट् को दोनों देशों के विधेयकों पर अखण्ड निषेधाधिकार प्राप्त था। संसद् का समर्थन खो देने पर भी सम्राट् मन्त्रि-मण्डलों को बनाए रख सकता था।

१८६७ के पश्चात् आस्ट्रिया और हंगरी के बीच मतभेद बढ़ गए। आस्ट्रिया को उत्तरोत्तर औद्योगिक दृष्टि से विकसित किया गया था। इस कारण वहाँ उत्पादन, व्यापार तथा बैंकों की प्रगति हुई और कृषि-सम्बन्धी मामलों पर कम ध्यान दिया जाने लगा। दूसरी ओर हंगरी मुख्यतः कृषिप्रधान देश था। अतः वहाँ औद्योगिक उन्नति पर ध्यान नहीं दिया गया था। दोनों देशों की आर्थिक असमानता के कारण दोनों देशों में साम्राज्य के संयुक्त खर्चे के विषय में काफी झगड़ा चलता था। आस्ट्रिया की राजस्व नीति हंगरी की नीति से भिन्न थी। आस्ट्रिया उद्योगों की रक्षा तथा कृषि के उत्पादन में खुले व्यापार का समर्थक था। दूसरी ओर हंगरी कृषि उत्पादन की रक्षा और तैयार माल के खुले व्यापार की नीति का समर्थक था। इस विषय में एक समझौता हुआ, जिसके द्वारा उद्योग और खेती दोनों को रक्षा प्राप्त हुई थी।

१८६८ के सैन्य सुधारों के कारण दोनों देशों में असंतोष था। हंगरी की

सरकार ने इस बात पर ज़ोर दिया कि हंगरी की सेना में केवल मेग्यार जाति के ही पदाधिकारी हों तथा उन्हें मेग्यार भाषा में ही आदेश दिए जाएँ। आस्ट्रिया ने हंगरी की बात नहीं मानी और १८६७ में हंगरी ने आस्ट्रिया के साथ सैनिक-सन्धि को पुनः नहीं दोहराया। सम्राट् दोनों देशों की सेना का नियंत्रण वार्षिक आज्ञप्तियों द्वारा करता रहा तथा सैन्य-आदेशों की भाषा जर्मन ही बनी रही। १६०७ में हंगरी ने आस्ट्रिया के साथ सैनिक-संधि की, जिसका मुख्य कारण अन्तर्राष्ट्रीय कठिन परिस्थितियाँ थीं।

१८७८ में एक केन्द्रीय आस्ट्रिया-हंगरी बैंक की स्थापना भी एक मतभेद का परिणाम था। हंगरी अलग राष्ट्रीय बैंक की स्थापना करना चाहता था और वे केवल सामूहिक संचालन चाहते थे। १६१७ में यह समझौता हुआ कि दोहरी राजशाही के साथ प्रत्येक वैदेशिक और व्यापारिक सन्धि पर केवल विदेश-मंत्री के ही हस्ताक्षर नहीं होंगे अपितु आस्ट्रिया और हंगरी की सरकार के प्रतिनिधियों के भी हस्ताक्षर होंगे।

अनेक कमियों के होने पर भी १८६७ के समझौते से दोनों देशों को अनेक लाभ हुए थे। दोनों को यह अनुभव हुआ कि संयुक्त होने पर ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में उनका कुछ प्रभाव बन पायेगा। उनका सम्मान बढ़ गया और उनकी आर्थिक स्थिति में भी बहुत उन्नति हुई। संयुक्त आर्थिक व्यवस्था से आस्ट्रिया और हंगरी के माल के लिए विशाल मण्डी का क्षेत्र खुल गया था। आस्ट्रिया के उद्योग के लिए हंगरी में एक सुविधाजनक मण्डी मिली और हंगरी के कच्चे माल को इसी प्रकार सुविधाजनक मण्डी प्राप्त हुई। इनकी संयुक्त सैनिक शक्ति ने हैप्सबर्ग वंश को एक सम्मानयुक्त महान् शक्ति बनाए रखा था। आस्ट्रिया और हंगरी दोनों ही रूस से डरते थे और इसलिए इन दोनों ने एक विशाल सेना का व्यय-भार उठाने के लिए एकता कर ली थी।

१८६७ के समझौते पर टिप्पणी करते हुए वाटसन कहता है, "यह सत्य है कि इस समझौते को १७२३ के अधिकार-पत्र (Pragmatic Sanction of 1723) का युक्तियुक्त परिणाम कहा जा सकता है, किन्तु तत्पश्चात् होने वाली घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि इसका आधार ऐतिहासिक प्रगति के सिद्धान्त की अपेक्षा मानसिक ईर्ष्या अधिक है। दोहरी राज-व्यवस्था का वास्तविक आधार-तत्त्व दो शक्तिशाली जातियों अर्थात् जर्मन और मेग्यार के बीच पारस्परिक संगठन है। इन दो जातियों ने राजशाही को आपस में बाँट लिया और अन्य दो क्रमशः शक्तिशाली जातियों—पोल और क्रोट—को स्वायत्त शासन प्रदान करके उन्हें अन्य शेष आठ जातियों को अपने अधिकार में रखने के लिए अपना साथी बना लिया था।" स्लाव (Slavs) जाति दोहरी राजशाही की अपेक्षा संघ प्रणाली की सरकार के अधिक पक्ष में थी। वे आस्ट्रियायी साम्राज्य के अन्तर्गत समस्त जातियों को स्वायत्त अधिकार देने के पक्ष में थे क्योंकि यह इनका ऐतिहासिक अधिकार था। बोहीमिया (Bohemia) विशेष रूप से दुःखी था क्योंकि वह समझता था कि उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं हुआ

था। इस प्रकार १८६७ के समझौते में ही फूट के बीज पड़े थे। १८६७ के पश्चात् हंगरी में भी परिस्थिति विकट होती जा रही थी। यह सत्य है कि डीक ने एक शासक के रूप में व्यवहार करके हंगरी में अ-मेग्यार (Non-Magyar) तत्त्वों से समझौता करने का प्रयत्न किया था। उसने क्रोट जाति को प्रसिद्ध 'कोरा अधिकार पत्र' (Blank Sheet) देकर कहा था कि वे उसे अपनी इच्छानुसार भर लें। क्रोशिया (Croatia) को "प्रशासन, न्याय, धर्म के मामलों में पूर्ण स्वाधिकार दिया गया तथा क्रोटिन भाषा उनके विधान-मण्डल तथा कार्य-मण्डल की भाषा थी।" हंगरी की संसद् के पास केवल विदेशी मामले ही रहे और क्रोशिया हंगरी की संसद् में चालीस सदस्य भेजा करता था। क्रोशिया की अगराम (Agram) में अपनी अलग संसद् भी थी।

१८६८ के 'जातियों के कानून' (Law of Notionalities) द्वारा हंगरी में अ-मेग्यार जातियों की समस्या सुलझाने का प्रयत्न किया गया था। मेग्यार भाषा को हंगरी के विधान-मण्डल और कार्य-मण्डल की राज्यभाषा बनाकर शिक्षालयों और न्यायालयों में अन्य भाषाओं के प्रयोग करने की छूट दे दी गई थी। इससे हंगरी को अन्य जातियों के 'युक्तियुक्त राष्ट्रीय दावों' की पूर्ति करने का प्रयत्न किया गया था किन्तु यह कानून आरम्भ से ही एक मृत-विधेयक बना रहा और इसे क्रियात्मक रूप देने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। दूसरी ओर अ-मेग्यार तत्त्वों को मेग्यार बनाने के लिए कोई भी प्रयत्न अधूरा नहीं रखा गया था। इससे बड़ा असंतोष फैला और इसका परिणाम अन्त में हंगरी का छिन्न-भिन्न हो जाना था।

१८६७ का समझौता आस्ट्रिया-हंगरी के सम्मुख समस्याओं का वास्तविक हल नहीं था। आस्ट्रिया-हंगरी की अन्य अल्पसंख्यक जातियाँ १८६७ में हंगरी को दिए गए विशेषाधिकारों से ईर्ष्या करती थीं। १८६७ के पश्चात् इनसे समझौता करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि असन्तोष निरन्तर बढ़ता गया और अन्ततः आस्ट्रियायी साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े हो गया।

आस्ट्रिया-हंगरी और बलकान (Austria-Hungary and the Balkans)—आस्ट्रिया-हंगरी के लिए बलकान राज्य बड़े महत्त्व के थे। इसका कारण यूरोप में आस्ट्रिया की भौगोलिक स्थिति थी। यह स्थल से घिरा हुआ देश था और इसे समुद्री मार्ग की आवश्यकता थी। डेन्यूब नदी से आस्ट्रिया को समुद्र का मार्ग प्राप्त हो जाता था, किन्तु कुस्तुनतुनिया (Constantinopole) शत्रुओं के हाथ में था। इस लिए इस मार्ग के लाभ नगण्य थे। ट्रिस्टी (Trieste) आस्ट्रिया का लिवरपूल और पोला इसका पोर्ट्समाउथ था। यदि किन्हीं कारणों से ट्रिस्टी इटली के पास चला जाता और इस्ट्रिया और फ्लूमे इटली या साईबेरिया या यूगोस्लावियां के हाथों पड़ जाते तो आस्ट्रिया-हंगरी की सामुद्रिक व्यापार की परिस्थिति अत्यन्त भयंकर हो जाती। ऐड्रियाटिक में उसकी स्थिति अत्यन्त गम्भीर थी। विलोना और ब्रिन्डिसी को प्राप्त करके इटली अत्यन्त सरलता से आस्ट्रिया का अन्धमहासागर में जाने का मार्ग रोक सकता था। बलकान में मोण्टीनीग्रो और सर्बिया दोनों आस्ट्रिया-हंगरी के

प्रतिद्वन्द्वी थे। यद्यपि मोण्टीनीग्रो का समुद्री तट केवल ३० मील के घेरे में था, तथापि उसे ऐड्रियाटिक समुद्र में जाने का मार्ग प्राप्त था। यदि युगोस्लाव साम्राज्य के स्वप्न आंशिक रूप से भी पूरे हो जाते तो ट्रिस्टी, फ्लूमे और पोला का महत्त्व न रह पाता। इन तथ्यों के कारण आस्ट्रिया बलकान में बड़ी दिलचस्पी रखता था। यदि उसे काला सागर और ऐड्रियाटिक समुद्र में भी पहुँचने का मार्ग नहीं मिलता था तो वह ऐजियन समुद्र (Aegean Sea) से अपना मार्ग निकाल सकता था। इन सब कारणों से आस्ट्रिया और रूस तथा सर्विया के बीच तनाव होना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी।

१८६६ में जर्मनी और इटली से निकाल दिए जाने के पश्चात् आस्ट्रिया-हंगरी बलकान में अधिक दिलचस्पी दिखाने लगा था। १८७८ की बर्लिन-सन्धि के अनुसार आस्ट्रिया-हंगरी को बोसनिया, हरजीगोविना, नोवी-बाजार का सञ्जक (Sanjak) मिला था। नोवी-बाजार सर्विया और मोण्टीनीग्रो की स्लाव जाति के बीच केवल रोक का काम ही नहीं करता था अपितु आस्ट्रिया-हंगरी को वारडार (Vardar) घाटी से आगे सालोनिका तक आने का निमंत्रण भी देता था।

१९०३ तक सर्विया का राजवंश आस्ट्रिया-हंगरी का सेवक रहा था। किन्तु उस वर्ष राजा एलेग्जेण्डर और उसकी रानी की हत्या कर दी गई थी और इनकी मृत्यु के साथ, जिस ओब्रिनोविक (Obrenovic) वंश का वह वंशज था, समाप्त हो गया था। अतः एक नया राजवंश (Karageorgevic) सत्ता में आया। नवीन वंश उग्र तथा आस्ट्रिया-विरोधी था। परिणामतः सर्विया और आस्ट्रिया-हंगरी के बीच तनाव बढ़ता गया। इसका परिणाम १९०५-६ का 'पिग-युद्ध' (Pig War) निकला। इससे सर्विया की यह धारणा और अधिक दृढ़ हो गई कि जब तक उसे ऐड्रियाटिक अथवा ऐजियन समुद्र पर तट प्राप्त नहीं होगा उसके देश की उन्नति असम्भव है। ऐजियन समुद्र पर मार्ग मिलना असम्भव था किन्तु ऐड्रियाटिक सागर का मार्ग भी उसे बोसनिया, हरजीगोविना और डालमेटिया की कुछ बन्दरगाहों के मिले बिना प्राप्त नहीं होता था।

सर्विया को आशा थी कि उसे हरजीगोविना और बोसनिया मिल सकता है, किन्तु जब १९०८ में आस्ट्रिया-हंगरी ने, जिसे बर्लिन-सन्धि के द्वारा केवल प्रशासन का अधिकार दिया गया था, उन्हें अपने राज्य में मिला लिया तो सर्विया को बड़ी निराशा हुई। सर्विया में युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं किन्तु रूस ने उसे समझाया कि वह ऐसा न करे क्योंकि वह आस्ट्रिया और जर्मनी के विरुद्ध युद्ध करने की स्थिति में नहीं है। जर्मनी ने भी अपने साथी आस्ट्रिया का साथ देने की घोषणा कर दी थी। सर्विया ने नोवी-बाजार में सञ्जक की क्षतिपूर्ति माँगी किन्तु उसे कुछ नहीं दिया गया। इसके विपरीत उसे नीचा देखना पड़ा और यह घोषणा करनी पड़ी कि बोसनिया और हरजीगोविना पर उसका कोई दावा नहीं है तथा उसे आस्ट्रिया द्वारा इनको अपने राज्य में मिला देने में आपत्ति नहीं। तुर्की को २२ लाख पौण्ड क्षति-पूर्ति के दिए गए और उसने आस्ट्रिया द्वारा इनके राज्य में मिलाने

को मान्यता दे दी। आस्ट्रिया ने बलगेरिया को २ करोड़ पौण्ड दिए। इस प्रकार १६०८-६ का बोसनिया समस्या का निपटारा हुआ था। किन्तु इस घटना ने सर्बिया के निवासियों के मन में इस बात की कटु-स्मृति छोड़ दी कि उन्हें बोसनिया तथा हरजोगोविना को प्राप्त करने के अवसर से वंचित कर दिया गया है।

१६१२-१३ के बलकान-युद्ध में सर्बिया ने अपने राज्य और सम्मान में वृद्धि की थी। उसने सलोनिका और आस्ट्रिया-हंगरी के बीच की रोक को भी शक्तिशाली बनाया था। बलकान युद्ध में विजय प्राप्त करने से सर्बिया का आत्मविश्वास बढ़ गया और वह महत्त्वाकांक्षी भी बन गया था। सर्बिया की शक्ति की इस महान् वृद्धि को आस्ट्रिया सहन नहीं कर सकता था और १६१३ में इस बात की बड़ी आशंका थी कि इन दोनों में युद्ध छिड़ जाएगा। किन्तु यह भय टल गया। किन्तु २८ जून, १६१४ को बोसनिया की राजधानी सिराजिवो (Serajevo) में आस्ट्रिया के आर्क ड्यूक फ्रांसिस फर्डिनैण्ड की सर्बिया के निवासियों ने हत्या कर दी। आस्ट्रिया ने सर्बिया को चुनौती (ultimatum) दी और घोषित अवधि की समाप्ति पर आस्ट्रिया ने सर्बिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। आस्ट्रिया का साथ जर्मनी ने तथा सर्बिया का साथ रूस, फ्रांस और ब्रिटेन ने दिया था। आस्ट्रिया-हंगरी युद्ध में आस्ट्रिया पराजित हुआ और सेंट जर्मेन तथा ट्रियानोन की संधियों के द्वारा इसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए।

Suggested Readings

Andrews : *Historical Development of Modern Europe.*
Cecil, A. : *Metternich, 1933.*
Drage : *Austria-Hungary.*
Fyffe : *History of Modern Europe.*
Flenley, R. : *Maker of the Nineteenth Century : Metternich.*
Herman, A. : *Metternich.*
Kissinger, H. A. : *A World Restored, 1957.*
Auernheimer : *Metternich, Statesman and Lover, 1940.*
Malleson, C. B. : *Life of Prince Metternich.*
Sandemans : *Metternich, 1911.*
Woodward : *Three Studies in European Conservatism, 1929.*
Mahaffy : *Francis Joseph.*
Pribram, A. F. : *The Secret Treaties of Austria-Hungary.*
Redlich, J. : *Francis Joseph of Austria.*
Rumbold : *Francis Joseph and His Times.*
Seton-Watson : *The Future of the Hungarian Nation.*
Steed. H. Wickham : *The Hobsburg Monarchy.*
Taylor, A. J. P. : *The Hobsburg Monarchy.*
Thayer. W. R. : *Throne-Makers.*

अध्याय १६

इटली का एकीकरण

(Unification of Italy)

१८१५ की व्यवस्था (Settlement of 1815)—१८१५ की विश्राना व्यवस्था से इटली का संगठन नहीं हो सकता था। वास्तव में यह बहुत से शासकों के अधिकृत बहुत से राज्यों में बँटा हुआ था। फर्डिनेण्ड प्रथम को सिसली और नेपल्स का राज्य पुनः दे दिया गया था। पोप को रोम तथा अन्य प्रदेश तथा हैप्सबर्ग राजवंश को परमा, मोडेना, टुस्कने पुनः दे दिए गए थे। लोम्बार्डी और विनिशिया को आस्ट्रियायी साम्राज्य में तथा सार्डीनिया और जिनोआ को पीडमोण्ट राज्य में मिला दिया गया था। इटली को बहुत से स्वतंत्र राज्यों में मिला देने के कारण ही मेटरनिक इटली को एक 'भौगोलिक अभिव्यक्ति' कहा करता था। मेजिनी ने इटली की अवस्था का इन शब्दों में वर्णन किया है, "उनसे उनका देश, उनकी स्वतंत्रता और उनका भ्रातृभाव छीन लिया गया है। उन लोगों ने जो उनकी प्रवृत्तियों, आवश्यकताओं तथा इच्छाओं से अनभिज्ञ हैं, उनकी रुचि का अंगभंग करके उन्हें बाँध कर एक अत्यन्त संकीर्ण वृत्त में डाल दिया है। उनकी परिपाटियों को आस्ट्रिया के साधारण सैनिकों की देख-रेख में नष्ट किया जा रहा है और उनकी आत्मा आज विश्राना के राज्य-सिंहासन पर बैठने वाले एक व्यक्ति के लोभ के कारण दासता के बन्धन में बन्दी बना दी गई है।"

१८१५ में भूतपूर्व शासकों को पुनः पदासीन करने के पश्चात उन देशों में सार्वजनिक रूप से प्रतिक्रियावादी अथवा आचरहीन प्रशासन स्थापित हुए। फर्डिनेण्ड ने प्राचीन घृणास्पद पुलिस-व्यवस्था, समाचारपत्रों पर प्रतिबन्ध तथा धर्माचार्यों की सत्ता का पुनःस्थापन किया। उसने सुधारवादियों को दण्ड दिया, राजशाही के समर्थकों को सम्मानित किया तथा सिसली का स्वाधिकारपूर्ण संविधान भंग करके देशवासियों की भावनाओं का निरादर किया। पोप के राज्यों में धार्मिक दण्ड व्यवस्था (Inquisition and Index) तथा अन्य मध्यकालीन चर्च शासन का आडम्बर पुनः लागू कर दिया था। भ्रष्टाचार से पूर्ण तथा निकृष्ट शासन व्यवस्था से जनता में अत्यन्त असंतोष फैला। देश में सामाजिक अराजकता फैल गई थी। मोडेना में अत्याचारी सरकार थी। लोम्बार्डी और विनिशिया में जनता के राजनीतिक जीवनों पर जान-बूझ कर आस्ट्रिया की विचारधारा और परिपाटी थोपने का प्रयत्न किया गया। सूक्ष्म रूप से यह कहा जा सकता है कि इटली में अत्यधिक प्रांतीयता की भावना थी और देश के सम्पूर्ण क्षेत्रों पर आस्ट्रिया का पूर्ण अधिकार था।

नेपोलियन के शासन[1] ने इटली में एक नया जीवन फूंक दिया था तथा अनेक युद्ध-क्षेत्रों में कठिनता से प्राप्त की गई एकता को और भी दृढ़ करने का प्रोत्साहन
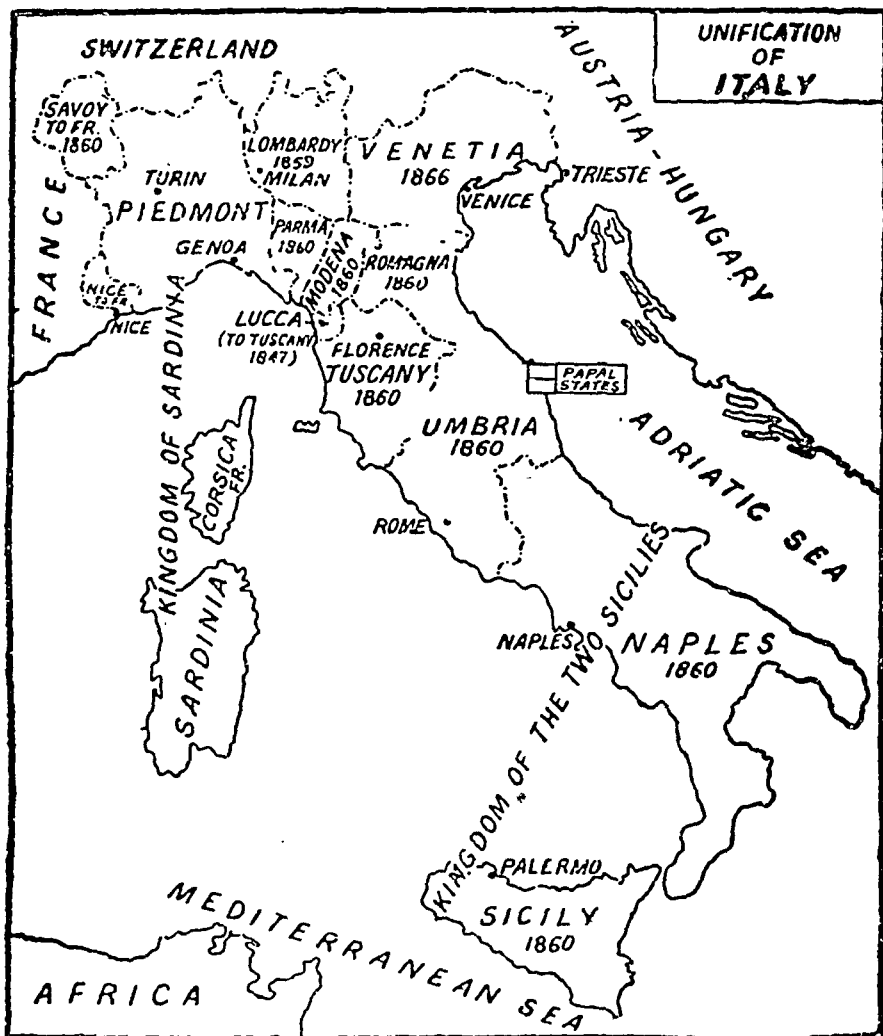
दिया गया था। क्योंकि पुनः राजप्राप्ति के बाद राजाओं ने प्रतिक्रियावादी नीति का अनुसरण किया, देशवासियों में प्रजातन्त्रीयता और राष्ट्रीयता की भावना का बड़ी तेजी

१. इटली पर नेपोलियन के राज्य के कारण उत्तरी प्रदेश पर बहुत अच्छा शासन था। नेपल्स का राज्य मुरट के अधिकार में था और उसने अपने शासन में सारे इटली को एक करने की साहसपूर्ण योजना बनाई। १८१४-१५ में उसने अपनी योजना को क्रियात्मक रूप दे दिया और इटली के संघ की घोषणा की। वह पराजित हुआ और उसे गोली मार दी गई किन्तु जिस आदर्श को उसने बनाया उसकी मृत्यु नहीं हुई। मुरट को आज भी इटली की स्वतन्त्रता और एकता का सर्वप्रथम आधुनिक अग्रदूत माना जाता है।

मारकहम (Markham) के मतानुसार, "इटली में नेपोलियन के शासन में भले ही आंशिक

से प्रगति हुई थी। देशभक्तों में देश की अपमानजनक अवस्था के कारण जाग्रति हुई और प्रजातन्त्र के समर्थकों ने सिसली देश के निवासी होने के नाते नहीं अपितु इटली के निवासी होने के नाते दमन और अत्याचार का विरोध करने के लिए जाग्रति पैदा की थी। देश के कोने-कोने में गुप्त क्रान्तिकारी संस्थाओं का निर्माण हुआ जिनमें 'कारबोनारी' (Carbonari) नाम की संस्था सबसे प्रमुख थी। इसके अपने रहस्यमय और गुप्त प्रतीक तथा आचार-व्यवहार थे। किन्तु इसका गुप्त तथा दृढ़ राजनीतिक ध्येय देश में से विदेशियों को निकालकर सांवैधानिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना था। इसमें सारे वर्ग, यथा सामन्त, सैनिक पदाधिकारी, किसान, धर्माधिकारी, इत्यादि सभी सदस्य थे। उच्च तथा बुर्जुआ वर्गों में सुधारवाद तथा प्रजातन्त्रवाद के विचार अत्यन्त गम्भीरता से जड़ पकड़ चुके थे। 'कारबोनारी' की सदस्यता इटली से बाहर भी थी तथा काले, लाल और नीले रंग का इसका तिरंगा ध्वज क्रान्ति का ध्वज बन गया था।

नेपल्स का विद्रोह (Revolt in Naples) (१८२०)—गुप्त सभाओं से प्रेरणा पाकर १८२० में विद्रोह आरम्भ हुआ जो तीस वर्ष तक भी समाप्त नहीं हुआ था। प्रथम विद्रोह नेपल्स में आरम्भ हुआ था। १८१५ में सिंहासन पर पुनः आसीन होने पर फर्डिनैण्ड प्रथम ने पूर्ण भक्ति के साथ यह शपथ ली थी कि वह सिसली के सुधारवादी संविधान की रक्षा और सम्मान करेगा, किन्तु १८१६ में उसने इस संविधान को भंग कर दिया जिससे यह इटली के अन्य राज्यों के लिए आदर्श न बन जाए। १८२० की स्पेन-क्रान्ति के कारण स्पेन के बोर्बन-वंशजों के अधिकृत इटली के राज्यों में बड़ी उत्तेजना फैली। नेपल्स के निवासियों को सेना का समर्थन प्राप्त था, उन्होंने स्पेन की तरह के संविधान की माँग की। फर्डिनैण्ड प्रथम ने बड़ी उदारता से विद्रोहियों की माँगें मान ली थीं। "उसने परमेश्वर का धन्यवाद किया कि उसने उसे यह अवसर प्रदान किया कि वह अपनी प्रजा को यह वरदान दे सके।" उसने बड़ी सच्चाई के साथ सब सुविधाएँ देने की प्रतिज्ञा की थी। दरबार और मन्त्रियों की उपस्थिति में वह वेदी की ओर बढ़ा और यह शपथ ली—"हे सर्वज्ञ परमात्मा! आप असीम ज्ञान द्वारा भूत और भविष्यत् के द्रष्टा हैं। यदि मैं असत्य

और अनियमित प्रशासनिक एकता रही हो, किन्तु नेपोलियन द्वारा 'संहिता' (code) तथा सामन्त के कारण, इटली पर पृथक् आक्रमण के बाद से ही रिसोरजिमेण्टो (Risorgimento) की वृद्धि में प्रगति होने लगी थी। नेपोलियन के नेतृत्व में इटली की सेनाएँ अपनी टुकड़ियों में डट कर लड़ती थी और इनके लगभग ८० हज़ार सैनिक मारे गए। इनके पदाधिकारी मोर्चों से नवीन राष्ट्रीयता की प्रेरणा प्राप्त करके लौटते थे। अलफायरी (Alfieri) और फोसकोलो (Foscolo) जैसे रिसोरजिमेन्टो के अग्रदूत लेखक नेपोलियन के विरुद्ध भावना रखते थे क्योंकि उसने उनकी राष्ट्रीय एकता की आशाएँ विफल कर दी थीं। १८११ के पश्चात् मुरट इटली की ओर झुकने लगा क्योंकि ये लोग फ्रांसीसी पदाधिकारियों की अधिकता के कारण बड़े दुःखी थे। नेपोलियन ने मुरट को अपदस्थ कर देने की धमकी दी थी। १८१५ में '१०० दिन' की अवधि में मुरट ने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और सारे इटली निवासियों का राष्ट्रीय एकता और स्वतन्त्रता के नाम पर युद्ध करने के लिए आवाहन।

कहूँ अथवा इस सौगन्ध को तोड़ने का मैंने कभी विचार भी किया हो तो आप अपने दण्ड के वज्र से मेरा सिर इसी समय तोड़ दें।" बादशाह ने बाईबल को चूमा और यह शपथ उसके पुत्रों ने भी दोहराई और नवीन संविधान की सार्वजनिक रूप से घोषणा हुई।

किन्तु फर्डिनैण्ड प्रथम ने ट्रोप्पू में एकत्रित राजाओं को एक गुप्त सन्देश भेजा कि उसकी इच्छा अपना देश छोड़ने की है तथा आस्ट्रिया की सेना की सहायता से पूर्णाधिकार प्राप्त करने की है। दिसम्बर, १८२० में वह लाईबैक (Laibach) गया था। जैसे ही वह आस्ट्रिया की सीमा की सुरक्षा में पहुँचा उसने आस्ट्रिया के सम्राट् से अपनी पूर्ण सत्ता प्राप्त करने के लिए सहायता की याचना की। परिणामतः आस्ट्रिया की सेनाएँ नेपल्स में भेजी गईं और नेपल्स की सेनाएँ भाग गईं। संविधान फाड़ दिया गया और विद्रोही नेताओं को बन्दी बना लिया गया या मार डाला गया।

पीडमोण्ट का विद्रोह (Revolt in Piedmont) (१८२१)—क्रान्तिकारी आन्दोलन केवल नेपल्स तक ही सीमित नहीं रहा था। उस समय सारे इटली में गुप्त सभाओं का जाल फैला हुआ था। पीडमोण्ड में विक्टर इमेन्युल (Victor Emmanuel) की सरकार दुर्बल और प्रतिक्रियावादी थी और यहाँ मार्च, १८२१ में विद्रोह हुआ। किन्तु सिवाय राजवंश के प्रति कोई हिंसा नहीं की गई। जनता के नारे थे, "हमारा हृदय राजा के प्रति पूर्णतः स्वामि-भक्त है, किन्तु हम उसे दुराचारी सलाहकारों से बचाना चाहते हैं। आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध, देश में एक संविधान, यही दो इच्छाएँ हम प्रजाजनों की हैं।" जब आस्ट्रिया की सेनाएँ नेपल्स की ओर प्रयाण कर रही थीं, पीडमोण्ट के क्रान्तिकारियों ने आस्ट्रिया की सेना पर पीछे से धावा करने की योजना बनाई। दुर्भाग्य से योजना बुरी तरह क्रियान्वित हुई और असफल हुई। विक्टर इमेन्युल ने अपने भाई चार्ल्स फेलिक्स के लिए राज्य का परित्याग कर दिया। कुछ लोग सिंहासन चार्ल्स अल्बर्ट को दिलाना चाहते थे। इन मतभेदों के कारण यह आन्दोलन बुरी तरह समाप्त हुआ।

लोम्बार्डी (Lombardy)—लोम्बार्डी पर आस्ट्रिया की दासता पुनः पूरी शक्ति से जड़ दी गई थी। विद्रोही नेताओं को आस्ट्रिया ले जाया गया जहाँ उन्हें अपना सारा जीवन वन्दीगृह में बिताना पड़ा। युवकों को आस्ट्रिया की सेनाओं में भर्ती कर दिया गया था। लोम्बार्डी की जेलें राजनीतिक कैदियों से ठसाठस भरी थीं। सब सन्देहजनक व्यक्तियों पर कड़ी निगरानी रखी जाती थी। अपराध स्वीकार कराने के लिए अत्याचार किये जाते थे।

फ्रांस की जुलाई, १८३० की क्रान्ति का इटली की राजनीति पर भी प्रभाव पड़ा था। पोप के राज्यों पर इसका बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा था। पोप के राज्यों से आन्दोलन पीडमोण्ट, परमा और मोडेना में फैल गया था। किन्तु सब स्थानों पर विद्रोह असफल रहा था। पोप ग्रिगोरी सोलहवें ने आस्ट्रिया से सहायता माँगी थी। मेटरनिक ने आस्ट्रिया की सेनाएँ इटली में भेजीं और पोप के राज्यों पर 'सफ़ेद कोट' (White Coats) वालों ने अधिकार कर लिया था। व्यवस्था स्थापित हुई और

पोप को पुनः पदस्थ कर दिया गया था। फ्रांसिस चतुर्थ को मोडेना के सिंहासन पर तथा मेरी लुई को परमा के सिंहासन पर पुनः आसीन कर दिया गया था। किन्तु जैसे ही आस्ट्रिया की सेनाएँ इटली से निकलीं, नए विद्रोह फूट पड़े और सेनाओं को पुनः लौटना पड़ा। इस बार (१८३२ में) फ्रांस ने भी अनकोना (Ancona) पर अधिकार करने के लिए सेनाएँ भेजीं और ६ वर्षों तक आस्ट्रिया तथा फ्रांस की सेनाएँ पोप के राज्यों में एक दूसरे के सामने डटी रही थीं।

ये विद्रोह इसलिए असफल रहे क्योंकि प्रयत्नों में एकता और व्यवस्था नहीं थी। जनता अभी विद्रोह के लिए उद्यत नहीं थी। एकता केवल कुछ नेताओं की ही पुकार थी, सर्वसाधारण की भावना नहीं थी। एक बात अर्थात् प्रतिक्रियावादी इटली के राज्यों की निर्बलता स्पष्ट थी। उनकी रक्षा केवल आस्ट्रिया के हस्तक्षेप के द्वारा ही हो पाई थी।

रिसोरजिमेण्टो (Risorgimento)—तत्कालीन परिस्थिति के विरुद्ध इटली में अनेक विद्रोह हुए और हजारों व्यक्तियों को बन्दीगृहों में डाल दिया गया अथवा देशनिकाला दे दिया गया था। इन घटनाओं से विचार और भावनाओं का एक गम्भीर आन्दोलन आरम्भ हुआ, जो कालान्तर में इटली के इतिहास में इतना महत्त्वपूर्ण हो गया कि इसे 'इल रिसोरजिमेन्टो' (Il Risorgimento) अर्थात् पुनरावृत्ति या पुनर्जीवन के नाम से पुकारा जाने लगा था।

यह आन्दोलन मूल रूप से एक सदाचार का आन्दोलन था। इसका आधार 'स्वतन्त्र और संगठित इटली' का आदर्श था। इसे साहित्यिक गाथाओं से शक्ति की प्रेरणा प्राप्त होती थी। यह इटली की जनता को उनके महान् अतीत की स्मृति दिलाता था। राजनीतिक दृष्टि से यह पुनरावृत्ति देशभक्ति और राष्ट्रीयता से परिपूर्ण थी। यह आस्ट्रिया के शासन के विरुद्ध विरोध तथा एकता की माँग थी। यह सुधारवादी तथा प्रजातंत्रवादी था। देश में संसदीय प्रणाली की सरकार समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता, चर्च के अधिकारों में कमी तथा गणतन्त्र की स्थापना की माँग थी। यह इटली के मध्यमवर्ग की आर्थिक उन्नति करने की महत्त्वाकांक्षा भी थी। इसका सम्बन्ध विज्ञान और शिक्षा की प्रगति से था। इतना विशाल आन्दोलन एकमात्र अकेले कार्यक्रम में योजित नहीं हो सकता था। मेजिनी जैसे विद्वानों के विचार और प्रयत्न भी इस आन्दोलन में निहित थे।

मेजिनी (१८०५-७२) (Mazzini)—ग्युसेप मेजिनी (Giuseppe Mazzini) जिनोआ के एक डाक्टर और शरीर-विज्ञान के आचार्य का पुत्र था। बाल्यकाल से ही वह इटली के राष्ट्रीय-युद्ध से बड़ा प्रभावित था। जब उसकी आयु मुश्किल से १० वर्ष की थी तब १८१५ में जिनोआ पीडमोण्ट के अधिकार में कर दिया गया था। इस कार्य से लोगों में बड़ा असंतोष था। १८२० में मेजिनी ने इटली, फ्रांस, ब्रिटेन और जर्मनी के साहित्यिकों का साहित्य पढ़ा था। उसके प्रिय साहित्यकारों में डैण्टे (Dante), शेक्सपीयर, बॉयरन, गेटे, शिलर (Schiller), स्काट और ह्यूगो इत्यादि प्रमुख थे। छोटी आयु से ही उस पर स्वदेश की दुर्दशा का बड़ा गहरा प्रभाव

था। उसके शब्दों में "अपने सहपाठियों के शोर और चहल-पहल-भरे जीवन में, मैं गम्भीर और विचारों में डूबा हुआ रहता था और ऐसा प्रतीत होता था कि मैं सहसा ही अत्यन्त बूढ़ा हो गया हूँ। मैं बचपन के भावावेश में आकर स्वयं अपने देश के लिए शोक करने के लिए सर्वदा काले वस्त्र पहनने लगा था।"

उसका झुकाव साहित्यिक जीवन की ओर था। 'हजारों ऐतिहासिक और साहित्यिक स्वप्न मेरी मानसिक आँखों के आगे नाचा करते थे।' किन्तु उसने देश के लिए युद्ध करने के लिए इस जीवन का परित्याग कर दिया। इसको वह अपना 'प्रथम और महान त्याग' मानता था। वह 'कारबोनारी' का सदस्य इसलिए नहीं बना कि वह इसके तरीकों से सहमत था बल्कि इसलिए कि यह और कुछ नहीं तो एक क्रान्तिकारी संस्था तो थी ही। उसे १८३० में बन्दी बनाकर सवोना (Savona) के किले में डाल दिया गया किन्तु उसे ६ महीने बाद ही मुक्त कर दिया गया था। जिनोआ के राज्यपाल ने मेज़िनी के पिता से कहा "आपका पुत्र प्रतिभाशाली है किन्तु वह रात्रि के समय विचारों में डूबा हुआ अकेला घूमने का अत्यन्त शौकीन है। आखिर इस आयु में उसे कौन सी समस्या पर विचार करना है? हमें युवकों का इस प्रकार विचारमग्न होना पसन्द नहीं जब तक कि हमें यह मालूम न हो कि वे किस विषय पर विचार करते हैं।"

मेज़िनी

मेज़िनी के विशाल अनुभव ने एक नई संस्था—'युवा इटली' (Young Italy) की नींव डालने में सहायता की। राष्ट्रीयता के आन्दोलन के केन्द्र के रूप में यह संस्था 'कारबोनारी' से भी अधिक प्रसिद्ध हुई थी। इसका नारा था, 'परमेश्वर और जनता' (God and the People)। इसके प्रत्येक सदस्य को शपथ लेनी पड़ती थी कि, "मैं स्वतन्त्र और गणतन्त्रात्मक इटली की स्थापना के लिए पूर्णरूप से अपना सर्वस्व बलिदान कर दूँगा।"

मेज़िनी का विश्वास था कि यदि इटली के युवकों को अपने ध्येय में दृढ़ विश्वास हो तो केवल ये ही लोग इटली का संगठन कर सकते थे। उसके शब्दों में, "युवकों को क्रान्तिकारियों का नेतृत्व सौंप देना चाहिए; हमें इन युवकों के हृदयों में निहित गुप्त शक्ति का अनुमान भी नहीं है और हमें इनकी ओजस्वी वाणी के जन-

साधारण पर प्रभाव का अनुमान भी नहीं है। तुम्हें इन युवकों में देशभक्ति के नवीन ... के अनेक धर्माचार्य प्राप्त होंगे।" मेज़िनी ने इटली के लिए बलिदान करने वालों के नाम पर देश को जाग्रत किया। उसने इटली की जनता को बताया कि उनकी कोई नागरिकता, कोई देश और कोई राष्ट्रीय ध्वज नहीं है। युवक इटली का नारा 'परमेश्वर, जनता और इटली' था। इसकी कार्य-प्रणाली शिक्षा, साहित्यिक प्रचार और विद्रोह थी।

मेज़िनी का विश्वास था कि 'युवक इटली' षड्यंत्रकारियों का संगठन-मात्र नहीं था। इसका मुख्य उद्देश्य इटली की जनता में आत्मोत्सर्ग और देश के लिए बलिदान करने की भावना को जाग्रत करना था।

मेज़िनी इटली की मुक्ति और संगठन को धर्म मानता था। वह इसके लिए जीने और मरने के लिए तैयार था। वह एक निर्भीक नेता था। वह एक सूझबूझ वाला, कवि और कुशाग्र-बुद्धि व्यक्ति था। उसकी लेखन-शैली हृदयग्राही थी। उसका उत्साह अदम्य था। मेज़िनी के इन सब गुणों से इटली के संगठन में बड़ी सहायता मिली।

मेज़िनी की धारणा थी कि आस्ट्रिया को जितनी शीघ्रता से इटली से निकाल दिया जाए उतना ही शुभ होगा। वह आस्ट्रिया को निकाल देने में विदेशी सहायता प्राप्त करने के पक्ष में नहीं था। वह कहा करता था, अपना उद्धार चाहने वाले "इटली के दो करोड़ निवासियों को अपनी मुक्ति के लिए शक्ति की नहीं अपितु विश्वास की आवश्यकता है।"

मेज़िनी की इटली को सब से बड़ी देन इस वास्तविकता में है कि जिस समय इटली के निवासी इटली के एकीकरण और मुक्ति को एक असम्भव स्वप्न मानते थे उस समय उसने इन्हें एक क्रियात्मक आदर्श बना दिया था। वह इस ध्येय के प्रति जनता में आस्था उत्पन्न करने में सफल हुआ था। वह अपनी ही तरह सेवा और बलिदान की भावना से प्रेरित बहुत से लोगों को इटली के एकीकरण के लिए जाग्रत करके संगठित करने में सफल हुआ था।

१८४६ में जब 'पायस नवम' (Pius IX) इटली में पोप बना उस समय लोगों में बड़ा उत्साह था। वह सुधारवादी नीति का अनुसरण करता था और यह आशा की जाती थी कि वह देश की राष्ट्रीय और गणतंत्रात्मक शक्तियों का नेता बन जाएगा। जहाँ-तहाँ 'महान् पोप की जय हो' (Viva Pio Nono) के नारे सुनाई पड़ते थे। मेटरनिक घबरा गया। उसने कहा, "हम एक सुधारवादी पोप के अतिरिक्त सब चीजों के लिए तैयार हैं। अब पोप भी सुधारवादी है। कहा नहीं जा सकता कि भविष्य में क्या होगा।" आस्ट्रिया की सेनाओं ने फिरारा (Ferrara) पर अधिकार कर लिया। पीडमोण्ट के चार्ल्स अल्बर्ट ने इसे अपमान समझा और ब्रिटेन ने विरोध प्रकट किया था, किन्तु पोप का उत्साह शीघ्र ही ठण्डा पड़ गया और उसने आगे कुछ भी करने से इनकार कर दिया। किन्तु इसके विपरीत इटली के प्रत्येक राज्य में एक नवीन भावना दीख पड़ती थी और देशभक्ति की भावना सार्वदेशिक थी।

इटली में जनसाधारण की भावना का ब्राउनिंग (Browning) ने ठीक प्रकार से चित्रण किया है। एक कविता में उसने लन्दन स्थित एक इटली निवासी के मुख से इस प्रकार कहलवाया है :—

"However, if I pleased to spend,
Real wishes on myself—say three—
I know at least what one should be,
I would grasp Metternich until,
I felt his red, wet throat distil,
In blood through these two hands."

१८४८-४६ (1848-49)—१८४८ का वर्ष अनेक समस्याओं के साथ आरम्भ हुआ। नेपल्स और सिसली में सुधारों के लिए जनता का आन्दोलन प्रगति पर था। पोप के राज्यों, टुस्कने और पीडमोण्ट के प्रजातंत्रवादी दल इस प्रकार के संविधान की मांग कर रहे थे जिससे राजसत्ता जनता के हाथों में आ जाए। लोम्बार्डी और विनिशिया में भी आस्ट्रिया का शासन असहनीय हो रहा था। १८४८-४६ के सारे आन्दोलन राष्ट्रीयता और प्रजातन्त्रवाद के समर्थक थे।

जनवरी १८४८ में पालेरमो (Palermo) में विद्रोह हुआ और सुधारों, सिसली के स्वशासन और १८१२ के संविधान को पुनः लागू करने की मांग की गई थी। थोड़े विरोध के पश्चात् इन मांगों को मान लिया गया। नेपल्स में भी प्रदर्शन हुए और वहां भी नया संविधान लागू कर दिया गया। परिणामतः पोप के राज्यों में, पीडमोण्ड और टुस्कने में भी संविधान के लिए सार्वजनिक विद्रोह हुए। मार्च, १८४८ में पीडमोण्ट और टुस्कने में सांवैधानिक सरकारों की स्थापना कर दी गई थी।

मार्च में ही सूचना प्राप्त हुई कि विआना और बुडापेस्ट में विद्रोह हुआ है और मेटरनिक लन्दन भाग गया है। मिलान में विद्रोह हुआ, राडेटजकी के नेतृत्व में आस्ट्रिया की सेनाएँ पीछे हट गईं और राज्यपाल देश से भाग गया। वेनिस में प्रजातन्त्र की घोषणा कर दी गई। मोडेना और परमा के राजा भी भाग गए। देश में आस्ट्रिया से युद्ध करके उसके शासन को समाप्त करने की मांग की जाने लगी। केवूर ने अपील की, "सार्डीनिया के राजा का सर्वोत्तम समय आ पहुँचा है। इस समय सरकार, देश और राजा के लिए एकमात्र मार्ग केवल युद्ध ही है।" चार्ल्स अल्बर्ट ने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। टुस्कने, नेपल्स और पोप के राज्यों से भी सेनाएँ युद्ध के लिए आईं, किन्तु कुछ समय पश्चात् ये सब पीछे हट गईं। जुलाई, १८४८ में कस्टोज्जा की लड़ाई में चार्ल्स अल्बर्ट की पराजय हुई। लोम्बार्डी और विनिशिया पुनः आस्ट्रिया के अधिकार में आ गए। कस्टोज्जा के युद्ध का परिणाम यह हुआ कि नरम-दल के अनुयायियों की निन्दा हुई और मेज़िनी के नेतृत्व में उग्रदल को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। देश में राजाओं का युद्ध समाप्त हुआ और जनता का युद्ध आरम्भ हुआ।

रोम में गणतन्त्र की घोषणा हुई और मेज़िनी को इसका प्रमुख बना दिया गया था। पोप की सत्ता समाप्त हो गई। पोप नेपल्स भाग गया और वहाँ जाकर यूरोप की शक्तियों से सहायता माँगी। मार्च, १८४९ में चार्ल्स अल्बर्ट ने फिर आस्ट्रिया से लड़ाई लड़ी किन्तु नोवारा के युद्ध में हार गया। उसने राज्य छोड़ दिया। उसके पुत्र इमेन्युल द्वितीय ने आस्ट्रिया से सन्धि कर ली। नोवारा के पश्चात् इटली में प्रतिक्रिया का चक्र चला। नेपल्स ने सिसली पर पुनः अधिकार जमा लिया। टुस्कने के राजा को भी पुनः पदासीन किया गया। फ्रांस के राष्ट्रपति लुई नेपोलियन ने रोम में एक सैनिक अभियान भेजा। गेरीबाल्डी का पतन हुआ और पोप को पुनः पदस्थ कर दिया गया। अगस्त, १८४८ में आस्ट्रिया की सेना ने वेनिस पर पुनः अधिकार कर लिया। यद्यपि १८४८-४९ का संघर्ष असफल रहा तथापि इससे लाभ हुआ था। उन लोगों की जो गणतन्त्र के अथवा पोप के अधिकृत राज्य के समर्थक थे निन्दा की गई और पीडमोण्ट की राजशाही के अन्तर्गत इटली के एकीकरण के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया था। इस संघर्ष में विना प्रान्तीयता का विचार किए इटली के सभी प्रदेशों के लोगों ने भाग लिया था। इटली की जनता का स्वाभिमान जागृत हुआ और इस संघर्ष से इटली को अपनी रक्षा के लिए एक राष्ट्र और प्रतिनिधित्व करने के लिए एक राजवंश प्राप्त हुआ।

केवूर के प्रसिद्ध होने से पूर्व इटली के विद्रोही के असफल होने के कई कारण थे। आस्ट्रिया की स्थिति इटली में बहुत शक्तिशाली थी। विना विदेशों की सहायता के उसे इटली से निकालना असम्भव था। किन्तु इटली के देशभक्तों का नारा था कि वे विना विदेशी सहायता के ही स्वतन्त्रता और संगठन प्राप्त करने में सफल हो जाएँगे। यह असम्भव था। यह सत्य है कि 'कारवोनारी' और 'युवा इटली' जैसी संस्थाओं के कारण इटली में राष्ट्रीयता की भावना प्रगति कर रही थी किन्तु अभी भी लोगों में स्वार्थ और प्रान्तीयता की भावना प्रवल थी। वहुत थोड़े लोग समस्त इटली के हित की दृष्टि से विचार करते थे। इटली के सामन्तों और राजाओं में संगठन के लिए एकता नहीं थी। वास्तव में पीडमोण्ट को छोड़कर सारे ही इसके विरोधी थे। लोम्वार्डी और विनिशिया के साथ आस्ट्रिया एकीकरण का विरोधी था। परमा, मोडेना और टुस्कने के आस्ट्रिया के वंशज राजा भी इसके विरोधी थे। पोप इटली के एकीकरण का सवसे बड़ा शत्रु था क्योंकि इटली के एकीकरण से उसका राज्य, राजधानी, आमदनी और प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती थी। इटली को विश्रृङ्खल बनाए रखने के प्रयत्नों में फ्रांस और अन्य देश उसके सहायक थे। इटली के देश-भक्तों के ध्येय भी भिन्न-भिन्न थे। कुछ प्रजातन्त्र के, कुछ पोप के नेतृत्व के और कुछ पीडमोण्ट के समर्थक थे।

एकता के अभाव के कारण ध्येय के लिए संघर्ष दुर्वल हो गया था। देश-भक्त अपनी-अपनी विचारधारा का प्रचार करते थे और उनकी विभाजित शक्तियाँ अधिक प्राप्त नहीं कर सकती थीं। जिस समय केवूर प्रकाश में आया उस समय इस प्रकार की परिस्थिति थी। किन्तु यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि विद्रोहों की असफलता से केवूर का कार्य सरल हो गया। प्रजातन्त्र और पोप के नेतृत्व का

समर्थन करने वालों के विरुद्ध प्रचार किया गया था। इसलिए सारे इटली की जनता पीडमोण्ड के राजवंश के अन्तर्गत इटली के संगठन के लिए संघर्ष कर सकती थी। पुनश्च, विद्रोहों की पुनरावृत्ति में पीडमोण्ड इटली के लोगों का नेता सिद्ध हो चुका था।

केवूर (Cavour) (१८१०-६१)—इटली के संगठन के लिए केवूर के कार्य का उल्लेख भी आवश्यक है। वह देशभक्त और कूटनीतिज्ञ था। उसने मेजिनी द्वारा बोए गए देशभक्ति के बीज की खेती की रक्षा की। १८५० में वह पीडमोण्ड मन्त्रिमण्डल का सदस्य बना और १८५२ में वह वहाँ का प्रधानमन्त्री बना और १८६१ तक मृत्यु-पर्यन्त वह इस पद पर आसीन रहा था। केवूर से पूर्व जनता का नारा 'इटली अपनी रक्षा स्वयं करेगा' (Italia Fara da se) था। इटली की जनता की धारणा थी कि वे अपना उद्धार बिना बाहरी सहायता के स्वयं ही कर सकेंगे। किन्तु १८४८-४९ की असफलताओं से सिद्ध हो गया कि बिना विदेशी सहायता के आस्ट्रिया को देश से निकालना असम्भव है। केवूर ने अपना कार्य इस धारणा से आरम्भ किया कि बिना विदेशी सहायता के आस्ट्रिया को इटली से नहीं निकाला जा सकता था। इसी कारण उसने क्रीमिया युद्ध में भाग लिया और फ्रांस के नेपोलियन तृतीय की सहायता भी प्राप्त की।

पुनश्च, केवूर की यह दृढ़ धारणा थी कि यदि पीडमोण्ट को इटली का नेता बनना है तो उसे इसके योग्य बनना चाहिए। पीडमोण्ड को राजनीतिक और आर्थिक उन्नति करनी चाहिए। इसे एक आदर्श राज्य बनना चाहिए जिससे कि इटली के अन्य राज्य इसे अपना नेता स्वीकार करें। यदि इस प्रकार प्रगति हो जाए तो इटली के देशभक्त पीडमोण्ट का नेतृत्व स्वीकार कर लेंगे। केवूर के शब्दों में, "पीडमोण्ट इटली की सारी जाग्रत-शक्ति को एकत्र कर सकेगा और जिस कार्य की इससे आशा की जा रही है उस उच्च उद्देश्य को यह पूरा करने में समर्थ हो जाएगा।" पीडमोण्ट की आर्थिक उन्नति के लिए उसने कृषि और उद्योग को प्रोत्साहन दिया था। स्वतन्त्र व्यापार की नीति का अनुसरण करके उसने व्यापार की उन्नति कराई। उसने अपने राज्य में सड़कें, नहरें और रेलें बनवाईं। उसने आय-व्यय के लेखे (Budget) का पुनर्गठन किया और राजस्व में वृद्धि करके अधिक धन प्राप्त किया। उसने 'स्वतन्त्र राज्य में स्वतन्त्र चर्च' की नीति का अनुसरण

केवूर

किया और राजनीति से धर्म को पूर्णतः निकाल दिया। सेनापति ला-मारमोरा (General La Marmora) के नेतृत्व में सेना का निर्माण किया गया।

क्रीमिया में हस्तक्षेप (Intervention in Crimea)—अपने देश को तैयार करने के पश्चात् केवूर एक मित्र की खोज में था जो उसे क्रीमिया के युद्ध में प्राप्त हुआ। १८५५ में उसने इंग्लैंड, फ्रांस और तुर्की के पक्ष में और रूस के विरुद्ध क्रीमिया के युद्ध में भाग लिया। यह सत्य है कि पीडमोन्ट का पूर्व के प्रश्न से कोई सम्बन्ध नहीं था किन्तु केवूर पीडमोन्ट की प्रतिष्ठा बढ़ाने के अवसर की प्रतीक्षा में था। यह नीति का एक कुशल दांव था। जब क्रीमिया में इटली की सेनाओं ने कीचड़ बहुत होने की शिकायत की तो केवूर ने लिख कर भेजा "इस कीचड़ से ही इटली का निर्माण होगा।" रूस पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् १८५६ में पेरिस सम्मेलन हुआ था। इस सम्मेलन में केवूर ने इटली में आस्ट्रिया के दमन की घोर निन्दा की और इटली के प्रश्न को एक स्थानीय प्रश्न के स्तर से उठा कर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का प्रश्न बना दिया था। केवूर ने अपने प्रश्न पर यूरोप विशेषतः नेपोलियन तृतीय की सहानुभूति प्राप्त की थी।

नेपोलियन और इटली (Napoleon and Italy)—केवूर इटली के लिए नेपोलियन तृतीय का समर्थन प्राप्त करने पर कटिबद्ध था। नेपोलियन तृतीय स्वयं कारबोनारी का सदस्य था। वह इटली के संघर्ष के प्रति सहानुभूति रखता था और फ्रांस के सुधारवादियों को प्रोत्साहन देता था। किन्तु फ्रांस के कैथोलिक इटली की सहायता के पक्ष में नहीं थे क्योंकि इससे रोम के पोप की सत्ता समाप्त हो जाने का डर था। नेपोलियन तृतीय को इस बात का भी भय था कि यदि इटली में आस्ट्रिया अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ तो वह स्वयं पराजित हो सकता था। फ्रांस के इटली में युद्ध करते समय प्रशिया द्वारा फ्रांस पर आक्रमण किए जाने का डर था। नेपोलियन तृतीय का संकोच करना स्वाभाविक था। इटली के एक देश-भक्त ओरसिनी ने नेपोलियन तृतीय की हत्या करने का प्रयत्न किया था। ओरसिनी ने बन्दीगृह से लिखा, "जब तक इटली स्वतन्त्र नहीं होता उस समय तक आप सम्राट् तथा सारे यूरोप की शान्ति एक मृगमरीचिका मात्र है। आप मेरे देश को मुक्त करा दें, मेरे देश के ढाई करोड़ निवासियों की शुभ इच्छाएँ भविष्य में आप के साथ रहेंगी।" 'इटली की जय हो' का नारा ओरसिनी के होठों पर मृत्यु के समय भी था। इसका परिणाम यह हुआ कि केवूर और नेपोलियन तृतीय प्लोम्बियर्स नामक स्थान पर मिले और यह निर्णय हुआ कि नेपोलियन लोम्बार्डी और विनिशिया से आस्ट्रिया को निकालने में पीडमोण्ट की सहायता करेगा। नेपल्स और रोम को अछूता रखा जाएगा। शेष इटली को एक राज्य बना दिया जाएगा। नेपोलियन को नाइस और सवाय दे दिए जाएँगे। नेपोलियन पीडमोण्ट की सहायता आस्ट्रिया द्वारा आक्रमण करने की स्थिति में ही करेगा।

सीमैन (Seaman) के मतानुसार, "यह सोचना कि नेपोलियन तृतीय न केवल इसलिए इटली के मामले को हाथ में लिया क्योंकि इटली के राष्ट्रीय संघर्ष के

प्रति उसका भावुकतापूर्ण लगाव था; अत्यन्त त्रुटिपूर्ण बात है। उसने जो कार्य किया इस आशय से किया कि इससे इटवी में फ्रांस का प्रभाव बढ़ जाएगा। इटली के लिए कुछ करने पर इटली भी फ्रांस के लिए कुछ करेगा और वह स्वयं वोनापार्ट दल के लिए कुछ कर सकेगा। दिसम्बर का यह पुरुष अपने युग की उपज थी जो केवल स्वतन्त्र और पुनर्जीवित इटली के स्वप्न का ही द्रष्टा नहीं था और उसकी निजी कार्यप्रणाली जिसके द्वारा स्वतन्त्र इटली का निर्माण होना था, अधिक न्याय की दृष्टि से नहीं देखी जाती थी।

अपने निर्णय को क्रियान्वित करते समय वह नेपोलियन की परिपाटी और नेपोलियन गाथा के अनुसार चल रहा था। सेण्ट हैलिना द्वीप से उसे आदेश मिला था कि "प्रथम राजा जो जनता के हित का समर्थन करेगा, वह यूरोप का निर्विवाद नेता बनेगा।" इटली को आस्ट्रिया के चंगुल से छुड़ाने का प्रयत्न उसके द्वारा स्वयमेव 'राष्ट्रों का नेता' की पदवी धारण करने के अनुकूल ही था। उसकी धारणा थी कि इस कार्य को करने से वह स्वयं को तथा फ्रांस को उस युग की सबसे बलशाली शक्ति का अगुआ बना रहा था। वह स्वयं और फ्रांस, इतिहास के साथ सहयोग करके, यूरोप के भाग्यविधाता बन सकते थे। इस प्रकार का सदाचारपूर्ण नेतृत्व एक अत्यन्त सूक्ष्म तथा अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति का कुशल दाव था।

प्लोम्बियर्स के समझौते तथा वास्तविक युद्ध आरम्भ होने में ९ महीने का समय लगा और इस अवधि में केवूर को युद्ध के लिए बहाना ढूँढ़ना तथा युद्ध के लिए तैयारियाँ करनी थीं। इससे पहले कि नेपोलियन अपना विचार बदलता वह युद्ध आरम्भ करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ था। बहुत से सैनिक प्रदर्शन और परेडें हुईं। आस्ट्रिया पर समाचार-पत्रों द्वारा आक्रमण किए गए तथा आस्ट्रिया को युद्ध करने के लिए उकसाने के लिए सारे साधनों का प्रयोग किया गया। पीडमोण्ट के राजा ने विधान सभा में कहा, "हम इटली के विभिन्न भागों से आती हुई दुःख की पुकारों के प्रति सोए हुए नहीं हैं।" नेपोलियन तृतीय ने भी घोषणा की कि उसके आस्ट्रिया के साथ उतने अच्छे सम्बन्ध नहीं हैं जितने कि पहले थे। आस्ट्रिया ने पीडमोण्ट को चुनौती दी कि वह युद्ध की तैयारियाँ बन्द कर दे। केवूर ने उसे ठुकरा दिया। और आस्ट्रिया ने १८५९ में युद्ध छेड़ दिया। इस अवसर पर केवूर ने कहा, "हमने बाजी लगाई है और इतिहास का निर्माण किया है।" नेपोलियन तृतीय पीडमोण्ट की सहायता को आया और इटली वालों ने उसे अपना, 'मुक्ति-दाता, रक्षक और संरक्षक' माना। उसने इटली वालों से कहा, "इस सौभाग्यपूर्ण आए हुए अवसर का उपयोग करो। यदि तुम इस योग्य सिद्ध हुए तो समझो कि तुम्हारे स्वतन्त्रता के स्वप्न पूरे होने जा रहे हैं। अपने देश के इस महान् कार्य के लिए संगठित हो जाओ।" आस्ट्रिया को मेजेण्टा, सोलफरनो के युद्ध में पराजय मिली और उन्हें लोम्बार्डी से निकाल दिया गया। किन्तु नेपोलियन का विचार बदल गया और उसने सहसा युद्ध बन्द कर दिया। उसने सारडीनिया से सलाह किये बिना ही आस्ट्रिया से १८५९ में विलाफ्रांका की सन्धि कर ली। आस्ट्रिया ने पीडमोण्ट को लोम्बार्डी तो देना स्वीकार किया किन्तु विनिशिया नहीं दिया था। परमा, मोडेना और टुस्कने के राजाओं को

पुनः पदासीन कर दिया गया। पोप के नेतृत्व में इटली का एक संघ बनाने का निर्णय किया गया। ज्यूरिच की सन्धि द्वारा 'युद्ध रोको' समझौते की शर्तें पक्की कर दी गई थीं।

टेलर के मत में "१८५९ का युद्ध आधुनिक इतिहास में अद्वितीय था; यही ऐसा युद्ध था जो आंशिक रूप में पारस्परिक आशंकाओं से नहीं उपजा था। आक्रमण-कारी अभियानों तक में निरोध का एक तत्व होता है। नेपोलियन प्रथम को यह सोचने की कुछ गुन्जायश थी कि एलेग्ज़ेण्डर प्रथम उस पर चढ़ाई करने की तैयारी कर रहा है जबकि उसने १८१२ में रूस पर आक्रमण किया था। जर्मन लोगों को भी अपने लिए 'घिरा हुआ' सोचने की कुछ गुन्जायश थी जबकि उन्होंने बीसवीं शताब्दी में प्रथम व द्वितीय महायुद्ध किए। बिस्मार्क भी ऐसा स्वीकरणीय व सहमतीय दावा कर सकता था कि वह सबसे पहले आस्ट्रिया व फ्रांस के विरुद्ध अपनी तैयारी कर रहा था। १८५९ में न तो फ्रांस और न ही सार्डीनिया को आस्ट्रिया की ओर से कोई आशंका होने का कारण हो सकता था और वे भी तब तक उस पर धावा नहीं बोल सकते थे जब तक कि वह उन्हें अवसर न देता। भय के कारण नहीं बल्कि दूसरे पक्ष को युद्ध में जाने पर बाध्य करने के लिए दोनों तरफ से सेनाएँ चल पड़ीं। १८५९ में केवल यही वास्तविक आशंका थी कि आस्ट्रिया में आन्तरिक क्रान्ति न हो जाये और यह भी बहुत अतिशयोक्तिपूर्ण था।"

(The Struggle for Mastery in Europe, pp. 111-12)

केवूर (Cavour) ने नेपोलियन तृतीय के कार्य का समर्थन नहीं किया और इमेन्युल द्वितीय से ज्यूरिच सन्धि का विरोध करने के लिए कहा। किन्तु इमेन्युल ने ऐसा करने से इंकार कर दिया क्योंकि वह समझता था कि इटली वाले अपनी इच्छानुसार नेपोलियन को विवश नहीं कर सकते। केवूर ने पदत्याग कर दिया किन्तु थोड़े समय पश्चात् उसने पुनः कार्यभार सँभाला। जब आस्ट्रिया ने लोम्बार्डी खाली किया, तब परमा, मोडेना, टुस्कने और रोमगना की जनता ने सार्डीनिया के राज्य में मिलने का निर्णय किया। नेपोलियन ने इसे स्वीकार कर लिया और उसे नाइस और सवाय दे दिए गए थे। केवूर ने भी राजनीतिक लाभ के कारण इसे स्वीकार किया। यह बात उसके इस वाक्य से स्पष्ट है, "अब हम दोनों अपराधी हैं।"

सिसली और नेपल्स (Sicily and Naples)—केवूर (Cavour) के शब्दों में, "मुझे उत्तर की ओर से कूटनीति द्वारा इटली का निर्माण करने से रोक दिया गया किन्तु अब मैं दक्षिण से क्रान्ति द्वारा इसका निर्माण करूँगा।" अत्यन्त सावधानी और दक्षता से उसने इटली को संगठित करने के इतिहास में अत्यन्त आश्चर्यजनक योजना आरम्भ की। सिसली की जनता ने विद्रोह करके गेरीबाल्डी से सहायता की याचना की। गेरीबाल्डी ने अपने प्रसिद्ध एक हजार 'लाल कुर्ती' दल के साथ सिसली की ओर प्रस्थान किया। आन्तरिक रूप से केवूर को गेरीबाल्डी के साथियों से सहानुभूति थी किन्तु प्रकट रूप से वह उसे अनधिकृत स्वतंत्र साहसी व्यक्ति मानता था इसलिए उसने कठोर निष्पक्षता का पालन किया। उसने गुप्त रूप मे उसे सब

प्रकार की सहायता दी और शक्तियों द्वारा विरोध में सैनिक अभियान भेजने के सम्बन्ध में चुनौती का मुकाबला करने के लिए तैयारियाँ कर ली थीं। ब्रिटिश सरकार ने भी सहानुभूति का रुख दिखाया था। गेरीवाल्डी अपने कार्य में सफल हुआ और उसने सारा सिसली विजय कर लिया। यह कार्य पूरा करके वह मुख्य द्वीप में आया और नेपल्स के राजा को भी पराजित किया। तब गेरीबाल्डी ने रोम जाने का निर्णय किया था। यदि उसने ऐसा किया होता तो फ्रांस से युद्ध छिड़ जाने की सम्भावना थी, क्योंकि वहाँ फ्रांस की सेनाएँ (१८४६ से) पड़ाव डाले पड़ी थीं। केवूर ने उस समय घोषणा की, "इटली की विदेशियों से तथा बुरे व्यक्तियों और सिद्धान्तों से रक्षा करनी चाहिए।" उसने विक्टर इमेन्युल के नेतृत्व में गेरीबाल्डी को रोकने के लिए भेजा था। इमेन्युल गेरीवाल्डी से टक्कर लेने के लिए बड़ी शीघ्रता से आगे बढ़ा और गेरीवाल्डी ने उसे सारी सत्ता सौंप दी। नेपल्स और सिसली पीडमोण्ट राज्य में मिला दिए गए। रोम और विनिशिया को छोड़ कर सारा इटली इमेन्युल द्वितीय के अधिकार में आ गया था। इन दो राज्यों को क्रमशः १८६० और १८६१ के पीडमोण्ट राज्य में मिला लिया गया था। १८६१ में इटली की प्रथम संसद का अधिवेशन हुआ और इसके बाद शीघ्र ही केवूर की मृत्यु हो गई। इससे कोई भी इंकार नहीं कर सकता कि एक राष्ट्र के रूप में इटली का निर्माता केवूर ही था। फिलिप्स के शब्दों में "एक राष्ट्र के रूप में इटली केवूर का जीवन भर का कार्य तथा उसकी दी हुई विरासत है।" अन्य नेता देश को मुक्त कराने का प्रयत्न करते रहे, किन्तु किस प्रकार इसे एक सम्भव कार्य बनाया जाए इसे केवल वही जानता था। उसने इस संघर्ष को सब प्रकार की फूट डालने वाली प्रवृत्तियों से अछूता रखा, इसे काल्पनिक; तथाकथित उच्च सिद्धान्तों से दूर रखा; इसे दुस्साहसी षड्यंत्रों से पवित्र रखा; विद्रोहियों और प्रतिक्रिया के मध्य सीधा पथनिर्देशन किया और अपने देश को एक सुव्यवस्थित सैन्य शक्ति, राष्ट्रीय ध्वज, सरकार और विदेशी मित्र प्रदान किया।" यह सत्य है कि केवूर की बुद्धिमत्ता ने मेज़िनी की प्रेरणाओं और विचारों को शक्ति प्रदान की। उसी ने ही गेरीबाल्डी की तलवार को राष्ट्रीय शस्त्र बनाया और पदभ्रष्ट साहसी लोगों की राजनीतिक उछल-कूद को राष्ट्र के शासनयंत्र का मुख्य साधन बना दिया। एक अन्य लेखक ने लिखा है, "यदि यूरोप की सहानुभूति, विश्वास और सहायता प्राप्त करने के लिए केवूर नहीं होता, यदि यह नहीं माना जाता कि सब विपत्तियों में उसकी बुद्धि स्थिर रहती है तो मेज़िनी के प्रयत्न केवल कुछ विद्रोह मात्र ही बन कर रह जाते और गेरीवाल्डी की आश्चर्यजनक वीरता से सारहीन देशभक्ति के इतिहास में एक अध्याय और जुड़ जाता।" कहा जाता है कि केवूर ने मृत्यु-शैया पर पड़े हुए कहा था, "इटली का निर्माण हो गया, अब सब सुरक्षित है।" "केवूर इटली वालों की इटली का निर्माण कर चुका था।"

लार्ड पामर्स्टन के शब्दों में, "केवूर ने अपना नाम एक शिक्षा देने के लिए, एक गाथा को सुन्दर बनाने के लिए छोड़ा है। शिक्षा यह है कि एक प्रतिभाशाली,

असीम परिश्रम वाला, ज्वलन्त देशभक्ति वाला व्यक्ति अगम्य कठिनाइयों को पार कर सकता है और अपने देश को महान् और मानव की कल्पना से भी अधिक लाभ पहुँचा सकता है। जिस गाथा से उसकी स्मृति जुड़ी थी वह अत्यन्त अद्भुत तथा संसार के इतिहास में अत्यन्त मनोरंजक है। एक ऐसी जाति जो मृतप्राय थी, मुग्धावस्था की तन्द्रा को तोड़ कर तथा एक नवीन और यशस्वी नव-शक्ति से ओत-प्रोत जीवन प्राप्त कर चुकी थी।"

गेरीबल्डी (Garibaldi) (१८०७-८२)—इसका जन्म १८०७ में नाइस में हुआ था। वह मेज़िनी से दो वर्ष छोटा और केवूर से तीन वर्ष बड़ा था। इसके माता-पिता इसे एक पादरी मात्र बनाना चाहते थे किन्तु इसकी रुचि समुद्री जीवन में थी। बहुत समय तक यह एक नाविक का दुस्साहसी जीवन व्यतीत करता रहा।

वह मेजिनी की 'युवा इटली' का सदस्य बना और १८३४ में मेज़िनी द्वारा सवाय में विद्रोह कराने पर उसमें भाग लिया और इसे मृत्युदण्ड दिया गया था। किसी प्रकार यह दक्षिणी अमेरिका चला गया और वहाँ १४ वर्ष देश से निष्कासित रहा। वहाँ पर भी वह अपनी इटली-सेना (Italian Legion) के साथ दक्षिणी अमेरिका के युद्धों में भाग लेता रहा था।

जैसे ही उसने १८४८ के विद्रोह का समाचार सुना वह इटली की ओर शीघ्रता से चला यद्यपि उस समय तक भी उसका मृत्युदण्ड रद्द नहीं किया गया था। उसके आने पर आस्ट्रिया के विरुद्ध लड़ने के लिए हज़ारों व्यक्ति 'मोण्टीविडो का सरदार' (Hero of Montevideo) के झंडे के नीचे इकट्ठे हो गए। विद्रोह के असफल होने पर वह १८४६ में रोम के प्रजातन्त्र की रक्षा के लिए लड़ने के लिए चला गया। जब रोम का पतन होने वाला था तब वह चार हज़ार सैनिकों के साथ बच निकला, किन्तु आस्ट्रिया की सेना उसका पीछा करती रही और उसने उसे कहीं भी चैन से नहीं बैठने दिया। वनों और पर्वतों में उसका इस प्रकार पीछा किया गया मानो वह कोई शिकारी का शिकार हो। उसके सारे साथी मारे गये और उसकी वीर पत्नी अनिता (Anita) भी युद्ध में काम आई। अन्ततः गेरीबाल्डी किसी प्रकार अमेरिका भाग जाने में सफल हो गया और फिर देश-निकाले की अवस्था में रहने लगा। किन्तु उसकी वीरता, शान, प्रेम से भरे हुए कारनामों ने इटली के निवासियों को प्रेरणा और उत्साह इत्यादि भावनाएँ प्रदान कीं।

१८५४ में वह पुनः इटली पहुँचा और केपरीरा (Caprera) द्वीप में रहने लगा। १८५६ में वह फिर मैदान में आया और स्वयंसेवकों की एक बड़ी सेना आस्ट्रिया के विरुद्ध लड़ने के लिए इकट्ठी की। देश के एक कोने से दूसरे कोने में रहने वाले सैनिकों का वह आदर्श था और हजारों व्यक्ति आँख मूँद कर उसका अनुसरण करने को तैयार थे।

१८६० में सिसली में विद्रोह हुआ था। वह लगभग ११५० आदमियों के साथ यात्री-जहाजों में सवार होकर चल पड़ा। इन 'लाल कुर्ती' सैनिकों ने गेरीबाल्डी

को द्वीप का स्वामी बना दिया। इस कार्य में उसकी सहायता स्थानीय विद्रोहियों ने भी की थी। सिसली से गेरीवाल्डी मुख्य द्वीप की ओर आया और उसने नेपल्स के राजा को पराजित किया और लगभग पाँच महीने के समय में गेरीवाल्डी ने लगभग ११ करोड़ की जनसंख्या के राज्यों को जीत लिया था।

गेरीवाल्डी

गेरीवाल्डी ने रोम पर आक्रमण करने की योजना बनाई किन्तु उसे केवूर और विक्टर इमेन्युल ने ऐसा नहीं करने दिया क्योंकि इससे फ्रांस से युद्ध हो जाने की सम्भावना थी। वहाँ १८४९ से फ्रांस की सेना डेरे डाले पड़ी थी।

जब केवूर ने फ्रांस को आस्ट्रिया के विरुद्ध सहायता देने के मूल्य के रूप में नाइस देना स्वीकार किया तो गेरीवाल्डी रो पड़ा क्योंकि इस द्वीप का फ्रांस को चले जाने का परिणाम यह हुआ कि वह इटली के लिए एक विदेशी नागरिक बन गया था।

विनिशिया (Venetia) (१८६६)—१८६६ में इटली ने प्रशिया से विनिशिया की सुरक्षा के हेतु सन्धि की थी। जब प्रशिया और आस्ट्रिया में युद्ध हुआ इटली की सेनाएँ भी युद्ध-क्षेत्र में उतर आईं। आस्ट्रिया की सेना ने इन्हें हरा दिया था किन्तु इनके युद्ध में आने से बिस्मार्क का कार्य हलका पड़ गया क्योंकि आस्ट्रिया को दो मोर्चों पर लड़ना पड़ता था। परिणाम यह हुआ कि आस्ट्रिया साडोवा (Sadowa) के युद्ध में हार गया और इसने शस्त्र डाल दिए थे। बिस्मार्क ने पराजित आस्ट्रिया से कुछ नहीं माँगा और केवल विनिशिया को इटली को वापिस लौटा देने को कहा था। विनिशिया पुनः इटली को दे दिया गया था।

रोम (Rome) (१८७०)—१८७० में जब नेपोलियन को रोम से अपनी सेनाएँ, जो वहाँ १८४९ से स्थित थीं, हटा लेने को विवश कर दिया गया उस समय

इटली का एकीकरण पूर्ण हुआ था। इसका कारण यह था कि नेपोलियन को आस्ट्रिया से युद्ध लड़ना था और इसलिए सारी सेनाओं को इकट्ठा करना आवश्यक हो गया था।

इस प्रकार देशभक्तों के प्रयत्नों, विदेशी सहायता और परिस्थितियों के प्रभाव से १८७० में जाकर इटली एकता प्राप्त कर सका था।

टेलर के विचार में, "इटली के एकीकरण ने वह काम पूरा कर दिया जो क्रीमिया के युद्ध ने शुरू किया था—'यूरोपीय व्यवस्था' का नाश। मेटरनिक की प्रणाली रूस की गारन्टी पर निर्भर थी; यदि उसे एक बार वापस ले लिया जाये तो प्रणाली को हटाया जा सकता था। नेपोलियन ने सोचा कि उसकी अपनी नई योजना उसका स्थान ग्रहण कर रही है। इसमें १८५९ व १८६१ की घटनाओं का गलत समझना निहित था। निस्सन्देह, इटली फ्रांस की सेनाओं व ब्रिटेन की नैतिक स्वीकृति के प्रति बहुत ऋणी था, किन्तु इन्हें दो तत्वों की सहायता के बिना फलोत्पादक नहीं बनाया जा सकता था—पेरिस की सन्धि के विरुद्ध रूसी विरोध और जर्मनी में आस्ट्रियन आधिपत्य के प्रति प्रशिया की अप्रसन्नता। यदि रूस ने ऐसी नीति का आचरण किया होता जो आस्ट्रिया के प्रति कम शत्रुतापूर्ण होती, यदि १८५९ में प्रशिया में राइन में संग्राम करता तो इटली की रचना न हो पाती। १८६१ के बाद भी रूस का यही लक्ष्य था कि १८५६ के समझौते को उखाड़ फेंका जाये; प्रशिया भी आधिपत्य की जगह जर्मन में समानता चाहता था। दोनों ही आस्ट्रिया के विरुद्ध कार्य करते रहे; यह कोई ऐसी गारण्टी नहीं थी कि वह फ्रांस के पक्ष के लिए काम करते रहेंगे। और वस्तुतः यूरोप का नेतृत्व, जिसे नेपोलियन ने इटली के मामले से प्राप्त किया था, पोलैण्ड के प्रश्न के ऊपर दो वर्षों के भीतर ही जाता रहा।"

(The Struggle for Mastery in Europe, pp. 124-25)

Suggested Readings

Flenley, R.	: *Makers of Nineteenth Century Europe.*
Garibaldi	: *Autobiography.*
Holland	: *Builders of United Italy.*
Johnston, R. M.	: *The Napoleon Empire in Southern Italy and the Rise of the Secret Societies, 1904.*
King, Bolton	: *Mazzini.*
King	: *History of Italian Unity.*
Marriot	: *Makers of Modern Italy.*
Martinengo-Cesaresco	: *The Liberation of Italy, 1815-70.*
Mowrer	: *Immortal Italy,*
Murdock	: *Reconstruction of Modern Europe.*
Orsi, P.	: *Cavour.*
Orsi, P.	: *Modern Italy.*
Smith, B. Mack	: *Cavour and Garibaldi.*
Taylor, A. J. P.	: *The Italian Problem in the European Diplomacy (1847-49), 1934.*

Thayer : *Life and Times of Cavour.*
Thayer : *Dawn of Italian Independence.*
Trevelyan, G. M. : *Garibaldi and the Making of Italy.*
Trevelyan, G. M. : *Garibaldi and the Thousand.*
Trevelyan : *Manin and the Venetian Revolution of 1848.*
Trevelyan (Mrs.) : *A Short History of Italy.*
Zimmern : *Italy of the Italians.*

अध्याय १७

जर्मनी का एकीकरण

(Unification of Germany)

जर्मनी के देशभक्तों और सुधारवादियों के विचार से जर्मनी के विषय में विआना सम्मेलन में हुआ समझौता अत्यन्त निराशाजनक था। उनकी आशा थी कि एक एकीकृत जर्मनी का निर्माण होगा किन्तु इसके विपरीत ३९ राज्यों का एक संघ बना दिया गया। आस्ट्रिया की अध्यक्षता में एक संघीय संसद् (Federal Diet) की व्यवस्था की गई थी। प्रत्येक राज्य का शासक अपने क्षेत्र में सर्वाधिकार सम्पन्न था इसलिए स्वायत्तरक्षा की भावना से प्रेरित होकर उसका जर्मनी के एकीकरण तथा उन सब सुधारवादी आन्दोलनों का जिससे एकीकरण हो सकता था, विरोध करना स्वाभाविक था। आस्ट्रिया के अतिरिक्त संघीय संसद् में अन्य अ-जर्मन तत्त्व भी थे। हेनोवर (Hanover) जो इंग्लैण्ड के अधिकार में था, उसे जर्मनी में मिला कर प्रतिनिधित्व दिया गया था। होलेस्टीन की डची (Duchy) को जो डेन्मार्क के राजा के अधिकार में थी, जर्मन संघ में मिला कर अन्य राज्यों की तरह उसे भी प्रतिनिधित्व दिया गया। इन विदेशी तत्त्वों से जर्मनी के एकीकरण के कार्य में सहयोग देने की आशा नहीं की जा सकती थी। संघ की संसद् को सदस्य राज्यों पर कोई अधिकार नहीं था। आस्ट्रिया जर्मनी का भाग्य-निर्णायक था। १८१५ के संघ-कानून द्वारा व्यवस्था की गई कि प्रत्येक राज्य में उत्तरदायित्व-पूर्ण संविधान बनाया जाये, किन्तु इसे कभी भी पूरी तौर पर क्रियान्वित नहीं किया गया। १८१५ के बाद समूचे जर्मनी में प्रति-क्रिया आरम्भ हो गई थी। फ्रेड्रिक विलियम तृतीय (१७९७-१८४०) प्रशिया के राजा द्वारा जर्मनी के देशभक्तों और सुधारवादियों के नेतृत्व की आशा थी किन्तु वह भी मेटरनिक के दबाव में आ गया था। परिणामतः उसने देश में राष्ट्रवाद और सुधारवाद की समर्थक शक्तियों का दमन करना आरम्भ कर दिया था।

जब जर्मनी में इस प्रकार की परिस्थितियाँ थीं उस समय इस देश के विश्वविद्यालयों ने देश का नेतृत्व सँभाला। जेना (Jena) जर्मनी के सुधारवाद का केन्द्र बन गया और विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों ने जो आन्दोलन चलाया वह दिन प्रतिदिन बढ़ता ही गया। गम्भीरता, संयम और जर्मनी की एकता के उच्च आदर्शों को जनता के सम्मुख रखा गया। सिबेल (Sybel) के मतानुसार, "युद्ध से लौटने वाले वीरों ने विश्वविद्यालयों को राष्ट्रीय अपमान की भावना से भर दिया। सारे विश्वविद्यालयों की समितियाँ (Burschenschaften) बना कर उन्होंने जर्मनी के शिक्षित युवकों में एकता, न्याय और स्वतन्त्रता की भावनाएँ भर दीं। इन समितियों

के उद्देश्य मुख्यतः सैद्धान्तिक थे। उनका उद्देश्य तत्कालीन व्यवस्था को उलट देना नहीं अपितु नई पीढ़ी को देशभक्ति की भावना में दीक्षित करना था। चरित्र के उत्थान और देशभक्ति की भावना द्वारा वे भविष्य का निर्माण करके राष्ट्रीय एकता का लक्ष्य प्राप्त करना चाहते थे। वास्तव में उनके भविष्य के स्वप्न साधारणतः ठोस और कार्य-परिणत हो सकने वाले नहीं थे। तथ्य रूप से कुछ गुटों में तो उत्साह उन्मत्तता की सीमा तक पहुँच गया था और वे लोग आततायियों से छुटकारा पाने के लिए शस्त्र उठाने के लिए तैयार थे। किन्तु इन उत्साही व्यक्तियों के देश में फैली हुई समितियों में अधिक अनुगामी नहीं थे जो इनकी प्रणाली का अनुसरण करते।"
(Foundation of the German Empire. Vol. I, p. 67).

विद्यार्थियों के संगठन जेना से फैले और दो वर्ष में उन्होंने १६ विश्वविद्यालयों पर नियन्त्रण कर लिया। १८१७ में विद्यार्थियों ने प्रोटैस्टैण्ट सुधारों की शताब्दी तथा लिपजिग युद्ध की जयन्ती मनाने का निर्णय किया। वार्टबर्ग में अन्य स्थानों पर

CENTRAL EUROPE AFTER THE CONGRESS OF VIENNA
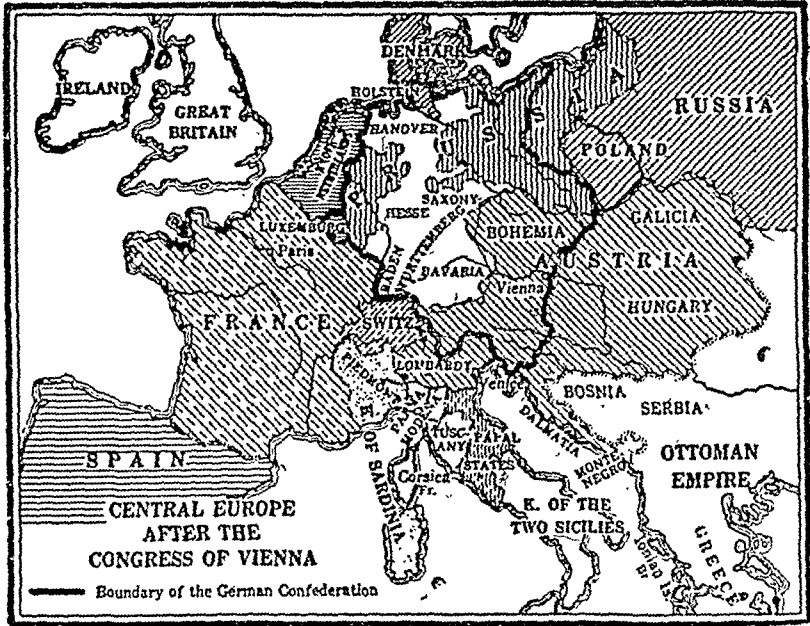
मनाए जाने वाले उत्सव के कार्यक्रम के अतिरिक्त सैनिकवाद के चिन्हों, नेपोलियन की संहिता की एक प्रति, कोटज़्व्यु की पुस्तक की एक प्रति और अन्य कागज़ पत्र भी जलाए गए। मेटरनिक द्वारा इस उत्सव को बड़ा महत्त्व दिया गया और इसे जर्मनी की जनता में क्रान्तिकारी असंतोष का प्रतीक माना गया। १८१८ में जब ऐक्स-ला-चेपल में सम्मेलन हुआ उसने शासकों को भविष्य-गर्भित भय के प्रति सचेत किया। १८१७ के पश्चात् जो घटनाएँ हुई उनसे मेटरनिक के हाथ और भी मजबूत हो गए। जर्मनी में समय-समय पर हत्याएँ होती रहीं। मार्च, १८१९ में कोटज़्व्यु की, जिसे रूस का गुप्तचर माना जाता था, कार्ल सैण्ड (Karl Sand) ने हत्या कर

दी। मेटरनिक ने इससे पूरा लाभ उठाना चाहा। प्रशिया के राजा की अनुमति से उसने १८१६ में कार्ल्सबाद में जर्मनी के मुख्य राज्यों के मन्त्रियों का एक सम्मेलन बुलाया। कुछ प्रस्ताव स्वीकार किए गए जिन्हें संघ संसद् ने भी स्वीकार कर लिया था।

कार्ल्सबाद आज्ञप्तियाँ (Carlsbad Decrees)—कार्ल्सबाद आज्ञप्तियों के अनुसार प्रत्येक राज्य के शासक का एक विशेष प्रतिनिधि प्रत्येक विश्वविद्यालय के लिए नियुक्त किया गया। इस प्रतिनिधि को विश्वविद्यालय के नगर में रहना था और उसे शासक की आज्ञानुसार बहुत से अधिकारों का प्रयोग करना था। इसका कार्य इस बात की जाँच करना था कि कानून और अनुशासन का ठीक प्रकार पालन हो रहा है अथवा नहीं। उसे ध्यानपूर्वक यह भी देखना था कि विश्वविद्यालयों के शिक्षक अपने व्याख्यानों में किस भावना को प्रेरित करते हैं। विद्रोह और अस्वामि-भक्ति की अवस्था में उसे शासक को सूचना देनी पड़ती थी। शासक का कर्त्तव्य था कि विद्यार्थियों पर अपने प्रभाव का अनुचित प्रयोग करने वाले तथा विद्यार्थियों में वर्त्तमान सरकारी व्यवस्था तथा सार्वजनिक नियमों का उल्लंघन करने की भावना को प्रेरित करने वाले शिक्षकों को विश्वविद्यालयों में से तथा अन्य शिक्षा संस्थाओं में से निकाल दे। निकाले हुए शिक्षकों को अन्य विश्वविद्यालय तथा शिक्षा संस्था कोई पद न दें। गुप्त तथा अनियमित संस्थाओं के विरुद्ध कानून कठोरता से लगाए जाएँ। एक विश्वविद्यालय से निकाले हुए विद्यार्थियों को अन्य विश्वविद्यालय भरती न करें। २० छपे हुए पृष्ठों से अधिक का कोई भी दैनिक पत्र अथवा लेख राज्य अधिकारियों की अनुमति के बिना प्रकाशित न किया जाये। संघ की संसद् को संघ के अथवा संघ में शान्ति व्यवस्था को भंग करने वाले लेखों को स्वाधिकार से दमन करने का अधिकार दिया गया। यदि संघ संसद् की आज्ञा से कोई समाचार-पत्रिका बन्द करा दी जाए तो इस पत्र का सम्पादक किसी अन्य पत्र का पाँच वर्ष तक सम्पादन नहीं कर सकता था। सात सदस्यों के एक जाँच आयोग की नियुक्ति की व्यवस्था थी। इसका कार्य क्रान्तिकारी षड्यंत्रों तथा वाद-विवाद करने वाली समितियों तथा उनके उद्‌गम और विकास का पता लगाना था। यह उन समितियों का भी पता लगाती थी, जो वर्तमान विधान, आन्तरिक शान्ति तथा भिन्न-भिन्न राज्यों के विरुद्ध कार्य कर रही थीं। इस आयोग को वर्तमान षड्यंत्रों का पता लगाने का कार्य सौंपा गया। केन्द्रीय जाँच आयोग को समय-समय पर जाँच के परिणामों की सूचना संघ संसद् को देनी पड़ती थी।

यह सच कहा जाता है कि कार्ल्सबाद की आज्ञप्तियों के कारण आस्ट्रिया का सम्राट् एक सर्वशक्तिमान पुलिस व्यवस्था का स्वामी बन गया। मेटरनिक और भी आगे बढ़ता किन्तु कुछ राज्यों के विरोध ने उसके उत्साह को ठण्डा कर दिया था। वुर्टेमबर्ग के शासक ने चुनौती स्वीकार की और अपनी प्रजा को और भी सुविधाएँ और सुधार प्रदान किए और अपने आपको एक 'विशुद्ध जर्मन संघ' का नेता बना कर आस्ट्रिया और प्रशिया के मुकाबले के लिए तैयार हो गया। परिणामस्वरूप, १८२४ के विआना सम्मेलन में समझौता हुआ। छोटे-छोटे राज्यों की स्वतन्त्रता को मान्यता दी गई। १८२४ में कार्ल्सबाद आज्ञप्तियों को स्थायी रूप दे दिया गया।

ज़ोलवरीन (Zollverein)—कुछ शक्तियों ने परोक्ष रूप से जर्मनी के एकीकरण में सहायता की। यहाँ ज़ोलवरीन अर्थात् चुंगी-समिति का उल्लेख किया जाए। १८१८ के पहले प्रशिया के प्रत्येक ज़िले की अपनी चुंगी व्यवस्था थी और अकेले प्रशिया में ६७ चुंगी-क्षेत्र थे। इस कारण देश के व्यापार और एकता में बड़ी बाधा थी और प्रशिया ब्रिटेन से प्रतियोगिता नहीं कर सकता था। बहुत से चुंगीघर होने के कारण बहुत-सा तस्कर-व्यापार होता था। १८१८ में चुंगी सुधार कानून बनाया गया। इसके अनुसार देश में आने वाले कच्चे माल पर चुंगी हटा दी गई। तैयार माल पर १० प्रतिशत और उपनिवेशों के माल पर २० प्रतिशत चुंगी लगाई गई। आन्तरिक चुंगी कर (taxes) समाप्त कर दिए गए। प्रशिया से गुज़रने वाले माल पर बहुत भारी राहदारी चुंगी लगाई गई ताकि अन्य प्रदेश भी प्रशिया के साथ मिल जाएँ। १८१८ के सुधार के परिणामतः प्रशिया एक 'स्वतन्त्र-व्यापार' का क्षेत्र बन गया और आन्तरिक व्यापार के साथ-साथ राज्य का राजस्व भी बढ़ने लगा।

१८१८ का कानून केवल प्रशिया में ही लागू था किन्तु कालान्तर में अन्य जर्मन राज्य भी प्रशिया से सहयोग करने लगे। १८१९ में एक और राज्य (Schwarzburg Sondershausen) इस व्यवस्था का सदस्य बन गया। १८२२ में छः राज्य और आ मिले।

किन्तु कुछ जर्मन राज्यों ने चुंगी समिति संगठन का विरोध भी किया। १८२४ में बावेरिया और बुर्टेमबर्ग के नेतृत्व में दक्षिण में दूसरा चुंगी-समिति-संगठन स्थापित हुआ। मध्य के राज्यों का भी एक संगठन १८२४ में बनाया गया। इसमें सेक्सोने, हेस्सी-केसल, हेनोवर, ब्रुन्सविक और हेमबर्ग, ब्रीमेन और फ्रैंकफर्ट के स्वतन्त्र नगर थे।

१८३१ में हेस्सी-केसल ज़ोलवरीन में मिल गई और मध्य स्थित राज्यों की समिति टूट गई। १८३४ में बावेरिया आठ वर्ष की अवधि के लिए ज़ोलवरीन में मिला। संगठन की शर्त यह थी कि समिति की बैठकें बर्लिन तथा अन्य स्थानों पर हुआ करेंगी, बावेरिया के माल को विशेष सुविधाएँ दी जाएँगी। इसी वर्ष सेक्सोने भी ज़ोलवरीन में आ मिला। १८३७ में अधिकांश राज्य इस समिति के सदस्य बन चुके थे। जब भी सन्धियों की अवधि समाप्त होती उन्हें फिर स्वीकार कर लिया जाता था। केवल हेनोवर, ओल्डनबर्ग, मेकमिलनबर्ग और हेन्स के नगर ज़ोलवरीन से अलग रहे। ज़ोलवरीन की मुख्य शर्तें थीं कि राज्यों में परस्पर स्वतन्त्र व्यापार होगा, चुंगी की दरें भी सीमान्तों पर समान होंगी और चुंगी से प्राप्त धन राज्यों की जनसंख्या के आधार पर बाँट लिया जाएगा। आरम्भ में आस्ट्रिया ज़ोलवरीन के प्रति बिलकुल उदासीन था। मेटरनिक व्यापार को अधिक महत्त्व नहीं देता था। परिणामतः उसने भी ज़ोलवरीन के क्रिया-कलापों पर अधिक ध्यान नहीं दिया। किन्तु १८४८ में मेटरनिक के पतन के पश्चात् आस्ट्रिया ने भी ज़ोलवरीन का सदस्य बनने के लिए बड़ा प्रयत्न किया। प्रशिया ने इसका विरोध किया और सफल हुआ।

१८५३ में ज़ोलवरीन और आस्ट्रिया में एक सन्धि हुई जिसके अनुसार एक दूसरे को कुछ सुविधाएँ दी गईं।

ज़ोलवरीन का महत्त्व कुछ कम नहीं था। मेटरनिक और रावर्टसन के मतानुसार, "पहली बार जर्मनी एक व्यापारिक और आर्थिक इकाई वना। ज़ोलवरीन ने जर्मनी के राज्यों को पारस्परिक आर्थिक वन्धनों में बाँध दिया था। वे प्रशिया के नेतृत्व में संगठित हो गए थे। इसके द्वारा वे आस्ट्रिया के विना विशुद्ध जर्मन संस्था के अभ्यस्त हो गए थे। फाइफ (Fyffe) के मतानुसार, "इस संगठन को किसी भी प्रकार राजनीतिक रूप नहीं दिया गया किन्तु आर्थिक हितों की रक्षा के लिए इस संगठन में राजनीतिक एकता का बीजारोपण हो चुका था।" धैर्य, सूझबूझ और अपने गरीब पड़ौसी राज्यों के प्रति उदारता द्वारा प्रशिया ने चुप-चाप आर्थिक हितों के वन्धनों के द्वारा उन राज्यों से अपना सम्वन्ध स्थापित कर लिया जो अब तक आस्ट्रिया को अपना नेता मानते आए थे। ज़ोलवरीन की वृद्धि के प्रत्येक कदम के साथ केवल प्रशिया की प्रतिष्ठा में ही नहीं अपितु जनता की समृद्धि में भी वृद्धि हुई।

डा० वोरिंग के मतानुसार, "जर्मन राष्ट्रवाद को केवल आशा और कल्पना के क्षेत्र से निकालकर ज़ोलवरीन ने इन्हें प्रत्यक्ष और वास्तविक आर्थिक समृद्धि में बदल दिया। ज़ोलवरीन के प्रति जर्मनी की जनता की यह धारणा है कि 'जर्मनीकरण (Germanisation)' के प्रति यह प्रथम कदम था। इसने शत्रुता और विरोध के सबसे शक्तिशाली गढ़ों को तोड़ दिया था और व्यापारिक और औद्योगिक हितों के आधार पर इसने राजनीतिक राष्ट्रीयता के लिए मार्ग का निर्माण कर दिया था।

जुलाई क्रान्ति और जर्मनी (July Revolution and Germany)—जुलाई, १८३० में हुई फ्रांस की क्रान्ति का जर्मनी पर भी प्रभाव पड़ा। जर्मनी में उदारवादी संविधान की माँग की जाने लगी और ब्रुन्सविक, हेनोवर, सेक्सोने और हेस्सी-केसल के राज्यों में यह माँगें मान ली गई थीं। वावेरिया, वुर्टेम्वर्ग इत्यादि के शासकों ने उस संविधान को लागू कर दिया जो उन्होंने १८१५ में स्वीकार किया था। परिणामत: प्रशिया अपरिवर्तित रहा किन्तु छोटे राज्यों को उदार संविधान प्राप्त हो गया था। किन्तु मेटरनिक एक वार फिर जर्मनी पर अपना अधिकार जमाने में सफल हुआ और कार्ल्सबाद की आज्ञप्तियों को लागू कर दिया गया। विआना में एक सम्मेलन हुआ जिसमें निर्णय किया गया कि समाचार-पत्रों और विश्वविद्यालयों की सुधारवादी प्रवृत्तियों का दमन किया जाये। जर्मन राज्यों के शासकों तथा उनकी प्रजाओं के बीच के झगड़ों को निपटाने के लिए एक न्यायालय की स्थापना की गई,

फ्रेड्रिक विलियम चतुर्थ (Frederick William IV) (१८४०-६१)—फ्रेड्रिक विलियम तृतीय के लम्वे राज्य-काल में प्रशिया से कुछ विशेष आशा नहीं की जा सकती थी। १८४० में फ्रेड्रिक विलियम चतुर्थ उसका उत्तराधिकारी वना। नया राजा शक्तिशाली, आत्मविश्वासी और बुद्धिमान् था, किन्तु उसकी न्याय-बुद्धि उसकी विचार-बुद्धि के समान नहीं थी। राज्यकाल के आरम्भ में उसने बहुत से

राजनीतिक बन्दियों को मुक्त कर दिया था। मि० आर्नडट और डहेलमैन (Arndt and Dahlmann) को बोन (Bonn) विश्वविद्यालय में पुनः शिक्षक तथा आचार्य के पद पर नियुक्त किया गया। प्रादेशिक समितियों को नियमित रूप से अपने अधिवेशन करने तथा स्वतन्त्र रूप से विचार-विमर्श करने की अनुमति दी गई थी। समाचार-पत्रों को स्वतन्त्रता पुनः दे दी गई। किन्तु वह संसदीय प्रणाली का संविधान लागू करने के लिए नहीं माना था। फरवरी, १८४७ में फ्रेड्रिक विलियम चतुर्थ ने बर्लिन में सारी प्रांतीय समितियों की एक बैठक बुलाई जिसे संयुक्त प्रांतीय सभा (United Provincial Diet or States-General) कहा गया। यद्यपि यह संयुक्त सभा बहुत दिनों तक नहीं चली फिर भी इसके प्रति काफी आकर्षण हुआ।

१८३० से १८४८ के काल में जर्मनी के छोटे-छोटे राज्यों में निरन्तर आन्दोलन हो रहे थे। इन आन्दोलनों के दो ध्येय थे, जर्मनी का संगठन और राज्यों में सांवैधानिक तथा सुधारवादी सरकारों की स्थापना। १८४७ में एक सम्मेलन हुआ जिसमें सुधारवादी कार्यक्रम स्वीकृत हुआ और कार्ल्सबाद की आज्ञप्तियों को भंग करने के लिए आन्दोलन आरम्भ हुआ। धार्मिक सहिष्णुता, प्रतिनिधित्वपूर्ण सभाओं की प्रत्येक राज्य में स्थापना, सामाजिक विशेपाधिकारों की-समाप्ति, समूचे जर्मनी के लिए एक प्रतिनिधत्व-पूर्ण विधान सभा की स्थापना, राज्य सेना की अपेक्षा जनता की सेना की नियुक्ति, सेना संविधान के प्रति भक्ति की शपथ ले, राजा के प्रति नहीं; इत्यादि माँगें की गईं। इसी वर्प एक और सम्मेलन भी हुआ। समूचे देश के लिए एक संसद् बनाने की माँग की गई।

जब फरवरी क्रान्ति की सूचना जर्मनी पहुँची तब बादीन (Baden) के राजा ने अपनी प्रजा को नया संविधान दिया और बुर्टमबर्ग, नासाऊ, ब्रून्सविक, वीमर, ड्रामस्टड और हेस्सी-केसल के राजाओं ने भी उसका अनुसरण किया। बावेरिया के राजा को राज्य छोड़ने पर विवश कर दिया गया। हेनोवर और सेक्सोने की प्रजा को भी सुधारवादी संविधान मिल गया।

जहाँ तक प्रशिया का सम्बन्ध था, मार्च मास के अन्दर बर्लिन में कुछ झगड़ा हुआ और राजा ने सुधारवादी संविधान को मान लिया। प्रजा और सेनाओं में टक्करें हुईं और अन्त में प्रशिया के राजा ने राजधानी से सेनाएँ हटा लीं। उसने यह भी प्रतिज्ञा की कि वह "स्वतन्त्र और नवजात जर्मन राष्ट्र का नेतृत्व करेगा।" राष्ट्रीय संसद् की स्थापना करके एक संविधान बनाने का भी निश्चय किया गया था।

हेनरिच फ़ान गेगर्न ने देश भर के लिए एक अस्थायी सरकार बनाने का सुझाव दिया। ५ मार्च, १८४८ को हैडलबर्ग में ५० नेताओं की बैठक हुई और जर्मनी की विभिन्न राज्यों की सभाओं को निमन्त्रण भेजे गए। ३१ मार्च, १८४८ को लगभग ६०० व्यक्तियों ने फ्रैंकफर्ट (Frankfurt) में एक बैठक में भाग लिया। इस बैठक में यह निर्णय किया गया कि दो सदनों का विधान मण्डल बनाया जाए और जर्मनी के संघ का एक ही प्रमुख हो। इस प्रस्ताव की विशद व्याख्या संविधान

सभा करे जिसमें ५०,००० नागरिकों का एक व्यक्ति प्रतिनिधित्व करे। यह सब व्यवस्था हुई और जनता की सभा का सम्मेलन फ्रैंकफर्ट में हुआ।

फ्रैंकफर्ट संसद् में आरम्भ में लगभग ३०० सदस्य थे किन्तु बाद में इनकी संख्या ५५० हो गयी। हेनरिच वान गेगर्न (Heinrich Von Gagern) को इसका अध्यक्ष चुन लिया गया। इस सभा में विश्वविद्यालयों के शिक्षकों और पत्रकारों का बहुमत था इसलिए बहुत समय केवल सिद्धांतों पर विवाद करने में ही नष्ट हुआ। फ्रैंकफर्ट संसद् की स्थापना के ६ महीने तक इसने केवल केन्द्रीय कार्यमण्डल की स्थापना ही की थी। अस्थायी सरकार (Provisional Government) का अध्यक्ष (Imperial Vicar) आर्क ड्यूक जोन को बनाया गया। १८४८ में क्रिसमस से पहले जर्मनी के नागरिकों के मौलिक अधिकारों की व्यवस्था हुई। इनमें से कुछ, नागरिक और धार्मिक समानता, समाचारपत्रों की स्वतन्त्रता, पंचायत द्वारा न्याय (Jury), विशेषाधिकारों की समाप्ति इत्यादि थे।

आस्ट्रिया को जर्मनी में मिलाया जाए अथवा नहीं इस विषय में दो मत थे। 'जन-साधारण' (Little Germans) इसके विरुद्ध था किन्तु 'उच्च वर्ग' (Great Germans) इसके पक्ष में था। परिणामतः जनमत की विजय हुई और आस्ट्रिया को अलग ही रखा गया। वंशपरम्परा के अनुसार राजा तथा जर्मन-संघ की स्थापना का निर्णय हुआ। फ्रैंकफर्ट की संसद् ने २८ मार्च, १८४९ को प्रशिया के राजा विलियम चतुर्थ को राज्य सौंपने का प्रस्ताव रखा किन्तु उसने ३ अप्रैल, १८४९ को यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। इसके कई कारण थे। प्रथम, वह स्वभाव से रूढ़िवादी था और फ्रैंकफर्ट संसद् की महत्त्वाकांक्षाओं के प्रति उदार नहीं था। वह 'क्रान्ति का दास' (Serf of the Revolution) नहीं बनना चाहता था। उसका राजा के दैवी अधिकारों में विश्वास था अतः वह फ्रैंकफर्ट संसद् द्वारा निर्मित संविधान को मानने को तैयार न था। यदि राजाओं ने उसे राजमुकुट पहनाया होता तो सम्भवतः वह स्वीकार भी कर लेता किन्तु प्रजा द्वारा दिए जाने पर स्वीकार नहीं करना चाहता था। सम्भवतः इसका वास्तविक कारण यह था कि वह आस्ट्रिया से युद्ध नहीं करना चाहता था। इस काल में आस्ट्रिया ने अपनी स्थिति सँभाल ली थी और यदि प्रशिया के राजा ने फ्रैंकफर्ट संसद् द्वारा राज्य देने के प्रस्ताव को मान लिया होता तो निश्चित रूप से उसकी आस्ट्रिया से टक्कर हो गई होती। इसका आशय युद्ध होता था और दूसरी बात यह थी कि प्रशिया का राजा इसके योग्य भी नहीं था। जर्मनी की जनता ने एक संविधान बनाना चाहा किन्तु उसका प्रयास असफल रहा। उन्होंने अपना बहुमूल्य समय बौद्धिक वाद-विवाद में नष्ट कर दिया। यदि उन्होंने आरम्भ में तेजी से कार्य किया होता तो सफलता के अधिक अवसर थे। फ्रैंकफर्ट संसद् की असफलता से जर्मनी की जनता को निश्चय हुआ कि देश के एकीकरण के लिए अब उन्हें कुछ और साधन प्रयोग में लाने पड़ेंगे।

हेज़न के मतानुसार, फ्रैंकफर्ट संसद्, जिस से देश को बहुत आशाएँ थीं, असफल हुई। किसी हद तक इसकी असफलता के उत्तरदायी इसके सदस्य ही थे। किन्तु इसकी

असफलता का मुख्य कारण जर्मनी के विभिन्न राजाओं द्वारा इसका घोर विरोध करना था। विशेषतः आस्ट्रिया और प्रशिया के राजाओं की परस्पर ईर्ष्या के कारण भी यह प्रयत्न असफल हुआ क्योंकि इनमें से कोई भी सामान्य हितों के लिए अपने स्वार्थों का बलिदान करने के लिए तैयार नहीं था। किन्तु यह संसद् एक श्रेष्ठ तथा उच्च मान्यताओं वाला संविधान बनाने में सफल हुई जिसके द्वारा प्रत्येक नागरिक को नागरिक स्वतन्त्रताएँ, कानून के समक्ष समानता, केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों का जनता के प्रतिनिधियों के हाथ नियन्त्रण इत्यादि दिया गया था।

यद्यपि प्रशिया के राजा ने फ्रैंकफर्ट संसद् द्वारा दिए गए राजसिंहासन को नहीं लिया तथापि उसने देश को एकीकृत करने के लिए और कई तरीके अपनाए। उसके मन्त्री रेडोविट्ज़ (Radowitz) ने जर्मन संघ का संविधान बनाया। प्रशिया के राजा ने आस्ट्रिया को छोड़कर अन्य शासकों द्वारा स्थापित एक कॉलिज की अध्यक्षता स्वीकार की। मार्च, १८५० में इरफर्ट (Erfurt) में जर्मन संसद् का अधिवेशन हुआ। किन्तु आस्ट्रिया का नया चाँसलर श्वारजेनबर्ग (Schwarzenberg) जर्मनी पर आस्ट्रिया का नियन्त्रण बनाए रखने के लिए और प्रशिया के राजा के इन क्रियाकलापों को रोकने के लिए कटिवद्ध था। ओलमुट्ज़ (Olmutz) के सम्मेलन के अनुसार प्रशिया के राजा को झुकना पड़ा। उसने इस संघ को भंग करना स्वीकार किया और १८१५ में जर्मन-महा-संघ पुनःस्थापित हुआ। १८५० में प्रशिया के राजा ने देश के लिए नया संविधान बनाया जो १९१८ तक चलता रहा।

१८४८-४९ का आन्दोलन असफल रहा किन्तु इसने जर्मनी की जनता को अनेक पाठ पढ़ाए। उन्हें पता लग गया कि जब तक आस्ट्रिया शक्तिशाली रूप से विरोध में है तब तक जर्मनी का एकीकरण असम्भव है। और कि वैधानिक तरीकों से एकीकरण असम्भव है। सुधारवादी कार्यशील व्यक्ति नहीं थे और वे देश की वास्तविक समस्याओं को सुलझाने की अपेक्षा सिद्धान्तों पर विवाद अधिक करते थे। आस्ट्रिया को जर्मनी से तभी निकाला जा सकता था जबकि जर्मनी के पास उससे अधिक शस्त्र-शक्ति हो और वह शक्ति केवल प्रशिया ही दे सकता था। एक शक्तिशाली सेना की आवश्यकता सार्वजनिक रूप से अनुभव की गई।

१८५७ में फ्रेड्रिक विलियम चतुर्थ पागल हो गया और उसका भाई विलियम प्रथम संरक्षक बना। १८६१ में विलियम चतुर्थ की मृत्यु के पश्चात् वह प्रशिया का राजा बना।

विलियम प्रथम (William I) (१८६१-८८)—विलियम प्रथम एक दृढ़-प्रतिज्ञ पुरुष था। उसका भाग्य पर तथा प्रशिया के नेतृत्व पर पूर्ण विश्वास था। वह हृदय से कट्टर प्रशियन था। वह मनुष्यों का पारखी तथा अपने विश्वस्त नौकरों को चुन सकता था।

आस्ट्रिया द्वारा प्रशिया के अपमान करने पर उसका दृढ़ विश्वास था कि यदि जर्मनी को मुक्त कराना है तो यह प्रशिया की शक्तिशाली शस्त्र-शक्ति से ही हो सकता है। १८४९ में उसने कहा था, "जो भी व्यक्ति जर्मनी पर राज्य करना चाहेगा उसे

इसे जीतना पड़ेगा और यह केवल थोथे वाक्यों से पूर्ण नहीं होगा।" इसी धारणा को लेकर उसने रून (Roon) को युद्ध-मन्त्री और मोल्टके (Moltke) को महा-सेनापति नियुक्त किया। इन दो व्यक्तियों ने प्रशिया की सेना का पुनर्गठन करना आरम्भ किया और इसके विकास के लिए योजनाएँ बनाईं। १८६१ में जर्मन विधान-मण्डल ने इसके लिए धन देना स्वीकार किया किन्तु १८६२ में अस्वीकार कर दिया। विलियम सेना के विकास में और विधानमण्डल वैधानिक सुधारों में विश्वास रखता था। इस प्रकार की परिस्थिति में कार्य रुक गया। इस समय प्रशिया के राजा के सम्मुख तीन मार्ग थे। वह सेना के विकास की योजना को छोड़ देता। वह राज्य का परित्याग करता अथवा संविधान को स्थगित कर देता। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। अन्त में पेरिस से बिस्मार्क को बुलाया गया कि वह स्थिति को सँभाले। इन परिस्थितियों में बिस्मार्क को १८६२ में प्रधान मन्त्री के पद पर नियुक्त किया गया। उसने विलियम प्रथम को आश्वासन दिया, 'मैं श्रीमान के साथ नष्ट हो जाऊँगा किन्तु संसद् के साथ इस संघर्ष में आपका साथ नहीं छोड़ूँगा।'

विलियम प्रथम

बिस्मार्क एक ढीठ पुरुष तथा एकाधिकार राजशाही का समर्थक था। उसका एकाधिकार और सैन्यशक्ति में विश्वास था। उसके शब्दों में, "आज की हमारी समस्या व्याख्यान देने और बहुमत से प्रस्ताव स्वीकार करने से पूरी नहीं होती अपितु रक्त और लोहे से सुलझेगी।" वह विलियम प्रथम की इस बात से पूर्ण सहमत था कि जर्मनी के एकीकरण के लिए जर्मनी की सेना का पुनर्गठन अनिवार्य है। वह प्रशिया की संसद् तक को भंग करने के लिए तैयार था यदि वह सेना के पुनर्गठन के लिए धन देने से इन्कार करती। वह अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए वैधानिक परिपाटी की परवाह नहीं करता था। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि उसे चार वर्ष तक देश पर विधानसभा की अनुमति के बिना ही जनता से धन प्राप्त करने के लिए निरंकुश शासन करना पड़ा। इस प्रकार धन प्राप्त करके उसने सेना में सुधारों की योजना को क्रियान्वित किया।

१८६३ में आस्ट्रिया ने 'जर्मन-संघ के सुधार' के प्रस्ताव पर विचार करने के लिए जर्मनी के राजाओं का एक सम्मेलन बुलाया। यदि आस्ट्रिया की चाल सफल

हो जाती तो जर्मनी में आस्ट्रिया का प्रभाव वना रहता। विस्मार्क ने प्रशिया के राजा पर दवाव डाला कि वह इस सम्मेलन में न जाए। प्रशिया का राजा इस सम्मेलन में उपस्थित नहीं हुआ और परिणामतः यह सम्मेलन असफल रहा।

श्लैसविग-हाल्सटाइन प्रश्न (Schleswig-Holstein Question)—यहाँ श्लैसविग-हाल्सटाइन के प्रश्न का भी उल्लेख कर देना उचित प्रतीत होता है, जिसका विस्मार्क ने अपनी कार्य-सिद्धि के लिए प्रयोग किया था। श्लैसविग (Schleswig) और हाल्सटाइन डेन्मार्क के राजा के दो अधिकृत प्रान्त थे। इन राज्यों का डेन्मार्क के राजा के साथ व्यक्तिगत मैत्री-संगठन था। हाल्सटाइन का राज्य जर्मन वंशधरों का था और यह १८१५ के जर्मन संघ का सदस्य था। श्लैसविग में जर्मन और डेन दोनों ही रहते थे। डेन्मार्क की जनता इन राज्यों को डेन्मार्क में मिलाना चाहती थी। जर्मनी के लोग इसे जर्मन-संघ में मिलाना चाहते थे। १८४८ में इन राज्यों के शासन-यन्त्र को डेन्मार्क में मिलाने का प्रयत्न किया गया था, किन्तु जर्मनों के विरोध के कारण अधिक प्रगति नहीं हो पाई। इसका कारण प्रशिया और ड्यूक ऑफ अगस्टनवर्ग का इन पर अधिक अधिकार था। परिस्थिति अधिक जटिल हो गई और युद्ध की आशंका होने लगी थी। अन्य देशों के हस्तक्षेप के कारण १८५२ में लन्दन-सन्धि के अनुसार समझौता हो गया। डेन्मार्क को चेतावनी दे दी गई कि वह इन राज्यों को मिलाने की कोशिश न करे। ड्यूक ऑफ अगस्टनवर्ग ने अपने अधिकार डेन्मार्क के राजा को वेच दिए।

१८६३ में डेन्मार्क के सिंहासन पर एक नया राजा वैठा और उसने श्लैसविग को डेन्मार्क में मिला लिया तथा हाल्सटाइन को अधिक दृढ़ वन्धनों में वाँध दिया। यह व्यवस्था लन्दन-सन्धि का स्पष्ट रूप से व्यतिक्रमण करने का परिणाम थी। ड्यूक ऑफ अगस्टनवर्ग ने अपने अधिकारों का दावा किया। विस्मार्क ने इस अवसर को जर्मनी के एकीकरण के लिए प्रयोग किया। वह नहीं चाहता था कि ये राज्य डेन्मार्क अथवा ड्यूक को प्राप्त हों। वह प्रशिया की पुनर्गठित सेनाओं की परीक्षा भी करना चाहता था तथा डेन्मार्क से युद्ध होने पर उसे यह अवसर प्राप्त होता था। उसने आस्ट्रिया से समझौता करके डेन्मार्क के विरुद्ध कार्यवाही करने का निश्चय किया जिससे अन्त में युद्ध सम्पत्ति के बँटवारे पर आस्ट्रिया से भी युद्ध का वहाना मिल जाए।

इस उद्देश्य को दृष्टि में रखकर डेन्मार्क के राजा को युद्ध की चुनौती दी कि वह लागू किए गए संविधान को भंग कर दे। डेन इन संगठित सेनाओं का मुकावला नहीं कर सकते थे और १८६४ की वियाना की सन्धि के अनुसार डेन्मार्क के राजा ने श्लैसविग और हाल्सटाइन के राज्य प्रशिया और आस्ट्रिया को सौंप दिए।

इन राज्यों को प्राप्त करने के पश्चात् इनके बँटवारे का प्रश्न उठा। आस्ट्रिया ने सुझाव दिया कि ये दोनों राज्य ड्यूक ऑफ अगस्टनवर्ग को दे दिए जाएँ किन्तु प्रशिया ने इसका विरोध किया। अन्ततः गेस्टीन सम्मेलन (१८६५) के निर्णय के अनुसार यह निश्चय हुआ कि पूर्ण निर्णय होने तक आस्ट्रिया हाल्सटाइन पर शासन

करे और प्रशिया श्लैसविग पर। इन राज्यों का मामला जर्मन विधान सभा के सम्मुख न लाया जाए। यह उल्लेखनीय है कि गैस्टीन का समझौता बिस्मार्क की बड़ी भारी कूटनीतिक जीत थी। वह ड्यूक ऑफ अगस्टनबर्ग को निकालने में तथा आस्ट्रिया से युद्ध कर सकने की परिस्थिति उत्पन्न करने में सफल हो गया था।

टेलर के मतानुसार "गैस्टीन (Gastein) की संधि, अपनी पूर्ववर्ती शॉनब्रन (Schonbrunn) की संधि की तरह [और उसके बाद मई १८६६ के गैबलेंज (Gablenz) के प्रस्ताव] एक अनन्त विवाद का विषय रही है। कुछ की दृष्टि में बिस्मार्क का यह घृणित प्रयोजन केवल एक अटल युद्ध की ओर था; दूसरों के विचार में यह उसकी इच्छा का प्रमाण था कि मेटरनिक के दिनों वाली जर्मन साझेदारी का रूढ़िवादी रूप पुनःस्थापित हो जाये। शायद इनमें कोई भी न हो। बिस्मार्क एक कूटनीतिक ज्ञानी था जो युद्ध में गैर-अनुभवी था और जो उसके संकटों से घृणा करता था। वह अपनी कूटनीतिक चालों से यह भली प्रकार आशा कर सकता था कि आस्ट्रिया को डचीज़ (Duchies) से अलग करने, शायद जर्मनी की अध्यक्षता के बाहर भी करने की कोशिश की जाय। इस प्रकार के चमत्कार आगामी जीवन में उसकी शक्ति के बाहर नहीं थे। इस अवधि में उसकी कूटनीति युद्ध की तैयारी करने की अपेक्षा आस्ट्रिया को भयभीत करने की मालूम होती है। उसने फ्रांस को केवल यही प्रलोभन दिया कि यदि प्रशिया को डचीज़ प्राप्त हो जावे, तो वह डेन्मार्क को उत्तरी श्लैसविग पुनः देकर 'राष्ट्रीय सिद्धान्त' लागू करेगा; और इस सत्र के बदले में उसने केवल परोपकारी निष्पक्षता की माँग की।" (The Struggle for Mastery in Europe, pp. 157-58)

गेस्टीन सम्मेलन आस्ट्रिया के हित में नहीं था। उसे ऐसे प्रदेश का नियन्त्रण सौंपा गया था जो दोनों ओर से प्रशिया की सीमाओं से घिरा हुआ था। ठीक ही कहा गया है कि यह समझौता दरारों पर कागज़ चिपकाने के समान था। यह समस्या का समाधान नहीं था। आस्ट्रिया ने अनुभव किया कि हालसटाइन में उसकी स्थिति सुरक्षित नहीं है और इसलिए उसने ड्यूक को उकसाना शुरू कर दिया। उसने यह भी निर्णय किया कि इस मामले को जर्मन विधान सभा के सामने रखा जाए। स्पष्टतः इस कदम का अर्थ गेस्टीन समझौते को तोड़ना था। बिस्मार्क ने आस्ट्रिया से कहा कि वह ड्यूक ऑफ अगस्टनबर्ग के लिए प्रचार करना बन्द कर दे। आस्ट्रिया ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया और प्रशिया की सेना ने हालसटाइन में घुसकर आस्ट्रिया को खदेड़ दिया। बिस्मार्क जर्मन-संघ में सार्वजनिक मताधिकार द्वारा सुधार करना चाहता था, किन्तु आस्ट्रिया इसका विरोधी था। आस्ट्रिया ने जर्मन-संघ की विधान सभा पर जोर डालकर प्रशिया के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए स्वीकृति ले ली। प्रशिया ने संघ छोड़ दिया और १८६६ में आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

युद्ध-घोषणा करने से पूर्व बिस्मार्क ने केवल सैनिक तैयारियाँ ही नहीं, अपितु आस्ट्रिया को कूटनीति से अकेला कर दिया था। परिणामतः जब युद्ध हुआ तो

आस्ट्रिया का कोई साथी नहीं था। इस विषय में बिस्मार्क के रूस, इटली और फ्रांस के सम्बन्धों का उल्लेख आवश्यक है।

आस्ट्रिया का एकाकीपन : रूस (Isolation of Austria : Russia)—बिस्मार्क ने रूस को अपनी ओर करने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ी क्योंकि वह यह नहीं चाहता था कि आस्ट्रिया से युद्ध होने पर रूस उसकी सहायता करे जैसे उसने १८४९ में हंगरी के मामले में की थी। १८५९ से १८६२ तक बिस्मार्क प्रशिया की ओर से पीटर्सबर्ग में राजदूत की हैसियत से रहा था। उस अवधि में उसने रूस को प्रशिया की ओर आकर्षित करने का यत्न किया था। बिस्मार्क ने ज़ार को कहलवाया कि प्रशिया दोनों देशों के शत्रुओं के विरुद्ध रूस को भरपूर सहायता देगा। बिस्मार्क संगठित पोलैण्ड के निर्माण को सहन नहीं कर सकता था क्योंकि वह इसका शत्रु और प्रतिद्वन्द्वी बन सकता था। इसी कारण उसने पोलैण्ड के विद्रोह का विरोध किया था। उसने एलेग्जेण्डर द्वितीय से समझौता किया कि वह प्रशिया में शरण लेने वाले अथवा प्रशिया से भर्ती करने वाले अथवा किसी भी प्रकार से प्रशिया को अपने कार्यकलापों का केन्द्र बनाने वाले पोलैण्डसी के विरुद्ध कड़ी कारवाई करेगा। यद्यपि बिस्मार्क के इस कार्य की निन्दा की गई किन्तु उसे केवल रूस की मैत्री की ही परवाह थी, अन्य किसी बात की नहीं। इस प्रकार उसने रूस को अपने पक्ष में कर लिया और उसे विश्वास हो गया कि आस्ट्रिया और प्रशिया के बीच युद्ध होने की स्थिति में रूस आस्ट्रिया का साथ नहीं देगा।

फ्रांस (France)—बिस्मार्क ने भी नेपोलियन तृतीय को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया। १८६२ में जब बिस्मार्क पेरिस में प्रशिया का राजदूत था, उसने नेपोलियन तृतीय से अच्छे सम्बन्ध बनाने का प्रयत्न किया था। नेपोलियन बिस्मार्क का आदर करने लगा था। अक्टूबर, १८६५ में बिस्मार्क नेपोलियन तृतीय से बियारिट्ज नामक स्थान पर मिला। यह भेंट गुप्त थी और इसका कोई प्रमाण नहीं रखा गया। इस भेंट के परिणामस्वरूप नेपोलियन ने आश्वासन दिया कि युद्ध होने पर वह तटस्थ रहेगा तथा विजय प्राप्त होने की स्थिति में ऐल्बी (Elbe) की डचियों (Duchies) को प्रशिया में मिला लेगा। इटली और प्रशिया में सन्धि होने की स्थिति में उसने इटली को विनिशिया लौटा देने का वायदा भी किया। नेपोलियन ने जर्मन-संघ में सुधारों और प्रशिया के तत्त्वावधान में उत्तरी जर्मनी के एक नवीन राज्य के निर्माण का भी विरोध नहीं किया। फ्रांस की तटस्थता के मूल्य के रूप में बिस्मार्क ने थोड़ा-सा सीमान्त प्रदेश देने का आश्वासन दिया यदि उससे जर्मनी और प्रशिया को कोई घाटा न पड़े। वह फ्रांस की तटस्थता तो चाहता था, किन्तु इस विषय में कोई दृढ़ निश्चय नहीं करना चाहता था जिससे कि बाद में क्षतिपूर्ति के दावों को निपटाना पड़े। यह सत्य है कि जहाँ तक जर्मनी के एकीकरण का प्रश्न था बिस्मार्क के प्रति नेपोलियन तृतीय पूर्ण सहानुभूति रखता था। वह इटली को विनिशिया भी देना चाहता था। उसका विचार था यदि उत्तरी जर्मनी में एक शक्तिशाली राज्य बन गया तो आस्ट्रिया को बहुत कुछ फ्रांस पर निर्भर रहना होगा। नेपोलियन तृतीय ने यह भी सोचा कि प्रशिया की पराजय की सम्भावनाएँ अधिक

हैं। ऐसी स्थिति में फ्रांस जर्मनी के छोटे-छोटे राज्यों पर अधिकार कर लेगा। जो भी हो, बिस्मार्क ने फ्रांस की तटस्थता को बनाए रखा और जब आस्ट्रिया के साथ युद्ध शुरू हुआ तो आस्ट्रिया ने फ्रांस से कोई सहायता न माँगी।

इटली (Italy)—बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के स्वाभाविक शत्रु इटली को भी अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया। क्योंकि आस्ट्रिया के अधिकार में अभी भी इटालियन-भाषी प्रदेश थे। इटली विनिशिया प्राप्त करना चाहता था किन्तु इस प्रकार का कार्य वह विदेशी सहायता से ही कर सकता था। इटली और प्रशिया में एक व्यापारिक समझौता हुआ था किन्तु बिस्मार्क एक सामरिक सन्धि करना चाहता था। बिस्मार्क आस्ट्रिया पर दो मोर्चों से अर्थात् एक इटली से तथा दूसरा प्रशिया से आक्रमण करने के महत्त्व को समझता था। समझौते में एक कठिनाई यह थी कि दोनों देश एक दूसरे पर विश्वास नहीं करते थे। दोनों ही देशों की धारणा थी कि समझौते को आस्ट्रिया से कुछ सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए प्रयोग किया जाएगा। किन्तु अविश्वास होने पर भी अप्रैल, १८६६ में इटली और प्रशिया में एक सन्धि हो ही गई जिसके अनुसार यह समझौता हुआ कि यदि प्रशिया आस्ट्रिया पर तीन महीने में आक्रमण कर दे तो इटली आस्ट्रिया पर आक्रमण कर देगा। कहा जाता है कि यह सन्धि 'पारस्परिक सुरक्षा और आशंका से पूर्ण थी।' कुछ भी हो किन्तु आस्ट्रिया के विरुद्ध इटली की सक्रिय सहायता का आश्वासन मिल गया था।

यह बात उल्लेखनीय है कि मार्च, १८६६ में प्रशिया के राजा ने नेपोलियन तृतीय को एक पत्र लिखा था और नेपोलियन ने इसके उत्तर में मैत्रीपूर्ण तटस्थता का वचन दिया था। किन्तु उसने इसका मूल्य माँगा था। थीयर्स जैसे फ्रांसीसी राजनीतिज्ञ आस्ट्रिया और प्रशिया के युद्ध के दिनों में तटस्थता की नीति के विरुद्ध थे। एक सम्मेलन का प्रस्ताव रखा गया किन्तु आस्ट्रिया ने इसे अस्वीकार कर दिया था। बिस्मार्क युद्ध की सम्भावना से बड़ा प्रसन्न था।

आस्ट्रिया और प्रशिया का युद्ध (Anstro-Prussian War) (१८६६)—आस्ट्रिया और प्रशिया का युद्ध बहुत थोड़े समय तक चला इसलिए इसे 'सात सप्ताह का युद्ध' कहा जाता है। आरम्भ में ऐसा प्रतीत होता था कि आस्ट्रिया विजयी होगा क्योंकि उसे बावेरिया, सेक्सोने तथा जर्मनी के अन्य छोटे राज्यों की सहायता प्राप्त थी! किन्तु प्रशिया की सेना की व्यवस्था इतनी कुशल थी कि आस्ट्रिया इसका मुकाबला नहीं कर सका। इसके अलावा आस्ट्रिया को दो मोर्चों पर लड़ना पड़ रहा था। उसे केवल प्रशिया से ही नहीं अपितु इटली से भी लड़ना पड़ रहा था क्योंकि इटली ने भी उसी समय युद्ध आरम्भ कर दिया था। यह सत्य है कि इटली को कुस्टोज्जा की लड़ाई में और लिस्सा के समुद्री तट पर जलयुद्ध में हार हुई थी, किन्तु इससे युद्ध के परिणाम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। प्रशिया ने आस्ट्रिया को साडोवा (Sadowa) युद्ध में पराजित किया। विजय के पश्चात् प्रशिया की सेनाएँ विआना पर चढ़ाई करने के लिए जोर देने लगीं और इन्हें राजा का समर्थन भी प्राप्त था। किन्तु बिस्मार्क इसके विरुद्ध था और अन्त में उसकी ही बात मान ली गई। उसने

आस्ट्रिया के सम्मुख बड़ी उदार शर्तें रखीं और इन शर्तों को १८३६ की प्राग (Prague) की सन्धि में मान लिया गया। इसके अनुसार आस्ट्रिया ने तत्कालीन जर्मन-संघ को भंग करने को माना तथा आस्ट्रिया के बिना जर्मनी के एकीकरण को भी स्वीकार किया। विनिशिया इटली को दे दिया गया तथा युद्ध की क्षतिपूर्ति नाम-मात्र को निर्धारित हुई। हेनोवर, हेस्सी कैसल (Hesse Cassel), नस्सऊ, फ्रैंकफर्ट-ऑन-दे-मेन तथा हाल्सटाइन और श्लैसविग की डची प्रशिया को दे दी गई। श्लैसविग के उत्तरी जिलों के विषय में यह निर्णय हुआ कि यदि इनकी जनता चाहे तो इन जिलों को डेन्मार्क को दे दिया जाए। मेन (Maine) के उत्तर की ओर के राजाओं को प्रशिया के नेतृत्व में उत्तरी-जर्मन-संघ में मिला दिया गया। जर्मनी के दक्षिणी राज्यों को स्वतन्त्र रहने दिया गया था।

युद्ध के परिणाम (Effects of the War)—आस्ट्रिया और प्रशिया के युद्ध के बड़े गम्भीर परिणाम हुए। आस्ट्रिया को जर्मनी से अलग कर दिया गया और प्रशिया जर्मनी का नेता बन गया। यूरोप ने प्रशिया के युद्ध-कौशल को मान्यता दी। उसे एक सैनिक शक्ति माना जाने लगा। बिस्मार्क की सफलता के पश्चात् प्रशिया के सुधारवादियों की निन्दा हुई अतः देश में उदारवाद नष्ट हो गया। विनिशिया मिलने से इटली एकीकरण-प्रयास में एक और कदम बढ़ गया। केवल रोम ही इटली से बाहर रह गया था। युद्ध का आस्ट्रिया के साम्राज्य पर भी बड़ा प्रभाव पड़ा। विनिशिया के चले जाने तथा जर्मनी से आस्ट्रिया को पृथक् कर देने के कारण आस्ट्रिया को हंगरी की मेग्यार जाति से समझौता करना पड़ा जिसके अनुसार १८६७ में हंगरी और आस्ट्रिया की सन्धि (Ausgleich) हुई। दुहरी राजशाही की स्थापना हुई। केवल युद्ध और कूटनीतिक मामलों को छोड़कर दोनों देश पूर्णतः स्वतन्त्र हो गए। यह व्यवस्था १९१८ तक चलती रही। दोनों देशों का एक राजा था जिसे आस्ट्रिया में सम्राट् और हंगरी में राजा कहा जाता था। दोनों देशों के संयुक्त शिष्ट-मण्डलों के निर्माण की व्यवस्था हुई और यह नवीन स्थिरता १९१८ तक बनी रही।

फ्रांस और प्रशिया का युद्ध (Franco-Prussian War) (१८७०-७१)—१८६६ के युद्ध में आस्ट्रिया की पराजय के पश्चात् भी जर्मनी का संगठन सम्पूर्ण नहीं हुआ। दक्षिणी राज्यों को भी संगठित करना था और यह कार्य बिना शक्ति-प्रयोग के पूरा नहीं हो सकता था। किन्तु यदि बिस्मार्क ने ऐसा किया होता तो फ्रांस द्वारा इन राज्यों की सहायता करने की आशंका थी। परिणामतः बिस्मार्क ने इस परिस्थिति को बड़ी सूझबूझ से सँभाला। १८६७ से १८७० तक बिस्मार्क दक्षिणी राज्यों को समझौते और सहायता की नीति द्वारा अपने पक्ष में करता रहा। उसने उन्हें अपने सैन्य अधिकारी उनकी सेना को शिक्षित करने के लिए दिए। उसने उन्हें वित्तीय सहायता भी दी। उन पर यह प्रभाव डालने का प्रयत्न किया गया कि प्रशिया उनका मित्र है और उन्हें इससे किसी भी प्रकार का भय नहीं होना चाहिए।

बिस्मार्क का विश्वास था, 'फ्रांस के साथ युद्ध एक ऐतिहासिक आवश्यकता है' और उसने इस घटना के लिए देश तैयार किया। सैनिक तैयारियाँ और तेजी

से होने लगीं और सब ओर से इसे कुशल बनाया गया। मोल्टके और रून फ्रांस से युद्ध आरम्भ होने के दिन की प्रतीक्षा करने लगे।

बिस्मार्क फ्रांस को कूटनीतिक रूप से पृथक् करने में सफल हुआ। इटली नेपोलियन तृतीय से १८५९ में विश्वासघात करने के कारण नाराज़ था। प्रशिया ने १८६६ में विनिशिया प्राप्त करने में उसकी सहायता की थी और इसलिए इटली का प्रशिया के प्रति कृतज्ञ होना स्वाभाविक ही था। पुनश्च, १८४९ से फ्रांस की सेनाएँ रोम में पड़ी थीं और इटली का एकीकरण उसी समय पूरा हो सकता था जब फ्रांस की सेनाएँ रोम से चली जातीं। यह उसी समय ही सम्भव था जबकि फ्रांस किसी युद्ध में उलझा हो और उसे अपनी सेनाएँ वहाँ से वापिस बुलानी पड़ें। परिणामतः इटली से आशंका नहीं थी कि वह फ्रांस की ओर से युद्ध में लड़ेगा।

बिस्मार्क रूस की तटस्थता का आश्वासन प्राप्त कर चुका था। रूस क्रीमिया का युद्ध, जिसमें फ्रांस ने उसे हराया था, भूला नहीं था। इसके अलावा बिस्मार्क ने ज़ार को कह दिया था कि जब वह फ्रांस पर आक्रमण करेगा उस समय रूस पेरिस सन्धि की काला सागर सम्बन्धी धाराओं को तोड़ सकता है।

१८६६ में बिस्मार्क ने आस्ट्रिया को हराने के बाद अत्यन्त उदार शर्तें रख कर अपनी ओर कर लिया था। यद्यपि प्रशिया की सेनाएँ जीत गई थीं तथापि उसने उन्हें विआना पर आक्रमण नहीं करने दिया था। आस्ट्रिया को युद्ध की क्षतिपूर्ति के लिए बहुत हर्जाना नहीं देना पड़ा था। बिस्मार्क फ्रांस से युद्ध होने पर आस्ट्रिया से तटस्थ रहने की आशा कर सकता था।

यदि बिस्मार्क जर्मनी के संगठन के लिए फ्रांस से युद्ध करना चाहता था तो नेपोलियन तृतीय भी प्रशिया से युद्ध करने का इच्छुक था। फ्रांस में सार्वजनिक रूप से यह धारणा थी कि साडोवा के युद्ध में आस्ट्रिया की हार नहीं अपितु फ्रांस की कूटनीतिक हार हुई थी। इसमें आश्चर्य नहीं कि फ्रांस अपनी हार का बदला लेना चाहता था। पुनश्च, फ्रांस में नेपोलियन तृतीय के प्रति विरोध बढ़ता जा रहा था और उसकी धारणा थी कि प्रशिया से युद्ध आरम्भ करके ही वह फ्रांस के सब वर्गों का समर्थन प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार की परिस्थितियों में बिस्मार्क ने अपना जाल बिछाया और नेपोलियन तृतीय इसमें फँस गया।

स्पेन का राज-सिंहासन राजकुमार लियोपोल्ड (Leopold) को देने का प्रस्ताव दो बार किया जा चुका था किन्तु उसने इसे स्वीकार नहीं किया था। बिस्मार्क के उकसाने पर उससे एक बार फिर भेंट करने का प्रस्ताव किया गया। फ्रांस के समाचार-पत्रों में इस प्रस्ताव की बड़ी आलोचना हुई। यह कहा गया कि फ्रांस प्रशिया और स्पेन के बीच घिर जाएगा और इस प्रकार उसके अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो जाएगा। यद्यपि लियोपोल्ड ने स्पेन का सिंहासन लेना अस्वीकार कर दिया फिर भी आन्दोलन बराबर चलता रहा। नेपोलियन ने प्रशिया के राजा से यह आश्वासन प्राप्त करना चाहा कि वह लियोपोल्ड को स्पेन के सिंहासन के लिए कभी भी उम्मीदवार नहीं बनाएगा। फ्रांस का राजदूत बैनेडिट्टी (Benedetti) प्रशिया के राजा को

इम्स के निवास स्थान पर मिला और जोर डालना चाहा। प्रशिया के राजा ने फ्रांस के राजदूत से अपनी भेंट का विवरण एक तार द्वारा भेजा। विस्मार्क ने इस तार को इस प्रकार से संक्षिप्त किया कि फ्रांस को यह प्रतीत हो कि उनके राजदूत का अपमान किया गया है और प्रशिया की जनता को यह प्रतीत हो कि उनके राजा का अपमान किया गया है। जब यह सन्देश फ्रांस पहुँचा तो फ्रांस में प्रशिया के विरुद्ध युद्ध करने के लिए मांग की जाने लगी और युद्ध की घोषणा कर दी गई।

इस युद्ध की सबसे महत्त्वपूर्ण लड़ाई सीडान (Sedan) की हुई जिसमें नेपोलियन तृतीय हार गया और उसने आत्मसमर्पण किया था। यद्यपि फ्रांस में प्रजातन्त्र की स्थापना हो गई थी तथापि बिस्मार्क पेरिस पर अधिकार करने के हठ पर अड़ा था। क्योंकि फ्रांस की जनता ने यह स्वीकार नहीं किया, अतः पेरिस का घेरा आरम्भ हुआ; घोर युद्ध हुआ किन्तु पेरिस को आत्मसमर्पण करना पड़ा। १८७१ की फ्रैंकफर्ट की सन्धि के अनुसार शान्ति हुई और फ्रांस को एल्साए और लॉरेन प्रशिया को देने पड़े। उसे बहुत बड़ी धनराशि भी युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में देनी पड़ी। १८७१ में वर्साई के प्रसिद्ध दर्पण-महल (Hall of Mirrors) में एक समारोह हुआ जिसमें प्रशिया के राजा को जर्मनी का सम्राट् घोषित किया गया। जर्मनी के दक्षिणी राज्य भी जर्मन संघ में मिल गए। इस प्रकार जर्मनी का एकीकरण परिपूर्ण हुआ।

हेज़न के मतानुसार, "१८७१ के पश्चात् फ्रैंकफर्ट की सन्धि यूरोप का रिसने वाला फोड़ा बन गया। फ्रांस कभी भी अपने घोर अपमान को भूल अथवा क्षमा नहीं कर सकता था। कालान्तर में यह बड़ा हर्जाना तो भूल भी जाता किन्तु इन दो राज्यों का शक्ति प्रयोग द्वारा और एल्साए और लॉरेन की जनता की सर्वसम्मति और कड़े विरोध के होने पर भी अधिकार कर लेना अक्षम्य था और कभी भी भूला नहीं जा सकता था। पुनश्च, फ्रांस का पूर्वी सीमान्त अत्यन्त कमज़ोर हो गया था।"

फ्रांस और प्रशिया के युद्ध के अन्य भी परिणाम हुए। इसके द्वारा इटली का एकीकरण पूर्ण हो गया। इसका यह कारण था कि जब फ्रांस और प्रशिया का युद्ध आरम्भ हुआ तब फ्रांस की सेनाओं को रोम से हटा लिया गया और इटली की सेनाओं ने रोम में प्रवेश किया। रूस ने भी इस युद्ध से लाभ उठाकर पेरिस सन्धि की काला सागर सम्बन्धी धाराओं को तोड़ दिया। नेपोलियन के साम्राज्य को उखाड़ दिया गया और फ्रांस में प्रजातन्त्र की स्थापना हो गई।

फ्रैंको-प्रशियन युद्ध के विषय में प्रो० टेलर का मत है कि "यद्यपि १८७० में फ्रांस के ऊपर विजय ने निस्सन्देह जर्मनी में एकता स्थापित कर दी, पर युद्ध ने आस्ट्रिया के विरुद्ध मनन का अभाव प्रगट किया। १८६२ और १८६६ के बीच में विस्मार्क ने निरन्तर दबाव तीव्र किया। आकस्मिक तथा शुद्ध चिन्ताओं के होते हुए भी, जब तक आस्ट्रियावासियों ने उसकी शर्तें स्वीकार नहीं कीं, बार बार के संकटों ने युद्ध को अनिवार्य कर दिया। १८६६ और १८७० के बीच में युद्ध की ओर कोई निरन्तर प्रगति नहीं थी; तीन वर्षों से अधिक बाद तक वस्तुतः १८६७ के

लक्जम्बर्ग मामले से लेकर युद्ध के छिड़ जाने तक किसी भी संकट ने फ्रांस व प्रशिया के सम्बन्धों को खतरे में नहीं डाला। न इन वर्षों में बिस्मार्क मिश्रित शासनों (Coalitions) के भय से डरा जिनका उस पर बाद में आधिपत्य जम गया। जब ये अफवाहें फैलीं कि फ्रांस का इटली तथा आस्ट्रिया-हंगरी के साथ संयोग हो गया है, तो उसने इन्हें 'हास्यजनक कूड़ा' कहकर हटा दिया और जो वास्तव में हुआ भी। वह फ्रांस व रूस के बीच होने वाले अच्छे सम्बन्धों से बहुत परेशान रहा, क्योंकि इनका आधार फ्रांस की पोलैंड के प्रति सहानुभूतियों का त्याग था और प्रशिया इस साझेदारी में केवल तीसरा भागीदार बन सकता था। उसकी अपनी नीति पहले और बाद के किसी समय की अपेक्षा अधिक अप्रत्यक्ष (Passive) रही। यद्यपि उसने रूस के साथ मित्रता की ठोस नींव बनाए रखी, इसकी सीमा पोलैंड के प्रति समान शत्रुता तक थी। उसने रूसियों को कभी भी इतना योग्य नहीं बनाया कि वे उससे अपने लिए निकट पूर्व में सहायता माँग सकें। अन्ततः उसने आस्ट्रिया-हंगरी व रूस के साथ रूढ़िवादी संधि की आशा की; सिद्धान्त पर आधारित अन्य संधियों की तरह, इसका लाभ यह हुआ कि बिना कुछ मूल्य दिए हुए सुरक्षा की व्यवस्था हो गई। लेकिन वह यह जानता था कि उसे तब तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी जब तक कि १८६६ की पराजय पर हैप्सबर्ग का विरोध समाप्त नहीं हो जाता।" (The Struggle for Mastery in Europe, p. 201)

थामसन के विचार में, "इस बात पर इतिहासकारों के बीच काफी मतभेद रहा है कि क्या घटनाओं का लम्बा क्रम, जो १८७१ की नई जर्मन रीश (Reich) में पराकाष्ठा पर पहुँच गया, को एक सम्बद्ध योजना मान लिया जाये, जो बिस्मार्क की महान् बुद्धि में उपजी जबकि वह १८६२ में सत्ताधारी हुआ और जिसने एक निश्चित समय-सारिणी के अनुसार अपनी शक्तिशाली इच्छा-शक्ति और कूटनीतिक दूरदर्शिता से उसे लागू किया। बिस्मार्क के जोशीले अनुयायियों व उसके उदारवादी आलोचकों ने यह दलील देने का प्रयास किया है कि ऐसा ही था। यह प्रमाण का एक विचित्र उदाहरण है जो इस दृष्टिकोण को सहायता देता है। डिजरायली के विचार में, जो १८६२ में लन्दन में एक भोज के समय बिस्मार्क से मिला था और जिसके कुछ ही समय बाद वह स्वयं सत्ताधारी हुआ, बिस्मार्क ने उसे आधे घंटे की बातचीत में अपनी सारी योजना से अवगत करा दिया। बाद में शाम के समय डिजरायली ने लन्दन में रूसी दूत सेबुरोव को बताया, "क्या यही अद्वितीय पुरुष बिस्मार्क है! वह मुझे पहली बार मिला और उसने मुझे यह सब बता दिया कि वह क्या करने जा रहा है। वह श्लैसविग-हालसटाइन पर कब्जा करने के लिए डेन्मार्क पर आक्रमण करेगा; वह आस्ट्रिया को जर्मन संघ (Confederation) से बाहर करेगा; और फिर वह फ्रांस पर चढ़ाई करेगा—एक अभूतपूर्व व्यक्ति है।" यदि यह कहानी सच्ची है और यदि सेबुरोव तथा डिजरायली दोनों ही के सरकारी जीवनी लेखक इसका अनुमोदन करते हैं, तो इसमें कोई संदेह नहीं होगा कि कम-से-कम एक विशाल चित्र बिस्मार्क के मस्तिष्क में अवश्य था जबकि उसने अपना पद ग्रहण किया।

"लेकिन बड़े-से-बड़े राजनीतिज्ञों के लिए भी इतिहास में यह असम्भव है कि वे दस वर्ष पहले से ही सफल योजना बना लें, और फिर संसार के ऊपर उन्हें लागू कर सकें। बिस्मार्क के कुछ आधुनिक जीविनी लेखकों ने यह सन्देह प्रगट किया है कि क्या उसे इतने विलक्षण तथा दैवी परिज्ञान से अलंकृत किया जावे। यह कहा जाता है कि मेटरनिक या एलेग्जेण्डर प्रथम की भाँति बिस्मार्क कोई व्यवस्था रचक नहीं था। वह एक योग्य अवसरवादी था जिसकी कार्यविधि सदैव लचीली व अनिश्चित रही जब तक कि अन्तिम क्षण न आया और जिसकी नीति उस समय की अपेक्षा अतीत काल में बहुत साफ और सम्बद्ध मालूम होती थी। वह प्रधान रूप से प्रशिया का राष्ट्रवादी था जो यह विश्वास करता था कि प्रशिया के हित यह माँग करते हैं कि वह सारे उत्तरी जर्मनी पर अधिकार जमावे और जर्मन विषयों में से आस्ट्रिया को अलग कर दे। अत: डेन्मार्क, आस्ट्रिया और फ्रांस तक के प्रति उसकी नीति केवल एक ही महान् परीक्षण से जानी जा सकती है—प्रशिया राज्य के हित। बाकी सब केवल विस्तार व विधि की बात थी जो क्षणिक परिस्थितियों से निर्धारित होती थी और जैसाकि वह यूरोप की राजनीति के स्वभाव में अपने तीक्षण परिज्ञान के बल पर समझता था। जर्मनी का एकीकरण प्रशिया के हित से नैमित्तिक और उस दिशा में अनन्त खोज से संलग्न प्रयोजन था।" (Europe Since Napoleon, pp. 291-92)

Suggested Readings

Clark, C. W. : *Franz Joseph and Bismarck : The Diplomacy of Austria before the War of 1866.*

Dawson. W. H. : *Evolution of Modern Germany.*

Dawson, W. H. : *The German Empire, 1867-1914.*

Ergang, R. E. : *Herder and the Foundations of German Nationalism, 1931.*

Friedjung, H. : *The Struggle for Supremacy in Germany, (1859-1866), 1936.*

Gooch, C. P. : *Germany.*

Headlam : *Bismarck and the Foundation of the German Empire.*

Henderson, E. F. : *A Short History of Germany.*

Marriott and Robertson : *The Evolution of Prussia.*

Oncken, H. : *Napoleon III and the Rhine : The Origin of the War of 1870-71, 1892.*

Priest : *Germany Since 1740.*

Taylor, A. J. P. : *The Course of German History.*

Valentin, V. : *1848 : Chapters in German History, 1940.*

Willoughby, L. A. : *The Romantic Movement in Germany, 1930.*

अध्याय १८

रूस १७९६ से १८७० तक

(Russia from 1796 to 1870)

यद्यपि रूस ज़ार पीटर और कैथरीन महान् जैसे व्यक्तियों के कार्यों के कारण महत्ता प्राप्त कर चुका था तथापि यह यूरोप के अन्य प्रगतिशील देशों से पिछड़ा हुआ था। यह इसी दयनीय अवस्था में उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक रहा। इसके बाद यहाँ मुज़ारेदारी (Serfdom) समाप्त कर दी गई और देश का उद्योगीकरण हुआ जिसके कारण देश में उदार और क्रान्तिकारी विचारधाराओं का जन्म हुआ। किन्तु इसका यह आशय नहीं कि रूस ने यूरोप के विदेशी मामलों में महत्त्वपूर्ण भाग नहीं लिया। यह तथ्य है कि रूस को एक महान् शक्ति माना जाता था और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों की शतरंज की बिसात पर उसकी प्रत्येक चाल भय, चिन्ता और दिलचस्पी से देखी जाती थी।

ज़ार पॉल प्रथम (Czar Paul I) (१७९६-१८०१)—कैथरीन द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् ज़ार पॉल प्रथम १७९६ में रूस के सिंहासन पर बैठा। उसके राज्यारोहण के तुरन्त बाद देश के प्रशासन में बहुत से परिवर्तन किए गए। एक शाही घोषणा हुई कि रूस के सिंहासन पर 'ज्येष्ठाधिकार' के सिद्धान्त के अनुसार उत्तराधिकार होगा। जनता का वेश, आचार और व्यवसाय भी बदल दिए गए। सैनिक अनुशासन कड़ा कर दिया गया। प्रिय दरबारी लोग जो सैनिक पथ-संचलन में वर्ष में केवल एक बार भाग लेते थे तथा पुराने सैनिक जो कभी छावनी में गए ही नहीं थे उन्हें नित्यप्रति नियमित रूप से सैनिक कवायद में शामिल होना पड़ता था। प्रशिया की सेना की शिक्षा-पद्धति और वेश को अपना लिया गया। प्रशासन के अधिकारियों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। रूस के वित्त विभाग में भ्रष्टाचार को हटाने के प्रयत्न किए गए। ज़ार पाल (Czar Paul) जन्म से ही निर्दय, स्वेच्छाचारी था और पुराने रूसी शान का रूढ़िवादी अनुयायी था। दरबार में शिष्टाचार के नियम लागू किए गए और उनका इतनी कठोरता से पालन किया जाने लगा कि प्रत्येक दिन दरबार की हाज़िरी दरबारियों के लिए एक समस्या बन गई। वे लोग दरबार में जाने से काँपा करते थे। राजकुमारों और महिलाओं को अपनी गाड़ियों से उतरकर बर्फ़ पर खड़ा हो कर गुज़रती हुई शाही गाड़ी को सलाम करना पड़ता था। मास्को में राज्याभिषेक के समय पोलैण्ड के प्रतिनिधियों ने अपने राजा को छज्जे के किनारे, जहाँ खड़ा होने का आदेश दिया गया था, खड़े देखा। देश में एक प्रकार का आतंक राज स्थापित हो गया था।

विदेशी मामलों में, पॉल ने पर्शिया (Persia) और ज्योर्जिया (Georgia) से रूसी सेनाएँ बुला लीं। उसने पोलैण्ड के प्रमुख माननीय व्यक्तियों को कैद से रिहा कर दिया। उसने स्टेनीस्लास (Stanislas) को सेंट पीटर्सबर्ग बुलाया और उसका राजोचित स्वागत किया। उसने पोलैण्ड के नेता से यहाँ तक कहा कि वह व्यक्तिगत रूप से पोलैण्ड के विभाजन के पक्ष में नहीं था। उसने सब से सुलह रखने की नीति की घोषणा की। उसने अनुभव किया कि रूस १७५६ से युद्ध में संलग्न रहा है और अब वह थक गया है और अब वह शान्ति का इच्छुक है। उसने घोषणा की कि "वह रूस द्वारा की गई सारी सन्धियों को निबाहना चाहता है और वह सब प्रकार से फ्रांस के प्रजातन्त्र और जेकोबिनवाद का विरोध करेगा। कैथेरीन की बाल्टिक नीति का अनुसरण किया गया और डेन्मार्क से घनिष्ठ मैत्री सम्बन्ध स्थापित किए गए। स्वीडन से भी मैत्री सम्बन्ध स्थापित किए गए। पॉल अपने वचन का पालन करने वाला था। रूस की एक बड़ी सेना वापस बुला ली गई और र्‌हायन नदी के क्षेत्र में ६० हज़ार सैनिक भेजने की योजना भी छोड़ दी गई। सेना में दमन द्वारा भर्ती रोक दी गई। किन्तु देख-रेख की व्यवस्था ढीली नहीं की गई। फ्रांस क्रान्ति के प्रति उसकी शत्रुता उसके लिए धर्म बन गया था। बाद में जब वह बोनापार्ट का मित्र बना, उसका मुख्य कारण यह था कि उसने नेपोलियन को जेकोबिनवाद का शत्रु माना था; रूसी प्रजाजनों को पश्चिम की यात्राओं से लौट आने की आज्ञा दी गई थी। समाचारपत्रों और नाट्यगृहों पर कड़ा प्रतिबन्ध लगाया गया। फ्रांसीसी नागरिकों को रूस की सीमा में आने से पूर्व बोर्बन वंश के किसी राजकुमार द्वारा मान्य पारपत्र दिखाना पड़ता था। कभी-कभी तो पेरिस के नवीन शिष्टाचार के विरुद्ध पॉल का रोष उपहासजनक हो जाया करता था। ऊँचे कालर (collars) को प्रजातन्त्रवाद का प्रतीक माना जाता था। राजधानी में गोल टोपी पहनने वालों का पुलिस पीछा किया करती थी, यहाँ तक कि एक राजदूत को भी अपनी टोपी उतार कर बदलनी पड़ती थी।

पॉल जैसी मनोवृत्ति वाला राजा अधिक समय तक बिना विपत्ति में पड़े नहीं रह सकता था। उसकी सबसे प्रथम राजनैतिक पराजय स्वीडन (Sweden) से हुई। वह उससे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखना चाहता था, किन्तु उसकी अवहेलना कर दी गई। फ्रांस से भी उसके सम्बन्ध असन्तोषजनक ही रहे। १७६७ में पॉल ने 'नाइट्स ऑफ सेन्ट जॉन' को अपना संरक्षण प्रदान किया। यूरोप भर के सामन्तों को एक सूत्र में पिरोने की एक चाल चली गई ताकि समाज की नींव पर कुठाराघात करने वाले 'समानता' के विचारों के आक्रमण का मुकाबला किया जा सके। वह अठारहवीं शताब्दी का धर्मान्ध व्यक्ति था। यद्यपि उसमें कैथेरीन जैसी बनावटी उदारता नहीं थी फिर भी वह यूरोप की कूटनीति में यशस्वी होने की अभिलाषा रखता था। वह 'नाइट्स ऑफ सेंट जॉन' द्वारा 'ग्राण्ड मास्टर' के पद पर चुना गया। हालैण्ड पर इंग्लैण्ड और रूस का संयुक्त अभियान असफल रहा और रूस को बड़ी हानि उठानी पड़ी। १७६६ में नेपोलियन ने माल्टा द्वीप रूस को दे दिया क्योंकि ज़ार 'सेण्ट जॉन' का 'ग्राण्ड मास्टर' था। नेपोलियन द्वारा आस्ट्रिया के विरुद्ध मेरिंगो (Marengo)

के युद्ध में विजय प्राप्त करने पर वह उसका आदर करने लगा था। बोनापार्ट ने प्रगट रूप से पॉल की सार्डीनिया, नेपल्स और रोम में दिलचस्पी को माना और इससे भी पाल को बड़ा सन्तोष हुआ होगा।

१८०० में नेपोलियन से बातचीत आरम्भ हुई। माल्टा पर ब्रिटेन ने अधिकार कर लिया और इस द्वीप को पुनः ज़ार को नहीं लौटाया गया। पॉल ने अपना क्रोध १८०० की द्वितीय सशस्त्र तटस्थता सन्धि में व्यक्त किया। रूस, प्रशिया, स्वीडन और डेन्मार्क सन्धियों द्वारा परस्पर साथी बन गए। यह निर्णय किया गया कि प्रत्येक तटस्थ देश के जहाज़ साथी राष्ट्रों की बन्दरगाहों और शत्रु राष्ट्रों के समुद्री तट से यात्रा कर सकेंगे। युद्ध की सामग्री के अतिरिक्त युद्ध-संलग्न राष्ट्रों को जाने वाले माल तटस्थ देशों के जहाज़ों पर स्वतन्त्रता से जा सकेंगे। तटस्थ जहाज़ों को पर्याप्त कारणों पर ही पकड़ा जायेगा और तुरन्त ही उनके अपराधों की जाँच की जाएगी। समान और शीघ्र न्याय व्यवस्था अपनाई जाएगी। नेपोलियन ने ज़ार से सहयोग किया। १८०१ में ज़ार ने पेरिस में अपना एक प्रतिनिधि भेजा। उसने नेपोलियन को सुझाव दिया कि वह इंग्लैण्ड पर आक्रमण करे। नेपोलियन ने उसका सुझाव स्वीकार कर लिया। उसने नेपोलियन से कहा कि वह पुर्तगाल, स्पेन और संयुक्त राज्य अमेरिका को इंग्लैंड के विरुद्ध करके अपने साथ मिला ले। उसने भारतवर्ष पर आक्रमण करने की योजना बनाई। योजना इस प्रकार थी, कि एक रूसी सेना बुखारा और खीवा के मार्ग से चले। एक फ्रांसीसी सेना डेन्यूब नदी के किनारे से आगे बढ़े। दूसरी फ्रांसीसी सेना हेरात (Herat) और कन्धार के मार्ग से आगे चले और ये सब मिलकर भारतवर्ष पर आक्रमण करें। ज़ार ने शत्रु देशों में से होकर इस लम्बी यात्रा के खतरों का अनुमान नहीं लगाया। इसमें क्या आश्चर्य है कि ब्रिटेन ने भी प्रतिशोधात्मक कार्यवाही की हो। १८०१ में रूस, स्वीडन और डेन्मार्क के जहाज़ों पर रोक लगा दी गई। पार्कर और नैल्सन (Nelson) के निरीक्षण में एक जहाज़ी बेड़ा बाल्टिक सागर भेजा गया। जिन राष्ट्रों को भय हुआ उन्होंने बड़ी तीव्रता से युद्ध की तैयारियाँ आरम्भ कर दीं। किन्तु इससे पहले ही ज़ार की हत्या कर दी गई।

यह बात उल्लेखनीय है कि हत्या से बहुत महीनों पहले ही ज़ार में पागलपन के लक्षण प्रगट हो गए थे। उसे अकारण असंयत रूप से क्रोध के दौरे पड़ते थे। उसके व्यवहार में सामंजस्य नहीं रहा था। लोगों की बिना युक्ति के पदोन्नति और पदावनति होती थी। ज़रा से संशय के आधार पर प्रत्येक वर्ग के लोगों को दण्ड दे दिया जाता था। अङ्गरक्षक सेना के पदाधिकारियों को छोटे-छोटे अपराधों पर पीटा तथा कैद कर दिया जाता था। मन्त्रियों को भूल से कहे गए एक ही शब्द पर देश-निकाला दे दिया जाता था। अनेक भाग्यहीनों को साइबेरिया भेज दिया गया था। एक-एक करके उसने अपने सारे स्वामिभक्त सेवकों को शत्रु बना लिया था। बहुत से उच्च पदाधिकारियों को डाँट दिया गया, देश से निकाल दिया गया और अपमानित कर दिया गया था। सैनिक उससे घृणा किया करते थे क्योंकि वह उनके पदाधिकारियों का अपमान करता था। आशंकापूर्ण वातावरण असहनीय हो गया था। इन

परिस्थितियों में षड्यंत्र रचा गया और मार्च, १८०१ में ज़ार को निर्दयता से गला घोंट कर मार डाला गया।

एलेग्जेण्डर प्रथम (Alexander I) (१८०१-२५)—१८०१ में ज़ार पॉल का उत्तराधिकारी एलेग्जेण्डर प्रथम बना और वह १८२५ तक राज्य करता रहा। उसे एक स्विस शिक्षक ने शिक्षा दी थी और उसके प्रभाव के कारण ज़ार के विचार उदार हो गए थे। १८२० तक उसके उसके विचार उदार ही रहे किन्तु उसके पश्चात् वह पूर्णत: मेटरनिक का अनुयायी हो गया। एलेग्जेण्डर एक आदर्शवादी तथा स्वप्नद्रष्टा था।[1] पवित्र मैत्री (Holy Alliance) उसके अध्यात्मवाद, आदर्शवाद और निरकुंशतावाद का परिणाम थी। उसके विचार महान् थे और उसका पूर्ण विश्वास था कि उसके जीवन का उद्देश्य दैवी सिद्धान्तों को राज्य के शासन में क्रियान्वित करना था। वह शासकों से चाहता था कि वे अपनी प्रजा के पिता बनकर उन्हें पुत्रों की भाँति प्रेम करें। इसी कारण लुई अठारहवें के पुनःस्थापन पर उसने ज़ोर डाल कर १८१४ की अधिकार-पत्र की घोषणा कराई थी। स्वयं भी उसने पोलैण्ड के क्षेत्र को उदार संविधान प्रदान किया था। इसी प्रकार का संविधान विआना सम्मेलन के पश्चात् रूस ने फिनलैण्ड को दिया था।

एलेग्जेण्डर प्रथम

यह ध्यान रखने योग्य है कि १८०७ के युद्ध के पश्चात् एलेग्जेण्डर ने नेपोलियन से टिल्सिट की सन्धि करने के पश्चात् महाद्वीपीय व्यवस्था (Continental System) को क्रियाविन्त करने में नेपोलियन का साथ दिया था। यह व्यवस्था थोड़े समय तक चलती रही। किन्तु अनेक कारणों से एलेग्जेण्डर को नेपोलियन से असहयोग करना पड़ा। १८१२ में नेपोलियन ने रूस पर आक्रमण कर दिया। इसके पश्चात् उसने यूरोप की अन्य शक्तियों से सहयोग करके नेपोलियन का नाश किया। नेपोलियन के पतन के पश्चात् यह विआना सम्मेलन (१८१४-१५) में अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति था। उसके पास एक विशाल सेना थी, जिसके बल पर वह अपने दृष्टिकोण को अन्य शक्तियों से मनवा सकता था। इसी कारण एलेग्जेण्डर विआना सम्मेलन में अपने देश के लिऐ बहुत कुछ प्राप्त कर सका।

विआना सम्मेलन के पश्चात् एलेग्जेण्डर के विचार तेज़ी से बदलें। १८१८ में वह आस्ट्रिया और प्रशिया से सहयोग करके यूरोप में यथास्थिति (Status quo)

---

१. नेपोलियन ने एलेग्जेण्डर के विषय में लिखा था, "मैं एलेग्जेण्डर को चाहता हूं, उसे भी मुझे चाहना चाहिए। यदि वह स्त्री होता तो मैं उसे प्रेम करने लगता।"

बनाए रखने के लिए तैयार था। १८२० में वह बिल्कुल बदल गया। १८२० में ट्रोप्पू (Troppau) सम्मेलन में उसने सर्वजनिक रूप से अपने को मेटरनिक का अनुयायी घोषित किया और कहा कि वह इसका यूरोप में क्रान्तिकारी विचार-धारा को दमन करने के लिए मन चाहे रूप से प्रयोग कर सकता है। वह नेपल्ज़, पीडमोण्ट और स्पेन के विद्रोहों को दबाने के लिए अपनी सेना भेजने को तैयार था। मेटरनिक रूस की विशाल सैन्य-शक्ति से डरता था इसलिए उसने इसका उत्साह कम कराया था। एलेग्ज़ेण्डर शेष जीवन भर प्रतिक्रियावादी (reactionary) ही रहा।

जब ग्रीस ने तुर्की के विरुद्ध विद्रोह किया तो पूरी सम्भावना थी कि रूस अपनी सेनाएँ विद्रोह को दबाने के लिए भेजेगा। एलेग्जेण्डर की भी बड़ी इच्छा थी, और उसे अन्य देशों ने उत्साहित भी किया था, किन्तु वह मेटरनिक के प्रभाव में था। उसका विचार था कि सभ्यता के सूर्योदय से पहले ही विद्रोह को जल कर समाप्त हो जाना चाहिए। परिणामतः मोलडेविया में राजकुमार हिपसिलैण्टी (Hypsilanti) का विद्रोह बुरी तरह असफल हुआ। मोरिया द्वीप में जब ग्रीक लोगों ने विद्रोह का झण्डा उठाया उस समय भी एलेग्ज़ेण्डर ने उनकी सहायता न की।

एलेग्ज़ेण्डर अध्यात्मवाद, सुधारवाद, स्वेच्छाचारिता और साम्राज्यवाद का अद्भुत मिश्रण था। इसलिए कभी वह उदार और कभी प्रतिक्रियावादी हो जाता था। लार्ड बायरन (Byron) ने उसके विषय में एक कविता लिखी है जो नीचे दी जाती है :

> "Now half dissolving to a liberal thaw,
> But hardened back whenever the morning's raw;
> With no objection to true liberty,
> Except that it would make the nations free."

निकलस प्रथम (Nicholas I) (१८२५-५५)—अपनी मृत्यु से पहले ही एलेग्जेण्डर ने कॉन्स्टैनटाइन (Constantine) को छोड़कर निकलस प्रथम को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। निकलस प्रथम प्रतिक्रियावादी होने के कारण काफी बदनाम था। इस कारण रूस के सुधारवादियों ने दिसम्बर, १८२५ में विद्रोह किया। उनका नारा था : "हमें संविधान और कॉन्स्टैनटाइन चाहिएँ"। उन्होंने कॉन्स्टैनटाइन के शासन की माँग की, जो अपने उदार विचारों के लिए प्रसिद्ध था। जनता इतनी अज्ञानता में थी कि उसने संविधान को कॉन्स्टैनटाइन की पत्नी समझा (They mistook Constitution for wife of Constantine)। दिसम्बर विद्रोह का बड़ी निर्दयता से दमन कर दिया गया और निकलस प्रथम ने ३० वर्ष राज्य किया। प्रतिक्रिया उसके रोम-रोम में भरी थी। वह स्वेच्छाचारिता की मूर्ति था। रूस की नीति में तानाशाही का राज्य छा गया। रूस में प्रगतिशील विचारों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। जनता की आवाज़ को प्रसारित करने के सारे साधनों पर नियन्त्रण हो गया। विचारों और कार्यों की स्वतन्त्रता के सारे स्रोत बन्द कर

दिए गए। १८२६ में उसने शाही कार्यालय का तीसरा विभाग (Third Section of Imperial Chancery) बनाया जिसका कार्य राजनतिक तथा सामाजिक नवीनताएँ प्रचलित करने वालों की खोज करना तथा उन्हें दण्ड देना था। यह बात उल्लेखनीय है कि तृतीय विभाग का कार्य रूस के इतिहास में काला अध्याय है। तृतीय विभाग का अध्यक्ष रूस की पुलिस का संचालक था और उसे पकड़ने, कैद करने, देशनिकाला देने और बिना रोक-टोक के दण्ड देने के असीमित अधिकार प्राप्त थे। तृतीय विभाग द्वारा फैलाए गए आतंक का मुकाबला स्पेन के धर्म न्यायालयों के अत्याचार ही कर सकते थे। निकलस ने अपनी प्रजा को पश्चिमी यूरोप के उदार विचारों की छूत से बचाने का प्रयत्न किया। इस उद्देश्य से उसने रूस के नागरिकों द्वारा विदेश यात्रा बन्द कर दी। विदेशी पुस्तकें बिना पूरी जाँच के देश में नहीं आने दी जाती थीं। विद्यार्थियों को विश्वविद्यालयों में अध्ययन करने से हतोत्साहित किया जाता था। दर्शन-शास्त्र का अध्ययन पाठ्यक्रम से निकाल दिया गया। युवकों को उच्च शिक्षा के लिए विदेशों में भेजना बन्द कर दिया गया। समाचारपत्रों पर बड़ा कठोर सेन्सर (Censor) लगाया गया। यदि किसी भी व्यक्ति के पास निषिद्ध पुस्तक मिल जाती अथवा भूल से कोई बात कह देता था तो उसे साइबेरिया के किसी भाग में देशनिकाला देकर भेज दिया जाता था। देश में कोई न्याय-व्यवस्था नहीं रह गई थी।

विदेश-नीति के विषय में वह अपने को तानाशाही का प्रवर्तक समझता था और सारी प्रगतिशील विचारधाराओं को शत्रु मानता था। १८३१ में वह पोलैण्ड के विद्रोह के कारण बोर्बन (Bourbon) वंश की ओर से फ्रांस के विद्रोह में हाथ नहीं डाल सका था। १८३३ में उसने क्रान्तिकारी तथा प्रगतिशील आन्दोलनों का दमन करने के लिए आस्ट्रिया और प्रशिया के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किए। इस त्रिमुखी सन्धि ने यूरोपीय व्यवस्था में निकलस प्रथम को केन्द्रीय व्यक्ति बना दिया और रूस की प्रतिष्ठा बढ़ गई। १८४९ में जब हंगरी ने आस्ट्रिया के विरुद्ध विद्रोह करके स्वयं को स्वतन्त्र गणतन्त्र घोषित किया तो निकलस ने अपनी सेनाएँ आस्ट्रिया की सहायता के लिए भेजीं। उसने जर्मनी के राष्ट्रीयता आन्दोलन के विरुद्ध भी हस्तक्षेप करने की धमकी दी। निकलस के आतंककारी रुख के कारण ही १८४९ में फ्रैंकफर्ट संसद् द्वारा प्रस्तावित मुकुट को प्रशिया के विलियम चतुर्थ ने स्वीकार नहीं किया था।

जिस समय वह सिंहासन पर बैठा तब ग्रीक लोग अपने स्वातन्त्र्य-युद्ध में संलग्न थे। आरम्भ में उसने इंग्लैण्ड और फ्रांस से सहयोग करके ग्रीकों की तुर्की के विरुद्ध सहायता की। रूस के बेड़े ने नवारिनो (Navarino) के समुद्री युद्ध में भाग लिया और तुर्की और मिश्र के बेड़े को नष्ट किया। यद्यपि कैनिंग की मृत्यु के पश्चात् फ्रांस और इंग्लैण्ड ने युद्ध बन्द कर दिया तथापि रूस ग्रीस की सहायता करता ही रहा। परिणामतः १८२९ में ग्रीस (Greece) की स्वतन्त्रता को मान्यता दी गई। निकलस द्वारा की गई ग्रीस की सहायता का कम महत्त्व नहीं था।

मेहमत अली (Mehmet Ali) ने ग्रीक स्वातन्त्र्य युद्ध में तुर्की के सुलतान की सहायता की थी। युद्ध के पश्चात् उसकी सेवाओं के उपहार स्वरूप उसे क्रीट (Crete) का द्वीप दे दिया गया था। मेहमत अली ने इसे पर्याप्त नहीं समझा और सीरिया (Syria) और एशिया माइनर (Asia Minor) पर अधिकार कर लिया। जब वह कुस्तुनतुनिया (Constantinople) की ओर बढ़ने लगा तो तुर्की के सुलतान ने रूस की सहायता माँगी। इन परिस्थितियों में अंक्यार स्केलेसी (Unkiar Skelessi) की १८३३ में सन्धि हुई। इसके अनुसार रूस ने तुर्की की सहायता करना स्वीकार किया और यह निर्णय हुआ कि जब भी रूस युद्ध में लगा होगा डारडेनीलस की बन्दरगाह में अन्य किसी भी देश के जहाज़ी बेड़े को नहीं ठहरने दिया जाएगा। इस सन्धि के अनुसार रूस काला सागर का स्वामी हो गया और आक्रमणों से उसकी सुरक्षा हो गई। इसके द्वारा रूस का मार्ग अन्धमहासागर की ओर भी खुल गया।

१८४० में रूस ने ब्रिटेन, आस्ट्रिया और प्रशिया के साथ मिल कर तुर्की की अक्षुण्णता बनाए रखने का निर्णय किया। चारों शक्तियाँ इंग्लैण्ड में मिलीं और सुलतान की सहायता करने का निर्णय किया। चतुर्मुखी संगठन को फ्रांस ने अपना अपमान समझा और युद्ध की सम्भावना बढ़ गई। किन्तु लुई फिलिप ने फ्रांस के प्रधान-मन्त्री को पदच्युत कर दिया। यूरोपीय शक्तियों के सामूहिक कार्य के परिणाम-स्वरूप मेहमत अली के पुत्र इब्राहीम को सीरिया से निकाल दिया गया और उसे १८४१ में आत्मसमर्पण करना पड़ा। १८४१ की सन्धि के अनुसार सारी शक्तियों ने डारडेनीलस (Dardanelles) और बॉसफोरस के मार्ग से काला समुद्र में रास्ता देने के अधिकार को मान्यता दी। रूस ने १८३३ की सन्धि को रद्द कर दिया।

१८४४ में निकलस प्रथम लन्दन गया और उसने तुर्की के विभाजन का प्रस्ताव किया क्योंकि उसे तुर्की के पतन की पूरी आशंका हो गई थी। उसने प्रस्ताव किया कि इंग्लैण्ड मिश्र और क्रीट (Crete) पर अधिकार कर ले और उसे बलकान द्वीपसमूह पर अधिकार करने दिया जाए। उसने यह भी कहा कि वह कुस्तुनतुनिया पर अधिकार नहीं करना चाहता। ब्रिटिश सरकार ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

ब्रिटेन को तुर्की के मामले में न हाथ डालते देखकर उसने अकेले ही यह कार्य करने की सोची। उसने तुर्की के ईसाइयों की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया। किन्तु उसकी इस चेष्टा का विरोध हुआ, निकलस ने १८५३ में डेन्यूब नदी के प्रदेश पर अधिकार करने की आज्ञा दे दी। इन परिस्थितियों में क्रीमिया युद्ध आरम्भ हुआ। ब्रिटेन, फ्रांस और सार्डीनिया ने सामूहिक रूप से रूस के आक्रमण को रोकने तथा तुर्की की सहायता के लिए सामूहिक मोर्चा लिया। क्रीमिया का युद्ध (Crimean War) १८५४ से ५६ तक चला। इस युद्ध के चलते हुए ही १८५५ में निकलस की मृत्यु हो गई।

यह स्पष्ट है कि निकलस की विदेश-नीति शक्तिशाली थी और उसका प्रभाव सारे यूरोप पर छाया हुआ था।

हम लिपसन द्वारा की गई निकलस प्रथम और स्पेन के फिलिप द्वितीय की तुलना से चर्चा को समाप्त करेंगे। "निकलस फिलिप की तरह उस युग की स्वेच्छाचारिता की मूर्ति था। वह स्वेच्छाचारिता का प्रचारक और उस युग की प्रगति की भावना का प्रतीक था और अत्यन्त कठोर हठधर्मी से मृतप्राय सिद्धान्तों की रक्षा के लिए जी तोड़ कर लड़ने वाला था। जिस प्रकार सोलहवीं शताब्दी में स्पेन के राजा सुधारों के कट्टर विरोधी थे उसी प्रकार यह भी गणतन्त्रवाद का कट्टर शत्रु था। दोनों ने ही एक जैसे हथियार प्रयुक्त किए, यथा स्पेन ने धर्म-न्यायालय (Inquisition) और रूस ने तृतीय विभाग। उन्होंने अपनी विचारधाराओं को यूरोप में फैलती हुई प्रगतिशील विचारधाराओं से जानबूझ कर बरबस अछूता रखा था। किन्तु स्पेन की तरह रूस में भी राजशाही की नींव प्रजा की अखण्ड स्वामिभक्ति और उपेक्षा पर आधारित थी। किन्तु यह उनकी दुर्बलता का भी प्रतीक था। क्योंकि एक बार जनता में राजनैतिक जाग्रति हो जाने पर इसका सारा भवन चूर-चूर होकर गिर जाना स्वाभाविक था। १८५५ तक यह जाग्रति रूस में नहीं आई किन्तु क्रीमिया के युद्ध का रूस की जनता पर वही प्रभाव हुआ जो स्पेन में स्पेन के जहाज़ी बेड़े के नष्ट हो जाने पर हुआ था। इससे उनका तत्कालीन राज्य-व्यवस्था तथा देश की अजेय शक्ति में विश्वास समाप्त हो गया था।

एलेग्जेण्डर द्वितीय (Alexander II) (१८५५-८१)—क्रीमिया युद्ध के दौरान में ही एलेग्जेण्डर द्वितीय गद्दी पर बैठा। इसे ही सन्धि वार्ता करके १८५६ की अपमानजनक पेरिस सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े थे। जहाँ तक काला सागर का सम्बन्ध है, आगामी चौदह वर्षों में रूस का प्रभाव पूर्णतः नष्ट हो गया।

क्रीमिया युद्ध के समाप्त हो जाने पर उसने आन्तरिक व्यवस्था की ओर ध्यान दिया। देश में बड़ा असन्तोष था। जनता में देश के स्वेच्छाचारी शासन के प्रति घोर कटुता थी क्योंकि इसके ही कारण क्रीमिया के युद्ध में पराजित होकर १८५६ की अपमानजनक सन्धि करनी पड़ी थी। इसलिए जनता को शान्त करने के लिए कुछ सुधार करने का निर्णय किया गया।

मुज़ारेदारी की समाप्ति (Abolition of Serfdom)—एलेग्जेण्डर द्वितीय द्वारा सबसे बड़ा सुधार मुज़ारेदारी को १८६१ में समाप्त कर देना था। रूस मुख्यतः एक खेतिहर देश था और देश में बहुत बड़ी संख्या मुज़ारों की थी। रूस की खेती का दस में से नौ भाग भूमि या तो राजा की थी या शाही परिवार अथवा अन्य लगभग १ लाख शाही परिवारों की थी। मुज़ारे इस भूमि पर काम करते थे और जन्मस्थान को बिना अपने स्वामी की आज्ञा के छोड़ नहीं सकते थे। जागीरों के बिकने के साथ-साथ मुज़ारे भी बिक जाया करते थे। मुज़ारे अपने-अपने स्वामी को कर देते, शारीरिक परिश्रम करते और उनके प्रति स्वामि-भक्ति रखते थे। कभी-कभी जागीरदार अपने मुज़ारों को नगरों में कमाने के लिए भेज देते थे और उनकी मजदूरी का

कुछ भाग जागीरदार को मिलता था। कभी मुज़ारों को घरेलू नौकरों का काम करना पड़ता था। अतः कभी-कभी उनकी अवस्था गुलामों जैसी हो जाया करती थी। बहुत कम जागीरदार उदार और कृपालु होते थे। अधिकांश अत्याचारी हीं होते थे। मुज़ारे गरीब, निरक्षर और अस्वस्थ रहा करते थे। उनकी अवस्था बड़ी दयनीय थी।

एलेग्जेण्डर ने अपनी आज्ञा शाही जागीरों में काम करने वाले मुज़ारों को मुक्त करके लागू की थी। यद्यपि स्वार्थी जागीरदारों ने विरोध भी किया किन्तु जार ने मार्च, १८६१ में एक राजाज्ञा द्वारा सारे रूसी साम्राज्य में मुज़ारेदारी समाप्त कर दी थी। मुज़ारों पर जागीरदारों के सारे अधिकार समाप्त कर दिए गए। वे इच्छानुसार कहीं भी जा सकते थे। इस प्रकार की व्यवस्था की गई कि मुज़ारेदारी की अवस्था में जितनी धरती पर वे लोग खेती करते थे उससे आधी धरती उन्हें खेती के लिए मिल जाए। धरती को सरकार खरीद कर किसानों को ४९ वार्षिक किश्तों पर देती थी। किन्तु खेती की धरती किसानों को व्यक्तिगत रूप से नहीं अपितु ग्रामों की मीर (पंचायतों) को दी गई थी। मीर को किसानों से राजस्व और किश्तें उगाहने का काम सौंपा गया। मुज़ारों की मुक्ति ज़ार का महान् मानव-हित का कार्य था। यदि रूस प्रगति करना चाहता था तो मुज़ारेदारी चल नहीं सकती थी। मुज़ारेदारी की समाप्ति के कारण बहुत से लोग रूस के कारखानों में काम करने लगे थें। इस प्रकार देश के उद्योगीकरण को भी प्रोत्साहन मिला था। खेती की भूमि में बढ़ोत्तरी हुई और उपज भी बढ़ गई। धरती की कीमत भी बढ़ गई। राज्य को करों से अधिक आय होने लगी। माल विदेशों में भेजा जाने लगा। किसानों की हालत भी सुधर गई।

मुज़ारेदारी की समाप्ति केवल वरदान ही नहीं थी। अनेक किसानों की हालत पहले से भी खराब हो गई। उन्हें दी गई धरती इतनी थोड़ी थी कि उनका जीवनयापन भी कठिन था। राज्य को दी जाने वाली किश्तों का भार भी उन पर बहुत था। जागीरदारों के अत्याचार समाप्त हुए तो मीर के अत्याचार सहन करने पड़ते थे। उन्हें कर उगाहने वाले और केन्द्रीय सरकार की पुलिस तंग करती थी। राज्य के अधिकारियों का वर्ताव कठोर था। आलोचक कहते हैं कि जार ने किसानों को जागीरदारों की मुज़ारेदारी से मुक्त करके 'राज्य के मुज़ारेदार' बना दिया था।

न्यायिक सुधार (Judicial Reforms)—१८६२ में न्याय प्रणाली में भी कुछ सुधार किए गए। दीवानी और फौजदारी के मुकदमों को शासकों से हटा कर पाश्चात्य प्रणाली पर बनाए गए न्यायालयों को सौंप दिया गया। न्यायाधीशों का चुनाव जनता को सौंप दिया गया। जिलों और प्रान्तों में भी न्यायाधीश नियुक्त किए गए। सीनेट को सर्वोच्च न्यायालय बना दिया गया। देश के कानूनों की संहिता बनाने की आज्ञा दी गई। राज्य की ओर से भी वकील नियुक्त किए गए। फौजदारी मुकदमों का न्याय करने के लिए जूरी प्रणाली अपनाई गई। मुकदमे गुप्त रूप से न होकर खुली अदालतों में किए जाने लगे थे। केवल राजनैतिक अपराधों के विषय

में कोई व्यवस्था नहीं हुई थी। अपराधियों को अब भी बिना मुकदमे के दण्ड दिया जाता था।

जेम्स्टवोस (Zemstvos)—१८६४ की एक राजाज्ञा के अनुसार रूस को ३४ प्रशासनिक प्रान्तों में बाँट कर घोषणा की गई कि प्रत्येक प्रान्त में एक सभा अर्थात् जेम्स्टवोस होगी। इसमें जागीदारों, किसानों और नागरिकों के प्रतिनिधि होंगे। इसका कार्य सार्वजनिक निर्माण, चर्च, स्कूल, जेलखानों, जन-स्वास्थ्य और गरीबों की सहायता इत्यादि की व्यवस्था करना होगा। इसे कर लगाने का अधिकार दिया गया। प्रान्तों के राज्यपालों को जेम्स्टवोस के निर्णयों को रद्द करने का अधिकार दिया गया। यद्यपि इन सभाओं का कार्य-क्षेत्र और अधिकार सीमित थे, ये सभाएँ जनता के लिए राजनीतिक शिक्षा प्राप्त करने के स्थान थे। यह स्वायत्त शासन और सत्ता के विकेन्द्रीकरण की दशा में महत्त्वपूर्ण कदम था।

पोलैण्ड का विद्रोह (१८६३) (Polish Revolt of 1863)—१८६३ में ज़ार की सुधार नीति को बड़ा धक्का पहुँचा। इस वर्ष पोलैण्ड की जनता ने रूस के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उन्हें नेपोलियन तृतीय तथा यूरोप के अन्य देशों से सहायता की आशा थी। किसी भी देश से सहायता न मिलने तथा अपने साधन पर्याप्त न होने के कारण उनके विद्रोह का बड़ी कठोरता से दमन कर दिया गया। बिस्मार्क ने रूस को सहायता देने के लिए कहा किन्तु उसने अपना काम बिना किसी की सहायता के ही कर लिया था। विद्रोहियों तथा सन्देहास्पद व्यक्तियों को बड़े कठोर दण्ड दिए गए। स्कूलों और विश्वविद्यालयों में पोलिश भाषा की शिक्षा बन्द कर दी गई। पोलैण्ड के अधिकारियों को पदच्युत करके रूसी अधिकारी नियुक्त कर दिए गए। पोलैण्ड निवासियों को सारे अधिकारों से वंचित कर दिया गया। पोलैण्ड का रोमन कैथोलिक चर्च, जो देशवासियों की धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता था, उससे सारी सुविधाएँ छीन ली गईं। विद्रोही जागीरदारों को बुरी तरह कुचल दिया गया। पोलैण्ड के विद्रोह ने एलेग्ज़ेण्डर द्वितीय को पूरी तरह प्रतिक्रियावादी बना दिया और वह जीवन भर कट्टर बना रहा। समाचारपत्रों पर कड़ा प्रतिबन्ध लगा दिया गया। गुप्तचर पुलिस की संख्या बढ़ा दी गई और शिक्षा को हतोत्साहित किया जाने लगा।

पोलैण्ड के विद्रोह के ध्वंसावशेषों पर बिस्मार्क के महान् कार्य के भवन तथा ज़ार के साम्राज्य में रूसीकरण के कार्य का निर्माण हुआ। इसका आशय यह था कि पोलैण्ड के विद्रोह के कारण बिस्मार्क रूस को अपना सहयोगी बना सका था। यह उसने रूस को पोलैण्ड के विरुद्ध सहायता देकर किया था। इस उपयुक्त अवसर पर सहायता देकर बिस्मार्क १८६६ और १८७० में क्रमशः आस्ट्रिया और फ्रांस के विरुद्ध युद्धों के मौकों पर रूस के तटस्थ रहने पर विश्वास कर सकता था। पोलैण्ड के विद्रोह ने ज़ार को सुधारवाद का कट्टर शत्रु बना दिया था। वह केवल प्रतिक्रियावादी ही नहीं बना अपितु उसने रूसी साम्राज्य में अल्पमत जातियों में रूसीकरण की नीति का पालन करना आरम्भ कर दिया था। इस नीति का लक्ष्य प्रजा की

राष्ट्रीयता की भावना को कुचल देना तथा उन्हें रूस में आत्मसात् कर लेना था।

विदेश नीति (Foreign Policy) रूस की विदेश नीति क्रीमिया युद्ध के समय तक बताई जा चुकी है। १८६५ में एलेग्जेण्डर ने क्रीट के ग्रीकों को तुर्की के विरुद्ध विद्रोह करके ग्रीस के एकीकरण की माँग करने को कहा था। १८७० में उसने वलगार जाति को कुस्तुनतुनिया के प्राचीन चर्च से पृथक् एक स्वतंत्र राष्ट्रीय प्राचीन चर्च की स्थापना करने के लिए उकसाया था। १८७० में एलेग्ज़ेण्डर द्वितीय पेरिस सन्धि की कालासागर सम्बन्धी धाराओं को भंग करने में समर्थ हुआ। उसने सेबेस्टोपोल (Sebastöpol) की मोर्चेबन्दी करके कालासागर में अपना बेड़ा खड़ा कर दिया था।

बलकान प्रदेश के ईसाइयों पर तुर्की का राज्य बड़ा दमनपूर्ण था। इसके कारण बोसनिया और हर्जीगोविना में विद्रोह हुए थे। १८७५ में वलगेरिया में विद्रोह हुआ। इन विद्रोहों को इतनी कठोरता और अत्याचार से दबाया गया कि चारों ओर से यह माँग होने लगी कि बलकान से तुर्की को आमूल उखाड़ कर फेंक दिया जाए। यद्यपि ब्रिटेन ने वलकान में क्रिस्टेनज़ की सहायता नहीं की थी तथापि रूस ने उनकी सहायता की थी और इसके कारण १८७७-७८ में रूस और तुर्की में युद्ध छिड़ गया। थोड़े समय मुकाबला करने के बाद तुर्की हार गया और उसे रूस से १८७८ में सान स्टीफैनो (San Stefano) की सन्धि करनी पड़ी। विशाल बलगेरिया का निर्माण हुआ। सुलतान को बोसनिया और हर्जीगोविना में सुधार करने पड़े। ज़ार को विशाल युद्ध-क्षतिपूर्ति के साथ आर्मीनिया (Armenia) का थोड़ा-सा भाग तथा डोब्रूजा (Dobrudja) का भाग भी मिला।

सान स्टीफैनो की सन्धि को अन्य यूरोपीय शक्तियों ने नहीं माना। ब्रिटेन और आस्ट्रिया तो रूस से युद्ध करने पर उतारू हो गए और कहा कि इस सन्धि को यूरोपीय शक्तियों के एक सम्मेलन के विचारार्थ रखा जाए। रूस युद्ध से त्रस्त था इसलिए मान गया। परिणामतः बर्लिन सन्धि के अनुसार बलगेरिया को दो भागों में बाँट दिया दिया गया और रूस को उसके द्वारा प्राप्त सारे लाभों से वंचित कर दिया गया।

रूस के उदारवादियों ने एलेग्ज़ेण्डर (Alexander) द्वितीय की नीति का समर्थन नहीं किया और देश भर में इसके विरुद्ध प्रचार करते रहे। परिणामतः अनेक गुप्त राजनैतिक दल बन गए। देश के उद्योगीकरण के कारण भी देश में बहुत असंतोष फैला। इसका परिणाम यह हुआ कि क्रान्तिकारियों द्वारा फैंके गए एक बम से १८८१ में एलेग्ज़ेण्डर की मृत्यु हो गई।

Suggested Readings

Beazley : *Russia from the Varangians to the Bolsheviks.*
Rose : *Development of European Nations.*
Skrine : *Expansion of Russia.*
Wallace : *Russia.*

अध्याय १६

पूर्व का प्रश्न

(The Eastern Question)

मिल्लर के मतानुसार, पूर्व के प्रश्न की परिभाषा यूरोप में तुर्की के साम्राज्य के लुप्त हो जाने के कारण उत्पन्न हुए शून्य की पूर्ति की समस्या कहा जा सकता है। जब तुर्क अपनी सत्ता के चरम शिखर पर थे, वे बलकान, एशिया माइनर, सीरिया, मैसोपोटामिया, अरब, मिश्र और अफ्रीका के लगभग सारे उत्तरी समुद्री तट पर शासन करते थे। किन्तु तुर्की साम्राज्य का शनैः-शनैः पतन होने लगा। १६६६ की कार्लोविट्ज़ की सन्धि को ठीक ही ओटोमान साम्राज्य का प्रथम अंग-भंग कहा जाता है। यह इतिहास के उस क्रम का प्रथम चरण था जो दो शताब्दियों से भी अधिक काल तक चलता रहा। यह सत्य है कि कुछ अवसरों पर तुर्कों को कुछ अस्थायी रूप से लाभ हुआ किन्तु वास्तविक रूप से छिन्न-भिन्न होने का क्रम निरन्तर चलता रहा और अन्त में बलकान और उत्तरी अफ्रीका से ओटोमान साम्राज्य पूर्णतः समाप्त हो गया। जहाँ तक बलकान राज्यों का सम्बन्ध है वहाँ बहुत-सी ईसाई जातियाँ थीं यथा, सर्ब, बल्गारियन, ग्रीक और रूमानियन इत्यादि। तुर्की का शासन बड़ा अत्याचारी था और कभी-कभी ईसाइयों की सामूहिक हत्याएँ कर दी जाती थीं। शासित जातियों को तुर्की की सैन्य-शक्ति के ह्रास तथा कुछ राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत होने के कारण अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने का प्रोत्साहन मिला। रूस उनका सहायक था और कभी-कभी अन्य शक्तियों से, यथा, फ्रांस और इंग्लैण्ड से, भी सहायता मिलती रहती थी। लार्ड मार्ले ने पूर्व के प्रश्न को एक अस्थिर तथा बुरी तरह विरोधी स्वार्थों का उलझा हुआ गोरखधन्धा बताया है, जिसमें वैमनस्य रखने वाले धार्मिक विश्वास और ईर्ष्या करने वाली जातियाँ उलझी हुई थीं। यह प्रश्न उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक बार प्रकाश में आया और इन अवसरों को पूर्व के प्रश्न के विभिन्न पहलू कहा जा सकता है।

ओटोमान साम्राज्य के पतन का इतिहास १६६६ में आस्ट्रिया द्वारा हंगरी को हथिया लेने के समय से आरम्भ होता है।

सर्विया (Serbia)— सर्ब जाति ने तुर्की के शासन के विरुद्ध विद्रोह का झंडा ऊँचा उठाया। उन्होंने काराजार्ज नाम के जन्म से किसान व्यक्ति के नेतृत्व में १८०४ में अपना संघर्ष आरम्भ किया। रूस ने १८१२ तक इस आन्दोलन का समर्थन किया था। किन्तु नेपोलियन द्वारा रूस पर आक्रमण कर देने के कारण ज़ार को

तुर्की से १८१२ में सन्धि करनी पड़ी थी। तुर्कों ने अवसर से लाभ उठाकर पुनः सर्बिया पर अपना अधिकार जमा लिया। किन्तु मिलोश ओब्रेनोविच के नेतृत्व में पुनः विद्रोह हुआ और सुलतान ने १८२० में ओब्रेनोविच को सर्बिया की जनता का शिरोमणि मान लिया। ओब्रेनोविच ने रूस की सहायता से सर्बिया की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष चालू रखा। १८३० के आरम्भ होने तक सर्बिया और तुर्की के संबंध केवल नाममात्र के रह गए थे। सर्बिया पर ओब्रेनोविच वंश के सामन्त वंशक्रमानुगत परिपाटी के अनुसार शासन करते रहे।

ग्रीक स्वातन्त्र्य युद्ध (Greek War of Independence)—इसके पश्चात्

तुर्की के विरुद्ध विद्रोह का झंडा उठाने वाले ग्रीक थे। उन पर बहुत भारी कर लगाए गए और अन्य प्रकार से भी उन पर बड़ा अत्याचार होता था। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में और उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ग्रीक जाति में राष्ट्रीयता की भावना पुनः जाग्रत हुई। प्राचीन ग्रीक साहित्य का उत्थान हुआ और प्राचीन साहित्यिक ग्रीक भाषा को, जनसाधारण द्वारा बोली जाने वाली अपभ्रंश भाषा के स्थान पर पुनः प्रयोग पर लाने का प्रयत्न किया गया। पूर्व पुरुषों के प्राचीन यश ने उन्हें प्रोत्साहन और आशा की प्रेरणा दी तथा उनमें स्वतन्त्रता प्राप्त करने की उग्र भावना को उत्पन्न किया। १८१४ में ओडिस्सा के ग्रीकों ने 'हिटेरिया फिलाइक' (Hetairia Philike) नाम की एक गुप्त संस्था बनाई। इसका उद्देश्य ग्रीस से तुर्कों को निकाल कर देश की स्वतन्त्रता की स्थापना करना था। कालान्तर में यह संस्था जनप्रिय तथा शक्तिशाली बन गई।

राजकुमार एलेग्जेण्डर हेपसीलान्टे (Alexander Hypsilanti) के नेतृत्व में १८२१ में ग्रीकों ने विद्रोह किया। एलेग्ज़ेण्डर बड़ी कठिनाई में फँस गया था। ग्रीक चर्च के संरक्षक, दलित जातियों के समर्थक तथा तुर्की के शत्रुओं का वंशानुगत शत्रु होने के नाते उसका ग्रीकों की ओर से हस्तक्षेप करना स्वाभाविक था। दूसरी ओर एलेग्जेण्डर संसार भर के क्रान्तिकारी सिद्धान्तों का घोर शत्रु था। इसी समय रूस का भी तुर्की से झगड़ा था और वह अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए ग्रीकों के विद्रोह से लाभ उठाना चाहता था किन्तु ज़ार के रुख का निर्णय मेटरनिक ने किया क्योंकि उसका ज़ार पर पूरा नियन्त्रण था। मेटरनिक का निजी रुख यह था कि सभ्यता के उषाकाल से पहले ही इस विद्रोह की अग्नि को जलकर स्वयं ही राख हो जाने दिया जाए। ज़ार ने हेपसीलान्टे के प्रति कोई सहानुभूति नहीं दिखाई और उसे तुरन्त रूस लौट आने की आज्ञा दे दी। उसने विद्रोहियों को आज्ञा दी कि वे सलतान के आगे आत्मसमर्पण कर दें अन्यथा उन्हें उसका कोपभाजन बनना पड़ेगा। ज़ार के व्यवहार ने हेपसीलान्टे के भाग्य का निर्णय कर दिया। वह पराजित हुआ और सारा जीवन उसे बन्दीगृह में ही बिताना पड़ा।

१८२१ में भी ग्रीकों ने मोरिया (Morea) में विद्रोह किया था। कुस्तुनतुनिया के प्रमुख पादरी की और ग्रीक ईसाइयों की हत्या हो जाने के कारण रूस उत्तेजित था। डर था कि वह तुर्की पर एकदम आक्रमण कर देगा। इंग्लैण्ड और आस्ट्रिया ने तुर्की में रूस के हस्तक्षेप का बचाव कर दिया। कुछ समय तक कैनिंग और मेटरनिक सिद्धान्त रूप में सहमत रहे। ग्रीकों और तुर्कों का परस्पर संघर्ष किसी अन्य देश से सम्बन्धित नहीं था इसलिए महान शक्तियों का यह कर्त्तव्य था कि वे इस मैदान में किसी अन्य शक्ति को न आने दें और हस्तक्षेप न करने दें। कैनिंग का विचार था कि यदि रूस को ग्रीस में हस्तक्षेप करने दिया गया तो "ग्रीस उसका प्रथम ग्रास और दूसरा ग्रास तुर्की होगा।" १८२० से १८२५ की अवधि में यही स्थिति बनी रही। ग्रीक और तुर्क दोनों ही निर्दयता में समान थे। कैसलरे और कैनिंग, दोनों का ग्रीकों के प्रति मित्र भाव था और उनका उद्देश्य था कि

किसी प्रकार तुर्की ग्रीकों से सुलह कर ले जिससे कि ज़ार इस कठिन समय में अपना स्वार्थ पूरा न कर सके। कहा जाता है कि मोरिया युद्ध मुलतः सर्वनाश का युद्ध था। ग्रीकों का नारा था, "तुर्की को अब मोरिया अथवा सारी पृथ्वी पर जीवित नहीं रहना चाहिए।" थिस्साले मेसिडोनिया, एशिया माइनर और चिप्रोस में ईसाइयों की सामूहिक हत्याएँ की गई थीं। एक बार ज़ार ने तुर्की को चुनौती भी दी थी और ऐसा प्रतीत होता था कि युद्ध अवश्यम्भावी है।

किन्तु ग्रीक-स्वातन्त्र्य-युद्ध में एक भारी परिवर्तन आया। तुर्की के सुलतान ने मिश्र के पाशा मेहमतअली से सहायता माँगी। मेहमतअली ने एक विशाल स्थल सेना तथा समुद्री बेड़ा अपने पुत्र इब्राहीम के नेतृत्व में भेज दिया। १८२५ में इब्राहीम ने क्रीट को विजय करके नष्ट कर दिया और १८२५ में मोरिया में आकर उतरा। इब्राहीम चारों ओर विनाश और हत्याएँ करता हुआ मोरिया के मार्ग से होता हुआ आगे बढ़ा। इस युद्ध में लार्ड बायरन की भी मृत्यु हुई।

रूस में भी स्थिति बदल गई। ज़ार एलेग्ज़ेण्डर, जो पूर्णतः मेटरनिक के नियन्त्रण मे था, १८२५ में मर गया। उसका उत्तराधिकारी निकलस प्रथम एक बिलकुल भिन्न विचारधारा और शिक्षा वाला व्यक्ति था। वह मेटरनिक के प्रभाव मे नहीं था इसलिए स्वतन्त्र नीति का अनुसरण करने में पूर्णतः स्वतन्त्र था। कहा जाता है कि यद्यपि वह ग्रीकों की विशेष परवाह नहीं करता था किन्तु वह सुलतान को रूस के साथ मनचाहा उद्दण्ड व्यवहार करने देने के लिए भी तैयार नहीं था।

इस अवसर पर इंग्लैण्ड के विदेश मन्त्री कैनिंग ने ड्यूक ऑफ वेलिंगटन को एक विशेष राजदूत के रूप में पीटर्सबर्ग भेजा। अप्रैल, १८२६ में ब्रिटेन और रूस में एक समझौता हुआ और दोनों देशों ने तुर्की को अपनी संयुक्त मध्यस्थता का प्रस्ताव भेजा। इसके अनुसार यह योजना बनाई गई कि ग्रीस तुर्की का कर देगा किन्तु वास्तविक रूप से स्वतन्त्र रहेगा।

ज़ार निकलस ने सुलतान को चुनौती भेजी और सुलतान ने एक प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करके ज़ार को भेज दिया। सुलतान ने जागीरों को छोड़ने, सर्विया को कुछ विशेष छूटें देने तथा हर मामले में ज़ार की इच्छानुसार कार्य करने की प्रतिज्ञा की। किन्तु इसमें ग्रीस की कोई चर्चा नहीं थी। सुलतान इस विषय में इस शर्त पर पंचफैसले के लिए तैयार हुआ कि उसके साथ शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाएगा। जुलाई, १८२७ में ब्रिटेन, फ्रांस और रूस में लन्दनस-न्धि हुई। तीनों देश इस बात पर सहमत हुए कि यदि तुर्की युद्ध को बन्द करने के लिए तैयार न हो तो शक्ति का प्रयोग किया जाए। ग्रीकों का रक्षात्मक युद्ध दुर्बल होता जा रहा था और १८२७ में एथेन्स के पतन के पश्चात् उनकी पराजय की पूरी आशंका हो गई थी। यह भी अफवाह थी कि इब्राहीम युद्ध में पकड़े गए सारे ग्रीकों को दास बनाकर एशिया या अफ्रीका में भेज देगा। अगस्त, १८२७ में ग्रीस ने तीनों शक्तियों की मध्यस्थता स्वीकार की थी। तुर्की अपने को सशक्त समझता था अतः उसने इसे स्वीकार नहीं किया।

जलसेना के सेनापति कार्डिंगटन को आदेश दिया गया कि वह "ग्रीकों के विरुद्ध सेना अथवा शस्त्र ले जाने वाले सारे जहाज़ों को बिना युद्ध किए ही मार्ग में ही रोक ले।" ब्रिटेन और फ्रांस के जलसेना के सेनापतियों ने इब्राहीम को सूचना दी कि उसके एक भी जहाज़ को नवारिनो की बन्दरगाह के मार्ग से नहीं जाने दिया जाएगा। "इब्राहीम ने क्रोध में भरकर मोरिया के बचे हुए भाग्यहीन नागरिकों की हत्या करने का प्रयत्न किया। सेनापतियों ने इब्राहीम को विरोध-पत्र भेजा और उत्तर में तुर्कों ने ब्रिटिश बेड़े पर गोलाबारी आरम्भ कर दी। नवारिनो की लड़ाई २० अक्टूबर, १८२७ को आरम्भ हुई। सूर्यास्त से पहले तुर्की और मिश्र के सारे जहाज़ लुप्त हो गए और नवारिनो की खाड़ी उनके खण्डों से भर गई थी।" नवारिनो की लड़ाई इस युद्ध की सबसे अधिक निर्णायक लड़ाई थी और इसका अन्तिम परिणाम ग्रीकों की स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेना था। किन्तु नवारिनो के विजेताओं को उनकी सफलता का कोई श्रेय नहीं मिला। कैनिंग की अगस्त, १८२७ में ही मृत्यु हो गई थी और उसके उत्तराधिकारी वेलिंगटन ने इस अप्रत्याशित घटना के लिए खेद प्रगट किया था।

ब्रिटेन ने युद्ध छोड़ दिया और फ्रांस ने भी उसका अनुसरण किया। तुर्की बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने ग्रीकों से अपने तरीकों से निपटने का निर्णय किया। इन परिस्थितियों में ज़ार का तुर्की के विरुद्ध की गई घोषणा करना आश्चर्यजनक कार्य नहीं था। ज़ार ने प्रुथ (Pruth) पार करके डारडेनीलिस पर अधिकार कर लिया। रूस का जहाज़ी बेड़ा भी डारडेनीलिस में घुस आया। रूस के इस कार्य से कैसलरे और कैनिंग के प्रयत्न विफल होते प्रतीत हो रहे थे क्योंकि इन्होंने बलकान में रूस के प्रभाव को रोकने का भरसक प्रयत्न किया था। एक ओर ग्रीक तुर्की की दया पर थे और दूसरी ओर ज़ार से तुर्की की स्वतन्त्रता को खतरा उत्पन्न हो गया था। रूस का कड़ा प्रतिरोध हुआ किन्तु वे रूस से जीत नहीं सकते थे। सितम्बर, १८२९ में रूस और तुर्की की सन्धि हो गई।

इंग्लैण्ड और फ्रांस मेहमतअली और इब्राहीम से परामर्श करके उनकी सेनाएँ मोरिया से हटाने में सफल हुए। तुर्की की सेना के चले जाने के पश्चात् फ्रांस ने वहाँ के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। लन्दन में हुए समझौते के अनुसार मोरिया और ग्रीस को अन्य शक्तियों के संरक्षण में रख दिया गया। निर्णय हुआ कि ग्रीस को स्वशासित बना दिया जाए किन्तु उसे शक्तियों द्वारा निर्वाचित किसी राजा का कर-दाता राज्य बनना पड़ेगा। नए राज्यों की सीमाओं की व्याख्या भी कर दी गई। यह व्यवस्था १८२९ की एण्ड्रोपली की सन्धि द्वारा स्थायी बना दी गई। इस प्रकार ग्रीस की स्वतन्त्रता को मान्यता दी गई।

फ्रांस और इंग्लैण्ड को भय था कि ग्रीस रूस का अधिकृत राज्य बन जाएगा। इसलिए वेलिंगटन ने इसको दो टुकड़ों में विभाजित कर देना चाहा जिससे यह अत्यन्त छोटा और शक्तिहीन रहे। एबरडीन ने इनसे भी आगे बढ़ कर ग्रीस को तीन टुकड़ों में विभाजित करने का प्रस्ताव किया था। किन्तु वेलिंगटन और एबरडीन को पदच्युत

कर दिया गया और इनके उत्तराधिकारी पामर्स्टन और ग्रे ने इनसे भिन्न नीति का अनुसरण किया। १८३२ में ग्रीस की सीमाएँ बढ़ा दी गईं। ग्रीस को स्वतन्त्र घोषित कर दिया गया तथा उसे ऋण देने का और राजा चुनने का आश्वासन भी दिया गया। रूस, इंग्लैण्ड और फ्रांस ने ग्रीस की स्वतन्त्रता को मान्यता दी। ग्रीस रूस के प्रभाव से मुक्त हो गया।

यह ध्यान रखने योग्य है कि ग्रीकों के प्रयत्नों के प्रति फ्रांस में बहुत सहानुभूति थी और फ्रांस की जनता ने उनकी बहुत कुछ सहायता भी की थी। आस्ट्रिया में मेटरनिक का विचार था कि ग्रीक विद्रोही हैं और इसलिए उन्हें उनके भाग्य पर छोड़ देना चाहिए। ग्रीकों का विरोध एक रोग है। आस्ट्रिया को इसकी छूत से बचे रहना चाहिए। यद्यपि मेटरनिक ने आरम्भ में रूस को रोक लिया किन्तु रूस ने अपना कार्य पूरा किया और १८२८ के पश्चात् वह अकेला ही लड़ता रहा। प्रशिया ने आस्ट्रिया का अनुगमन किया था। इंग्लैण्ड की ग्रीकों के उद्देश्य से पूरी सहानुभूति थी। ग्रीकों को यूरोपीय सभ्यता का जन्मदाता माना जाता था और उन्हें यथासम्भव सहायता भी दी गई थी। स्वयं कैनिंग एक ग्रीक विद्वान् था। फिशर के मतानुसार "उस समय इंग्लैण्ड के उच्चवर्गीय नागरिकों में कोई भावना नहीं थी। वे इंग्लिश राष्ट्रीयता का उपभोग करते थे। उन्होंने आयरलैण्ड की राष्ट्रीयता की भावना का दमन कर दिया था, भारतीय राष्ट्रवाद उस समय एक दूर भविष्य की बात थी। शिक्षा ने उन्हें साक्षर बना दिया था, सामाजिक जीवन ने उन्हें संसदीय प्रणाली का विद्वान् बना दिया था, इसलिए एक छोटी-सी जाति के स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष के प्रति उनकी सहानुभूति एक मनोरंजन से अधिक कुछ नहीं थी। जब मिस्सोलोंघी में लार्ड बायरन की मृत्यु ग्रीस की सहायता करते समय हुई, तो ग्रीस के प्रति इंग्लैण्ड के नागरिकों में एक सहानुभूति का ज्वार आ गया और यह भावना जनसाधारण में फैल गई। ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज के विश्वविद्यालयों में युवकों को जिस प्राचीन ग्रीस की वीरता के विषय में बताया जाता था और जिसका वे लोग अत्यन्त भक्ति से अध्ययन करते थे, उसके विषय में कोई भी यह नहीं पूछता था कि अब उस यश का कितना अंश ग्रीस के ग्वालों, दुस्साहसी व्यक्तियों तथा इसके समुद्री लुटेरों में शेष रह गया है। ग्रीस का नाममात्र ही पवित्र बन गया था। यद्यपि तुर्की अभी भी औपचारिक रूप से भिन्न था और पूर्व में रूस की चालों के लिए एक रोक का कार्य करता था तथापि इंग्लैण्ड की साधारण जनता जार्ज कैनिंग की समर्थक थी, जब उसने ग्रीक विद्रोहियों को देशभक्त मानकर, फ्रांस और रूस से सहयोग करके इसे सर्वनाश से बचाने का प्रयत्न किया था।"

मेहमतअली और पोर्टे (Mehmet Ali and Porte)—महमतअली अल्बानिया का एक दुस्साहसी निवासी था। यह अपने प्रयत्नों से उन्नति करके मिस्र का राज्यपाल बन गया था। यद्यपि वह असभ्य और अशिक्षित था तो भी उसे पाश्चात्य सभ्यता के गुणों की परख थी। यद्यपि वह नाममात्र को पोर्टे के प्रति स्वामि-भक्ति रखता था, तो भी उसने फ्रांसीसी विशेषज्ञों को नियुक्त करके मिस्र को एक समृद्धिशाली तथा शक्तिशाली राज्य बना दिया था। १८२४ से १८२७ तक

मेहमतअली की मिस्री सेना ने लगभग सारे ग्रीस पर पुनः विजय प्राप्त कर ली थी। रूस, ब्रिटेन और फ्रांस के हस्तक्षेप के बिना ग्रीस सर्वदा के लिए पूर्णतः नष्ट हो गया होता। ग्रीस के स्वातन्त्र्य-युद्ध के पश्चात् तुर्की ने उसकी सहायता के बदले पुरस्कार रूप में क्रीट का द्वीप मेहमतअली को दे दिया। उसने इस पुरस्कार को अपर्याप्त समझा। वह तुर्की की कमज़ोरियों से भी परिचित हो चुका था। अतः उसका विचार पोर्टे के आधिपत्य से स्वतन्त्र हो जाने का हुआ और वह इसके लिए उचित बहाने की खोज करने लगा। १८३२ में उसके पुत्र इब्राहीम ने सीरिया पर आक्रमण किया और वहाँ से एशिया माइनर की ओर बढ़ने लगा। तुर्की हार गया और आक्रान्ता के लिए कुस्तुनतुनिया का मार्ग खुल गया।

सुलतान महमूद द्वितीय ने यूरोपीय शक्तियों से सहायता की याचना की। उसने ब्रिटेन से अपील की किन्तु वह उस समय बेल्जियम के झगड़े मे व्यस्त था। उसने फ्रांस से अपील की किन्तु वहाँ जनमत मेहमतअली के प्रति सहानुभूति रखता था। हताश होकर सुलतान को रूसी सहायता का प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा। सुलतान ने आरम्भ में घोषणा की थी कि जो भी उसे मेहमतअली का सिर काट-कर ला देगा वह उसे कुस्तुनतुनिया और अपना साम्राज्य दे देगा, किन्तु अब रूस की सहायता लेने के पश्चात् उसे अनुभव हुआ कि उसे वास्तव में अपना वचन पूरा करना पड़ेगा। रूस की सरकार तुरन्त ही सहायता के लिए तैयार हो गई। रूस का जहाज़ी बेड़ा बासफोरस पहुँच गया और रूस की सेना ने एशिया के तट पर पड़ाव डाल दिया। कुस्तुनतुनिया के निकट एक स्थान पर रूस के पाँच हज़ार सैनिकों ने छावनी डाल दी।

मेहमतअली के झगड़े के आरम्भ होने के क्षण से ही फ्रांस को रूस के हस्त-क्षेप का डर हो गया था। फ्रांस को मेहमतअली से विशेष लगाव था और वह उसे अपना समझता था। फ्रांस की सरकार ने मेहमतअली को युद्ध करने से रोका था। युद्ध आरम्भ हो जाने पर फ्रांस ने एक शिष्ट-मण्डल इस दृष्टि से कुस्तुनतुनिया भेजा कि वह रूस को इस मामले में हस्तक्षेप करने से रोके। किन्तु फ्रांस सफल नहीं हुआ। ब्रिटेन और आस्ट्रिया सफल हुए थे। उन्होंने सुलतान को मना लिया कि वह सीरिया और अदन मेहतअली को दे दे (१८३३)। इस प्रकार 'मिश्र के झगड़े' की समाप्ति हुई और रूस पीछे हट गया।

अंक्यार स्कैलेसी की सन्धि (Treaty of Unkiar Skelessi)—रूस ने पीछे हटने से पहले तुर्की से एक सन्धि की थी। १८३३ की रूस और तुर्की की सन्धि एक सुरक्षात्मक सन्धि थी। यह सन्धि आठ वर्ष के लिए की गई थी। रूस ने तुर्की को संकट काल में सहायता देने का वचन दिया। इस सन्धि में यह व्यवस्था भी की गई थी कि यदि रूस का अन्य किसी यूरोपीय शक्ति से युद्ध हो जाए तो तुर्की डार-डेनैलिस (Dardanelles) की बन्दरगाह को बन्द करके काला सागर की ओर से रूस को सुरक्षित कर देगा। रूस का जहाज़ी बेड़ा डारडेनैलिस के मार्ग से अन्धमहा-सागर में जाने तथा अपनी इच्छानुसार सुरक्षित स्थान पर पहुँचने के लिए स्वतन्त्र

होगा। इस व्यवस्था का आशय रूस द्वारा तुर्की की विदेश नीति पर नियन्त्रण रखना था। इससे तुर्की एक प्रकार का संरक्षित देश बन गया। निकलस ने विजय और विभाजन की नीति छोड़ कर घुसपैठ और नियन्त्रण की नीति अपनाई थी।

अंक्यार स्कैलेसी की सन्धि-व्यवस्था को इंग्लैण्ड और फ्रांस सहन नहीं कर सकते थे। ज़ार ने किसी प्रकार आस्ट्रिया और प्रशिया की सहमति प्राप्त कर ली थी। यद्यपि ज़ार ने मेटरनिक को आश्वासन दिया थ कि वह आस्ट्रिया की मध्यस्थता को स्वीकार किए बिना सन्धि की व्यवस्था का प्रयोग नहीं करेगा तथापि यह सन्धि यूरोप के लिए खतरा बनी रही। कई महीनों तक युद्ध का वातावरण छाया रहा। ब्रिटेन भी रूस से उतना ही पीड़ित था जितना तुर्की, क्योंकि पोर्टे द्वारा रूसी बेड़े को मार्ग देना १८०६ की तुर्की-इंग्लैण्ड की सन्धि के विरुद्ध था। पामर्स्टन ने सन्धि के विरुद्ध एक औपचारिक विरोध-पत्र भेजा था। इंग्लैण्ड का जनमत इस विषय पर अत्यन्त उत्तेजित था। यदि इंग्लैण्ड की सरकार ने कडी कार्यवाही की होती तो उसे पर्याप्त समर्थन भी मिल जाता। किन्तु पामर्स्टन ने बड़ी सावधानी से कार्य किया।

इस सावधानी का मुख्य कारण यह था कि पामर्स्टन को फ्रांस की सरकार के रुख के विषय में विश्वास नहीं था। फ्रांस ने तुर्की में रूस का विरोध करने के प्रश्न पर इंग्लैण्ड से भले ही सहयोग कर लिया होता किन्तु स्पेन के विषय में वह इंग्लैण्ड का विरोधी था इसलिए इंग्लैण्ड को अविश्वास था। १८३४ में पामर्स्टन ने स्पेन और पुर्तगाल की सरकारों से सन्धि की और फ्रांस भी इस सन्धि में सम्मिलित हो गया। यह चतर्मुखी सन्धि २२ अप्रैल. १८३४ को हुई। यह एक बड़ी कूटनीतिक सफलता थी। पामर्स्टन ने इसे 'अपने सारे कार्यों में सबसे अधिक श्रेष्ठ कार्य' कहा था। इस प्रसिद्ध सन्धि ने पामर्स्टन का थोड़ा सा संकोच भी समाप्त कर दिया और अब वह तुर्की और रूस के प्रश्न को दृढ़ता से सुलझा सकता था। दुर्भाग्य से मेलबोर्न मन्त्रिमण्डल जिसका पामर्स्टन सदस्य था, नवम्बर, १८३४ में समाप्त हो गया किन्तु ड्यूक ऑफ वेलिंगटन ने उसकी नीति का अनुसरण किया। १८३५ में पामर्स्टन पुनः पदासीन हुआ। उसका विचार था कि युद्ध में रूस सरलता से हराया जा सकेगा। उसने टेम्पल को लिखा था, "तथ्य यह है कि रूस धोखेबाज है। यदि इंग्लैण्ड ने रूस से युद्ध किया तो हम युद्ध में रूस को पचास वर्ष पीछे धकेल देंगे।" किन्तु वास्तव में युद्ध का इच्छुक कोई भी नहीं था। रूस ने कुस्तुनतुनिया में अपना प्रभाव नहीं जमाया, शान्ति बनी रही और चार वर्ष के लिए युद्ध टल गया।

१८३६ में फ्रांस के मन्त्रिमण्डल में परिवर्तन हुआ। थीयर्स प्रधान मन्त्री बना। यद्यपि पोर्टे के विचार से थीयर्स इंग्लैण्ड के प्रति मैत्री-भाव रखता था किन्तु उसका चुनाव केन्द्रीय शक्तियों की ओर अधिक था। ड्यूक ऑफ ओरलीन्स का आस्ट्रिया की राजकुमारी से विवाह करने का प्रस्ताव हुआ। थीयर्स को उसकी उग्र नीति के कारण लुई फिलिप ने पदच्युत करके उसके स्थान पर मोले को नियुक्त कर दिया।

इस अवधि में सुलतान और मेहतअली अन्तिम संघर्ष के लिए तैयारियाँ कर रहे थे। महमूद द्वितीय अपनी सेना को पश्चिम की प्रणाली पर संगठित कर रहा था। मोल्टके उसका सलाहकार था।

मिस्र में भी व्यवस्था ठीक नहीं थी। १८३७ में सीरिया ने अपनी शक्ति को संगठित करना आरम्भ कर दिया था। १८३८ में उसने ब्रिटिश राजदूत को बताया कि वह स्वतन्त्र होने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ था। पामर्स्टन को इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसे पूरी तरह मालूम था कि तुर्की पराजित होगा सौर १८३३ की अंक्यार-स्कैलैसी सन्धि के कारण रूस इसमें हस्तक्षेप करेगा। फ्रांस द्वारा मेहमत अली की सहायता करने की भी सम्भावना थी। पामर्स्टन की नीति के तीन उद्देश्य थे, अर्थात् मेहमत अली द्वारा तुर्की साम्राज्य को नष्ट होने से रोकना, अंक्यार-स्कैलैसी की सन्धि को निष्क्रिय कर देना और फ्रांस और रूस के संगठन को न होने देना। पामर्स्टन ने इस जटिल स्थिति को एक कुशल कूटनीतिज्ञ की तरह संभाला। तुर्की और मिस्र की सेनाएँ एक-दूसरे के सामने युद्ध-सामग्री से सुसज्जित होकर तैयार खड़ी थीं।

कुछ अन्य तत्त्व ऐसे भी थे जिनके कारण शान्ति बनी रही। पाँच महान् शक्तियाँ युद्ध नहीं करना चाहती थीं। उन्होंने दोनों पक्षों को शान्ति से समझौता करने का परामर्श दिया, किन्तु दोनों ही पक्ष समझौते के लिए तैयार नहीं थे। अतः जून, १८३९ में युद्ध आरम्भ हो गया। कुछ ही दिनों में महमूद की सेनाएँ हार गईं और वह मारा गया। तुर्की का सेनापति अपने जहाज़ी बेड़े के साथ एलग्ज़ेण्ड्रिया में मेहमतअली के साथ जाकर मिल गया। तीन सप्ताह में तुर्की अपने सुलतान, स्थल सेना और ज़हाजी बेड़े से वंचित हो गया।

सुलतान की मृत्यु और निसिवि की लड़ाई से पामर्स्टन की धारणा दृढ़ हो गई कि उसे अब कड़ा कदम उठाना चाहिए। उसका विश्वास था कि इस मामले में इंग्लैण्ड और फ्रांस का सहयोग बना रहेगा। उसने ब्रिटिश जलसेना को मेहमत अली पर दबाव डालने के लिए आज्ञा देने का विचार किया। फ्रांस ने मेहमत अली के प्रति मैत्रीभाव रखने के कारण सहयोग देने से इन्कार कर दिया। मेहमत अली द्वारा सुलतान से स्वेच्छानुसार अपनी माँगें पूरी करा लेने की संभावना थी। इस स्थिति से बचने के लिए अन्य शक्तियों ने पोर्टे को परामर्श दिया कि वह मेहमत अली से कोई समझौता न करे।

पामर्स्टन को मेहमत अली पर दबाव डालने में फ्रांस का सहयोग नहीं मिला इसलिए उसने फ्रांस से सम्बन्ध तोड़कर, इस मामले को पांच शक्तियों के सम्मेलन के सामने विचारार्थ रखने का निर्णय किया। इस सम्मेलन का उद्देश्य था कि यदि मेहमत अली तुर्की का जहाज़ी बेड़ा न लौटाए तो पाँचों शक्तियाँ सीरिया का मार्ग बन्द कर दें। पामर्स्टन इस झगड़े को सम्मेलन द्वारा सुलझाने के लिए इस कारण इच्छुक था क्योंकि इस योजना द्वारा १८३३ की सन्धि के अनुसार वह तुर्की और रूस के संगठन को रोक सकता था। रूस भी युद्ध से बचना

चाहता था। ज़ार ने इब्राहीम पाशा की प्रगति को रोकने के लिए फ्रांस के सहयोग के बिना भी इंग्लैण्ड के साथ कार्यवाही करने का प्रस्ताव किया। पामरटन ने फ्रांस की सरकार को सूचित किया कि "इंग्लैण्ड रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया के साथ इस मामले में सहयोग करने का इच्छुक है, उसे फ्रांस का सहयोग प्राप्त हो या न हो, किन्तु इंग्लैण्ड को इस बात कर बड़ा खेद होगा कि इस कार्यवाही में फ्रांस ने सहयोग नहीं दिया।"

पामर्स्टन को इसी समय एक भयानक सूचना मिली कि फ्रांस के सम्राट् ने किसी विदेश मन्त्री को बताया था कि सम्भवतः फ्रांस को एक दो वर्ष में इंग्लैण्ड से युद्ध करना पड़ेगा और इसलिए वह मेहमत अली की रक्षा कर रहा है। फ्रांस को इस युद्ध में अन्ध महासागर में मेहमत अली के जहाज़ी बेड़े की सहायता की आवश्यकता पड़ेगी। पामर्स्टन ने फ्रांस के सम्राट् को "एक ऐसा व्यक्ति बताया जिस पर किसी भी प्रकार का विश्वास नहीं किया जा सकता।" फ्रांस ने शिकायत की कि उसे अकेला छोड़ा जा रहा है, किन्तु फिर भी उसने सीरिया के मामले में मेहमत अली की सहायता करना बन्द नहीं किया। फ्रांस का शिक्षित जनमत मेहमत अली का कट्टर समर्थक था, इस कारण फ्रांस की सरकार उसकी उपेक्षा नहीं कर सकती थी। फ्रांस की सरकार भ्रम में थी कि इंग्लैण्ड और रूस का सहयोग कभी भी नहीं हो सकता किन्तु वास्तव में दोनों देशों में समझौता हो चुका था।

मार्च, १८४० में फ्रांस में थीयर्स (Thiers) पुनः सत्तारूढ़ हुआ। उसकी नीति थी इंग्लैण्ड से मैत्री रखना, पाँच शक्तियों के संगठन में फ्रांस की सदस्यता को अक्षुण्ण रखना और साथ में सीरिया के मामले में मेहमत अली का समर्थन करना। पामर्स्टन मेहमत अली की शक्ति को रोकना चाहता था और थीयर्स इस विषय में सहमत नहीं था। इसलिए गतिरोध उत्पन्न हो गया।

इस अवसर पर तुर्की का राजदूत लन्दन गया और शक्तियों से माँग की कि वे १८४१ की सन्धि के अनुसार अपने वचन का पालन करें और तुर्की को सहायता दें। पोर्टे इस मामले को सुलझाने के लिए मिस्र के राज्यपाल का पद भी मेहमत अली को देने को तैयार था। थीयर्स और उसकी सरकार ने लन्दन वार्ता की उपेक्षा कर दी। कारण यह था जिस समय लन्दन में वार्ता हो रही थी उसी समय फ्रांस के राजदूत के माध्यम से कस्तुनतुनिया में अलग बातचीत चल रही थी। १८४० में शक्तियों के प्रतिनिधियों ने सन्धि पर हस्ताक्षर किए जिस पर तुर्की के राजदूत ने भी हस्ताक्षर किए थे। इस सन्धि के अनुसार मेहमत अली को मिस्र का वंशपरम्परागत राज्यपाल नियुक्त किया गया, उसे आक्रे और दक्षिणी सीरिया भी जीवन भर देने के लिए फैसला किया गया। इस व्यवस्था को स्वीकार करने के लिए मेहमत अली को कुछ समय दिया गया। सीरिया के विषय में उससे दस दिन में तथा मिस्र के विषय में बीस दिन में उत्तर माँगा गया था। चारों शक्तियों ने मेहमत अली पर दबाव डालने के लिए उसका मार्ग बन्द करने का भी निर्णय किया। कुस्तुनतुनिया की ओर उसकी प्रगति को रोकने के लिए संगठित कार्यवाही का निर्णय भी किया गया। तुर्की चारों शक्तियों के संरक्षण में रहेगा और १८३३ की रूस-तुर्की सन्धि रद्द कर दी गई।

इस व्यवस्था से पेरिस में बड़ी उत्तेजना फैली। यह कहा गया कि फ्रांस का अपमान किया गया है। कुछ महीनों तक फ्रांस और यूरोप के देशों में युद्ध के होने की सम्भावना बनी रही। फ्रांस युद्ध करना चाहता था और थीयर्स उनका मुख्य नेता था। थीयर्स केवल इस हिचकिचाहट में था कि वह पहले इंग्लैण्ड पर आक्रमण करे अथवा रूस पर। फ्रांस में देशभक्ति की भावना को उभारा गया। पामर्स्टन ने फ्रांस की सरकार को कहा "यदि आपने युद्ध के लिए चुनौती दी तो हम इसे स्वीकार करने में संकोच नहीं करेंगे।"

सीरिया में घटनाचक्र बड़ी तेजी से चल रहा था। मेहमत अली ने शक्तियों के प्रस्ताव को ठुकरा दिया अतः शक्तियों ने उस पर दबाव डालने का निर्णय किया। सीरिया के तट का मार्ग बन्द किया जाने लगा। नेपियर ने बैरुत पर बमबारी करके इस पर अधिकार कर लिया। उसने अन्य भी लड़ाइयाँ जीतीं। सुलतान ने मेहमत अली को पदच्युत कर दिया। शान्ति की कोई सम्भावना नहीं रही। लुई फिलिप ने थीयर्स की लड़ाकू नीति का अनुमोदन नहीं किया। पामर्स्टन ने अक्टूबर, १८४० में लिखा था, "यदि फ्रांस हमें एक मैत्रीपूर्ण सन्देश वर्तमान स्थिति पर शान्ति से समझौता करने उदेश्य से भेजेगा तो हम सहर्ष उस पर उसी भावना से विचार करेंगे।"

सौभाग्य से पेरिस में शान्ति के समर्थकों की जीत हुई और थीयर्स को पदच्युत कर दिया गया। नई सरकार ने इस सन्देश का उत्तर मैत्रीपूर्ण ढंग से भेजा। इस अवधि में नेपियर ने आक्रे पर अधिकार कर लिया था और मेहमत अली को सीरिया से पीछे हटना पड़ा था। नेपियर अलैग्ज़ैण्ड्रिया गया और वहाँ अपनी इच्छानुसार शान्ति की शर्तें पेश कीं। शर्तों के अनुसार मेहमत अली को सीरिया छोड़ देना पड़ा तथा उसके मिस्र पर स्थायी रूप से अधिकार करने की व्यवस्था की गई। चारों शक्तियों ने सन्धि की शर्तों का अनुमोदन किया था।

फरवरी, १८४१ में सुलतान पर दबाव डालकर उससे मेहमत अली को पदच्युत करने की आज्ञा को रद्द कराया गया और एक 'फरमान' द्वारा उसे मिस्र का वंशपरम्परागत राज्यपाल नियुक्त किया गया। १८४१ में लन्दन के सम्मेलन में पुराने निर्णयों को स्थायी रूप दिया गया।

यह अन्तिम व्यवस्था पामर्स्टन की महत्त्वपूर्ण विजय समझी गई। ब्रिटेन का सम्मान बढ़ गया और अंक्यार स्कैलेसी की सन्धि बिना युद्ध के रद्द हो गई।

क्रीमिया युद्ध (१८५४-५६) (The Crimean War)—सर जे० ए० आर० मेरियट के मतानुसार क्रीमिया युद्ध के कारणों के विषय में दो भिन्न-भिन्न मत हैं। सम्राज्ञी विक्टोरिया का मत था कि यह युद्ध केवल एक व्यक्ति (निकलस प्रथम) अथवा उसके अनुचरों की स्वार्थपरता और महत्त्वाकांक्षाओं का परिणाम था। किंग्सलेक (Kingslake) ने नेपोलियन तृतीय पर इसका उत्तरदायित्व सौंपा है। किन्तु दोनों ही मतों को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया जा सकता यद्यपि दोनों में ही सत्य का कुछ अंश है। यद्यपि नेपोलियन तृतीय इस युद्ध का प्रत्यक्ष कारण नहीं

था तथापि पूर्व के संघर्ष में वही चिंगारी फेंकने वाला था। १७४० की एक सन्धि के अनुसार फ्रांस ने तुर्की से जेरुसलम के निकट के कई तीर्थस्थानों का कब्जा ले लिया था। लेटिन साधुओं ने अपने अधिकारों के प्रति उदासीनता दिखाई और परिणामस्वरूप ये स्थान ग्रीक साधुओं के अधिकार में आ गए। १८५० में नेपोलियन तृतीय ने फ़्रांस के पादरियों का समर्थन प्राप्त करके इन स्थानों का अधिकार लेटिन साधुओं को दिलवाने का प्रयत्न किया। इस मामले में उसे आस्ट्रिया, हंगरी, स्पेन और अन्य रोमन कैथोलिक देशों का समर्थन प्राप्त था।

सीमैन (Seaman) के मतानुसार "उन लोगों के साथ सहमति प्रकट करना युक्तियुक्त ही है कि क्रीमिया का युद्ध जितना यूरोप में शक्ति संतुलन के लिए संघर्ष था उतना ही यह युद्ध पूर्व की समस्याओं को सुलझाने के लिए भी महत्त्वपूर्ण तत्त्व था। ग्रीक और सीरिया के मामलों में जो अनुभव प्राप्त हुआ उसे ध्यान में रखते हुए यह प्रतीत होता है कि यदि पूर्व के प्रश्न को भी पूर्व और पश्चिम की राजनीतिक प्रणाली के संघर्ष को महत्त्व दिए बिना शान्ति से सुलझाया जाता तो निश्चित रूप से यह युद्ध टल जाता। इसलिए पूर्व की समस्या मूलतः अन्तर्राष्ट्रीय थी और यदि इसे उसी स्तर पर निपटाया जाता तो युद्ध न होता। इस समस्या में प्रजातन्त्रवादी इंगलैण्ड तथा नेपोलियनवादी फ्रांस का रूस से अनेक अन्य समस्याओं पर चलते हुए संघर्ष का जुड़ जाना ही युद्ध का कारण था।

"इसके अलावा ज़ार ने जिस समय मोलडाविया और वलाचिया पर आक्रमण किया, उसे पता था कि वह यूरोप की इच्छानुसार कार्य कर रहा है। किन्तु जब १८५३ में उसने बलकान पर अपना दावा किया तो उसे इस बात की बिलकुल आशा नहीं थी कि उसे इंगलैण्ड का समर्थन मिल जायेगा। रूस के इन जागीरों को छोड़ देने के पश्चात्, सिवाय इस बात के कि, ज़ार को उसकी उद्दण्डता का दण्ड दिया जाए, युद्ध का अन्य कोई कारण नहीं रह गया था। तुर्की के साम्राज्य की रक्षा के लिए बलकान युद्ध युक्तियुक्त था किन्तु इसको वहाँ से क्रीमिया के प्रायद्वीप में घसीट कर ले आना तो नितान्त युक्तिहीन बात थी। इस परिवर्त्तन का अर्थ यह हुआ कि जिस युद्ध की योजना तुर्की साम्राज्य की रक्षा के लिए बनाई गई थी, वह युद्ध के आरम्भ होने से पहले ही रूस के विरुद्ध युद्ध का रूप धारण कर चुकी था।"

प्रो० फ़ाइफ (Fyffe) के मतानुसार, "प्रतिद्वन्द्वी साधुओं के द्वारों, कुन्जियों, मूर्तियों और दीपकों के दावों को कोई भी अनुभवी प्रबन्धक सरलता से सुलझा सकता था किन्तु इन साधारण बातों के परस्पर एक दूसरे को नीचा दिखाने में संलग्न कूटनीतिज्ञों के हाथ में आ जाने के कारण ये इतना विकराल रूप धारण कर गई कि सारे यूरोप की शान्ति खतरे में पड़ गई।" फ्रांस और रूस के पादरी पोर्ट पर निर्णय के लिए दबाव डाल रहे थे। १८५२ से पोर्ट ने दोनों पक्षों को समान अधिकार दे दिए थे। १८५३ में तुर्की ने फ्रांस के कुछ दावों को स्वीकार कर लिया तथा रूस के दावों को अस्वीकार कर दिया।

निकलस प्रथम ने तुर्की के इस कार्य को अपने विरुद्ध अपमान समझा। उसने प्रतिशोध लेने की सोची। १८५३ में उसने ब्रिटिश राजदूत सर सेम्यूर से पीटर्सवर्ग में कहा "वह समय आ गया है कि इंग्लैण्ड और रूस में स्पष्ट रूप से समझौता हो जाना चाहिए। रूसी सेनाओं का कुस्तुनतुनिया पर अधिकार करना आवश्यक हो सकता है किन्तु ज़ार इस पर स्थायी अधिकार नहीं रखेगा। वह बॉसफोरस पर अन्य किसी देश का अधिकार नहीं होने देगा। वह ओटोमान साम्राज्य को नष्ट-भ्रष्ट करके यूरोप के मेजिनी और कास्सुथों का शरण-स्थान नहीं बनने देगा। डेन्यूब की रियासतें रूस के संरक्षण में पहले ही स्वतन्त्र हैं। बलकान के उत्तर में सुलतान के अधिकृत राज्य भी स्वतन्त्र किए जा सकते हैं। इंग्लैण्ड मिस्र और ग्रीस पर अधिकार कर सकता है।" ब्रिटिश सरकार ने ज़ार के साथ किसी भी प्रकार का समझौता करने से इन्कार कर दिया। इसके पश्चात् निकलस प्रथम ने राजकुमार मेन्शीकोफ को कुस्तुनतुनिया भेजा कि वह पोर्टे से केवल तीर्थस्थानों के मामलों का निर्णय करने के लिए ही नहीं अपितु एक सन्धि की माँग करे। इस सन्धि में तुर्की से ग्रीक चर्च को उसके प्राचीन अधिकारों तथा पोर्टे द्वारा अन्य ईसाइयों को दी गई सारी सुविधाएँ देने की भी माँग की गई थी।

इस सन्धि से सुलतान सदा के लिए ज़ार के अधिकार में हो जाता और सुलतान की ग्रीक मतावलम्बी सारी प्रजा के किसी भी व्यक्ति की सुविधाओं पर आघात होने की स्थिति में रूस को इस विषय में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त हो जाता। १७७४ की कुटचुक कैनार्डजी सन्धि के अनुसार सुलतान ने ईसाई धर्म और चर्चों की रक्षा की प्रतिज्ञा की थी। किन्तु यदि इस सन्धि के अनुसार रूस को ग्रीक चर्च की रक्षा के विषय में साधारणतः हस्तक्षेप का अधिकार मिल गया था तो यही अधिकार रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट चर्चों के लिए अन्य शक्तियों को भी दिए गए थे। किन्तु ज़ार ने कभी भी इस बात का दावा नहीं किया था कि उसे कुटचुक कैनार्डजी की सन्धि से ये अधिकार प्राप्त हो गए हैं। इस सन्धि में केवल एक ही चर्च का नाम था जिसके पुजारियों की ओर से सुलतान ने रूस के प्रतिनिधित्व को स्वीकार किया था। इस विषय में व्यवस्था थी कि सुलतान परम्परा अथवा कानून द्वारा इस चर्च के विशेष अधिकारों का सम्मान करेगा, किन्तु इस विषय में किसी भी देश ने विरोध प्रकट नहीं किया था। रूस के दावे की नवीनता यह थी कि उसने इस व्यवस्था को रूस के साथ एक सन्धि का विषय बना दिया था। रूस की माँग का महत्त्व इस बात से सिद्ध होता है कि मेन्शीकोफ ने तुर्की के मन्त्रियों को इस सन्धि की शर्तों को अन्य देशों पर प्रगट करने से मना कर दिया था। निकलस प्रथम ने ब्रिटिश सरकार को यह सूचना भिजवाई थी कि शिष्टमण्डल केवल तीर्थ-स्थानों का मामला सुलझाने के लिए भेजा गया था। तुर्की में रहने वाले ग्रीक ईसाइयों पर रूस के संरक्षण के दावे के विषय में लार्ड क्लैरण्डन ने लिखा कि कोई भी प्रभुत्वसम्पन्न राजा अपने सम्मान और स्वतन्त्रता का ध्यान रखते हुए राजकुमार मेन्शीकोफ द्वारा अस्पष्ट प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकता था तथा सन्धि के द्वारा अन्य शक्तिशाली राजा को अपनी प्रजा के बहुत बड़े भाग की रक्षा का अधिकार नहीं

सौंप सकता था चाहे इन अधिकारों की परिभाषा सन्धि में नहीं की गई थी। वास्तविक स्थिति यह थी कि प्रस्तावित 'सनद' की अस्पष्ट भाषा में रूस को तुर्की के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार दे दिया गया था। पोर्ट की ग्रीक प्रजा होने के साथ वे लोग अपने धर्म की दृष्टि से पूर्णतः रूस के संरक्षण में थे। इसका आशय यह था कि एक करोड़ चालीस लाख ग्रीक सुलतान के प्रति औपचारिक स्वामिभक्ति दिखाते हुए रूस के जार को ही अपना सर्वोपरि रक्षक मानने लगे और सुलतान की स्वतन्त्रता क्रमशः घट कर एक आश्रित राज्य जैसी हो गई।

पोर्ट रूस के दबाव को सहन नहीं कर सकता था किन्तु कुस्तुनतुनिया स्थित ब्रिटिश राजदूत लार्ड स्ट्रैटफोर्ड डी रेडक्लिफ (De Radcliffe) के वहाँ पहुँच जाने से स्थिति एक दम बदल गई। रेडक्लिफ कुशल व्यक्ति था और उसके सामने रूस का राजकुमार एक बालक के समान था। रेडक्लिफ ने बलकान में कूटनीतिक सेवा में एक युग व्यतीत किया था और उसने स्थिति को पूरी तरह समझ लिया था। इंग्लैण्ड बलकान में दिलचस्पी रखता था। भारतवर्ष पर नियंत्रण रखने की चिन्ता के कारण उसे रूस की निकट पूर्व में गतिविधि पर ध्यान रखना पड़ता था। कैनिंग की अकाल मृत्यु के कारण रूस उस स्थिति से अकेला ही लाभ उठा रहा था। १८२९ की एड्रियानोपल (Adrianople) की सन्धि ने बलकान में रूस का प्रभाव और सम्मान बढ़ा दिया था। अंक्यॉर स्कैलेसी (Unkiar Skelesse) की सन्धि से उसकी शक्ति और भी बढ़ गई थी। पामर्स्टन (Palmerston) के प्रयत्नों के कारण रूस के प्रभाव में कुछ कमी हुई और १८४१ में अंक्यार स्कैलेसी की सन्धि रद्द हो सकी थी। १८४४ में निकलस ने लन्दन की यात्रा की और वहाँ 'यूरोप के बीमार' की सम्पत्ति को बाँटने के लिए ब्रिटेन के विदेश मन्त्री एबर्डीन (Aberdeen) से परामर्श किया। किन्तु उसे यहाँ प्रोत्साहन नहीं मिला। ब्रिटिश सरकार ने १८५३ में दूसरी बार रूस से पूर्व के प्रश्न पर बातचीत करने से इन्कार कर दिया। इससे स्पष्ट हो गया कि ब्रिटेन बलकान में रूस के प्रभाव को बढ़ने देने के लिए तैयार नहीं था।

लार्ड स्ट्रैटफोर्ड (Stratford) ने अपना कार्य कुशलता से किया। उसने मेन्शीकोफ (Menschikoff) को पवित्र मन्दिरों के प्रश्न को ग्रीक ईसाइयों के साधारण संरक्षण के प्रश्न से अलग कर देने के लिए राजी कर लिया। यह महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन कराने के पश्चात् उसने तुर्की को ईसाई मन्दिरों के संरक्षण के विषय में रूस की माँग मान लेने को प्रोत्साहित किया था। मन्दिरों की समस्या हल हो गई। किन्तु फिर भी स्थिति में सुधार नहीं हुआ। ज्यों-ज्यों पोर्ट नम्र होता गया त्यों-त्यों मेन्शीकोफ का रुख उत्तरोत्तर कठोर होता गया यद्यपि उसकी स्थिति कमज़ोर होती जा रही थी। उसे अनुभव हुआ कि स्ट्रैटफोर्ड ने उसे धोखा दिया है। स्ट्रैटफोर्ड ने पोर्ट को सलाह दी कि वह मेन्शीकोफ के संरक्षण के दावे को अस्वीकार कर दे, परिणामतः मेन्शीकोफ मई, १८५३ में कुस्तुनतुनिया से चला गया। उसके चले जाने के एक सप्ताह पश्चात् पोर्ट ने मुख्य शक्तियों को एक पत्र भेजा जिसमें उसने पवित्र स्थानों

के प्रश्न के समझौते तथा तुर्की के रूस के नियन्त्रण को रोकने के विषय में अपनी दृढ़ता की सूचना दी।

जुलाई, १८५३ में रूस की सेनाओं ने प्रुथ (Pruth) पार करके निकट की रियासतों पर अधिकार कर लिया। साधारण परिस्थितियों में इस प्रकार की कार्यवाही के परिणाम को युद्ध की घोषणा माना जाता। ज़ार ने घोषणा की कि इन रियासतों पर अधिकार करने से उसकी इच्छा शान्ति भंग करने की नहीं है। तुर्की को भी युद्ध न करने का परामर्श दिया गया। दिसम्बर, १८५२ में लार्ड एबर्डीन इंग्लैण्ड का प्रधान मन्त्री था। फ़ाईफ़ (Fyffe) के शब्दों में, "इंग्लैण्ड में एबर्डीन से बढ़कर शान्त स्वभाव तथा रूस से मैत्री चाहने वाला अन्य कोई व्यक्ति नहीं था।" ज़ार ने सही रूप से एबर्डीन के स्वभाव पर भरोसा किया था। पामर्स्टन रूस के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए अत्यन्त उत्सुक था। उसका विश्वास था कि इंग्लैण्ड की जागरूकता दिखाने का एकमात्र मार्ग यही था कि इंग्लैण्ड और फ्रांस के संयुक्त जहाज़ी बेड़े को बॉसफोरस भेज दिया जाए और यदि आवश्यकता पड़े तो इसे कालासागर भी जाने दिया जाए। किन्तु फिर भी एबर्डीन ने सुलतान को यही सलाह दी कि वह रूस के आक्रमण का शान्ति से समझौता करने के सारे साधनों को प्रयुक्त किए बिना, शक्ति से मुकाबला न करे। पामर्स्टन को पूरा विश्वास था कि पहले ही बहुत देर हो चुकी है और रूस इंग्लैण्ड की प्रगट कायरता से लाभ उठाकर आगे बढ़ता जा रहा है।

पामर्स्टन और एबर्डीन में मतभेद होने पर भी लार्ड स्ट्रैटफोर्ड का आरम्भ से ही पूर्ण विश्वास था कि रूस और तुर्की के युद्ध में ब्रिटेन को ओटोमान साम्राज्य की ओर से ही युद्ध करना पड़ेगा। स्ट्रैटफोर्ड ने अपना विचार स्पष्ट रूप से प्रगट नहीं किया, किन्तु जो पत्र-व्यवहार उसने सुलतान से किया उसका यही आशय समझा जा सकता था। यदि इंग्लैण्ड का जहाज़ी बेड़ा सुलतान की रक्षा न करता तो उसे यह विश्वास दिलाना कि राजदूत की आज्ञानुसार बेड़ा यथास्थान पहुँच जाएगा, घोर विश्वासघात और धोखा देना था। इस प्रकार का धोखा देना स्ट्रैटफोर्ड के स्वभाव के विपरीत था। जिस दिन स्ट्रैटफोर्ड सुलतान के महलों में गया था उस दिन से ही इंग्लैण्ड अपने प्रतिनिधि द्वारा दिए गए आश्वासनों को पूरा करने के लिए वचनबद्ध हो चुका था।

केन्द्रीय शक्तियों ने युद्ध के भय से बचने का प्रयत्न किया था। इंग्लैण्ड, फ्रांस, आस्ट्रिया, हंगरी और प्रशिया के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन जुलाई में विआना में हुआ और सब की अनुमति से एक प्रस्ताव का मसविदा बनाया गया, जो रूस और तुर्की दोनों को मान्य हो सकता था। रूस ने मसविदे को स्वीकार किया यद्यपि जिस धारणा से मध्यस्थों ने इसे तैयार किया था, रूस ने उसे स्वीकार नहीं किया था। तुर्की ने इसे बिना संशोधन के मानने से इन्कार कर दिया। तुर्की अपने आन्तरिक मामलों में रूस के हस्तक्षेप करने के अधिकार को मान्यता देने के लिए तैयार नहीं था।

तुर्की के मुख्य सेनापति उमरपाशा ने रूस को ललकारा कि रियासतों को खाली कर दे। किन्तु रूस ने इससे एकदम इन्कार कर दिया। परिणामस्वरूप युद्ध की घोषणा हुई। नवम्बर, १८५३ में तुर्की के जहाजी बेड़े को सिनोपे के स्थान पर नष्ट कर दिया गया। सिनोपे का हत्याकाण्ड यूरोपीय युद्ध की भूमिका थी। ग्राहम लिखता है, "मैं रूस के साथ शान्ति बनाए रखने का अन्तिम क्षण तक बड़ा कट्टर समर्थक था, किन्तु सिनोपे पर आक्रमण और अभी हाल की घटनाओं ने सारी स्थिति को मूलतः परिवर्तित कर दिया है। मुझे लगता है कि रूस से अब पृथक् होना अनिवार्य हो गया है।"

एबर्डीन मन्त्रिमण्डल की शान्तिप्रियता और इसके सदस्यों का परस्पर मतभेद, ब्रिटेन की अस्थिर और निर्बल नीति का उत्तरदायी था। मेरियट का कथन है कि यदि मंत्रिमंडल वास्तव में एकमत होता और एबर्डीन अपने मन्त्रियों पर अपनी इच्छा का प्रभाव डाल सकता तो सम्भवतः युद्ध टल गया होता। स्ट्रैटफोर्ड कुस्तुनतुनिया नहीं गया होता। तुर्की को इंग्लैण्ड की सहायता पर निर्भर न रहना पड़ता और सम्भवतः ज़ार ने भी अपनी माँगों को कम भी कर दिया होता। फिर यदि पामर्स्टन प्रधानमन्त्री के पद पर होता तो ज़ार ने मेन्शीकोफ को भेजने और एक ऐसे विवाद को उकसाने पर पुनर्विचार किया होता, जिसमें ब्रिटेन का बीच में आ जाना अवश्यभावी था। नेपोलियन तृतीय और स्ट्रैटफोर्ड के व्यवहार से दुःखी होकर ज़ार को एबर्डीन और इंग्लैण्ड के शान्तिप्रिय दल पर अपने ही द्वारा पैदा की हुई कठिनाइयों से निकालने के विषय में विश्वास करना पड़ा। युद्ध की घोषणा हो जाने के पश्चात् भी एबर्डीन को आशा थी कि वह शान्ति बनाए रखने के लिए कोई युक्ति निकाल लेगा। उसकी इच्छा के विरुद्ध उसके मन्त्रिमण्डल ने जहाज़ी बेड़े को कालासागर में भेजने का निर्णय किया। आदेश दिए जाने के बाद भी नेपोलियन को ज़ार के नाम पत्र लिखने की अनुमति दे दी गई, जिसमें उसने ज़ार को अपनी मध्यस्थता का प्रस्ताव किया था। किन्तु इसका उत्तर अत्यन्त रूखा मिला। यद्यपि आस्ट्रिया और प्रशिया रूस पर कूटनीतिक दबाव डालने में फ्रांस और इंग्लैण्ड के साथ सहयोग कर रहे थे तथापि जब इंग्लैण्ड तुर्की की ओर से युद्ध में आ गया तो वे तटस्थ हो गए।

क्या क्रीमिया का युद्ध न्यायोचित था ? (Was the Crimean War Justified ?)—मेरियट (Marriott) लिखता है कि घटना के पश्चात् की आलोचना से प्रतीत होता है कि यह युद्ध यदि अपराध नहीं था तो एक महान् भूल अवश्य थी। इसे नहीं होने देना चाहिए था तथा इसे टाला जा सकता था। सीटोन-वाटसन के शब्दों में "यदि इतिहास में कभी भी अल्पसूचना के आधार पर न्यायोचित बुद्धि को छोड़कर कभी भी कोई युद्ध हुआ तो वह क्रीमिया का युद्ध था। यह घटना सर्वसाधारण की इस धारणा को असत्य सिद्ध करती है कि जनता सदा शान्तिप्रिय होती है और केवल राजनीतिज्ञ और धनवान व्यक्ति ही युद्ध-प्रिय होते हैं।" (Britain in Europe, p. 359)

एक प्रसिद्ध महान् कूटनीतिज्ञ का दृढ़ विचार है कि "क्रीमिया के युद्ध में ब्रिटेन ने गलत घोड़े पर दाव लगा दिया।" अन्य लोगों का विचार है कि एक कूटनीतिज्ञ के कहने पर इंग्लैण्ड को दमन और कुशासन के लिए कुख्यात शक्ति की सुरक्षा के लिए युद्ध में घसीट लिया गया था। ड्यूक ऑफ अरगायल युद्ध को न्यायोचित बताता है। किंग्सलेक के विचार से इंग्लैण्ड एक सिद्धान्तहीन, दुस्साहसी, व्यर्थ में बिना कारण के उकसाए हुए युद्ध के आधार पर अपना राजसिंहासन बनाए रखने के लिए व्यक्ति के हाथों में खिलौना बन गया था। यह सत्य है कि नेपोलियन तृतीय अपने शासन को लुई फिलिप के शासन से अच्छा शासन सिद्ध करने को उत्सुक था। तो भी मेरियट का विचार है कि स्ट्रैटफोर्ड या एबर्डीन को उसकी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति का साधन कहना अनुचित है। सत्य यह है कि इंग्लैण्ड के विचारशील नागरिकों को पूरा विश्वास हो गया था कि ज़ार की महत्त्वाकांक्षाओं को दबाना आवश्यक है। रूस की पिछले १५० वर्ष की नीति के आधार के विषय में कोई त्रुटि नहीं हो सकती। अजोव की सन्धि से बेलग्रेड की सन्धि तक, केनार्डजी से जेस्सी, बुखारेस्ट से एड्रियानोपल तक और वहाँ से अंक्यार-स्कैलैसी तक रूस की प्रगति धीमी किन्तु निरन्तर होती रही थी। क्या तुर्की का अन्त केवल उत्तराधिकारी के लोभ की शान्ति के लिए आवश्यक था? क्या ज़ार को कालासागर को एक रूसी झील बना लेने दिया जाता? क्या उसे अन्धमहासागर पर एकछत्र और खतरनाक आधिपत्य जमा लेने दिया जाता? यह तुर्की के सुशासन या कुशासन का प्रश्न नहीं था। वास्तव में प्रश्न था कि क्या साधारणतः सारा यूरोप और विशेषतः इंग्लैण्ड इस बात के लिए तैयार थे कि वे रूस को पोर्टे पर एक ऐसा बन्धन लगाने दें जिसमें वह पोर्टे की सारी ईसाई प्रजा का संरक्षक और अतएव तुर्की के भाग्य का अकेला निर्णायक बन जाये? इंग्लैण्ड के जनसाधारण का विचार था कि रूस के प्रभाव को किसी भी मूल्य पर रोकना चाहिए।

युद्ध की घोषणा होने के पश्चात् मित्रराष्ट्रों ने अपनी सेनाएँ, क्रीमिया भेजी थीं। इस युद्ध की महत्त्वपूर्ण लड़ाइयाँ एल्मा (Alma), बैलाक्लावा (Balaclava) और इन्करमैन्न (Inkermann) की थीं। १८५४-५५ में बहुत सरदी पड़ी। कहा जाता है कि ज़ार ने कहा था कि मेरे दो सेनापति हैं जनरल जनवरी और जनरल फरवरी, जो मुझे कभी भी धोखा नहीं दे सकते। क्रीमिया की कड़ी सर्दी में बड़ी कठिनाइयाँ हुईं। सेवेस्टोपोल की छावनी बैलाक्लावा की बन्दरगाह से ६-७ मील दूर थी। तूफान के बाद सड़कों पर चलना असम्भव हो गया। चारे की कमी से घोड़े कमजोर हो गए थे। वे कीचड़ में से गाड़ियों को नहीं खींच सकते थे। सैनिक और पशु सर्दी से मर गये। यद्यपि गृह सरकार ने खूब रसद भेजी थी किन्तु उसे छावनी में सैनिकों तक नहीं पहुँचाया जा सका। खाइयाँ आधी जम गई थीं। सेनाओं के पास कपड़ों और खाने की कमी थी। परिणामतः हजारों सैनिक बुखार, हैजे और कमजोरी से मर गए। लगभग, ६,००० व्यक्ति मर गए और

१३,००० को हस्पतालों में दाखिल कर दिया गया। स्कुटारी (Scutari) की छावनी के हस्पतालों का प्रवन्ध बड़ा खराब था।

क्रीमिया में ब्रिटिश सिपाहियों की दुर्दशा से जनमत जाग उठा। सहायता के लिए अपील की गई और जनता ने खूब सहायता की। किन्तु जनता सरकार की कार्यवाही और भूलों से बहुत नाराज थी। १८५५ में मिस्टर रोवक ने एक विरोध प्रस्ताव रखा कि वह सेवेस्टोपोल में ब्रिटिश सेना की परिस्थिति तथा सेना की आवश्यकता की पूर्ति के लिए उत्तरदायी विभागों के कार्यों की जांच के लिए एक विशिष्ट समिति की नियुक्ति का प्रस्ताव रखने वाला है। परिणामतः रस्सल (Russell) ने त्याग-पत्र दे दिया। पामर्स्टन, ग्लैडस्टोन और साम्राज्ञी ने उसके कार्य की निन्दा की। २९ जनवरी, १८५५ को रोवक (Roebuck) के प्रस्ताव को १४८ के विरुद्ध ३०५ मतों से संसद् ने स्वीकार कर लिया और एवर्डीन ने त्यागपत्र दे दिया। लार्ड डर्बी को नया मन्त्रिमण्डल बनाने का निमन्त्रण दिया गया। उसका प्रयत्न असफल रहा और रस्सल (Russell) को भी सफलता नहीं मिली। कोई भी उसके साथ काम करने को तैयार नहीं था। इन परिस्थितियों में पामर्स्टन को मन्त्रिमण्डल बनाने
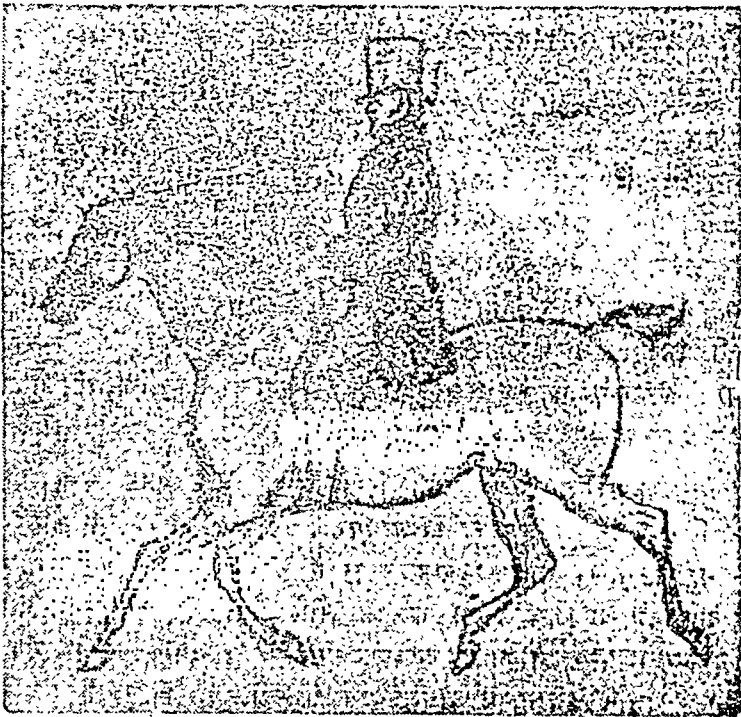
लार्ड पामर्स्टन

के लिए कहा गया और उसने यह कार्य सफलता से पूरा किया। क्रीमिया युद्ध की शेष अवधि में पामर्स्टन ने ही देश की सरकार चलाई। शक्तिशाली जनमत उसका समर्थक था।

पामर्स्टन ने देश में युद्ध मन्त्रालय का पुनर्गठन किया। उस समय बड़ी अव्यवस्था और काम का त्रुटिपूर्ण विभाजन था। सैनिकों के भोजन का कार्य वित्त मन्त्रालय तथा शस्त्रों का कार्य सैनिक संस्थान के अधिकार में था। गृह सचिव सेना के संचालन का देश में तथा उपनिवेश सचिव विदेश में उत्तरदायी था। युद्ध सचिव का कार्य सेना को समय पर वेतन देने और सैनिकों को अपराधों के दण्डस्वरूप कोड़े लगाने का कार्य मुख्य सेनापति को सौंपा हुआ था। पामर्स्टन ने प्रशासन को सरल बना कर लगभग सारे अधिकार युद्ध मन्त्रालय को सौंप दिए।

यद्यपि सेवेस्टोपोल (Sebastopole) पर घेरा पड़ा हुआ था किन्तु प्रगति संतोषप्रद नहीं हुई थी। सेना की शक्ति रोग से क्षीण हो गई थी। पामर्स्टन की सजीव नीति का प्रभाव कुछ समय पश्चात् दीख पड़ने लगा।

शान्तिवार्ता वियाना में आरम्भ हो चुकी थी। मित्र शक्तियों और आस्ट्रिया ने रूस को शान्ति स्थापना के लिए 'चार सिद्धान्त' प्रस्तावित किए। इनके अनुसार रूस को मोलडेविया (Moldavia), वालाचिया और सर्बिया को छोड़ देना था। डेन्यूब में जहाजों का यातायात स्वतन्त्र रहना था। कालासागर पर रूस का अनुचित दावा समाप्त कर दिया जाना था और रूस द्वारा पोर्टे की ईसाई प्रजा पर नियन्त्रण का दावा छोड़ देना था। पामर्स्टन ने लार्ड जॉन को वार्ता में भाग लेने के लिए वियाना भेजा।

इस अवधि में दो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हुईं। इनमें से एक यह थी कि सार्डीनिया २६ जनवरी, १८५५ को मित्र राष्ट्रों के साथ युद्ध में सम्मिलित हो गया। कैवूर (Cavour) ने यह कार्य इसलिए किया कि वह ऐसे मित्र बना सके, जो इटली पर से आस्ट्रिया का नियन्त्रण समाप्त करने में उसकी सहायता कर सकें। अप्रैल, १८५५ तक १८ हजार इटालियन सैनिक क्रीमिया की ओर प्रयाण कर चुके थे। दूसरी घटना थी निकलस प्रथम की मृत्यु जो निर्विवाद रूप से इस युद्ध का प्रमुख आरम्भ-कर्त्ता था। आशा थी कि नए सम्राट् के अभिषेक के पश्चात् परिस्थिति सुधर जाएगी किन्तु नए जार का व्यवहार भी सहायक नहीं था।

वियाना सम्मेलन में रूस तीन सिद्धान्तों को मान गया किन्तु उसने चौथे सिद्धान्त, जिसके अनुसार रूस का कालासागर पर प्रभाव समाप्त हो जाता था, को स्वीकार नहीं किया। पामर्स्टन कालासागर में रूस का प्रभाव पूर्णतः समाप्त करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ था। फ्रांस का राजदूत लार्ड जॉन और आस्ट्रिया पामर्स्टन से सहमत नहीं थे। पामर्स्टन का दृढ़ व्यवहार ही वियाना सम्मेलन के भंग होने का कारण था। यद्यपि वियाना में शान्ति-व्यवस्था नहीं हो सकी तथापि युद्ध का अन्त होता प्रतीत हो रहा था। रूस कमज़ोर हो चुका था और उसे बहुत हानि पहुँची थी। किन्तु फिर भी युद्ध एक वर्ष तक जैसे-तैसे चलता ही रहा। सेवेस्टोपोल का पतन सितम्बर, १८५५ में और कार्स का पतन नवम्बर, १८५५ में हुआ था। शान्तिवार्ता पेरिस में आरम्भ हुई और पेरिस सन्धि १८५६ में हुई। इस सन्धि के अनुसार काला

सागर को पूर्णतः तटस्थ कर दिया गया। इसे व्यापारिक यातायात के लिए सब देशों के लिए आज़ाद कर दिया गया। तुर्की और रूस को भी इसमें अपने लड़ाकू जहाज़ रखने की अनुमति नहीं थी। डेन्यूब का अन्तर्राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। डेन्यूब के छोटे-छोटे राज्यों पर रूस का संरक्षण समाप्त कर दिया गया। इन राज्यों को स्वतन्त्र घोषित कर दिया गया किन्तु उन्हें औपचारिक रूप से नाममात्र को तुर्की का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा। तुर्की को यूरोपीय शक्तियों के संगठन में सम्मिलित कर लिया गया। तुर्की के सुलतान ने अपनी ईसाई प्रजा के साथ मानवी व्यवहार करने का वचन दिया।

क्रीमिया युद्ध के परिणाम (Results of the Crimean War)—यूरोप की राजनीति पर क्रीमिया के युद्ध का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। बलकान और काला सागर पर रूस का प्रभाव रुक गया। मोलडेविया को बेसेरेबिया देने के कारण उसे डेन्यूब से परे कर दिया गया। बहुत समय के लिए कालासागर में उसकी सैनिक शक्ति पूर्णतः समाप्त हो गई। मोलडेविया और वालाचिया के दो स्वतन्त्र राज्य बना देने से तुर्की और रूस के बीच एक दीवार खड़ी हो गई। तुर्की को इस युद्ध से सबसे अधिक लाभ पहुँचा। यूरोपीय शक्तियों के संरक्षण में उसे नया जीवन प्राप्त हुआ। उसकी प्रादेशिक अक्षुण्णता का आश्वासन दिया गया और यूरोपीय शक्तियों के संगठन से उसे पहले निकाल दिया गया था किन्तु अब उसे पुनः सम्मिलित कर लिया गया। इस प्रकार उसे प्रतिष्ठा भी मिली। प्रतीत होता था कि यूरोप का वृद्ध व्यक्ति पुनः अपने पैरों पर खड़ा हो गया। किन्तु अनुभव से सिद्ध हुआ कि इस युद्ध में दिये गये बलिदान इसके योग्य नहीं थे। रूस ने १८७० में पेरिस सन्धि की और कालासागर सम्बन्धी धाराओं का उल्लंघन कर दिया। १८७८ की सान स्टेफनो की सन्धि के पश्चात् रूस ने बेसेरेबिया (Bessarabia) पर पुनः अधिकार करके क्रीमिया के युद्ध के अपमान को पूर्णतः धो दिया। तुर्की में सुधार करने की सारी आशाएँ धूल में मिल गईं और तुर्की की अक्षुण्णता एक राजनीतिक कल्पना रह गई। तुर्की में प्रगति के कोई लक्षण प्रतीत नहीं होते थे।

यह बात उल्लेखनीय है कि पूर्व के प्रश्न में क्रीमिया युद्ध एक महत्त्वपूर्ण अध्याय तथा उन्नीसवीं शताब्दी के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों की भूमिका थी। युद्ध के अनेक महत्त्वपूर्ण परिणाम हुए। "क्रीमिया युद्ध के कीचड़ में से एक नए इटली का निर्माण हुआ और कुछ कम प्रत्यक्ष रूप से नवीन जर्मनी का उदय हुआ।" पीडमोण्ट सार्डीनिया के प्रधान मन्त्री केवूर ने अपनी सेना क्रीमिया भेजी थी और रूस की हार के पश्चात् १८५६ में उसे पेरिस सम्मेलन में अन्य कूटनीतिज्ञों के साथ परामर्श में भाग लेने के लिए बुलाया गया था। उसने इटली में आस्ट्रिया के शासन का प्रश्न उठाकर महान् शक्तियों की सहानुभूति प्राप्त कर ली थी। उसने नेपोलियन तृतीय को भी इटली की स्वतन्त्रता के पक्ष में कर लिया था। क्रीमिया के युद्ध से आस्ट्रिया-हंगरी के भाग्य पर भी प्रभाव पड़ा। रूस और आस्ट्रिया बहुत दिनों से मित्र थे और यह मैत्री ही मेटरनिक की नीति की आधार-शिला थी। इस मैत्री के कारण

ही १८४६ में हंगरी के विद्रोह के अवसर पर रूस ने आस्ट्रिया की सहायता करके रूसी सेना की सहायता से विद्रोह को कुचल दिया था। किन्तु क्रीमिया के युद्ध से यह मैत्री समाप्त हो गई। रूस ने आस्ट्रिया की विरोधात्मक तटस्थता को बहुत बुरा माना और मैत्री के पुराने बन्धन टूट गए। बिस्मार्क ने रूस और आस्ट्रिया के मनमुटाव से लाभ उठाकर रूस से मित्रता कर ली। १८६३ में विशेषतः पोलैण्ड के विद्रोह के समय बिस्मार्क ने पोलैण्ड के विरुद्ध रूस की सक्रिय सहायता करके रूस को पूर्णतः अपनी ओर कर लिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि १८६६ में जब आस्ट्रिया और प्रशिया का युद्ध हुआ तो रूस तटस्थ रहा और आस्ट्रिया को अकेले ही लड़ना पड़ा। निस्सन्देह यह क्रीमिया युद्ध का परोक्ष परिणाम था।

सीमैन (Seaman) के मतानुसार "पेरिस सन्धि की सबसे महत्त्वपूर्ण धाराएँ एक प्रकार से गुप्त थीं जिनकी हस्ताक्षर करने वाली शक्तियों ने कल्पना भी नहीं की थी। यदि ये देश अवसर का लाभ उठाने का प्रयत्न करते तो इनकी अवस्थाओं ने जर्मनी और इटली में आस्ट्रिया की शक्ति को नष्ट करने का सुनहला अवसर प्रदान किया था। क्रीमिया के युद्ध से बिस्मार्क और केवूर को बड़ा लाभ हुआ, अन्यथा न इटली राज्य ही बनता और न जर्मनी का साम्राज्य। १८४८ से नहीं अपितु पेरिस सन्धि के द्वारा मेटरनिक की समाप्ति हुई। क्योंकि क्रीमिया युद्ध के कारण ही ये महान् राजनीतिक परिवर्तन सम्भव हो सके, जिनको मेटरनिक दीर्घ काल से टालने की आशा करता रहा था।"

क्रीमिया युद्ध का एक परोक्ष परिणाम यह भी हुआ कि जनता की सद्भावना प्राप्त करने के लिए एलेग्ज़ेण्डर द्वितीय को रूस के शासन में अनेक सुधार करने के लिये विवश होना पड़ा था। इनमें मुज़ारेदारी प्रथा की समाप्ति हुई थी। अलावा इसके यूरोप की ओर रूस की प्रगति रुक जाने के कारण इसकी गति का प्रवाह मध्य एशिया की ओर हो गया और परिणामस्वरूप रूस के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण भारतवर्ष की सरकार को बड़ी चिन्ता होने लगी थी।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि १८५६ से १८७८ तक समय-समय पर १८५६ की सन्धि की व्यवस्था का निरन्तर उलंघन होता रहा था। मोलडेविया और वालाचिया पेरिस सन्धि के द्वारा स्वशासित राज्य बना दिए गए थे किन्तु इनकी जनता उसी जाति का अंश थी और वही भाषा बोलती थी। दोनों ही अपने को रूमानिया देश के अंश मानते थे। दोनों राज्यों की जनता एक ही सरकार के शासन में संगठित होना चाहती थी। १८५६ में दोनों ही राज्यों ने एक ही व्यक्ति को अपना शासक चुना। इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया और तुर्की ने रूमानिया के संगठन का विरोध किया क्योंकि यह पेरिस सन्धि के समझौते के विपरीत था। किन्तु नेपोलियन तृतीय रूमानिया की जनता की राष्ट्रीयता की भावना का समर्थक था और उसने अन्य शक्तियों से भी वालाचिया और मोलडेविया को संगठित हो जाने की अनुमति प्राप्त कर ली थी। इस प्रकार रूमानिया के राज्य का जन्म हुआ।

इंग्लैण्ड और आस्ट्रिया की सहायता से सर्विया ने १८६७ में तुर्की से अपने दुर्ग खाली करवा लिये। इस प्रकार सर्विया भी तुर्की से स्वतन्त्र हो गया।

१८६५ में रूस ने क्रीट की जनता को तुर्की के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए उकसाया। १८७० में उसने बलगारिया की जनता को धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने में सहायता दी थी। जब १८७० में प्रशिया और फ्रांस का युद्ध आरम्भ हुआ, रूस को प्रशिया ने कालासागर सम्बन्धी धाराओं को भंग करने में प्रोत्साहन दिया। इस प्रकार उसे १८७० में सेवेस्टोपोल की मोर्चेबन्दी करने का तथा कालासागर में रूसी जहाज़ी बेड़ा रखने का अवसर प्राप्त हो गया।

ग्रांट और टेम्परले (Grant & Temperley) का मत है कि "क्रीमिया के युद्ध का उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोप के इतिहास में विलक्षण स्थान है। इस युद्ध में प्रयुक्त साधन, मोल्टके और प्रशिया प्रणाली की अपेक्षा नेपोलियन युग की युद्ध-प्रणाली से अधिक मिलते हैं। भाप से चलने वाले जहाज़ों का प्रयोग होने लगा था किन्तु उनके महत्त्व को पूरी तरह नहीं पहचाना गया था। वित्राना में तार प्रयोग आने लगा था किन्तु कुस्तुनतुनिया और क्रीमिया अभी भी पहुँच से बाहर थे। सेनाओं के भोजन और सफाई की सारी प्रणाली मध्यकालीन थी। आधुनिक वैज्ञानिक साधनों की सहायता के बिना लड़ा गया, यही अन्तिम महायुद्ध था और यदि इसके तरीके और साधन आधुनिक विद्यार्थी के लिए अनोखे प्रतीत होते हैं तो इसके उद्देश्य और कूटनीति और भी अगम्य प्रतीत होती है। धार्मिक प्रश्न भी जो धर्मयुद्धों के युग की बात थी, इस युद्ध के कारणों में से एक था। विजेताओं को इस युद्ध से कोई लाभ नहीं हुआ। वास्तविक रूप में तुर्की की अक्षुण्णता की रक्षा भी नहीं हो सकी। रूस की प्रगति पर स्थायी रूप से रोक नहीं लगाई जा सकी। १९१४ के युद्ध में फ्रांस और इंग्लैण्ड ने लाखों व्यक्तियों का तथा करोड़ों के धन का व्यय इसलिए किया था कि वे क्रीमिया युद्ध के कुछ परिणामों के प्रभाव को समाप्त कर दें, जिस युद्ध को उन्होंने इतना लहू और धन नष्ट करके जीता था। तथापि यह युद्ध कई प्रकार से बड़ा दिलचस्प था। इससे हमें एक ऐसा अद्वितीय शिक्षाप्रद उदाहरण मिलता है जिससे हमें यह पता लगता है कि युद्ध किस प्रकार प्रारम्भ किए जाते हैं और इसके प्रमुख नायकों की प्रणाली का स्पष्ट रूप से पता लगता है। तथा साधारणतः जिन असत्य उद्देश्यों की आड़ में कूटनीतिज्ञ सर्वदा शरण लिया करते हैं वे हमारे सम्मुख नग्न रूप में उपस्थित हो जाते हैं।

Suggested Readings

Crawley, C. W. : *The Question of Greek Independence, 1930.*
Davis, W. S. : *A Short History of the Near East.*
Fyffe : *History of Modern Europe.*
Henderson. G. B. : *Crimean War Diplomacy and other Historical Essays, 1947.*
Marriott, J. A. R. : *The Eastern Question.*
Miller, W. : *The Ottoman Empire and Its Successors. 1934.*

Miller, W. : *History of the Greek People.*
Rose : *Development of the European Nations.*
Schevill : *The Balkan Peninsula.*
Seton-Watson, R. W. : *The Rise of Nationality in the Balkans, 1917*
Seton-Watson, R. W. : *Disraeli, Gladstone and the Eastern Question, 1933.*
Temperley, H. W. V. : *England and the Near East : The Crimea, 1936.*
Tolstoi : *Savastopol.*

दूसरा भाग
Part II

अध्याय २०

बिस्मार्क (१८१५-९८)

(Bismarck, 1815-98)

आधुनिक यूरोप के इतिहास में बिस्मार्क सबसे प्रसिद्ध व्यक्तियों में से एक था। यह सत्य है कि उन्नीसवीं शताब्दी में जर्मनी के एकीकरण में योगदान देने वाले अनेक तथ्य थे किन्तु इसको एकीकृत करने का श्रेय मूलत: बिस्मार्क को ही दिया जाना चाहिए। प्रो० फाईफ के शब्दों में बिस्मार्क ने एक अनिच्छुक राष्ट्र का उस लक्ष्य की ओर ले जाने में नेतृत्व किया, जिसे स्वयं उसने अपने राष्ट्र के लिए निर्धारित किया था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बिस्मार्क के बिना जर्मनी की एकता बहुत काल तक एक स्वप्न ही बनी रहती।

बिस्मार्क का जन्म प्रथम अप्रैल, १८१५ को हुआ था। उसका पिता जुङ्कर (Junker) कबीले का वंशज था। बिस्मार्क ने अपना डील-डौल अपने पिता से प्राप्त किया था। उसकी माता एक प्रसिद्ध राज्य पदाधिकारी की पुत्री और विश्वविद्यालय के एक आचार्य (Professor) की पौत्री थी। कहा जाता है कि बिस्मार्क को अनुपम और कुशाग्र बुद्धि अपनी माता से प्राप्त हुई थी। राजकुमार बिस्मार्क की शिक्षा का प्रबन्ध बर्लिन और गोटिञ्जन में हुआ था। उसकी शिक्षा-दीक्षा कूटनीतिक कार्य के लिए हुई थी। उसने फ्रांस और इंग्लैण्ड की खूब यात्रा की थी। वह १८४५ में पोमीरेनिया की विधान सभा का सदस्य बना और १८४७ में बर्लिन की शाही सभा का सदस्य बना। १८४९ में वह प्रशिया के प्रथम सदन का सदस्य चुना गया। १८५१ में उसे संघ की विधान-सभा में फ्रैंकफर्ट में प्रशिया का प्रतिनिधि बना-

बिस्मार्क
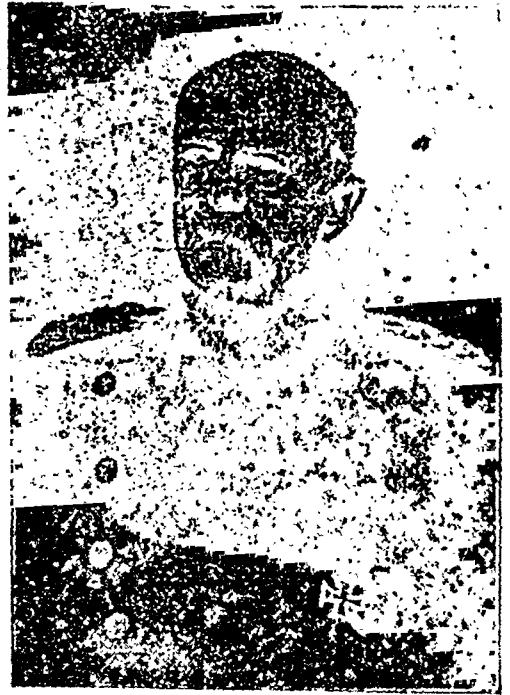
कर भेजा गया और वहाँ पर वह आठ वर्ष रहा था। जब वह फ्रैंकफर्ट में रह रहा था तब उसके राजनीतिक विचारों पर गम्भीर प्रभाव पड़ा था। उसने १८५६ में फ्रैंकफर्ट में प्राप्त हुए अनुभवों के विषय में लिखा था, "फ्रैंकफर्ट में आठ वर्ष तक रह कर राजकार्य के विषय में जो अनुभव मैंने प्राप्त किए वे ये हैं: मेरी दृढ़ धारणा हो गई है कि वर्तमान व्यवस्था प्रशिया के लिए दमनपूर्ण है और कठिन परिस्थिति में भयानक भी···मैं इसे एक रोग मानता हूँ जिसका इलाज हमें कभी न कभी करना ही पड़ेगा। यदि हमने उपयुक्त समय पर इसका इलाज न किया तो हमें पश्चात्ताप करना पड़ेगा।" फ्रैंकफर्ट में रहते हुए उसने जर्मनी के छोटे-छोटे राज्यों के शासकों को अपनी ओर करने का प्रयत्न किया था। उसने उसके साथ प्रशिया के आर्थिक सम्बन्धों को दृढ़ बनाने का प्रयत्न किया। उसने क्रीमिया के युद्ध में रूस के विरुद्ध प्रशिया के हस्तक्षेप का विरोध किया। उसके शब्दों में, "प्रशिया को कभी भी रूस की मैत्री को ठण्डा नहीं पड़ने देना चाहिए। पूर्व के प्रश्न में हमारा कोई भी ऐसा स्वार्थ नहीं है जो रूस के साथ हमारे युद्ध को युक्ति-युक्त बनाने में समर्थ हो। हम अकारण ही आज तक के अपने एक मित्र पर या तो फ्रांस के डर से या इंग्लैण्ड और प्रशिया के दाव-पेंचों में फँस कर आक्रमण करते रहे।"

१८५९ में बिस्मार्क को रूस में प्रशिया का राजदूत नियुक्त किया गया। रूस में रहते हुए उसने रूस को प्रशिया के पक्ष में लाने का प्रयत्न किया। १८६२ में उसे फ्रांस में प्रशिया का राजदूत नियुक्त किया गया किन्तु उसने वहाँ कुछ ही महीने गुजारे होंगे कि उसे सितम्बर, १८६२ में अध्यक्ष-मन्त्री (President Minister) का पद सँभालने के लिए बर्लिन बुला लिया गया। प्रशिया के राजा द्वारा सेना का विकास करने की दृढ़ प्रतिज्ञा और विधान सभा (Landtag) द्वारा आर्थिक स्वीकृति न देने के उद्देश्य से उत्पन्न हुई कठिन समस्या को सुलझाना था। कहा जाता है कि जब १८६२ में उसकी नियुक्ति हुई तो राजा विलियम प्रथम पर तनिक भी प्रभाव न पड़ा। उसने उसे घुटा हुआ प्रतिक्रियावादी कहा था, जिसमें लहू की बू आती थी। लोगों ने उसे 'थोथी बातें करने वाला, नेपोलियन का पुजारी, और नगरों को उजाड़ने वाला कहा था।' किन्तु इस प्रभावहीन प्रतीत होने वाले व्यक्ति ने ही जर्मनी को एकीकृत करने का आश्चर्यजनक शक्तिशाली महान् कार्य कर दिखाया। सत्ताधारण करने के कुछ ही दिनों पश्चात् आय-व्यय लेखा समिति को सम्बोधित करते हुए अपनी नीति के विषय में बिस्मार्क ने कहा था, "कोरे भाषण देने और बहुमत से प्रस्ताव स्वीकार करने से इस युग की समस्याएं हल नहीं होंगी—१८४८ और १८४९ में भी यही भूल हुई थी, किन्तु इन समस्याओं का हल खून और लोहे से होगा।"

यह लिखा जा चुका है कि बिस्मार्क ने जर्मनी का संगठन, १८६४ में डेन्मार्क से युद्ध करके, १८६६ में आस्ट्रिया से तथा १८७०-७१ में फ्रांस से युद्ध करके, किया था। आरम्भ में उसके निरंकुश शासन का विरोध किया गया किन्तु १८६६ में आस्ट्रिया की पराजय के बाद उसकी प्रतिष्ठा हुई, विरोध समाप्त हो गया और एक महान् नेता के रूप में उसका सम्मान होने लगा। १८७१ तक बिस्मार्क यह कह सकता

था कि जर्मनी एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया है और उसके बाद उसकी नीति शान्ति बनाए रखने की तथा युद्ध से बचने की हो गई थी।

आन्तरिक नीति (Internal Policy)—१८७१ से १८९० के काल में बिस्मार्क अपने देश की आन्तरिक नीति और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रमुख व्यक्तित्व था। आरम्भ के कुछ वर्षों में वह जर्मनी के राज्यों और जनता को एक सूत्र में पिरोने के लिए अनेक कानून बनाने में सफल हुआ।

देश के कानून की प्रणाली में परिवर्त्तन किया गया। भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न कानून व्यवस्था की अपेक्षा समूचे जर्मन साम्राज्य के लिए एक जैसी व्यवस्था प्रसारित की गई। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार की मुद्रा-प्रणाली की अपेक्षा एक मुद्रा का प्रचलन कर दिया गया। १८७३ में विभिन्न राज्यों की विभिन्न रेल-व्यवस्थाओं के स्थान पर एक ही रेलवे राज्य की ओर से चलाई जाने लगी। रेलों को साम्राज्य की सेना, डाक तथा तार के विभागों से जोड़ दिया गया। १८७५ के बैंक अधिनियम के अन्तर्गत देश के बैंकों का नियन्त्रण बुन्डेसरैट (Bundesrat) को सौंप दिया गया। १८७६ में राईख़ बैंक (Reichs Bank) अर्थात् राज्य-बैंक की स्थापना की गई। १८७१ में देश में अनिवार्य रूप से सैनिक शिक्षा और सेवा लागू कर दी गई। जर्मनी की सेना की शक्ति शान्ति काल में चार लाख रखी गई। बिस्मार्क का विचार था कि स्थायी सेना का व्यय राज्य-कोष का स्थायी व्यय माना जाए किन्तु रीशस्टेग (Reichstag) ने उस की इस बात को मानने से इन्कार कर दिया। अंत में एक फैसला हुआ जिसके अनुसार आरम्भ में सात वर्ष के लिए और बाद में पाँच वर्ष के लिए सेना का व्यय स्वीकार किया गया। किन्तु बिस्मार्क ने चतुरता से देश में युद्ध का भय उत्पन्न करके मनचाहा धन प्राप्त कर लिया।

यह सत्य है कि बिस्मार्क को विधानमण्डल में बहुमत का समर्थन प्राप्त था और नेशनल लिबरल पार्टी और फ्री कंज़रवेटिव उसका समर्थन करते थे, किन्तु कुछ तत्त्व ऐसे भी थे जो उसका विरोध भी करते थे। प्रगतिशील दल (Progressive Party) बिस्मार्क के लिए काँटा थी। वे १८७१ के जर्मनी के संविधान से सन्तुष्ट नहीं थे और ब्रिटेन की संसदीय प्रणाली के आधार पर बहुत परिवर्त्तन चाहते थे। वे बिस्मार्क की 'खून और लोहा' (Blood and Iron) की नीति के भी विरोधी थे। वे विधानमण्डल में लम्बे-लम्बे भाषण देकर चिढ़ाया करते थे। वे कार्ल मार्क्स और फरडिनेण्ड लस्साली (Ferdinand Lassalle) के अनुयायी बिस्मार्क के विरोधी थे। हेनोवर राज्य से आए हुए सदस्य जिन्हें 'ग्युल्फस (Guelfs) कहा जाता था लुडविग विण्डथोर्स्ट (Ludwig Windthorst) के नेतृत्व में, बिस्मार्क के विरोधी थे। वे अपने राज्य के लिए स्वायत्त शासन चाहते थे। श्लैसविग से आने वाले दो डेन सदस्य श्लैसविग के उत्तरी जिलों को डेन्मार्क को देने की माँग करते थे और बिस्मार्क के विरोधी थे। पोसेन के कुछ पोल सदस्य उसकी पोल विरोधी नीति के कारण उसके विरोधी थे। एलसाए-लॉरेन से चुने गए १५ सदस्य सदा ही बिस्मार्क का विरोध करते थे। १८७४ में रीशस्टेग में पहली बार आते ही उन्होंने

अपने राज्यों को जर्मन साम्राज्य में मिलाने का विरोध किया था। कुछ अन्य गुट भी विस्मार्क की सत्ता को केन्द्रस्थ करने की प्रवृत्ति के विरोधी थे और राज्यों को अधिक अधिकार देने के पक्ष में थे।

सभ्यता के लिए संघर्ष (Kulturkampf) ('Battle for Civilisation')—विस्मार्क ने जर्मनी में रोमन कैथोलिक चर्च के विरुद्ध कार्यवाही की थी। इसे विरचाओं (Virchow) ने कलचरकेम्फ (Kulturkampf) कहा है। विस्मार्क की रोमन कैथोलिक चर्च से पुरानी शत्रुता थी। रोमन कैथोलिक आस्ट्रिया के समर्थक और प्रशिया के प्रोटैस्टैण्ट राजवंश के विरोधी थे। १८६६ के युद्ध में पोप ने खुले रूप से प्रशिया के विरुद्ध आस्ट्रिया की विजय के लिए प्रार्थनाएँ की थीं। रोमन कैथोलिक चर्च नवीन जर्मन साम्राज्य के विरोधी थे। जर्मनी में पोप की सत्ता महान् थी तथा जनता पर भी इसका वहुत प्रभाव था। कैथोलिक दल राष्ट्रीयता तथा विस्मार्क की नीति का विरोधी था। यह इटली और जर्मनी के वीच कठिनाइयाँ पैदा कर रहा था। यह राज्य के वीच में एक राज्य था। १८६४ में पोप पायस नवम ने 'त्रुटियों की सूची' (Syllabus of Errors) को प्रसारित किया। १८७० में उसने पोप की त्रुटिहीनता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। इस घोषणा में कहा गया था कि "यह घोषणा दैवी इच्छा से की जा रही है कि उसके चर्च को धर्म और सदाचार की रक्षा का अधिकार सौंपा जाए इसलिए पोप (Roman Pontiff) द्वारा दी गई आज्ञाएँ त्रुटिहीन तथा चर्च की परिभाषाओं से पूर्णतः स्वतन्त्र हैं।" इस सिद्धान्त के अनुसार कैथोलिक शासन की अपेक्षा पोप की आज्ञा मानने के लिए अधिक वाध्य थे। इस प्रकार की स्थिति को कोई भी राजा सहन नहीं कर सकता था। विस्मार्क के शब्दों में, "राष्ट्र को केवल पोप की त्रुटिहीनता से भारी खतरा है। वह जो चाहता है धृष्टता से प्राप्त कर लेता है। अर्थात् वह हमारे कानूनों को अवैध वता देता है, कर (tax) लगा देता है। संक्षिप्त रूप से प्रशिया में कोई भी इतना वलवान् नहीं है जितना कि यह विदेशी है। यह संघर्ष विशुद्ध रूप से राजनीतिक है, किसी भी प्रकार से रोमन कैथोलिक चर्च और प्रोटैस्टैन्ट राजवंश का नहीं है। यह धार्मिक विश्वासों का संघर्ष भी नहीं है। यह संसार के मसीह के अवतरण से पहले के संघर्ष की पुनरावृत्ति है जो मानव जाति के समान ही पुराना है। यह वही संघर्ष है जिसे अगामिमनोन (Agamemnon) ने अपने राजगुरु के विरुद्ध किया था और जिसमें उसे अपनी पुत्री को खोना पड़ा था, जिस समय ग्रीक लोग ट्रॉय (Troy) के लिए सफर करने वाले थे। यह वही संघर्ष है, जो मध्यकालीन युग में पोप और कैसरों के वीच भयंकर रूप से चलता रहा था।" विस्मार्क को जनता का समर्थन प्राप्त था। पुराने कैथोलिकों ने डा० डोलिन्जर (Dollinger) के नेतृत्व में पोप के दावों का विरोध और विस्मार्क का समर्थन किया। देश के उदार दलों ने पोप की घोषणा की निन्दा की और विस्मार्क का समर्थन किया था। नास्तिक वैज्ञानिक विरचाओ ने भी विस्मार्क का समर्थन किया तथा प्रगतिशील दलों ने भी विस्मार्क की सहायता की थी।

१८७२ में जर्मनी से जैसुइट्स (Jesuits) को निकाल दिया गया तथा प्रशिया और वाटिकन (Vatican) में कूटनीतिक (diplomatic) सम्बन्ध समाप्त कर दिए गए। १८७३ और १८७४ में मई के महीने में प्रशिया के विधानमण्डल ने रोमन कैथोलिकों के विरुद्ध कानून बनाए। मई के महीने में प्रसारित होने के कारण इन्हें 'मई कानून' (May Laws) कहा जाता है। इन्हें प्रशिया के शिक्षा मंत्री के नाम पर 'फॉक कानून' (Falk Laws) भी कहा जाता है। इन कानूनों के अनुसार प्रशिया के कैथोलिक चर्च के अधिकारी को, चाहे वह बिशप हो या साधारण पुजारी, जर्मनी का नागरिक तथा जर्मन विद्यालय और विश्वविद्यालयों का स्नातक होना अनिवार्य था। उसे सरकार द्वारा प्रमाणित तथा अधिकृत होना पड़ता था। रोमन कैथोलिक चर्चों के अधिकार में चलने वाली सम्पूर्ण शिक्षा-संस्थाओं को राज्य के नियन्त्रण में रख दिया गया। धर्माचार्यों के लिए विद्यालयों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। सब प्रकार की धर्म-शिक्षा जर्मन भाषा के अतिरिक्त किसी भी अन्य भाषा में देना बन्द कर दिया गया। जब प्रशिया के कैथोलिकों ने इन कानूनों का विरोध किया और पालन करने से इन्कार किया तो अधिक कठोर कानून बनाए गए। अनधिकृत व्यक्तियों के धार्मिक उत्सव का अधिकार छीन लिया गया। विद्रोही धर्माधिकारियों को देश-निकाला अथवा बन्दी बनाया जा सकता था। प्रत्येक विवाह का राज्य में रजिस्टर होना अनिवार्य कर दिया गया। जिस भी प्रदेश का बिशप विद्रोही होता उसे सरकारी आर्थिक सहायता देनी बन्द कर दी जाती थी। सार्वजनिक बहिष्कार बन्द कर दिया गया। धार्मिक दण्डों के विरुद्ध अपील करने की व्यवस्था कर दी गई। राज्य को पुजारियों की नियुक्ति और पदच्युति का अधिकार दिया गया। १८७५ में सारी धर्म-उपाधियों को समाप्त कर दिया गया।

पोप ने 'मई कानूनों' को अवैध घोषित करके रोमन कैथोलिकों को इन्हें भंग करने का आदेश दिया। बिस्मार्क का व्यवहार भी हठी था। उसने स्पष्ट रूप से घोषणा कर दी थी, "हम शरीर अथवा आत्मा से केनोस्सा नहीं जाएँगे।" इस प्रकरण का १०७७ में उस घटना से सम्बन्ध है जब राजा हेनरी चतुर्थ और पोप सप्तम में झगड़ा हुआ था। राजा को इटली के केनोस्सा नगर में जाकर पोप के सम्मुख अपमान-जनक तरीके से आत्मसमर्पण करना पड़ा था। इस घटना का उल्लेख करने में बिस्मार्क का आशय था कि वह पोप के आगे नहीं झुकेगा।

यह बात उल्लेखनीय है कि कैथोलिक चर्च के विरुद्ध कानूनों को इतनी कठोरता से लागू किया गया था कि एक वर्ष की अवधि में ६ कैथोलिक बिशपों को कैद में डाल दिया गया, १३०० कैथोलिक चर्चों में पूजा बन्द हो गई। १८७७ तक सारे जर्मन बिशप और सैकड़ों पुजारियों को या तो कैद में डाल दिया गया या देश से निकाल दिया गया। कैथोलिक मतानुयायियों को राज-सेवा से अलग कर दिया गया।

इन कानूनों की कठोरता से जर्मनी के कैथोलिक राज्य का विरोध करने में हतोत्साह नहीं हुए। विण्डथोर्स्ट के नेतृत्व में 'केन्द्रीय दल' के नाम से एक शक्तिशाली

रोमन कैथोलिक दल बनाया गया, जिसका उद्देश्य सरकार का विरोध करना तथा कैथोलिक-विरोधी कानूनों को तुड़वाना था। थोड़े समय में ही केन्द्रीय दल शक्तिशाली बन गया। १८७४ के सार्वजनिक चुनावों में रीशस्टैग (Reichstag) में इनकी संख्या ८० से ६० हो गई। विण्डथोर्स्ट ने विस्मार्क के विरोधी तत्त्वों से गठबन्धन करके सरकार का विरोध किया। परिणामतः रूढ़िवादी सदस्य भी जो अन्य मामलों में बिस्मार्क के समर्थक थे, धीरे-धीरे विण्डथोर्स्ट का साथ देने लगे। जब इस प्रकार की स्थिति बनने लगी तब बिस्मार्क ने अपनी कैथोलिक विरोधी नीति को बन्द करने का निर्णय किया। उसे समाजवादियों से भी डर था जिन्हें वह कैथोलिकों से अधिक खतरनाक मानता था। वे लोग राजशाही, सैन्यवाद विरोधी तथा देशविहीन व्यक्ति थे। वे पारिवारिक जीवन और साम्राज्य के शत्रु थे। बिस्मार्क ने समाजवादियों के विरुद्ध कार्यवाही करने का निर्णय किया। इसलिए आवश्यक था कि कैथोलिकों से समझौता किया जाता। पोप पायस नवम की मृत्यु से उसका कार्य सरल हो गया था क्योंकि पोप लियो तेरहवाँ उसका उत्तराधिकारी हुआ। पोप लियो तेरहवाँ कूटनीतिज्ञ था और समझौते का इच्छुक था। नया पोप बिना अपने सिद्धान्तों को छोड़े समझौते के लिए आधार तलाश करने में सफल रहा। परिणामतः १८८० में प्रशिया की विधानसभा ने सरकार को 'मई कानूनों' के लागू करने में अपनी इच्छानुसार कार्य करने की छूट दे दी। वाटिकन से कूटनीतिक (diplomatic) सम्बन्ध पुनः स्थापित हुए। १८६६ में कैथोलिकों के विरुद्ध कठोर कानूनों को समाप्त कर दिया गया। बिस्मार्क को मानना पड़ा कि उसका सभ्यता-संघर्ष असफल रहा। यद्यपि वह केनोस्सा नहीं गया तथापि इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि चर्च से झगड़े में उसे अपनी हार माननी पड़ी। इस संघर्ष का परिणाम केवल यही हुआ कि जर्मनी में कैथोलिक दल शक्तिशाली बन गया।

समाजवादियों के विरुद्ध कार्यवाही (Action against Socialists)—जर्मनी में औद्योगिक क्रान्ति के कारण देश के श्रमिकवर्ग में समाजवादी प्रचार फैलने लगा था। १८७४ के चुनावों में समाजवादियों को रीशस्टैग में ६ स्थान प्राप्त हुए थे। १८७५ में सामाजिक प्रजातन्त्र दल (*Social Democratic Party*) की नींव डाली गई। १८७७ के चुनावों में समाजवादियों की संख्या १२ हो गई। बिस्मार्क समाजवादी सिद्धान्तों को परिवार, राज्य और सभ्यता का शत्रु मानता था। इसमें आश्चर्य नहीं कि उसने इनके विरुद्ध कार्यवाही करने का निर्णय किया। १८७८ में सम्राट् विलियम प्रथम की हत्या के षड्यंत्र के कारण उसका कार्य और भी सरल हो गया था। बिस्मार्क ने इन षड्यंत्रों का उत्तरदायित्व समाजवादियों पर थोप दिया। विधानसभा के चुनावों में इस बार बिस्मार्क के समर्थकों का बहुमत था। एक कानून बनाया गया जिसके अनुसार समाजवादी विचारों की पुस्तकें, समाचार-पत्र तथा सूचना-पत्रों का प्रकाशन बन्द कर दिया गया। समाजवादी अपराधियों के मुकदमों का फैसला साधारण न्यायालयों से हटा कर पुलिस न्यायालयों में निर्णयार्थ भेजा जाने लगा। समाजवादियों के विरुद्ध चार वर्ष तक कानून बनाए गए किन्तु इन्हें बाद में लागू किया गया। वास्तव में जब १८६० में बिस्मार्क ने त्यागपत्र दिया उस समय

ये कानून प्रचलित थे। किन्तु सरकार ने समाजवादियों का जितना दमन किया वे उतने ही शक्तिशाली होते गए। उन्हें देश में बलिदान करने वाले देशभक्त माना जाने लगा और उनकी प्रतिष्ठा बढ़ती गई। रीशस्टेग में उनकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई। यह उल्लेखनीय है कि सामाजिक प्रजातंत्र दल की संख्या १८८१ में १२, १८८४ में २४, १८८७ में ११ तथा १८९० में ३५ हो गई थी। १८९० के पश्चात् समाजवाद-विरोधी कानून वापिस ले लिये गए और उसके बाद १८९३ में उनकी संख्या ५६, १९०३ में ८१, १९०७ में ४३ और १९१२ में ११० हो गई थी।

सामाजिक कानून (Social Legislation)—प्रो० हेज (Hayes) के मतानुसार विस्मार्क यूरोप में सारे राजनीतिज्ञों और शासकों में श्रमिकों के हित के लिए कार्य करने वालों में अग्रणी था। उसका उद्देश्य दोहरा था। वह श्रमिकों की शिकायतें समाप्त करके समाजवादियों की शक्ति को निर्बल करना चाहता था। दूसरे, वह एक शक्तिशाली सेना का निर्माण करना चाहता था और इसके लिए यह आवश्यक था कि श्रमिकों की अवस्था में सुधार किया जाए। १८८३ के एक कानून के अनुसार श्रमिकों का बीमारी के विरुद्ध बीमा होने लगा। १८८४ में पूंजीपतियों को दुर्घटनाओं के लिए श्रमिकों का बीमा कराने के लिए विवश कर दिया गया। १८८७ में स्त्रियों और बालकों के श्रम को निर्धारित किया गया। विभिन्न उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों के काम के घण्टों पर नियन्त्रण लगाया गया और कारखानों और खानों का नियन्त्रण सरकार के हाथों में सौंप दिया गया। १८८९ में श्रमिकों की अशक्तता तथा बुढ़ापे के लिए बीमा अनिवार्य कर दिया गया। बीमे की किश्तों का एक भाग श्रमिक, एक भाग राज्य तथा एक भाग पूंजीपति देते थे। यह सत्य है कि इस समाजवादी कानून से औद्योगिक क्षेत्र में जर्मनी संसार के सारे देशों का अग्रणी बन गया।

सुरक्षा की नीति (Policy of Protecion)—उन्नीसवीं शताब्दी में सम्भवतः बिस्मार्क ही पहला शासक था जिसने स्वतन्त्र व्यापार के सिद्धान्त को एक ओर रख कर सुरक्षा की नीति अपनाई। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय उदारदल (National Liberals) को छोड़कर केन्द्र दल (Centre Party) में सम्मिलित हो गया था। १८७९ के एक कानून के अनुसार जर्मनी की खेती की उपज तथा देश में उत्पादित होने वाले माल की सुरक्षा के लिए विदेशी माल पर बहुत बड़ी चुंगी की एक दीवार खड़ी कर दी थी। इस नीति का परिणाम यह हुआ कि जर्मनी के नवजात उद्योग केवल अपने पैरों ही पर नहीं खड़े हुए अपितु संसार के कोने-कोने में अन्य देशों से टक्कर लेने लगे थे। सरकार को भी अधिक धन प्राप्त होने लगा था। देश में औद्योगिक प्रयत्नों को बहुत बढ़ावा दिया जाता था। पुनश्च चुंगी सरकार को बल देती थी और साम्राज्य को संगठित करती थी।

साम्राज्यवाद (Imperialism)—आरम्भ में बिस्मार्क उपनिवेश प्राप्त करने और जर्मनी की जलसेना को उन्नत करने के विरुद्ध था। इसका कारण यह था कि वह इंग्लैण्ड के साथ होड़ नहीं करना चाहता था। उसका विचार था कि जब तक

जर्मनी स्थल का चूहा (Land rat) तथा इंग्लैण्ड पानी का चूहा (Water rat) बना रहेगा, दोनों में झगड़ा नहीं होगा। अनेक कारणों में एक कारण यह भी था कि बिस्मार्क ने लॉरेन और एल्साए की बजाय किसी अन्य उपनिवेश को लेने से इन्कार कर दिया था। किन्तु बाद में उसे अपनी नीति बदलनी पड़ी। ब्रीमेन (Bremen) और हैम्बर्ग (Hamburg) के व्यापारी अपने फालतू तथा कच्चे माल के लिए नई मण्डियाँ चाहते थे। धर्मप्रचारक ईसाई धर्म में लोगों को दीक्षित करने के लिए नये उपनिवेश चाहते थे। देशभक्त अपने देश के यश और प्रतिष्ठा को बढ़ाने के लिए नए उपनिवेश चाहते थे। देश में अधिक जनसंख्या की भी समस्या थी जो संयुक्त राज्य अमेरिका जाकर बस रही थी। यह अनुभव किया गया कि जर्मनी को अपनी अतिरिक्त जनसंख्या के लिए नए उपनिवेश बनाने चाहिएँ क्योंकि ऐसा न करने पर यह स्वतन्त्र राज्यों में जाकर बस जाते हैं और देश से सम्बन्ध समाप्त कर लेते हैं। इन सब तत्त्वों का बिस्मार्क पर इतना ज़ोर पड़ा कि उसे औपनिवेशक विकास की नीति अपनानी पड़ी। इस दिशा में धर्माचार्यों और व्यापारियों ने पथ-प्रदर्शन किया।

१८७९ में जर्मनी की एक व्यापारिक कम्पनी ने समोआ के द्वीप में कुछ विशेष सुविधाएँ प्राप्त कीं। १८८२ में जर्मन उपनिवेश संघ की स्थापना हुई। थोड़े से समय में हैम्बर्ग (Hamburg), ब्रिमेन (Bremen) और ल्युबक (Lubeck) की व्यापारिक कम्पनियों ने दक्षिण पश्चिमी अफ्रीका, टोगोलैण्ड, कैमेरून, पूर्वी अफ्रीका, मार्शल द्वीपसमूह, न्यू गायना (New Guinea) और बिस्मार्क आर्चीपिलागो (Archipelago) नामक द्वीपसमूह में अपने व्यापारिक केन्द्र स्थापित कर दिए। १८८४-८५ में कानून बनाकर इन व्यापारिक चौकियों को जर्मनी का संरक्षण प्रदान किया गया। १८८६ में जर्मनी और इन संरक्षित इलाकों के बीच यात्रा करने वाले जहाज़ों को आर्थिक सहायता दी गई थी। १८९० में त्याग-पत्र देने से पहले बिस्मार्क ने संरक्षित उपनिवेशों को साम्राज्य में मिला लिया था। इन उपनिवेशों का शासन जर्मन अधिकारियों के हाथ में था और जर्मन सेना इनकी रक्षा करती थी।

पोलों, डेनों और ग्युलिफों के प्रति नीति (Policy towards Poles, Danes and Guelfs)—पोल जाति के कैथोलिक धर्मावलम्बी होने के कारण बिस्मार्क उनसे घृणा करता था। उसने उन पर जर्मन भाषा को लादने का यत्न किया। उनकी राष्ट्रीयता की भावना को नष्ट करने के लिए कानून बनाए गए। उसने पोल लोगों के खेत जर्मनों को दिलवा दिए थे। इसी प्रकार की कार्यवाही श्लैगविग के पोलों के विरुद्ध भी की गई थी। उसने हेनोवर के ग्युलिफ लोगों के विरुद्ध भी कार्यवाही की थी। वह हेनोवर की जनता को स्वायत्त शासन देने के लिए तैयार नहीं था। 'सर्प निधि' (Reptile Fund) के नाम से एक गुप्त धनराशि हेनोवर के जर्मनों के षड्यन्त्रों का दमन करने तथा उन्हें तंग करने के लिए निर्धारित की गई थी।

एल्साए-लरेन (Alsace Lorraine) में भी बिस्मार्क ने इसी प्रकार की नीति अपनाई थी। उसने फ्रांसीसियों को बहुत संख्या में इन प्रान्तों में बसने की

अनुमति दे दी थी। स्ट्रासबर्ग विश्वविद्यालय को बहुत सा धन इसलिए दिया गया कि वह जर्मनी की शिक्षा तथा संस्कृति का केन्द्र बने। एल्साए और लॉरेन के लोगों के जर्मन शासन के विरुद्ध होने के कारण बिस्मार्क असफल हुआ। वे सर्वदा असहयोग की नीति का अनुसरण करते थे। सरकार की दमन नीति ने उनके विरोध को और भी बढ़ाया और स्वतन्त्र होने की उनकी भावना दृढ़ होती गई।

बिस्मार्क की विदेश नीति (Foreign Policy of Bismarck)—१८७० तक बिस्मार्क अपनी 'रक्त और लोहा' की नीति से देश का संगठन कर चुका था। जर्मन एक सन्तुष्ट राष्ट्र बन गया था और बिस्मार्क अपने देश की सीमाओं को और नहीं बढ़ाना चाहता था। किन्तु वह यूरोप में यथास्थिति (status quo) चाहता था। इस नीति के अनुसरण में उसके मार्ग में बाधाएँ थीं। १८६६ में बिस्मार्क की आस्ट्रिया के प्रति उदार नीति की अपेक्षा उसका व्यवहार फ्रांस के प्रति कड़ा था। १८७० में सेडान की हार के पश्चात् बिस्मार्क ने फ्रांस को उदार शर्तें पेश करने से इन्कार कर दिया और पेरिस के लम्बे घेरे के पश्चात् उसने फ्रांस को अत्यन्त अपमानजनक शर्तों पर सन्धि करने को विवश कर दिया। फ्रांस को युद्ध की क्षति-पूर्ति के लिए विशाल धनराशि ही नहीं बल्कि एल्साए और लॉरेन का बड़ा भाग भी देना पड़ा था। लॉरेन को जर्मनी में मिलाना बड़ी भारी भूल थी। लॉरेन रक्त, भाषा और भावनाओं की दृष्टि से फ्रांसीसी था। मैट्ज को केवल तलवार की नोक पर ही अपने अधिकार में रखा जा सकता था और इस रखने के प्रयत्न में सारा यूरोप एक सशस्त्र छावनी बन गया था। यह सत्य ही कहा है कि सेडान के युद्ध के पश्चात् १९१४ की मारने (Marne) की लड़ाई अनिवार्य थी। फ्रांस की जनता एल्साए और लॉरेन को पुनः प्राप्त करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ थी। जर्मनी द्वारा इन प्रान्तों पर अधिकार करने को माता के वक्ष से दूध पीते हुए शिशु को छीन लेने के समान माना गया। क्या आश्चर्य है कि फ्रांस इन प्रान्तों को प्राप्त करने के लिए प्रतिशोधात्मक युद्ध लड़ने का इच्छुक था। उसने फ्रांस को मित्रहीन करके अकेला कर दिया था। बिस्मार्क की नीति का मुख्य उदेश्य फ्रांस को राजनीतिक रूप से विलग कर देना था जिससे वह जब इन प्रान्तों को पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न करे तो उसका कोई साथी न हो। इसी कारण उसने आस्ट्रिया, रूस, इटली और इंग्लैण्ड से अच्छे सम्बन्ध स्थापित किए थे। बिस्मार्क ने अपनी नीति को इन शब्दों में कहा है, "१८७१ के पश्चात् जर्मन साम्राज्य की विदेश नीति शान्तिरक्षा तथा जर्मनी के विरुद्ध गठबन्धनों को रोकना रही है और इस नीति की धुरी रूस है।" उसने सन्धि के सिद्धान्त के विषय में रूस के राजदूत से कहा था, "आप यूरोप की शतरंज की बिसात पर तीन में से एक मोहरा होने के महत्त्व को नहीं समझ रहे हैं...कोई भी अल्पमत वाला नहीं होना चाहता। सारी राजनीति एक ही सिद्धान्त में सिमट आती है कि—पाँच शक्तियों द्वारा शासित संसार में आप मुख्य त्रिकोण रहो।"

ब्रे ण्डनबर्ग के अनुसार, "फ्रांस को विलग कर देने की नीति के होने पर भी फ्रांस के प्रति बिस्मार्क का रुख शत्रु जैसा नहीं था। वह फ्रांस को शान्ति तथा फ्रैंक

फर्ट सन्धि को भंग नहीं करने देना चाहता था। वह बर्लिन और पेरिस में अच्छे सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था। उसने फ्रांस को आश्वासन दिया था कि जहाँ तक पारस्परिक हितों में टकराव नहीं होता वहाँ तक वह फ्रांस को पूरी सहायता देगा। उसने फ्रांस द्वारा अन्नाम और टोनक्युन (Tonquin) जीतने में कोई बाधा नहीं डाली। उसने फ्रांस को ट्यूनिस पर अधिकार करने के लिए प्रोत्साहन दिया और अनेक बार उसका ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि फ्रांस के औपनिवेशिक विकास के लिए मोरक्को (Morocco) उपयुक्त क्षेत्र है। उसे आशा थी कि सफल उपनिवेश नीति से फ्रांस की प्रतिष्ठा की क्षतिपूर्ति हो जाएगी और कालान्तर में वह एल्साए और लॉरेन की कमी को अनुभव नहीं करेगा। वह स्वयं जानता था कि इस प्रकार की आशा के पूरा होने की बहुत कम सम्भावना है। किन्तु फिर भी वह अपनी ओर से समझौते और शान्ति की स्थापना में कोई कसर नहीं छोड़ना चाहता था।

"इस तथ्य को स्वीकार करने से" वह लिखता है, "कि जर्मनी केवल मेट्ज़ (Metz) और स्ट्रासबर्ग को ही अपने पास रखना नहीं चाहता अपितु फ्रांस द्वारा उपनिवेशों में र्‌हायन नदी के छिने हुए प्रदेशों पर अधिकार करके क्षतिपूर्ति करने को भी पसन्द नहीं करता। फ्रांस जर्मनी को हर जगह अपना मार्ग रोके पाता था, फ्रांस में उन दलों को अवश्य ही शक्ति प्राप्त हुई होगी जो राष्ट्रीय-घृणा तथा प्रतिशोध के लिए युद्ध चाहते थे। इन लोगों ने एक नए फ्रांसीसी युद्ध को शीघ्रातिशीघ्र लाना चाहा होगा। किन्तु मैं यदि विजय भी प्राप्त हो जाए तो भी, इसमें लाभ नहीं देख पाता। क्योंकि यदि हम विजयी भी हो जाएँ तो भी युद्ध स्वयं एक महान् आपत्ति ही है।

"उसकी धारणा थी कि यदि फ्रांस की मोरक्को में महत्त्वाकांक्षाओं के समर्थन करने से, जहाँ इटली का भी स्वार्थ था, युद्ध छिड़ भी जाए तो इसके लिए उसे उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। यह एक भविष्यवाणी थी क्योंकि मोरक्को में फ्रांस के विरुद्ध हमारे हस्तक्षेप के कारण ही पेरिस में प्रतिशोध की नीति की विजय हुई। इन घटनाओं की सम्भावना से बिस्मार्क ने निर्णय किया कि हमें मिश्र तथा कांगो में इग्लैण्ड के विरुद्ध फ्रांस का साथ देना चाहिए। बिस्मार्क ने इस धारणा के अनुसार ही काम किया।"

तीन सम्राटों की सभा (The Three Emperors' League)—१८७३ में बिस्मार्क ने तीन सम्राटों की सभा बनाई। इसके द्वारा उसने रूस, आस्ट्रिया और जर्मनी के सम्राटों को संगठित किया। यह सहयोग सन्धि नहीं थी अपितु तीनों बड़ी शक्तियों में मैत्री सम्बन्धों की द्योतक थी। इसमें तीनों सम्राटों के समान हितों पर ज़ोर दिया गया था। इसका आशय यह भी था कि आस्ट्रिया साडोवा के अपमान को भुलाने के लिए तैयार था और जर्मनी से निष्कासन स्वीकार करने के लिए तैयार था। तीन सम्राटों की सभा का निर्माण बिस्मार्क की अपूर्व सफलता थी किन्तु उसे बनाए रखना कठिन कार्य था। १८७५ के युद्ध-काल में रूस ने जर्मनी को स्पष्ट रूप से कह दिया था कि यदि उसने फ्रांस पर आक्रमण किया तो उसे रूस की तटस्थता पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। इससे बिस्मार्क को विश्वास हो गया कि रूस

अविश्वसनीय है और इसलिए उसने आस्ट्रिया से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किए थे।

आस्ट्रिया-जर्मनी मैत्री (Austro-German Alliance)—बर्लिन सम्मेलन के पश्चात् त्रि-सम्राट् सभा पूर्णरूपेण भंग हो गई थी। डा० गूच (Gooch) के मतानुसार, "बर्लिन सम्मेलन का उच्च राजनीतिक दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ परिणाम रूस और जर्मनी में तनाव पैदा होना था।" रूस के समाचार-पत्रों ने बिस्मार्क की निन्दा की थी और जर्मनी से युद्ध को खुली माँग की थी। रूस की जनता की भावना एक रूसी के कथन से स्पष्ट हो जाती है कि, "बर्लिन सम्मेलन जिसमें रूस का प्रतिनिधि भाग ले रहा है रूस की जनता के विरुद्ध एक षड्यंत्र है। सेण्ट पीटर्सबर्ग की नीति निहिलवाद (Nihilism) से भी अधिक भयानक है। यह रूस की ऐतिहासिक उदारता के विरुद्ध लज्जाजनक विश्वासघात है और इसके कारण जर्मनी के प्रति स्लाव जाति का प्रेम और आदर समाप्त हो गया है। रूस को उसके अपने शासकों ने फाँसी दे दी है। एक मूर्ख की टोपी उसके सिर पर पहना दी गई है।" बिस्मार्क को रूस के समाचार-पत्रों द्वारा अपनी आलोचना रुचिकर नहीं हुई और उसने आस्ट्रिया से घनिष्ठ सम्बन्ध बनाने की सोची जिस पर उसने १८७७ में कृपा की थी। बिस्मार्क को विलियम प्रथम के विरोध का सामना करना पड़ा, किन्तु अन्त में वह आस्ट्रिया से सन्धि करने में सफल हुआ। प्रसिद्ध जर्मन-आस्ट्रियन सन्धि १८७९ में हुई और इस गुप्त सन्धि से दोनों देश रूस के विरुद्ध सामूहिक शक्ति के रूप में एकत्रित हो गए। यह सन्धि बार-बार दुहराई जाती रही और १९१४ के प्रथम विश्वयुद्ध तक भी बराबर चलती रही।

ड्रीकैसरबण्ड (Dreikaiserbund)—यह नहीं कहा जा सकता कि बिस्मार्क द्वारा १८७९ में रूस को छोड़कर, आस्ट्रिया से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने से सेण्ट पीटर्सबर्ग और बर्लिन के बीच सम्बन्ध स्थायी रूप से समाप्त हो गए थे। बिस्मार्क कभी भी एक प्रणाली पर नहीं टिका। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से यह तार टूट गया था किन्तु परोक्ष रूप से इस तार को जोड़ा जा सकता था। परिणामतः १८८१ में वह ड्रीकैसरबण्ड अर्थात् तीन सम्राटों की सभा को पुनः जीवित करने में सफल हुआ।

प्रो० टेलर के अनुसार, "१८७३ की लीग की अपेक्षा नई लीग में समानता बहुत कम थी। वह रूढ़िवादी विरोध का अन्तिम उपहास बनकर रह गई थी। लेकिन अब शासकों को एक साथ करने वाला मैटरनिकी भय शेष न रहा था। इससे अधिक, अब लुई चौदहवें के प्राणदण्ड को ९० वर्ष हो चुके थे और नेपोलियन की पराजय को ६० वर्ष से भी अधिक। १८४८ की स्मृतियाँ धुँधली पड़ रही थीं। उनकी गणना एलेग्जेण्डर तृतीय के साथ बिल्कुल नहीं अपितु विलियम प्रथम तथा फ्रांसिस जोसेफ़ के साथ की जा सकती थी। मार्क्स का इंटरनेशनलिज़्म भी, जिसके भय ने १८७३ की लीग में अपना योगदान दिया था, भंग हो चुका था। सामाजिक और राजनीतिक असंतुष्टता प्रचुर मात्रा में थी, किन्तु उसके प्रभाव भिन्न हुए। नेपोलियन तृतीय और बिस्मार्क दोनों ने ही बाह्य युद्ध का प्रयोग घरेलू विरोध से ध्यान हटाने के लिए किया था। पहले केवल एक शक्तिशाली सरकार ही युद्ध का खतरा मोल

ले सकती थी; शीघ्र ही ऐसा समय आने को था जबकि केवल एक सुरक्षित शासन ही शान्ति से रहने का संकल्प ले सकता था। बिस्मार्क ने तीन सम्राटों की लीग को रूढ़िवाद की विजय माना, यद्यपि उसका यह अकेला ही विचार था; रूस और आस्ट्रिया वालों के लिए यह समान रूप से बाह्य नीति की चाल थी। केवल क्रांति के भय की आड़ लेकर ३० वर्षों से अधिक तक मैटरनिक मतभेदों पर विजय प्राप्त करता रहा; बिस्मार्क को दोनों के लिए ठोस लाभ पहुँचाने पड़े।

"इसलिए १८८१ की सन्धि राजतन्त्रीय प्रगति के पूर्णतया अभाव में निकट पूर्व के विषय में एक व्यावहारिक समझौता था। इसका एकमात्र सामान्य सिद्धान्त तटस्थता का समझौता था—यदि तीनों में से कोई साम्राज्य किसी चौथी शक्ति के साथ युद्ध में उलझ जाये। चूंकि जर्मनी और फ्रांस के बीच उस समय युद्ध की कोई तत्कालीन आशंका नहीं थी, यह रूस के लिए प्रत्यक्ष लाभ था; यह एक प्रतिज्ञा थी कि जर्मनी, और उससे अधिक आस्ट्रिया, हंगरी, इंग्लैण्ड के साथ नहीं मिलेंगे। केवल तुर्की ही के साथ सीमा लगी हुई थी : वहाँ तब तटस्थता लागू होगी यदि पहले से समझौता हो गया। यह एक अनावश्यक सावधानी थी; तुर्की के साथ युद्ध करने का रूस का कोई इरादा नहीं था। इसके अतिरिक्त, तीनों शक्तियों ने जलडमरूमध्यों के नियम के विषय में यूरोप का तथा पारस्परिक रूप से अनिवार्य स्वभाव को मान्यता प्रदान की तथा यह आग्रह किया कि टर्की उसे लागू करेगा। यह काले सागर पर होने वाले ब्रिटिश अभियान के विरुद्ध एक अनिवार्य सुरक्षा थी जिसे रूसी लोग अब तक खोज रहे थे। यहाँ वह वस्तु थी जिसकी उन्हें चिन्ता थी। यह दूसरी सर्वोत्तम चीज़ थी जबकि जलडमरूमध्यों पर रूसी सैनिक टुकड़ी का होना असम्भव था। इससे रूसियों को और भी अधिक भाग मिला। आस्ट्रिया वालों ने प्रतिज्ञा की कि वे दोनों बल्गारियों के संयोग का विरोध नहीं करेंगे और इस प्रकार उन्होंने अपने को इंग्लैण्ड से अलग कर लिया जिसके लिए बल्गारिया का विभाजन १८७८ की अनिवार्य सफलतामात्र था। बदले में, रूस वालों ने आस्ट्रिया-हंगरी के बोसनिया और हर्जेगोविना को मिला लेने का अधिकार स्वीकार कर लिया जो ऐसी सुविधा थी जिसे वह १८७६ से देना चाहते थे।

"रूस वालों के लिए और शायद बिस्मार्क के लिए लीग एक सफलता थी। बाल्कन क्षेत्र में रूस और आस्ट्रिया-हंगरी में से एक को पसंद करने की विवशता से जर्मनी को मुक्ति मिल गई। रूस ने शान्तिपूर्ण व्यवहार की प्रतिज्ञा के बदले में काले सागर में सुरक्षा प्राप्त की जिसे बनाये रखना उसकी आन्तरिक कमजोरी ने अनिवार्य कर रखा था। आस्ट्रिया-हंगरी के लिए ऐसा लाभ देखना कोई सुगम चीज़ नहीं थी जैसा कि हेमर्ल ने आग्रह किया था। जलडमरूमध्यों के नियम के विषय में रूसी व्याख्या का समर्थन कर उसने अपने को इंग्लैंड से पूर्णतया पृथक् कर लिया, तथापि वह १८७८ में बाल्कन क्षेत्र में अपनी स्थिति के लिए इंग्लैण्ड के प्रति ऋणी था। बदले में उसे केवल रूसी प्रतिज्ञायें मिलीं जिन्हें उसने व्यर्थ समझा। ऐंडरेसे और हेमर्ल ने इस उद्देश्य से बिस्मार्क के साथ सन्धि की थी कि रूसी अभियान के विरुद्ध

उन्हें जर्मनी की सहायता मिलेगी; जबकि बिस्मार्क ने सन्धि का प्र
जिस से हेमर्ले उसके साथ अस्वागतपूर्ण समझौता करने पर विवश हो
यह स्थिति उसके लिए बड़ी कठिनाईपूर्ण थी कि ऐसी व्यावहारि
जायें जिससे हेमर्ले को फुसला लिया जावे और इसका एक विचित्र प ...।
लीग को सिद्ध करने के लिए बिस्मार्क को इटली के लिए एक महान् सत्ता बनाने की खोज करनी पड़ी और तब अपना बहाना भी गम्भीरता से निभाना पड़ा। फ़रवरी, १८८० में जबकि हेमर्ले ने यह दलील उठाई कि इटली को शान्त रखने के वास्ते इंगलैण्ड को भी आस्ट्रिया-जर्मनी की सन्धि में मिलाया जाये, बिस्मार्क ने उत्तर दिया कि इटली का कोई महत्त्व नहीं। एक वर्ष बाद उसने यह दलील उठाई कि तीन सम्राटों को लीग का बड़ा लाभ इटली और रूस के बीच सन्धि को रोकना था। जबाक लीग बनाई गई था, हेमर्ले रूस के विरुद्ध अधिक सुरक्षा की मांग पर आग्रह करता रहा, किन्तु बिस्मार्क इस पर तैयार नहीं हुआ। इसके स्थानापन्न के रूप में, उसने आस्ट्रिया-हंगरी को उसकी इटली की ओर की सीमाओं पर सुरक्षा देना प्रस्तावित किया; सैद्धान्तिक रूप में यह आस्ट्रिया की सेनाओं को गैलीशिया की रक्षा से मुक्त करेगा। इस प्रकार तीन सम्राटों की लीग, जो रूस के साथ मित्रता का समझौता था, ने घूम-फिर कर त्रिकुनी संघ (Triple Alliance) का मार्ग दिखाया जो बारीक अर्थ में उसके विरुद्ध सन्धि थी।" इससे आगे, "यह तीन सम्राटों की लीग, अपनी पूर्ववर्ती पवित्र संघ (Holy Alliance) की तरह, केवल भले समय की व्यवस्था थी। यद्यपि इसका निर्माण बाल्कन क्षेत्र में रूस और आस्ट्रिया के बीच संघर्ष रोकना था, वास्तव में इसने केवल तब तक कार्य किया जब तक कोई संघर्ष उत्पन्न नहीं हुआ। इसने यूरोप के सामने १८८१-८५ के बीच स्थायित्व का एक प्रभावशाली उदाहरण प्रस्तुत किया तथा शायद रूस को इससे कोई वास्तविक लाभ भी पहुँचा जबकि पॅजदेह के ऊपर उसका ब्रिटेन से झगड़ा हुआ। लेकिन बाल्कन क्षेत्र की नई कठिनाइयों के भार को यह न सँभाल सकी.

सभा बल्गेरिया के झगड़े के कारण एक बार फिर भंग हो गई थी क्योंकि रूस और आस्ट्रिया के स्वार्थों में टकराव हो रहा था। इस झगड़े के अवसर पर बिस्मार्क ने रूस का साथ देने के लिए कहा था 'बल्गेरिया के मामले में मैं एक रूसी हूँ।' उसने रूस की सहायता की और बलगेरिया के राजकुमार एलेग्ज़ेण्डर को सहायता नहीं दी। १८८७ में उसने रूस के साथ विश्वास-सन्धि (Reinsurance Treaty) की थी। इस सन्धि के अनुसार यदि तीनों देशों में से किसी का भी चौथे देश से युद्ध हो जाए तो अन्य दो देश मैत्रीपूर्ण तटस्थता को अपनाकर युद्धक्षेत्र को सीमित करने का प्रयत्न करेंगे। जर्मनी के साथ सन्धि करके रूस ने दृढ़ता से विश्वास दिलाया था कि वह बर्लिन सन्धि के अनुसार आस्ट्रिया के हितों का सम्मान करेगा। तुर्की की यूरोप में यथास्थिति (status quo) में कोई भी परिवर्त्तन सहमति से किया जाएगा। यह सत्य है कि रूस की जर्मनी के साथ इस सन्धि ने आस्ट्रिया और रूस के युद्ध को तथा फ्रांस और रूस की मैत्री को रोक दिया था।

त्रिमुखी सन्धि (Triple Alliance)—१८८२ में विस्मार्क ने आस्ट्रिया और इटली से त्रिमुखी सन्धि की। यह वात उल्लेखनीय है कि विस्मार्क ने ट्यूनिस पर अधिकार करने के लिए, जिसमें इटली भी दिलचस्पी रखता था, फ्रांस को उकसाया। इसका उद्देश्य फ्रांस का एक और शत्रु पैदा कर देना और इटली को अपने पक्ष में कर लेना था। जब १८८१ में फ्रांस ने ट्यूनिस पर अपना संरक्षण स्थापित कर लिया, उस समय इटली ने आस्ट्रिया-जर्मनी संगठन में आने का निर्णय किया था। किन्तु इस मत से प्रो० फे (Fay) सहमत नहीं हैं। उनके मतानुसार "विस्मार्क ने फ्रांस को ट्यूनिस के पके हुए फल को तोड़ने के लिए उकसाया तथा उसकी उपनिवेश नीति में भी उसकी मित्रता प्राप्त करने के लिए सहायता की थी जिससे कि वह १८७१ की पराजय को भूल जाये।" डा० गूच के मतानुसार, "त्रिमुखी संगठन इटली से आरम्भ हुआ। १८८२ के आरम्भ में इटली ने आस्ट्रिया से सन्धि प्रस्ताव किया था। वह अपनी स्थिति को शक्तिशाली बनाने तथा भविष्य में अपनी महत्त्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए समर्थन चाहता था। विस्मार्क इटली से मैत्री करने के विषय में अधिक इच्छुक नहीं था क्योंकि वह अविश्वसनीय साथी था और उसके साधन भी अधिक नहीं थे। किन्तु कुछ समय बाद कुछ लाभ देखकर वह इटली को इस संगठन में सम्मिलित करने की बात को मान गया। इटली के द्वारा फ्रांस से सन्धि करने की सम्भावना समाप्त हो जाएगी और रूस से युद्ध होने की अवस्था में आस्ट्रिया को इटली के सीमान्त पर सेनाएँ नहीं रखनी पड़ेंगी। जर्मनी से युद्ध की अवस्था में फ्रांस को इटली की सीमान्त पर अपनी सेनाएँ रखनी पड़ेंगी। मई, १८८२ में त्रिमुखी संगठन सन्धि पर हस्ताक्षर किए गए। यह सन्धि ५ वर्ष के लिए की गई और १८८७ में इसमें कुछ परिवर्तन किए गए थे। यह सन्धि अनेक बार दुहराई गई और १९१४ में भी यह चलती रही थी यद्यपि इटली लगभग पूर्ण रूप से विरोधी पक्ष में जा चुका था। त्रिमुखी संगठन सन्धि मूलरूप से सुरक्षात्मक थी तथा इसका ध्येय यूरोप में शान्ति को बनाए रखना था।

रूमानिया (Rumania)—१८८३ में रूमानिया का राजा केरोल (Carol) जर्मन आया था। विस्मार्क ने आस्ट्रिया से पूछा, क्या हमारा इटली के साथ शान्ति सन्धि को पूर्व की ओर बढ़ाना युक्तियुक्त तथा सम्भव होगा? और क्या इसके द्वारा रूमानिया, सर्विया और पोर्टे (Porte) की नीति को दृढ़ मार्ग पर अग्रसर किया जाये? आस्ट्रिया ने अक्टूबर, १८८३ में अपनी अनुमति दे दी और रूमानिया के साथ एक सुरक्षा सन्धि पर हस्ताक्षर किए गए। यह सन्धि गुप्त थी और पाँच वर्ष तक चली तथा इसको तीन वर्ष की अवधि के लिए बढ़ाया जा सकता था यदि अन्य पक्ष इसे भंग न करें।

इंग्लैण्ड (England)—विस्मार्क ने इंग्लैण्ड के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित किए थे। उसकी नीति का मूलाधार था, "इंग्लैण्ड की सद्भावना को यथासम्भव न खोया जाए।" जर्मनी की भाँति इंग्लैण्ड भी शान्ति बनाए रखने का इच्छुक था और वह जर्मनी अथवा अन्य किसी भी देश से इसके लिए सहयोग करने के लिए तैयार

था। बिस्मार्क ने ठीक ही कहा था कि "स्थल के चूहे और जल के चूहे में संघर्ष होने का कोई कारण नहीं है।" १८८५ में उसने कहा था कि दोनों देशों में युद्ध की उस समय तक कोई सम्भावना नहीं हो सकती जब तक इंग्लैण्ड में अप्रत्याशित प्रकृति का मन्त्रिमण्डल सत्ताधारी न बन जाये। इस प्रकार का मन्त्रिमण्डल न तो है ही और न ही उसके आने की आशा है। ऐसा मन्त्रिमण्डल तो हम पर व्यर्थ में आक्रमण करने का अपराध करेगा। इस प्रकार का मन्त्रिमण्डल इंग्लैण्ड में कभी नहीं आया। बिस्मार्क ने अपने पुत्र को लन्दन में जर्मनी का राजदूत नियुक्त किया और दो बार इंग्लैण्ड से सन्धि करने का प्रयत्न किया। इंग्लैण्ड से किसी भी प्रकार के झगड़े से बचने के लिए उसने जर्मनी की जल सेना और उपनिवेशों की उन्नति को हतोत्साहित किया था।

बिस्मार्क जटिल समस्याओं और परिस्थितियों में अपना काम निकालने में बड़ा सिद्धहस्त था। आँग्ल-रूसी तथा आँग्ल-फ्रांसीसी प्रतिद्वन्द्विता ने उसे बहुधा बहुत सुन्दर खेल खेलने का अवसर प्रदान किया था। कभी-कभी वह इंग्लैण्ड और रूस की प्रतिद्वन्द्विता की सर्वदा सुलगने वाली आग को कुरेदता रहता था। किन्तु उसने इसे कभी भी भड़कने नहीं दिया क्योंकि इंग्लैण्ड और रूस में युद्ध होने की स्थिति में जर्मनी और उसके मित्रों के इसमें फँस जाने की आशंका बनी रहती थी। युद्ध की अवस्था में उसकी सन्धि और विरोध सन्धियों का ताना-बाना टूट जाता, परिणामतः उसने इसे अधिक नहीं बढ़ाया। वह संतुलन बनाए रखने के लिए कृत-संकल्प था। इंग्लैण्ड, फ्रांस और रूस में मैत्री होने से त्रिमुखी सन्धि का एक गम्भीर प्रतिद्वन्द्वी खड़ा हो जाता।

१८८८ में बिस्मार्क ने कहा था "हम जर्मन केवल परमेश्वर से ही डरते हैं अन्य किसी से भी नहीं।" किन्तु यह सत्य नहीं था। बिस्मार्क ने स्वयं ही माना था कि वह इन मैत्री संगठनों के भूतों से डरता था यद्यपि इनके लिए व वह स्वयं ही उत्तरदायी था। उसने फ्रांस जैसे संवेदनशील राष्ट्र का अपमान किया। उसने सारे यूरोप को एक सशस्त्र छावनी में बदल दिया ताकि फ्रांस बदला न ले सके। उसे यह जानना चाहिए था कि शक्ति-प्रयोग द्वारा वह उस स्थिति को बनाए नहीं रख सकता, जिस स्थिति को जनता नहीं चाहती। यह सत्य है कि बिस्मार्क फ्रांस को अस्थायी रूप से विलग करने में सफल हो गया था, किन्तु उसने न तो इसे अस्त्रहीन ही किया और न इससे समझौता ही किया। वास्तव में उसने फ्रांस के विरुद्ध संगठन करके उसे मित्रों की खोज करने के लिए विवश कर दिया और परिणामतः १८९४ की फ्रांस और रूस की सन्धि एक प्रत्याशित परिणाम था।

बिस्मार्क द्वारा निर्मित जर्मन-आस्ट्रिया-रूस का त्रिकोण विरोधी तत्त्वों से पूर्ण था। आस्ट्रिया और रूस के सम्बन्ध कभी भी मैत्रीपूर्ण नहीं हो सकते थे। बर्लिन सम्मेलन के अनुसार बोसनिया, हर्जीगोविना (Herzegovina) और नोवी बाजार आस्ट्रिया को दिए गए। और ऐसा करने के कारण सम्बन्ध और भी बिगड़ गये थे। १८८० में बलकान द्वीपों में रूस और आस्ट्रिया की प्रतिद्वन्द्विता बढ़ गई थी और

बल्गेरिया के मामले में यह शिखर पर थी। बल्गेरिया के प्रश्न पर आस्ट्रिया और रूस के मतभेद के कारण बिस्मार्क को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। यह सत्य है कि बल्गेरिया के मामले में विस्मार्क ने रूस का साथ देकर रूस और आस्ट्रिया में युद्ध नहीं होने दिया, किन्तु इन दोनों के मनमुटाव को मिटाने की कठिनाई को विस्मार्क ने खूब समझा होगा। १८८८ में विस्मार्क को १८७९ की जर्मनी-आस्ट्रिया की सन्धि को प्रकाशित करने के लिए विवश होना पड़ा। इस प्रकार रूस को पता लगा कि जर्मनी ने रूस को धोखा दिया था और इस कारण १८९० से पहले जब विस्मार्क ने त्यागपत्र दिया, उस समय से ही रूस फ्रांस की ओर बढ़ने लग गया था। बिस्मार्क जैसा चतुर व्यक्ति भी कुछ समय तक ही श्वेत को श्याम दिखा सकता था, किन्तु सर्वदा ऐसा नहीं कर सकता था। आस्ट्रिया-रूस का सहयोग असम्भव था और विस्मार्क जैसा बाजीगर भी इन दोनों देशों को नहीं मिला सका।

त्रिमुखी सन्धि की नींव दुर्बल थी। इसमें इंग्लैण्ड का कोई स्थान नहीं था। यह सत्य है कि १८९० में जब विस्मार्क ने त्यागपत्र दिया उस समय इंग्लैण्ड और जर्मनी के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण थे किन्तु इंग्लैण्ड अनुभव करने लगा था कि अकेला रहना खतरनाक है।

आलोचकों के मतानुसार, "यद्यपि विस्मार्क ने जर्मनी पर आस्ट्रिया द्वारा आक्रमण की स्थिति में रूस की तटस्थता, रूस द्वारा आक्रमण करने की स्थिति में आस्ट्रिया की तटस्थता, फ्रांस द्वारा आक्रमण करने की स्थिति में इटली की सहायता तथा रूस और फ्रांस के सामूहिक आक्रमण की अवस्था में आस्ट्रिया-इटली का समर्थन प्राप्त करने का आश्वासन प्राप्त कर लिया था, तथापि यह वितण्डावाद इतना जटिल था कि विस्मार्क ही इसका प्रयोग कर सकता था। केवल वही पाँच गेदों को उछालकर सँभाल सकता था और इसमें आश्चर्य नहीं कि उसके रंगमंच से अदृश्य होने पर यह व्यवस्था भी समाप्त हो गई। बिस्मार्क की विदेश नीति की यही कमी थी।

ग्राण्ट (Grant) और टैम्परले (Temperley) के मतानुसार, "१८७० और १८९० के बीच यदि विस्मार्क की नीति का पर्यवेक्षण किया जाये तो पता लगता है कि इसका मुख्य ध्येय फ्रांस को नियंत्रण में रखना तथा जर्मनी के नये उपनिवेशों की अबाध प्रगति करना था। उसने इटली और इंग्लैण्ड को फ्रांस से उपनिवेशों की होड़ में फँसा दिया जिससे फ्रांस को अल्साए-लॉरेन के मामले का ध्यान ही न आए। उसने इटली से सन्धि करके फ्रांस की ओर से तथा आस्ट्रिया से सन्धि करके रूस की ओर से जर्मनी को सुरक्षित कर लिया था। विस्मार्क केवल एक ही समस्या को नहीं सुलझा सका और वह यह थी कि किस प्रकार आस्ट्रिया और रूस के साथ एक साथ ही अच्छे सम्बन्ध रखे जा सकते हैं। इस बात की असम्भावना उस समय प्रकट हो गई जब उसने १८८८ में आस्ट्रिया से रूस के विरुद्ध १८७९ में की हुई सन्धि को संसार के सम्मुख प्रकट कर दिया था। चतुर व्यक्ति थोड़े समय तक ही सफेद को काला बता सकता है, सर्वदा के लिए नहीं। १८८८ में रूस को पता चला कि इस चतुर कूटनीतिक कलाकार ने उसे धोखा दिया था किन्तु वह उसे सर्वदा के लिए धोखे में रख सकेगा यह

असम्भव था। बिस्मार्क का आस्ट्रिया से जितना अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध था उतना रूस के साथ नहीं था और यह सत्य अन्त में प्रकट हो गया था। इसमें तनिक भी झूठ नहीं कि जब १८९० में विस्मार्क का पतन हुआ उस समय रूस ने जर्मनी से अपने सम्बन्ध नहीं तोड़े थे। यह सम्भवतः सत्य है कि विस्मार्क के उत्तराधिकारी ने रूस को अधिक शीघ्रता से विरोधी बना दिया और शायद वह स्वयं इतनी शीघ्रता से विरोधी नहीं बन सकता था। १८८८ से रूस और जर्मनी के मार्ग भिन्न-भिन्न हो गए थे यह बात मौलिक रूप से सत्य ही है। वास्तव में विस्मार्क ने स्वयं इस तथ्य को जान लिया था और इस कारण वह इस कमी को अन्य स्थानों से पूरा करने की कोशिश में था।"

आलोचकों का मत है कि विस्मार्क ही १९१४ के महायुद्ध के लिए उत्तरदायी था। उसने उस चक्र को घुमा दिया था, जो अन्त में १९१४ में आकर पूर्ण गति प्राप्त कर गया था। उसने १८७९ में आस्ट्रिया से सन्धि की और वाद में उस गुट में इटली के आजाने के पश्चात् यह त्रिमुखी सन्धि वन गई। उसकी सन्धियों का परिणाम प्रतिक्रिया सन्धियों का होना अनिवार्य था और अन्त में इस क्रम ने सारे यूरोप को दो सशस्त्र गुटों में विभक्त कर दिया, जो १९१४ के युद्ध के कारणों में प्रमुख था। १८७०-७१ में विस्मार्क ने फ्रांस का अपमान करके भी १९१४ के युद्ध का बीजारोपण किया था। फ्रांस की जनता एल्साए-लॉरेन को प्राप्त करने लिए दृढ़प्रतिज्ञ थी और इसमें क्या आश्चर्य है कि सेडान के युद्ध में ऐतिहासिक तथ्य छुपा था कि मार्ने का युद्ध अवश्य हो। विस्मार्क की लहू और लोहे की नीति के परिणामस्वरूप यूरोप के राष्ट्रों में शस्त्र-शक्ति बढ़ाने की दौड़ आरम्भ हो गई और इस प्रकार १९१४ के युद्ध का प्रमुख कारण सैन्यवाद भी था।

बिस्मार्क का पतन (Fall of Bismarck)—१८७१ से १८९० के काल में बिस्मार्क यूरोप का भाग्यविधाता रहा। केवल १८७९ के जर्मनी और आस्ट्रिया की सन्धि को छोड़कर अन्त तक विस्मार्क और विलियम प्रथम के सम्बन्ध बहुत अच्छे रहे। विस्मार्क को इस बात का गर्व था कि वह विलियम प्रथम का सबसे अधिक स्वामिभक्त सेवक है। मार्च, १८८८ में विलियम की मृत्यु के पश्चात् सम्राट् फ्रैड्रिक उसका उत्तराधिकारी बना किन्तु उसका शासन थोड़े ही दिन चला और उसी वर्ष विलियम द्वितीय सिंहासन पर बैठा। सम्राट् के सिंहासनासीन होते ही उसकी इस लौह पुरुष से खेंचातानी आरम्भ हो गई जिसका अन्त मार्च, १८९० में बिस्मार्क के त्यागपत्र देने में हुआ।

विस्मार्क के त्यागपत्र के अनेक कारण बताए जाते हैं। नया सम्राट् युवक था और सारे कार्य स्वयं ही करना चाहता था। वह किसी भी व्यक्ति का अनुयायी नहीं बनना चाहता था। इस परिस्थिति में वह राज्य के सम्पूर्ण मामलों पर बिस्मार्क का नियन्त्रण सहन नहीं कर सकता था। उसके शब्दों में, "मुझे मालूम हुआ है कि मेरे मंत्री अपने को विस्मार्क का कर्मचारी मानते हैं।" विलियम द्वितीय के इस रुख के कारण विस्मार्क भी यह अनुभव करने लगा कि सारे राज्ययंत्र पर उसका नियंत्रण

है और बस, इसलिए वह इस सत्ता को किसी दूसरे को बाँटना नहीं चाहता था। वह स्वयं को जर्मनी का निर्माता मानता था और इसमें आश्चर्य नहीं कि जब विलियम द्वितीय ने राज्य की गुप्त बातें जानना चाहा तो उसने इसे अपना अपमान समझा। बिस्मार्क ने अपने पुत्र हरबर्ट को शासन में शिक्षित कर दिया था और वह १८८६ से विदेश सचिव के पद पर कार्य कर रहा था। बिस्मार्क स्वयं यही समझता था कि उसका पुत्र ही उसका उत्तराधिकारी बनेगा। हरबर्ट बिस्मार्क योग्य था और बहुत-सी कार्यक्षमता रखता था और उसने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि वह पुराने ढेर का भाग ही नहीं अपितु स्वयं भी क्षमतावान है। उसने अपने पिता की निर्दयता, रूखेपन और तानाशाही ढंग की नकल करने का प्रयत्न किया। उसका व्यवहार असहनीय था। जनता बिस्मार्क की बातें सहन कर सकती थी किन्तु बिना श्रेय के हरबर्ट की बातें सहन नहीं कर सकती थी। इन बातों से कटुता उत्पन्न हुई।

१८८८ से १८८९ की अवधि में बिस्मार्क अधिकतर बर्लिन से बाहर ही रहा करता था। वह अपना अधिकांश समय अपने ग्राम्य भवन में ही बिताता, और सारा कार्य भी वहीं से किया करता था। राजधानी से उसकी अनुपस्थिति केवल वृद्धावस्था के कारण ही नहीं थी। उसका विचार था कि उसका कार्य उसकी देख-रेख में उसका पुत्र कर सकता है। बिस्मार्क ने इस तथ्य को नहीं समझा कि युवक सम्राट् के निकट होना आवश्यक है और उसकी अनुपस्थिति के कारण उनमें मतभेद होने की बड़ी सम्भावना है। बिस्मार्क का तत्कालीन व्यक्तियों, मन्त्रियों, कूटनीतिक शक्तियों से सम्पर्क टूट गया था। चान्सलर की आलोचना बढ़ने लगी और परिवर्तन की माँग होने लगी।

खिवैया का त्याग

विलियम द्वितीय के पहले के सम्राटों ने सब कुछ बिस्मार्क के हाथों में छोड़ दिया था और जो कुछ वह ठीक समझता था उन्हें बता देता था। इसके अतिरिक्त वे परवाह भी नहीं करते थे। किन्तु विलियम द्वितीय भिन्न परिस्थिति चाहता था। लौह पुरुष चान्सलर से पाठ पढ़ने की अपेक्षा वह सब कुछ स्वयं देखकर सीखना चाहता था। वह केवल जर्मनी में ही नहीं अपितु सेण्ट पीटर्सबर्ग, विआना,

लन्दन, एथेन्स और कुस्तुनतुनिया की यात्रा भी की थी। विदेशों से व्यक्तिगत सम्पर्क हो जाने के कारण वह जर्मनी की विदेश नीति के विषय में स्वतन्त्रतापूर्वक सोचना चाहता था, किन्तु बिस्मार्क विलियम की यात्राओं से खुश नहीं था। जब विलियम द्वितीय को इन बातों का पता चला तो वह बिस्मार्क के विरुद्ध हो गया।

अपने सत्ताकाल में ही बिस्मार्क के अनेक शत्रु थे। पादरी, उदारदल वाले, लूथर के अनुयायी, उद्योगपति तथा सेनापति उसके विरोधी थे। बाल्डरसी जो प्रधान सेनापति के पद पर मोल्टके का उत्तराधिकारी था बिस्मार्क के विरुद्ध भयंकर षड्यन्त्रकारी था। बिस्मार्क के विरोधी युवक सम्राट् द्वारा उसके झगड़े से बड़ा आनन्द लिया करते थे।

बिस्मार्क और विलियम द्वितीय में संघर्ष का मुख्य कारण यह था कि बिस्मार्क राज्य पर अपना नियन्त्रण बनाए रखने के लिए दृढ़ था किन्तु इसके विपरीत विलियम द्वितीय इस नियन्त्रण को छीन लेना चाहता था। ग्राण्ड ड्यूक ऑफ बेडिन के शब्दों में "वास्तविक प्रश्न यह था कि बिस्मार्क अथवा होहनजोलर्न वंश शासन करे?" विलियम द्वितीय शब्दों के में, "इस देश का एक ही स्वामी है और वह स्वामी मैं हूँ। मैं अपने अतिरिक्त किसी भी अन्य व्यक्ति को सहन नहीं करूँगा। जिस देश और प्रजा को मैंने उत्तराधिकार में प्राप्त किया है उसमें मैं एक गुण देखता हूँ और प्रभु ने मुझे यह कार्य सौंपा है कि मैं इस गुण की वृद्धि करूँ। जो मेरी सहायता करेंगे मैं उनका स्वागत करता हूँ, जो मेरा विरोध करेंगे मैं उन्हें चूर-चूर कर डालूँगा।"

बिस्मार्क को बार-बार त्यागपत्र देने के लिए कहा गया। अन्त में उसे विवश होकर २० मार्च, १८९० को त्यागपत्र देना पड़ा। विलियम द्वितीय ने बड़े खेद से लौह पुरुष चान्सलर का त्यागपत्र स्वीकार किया। उसने उसकी अनन्य सेवाओं का वर्णन किया और उसे ड्यूक ऑफ ल्युऐनबर्ग तथा सेना में 'कर्नल-जनरल' तथा फील्डमार्शल की उपाधियाँ प्रदान कीं। पंच (Punch) पत्रिका ने उसके सम्बन्ध में सूक्ष्म रूप से यों कहा है, "जिस खिवैया ने इस नौका को इतने तूफानों और चट्टानों से बचाया, उसे नौका से उतार दिया गया।"

बिस्मार्क का मूल्यांकन (Estimate of Bismarck)—जी० बी० स्मिथ के मतानुसार, "शासक के रूप में बिस्मार्क सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों में से एक था। घमण्डी होते हुए भी वह समय देखकर चलने वाला था। वह शेखी बघारा करता था कि उसने कूटनीति में सत्य सम्भाषण का एक नवीन युग आरम्भ किया है। उसमें अनेक कमियाँ थीं। वह अपने प्रतिद्वन्द्वियों के प्रति ईर्षालु और अपने शत्रुओं के प्रति वैमनस्य रखने वाला तथा सिद्धान्तहीन व्यक्ति था। वह वास्तविक रूप से कोई वक्ता नहीं था, किन्तु अवसर पड़ने पर वह अपनी मातृभाषा में ओजस्वी भाषण दे सकता था। अपने देश की स्वतन्त्रता को स्थापित करके उसने स्वातन्त्र्य-युद्ध को सफल बना दिया था। चान्सलर की यूरोप में वह व्यक्तिगत धाक थी जो उन्नीसवीं शताब्दी में अद्वितीय थी। उसका व्यक्तित्व प्रशियन जाति का सर्वश्रेष्ठ और महान् उदाहरण था। निजी जीवन में वह अत्यन्त स्नेही व्यक्ति था। उसकी पत्नी और

सन्तान उसके प्रेम के पात्र थे। उसके द्वारा अपनी पत्नी को लिखे गए पत्र इस बात के साक्षी हैं। उसके विना उसका देश एक मध्यम श्रेणी की शक्ति रह जाता।"

प्रो० फिलिप के शब्दों में "विस्मार्क मैक्यावैली (Machiavelli) विचार-धारा का शासक था। वह उन व्यर्थ के काल्पनिक जंजालों से घृणा करता था जो उसे वास्तविकता से परे ले जाते थे। किन्तु फिर भी उसके चरित्र में इटली वालों जैसी लचक नहीं थी। उसका चरित्र मुख्य रूप से कटुतापूर्ण और धृष्ट प्रकृति का था और ऐसा प्रतीत होता था मानो उसे अपने ध्येय का स्पष्ट ज्ञान था और वह निर्विवाद रूप से इसे प्राप्त करने के लिए पर्याप्त रूप से प्रयत्नशील था और इसी लिए स्पष्ट वक्ता था। वह अपने चरित्र के इस अंग का प्रभाव दूसरों पर भी डाल सकता था क्योंकि वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए योजना बना सकता था, अपनी राह की अड़चनों को लाँघ सकता था और वह भली प्रकार जानता था कि किस अवसर पर उसे बोलना है और कब मौन रहना है। प्रशिया के राजा की महत्त्वाकांक्षाओं के प्रति सहानुभूति रखने के अतिरिक्त, उसकी शिक्षा-दीक्षा ने उसे, जिस कार्य को पूरा करने का भार सौंपा था, पूर्णतः योग्य बना दिया था। विस्मार्क राजनीति में मैटरनिक की तरह जनमत की उपेक्षा नहीं करता था। वह जानता था कि जनमत एक अन्धे बलवान् दानव की तरह है जिसे सरलता से काम में लाया जा सकता है तथा जो कुशलता से व्यवहार करने पर बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है, किंतु चिढ़ जाने पर भयानक भी हो सकता है। विस्मार्क ने 'अत्यावश्यक' परिस्थिति में ही जनमत का साथ दिया।"

सर मेरियट (Marriott) के मतानुसार, "उन्नीसवीं शताब्दी के इतिहास में विस्मार्क का स्थान सर्वोच्च है।" केवूर (Cavour) के अतिरिक्त इस प्रथम स्थान के लिए उसका अन्य कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। केवल वही लोग उसे एक महान् देश-भक्त नहीं मानते जिनके विचार से देशभक्ति एक व्यर्थ की कल्पना है। विस्मार्क का उद्देश्य प्रशिया को जर्मनी में मिलाकर जर्मनी में विस्तार करना नहीं था अपितु जर्मनी को प्रशिया में मिलाकर उसका निर्माण करना था। विस्मार्क का यही सर्वोपरि उद्देश्य तथा उसकी सबसे महान् सफलता भी थी। उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए जो साधन अपनाए उनका कोई भी सज्जन पुरुष समर्थन नहीं करेगा। इस दिशा में उसकी कूटनीति धोखाधड़ी और झूठ से पूर्ण थी और उसने महान् शस्त्र शक्ति का सिद्धांतहीनता से प्रयोग किया।

सैरोलिया (Sarolea) के शब्दों में, "विस्मार्क यथार्थवादी और भौतिकवादी था। वह टैलीरैण्ड (Talleyrand) की तरह आदर्शवादी और भविष्य के कल्पना-लोक में विचरने वाला व्यक्ति न था और न ही उसने टैलीरैण्ड की भाँति जर्मनी के सामुद्रिक साम्राज्य पर अधिकार प्राप्त करने के स्वप्न देखे थे।"

सीमैन के अनुसार, "विस्मार्क के उद्देश्य और व्यवहार को दृष्टि में रखकर जर्मनी में उसकी तुलना केवूर (Cavour) से की जाती रही है।" इतना स्पष्ट है कि उपर्युक्त दोनों व्यक्तियों ने राष्ट्रवाद को संकुचित कर दिया था; जबकि वे इसके

विस्तार और प्रसार का दम भरते थे। विस्मार्क की तुलना नेपोलियन तृतीय से करने से इस तथ्य पर और अधिक प्रकाश पड़ता है। जर्मन-साम्राज्य का विधान १८५२ के द्वितीय साम्राज्य के विधान की भाँति था। सबसे मुख्य बात तो यह है कि 'साम्राज्य' शब्द में ही असत्य छिपा था। १८५२ के पश्चात् फ्रांस और १८७१ के पश्चात् जर्मनी केवल इसलिए 'साम्राज्य' पुकारे जाते थे ताकि वे साम्राज्य न होने के सत्य को छिपा सकें। द्वितीय साम्राज्य का पश्चिमी यूरोप पर उतना अधिकार न रह सका जितना कि प्रथम साम्राज्य को प्राप्त था। ठीक इसी प्रकार ही जर्मनी का जितना साम्राज्य विस्मार्क के समय में था उतना विलियम प्रथम के समय में न रह सका। फ्रांस का द्वितीय साम्राज्य फ्रांस के प्रथम साम्राज्य जितना न था। वोर्बन्स (Bourbons) और लुई फिलिप (Louis Philippe) के जमाने के फ्रांस राज्य से यह कुछ ही अधिक था। यही बात जर्मन-साम्राज्य पर लागू होती है। आस्ट्रिया और वोहेमिया (Bohemia) को जर्मनी से अलग कर देने के पश्चात् जर्मनी को साम्राज्य कहना कोरा झूठ था। यही बात हिटलर के दिमाग़ में भी थी। अतः उसने कहा था, "झूठ जितनी अधिक मात्रा में होगा, लोग उतना अधिक उस पर विश्वास करेंगे।" १८७१ से १९१४ तक दुनिया भर के मान-चित्रों (Maps) ने अपने भीतर जर्मनी के जिस साम्राज्य को दिखाया था, वह साम्राज्य वास्तव में जर्मनी का न होकर प्रशिया का था। इसी प्रकार संसार भर के इतिहासों ने जर्मनी साम्राज्य के जिस ऐक्य की चीखो-पुकार मचाई, वह जर्मनी साम्राज्य के ऐक्य की चीखो-पुकार न होकर उसके विघटन की चीखो-पुकार थी।

क्योंकि विस्मार्क उदारवाद (Liberalism) और राजनीति के मौलिक सिद्धांतों (Radicalism) के उठते हुए भयंकर तूफ़ानों के विरुद्ध प्रशियन शक्ति को बनाए रखना चाहता था, इसलिए वह जर्मनी की एकता के पक्ष में नहीं था और उसके मार्ग में रोड़े अटकाता था। वास्तव में जर्मनी की एकता की मांग पर्याप्त और स्पष्ट रूप से १८४८ में की जा चुकी थी, किन्तु यह मांग विद्रोहियों द्वारा की गई थी अतः 'विद्रोह-दमन' की आड़ में उसे दबा दिया गया था। इस मांग का विद्रोहियों द्वारा किया जाना ही इसकी असफलता का मुख्य और प्रबल कारण था। उपर्युक्त घटना को ध्यान में रखकर १८६२ और १८७१ के बीच जर्मनी में वह उदारवादियों (Liberals) और स्वतन्त्र विचारों के व्यक्तियों (Radicals) से उसी प्रकार लोहा लेता रहा, जिस प्रकार १८४२ से १८५१ के बीच फ्रांस में नेपोलियन तृतीय ने उनसे लोहा लिया था। १८६२ से साडोवा (Sadowa) के बाद तक उदारवादियों ने इसका विरोध किया क्योंकि वह प्रशियन विधान के विरुद्ध चलने लगा था। उदारवादी लुई नेपोलियन को यदि चाहते भी तो केवल इस उद्देश्य से कि वह साम्यवादियों का शत्रु था और इधर उदारवादी भी साम्यवादियों से घृणा करते थे। अतः समान उद्देश्य होने के कारण उनका नेपोलियन की ओर झुकना स्वाभाविक था। इसी प्रकार प्रशिया के उदारवादी विस्मार्क को शेष जर्मनी के विरुद्ध अपना मित्र समझते थे। आन्तरिक सुरक्षा के प्रश्न को सामने रखकर फ्रांस के उदारवादियों ने लुई नेपोलियन को क्षमा कर दिया था। इसी प्रकार बहुत से प्रशियन उदारवादियों

ने बिस्मार्क के अवैध कर (taxes) लेने के अपराध को क्षमा कर दिया। इस क्षमा दान का कारण केवल एक था और वह यह था कि उसने 'उत्तर जर्मन-संघ को जन्म दिया था तथा प्रशिया के लिए एक निश्चित सैनिक विजय प्राप्त की थी।

संक्षेप में विस्मार्क के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा जा सकता है कि उसका वीर और विशिष्ट व्यक्तित्व इतिहास की आधी शताब्दी पर छा गया था। उसने अपने राज्य के निर्माण और उसकी रक्षा के लिए जिन साधनों को जुटाया वे उसके अपने प्रयत्नों का परिणाम थे। उसका कोई भी सहकार्यकर्ता नहीं था। जिन लोगों ने उसके कार्य में हाथ वटाया वे उसके कारिन्दे (Agents) या सहायक थे। यह एक अलग बात है कि ये सहायक अपनी इच्छा से उसके सहायक वने थे या उन्हें वलपूर्वक सहायक वनाया गया था। (जिस यूरोप में उसने इतनी वड़ी विजय प्राप्त की, उस यूरोप में वह अपनी आध्यात्मिक और नैतिक जड़ें न जमा सका। उसने भूत (Past) को तो नष्ट कर ही दिया, किन्तु भूत के जिस खंडहर पर उसने भविष्य का महल वनाया था, उससे वह डरने लगा था।) वह समकालीन महत्त्वाकांक्षियों से बुरी तरह घृणा करता था। १८९० की यह वात वड़ी ही विचित्र प्रतीत होती है कि नेपोलियन अपने सम्पूर्ण साम्राज्य को भंग करके उसे पुनः संगठित करना चाहता था। इस कार्य में युवराजों को छोड़कर वह किसी अन्य का परामर्श स्वीकार करना न चाहता था। वह इस कार्य में अन्य का हस्तक्षेप नहीं चाहता था, क्योंकि वह जानता था कि इस तरह पहले से भी कहीं अधिक तानाशाही सरकार स्थापित कर सकने में समर्थ होगा। यही कारण है कि उसने अपने कार्य में किसी सिद्धांत या नियम की अपेक्षा नहीं की। उसने अपना सम्पूर्ण जीवन प्रशिया को यूरोप द्वीप के राष्ट्रों में प्रमुख और प्रवल स्थान दिलाने में लगा दिया। वह प्रशिया को सर्वोच्च स्थान प्रदान करके भविष्य में उसके उस स्थान को उसी स्थिति में बनाए रखना चाहता था ताकि वह समय आने पर जर्मनी की उन्नत या अवनत स्थिति को चुनौती दे सके। यद्यपि वह इस प्रकार वड़ी भारी शक्ति का स्वामी बन गया था, तो भी उसकी नीति उसे इस शक्ति के प्रयोग की आज्ञा न देती थी; क्योंकि वह जानता था कि इस शक्ति के प्रयोग के परिणामस्वरूप जो समस्याएँ उसके सामने आएँगी वह उन्हें सुलझा न सकेगा। यह भी मालूम था कि जर्मनी को प्रशिया का स्वामी वना देने का अर्थ जर्मनी को प्रशिया का आढ़तिया (agent) बना देना होगा और ऐसा होने में विस्मार्क के स्वार्थ को चोट पहुँचती थी। यही कारण है कि उसने जीवन-पर्यन्त जर्मनी की संसार भर को अपना साम्राज्य वनाने की आकांक्षा पर अपना पूर्ण नियन्त्रण रखा। इस दिशा में एक और बात भी ध्यान देने योग्य है और वह यह कि विस्मार्क से पूर्व जर्मनी को इतनी आशातीत शक्ति कभी भी प्राप्त न हुई थी। जर्मनी के लोग इस शक्ति के द्वारा अपने पुराने और परम्परागत स्लाव शत्रुओं से वदला चुकाना चाहते थे, किन्तु बिस्मार्क ने अपनी चातुरी के वल पर ऐसा न होने दिया; क्योंकि वह जानता था कि स्लाव यदि समाप्त हो गए तो जर्मन ज़ोर पकड़ जाएँगे और जर्मनी का ज़ोर पकड़ना ही हो सकता है कि विस्मार्क की सत्ता ही को उखाड़ फैंके। यह ठीक है कि

उसने भारी ताकत को प्राप्त किया था तो भी वह जर्मनी की समुद्रपार बस्तियाँ बसाने की माँग को मूर्ख बच्चों के दुराग्रह से किसी कदर बढ़कर न मानता था।

Suggested Readings

Bismarck : *Reflections and Reminiscences.*
Bulow : *Imperial Germany.*
Clarke, C. W. : *Franz Joseph and Bismarck.*
Darmstaedter, F. : *Bismarck and the Creation of the Second Reich, 1948.*
Dawson, W. H. : *The German Empire (1867-1914).*
Eyck, E. : *Bismarck and the German Empire.*
Gooch, C. P. : *History of Modern Europe (1878-1919).*
Robertson, C. G. : *Bismarck.*
Taylor, A. J. P. : *Bismarck, the Man and the Statesman, 1955.*
Taylor, A. J. P. : *The Struggle for Mastery in Europe (1848-1914), 1958.*

अध्याय २१

जर्मनी १८९० से १९१४ तक

(Germany from 1890 to 1914)

विलियम द्वितीय (१८८८-१९१८)—१८९० से जर्मनी के इतिहास का वर्णन करने से पूर्व यह आवश्यक है कि विलियम द्वितीय के चरित्र का वर्णन किया जाए। अपने पिता फ्रेड्रिक तृतीय के अल्प राज्यकाल के पश्चात् वह १८८८ में सिंहासन पर बैठा। राज्यारोहण के समय वह २९ वर्ष का युवक था। उसमें बहुत शक्ति तथा महत्त्वाकांक्षा थी। वह जर्मनी को संसार की सबसे महान् शक्तियों में से एक बनाना चाहता था। उसका विश्वास 'विश्व-शक्ति या पतन' की नीति में था। वह घमण्डी और भावुक था। फिशर के अनुसार "यह नया राजा यूरोपीय समाज में तुरन्त ही एक प्रमुख और अशान्ति का तत्त्व बन गया। शीघ्र ही यह बात प्रकट हो गई थी कि उसमें प्रशंसनीय और प्रतिभाशाली गुण हैं। हर मामले में उसका दृष्टिकोण साहसपूर्ण और विशाल, उसकी ज्ञानपिपासा तीव्र और ठोस, उसका परिश्रम महान् और उसकी स्मरण-शक्ति अत्यन्त सूक्ष्म और सम्पन्न हुआ करती थी। वह धार्मिक, कर्त्तव्यपरायण, देशभक्त और कभी-कभी, विशेषत: जब वह समुद्र के विषय में बोलता हो तो, उसका भाषण उच्च कल्पना से ओत-प्रोत और प्रभावशाली होता था। किन्तु इन गुणों के साथ उसमें कुछ निम्नकोटि के अवगुण भी थे। यथा घमण्ड, नियन्त्रणहीन क्रोध, नाटकीय आडम्बर का प्रेम जो उसे परिहास का पात्र बना देता था और वह इतना कटु था कि उसकी कटुता घृणा तुल्य हो जाया करती थी। वह नीच-से-नीच स्तर भी खुशामद कर सकता था और वह क्रोध के

विलियम द्वितीय

ज्वार में घोर अत्याचार करने की शाही आज्ञा भी दे सकता था। यह ठीक है कि उसकी चंचलता उसे एक अच्छा साथी बना सकती थी, किन्तु एक शासक के रूप में चंचलता ने उसे अत्यन्त खतरनाक बना दिया था। बहुत बार खतरे और उपहार प्राप्त करने के पश्चात् उसके मन्त्रियों ने अपने से पूछना शुरू कर दिया कि यह जर्मनी का जिद्दी और चंचल स्वामी कहीं दिमाग स पागल तो नहीं है ?"

ग्राण्ट (Grant) और टैम्परले (Temperley) के अनुसार, "यदि विलियम द्वितीय कहीं फ्रैड्रिक महान् हुआ होता तो उसे भी पता चलता कि किस प्रकार लाखों आदमियों को अमानवीय माधुर्य से प्रभावित किया जा सकता है। वह उनकी शक्तियों को अपनी इच्छित दिशा में लगाकर उनसे सम्पूर्ण स्वामिभक्ति भी प्राप्त कर सकता था, किन्तु तारतम्य उसी समय प्राप्त किया जा सकता है जबकि शासक का ध्येय स्थिर, अक्षम्य, पश्चात्ताप-हीन तथा निश्चित हो। इस प्रकार का ध्येय सनकी, कुशाग्र-बुद्धि और सरलता से बहका दिए जाने वाले कैसर का नहीं था। उसके धर्म ने, यद्यपि वह आत्मा से उसका अनुयायी था उसे निरंकुशतावाद की ओर झुका दिया। किन्तु वह जनता से डरता था और बड़े ध्यान से उसकी खुशामद में लगा रहता था। हृदय में भले ही शान्ति-प्रिय हो किन्तु उसके असावधानी और सनक में आकर सर्वसाधारण के सम्मुख अपनी सेना तथा युद्ध की प्रशंसा, व्यक्तिगत रूप से एकान्त में विदेशी कूटनीतिज्ञों के साथ उसके आश्चर्यजनक अनौपचारिक व्यवहार से, बहुधा बहुत बुरा प्रभाव पड़ता था और अत्यन्त भयानक परिस्थितियाँ उपस्थित हो जाया करती थीं। वह अपने को हमेशा सर्वज्ञ समझता था और अन्य लोगों का मत-भेद या विरोध सहन नहीं करता था। उसके प्रशंसक उसके ज्ञान की तुलना सीगफ्रेड (Siegfried) और एकेलीज़ (Achilles) से करते थे। चापलूसी उसे किसी पुष्प की सुगन्ध की तरह आनन्द देती थी। उसका धैर्य कठिनाई का सामना नहीं कर सकता था जैसा कि १९०८ में जब 'डेली टेलीग्राफ' (Daily Telegraph) के लेखों के कारण उसके विरुद्ध क्षोभ का ज्वार उठ खड़ा हुआ तो उस समय उसने राज-परित्याग करने तक को कहा जिससे स्पष्ट हो गया कि उसका धैर्य समाप्त हो गया है।"

उद्घोषणाएँ (Proclamations)—जून, १८८८ में अभिषेक के अवसर पर विलियम द्वितीय ने स्थल सेना, जल सेना और प्रजा के प्रति उद्घोषणाएँ की थीं। स्थल सेना के प्रति उसने कहा, "यह समय कठोर परीक्षा और कष्ट का है और इस स्थिति में परमात्मा के आदेशानुसार मैं स्थल सेना का नेता बना हूँ और इसलिए मैं प्रेम की बड़ी गहरी भावना से प्रेरित होकर अपनी स्थल सेना को सर्वप्रथम सम्बोधित कर रहा हूँ। हम दोनों एक दूसरे के लिए बने हैं।" समुद्री सेना के प्रति उसने आश्वासन दिलाया था कि वह इसकी उन्नति का प्रतिपादक और समर्थक है। तीन दिन पश्चात् उसने प्रजा को सम्बोधित किया। राजसिंहासन से विलियम द्वितीय ने कहा, "जहाँ तक विदेश-नीति का सम्बन्ध है मैं यथाशक्ति शान्ति का समर्थन करता रहूँगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मैं अपनी सेना से अनन्य प्यार करता हूँ, किन्तु मैं इस प्रेम को इतना अधिक आगे नहीं बढ़ने दूँगा कि मेरी प्रजा के हितों को चोट पहुँचने लगे।

जर्मनी को न तो अधिक सैन्य-यश की आवश्यकता है और न ही अधिक प्रदेशों को जीतने की चाह।"

पिछले अध्याय में यह पहले ही बताया जा चुका है कि किस प्रकार नये सम्राट् का आइरन चांसलर से संघर्ष छिड़ गया और जिसने उसे १८९० में त्यागपत्र देने पर बाध्य कर दिया। इसके बाद, वह स्वयं अपना चांसलर बन बैठा और शेष शासन-काल में उसने अपनी मनमानी की; मन्त्रियों को केवल उसकी आज्ञाओं का पालन करना पड़ता था। फिर भी उसके शासन काल के चारों चांसलरों का १८९० के बाद का विवरण दिया जाना चाहिए।

चान्सलर कैप्रिवी (Chancellor Caprivi) (१८९०-१८९४)—१८९० में कैप्रिवी बिस्मार्क के पश्चात् चान्सलर के पद पर आया था। स्वयं बिस्मार्क ने १८७८ में कैप्रिवी को अपना उत्तराधिकारी मानते हुए कहा था, "मैं बहुधा आश्चर्य से सोचा करता था कि मेरा उत्तराधिकारी कौन होगा—किन्तु आज मैंने उसे देख लिया है।" १८९० में स्वयं बिस्मार्क ने उसके नाम का सुझाव पेश किया था।

जब कैप्रिवी (Caprivi) ने कार्यभार सँभाला तो उसने अपनी राजनीतिक अनुभवहीनता को स्पष्टतः माना था। विलियम द्वितीय ने उसे आश्वासन दिया था—"इन मामलों की जिम्मेवारी मैं उठाऊँगा।" विलियम द्वितीय ने कैप्रिवी के विषय में आस्ट्रिया के सम्राट् को लिखा था—"बिस्मार्क के पश्चात् यह जर्मनी का सबसे महान् व्यक्ति है, जो एक चट्टान की तरह दृढ़ और मेरे प्रति अत्यन्त स्वामि-भक्त है।" आस्ट्रिया का सामन्तवर्ग कैप्रिवी से घृणा करता था और उसकी निजी रुचि व्यापार की ओर थी। वह ब्रिटेन के प्रति मैत्री भाव रखता था। इसके ही काल में १८९० में हेलिगोलैण्ड (Heligoland) का जन्जीबार के साथ विनिमय किया गया था। जर्मन चुंगी व्यवस्था पारस्परिक आदान-प्रदान के आधार पर निर्धारित की गई थी। रूस के साथ रीइन्शोरैंस की सन्धि (Reinsurance Treaty) समाप्त हो चुकी थी और इसी के काल में ही फ्रांस और रूस का गठजोड़ क्रियान्वित हुआ था। आस्ट्रिया के अनुदार दल ने उसकी पदच्युति की माँग की थी जिस पर १८९४ में उसने त्यागपत्र दे दिया था।

चान्सलर होहनलोही (Chancellor Hohenlohe) (१८९४-१९००)—कैप्रिवी के बाद होहनलोही चान्सलर बना। नियुक्ति के समय उसकी आयु ७५ वर्ष की थी और राज्य के मामलों में वह नाममात्र का अधिकारी था। राज्य के कार्य वास्तविक रूप से विलियम द्वितीय और विदेश मन्त्री बूलो (Bulow) के हाथों में थे। इस काल में जर्मनी ने व्यापार और विदेशों में अपना धन लगाने की ओर अधिक ध्यान दिया। १८९५ में विलियम द्वितीय ने कहा, "जर्मन साम्राज्य एक विश्व साम्राज्य बन गया है।"

१८९७ में चीन में जर्मन मिशनरियों की हत्या कर दी गई थी। जर्मनी ने इससे लाभ उठाया, और चीन का लगभग २०० वर्गमील का प्रदेश ९९ वर्ष के पट्टे पर ले लिया। १८९९ में जर्मनी ने प्रशान्त महासागर (Pacific Ocean) में

केरोनलाइन द्वीप को खरीद लिया। १८९९-१९०० में जर्मनी ने सामोग्रा (Samoa) के दो बड़े द्वीप प्राप्त किए थे। १९० में जर्मनी ने चीन में वाक्सर विद्रोह (Boxer Rising) के विरुद्ध अभियान में भाग लिया। १८९९ में जर्मनी के साहूकारों ने बगदाद तक रेल बिछाने के लिए तुर्की के सुल्तान से कुछ विशेष सुविधाएँ प्राप्त की थीं। ब्राज़ील में जर्मनी के लोग जाकर बस गए थे और उत्तरी अफ्रीका में जर्मनी का व्यापार और पूँजी की वृद्धि होने लगी थी।

जर्मनी अपने समुद्री बेड़े की उन्नति की ओर उत्तरोत्तर अधिक ध्यान देने लगा था। विलियम द्वितीय ने अपनी नीति की रूपरेखा का इस प्रकार वर्णन किया—"जर्मनी का भविष्य समुद्र पर निर्भर है। समुद्र जर्मनी की महानता के लिए अत्यावश्यक है।" १८९८ में समुद्री बेड़े से सम्बन्धित प्रथम कानून बनाया गया। इस प्रकार जर्मनी का समुद्री बेड़ा उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। इस सम्पूर्ण अवधि में विलियम द्वितीय की टिरपिट्ज (Tirpitz) ने सहायता की, जो १८९७ से १९१६ तक समुद्री बेड़े के विभाग का प्रमुख रहा था।

बूलो (Bulow) (१९००-०९)—१९०० में होहनलोही (Hohenlohe) के अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् राजकुमार बूलो, जो विलियम द्वितीय के साथ पहले से ही कार्य कर रहा था, चान्सलर बना। इसी के ही काल में ब्रिटेन के जर्मनी के साथ मैत्री की सन्धि के प्रयत्न असफल हुए थे। इंग्लैण्ड और फ्रांस के बीच 'मैत्री-प्रतिज्ञा' (Entente Cordiale) भी इसी समय में हुई। १९०५ में उसने यह दिखाने के लिए कि जर्मनी मोरक्को में दिलचस्पी रखता है विलियम द्वितीय को टेञ्जीयर (Tangier) भेजा था। १९०५-६ तथा १९०८ के मोरक्को के विद्रोह भी इसी समय हुए थे। जर्मनी का समुद्री बेड़ा प्रगति करता जा रहा था और जर्मनी का माल संसार के कोने-कोने में पहुँच रहा था। जर्मनी विश्व-नीति का अनुसरण कर रहा था और इसीलिए उसने सूर्य में अपना स्थान (Place in the Sun) माँगना आरम्भ कर दिया था।

कहा जाता है जब बूलो चान्सलर बना तो उसने विदेश मन्त्री का पद होलस्टाइन (Holstein) को देना चाहा था, किन्तु उसने झुँझलाकर इसे अस्वीकार कर दिया था। यह 'रहस्यमय पुरुष' अपने अकेले स्थान में बैठकर समाचार-पत्रों में बहुत से लेख दिया करता था। वह असंख्य राजनीतिक षड्यन्त्रों के लिये उत्तरदायी था। उसकी शक्ति इतनी महान् थी कि कभी-कभी वह तत्कालीन चान्सलर और विदेश मन्त्रालय को भी डरा दिया करता था। वह सम्राट् की भी परवाह नहीं करता था और उसे पागल और मूर्ख कहने से भी नहीं चूकता था। सम्राट् एकान्त में उसे 'पागल लकड़बग्घा' कहा करता, किन्तु सार्वजनिक रूप से उसके सम्मुख जाने का साहस नहीं कर पाता था। वह चान्सलर और विदेश मन्त्री को सूचना दिए बिना ही विदेशी राजदूतों से भेंट कर लिया करता था। कहा जाता है कि विदेश नीति के अनेक त्रुटिपूर्ण निर्णय इस व्यक्ति ही के कारण हुआ करते थे। यह बात १८९८ और १९०१ में जर्मनी द्वारा इंग्लैण्ड की अनधिकार चेष्टा को स्वीकार करने

के अवसर पर हुई। १९०५ में मोरक्को के मामले में जर्मनी का रुख इस व्यक्ति के प्रभाव के कारण ही था।

उसने विदेश मन्त्रालय को अनेक बार त्यागपत्र देने की धमकी दी थी। किन्तु सम्राट् और चान्सलर दोनों में से किसी का भी साहस नहीं था कि त्यागपत्र स्वीकार कर सके क्योंकि उन्हें डर था कि वह उनके विरुद्ध समाचारपत्रों में वितण्डावाद खड़ा कर देगा। किन्तु किसी प्रकार १९०६ में उन्होंने साहस करके उसे उसके पद से मुक्त कर ही दिया।

बैथमैन्न-होल्वेग (Bethmann Hollweg) (१९०९-१७)—बैथमैन्न-होल्वेग बूलो के पश्चात् चान्सलर बना। उसके समय ही में १९११ में मोरक्को का तीसरा विद्रोह हुआ था। समुद्री प्रतियोगिता के मामले में इंग्लैण्ड के साथ समझौते करने का सच्चा प्रयत्न किया गया, किन्तु क्योंकि विलियम द्वितीय टरपिट्ज का समर्थन करता रहा, अतः चान्सलर की कोई बात नहीं मानी गई। इस परिस्थिति में हैल्डेन (Haldane) शिष्ट-मण्डल का १९१२ में असफल होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। मोरक्को का मामला शान्ति से सुलझ गया और जर्मनी को क्षतिपूर्ति के रूप में अफ्रीका में फ्रांस का कुछ प्रदेश प्राप्त हुआ।

जर्मनी और ब्रिटेन के बीच तनाव बढ़ता गया और इसका अन्तिम परिणाम १९१४ का प्रथम विश्व-युद्ध हुआ।

इंग्लैण्ड और जर्मनी के सम्बन्ध (Anglo-German Relations) (१८९० १९१४)—उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जर्मनी और इंग्लैण्ड के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण थे। ब्रिटेन जर्मनी पर प्रतिद्वन्द्वी होने का सन्देह नहीं करता था। फ्रांको प्रशियन युद्ध के समय इंग्लैण्ड नेपोलियन तृतीय को तो एक खतरा मानता था, किन्तु बिस्मार्क को नहीं। लौह-पुरुष बिस्मार्क ने ब्रिटिश सरकार के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाए रखना अपना मूल-मन्त्र बना रखा था। वह कभी कोई ऐसा कार्य नहीं करता था जिससे ब्रिटेन के साथ किसी प्रकार का मनमुटाव हो। यही मुख्य कारण था कि उसने समुद्री बेड़े की उन्नति करके उपनिवेश प्राप्त करना पसन्द नहीं किया था। उसे इस बात का पूरा-पूरा ज्ञान था कि ब्रिटेन, जर्मनी द्वारा एक शक्तिशाली समुद्री बेड़ा बनाना कभी सहन नहीं करेगा क्योंकि इससे ब्रिटेन का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता था। अनेक बार उसने डिज़रायली (Disraeli) और सॉलिसबरी (Salisbury) से दोनों देशों में एक मैत्री समझौता करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया था। १८८९ में उसने कहा—"यूरोप की शान्ति की सुरक्षा ब्रिटेन और जर्मनी के बीच संधि द्वारा ही सुरक्षित हो सकती है।" किन्तु सॉलिसबरी ने जर्मनी से इस प्रकार का समझौता नहीं किया। बिस्मार्क ने अपने पुत्र हरबर्ट को इंग्लैण्ड में जर्मनी का राजदूत नियुक्त किया था। विलियम प्रथम के पुत्र फ्रैड्रिक का विवाह सम्राज्ञी विक्टोरिया की पुत्री से हुआ था। इस प्रकार दोनों देश एक दूसरे के अधिक निकट आ गए थे। उस समय इंग्लैण्ड में यह धारणा बल पकड़ रही थी कि इंग्लैण्ड के पूर्वज पूर्वी जर्मनी के मूल निवासी थे। इन सब बातों से दोनों देश परस्पर अधिक समीप आ गए थे।

ब्रिटेन के उपनिवेश सचिव चैम्बरलेन ने दोनों देशों की मैत्री को दृढ़ करने के उद्देश्य से हरबर्ट बिस्मार्क से हेलिगोलैण्ड को जर्मनी को देने को प्रस्ताव किया था। १८९० में एक सन्धि पर हस्ताक्षर हुए, जिसके अनुसार जर्मनी ने जञ्जीबार पर ब्रिटेन की संरक्षकता तथा मिस्र की सीमा तक फैले हुए नील नदी के ऊपरी मैदान पर ब्रिटेन के प्रभाव को मान्यता दी थी। ब्रिटेन ने सुलतान से समुद्री किनारे की पट्टी जर्मनी को बेच देने को कहा। जर्मनी को हेलिगोलैण्ड भी प्राप्त हुआ जो उसके निकट था और जिसे समुद्री अड्डा बनाया जा सकता था। इन सौदों की दोनों देशों में बड़ी आलोचना हुई किन्तु सॉलिसबरी और कैप्रिवी दोनों ने ही इसका समर्थन किया था। सॉलिसबरी का कहना था कि हेलिगोलैण्ड ब्रिटेन के लिए सैनिक महत्त्व नहीं रखता और जर्मनी से युद्ध होने की स्थिति में वह इसे जब चाहे जीत सकता था। उसने कहा, "हमने एक ऐसा समझौता किया है, जिसके द्वारा भविष्य में टकराव का खतरा हट गया है और हमारे दो देश अपनी सद्भावना, स्वार्थ और उद्गम की दृष्टि से सर्वदा अच्छे मित्र रहेंगे।" पूर्वी अफ्रीका में जंजीबार महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया। स्टैनले (Stanley) के शब्दों में, "ग्रेट ब्रिटेन ने पतलून के एक बटन के बदले में कपड़ों का पूरा जोड़ा ले लिया है।' कैप्रिवी का आशय था जंजीबार कभी भी जर्मनी के अधिकृत नहीं रहा इसलिए उसे देने या न देने का प्रश्न ही व्यर्थ है। पुनश्च, इसे प्राप्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता था क्योंकि वहाँ पर ब्रिटेन की स्थिति जर्मनी से अधिक शक्तिशाली थी। उसने कहा था—"हमें स्वयं आत्म-निरीक्षण करके यह जानना चाहिए कि उपनिवेश प्राप्त करने की हमारी कितनी शक्ति है तथा कितना धन और मानव-शक्ति हमें खर्च करनी पड़ेगी। जर्मनी ने बहुत से मामले एक साथ हाथ में ले रखे हैं। जिन मामलों से हम ठीक प्रकार से लाभ नहीं उठा सकते उन्हें अपने हाथ में रखना व्यर्थ है। हमारे पास काफी उपनिवेश हैं और समूचे अफ्रीका पर अधिकार प्राप्त करना हमारे लिए सबसे बुरी बात होगी।" विलियम द्वितीय ने कहा, "बिना युद्ध और दुःख के यह सुन्दर द्वीप मेरे हाथों में आ गया है। हमें यह द्वीप स्वच्छ हृदय से एक ऐसे देश से की गई सन्धि द्वारा प्राप्त हुआ है, जिससे हमारा रक्त का सम्बन्ध है।" किन्तु बिस्मार्क ने इस सौदे की आलोचना की, क्योंकि जर्मनी इस द्वीप को बिना इतना मूल्य दिए ही प्राप्त कर सकता था।

विलियम द्वितीय ब्रिटेन के प्रति समय-समय पर गाढ़ी मित्रता की भावनाएँ व्यक्त किया करता था। प्रिंस ऑफ वेल्स १८९० में बर्लिन आया तो कैसर ने ब्रिटेन के समुद्री सेनापति एडमिरल (Admiral) का गणवेश पहिना और १८१५ से वाटरलू के युद्ध के समय दोनों देशों ने परस्पर भ्रातृभाव की भावनाएँ व्यक्त कीं। उसने आशा व्यक्त की कि ब्रिटेन का समुद्री बेड़ा और जर्मन की स्थल सेना संसार में शान्ति बनाए रखेंगे। १८९१ में जब विलियम द्वितीय इंग्लैण्ड गया तो उसने कहा "मुझे सदा ही यह सुन्दर देश अपने घर जैसा लगा है क्योंकि मैं उस सम्राज्ञी का नाती हूँ, जिसका नाम एक महान् चरित्र और महान् बुद्धि वाली महिला के रूप में अमर हो गया है। जर्मनी और इंग्लैण्ड की नसों में एक ही रक्त का संचार हो रहा है। मैं

यथाशक्ति इन दो राष्ट्रों में ऐतिहासिक मैत्री बनाए रखने का भरसक प्रयत्न करूंगा। मेरा एकमात्र ध्येय शान्ति की रक्षा करना है। केवल शान्ति के समय ही हम अपनी बड़ी-बड़ी समस्याओं पर ध्यान दे सकते हैं, जिनका हल करना मेरे विचार से हमारे युग का सर्वप्रथम कर्त्तव्य है।"

विलियम प्रत्येक वर्ष ग्रीष्म ऋतु में काविस (Cowes) जाया करता और इंग्लिश राजवंश के सदस्यों का वर्लिन में सदा स्वागत हुआ करता था। १८९३ में जर्मन चान्सलर ने कहा, "मैं पूर्णतः सहमत हूं कि हमारी नीति का ध्येय धीरे-धीरे औपचारिक रूप से त्रिमुखी-संगठन (Triple Alliance) में इंग्लैण्ड को ले आना है।" १८९३ के समाप्त होते ही कीलिमञ्जारो प्रदेश और कैमेरून के प्रदेश के विषय में एक शान्तिपूर्ण समझौता हुआ था। टोगोलैण्ड की सीमा भी विना झगड़े के निर्धारित कर दी गई थी।

डा० गूच (Gooch) के मतानुसार, "१८९४ में एंग्लो-जर्मन सम्बन्धों के आकाश में अन्धकार छाने लगा और विलियम द्वितीय के शासन-काल के आरम्भिक दिनों के अच्छे सम्बन्ध और पारस्परिक विश्वास का पुनः लौटना असम्भव हो गया।" दोनों देशों में अफ्रीका के वँटवारे पर मनमुटाव हो गया। १८९४ की ब्रिटेन और कांगो फ्री स्टेट के वीच सन्धि द्वारा वहर-उल-गजल (Bahr-el-Ghazel) का प्रदेश सदा के लिए वेल्जियम के राजा लियोपोल्ड के वन्धन में वाँध दिया गया। इसके वदले में ब्रिटेन को टांगानिका (Tanganyika) के पश्चिम की ओर की थोड़ी सी पट्टी प्रस्तावित केप से कैरो (Cairo) रेलवे और तार लाइन विछाने के लिए मिल गई थी। ब्रिटिश सरकार को वहर-उल-गजल को वेल्जियम को देने का कोई अधिकार नहीं था तथा टांगानिका के पश्चिम का प्रदेश ब्रिटेन द्वारा हथियाना १८९४ की कांगो-जर्मन सन्धि की शर्तों का उल्लंघन करना था। जर्मनी ने इस पट्टी को हथियाने का विरोध किया और ब्रिटेन ने यह प्रदेश छोड़ दिया किन्तु इस घटना ने एक कटु स्मृति दोनों देशों के मनों में छोड़ दी थी।

१८९५ में कील (Kiel) नहर के उद्घाटन के समय विलियम द्वितीय ने सव बड़ी शक्तियों को निमंत्रण दिया था। डा० गूच के शब्दों में, "मेजवान ने सव मेहमानों का मैत्रीपूर्ण स्वागत किया किन्तु अत्यन्त प्रगाढ़ प्रेम के वाक्य केवल ब्रिटेन के लिए ही सुरक्षित थे।" उसने इस अवसर पर कहा, "जव से हमारा समुद्री वेड़ा वना है। हमने अपने विचारों को आपके अनुकूल वनाने का प्रयत्न किया है और सव प्रकार से आप से कुछ सीखने का प्रयत्न भी किया है। ब्रिटिश समुद्री वेड़े के इतिहास से जितने आपके पदाधिकारी परिचित हैं उतने ही हमारे पदाधिकारी और नाविक परिचित हैं। मैं ब्रिटिश वेड़े का सेनापति ही नहीं अपितु महान् सम्राज्ञी का नाती भी हूँ। सम्राज्ञी ने आपको इस अवसर पर पधारने की आज्ञा देकर हमें अनुग्रहीत किया है। आशा है आप हमारा यह धन्यवाद उन तक पहुँचा देंगे।"

विलियम द्वितीय के व्यवहार में एक परिवर्तन दिखाई देने लगा। उसका व्यवहार आपत्तिजनक हो गया था। वह अपने मामा को "बूढ़ा मोर" (Old

Peacock) कहने लगा था। इस व्यक्तिगत व्यवहार को छोड़कर अन्य तत्त्वों ने भी परिस्थिति को उलझा दिया था। ब्रिटेन के कुछ समाचारपत्रों ने विलियम द्वितीय की आलोचना करनी आरम्भ कर दी और सुझाव दिया कि उसे अपनी नानी की तरह समझदार होना चाहिए। लार्ड सॉलिसबरी का रुख जर्मनी के प्रति मैत्रीपूर्ण नहीं था। आर्मीनिया के प्रश्न पर उसके विचार जर्मनी से मेल नहीं खाते थे। उसकी दृढ़ धारणा थी कि तुर्की का सुधार नहीं हो सकता। अतः उसका बँटवारा हो जाना चाहिए। किन्तु विलियम द्वितीय की नीति तुर्की को अक्षुण्ण बनाए रखने की थी। वह इस देश से घनिष्ठ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखना चाहता था।

अफ्रीका की परिस्थिति ने स्थिति को और भी जटिल बना दिया था। १८८५ में ट्रान्सवाल (Transvaal) का राष्ट्रपति क्रुगर (Kruger) जर्मनी आया और उसने बिस्मार्क से सहायता माँगी किन्तु उसने इन्कार कर दिया। बिस्मार्क के पदत्याग के पश्चात् परिस्थिति बदल गई थी। जर्मनी दक्षिणी अफ्रीका में उत्तरोत्तर दिलचस्पी लेने लगा और क्रुगर (Kruger) को जर्मनी से सहायता की आशा होने लगी थी। १८९४ में जर्मनी के दो युद्धपोत डेलागोआ (Delagoa) की खाड़ी में ब्रिटेन के हस्तक्षेप के विरुद्ध विरोध प्रकट करने के लिए भेजे गए थे। १८९५ में प्रिटोरिया (Pretoria) स्थित जर्मनी के दूत ने घोषणा की थी कि राजनैतिक संतुलन बनाए रखने के प्रयत्न में जर्मनी ट्रान्सवाल की सहायता करने को कटिबद्ध है। ब्रिटेन ने विरोध किया किन्तु जर्मनी ने कहा कि वह केवल इतना ही कर रहा है जितना उसके स्वार्थ की सुरक्षा के लिए आवश्यक है। ब्रिटिश सरकार को जेमिसन और रोहड्ज (Rhodes) के क्रियाकलापों पर रोक लगाने के लिए कहा गया था।

क्रुगर का तार (Kruger Telegram)—दक्षिणी अफ्रीका के मामले में ब्रिटेन और जर्मनी विरोधी थे और एक दूसरे पर रोक लगाने की कोशिशें किया करते थे। दोनों देशों में किसी समय भी टक्कर हो सकती थी। ३० दिसम्बर, १८९५ को जेमिसन की सेनाओं ने माफकिंग (Mafeking) पार किया। जर्मनी के राजदूत ने ब्रिटिश सरकार को सूचित किया कि ट्रान्सवाल पर आक्रमण सहन नहीं किया जाएगा। आक्रमण विफल हुआ और उसके साथी कैद कर लिए गए। जब विलियम द्वितीय को इस आक्रमण की असफलता की सूचना मिली तो उसने राष्ट्रपति क्रुगर को तार भेजा जिसमें कहा था—"मैं आपको और आपके देशवासियों को इस तथ्य पर हार्दिक बधाई देता हूँ कि मित्र राष्ट्रों से सहायता की याचना किए बिना ही आप लोग अपने देश में शान्ति स्थापित कर सके और देश में घुसने वाले सशस्त्र लुटेरों के विरुद्ध देश की स्वतन्त्रता की रक्षा कर सके।" राष्ट्रपति ने उत्तर में निम्न तार भेजा, "मैं अपने हृदय से महामान्य को महामान्य के बधाई सन्देश के लिए धन्यवाद देता हूं।" विलियम द्वितीय ने निकोलस द्वितीय को लिखा—"मुझे आशा है कि सब ठीक हो जाएगा, किन्तु कुछ भी क्यों न हो मैं ब्रिटेन द्वारा ट्रान्सवाल को रौंदा नहीं जाने दूँगा।" क्रुगर को भेजे गए तार का एंग्लो-जर्मन सम्बन्धों पर बुरा प्रभाव पड़ा।

इंग्लैण्ड के समाचारपत्र मार्निङ्ग पोस्ट (Morning Post) ने लिखा, "हमारा राष्ट्र इस तार को कभी भी नहीं भूलेगा और भविष्य में अपनी नीति पर पुनर्विचार करते समय इसे सर्वदा ध्यान में रखेगा।" १८९९ में लार्ड सॉलिसवरी ने कहा, "यह आक्रमण मूर्खता थी किन्तु यह तार उससे भी बढ़कर मूर्खतापूर्ण कार्य था।"

इतना होने पर भी दोनों देशों के सम्बन्ध किन्हीं परिस्थितियों के कारण मैत्रीपूर्ण बने रहे। ब्रिटेन, एशिया और अफ्रीका में रूस और फ्रांस का विरोधी था। १८९८ में इंग्लैण्ड और फ्रांस फशोदा (Fashoda) के मामले पर युद्ध करने को तैयार थे। ब्रिटेन रूस द्वारा चीन में घुस-पैठ का विरोधी था और इस पर रोक लगाना चाहता था। त्रिमुखी-मैत्री के देश ब्रिटेन की फ्रांस और रूस के विरुद्ध सहायता करते थे और इससे दोनों देश परस्पर निकट थे। आतबारा (Atbara) की विजय के समय विलियम द्वितीय ने ब्रिटिश सरकार को बधाई का तार भेजा था। १८९८ में ड्यूक ऑफ डेवनशायर (Duke of Devonshire) और चेम्बरलेन ने लन्दन-स्थित जर्मन राजदूत से भेंट करके इंग्लैण्ड और जर्मनी की मैत्री-सन्धि का प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव को तीन बार रखने पर भी जर्मनी की ओर से इसका कोई उत्तर नहीं मिला। विलियम द्वितीय सम्भवतः ब्रिटेन से सन्धि करने की अपेक्षा रूस से मैत्री सम्बन्ध बनाने का अधिक इच्छुक प्रतीत होता था। उसकी धारणा थी कि इंग्लैण्ड अपने स्वार्थों के लिए लड़ने को 'एक वैधानिक सेना' बनाना चाहता है। किन्तु अक्टूबर, १८९८ में ब्रिटेन और जर्मनी ने एक गुप्त सन्धि की जिसमें इन्होंने पुर्तगाल के उपनिवेशों को अपने-अपने प्रभाव-क्षेत्रों में बाँट लिया था। किन्तु इससे कुछ नहीं बना। पुर्तगाल आर्थिक संकट से उभर आया था। १८९९ में रोहडज़ (Rhodes) बर्लिन आया और विलियम द्वितीय ने उसका हार्दिक स्वागत किया। विलियम ने उसे जर्मनी के पूर्वी अफ्रीका के भाग से तार की लाइन ले जाने की आज्ञा दे दी। रोहडज़ इस भेंट से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने विलियम द्वितीय को, "एक महान् व्यक्ति, एक विशाल हृदय व्यक्ति" कहा था। रोहडज़ ने विलियम द्वितीय से 'रोहडज़ छात्र-वृत्ति' पर ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में अध्ययन करने के लिए कुछ जर्मन विद्यार्थी भेजने के लिए कहा। डा० गूच का मत है कि "यह तथ्य बोअर-युद्ध (Boer War) में कैसर की ब्रिटेन के प्रति मित्रता का एक परिणाम था।"

१८९९ में जब बोअर युद्ध आरम्भ हुआ तो संसार की सद्भावना बोअरों के साथ थी और ब्रिटेन को आक्रान्ता समझा गया था। १९०० में रूस और फ्रांस ने बोअर युद्ध में हस्तक्षेप करने का प्रस्ताव किया किन्तु विलियम द्वितीय ने अस्वीकार कर दिया। जब क्रुगर ट्रान्सवाल से भाग गया तो उसने उससे भी मिलने से इन्कार कर दिया, यद्यपि पेरिस में उसका स्वागत किया गया था। १८९९ में विलियम इंग्लैण्ड गया और वहाँ उसका हार्दिक स्वागत हुआ। चैम्बरलेन ने इस अवसर से जर्मनी से सुलह और सहयोग प्राप्त करने के विषय पर विचार-विमर्श करने का लाभ उठाना चाहा। उसने दोनों देशों की 'प्राकृतिक मैत्री' का उल्लेख किया था। उसके शब्दों में, "ट्यूटानिक (Teutonic) और एंग्लो-सेक्सन जाति के चरित्रों में बहुत

ही कम अन्तर है।" आस्ट्रिया के सम्राट् फ्रांसिस जोसेफ ने घोषणा की—"इस युद्ध में मैं इंग्लैण्ड के पक्ष में हूँ।" १६०१ में जब सम्राज्ञी विक्टोरिया की मृत्यु हो गई तो विलियम द्वितीय इंग्लैण्ड गया और राजवंश के शोक में साथ रहा। इस अवसर पर उसके व्यवहार से इंग्लैण्ड की प्रजा पर बड़ा प्रभाव पड़ा। ऐसा प्रतीत होता था कि दोनों देशों के मित्र हो जाने की सम्भावना है। जनवरी में बॉक्सर विद्रोह (Boxer Rising) के अवसर पर इंग्लैण्ड और जर्मनी ने परस्पर सहायता की थी। सॉलिसवरी के समर्थन करने के कारण एक जर्मन सेनापति वाल्डरसी को पेकिंग भेजी जाने वाली सेना का सेनानायक नियुक्त किया गया था। जर्मनी ने इंग्लैण्ड को चीन में रूस के प्रभाव को रोकने के प्रयत्न में सहायता देने का वचन दिया था।

१६०१ में चैम्बरलेन ने जर्मनी की सरकार से सारे पुराने मामलों को सुलझा कर दोनों देशों की मैत्री के लिए मैदान तैयार करने का प्रस्ताव किया। यद्यपि विलियम द्वितीय इस पक्ष में था तो भी राजकुमार बूलो (Bulow) ने इन्कार कर दिया। ब्रिटिश सरकार ने जर्मनी से, रूस को चीन में टाईटसिन (Tientsin) की वस्ती की मोर्चवन्दी करने से रोकने के लिए, सहयोग देने को कहा था किन्तु जर्मनी ने इन्कार कर दिया था। मार्च, १६०१ में जर्मनी ने प्रस्ताव किया कि यदि वह आश्वासन दे दे तो इंग्लैण्ड को जापान के साथ त्रिमुखी-मैत्री संगठन में आ जाना चाहिए। विचार-विमर्श वित्राना में होना था। ब्रिटिश विदेशमंत्री लार्ड लैन्सडोन ने इन्कार कर दिया। विलियम द्वितीय की धारणा थी कि ब्रिटेन, रूस के विरुद्ध जर्मनी की तलवार प्रयोग करना चाहता है। वाल्डरसी का भी यही मत था। विलियम द्वितीय सम्राट् एडवर्ड सप्तम के मन्त्रियों को निपट बुद्धू कहा करता था। इस प्रकार का वातावरण दोनों देशों की मित्रता के लिए शुभ नहीं था। क्या आश्चर्य है कि जून, १६०१ में चैम्बरलेन ने थक कर अपनी कोशिशें छोड़ दी हों। उसके शब्दों में, "यदि बर्लिन के लोग अदूरदर्शी हैं, हम क्या कर सकते हैं।" इस प्रकार की अवस्था में ब्रिटेन ने १६०२ में जापान से सन्धि कर ली।

१६०२ में फिर यह अनुभव होने लगा था कि दोनों देशों के सम्बन्धों में सुधार हो जाएगा। लार्ड राबर्ट्स और लार्ड फ्रैड्रिक ने जर्मनी के सैनिक प्रदर्शन को देखने का निमंत्रण स्वीकार किया था। विलियम द्वितीय ने भी धन इकट्ठा करने के लिए आए हुए बोअर सेना के पदाधिकारियों से मिलने से इन्कार कर दिया। वह इंग्लैण्ड भी गया। १६०३ में इंग्लैण्ड और जर्मनी ने वेनेजुला (Venezuela) पर घेरा डालने में साथ दिया। किन्तु बर्लिन-बगदाद रेलवे के कारण फिर एक धक्का लगा। इंग्लैण्ड की जनता ने सरकार से पूछना शुरू कर दिया कि क्या इस हालत में ब्रिटिश सरकार को जर्मनी के साथ सहयोग करना चाहिए? इससे तो भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्य को ही खतरा पैदा हो गया था। १६०४ में इंग्लैण्ड ने फ्रांस के साथ मैत्री-सन्धि कर ली। उसने १६०६ में ऐलजैकिरॉस (Algeciras) सम्मेलन में फ्रांस का साथ दिया था। १६०७ के इंग्लैण्ड और रूस के सम्मेलन ने विलियम द्वितीय के मन में यह भय पैदा कर दिया कि 'त्रिमुखी-संगठन' (Triple Alliance) 'त्रिमुखी मैत्री' (Triple Entente) का मुकाबला नहीं कर सकेगा। १६०८ और १६११ के

मोरक्को के झगड़ों में भी इंग्लैण्ड ने फ्रांस का साथ दिया था। दोनों देशों में सामुद्रिक प्रतियोगिता भी चल रही थी। विलियम द्वितीय और टिरपिट्ज़ के नेतृत्व में जर्मनी समुद्री बेड़े के विकास में इंग्लैण्ड को नीचा दिखाने के लिए कटिबद्ध था किन्तु ब्रिटिश सरकार नीचा देखने को तैयार नहीं थी। परिणामतः दोनों देशों के सम्बन्धों में तनाव बराबर बढ़ता गया। समुद्री बेड़े की उन्नति के प्रश्न पर लार्ड हैल्डेन (Haldane) बर्लिन गया। किन्तु उसकी यात्रा असफल रही और १६१४ के प्रथम विश्वयुद्ध में दोनों देश विरोधी पक्षों की ओर से लड़े।

Suggested Readings

Bulow : *Imperial Germany.*
Bulow : *Memoirs.*
Dawson, W. H. : *The German Empire, (1867-1914). Vol. II.*
Gooch : *History of our Times.*
Prothero : *German Policy before the War.*
Schmitt : *England and Germany.*
Tower, C. : *Germany of Today.*
Cambridge Modern History, Vol. XII.

अध्याय २२

फ्रांस १८७० से १९१४ तक

(France From 1870 to 1914)

सितम्बर, १८७० में सेडान (Sedan) के युद्ध में नेपोलियन तृतीय द्वारा आत्मसमर्पण करने के बाद फ्रांस की अवस्था शोचनीय हो गई। पेरिस में प्रजातन्त्रीय प्रणाली की सरकार बना कर जर्मनी से युद्ध करने का निर्णय किया गया। "हम फ्रांस की धरती का एक इंच अथवा फ्रांस के दुर्गों का एक पत्थर तक भी नहीं देंगे" यह नारा सुनाई पड़ता था। बैज़ेन (Bazaine) की सेना के द्वारा मेट्ज अभी परास्त हुआ ही नहीं था और फ्रांस की जनता सोच रही थी कि वे पेरिस की रक्षा कर सकेंगे। जब प्रशिया की सेनाएँ पेरिस की ओर बढ़ रही थीं तब थीयर्स यूरोप के देशों की राजधानियों का दौरा कर रहा था ताकि प्रशिया के विरुद्ध विदेशी सहायता प्राप्त कर सके। पेरिस पर प्रशियन सेना ने घेरा डाल दिया और गेमबैट्टा (Gambetta) गुब्बारे (baloon) में बैठकर पेरिस से उड़ कर ग्राम्य प्रदेशों में जाग्रति उत्पन्न करने के लिए पहुँचा ताकि प्रशिया के विरुद्ध पेरिस की जनता की सहायता की जा सके। परिणामत: सारे फ्रांस से पेरिस की सहायता के लिए स्वयंसेवकों ने प्रयाण किया। विदेशों से भी गेरिबाल्डी, उसके पुत्र और किचनर जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति सहायता के लिए आए।

थीयर्स

इस कदर उत्साह और प्रतिरोध होने पर भी मेट्ज़ (Metz) का पतन हुआ और बैज़ेन (Bazaine) ने भी आत्मसमर्पण कर दिया। चार महीने के घेरे और चार सप्ताह की घोर गोलाबारी के पश्चात् पेरिस का भी पतन हो गया। थीयर्स ने बिस्मार्क से नम्र शर्तों पर समझौता करने के लिए अथक प्रयत्न किया। थीयर्स और

बिस्मार्क की भेंट के विषय में जुलिस फेवरे (Jules Favre) लिखता है, "मैं अब भी उसे पीला और उत्तेजित देखता हूँ; वह कभी बैठता था, कभी खड़ा हो जाता था, मैं दुःख से काँपती हुई उसकी वाणी सुन रहा हूँ, उसकी वाणी विनयपूर्ण तथा गर्वीली थी। मैं इस महान् हृदय व्यक्ति से अधिक किसी भी अन्य उच्च व्यक्ति की कल्पना नहीं कर सकता। वह कभी प्रार्थना, कभी धमकियाँ तथा विनय करता था। कभी तीव्र और निर्दयी अस्वीकृति के सम्मुख धीरे-धीरे वह क्रोध में भर जाता था।" बिस्मार्क समझौते के लिए राजी नहीं था। बिस्मार्क ने थीयर्स से कहा, "हमें तुमसे अथवा तुम्हारे पश्चात् आने वाली सरकारों की स्थिरता के विषय में कोई आश्वासन नहीं है।" थीयर्स ने इसका उत्तर दिया—"अच्छा! जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा ही करो। ये समझौते के प्रयत्न एक ढोंग हैं। हम विचार-विमर्श का ढोंग कर रहे हैं, हमें तो तुम्हारी दासता में बँधना ही है। हम केवल एक नगर को पूर्णतः फ्रांसीसी रखना चाहते हैं। किन्तु तुम यह भी नहीं करना चाहते, तुमने हमारे साथ अन्तिम युद्ध करने की ठानी है। अवश्य करो। हमारे प्रान्तों को नष्ट करो, हमारे घरों को जलाओ, हमारे निरीह नागरिकों के गले काट लो—एक शब्द में, तुम अपना कार्य पूरा करो। हम अन्तिम श्वास तक लड़ेंगे, हमें समाप्त तो होना है किन्तु हम अपमानित नहीं होंगे।" फरवरी, १८७१ में शान्ति-सन्धि की साधारण शर्तों पर वर्साई में हस्ताक्षर हुए और बाद में मई, १८७१ में फ्रैंकफर्ट में यह सन्धि पूरी की गई। फ्रांस को बेलफोर्ट को छोड़ कर ऐलसेस-लोरेन (Alsace-Lorraine), मेट्ज और स्ट्रासबर्ग इत्यदि देने पड़े। फ्रांस ने तीन वर्ष में बीस करोड़ पौण्ड युद्धक्षति के रूप में देना भी स्वीकार किया तथा इस अवधि में एक जर्मन सेना का फ्रांस में फ्रांस के खर्चे पर रहना भी स्वीकार किया गया।

पेरिस कम्यून (The Paris Commune) (१८७१)—यद्यपि जर्मनी से युद्ध समाप्त हो गया था तथापि फ्रांस के भाग्य में शान्ति नहीं थी। उसे तुरन्त गृह-युद्ध का सामना करना पड़ा। यह समस्या पेरिस कम्यून के विद्रोह के रूप में उठ खड़ी हुई और इसे समाजवाद के इतिहास में एक बहुत बड़ी घटना कहा गया। यह कार्ल मार्क्स के विचारों और आदर्शों को सैनिक सहायता के द्वारा क्रियात्मक रूप देने का प्रयास था।

यह बात उल्लेखनीय है कि यद्यपि पेरिस में प्रजातन्त्र की घोषणा कर दी गई थी तो भी इसका समर्थन समूचे देश ने नहीं किया था। जर्मनी के साथ की गई सन्धि की शर्तों को मान्यता देने के लिए एक राष्ट्रीय सभा की स्थापना की गई जिसने अन्तरिक काल के लिए थीयर्स को 'प्रमुख' (Chief Executive) नियुक्त किया। राष्ट्रीय सभा में राजशाही के समर्थकों का बहुमत था और यह डर था कि ये लोग प्रजातन्त्र को पलट कर कहीं फिर राजशाही की स्थापना न कर लें। पेरिस ने, जो कि प्रजातन्त्र का समर्थक था, नेपोलियन तृतीय के समय में भी प्रजातन्त्रवादी प्रतिनिधियों को राष्ट्रीय सभा में भेजा था और पेरिस के लोग प्रजातन्त्र की समाप्ति के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थे। राष्ट्रीय सभा द्वारा पारित कुछ कानूनों ने और भी विश्वास

पैदा कर दिया। राष्ट्रीय सभा ने बोरडो (Bordeaux) से फ्रांस की राजधानी पेरिस न ले जाकर वर्साई ले जाने का निश्चय किया। यह पेरिस की जनता का अपमान था क्योंकि उन्होंने देश का सम्मान बचाने के लिए प्रशिया की सेना के हाथों बड़ा कष्ट उठाया था। राजधानी को वर्साई ले जाने से पेरिस की समृद्धि पर भी बुरा प्रभाव पड़ता था। इसमें आश्चर्य नहीं कि इस निर्णय का अचल सम्पत्ति के मालिकों, व्यापारियों और कारीगरों ने विरोध किया। पेरिस के घेरे के समय सरकारी आज्ञप्ति द्वारा किरायों, उधार तथा अन्य लेन-देन को रोक दिया गया था। सर्वसाधारण की माँग थी कि यह रोक उठाई न जाए क्योंकि घेरे के पश्चात् जनता की हालत अत्यन्त दयनीय हो गई थी। वे एकदम सम्पूर्ण भुगतान करने योग्य नहीं थे। बेकारी बुरी तरह बढ़ी हुई थी। दुर्भाग्य से राष्ट्रीय सभा ने यह प्रार्थना स्वीकार नहीं की और सारे ऋणों का ४८ घण्टों में भुगतान करने का आदेश दिया। क्योंकि जनता इस थोड़ी अवधि में ऐसा नहीं कर सकी, डेढ़ लाख पेरिस निवासियों पर कानूनी कार्यवाही की गई। इससे व्यापारी वर्ग को बड़ी हानि हुई।

कारीगरों की बड़ी संख्या बेकार थी और उनकी मुख्य आय नेशनल गार्ड के सैनिक होने का भत्ता था। राष्ट्रीय सभा ने इस सेना को बन्द कर दिया और केवल उन लोगों को ही रखा जो 'गरीब' होने का प्रमाण-पत्र प्रस्तुत कर सकते थे। राष्ट्रीय सेना में पेरिस के स्वस्थ शरीर कारीगर थे। घेरे के समय इन लोगों ने पेरिस की रक्षा की थी और युद्ध-समाप्ति पर इनके पास शस्त्र बच रहे थे। जैसे ही घेरा उठा बहुत संख्या में धनिक तथा अच्छी स्थिति वाले लोग पेरिस छोड़कर अपने परिवारों से जा मिले। केवल गरीब लोग ही राष्ट्रीय सेना में रह गए और राष्ट्रीय सभा ने उनका डेढ़ फ्रेंक प्रतिदिन का वेतन भी छीन लिया। ये लोग सशस्त्र, सन्देह से भरे हुए, असन्तुष्ट और दुःखी थे। ये लोग प्रजातन्त्र को खतरे में जानकर भड़क उठे थे।

पेरिस आतंकवादियों, जेकोबिनों और समाजवादियों से भरा था। समाजवादियों के कारीगरों में बहुत से अनुयायी थे। पेरिस की बेचैन, असन्तुष्ट और निर्धन जनता में समाजवादी नेताओं को बड़ी सफलता प्राप्त हुई। इस अराजकता की स्थिति में 'कम्यून' के विचार का उदय हुआ। यह माँग की गई कि देश के भावी कार्यक्रम में कम्यूनों पर अधिक बल दिया जाए। कम्यूनों को विशद अधिकार दिये जाएँ और केन्द्रीय सरकार के अधिकार कम कर दिए जाएँ। दूसरे शब्दों में एक पूर्ण रूप से केन्द्रस्थ सत्ता वाले देश में अधिकारों का विकेन्द्रीकरण करने की माँग की गई। आशा की गई थी कि इस व्यवस्था द्वारा बहुत से प्रान्त जहाँ प्रजातन्त्रवादियों का बहुमत है, वे राजशाही की समर्थक केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण से निकल जाएँगे। कम्यूनों में सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति करने की भी सम्भावना थी।

पेरिस का असन्तोष राष्ट्रीय सेना के माध्यम से व्यक्त हुआ जब उन लोगों ने अपनी व्यवस्था करने के लिए साठ व्यक्तियों की एक समिति फरवरी, १८७१ में नियुक्त की थी। इस उद्देश्य से कि राष्ट्रीय सभा पेरिस तथा प्रजातन्त्रवादियों के

विरुद्ध कोई कार्यवाही न कर सके, राष्ट्रीय सेना के सैनिकों ने पेरिस नगर के महत्त्व-पूर्ण मोर्चों पर तोपें लगा दीं। राष्ट्रीय सभा इसे सहन नहीं कर सकी और उसने १८ मार्च, १८७१ को पेरिस पर अधिकार करने चेष्टा की। किन्तु सभा अपने प्रयत्न में असफल हुई। राष्ट्रीय सेना और जनता ने सरकार की अवहेलना कर दी। विद्रोह की भावना नगर भर में फैल गई और यह पनप कर पेरिस और वर्साई स्थित सरकार में युद्ध बन गई थी। वर्साई सरकार के दो सेनापतियों को विद्रोहियों ने पकड़ कर गोली मार दी। थीयर्स ने सरकारी सेनाओं को पीछे हटा लिया और पेरिस पर विद्रोहियों का नियन्त्रण हो गया।

२६ मार्च, १८७१ को पेरिस में ९० सदस्यों की एक साधारण परिषद् के लिए चुनाव हुआ और कम्यून की सरकार बनाने का प्रयत्न किया। क्रान्ति का वर्ष और समाजवादियों का लाल ध्वज अपनाया गया। सारे समाजवादियों की एक जैसी विचारधारा नहीं थी और बहुत लोगों में परस्पर मतभेद था। पेरिस ने इस आरोप का, कि वह देश की एकता को भंग कर रहा है, खण्डन किया। पेरिस ने दावा किया कि "वह केवल साम्राज्य, राजशाही और संसदवाद द्वारा आज तक जबर्दस्ती थोपी गई एकता को तोड़ने का प्रयत्न कर रहा है।" पेरिस की कम्यून का उद्देश्य "सैन्यवाद, शोषण, एकाधिकार, विशेषाधिकार और सौदेबाजी की पुरानी परिपाटी को नष्ट कर देना है, क्योंकि इनके कारण जनसाधारण दासता में पड़ा है और देश आपत्ति और दुःख में डूब गया है।" फ्रांस की जनता को अपील की गई कि वह इस कार्य में सहायता प्रदान करे। "सारी जनता को हमारे इस संघर्ष में साथ देना चाहिए जिसका अन्त या तो हमारी प्रणाली की विजय में होगा अथवा पेरिस का विनाश हो जाएगा।"

पेरिस कम्यून वर्साई सरकार को पराजित करके ही सफल हो सकती थी। पेरिस से राष्ट्रीय सभा को भंग करने के लिए सेना भेजी गई। वे लोग असफल हुए और कैद करके उन्हें गोली से उड़ा दिया गया। प्रतिशोध के रूप में पेरिस में बहुत से मुख्य व्यक्तियों को बन्दी बना कर क्षति-सुरक्षा (hostage) के रूप में रख लिया गया।

थीयर्स जैसे व्यक्ति देश में गृह-युद्ध से अत्यन्त दुःखी थे। जर्मनी के सैनिक फ्रांस में थे और उनके सम्मुख फ्रांस के सैनिकों का परस्पर लड़ना बड़ा खेदजनक था। थीयर्स ने इस आशंका को कि प्रजातन्त्र को नष्ट किया जा रहा है दूर करने का प्रयत्न किया। १४ अप्रैल, १८७१ को एक कानून द्वारा स्थानीय सरकारों के अधिकार बढ़ा दिए गए। किन्तु उसने यह भी स्पष्ट कर दिया कि वह सरकार की सत्ता को दुर्बल नहीं होने देगा तथा देश की एकता को भी क्षीण नहीं होने देगा और पेरिस के विद्रोहियों का दमन कर दिया जाएगा। कुछ समय तक थीयर्स का कार्य कठिन रहा। किन्तु थोड़े समय के पश्चात् १,५०,००० सैनिकों की सेना पेरिस कम्यून से पटनिने के लिए भेजी गई। पेरिस पर नियमित रूप से घेरा डाल दिया गया। दोनों ओर बड़ी उत्तेजना और रक्तपात हुआ। घेरा २ अप्रैल से २१ मई तक चला। उसके

पश्चात् पेरिस की गलियों में सप्ताह भर, जिसे 'खूनी सप्ताह' कहा जाता है, युद्ध चलता रहा। इस सप्ताह में पेरिस को जर्मन सेनाओं द्वारा की गई गोलाबारी से भी अधिक हानि हुई। चारों ओर सामूहिक रूप से हत्या और अग्निकाण्ड हुए। हेनोटॉक्स के शब्दों में, "सब कुछ जल रहा था, पोर्ट सेण्ट मार्टिन, चर्च ऑफ सेण्ट इयूस्टेका, स्युरायल, होटेल डी विले, सीन का बायाँ तट, लिजन डी ऑनर से पलेस डी जस्टिस तक और सारे पुलिस थाने धूँ-धूँ करके जल रहे थे। इन सबसे आग की लपटें उठ रही थीं तथा बाहर से सारे दुर्ग पेरिस पर आग बरसा रहे थे। तोपची नगर के बीच में से एक दूसरे पर गोले दाग रहे थे। चारों ओर गोले बरस रहे थे। सारे चौक युद्धस्थल बने हुए थे। एक भयंकर अव्यवस्था थी। शरीर और आत्माएँ संसार में एक दूसरे से टकरा रहे थे।" पेरिस कम्यून ने बन्धक व्यक्तियों को गोली मार दी। १८ मई, १८७१ को अन्तिम विद्रोही को गोली मार कर समाप्त कर दिया गया।

विजय के पश्चात् वर्साई सरकार ने विद्रोहियों से बदला लिया। विद्रोहियों को कड़ा दण्ड दिया गया। बहुत लोगों को जहाँ-तहाँ गोली मार दी गई। हेनोटॉक्स के अनुसार, "इस भयंकर संघर्ष में जिन लोगों को बिना किसी कानून के मार डाला गया उनकी संख्या १७,००० आँकी जाती है। कब्रिस्तानों, चौकों, व्यक्तिगत और सार्वजनिक बागों में खुली हुई खाइयों में, बिना किसी हिसाब खाते के हजारों की संख्या में लाशों को भर कर दबाया जा रहा था।" कैद करना और मुकदमे बहुत सालों तक चलते रहे। १८७५ तक ४३,००० से अधिक व्यक्तियों को कैद करके अधिकांश को मृत्युदण्ड दिया गया था। नागरिकों को सैनिक न्यायालयों द्वारा बड़ी कड़ी सजाएँ दी गईं। गेम्बैट्टा के प्रयत्नों से बहुत देर बाद १८७९ में क्षमादान की घोषणा की गई। देश में वर्ग-घृणा बुरी तरह फैली हुई थी। पेरिस कम्यून के विषय में प्रो० फाइफ लिखता है—"जब ६ सप्ताह के घेरे के पश्चात् पेरिस को जर्मनी की गोलाबारी से भी अधिक हानि पहुँचाने के बाद वर्साई की सेना नगर में घुसी, मानवता और सभ्यता शैतान के खेल बन कर लुप्त हो गई। सुरक्षा के लिए लड़ने वालों ने पीछे हटते हुए बन्धक व्यक्तियों की हत्या कर दी और महलों, अजायबघरों और देश की राजधानी में सुरक्षित सारी सम्पत्ति को आग लगाकर दहकता छोड़ते गए। विजेताओं ने कई दिनों तक जिसे भी सशस्त्र देखा मार डाला और अनेक स्थानों पर तो बन्दियों के दल के दल मौत के घाट उतार दिए गए। सेना का क्रोध इतना भड़का हुआ था कि यदि सरकार चाहती तो भी वह बदले के लिए किए गए अत्याचारों को कम नहीं कर सकती थी। किन्तु कहीं भी दया की भावना नहीं दीख पड़ती थी। युद्ध की आग शान्त हो जाने के बहुत दिनों बाद भी मुकदमों और मृत्युदण्डों का बाज़ार गर्म रहा। एक वर्ष बीत जाने पर भी ये न्यायालय अपने कार्य में अत्यन्त व्यस्त थे। १० हजार व्यक्तियों से अधिक लोगों को देश-निकाला दे दिया गया था और अनेक लोगों को न्याय की संतुष्टि के लिए कैद कर लिया गया था।

राष्ट्रीय सभा का कार्य (Work of National Assembly) (१८७१-१८७५)—जो राष्ट्रीय सभा जर्मनी से की गई सन्धि को स्वीकार करने के लिए

बनाई गई थी, ३१ दिसम्बर, १८७५ तक कार्य करती रही। इसने फ्रैंकफर्ट सन्धि को स्वीकार किया और पेरिस का विद्रोह भी समाप्त किया। यह कार्य करने के पश्चात् राष्ट्रीय सभा ने राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण के लिए अपना कार्य आरम्भ किया। युद्ध-क्षति देने की समस्या बड़ी जटिल और आवश्यक थी। परिणामतः थीयर्स ने बहुत-सा ऋण लेकर सारी क्षति पूर्ति कर दी। परिणामतः जर्मनी की सेनाएँ फ्रांस से हटा ली गईं और थीयर्स को 'देश का मुक्तिदाता' कहा जाने लगा। फ्रांस की सेना का प्रशियन सेना की तरह पुर्ननिर्माण किया गया। १८७२ के एक कानून द्वारा समूचे देश में सैनिक सेवा अनिवार्य कर दी गई।

राष्ट्रीय सभा को देश के लिए एक नया संविधान बनाना था। मूलतः थीयर्स नियन्त्रित राजशाही में विश्वास रखता था किन्तु वह प्रजातन्त्र से भी नहीं डरता था। कालान्तर में उसकी यह धारणा बन गई कि फ्रांस के लिए केवल प्रजातन्त्र ही उपयुक्त शासन-प्रणाली है। उसके शब्दों में, "यहाँ केवल एक ही सिंहासन है किन्तु उसके दावेदार तीन हैं। जो दल राजशाही चाहते हैं वे एक प्रकार की नहीं चाहते। जहाँ तक प्रजातन्त्र का सम्बन्ध है, यही एक प्रणाली है जिस पर सबसे कम मतभेद है।"

यदि हम फ्रांस की राजशाही के विविध दलों की विवेचना करें तो येह तथ्य स्पष्ट हो जाता है। ये दल थे ओर्लियनिस्ट्स (Orleanists), बोनापार्टिस्ट्स (Bonapartists), और लेजिटिमिस्ट्स (Legitimists)। लेजिटिमिस्ट चार्ल्स दशम के पौत्र काउण्ट ऑफ चेमबोर्ड के समर्थक थे। ओर्लियनिस्ट काउण्ट ऑफ पेरिस के समर्थक थे और बोनापार्टिस्ट नेपोलियन तृतीय या उसके पुत्र के समर्थक थे। यद्यपि राष्ट्रीय सभा में राजशाही के समर्थकों का बहुमत था तो भी मतभेदों के कारण वे देश में राजशाही की स्थापना नहीं कर सकते थे। १८७३ में थीयर्स को त्यागपत्र देने के लिए विवश कर दिया गया था क्योंकि उसका झुकाव प्रजातन्त्र की ओर था।

फ्रांस में राजशाही संविधान बनाने के अनेक प्रयत्न किए गए। काउण्ट चेम्बोर्ड (Count Chambord) की कोई संतान नहीं थी और यह फैसला किया गया था कि काउण्ट ऑफ पेरिस, चेम्बोर्ड के लिए अपना दावा छोड़ दे और काउण्ट चेम्बोर्ड हेनरी पंचम के नाम से सिंहासन पर बैठे। चूँकि चेम्बोर्ड की सन्तान नहीं थी, काउण्ट ऑफ पेरिस उसका उत्तराधिकारी बने। यह समझौता होने के पश्चात् यह निश्चित हो गया कि फ्रांस में राजशाही हो जाएगी और इसके लिए विचार-विमर्श होने लगा। विचार-विमर्श सब बातों पर सफल रहा। किन्तु ध्वज के मामले पर अड़चन पड़ गई। काउण्ट ऑफ चेम्बोर्ड ने घोषणा कर दी कि "मैं क्रान्ति का तिरंगा ध्वज नहीं अपनाऊँगा।" उसके शब्दों में, "हेनरी पंचम कभी भी हेनरी चतुर्थ का श्वेत ध्वज नहीं छोड़ेगा।" उसकी धारणा थी कि यदि उसे फ्रांस का राजा होना है तो उसे अपने सिद्धान्त और ध्वज कभी नहीं छोड़ने चाहिएँ। वह क्रान्ति का राजा होना नहीं चाहता था। काउण्ट चेम्बोर्ड के हठ के कारण बात-चीत टूट गई।

इस असफलता के पश्चात् भी राजशाही के समर्थकों ने साहस नहीं छोड़ा।

उन्हें आशा थी कि या तो चेम्बोर्ड अपना विचार बदल लेगा या उसकी मृत्यु हो जाएगी। और काउण्ट ऑफ पेरिस उसका उत्तराधिकारी बन जायेगा। काउण्ट ऑफ पेरिस क्रान्ति का ध्वज स्वीकार करने के लिए तैयार था। इन परिस्थितियों में राजशाही के समर्थकों ने देर करने की चालें अपनाई। उनका उद्देश्य समय बिता कर ठीक अवसर पर चोट करना था। थीयर्स के त्यागपत्र के पश्चात् मेकमोहन को अध्यक्ष बना दिया गया। अभी तक अध्यक्ष की पदावधि निर्धारित नहीं की गई थी किन्तु इस बार १८७३ में पदावधि सात वर्ष निर्धारित हुई। राजशाही के समर्थकों को आशा थी कि सात वर्षों में उनकी योजना सफल हो जाएगी।

राष्ट्रीय सभा विलम्ब की नीति का अनुसरण कर रही थी इसलिए उसने संविधान बनाने के कार्य को गम्भीरता से नहीं किया। धीरे-धीरे समय बीतता गया। किन्तु इसी बीच ही गेमबैट्टा (Gambetta) देश के कोने-कोने में प्रजातंत्र का प्रचार कर रहा था। प्रजातंत्रवाद का मुकाबला करने के लिए राष्ट्रीय सभा ने १८७५ में एक कानून बनाया जिसके अनुसार फ्रांस की कम्यूनों के महापौरों (Mayors) की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जानीं थी, अब इन्हें स्थानीय परिषदें नियुक्त नहीं कर सकती थीं। इस कानून का उद्देश्य स्थानीय मामलों पर मन्त्रिमण्डल का नियंत्रण स्थापित करना था। सारे सार्वजनिक भवनों से प्रजातंत्र सम्बन्धी मूर्तियां हटा ली गई। सरकारी पत्रों में 'प्रजातंत्र' का शब्द लिखा जाना बन्द कर दिया गया। प्रजातंत्री समाचारपत्रों को तंग किया जाने लगा और एक वर्ष में २०० से अधिक प्रजातंत्र के समर्थक समाचारपत्रों का दमन कर दिया गया। हताश होने की अपेक्षा प्रजातंत्रवादियों ने अधिक उत्साह से अपना प्रचार करना आरम्भ कर दिया।

इस परिस्थिति में बोनापार्टिस्ट भी अपनी शक्ति संचित कर रहे थे। इन्होंने कई चुनावों में विजय प्राप्त की थी। बोनापार्टिस्ट दल के सत्तारूढ़ होने के भय ने देश की राजनीतिक स्थिति पूर्णतः बदल दी। बहुत से ओर्लियनिस्ट, बोनापार्टिस्ट दल की अपेक्षा प्रजातंत्र को अधिक चाहते थे। चूंकि उनकी सफलता के अवसर कम थे, वे राष्ट्रीय सभा के प्रजातंत्रवादी सदस्यों के साथ मिल गये। प्रजातंत्रवादियों और ओर्लियनिस्ट दल के संयोग से १८७५ में राष्ट्रीय सभा फ्रांस के लिए नया संविधान बनाने में सफल हुई। सभा ने एक मत (३५२ के विरुद्ध ३५३) से प्रजातंत्री संविधान को स्वीकार किया।

संविधान (The Constitution) (१८७५)—१८७५ के संविधान में 'प्रजातंत्र' शब्द केवल एक बार ही प्रयुक्त किया गया था। इस में सात वर्ष की अवधि के लिए एक राष्ट्रपति की व्यवस्था थी। एक सीनेट और चेम्बर ऑफ डेपुटीज़ की व्यवस्था भी थी। प्रजातंत्रवादी सीनेट के लिए सीधे चुनावों के समर्थक थे किन्तु समझौते के रूप में उन्होंने परोक्ष चुनाव को स्वीकार कर लिया था। राष्ट्रपति सीनेट की अनुमति से निम्न सदन को भंग कर सकता था। फ्रांस में संसदीय प्रणाली की सरकार की स्थापना की व्यवस्था थी। मंत्री व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से

सरकार की नीति के लिए उत्तरदायी थे तथा अपने कार्यों के लिए व्यक्तिगत रूप से भी उत्तरदायी थे।

१८७५ का संविधान विरोधी शक्तियों के बीच एक समझौता था। राष्ट्रीय सभा के राजशाही के समर्थक सदस्य सोचते थे कि संविधान में राजशाही के लिए पर्याप्त रूप से व्यवस्था कर दी गई है। यह प्रजातंत्र के वेग को रोक सकेगी और उपयुक्त अवसर पर राजशाही की स्थापना हो सकेगी। प्रजातंत्रवादियों ने इसे स्वीकार कर लिया क्योंकि इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं था। कुछ उग्र प्रजातंत्रवादियों ने संविधान की 'मज़ाक' कह कर निन्दा की थी। इस संविधान की 'बीमार देश के लिए औषधि' कह कर व्याख्या की गई थी।

तृतीय प्रजातंत्र के खतरे (Dangers to Third Republic)—यद्यपि राजशाही की समर्थक राष्ट्रीय सभा को जटिल स्थिति में प्रजातंत्रात्मक संविधान बनाना पड़ा तथापि फ्रांस के तीसरे प्रजातंत्र को बहुत से खतरों का सामना करना था। *स्थायित्व प्राप्त करने के लिए कई वर्षों का समय लगा।*

(१) १८७५ के संविधान के अनुसार १८७६ में सार्वजनिक चुनाव हुए। सीनेट में राजशाही के समर्थकों को अल्पमत प्राप्त हुआ और प्रथम सदन (Chamber of Deputies) में प्रजातंत्रवादियों का बहुमत था। राष्ट्रपति मेकमोहन ने प्रजातंत्री दल का मन्त्रिमण्डल नियुक्त किया किन्तु युद्ध, जलसेना और विदेशनीति इत्यादि विभागों को संसद् से परे रखने का हठ किया। राजशाही के समर्थकों ने प्रजातंत्रवादियों के विरुद्ध घोर आन्दोलन आरम्भ किया। फ्रांस के पादरी लोग इनके साथ थे। प्रजातंत्रवादी देश की राजनीति में धर्माधिकारियों का हस्तक्षेप सहन नहीं करना चाहते थे। गेमबैट्टा ने उनके कार्य की निन्दा करते हुए कहा, "धर्माधिकारी हमारे शत्रु हैं।" रोमन कैथोलिक चर्च प्रजातन्त्र का सबसे बड़ा शत्रु समझा जाने लगा। प्रजातंत्र के शत्रुओं ने मेकमोहन को सलाह दी कि वह मन्त्रिमण्डल की सलाह मानने के लिए विवश नहीं है, वरन् अपनी स्वतंत्र नीति का अनुसरण कर सकता है। १६ मई, १८७७ को मेकमोहन ने प्रथम सदन के विश्वासपात्र प्रजातंत्रवादी मन्त्रिमण्डल को भंग कर दिया और ड्यूक ऑफ ब्रोगले के नेतृत्व में राजशाही के समर्थकों का एक नया मन्त्रिमण्डल बना दिया। सीनेट भी प्रथम सदन को भंग करने में सहमत हो गई और नए चुनावों की आज्ञा दे दी गई। प्रजातंत्रवादी मेकमोहन की चालों का विरोध करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ थे। उनका दावा था कि राष्ट्रपति को अपनी नीति चलाने का कोई अधिकार नहीं है। वह संसद् की विश्वासपात्र सरकार को भंग नहीं कर सकता। मेकमोहन यह कहता था कि उसे यह अधिकार प्राप्त है और यदि संसद् इसे ठीक नहीं मानती तो जनता को अधिकार है कि वह राष्ट्रपति अथवा सदन जिसका चाहे समर्थन करे। एक ओर राष्ट्रपति तथा सीनेट और दूसरी ओर चैम्बर ऑफ डेपुटीज़ के बीच राजनीतिक सत्ता के लिए बड़ा कटु संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में चैम्बर की जीत हुई।

जब चैम्बर ऑफ डेपुटीज़ का चुनाव हुआ तो ब्रोगले मन्त्रिमण्डल ने

गेमबैट्टा (Gambetta) के नेतृत्व में प्रजातंत्रवादियों के विरुद्ध पूरी शक्ति से विरोध किया। प्रजातंत्रवादी पदाधिकारियों को पदच्युत करके प्रतिक्रियावादियों को नियुक्त कर दिया गया। राज्ययंत्र को प्रजातंत्रवादियों के समाचारपत्रों का दमन करने के लिए काम में लाया गया। गेमबैट्टा ने घोषणा की कि जनता ने सार्वजनिक चुनावों द्वारा अपना निर्णय दे दिया है, अब राष्ट्रपति मेकमोहन को या तो झुक जाना चाहिए या पदत्याग कर देना चाहिए। उस पर अभियोग लगाकर मुकदमा चलाया गया और २००० फ्रैंक का जुर्माना और ३ महीने की कैद का दण्ड दिया गया। राजशाही के समर्थकों ने सरकारी उम्मीदवार खड़े किए जिनका पदाधिकारियों तथा मन्त्रिमण्डल ने समर्थन किया। पादरियों ने भी राजशाही दल का समर्थन किया। इस सब विरोध के होते हुए भी प्रजातंत्रवादियों को चुनाव में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। उन्हें नए चैम्बर ऑफ डेपुटीज में १०० से अधिक मतों का बहुमत प्राप्त हुआ। राष्ट्रपति मेकमोहन झुक गया और उसने प्रजातंत्रवादियों का मन्त्रिमण्डल नियुक्त किया।

१८७८ में सीनेट के एक-तिहाई सदस्यों का चुनाव हुआ और प्रजातन्त्रवादियों को यहाँ भी बहुमत प्राप्त हुआ। दोनों सदनों में प्रजातन्त्रवादियों का बहुमत हो जाने से राष्ट्रपति मेकमोहन की स्थिति निर्बल पड़ गई। विधान मण्डल ने सेना के कुछ सेनापतियों को अवकाश देने की माँग की क्योंकि ये लोग प्रजातन्त्र के विरोधी थे। मेकमोहन ने यह मानने से इन्कार कर दिया। उसकी धारणा थी कि सेना को राजनीति से अलग रखना चाहिए। ३० जनवरी, १८७६ को मेकमोहन ने स्वयं ही त्यागपत्र दे दिया। ज्युलिस ग्रीवे, एक पुराने प्रजातन्त्रवादी, को नया राष्ट्रपति चुना गया। इस प्रकार १८७१ के बाद प्रथम बार प्रजातन्त्री दल का चेम्बर ऑफ डेपुटीज़, सीनेट और राष्ट्रपति के पद पर पूरा अधिकार हो गया। प्रजातन्त्रवादियों की विजय के प्रतीक स्वरूप राजधानी १८८० में वर्साई से उठाकर पेरिस ले आई गई।

यह सत्य है कि राजशाही दल के समर्थक अभी भी थे, किन्तु पारस्परिक मतभेद के कारण उनका कोई विशेष महत्त्व नहीं रहा था। १८८३ में काउण्ट ऑफ चेम्बोर्ड की मृत्यु के साथ लेजिटिमिस्टों की आशाएँ भी समाप्त हो गईं। काउण्ट ऑफ पेरिस ने अधिक आन्दोलन नहीं किया और नेपोलियन तथा उसके पुत्र की मृत्यु के पश्चात् बोनापार्ट के समर्थकों का उत्साह भी समाप्त हो गया।

यद्यपि राजशाही के समर्थकों का खतरा समाप्त हो गया था तो भी फ्रांस के तृतीय प्रजातन्त्र को अन्य कठिनाइयों का सामना करना था।

(२) १८८२ में गेमबैट्टा (Gambetta) की मृत्यु के पश्चात् फ्रांस की राजनीति में कोई प्रभावशाली व्यक्ति नहीं रह गया था। परिणामतः मन्त्रिमण्डलों का परिवर्तन शीघ्रता से होता रहा। राजनीति पद ग्रहण करने का एक खेल बन गया और राज्य की गम्भीर समस्याएँ पीछे छोड़ दी गईं। देश में बड़ा असन्तोष फैला। बहुत से लोगों को शिक्षा का धर्मनिरपेक्ष कर देना अरुचिकर लगा, बहुत से लोग सरकार की उपनिवेशों की नीति से असन्तुष्ट थे। लोगों की धारणा बनने लगी

कि फ्रांस में संसदीय प्रणाली की सरकार असफल हुई है और केवल एक तानाशाह (Dictator) ही स्थिति को सँभाल सकता है। राष्ट्रपति ग्रीवे के घर में ही एक षड्यन्त्र पकड़ा गया कि उसका दामाद 'लिजन ऑफ ऑनर' की उपाधि प्रदान करने के मामले में सौदेवाज़ी करता था। राष्ट्रपति ग्रीवे ने अपने दामाद का पक्ष लिया और उसे पदत्याग करना पड़ा। निस्सन्देह, इससे प्रजातन्त्री सरकार की प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का पहुँचा।

(३) पानामा नहर के संचालकों के विषय में भी एक गड़बड़ घोटाला पकड़ा गया। कुछ मन्त्री और संसद् सदस्यों को घूस लेते हुए पाया गया। प्रजातन्त्र के विरोधियों को आलोचना करने का एक और मौका मिल गया।

(४) **बौलांगर** (Boulanger)—फ्रांस में इस प्रकार की परिस्थितियों में जनरल वौलांगर का अभ्युदय हुआ। वह एक अत्यन्त साहसी घुड़सवार था। वह एक प्रभावशाली वक्ता था और उसने जनता के असन्तोष का उपयोग अपनी प्रतिष्ठा वढ़ाने के लिए किया। १८८६ में उसे युद्धमन्त्री नियुक्त किया गया और उसने छावनियों की स्थिति में सुधार करके तथा सैन्य सेवा की अवधि कम करके सेना की सद्भावना प्राप्त की थी। अनेक समाचारपत्र उसके नियन्त्रण में थे और वे उसकी प्रतिष्ठा वढ़ाने में प्रयत्नशील थे। वह फ्रांस द्वारा जर्मनी से वदला लेने की वात कहा करता था। वह स्वयं को प्रजातन्त्र का संरक्षक वताता था और संविधान में आमूल चूल संशोधन कराने की माँग करता था। यद्यपि उसका कार्यक्रम अस्पष्ट था तो भी उसका ध्येय संसद् के अधिकारों में कमी तथा राष्ट्रपति के अधिकारों में वृद्धि कराना था। राष्ट्रपति के पद के लिए सीधे चुनाव का समर्थक था।

तीन वर्ष तक वौलांगर (Boulanger) का व्यक्तित्व राजनीतिक ववण्डर का केन्द्र वना रहा। सव प्रकार की विचारधाराओं के असन्तुष्ट व्यक्ति चाहे वे राजशाही दल, साम्राज्यवादी अथवा धर्माधिकारी ही थे, उसके साथ प्रजातन्त्र को उलट देने के उद्देश्य से आ मिले। वौलांगर अनेक चुनाव-क्षेत्रों से संसद् की सदस्यता के लिए खड़ा हुआ और अनेक दलों ने उसके चुनावों के लिए धन व्यय किया। १८८८ के पाँच महीनों में वौलांगर छः चुनाव-क्षेत्रों से संसद् का सदस्य चुना गया। जनवरी १८८९ में वह पेरिस नगर चुनाव-क्षेत्र से उम्मीदवार वना और ८० हजार मतों के वहुमत से चुना गया।

वौलांगर (Boulanger) प्रतिष्ठा के शिखर पर था और अपने विरोधियों पर प्रहार कर सकता था, किन्तु उसने अवसर चूक जाने दिया। प्रजातन्त्रवादियों ने भी अपनी शक्ति संगठित कर ली थी। परिणामतः मन्त्रिमण्डल ने वौलांगर को सीनेट के सम्मुख जो सर्वोच्च न्यायालय का काम कर रही थी, पेश होने को कहा। उस पर राष्ट्र की सुरक्षा को हानि पहुँचाने का अभियोग लगाया गया था। अपनी सफाई देने की अपेक्षा वह वेल्जियम भाग गया और अनुपस्थिति में ही उसे दण्ड दिया गया। उसकी अनुपस्थिति के कारण उसके अनुयायी भी छिप गए। दो वर्ष के पश्चात् उसने आत्महत्या कर ली। वौलांगर के पतन से प्रजातन्त्र को शक्ति प्राप्त

हुई, उसके महत्त्व का पता लगा और उसके विरोधियों की निन्दा हुई। संविधान के संशोधन के विचार की भी निन्दा की गई।

(५) ड्रेफस (Dreyfus)—ड्रेफस के मामले ने भी कुछ समय तक प्रजातन्त्र की सुरक्षा को भय पैदा कर दिया था। अलफ्रेड ड्रेफस एक यहूदी था और फ्रांस की

ड्रेफस

सेना में कप्तान था। अक्टूबर, १८९४ में उसे देश के सैनिक गुप्त भेद विदेशी सेना को देते हुए पकड़ा गया। सैनिक न्यायालय में उस पर मुकदमा चलाया गया और दोषी सिद्ध होने पर उसे आजन्म कारावास का दण्ड दिया गया। जनवरी, १८९५ में सार्वजनिक रूप से और नाटकीय ढंग से उसका अपमान किया गया। एक सैनिक स्कूल के बरामदे में सेना के बड़े दस्ते के सामने उसकी वर्दी से धज्जियाँ फाड़ी गईं, उसकी तलवार तोड़ दी गई। किन्तु इतने अपमान के बाद भी वह 'फ्रांस की जय हो' पुकारता रहा। उसने कहा कि वह निर्दोष है। उसे दक्षिणी अमरीका के एक

छोटे से उजाड़ (Devil's Island) और अस्वास्थ्यकर द्वीप में भेज दिया गया और वहाँ कैद में रखा गया। सर्वसाधारण की भावना थी कि उसके साथ अन्याय किया गया था।

कर्नल पिक्वार्ट (Picquart) को गुप्तचर विभाग का प्रमुख नियुक्त किया गया था और छानबीन के पश्चात् वह इस निर्णय पर पहुँचा कि जिन पत्रों के आधार पर ड्रेफस (Dreyfus) को दण्ड दिया गया था वे मेजर ईस्टरहेजी ने जाली तैयार किए थे। सेना की प्रतिष्ठा बनाये रखने के उद्देश्य से फ्रांस की सरकार ने इस मामले को दबा दिया और पिक्वार्ट (Picquart) को वहाँ से बदल दिया। उसके स्थान पर कर्नल हेनरी को नियुक्त किया गया। किन्तु देश भर में बड़ा आन्दोलन हुआ। इमाइल ज़ोला (Emile Zola), क्लेमान्सो (Clemenceau) और अनातोले फ्रांस जैसे व्यक्तियों ने ड्रेफस के मामले को उठाया जिसका राजाशाही दल और धर्माधिकारियों ने विरोध किया। ड्रेफस के दोषी अथवा निर्दोष होने का प्रश्न नहीं था अपितु इसमें अन्य बड़े-बड़े मामले उलझे हुए थे। प्रजातन्त्र के शत्रु ड्रेफस को दोषी बता कर प्रजातन्त्र को बदनाम करना चाहते थे।

ड्रेफस के सहायक उस पर दुबारा मुकदमा चलाने का आन्दोलन कर रहे थे किन्तु इस बात का स्वार्थी लोगों ने विरोध किया। कर्नल हेनरी ने भी यह स्वीकार किया कि जिन पत्रों के आधार पर ड्रेफस को दण्ड दिया गया था उनमें से एक उसने जाली बनाया था। इस अपराध को स्वीकार करने के पश्चात् हेनरी ने १८९८ में आत्महत्या कर ली। हेनरी की स्वीकारोक्ति से ड्रेफस के सहायकों के हाथ और भी मजबूत हो गए और सरकार को इस मुकदमे को दुबारा चलाने के लिए विवश होना पड़ा। इस दूसरे मुकदमे में भी ड्रेफस को दोषी पाया गया। तत्कालीन परिस्थिति को देख कर उसकी सजा केवल १० वर्ष की कर दी गई। राष्ट्रपति लौबे (Loubet) ने अपने क्षमादान के अधिकार का प्रयोग करके उसे मुक्त कर दिया।

इससे भी ड्रेफस के समर्थकों को सन्तोष नहीं हुआ। १९०६ में उस पर तीसरी बार मुकदमा चला और उसे पूर्णत: निर्दोष घोषित कर दिया गया। इस फैसले के अनुसार ड्रेफस को सेना में बड़े ऊँचे पद पर नियुक्त किया गया। ड्रेफस प्रजातन्त्रवाद का प्रतीक बन गया।

हेज़न के मतानुसार, "ड्रेफस का मामला, आरम्भ में एक विश्वासघाती के भाग्य के निर्णय के समान था किन्तु शीघ्र ही यह एक महत्त्वपूर्ण मामला बन गया। दलबन्दी, व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं और स्वार्थों ने इसे अपने हित के लिए प्रयुक्त किया और इस संघर्ष में कानूनी न्याय और अन्याय को बिलकुल भुला दिया गया। जो यहूदियों से घृणा करते थे उन्होंने इसे यहूदी जाति के विरुद्ध घृणा उभारने के लिए प्रयुक्त किया क्योंकि ड्रेफस यहूदी था। चर्च भी इनके साथ मिल गया। राजशाही के समर्थकों ने इस अवसर से लाभ उठा कर कहा कि प्रजातन्त्र एक असफलता है, इससे षड्यंत्रों की उत्पत्ति होती है इसलिए इसे समाप्त कर देना चाहिए। दूसरे पक्ष में ड्रेफस को निर्दोष मानने वाले, जातियों से घृणा करने को

बर्बरता का प्रतीक मानने वाले, सेना को संसद् के अधिकार में रखने के पक्षपाती थे क्योंकि सेना के अधिकारी अपने को देश के क़ानून से ऊँचा मानते हैं, इस मामले को प्रजातन्त्र पर एक छुपा हुआ भयानक आक्रमण मानने वाले तथा वे लोग जो धर्माधिकारियों को राजनीति से अलग रहना चाहिए ऐसा मानते थे, सब एक साथ मिल गए।

"राजनीतिक क्षेत्र में इस स्मरणीय संघर्ष का परिणाम यह हुआ कि सभी प्रकार की विचारधाराओं के प्रजातन्त्रवादी एक कार्यक्रम को क्रियान्वित करने के लिए और सेना तथा चर्च की राजनीतिक महत्ता को कम करने के लिए संगठित हो गए। सेना का मामला तो राजशाही के समर्थक पदाधिकारियों को पदच्युत कर देने पर हल हो गया, किन्तु दूसरे मामले को सुलझाना एक अत्यन्त सूक्ष्म और जटिल समस्या थी, जिससे निपटने के लिए फ्रांस को एक और संघर्ष करना पड़ा।"

यह बात उल्लेखनीय है कि ड्रेफस के विरोधियों की पराजय के पश्चात् तृतीय प्रजातन्त्र की स्थिति और भी दृढ़ हो गई और अब इसे अन्य किसी दिशा से खतरे की सम्भावना नहीं रही।

चर्च-विरोधी नीति (Ultramontanism)—तृतीय प्रजातन्त्र की चर्च-विरोधी नीति के अनेक कारण थे। चर्च के अधिकारियों ने अपने आपको राजशाही के समर्थकों का साथी प्रदर्शित कर दिया था। जब भी प्रजातन्त्र दल और राजशाही दल में मुठभेड़ हुई थी तभी इन लोगों ने प्रजातन्त्र के विरोधी दल का साथ दिया था। ड्रेफस के मामले में भी धर्माधिकारियों ने ड्रेफस के विरोधियों का साथ दिया। उन्होंने बोलांगर का भी साथ दिया था। फ्रांस के लोकप्रिय नेता गेमबेट्टा (Gambetta) ने भी तृतीय प्रजातंत्र को चर्च की ओर से खतरा बताते हुए कहा था, चर्च के अधिकारी "ये हमारे शत्रु हैं"। काम्ब्ज (Combes) के शब्दों में, "पिछले ३५ वर्षों में जब भी प्रजातन्त्र को हानि पहुँची, इसके विरुद्ध आन्दोलन या षड्यन्त्र हुए, इन सब की तह में धर्माधिकारी पाए गए।"

फ्रांस के राजनीतिज्ञ देश की शिक्षा-व्यवस्था पर से चर्च का नियन्त्रण हटा देना चहते थे। उनकी इच्छा प्रत्येक बालक और बालिका के हृदय में प्रजातन्त्र की भावना को भर देना था। फ्रांस के शिक्षा मंत्री फेरी (Ferry) ने अनेक कानूनों द्वारा शिक्षा पर से कैथोलिक प्रभाव को हटा देने का प्रयत्न किया था। इन कानूनों द्वारा सारे बालकों को कुछ स्कूलों में अनिवार्य रूप से उपस्थित होना था। माता पिता अब भी अपने बालकों को चर्च-नियोजित स्कूल में भेज सकते थे किन्तु उन्हें अपने धन से ही इन स्कूलों को चलाना पड़ता था। इधर देश भर में सरकारी स्कूलों की श्रृंखला फैल गई थी जो प्रजातन्त्री सरकार द्वारा संचालित थे। इन स्कूलों में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती थीं और केवल वही पादरी शिक्षा दे सकते थे जिन्हें सरकारी मान्यता प्राप्त होती थी। गेम्बैट्टा का विचार था कि, "पिछला युद्ध प्रशिया के स्कूल शिक्षकों ने जीता था वर्त्तमान युद्ध फ्रांस के स्कूलों के शिक्षक जीतेंगे। बहुत से कैथोलिक पादरियों ने सरकारी स्कूलों को परमात्माहीन और नास्तिक कह कर

निन्दा की थी। सरकार ने भी उल्टी चोट की और 'सोसायटी ऑफ जीसुस' को भंग करने की आज्ञा देकर उसे देश से वाहिर निकल जाने की आज्ञा दे दी। साधुओं और साध्वियों के विरुद्ध सारे कानूनों को पुनः लागू कर दिया गया। सरकार ने आज्ञा दी कि जो संस्थाएँ सरकार द्वारा मान्यता-प्राप्त नहीं हैं, वे भंग कर दी जाएँ। उनके सदस्यों को स्कूल चलाने से रोक दिया गया। यह भी आज्ञा हुई कि लोगों के विवाह सरकारी पादरियों द्वारा कराए जाने पर ही मान्य होंगे। अन्य कानूनों द्वारा दीवानी अदालतों को तलाक और विवाह-विच्छेद करने की आज्ञा देने का अधिकार दे दिया गया। कैथोलिकों ने विरोध तो किया किन्तु चुप हो गए।

अक्टूबर, १९०० में प्रधानमन्त्री वालडेक-रूसो (Waldeck-Rousseau) ने टूलूसे में एक भापण दिया, जो फ्रांस भर में गूँज गया और जिससे एक महत्त्वपूर्ण नीति का आभास होने लगा। उसके अनुसार, "फ्रांस के सम्मुख वास्तविक खतरा साधुओं और साध्वियों की वढ़ती हुई शक्ति से है। इस देश की आध्यात्मिक एकता शताब्दियों से इसकी शक्ति और महत्ता की परिचायक रही है। आज युवकों और युवतियों के दो वर्ग एक दूसरे को विना जाने पनप रहे हैं और वे उस खतरे से अनभिज्ञ हैं, जिसे वे, जव तक उसके पास पहुँच नहीं जाते, पहिचान भी नहीं पाते।" उसके कहने का आशय यह था कि फ्रांस का युवा वर्ग दो भागों में बँट गया है जिनका जीवन के प्रति दृष्टिकोण, मानसिक विचारधाराएँ और जिनकी राजनीति और सदाचार के विपय में विपरीत धारणाएँ है और इस प्रकार देश की नैतिक एकता नष्ट हो गई है। इसका एक कारण धार्मिक सम्प्रदायों और संगठनों की आश्चर्यजनक और खतरनाक वृद्धि तथा दुष्परिणाम भी था। ये सम्प्रदाय राज्य के प्रतिद्वन्द्वी थे। वे धन और संख्या में वहुत वढ़ गए थे। १८७७ से १९०० के समय में साध्वियों की संख्या अमान्य सम्प्रदायों में १४ हज़ार से ७५ हज़ार हो गई थी। इसी प्रकार साधुओं की संख्या लगभग १ लाख ६० हज़ार थी। इनकी सम्पत्ति का मूल्य ५ करोड़ फ्रेंक था। यही सम्पत्ति १९०० में लगभग एक अरव फ्रेंक के लगभग हो गई थी। चर्च के हाथों में सम्पत्ति का संग्रहीत हो जाना वड़ी भयानक वात थी। चर्च के द्वारा शिक्षा और धर्म-प्रचार का विरोध किया जाने लगा। चर्च को स्वतन्त्रता का शत्रु घोपित कर दिया गया था।

१९०१ में संगठन कानून (Law of Associations) वना, जिसके अनुसार फ्रांस में विना संसद् की अनुमति के कोई भी सम्प्रदाय नहीं रह सकता था। इन सम्प्रदायों को नियमित रूप से सरकारी नियन्त्रण में रहना पड़ता था। यद्यपि इस कानून का कड़ा विरोध हुआ तथापि इसे वड़ी कठोरता से लागू कर दिया गया। अनेक सम्प्रदायों को संसद् की स्वीकृति प्राप्त करने की आज्ञा नहीं दी गई और जिन्हें प्रार्थना की आज्ञा दी गई उन्हें आज्ञा नहीं मिली। हजारों साधुओं और साध्वियों को अपनी संस्थाओं को छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा और इन संस्थाओं को वन्द कर दिया गया। वहुत से लोगों ने फ्रांस से भाग कर वेल्जियम, स्पेन, ब्रिटेन और अमेरिका में शरण प्राप्त की। कोम्वेस ने डींग हांकी थी कि उसने केवल

प्रजातन्त्र के विरोधियों को ही देश से नहीं निकाला अपितु चर्च के स्कूलों से उनके श्रेष्ठ शिक्षकों को भी भगा दिया है।

१९०४ में एक अन्य आज्ञा प्रसारित हुई कि धार्मिक संस्थाओं द्वारा, जिनमें मान्यता-प्राप्त संस्थाएँ भी थीं; शिक्षा देने का कार्य १० वर्ष में समाप्त कर दिया जाय। सरकार बालकों की शिक्षा का एकाधिकार अपने पास ही रखना चाहती है। परिणामतः वह बालकों में प्रजातंत्र और स्वातन्त्र्य की भावना का बीजारोपण कर सकती थी। लगभग ५०० शिक्षा, धर्म-प्रचार और व्यापार की संस्थाएँ समाप्त कर दी गईं। यद्यपि कैथोलिकों ने इन कानूनों को 'स्वतन्त्रता' छीनना कहा किन्तु फिर भी ये कानून देश में लागू कर दिए गए।

प्रजातंत्रवादी इससे सन्तुष्ट नहीं हुए और वे अपने चर्च-विरोधी कार्यक्रम को पूरा करना चाहते थे। लगभग एक शताब्दी से चर्च और सरकार के सम्बन्ध १८०१ के पोप से हुए समझौते (Concordat) के अनुसार चलते रहे थे। बिशप और आर्च बिशप पोप की अनुमति से नियुक्त किए जाते थे। बिशप राज्य की अनुमति से पुजारी नियुक्त करता था। बिशपों और पुजारियों का वेतन सरकार की ओर से दिया जाता था। चर्च ने सरकार द्वारा चर्च की सम्पत्ति को जब्त करने के अधिकार को मान्यता दे दी थी। बहुत से लोग १८०१ के समझौते को समाप्त कर देने के समर्थक थे। इन लोगों का विचार था कि धर्म एक व्यक्तिगत मामला है और राज्य का इससे कोई सम्बन्ध नहीं हैं। राज्य को एक ऐसे चर्च की सहायता के लिए जिसमें बहुत लोगों की आस्था नहीं है, कर लगाने का कोई अधिकार नहीं है। इसे सब चर्चों और सम्प्रदायों के प्रति निष्पक्ष होना चाहिए। अप्रैल, १९०४ में जब फ्रांस का राष्ट्रपति लौबे इटली के राजा से रोम में भेंट कर गया तो यह संघर्ष चरम सीमा तक पहुँच चुका था। यह सर्वज्ञात था कि इस भेंट से पोप नाराज़ हो जाएगा क्योंकि उसने १८७० से इटली के राजा को मान्यता नहीं दी थी और कैथोलिक राजाओं को आदेश दिया गया था कि वे इटली के राजा से सम्बन्ध न रखें। पोप पायस दशम ने यूरोप की कैथोलिक मतावलम्बी शक्तियों को विरोध प्रकट करते हुए कहा कि "सर्वाधिकार सम्पन्न पोप का अपमान किया गया है।" जोरिस ने पोप की घोषणा को विदेशी हस्तक्षेप कह कर प्रतिकार की माँग की। परिणामतः फ्रांस के विदेश-मन्त्री डैलकासी (Delcasse) ने वाटिकन (Vatican) से फ्रांस के राजदूत को वापस बुला लिया। जून, १९०३ से प्रवर समिति चर्च और राज्यों को पृथक् करने की समस्या पर विचार कर रही थी। ९ दिसम्बर, १९०५ को कानून बनाया गया। इसके अनुसार १८०१ के पोप के समझौते (Concordat) को भंग कर दिया गया। सरकार द्वारा पादरियों का वेतन देना बन्द कर दिया गया और इनकी नियुक्ति से भी सरकार का कोई सम्बन्ध नहीं रहा। जिन पादरियों ने पर्याप्त समय तक सेवा की थी उन्हें पेन्शन दे दी गई। युवा पादरियों को कुछ हर्जाना दिया गया। चर्च की सम्पत्ति १७८९ से ही राष्ट्र की हो गई थी किन्तु रोमन कैथोलिक चर्च इसका स्वतन्त्र रूप से उपभोग कर सकता था। किन्तु अब इसका प्रबन्ध 'प्रार्थना सभाओं' (Associations of Worship) द्वारा होने लगा। ये सभाएँ जनसंख्या के आधार

पर बनाई जाती थीं। इन सभाओं द्वारा दान और भेंट इत्यादि में आई हुई सम्पत्ति का एक नियत राशि से अधिक धन रखने का अधिकार नहीं था।

इस कानून की रोमन कैथोलिकों ने सार्वजनिक रूप से निन्दा नहीं की। बहुत से लोगों का विचार था कि चर्च को बदलती हुई परिस्थितियों में अपने को ढालना ही चाहिए। ७४ बिशपों ने इस कानून को इस शर्त पर क्रियान्वित करने का आश्वासन दिया कि यदि इसमें कतिपय संशोधन कर दिए जाएँ।

१९०५ में पोप द्वारा इस कानून की खुले रूप में निन्दा करने के कारण समस्या और जटिल बन गई। उसने घोषणा की कि चर्च को राज्य से पृथक् करने का सिद्धान्त झूठा और भारी भूल है। उसने प्रार्थना सभाओं का भी प्रतिकार किया कि "इन सभाओं को अधिकार देने का आशय दैवी इच्छा द्वारा नियुक्त लोगों से अधिकार छीन कर अज्ञानी व्यक्तियों को सौंप देना है। यह चर्च के मौलिक सिद्धान्तों पर चोट है।" पोप का निर्णय कैथोलिकों के लिए निर्णायक था और अब समझौते की कोई आशा नहीं रह गई थी। फ्रांस भर में कैथोलिक चर्चों के बंद हो जाने की आशंका हो गई किन्तु सरकार इतनी कठोरता का व्यवहार नहीं कर सकती थी। ब्रियाँड (Briand) ने १८८१ की सभाओं पर प्रतिबन्ध लगाने वाले कानून को प्रयोग करने का निश्चय किया। यद्यपि यह कानून धर्मनिरपेक्ष सार्वजनिक सभाओं के लिए था, तथापि इसका प्रयोग धर्म समाओं के लिए किया गया। व्यवस्था की गई थी कि पादरी साधारण प्रार्थना-पत्र देकर वर्ष भर के लिए धर्म-गोष्ठियों की अनुमति प्राप्त कर सकते थे। पोप ने इस समझौते को भी नहीं माना।

१९०७ में एक और कानून बनाया गया, जिसके अनुसार १९०५ में रोमन कैथोलिक चर्च को दी गई सुविधाओं को समाप्त कर दिया गया। चर्चों में सार्वजनिक प्रार्थनाओं के मामलों को मेयर और पुजारियों के पारस्परिक समझौते पर छोड़ दिया गया। इन समझौतों के द्वारा इमारतों पर सरकार के अधिकार की सुरक्षा करना ही एकमात्र उद्देश्य था, किन्तु इससे धर्मकार्य में कोई बाधा नहीं पड़ती थी। धर्मकार्य यथापूर्व हो सकते थे।

प्रो० सेनोबास (Seignobos) के मतानुसार, "चर्च को शासन से अलग कर देने पर फ्रांस ने यूरोप की पोप से समझौते (Concordat) करने की वह परिपाटी तोड़ दी जिसके अनुसार शासन औपचारिक रूप से धर्म को मान्यता देता था। उसने अमेरिका की प्रणाली का अनुसरण किया जिसके अनुसार चर्च की व्यवस्था जनता अपनी इच्छा से करती थी। फ्रांस के धार्मिक क्षेत्र में यह एक अभूतपूर्व क्रान्ति थी।"

श्रम-कानून (Labour Legislation)—१८९० के लगभग फ्रांस में कुछ महत्वपूर्ण श्रम-सम्बन्धी कानून बनाए गए थे। १८९२ के "महान् कानून" (Great Act) द्वारा स्त्रियों के श्रम पर नियन्त्रण किया गया और १३ वर्ष की आयु से कम आयु के बालकों से मज़दूरी कराने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। इसके अनुसार यह भी व्यवस्था की गई कि १० घण्टे से अधिक काम न लिया जाए। साप्ताहिक

अवकाश यथासम्भव रविवार को होगा। एक और कानून द्वारा मालिकों और मजदूरों के झगड़ों को अपने आप ही चुने गए पंचों द्वारा निपटाने की व्यवस्था थी। १८९३ के एक कानून ने सरकार को यह अधिकार दिए कि वह कारखानों की सफाई इत्यादि के विषय में निरीक्षण करके उचित कार्यवाही करे। सरकार को मजदूरों की शारीरिक सुरक्षा के लिए पर्याप्त व्यवस्था की देखभाल भी करनी थी। इसी वर्ष एक अन्य कानून द्वारा सारे मजदूरों और उनके परिवारों के मुफ्त इलाज का प्रबन्ध किया गया। १८९८ के एक कानून द्वारा व्यवस्था की गई कि मालिकों को मजदूरों को शारीरिक चोट इत्यादि लग जाने पर क्षतिपूर्ति करनी पड़ेगी।

उपनिवेश-नीति (Colonial Policy)—लुई फिलिप और नेपोलियन तृतीय के शासन-काल में फ्रांस ने उपनिवेश बनाने के क्षेत्र में कुछ प्रगति की थी। ज्युलिस (Jules) और फेरी (Ferry) के काल में शक्तिशाली उपनिवेश नीति अपनाई गई थी। १८८१ में ट्यूनिस (Tunis) पर संरक्षक का शासन स्थापित किया गया। फेरी के नेतृत्व में टोनकिन (Tonkin) और अन्नाम पर संरक्षक का शासन स्थापित किया गया। फेरी ने फ्रेंच कांगो की नींव डाली और मैडागास्कर (Madagascar) पर अधिकार करने लिए सेना भेजी गई। फेरी द्वारा आरम्भ किए गए कार्य को उसके उत्तराधिकारियों ने आगे बढ़ाया। परिणामतः १८९६ में मैडागास्कर पर अधिकार कर लिया गया और १९०४ में मोरक्को को फ्रांस के प्रभाव में मान लिया गया। फ्रांस ने सिनीगाल (Senegal), गायना (Guinea), डाहोमे (Dahomey), आइवरी कोस्ट और नाइजर (Niger) नदी के तट के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था। यह सत्य है कि जर्मनी ने फ्रांस के मोरक्को में प्रवेश का विरोध किया जिसके कारण १९०५-६, १९०८ और १९११ के संघर्ष हुए। जर्मनी को कुछ क्षतिपूर्ति देकर समझौता कर लिया गया। इस प्रकार फ्रांस के पास एक ऐसा औपनिवेशिक साम्राज्य हो गया, जो विश्व भर में केवल ब्रिटेन से ही कम था।

विदेश नीति (Foreign Policy)—यह बात उल्लेखनीय है कि १८७१ से १८९० तक के काल में फ्रांस कूटनीतिक रूप से अकेला रह गया था। यह बिस्मार्क की नीति का परिणाम था जिसने फ्रांस को मित्रहीन करने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। बिस्मार्क ने तीन सम्राटों की सभा बनाई थी, जो १८७८ तक बनी रही। १८७९ में उसने आस्ट्रिया-हंगरी से सन्धि की। १८८२ में इस सन्धि में इटली की सदस्यता के पश्चात् यह त्रिमुखी सन्धि हो गई। उसने १८८१ में तीन सम्राटों की सभा को पुनर्जीवित किया और फिर यह सभा १८८७ तक चलती रही। १८८७ में उसने रूस से पुनः विश्वास-सन्धि (Reinsurance Treaty) की, जो १८९० तक चलती रही। फ्रांस इंग्लैण्ड से सन्धि नहीं कर सकता था क्योंकि दोनों में उपनिवेशों के प्रश्न पर खींचातान चल रही थी। इनके सम्बन्ध इतने बिगड़ चुके थे कि १८९८ में फ़शोदा के मामले में दोनों देशों में युद्ध की सम्भावना हो गई थी। यद्यपि १८९० तक बिस्मार्क रूस को अपने साथ रखने में सफल हुआ था तथापि उसके त्यागपत्र देने के पश्चात् परिस्थिति बदल गई थी। परिणामतः १८९३ में फ्रांस और रूस की सन्धि

हुई। यह सन्धि १९१४ तक चलती रही यद्यपि रूस और जापान के युद्ध के पश्चात् इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं रह गया था। १८९३ की इस सन्धि से फ्रांस को कूटनीति के क्षेत्र में अकेला रखने की स्थिति समाप्त हो गई थी और इस गठबन्धन ने उसके भविष्य को आशामय बना दिया था। १८९८ तक, जब डैलकासी (Delcasse) ने विदेशमन्त्री का पद संभाला, फ्रांस की नीति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था। इस व्यक्ति की सफलताओं के महत्त्व के कारण यह आवश्यक है कि इसके विषय में उल्लेख किया जाए।

डैलकासी (Delcasse) (१८९८-१९०५)—डैलकासी की विदेश नीति इंग्लैण्ड और इटली का फ्रांस से पुनः मेल करना चाहती थी। जब वह १८९८ में विदेश-मंत्रालय (Quai D' Orsay) में प्रविष्ट हुआ तो फ्रांस और इंग्लैण्ड में कटुता थी और दोनों में परस्पर औपनिवेशिक प्रतियोगिता चल रही थी। १९०६ में जब उसने विदेश मन्त्रालय छोड़ा तो इंग्लैण्ड और इटली दोनों मित्र थे। यह सब डैलकासी की कर्त्तव्यनिष्ठा, सन्तोष और परिश्रम का ही परिणाम था।

इंग्लैण्ड के साथ समझौता (Reconciliation with England)—फ्रांस की सरकार ने मारचण्ड (Marchand) को मिश्री सूडान कहलाए जाने वाले प्रदेश में अंग्रेजों की घुसपैठ को रोकने तथा फ्रांस की शक्ति को संगठित करने के उद्देश्य से भेजा। फ्रांस में सरकार के बदले जाने पर भी इसकी नीति में कोई परिवर्तन नहीं आया था। इसका परिणाम यह हुआ कि मारचन्ड फ़शोदा पहुँचा और वहाँ उसने फ्रांस का ध्वज लहरा दिया। किचनर मारचण्ड से मिला और उसे फैशोदा से लौट जाने को कहा क्योंकि वह स्थान मिश्र के क्षेत्र में था। बहुत विवाद हुआ किन्तु कोई हल नहीं निकला। अन्त में थोड़ी ही दूर पर इंग्लैण्ड का ध्वज भी लहरा दिया गया और मारचण्ड को अपनी सरकार को सूचना देकर आदेश प्राप्त करने की अनुमति दे दी गई।
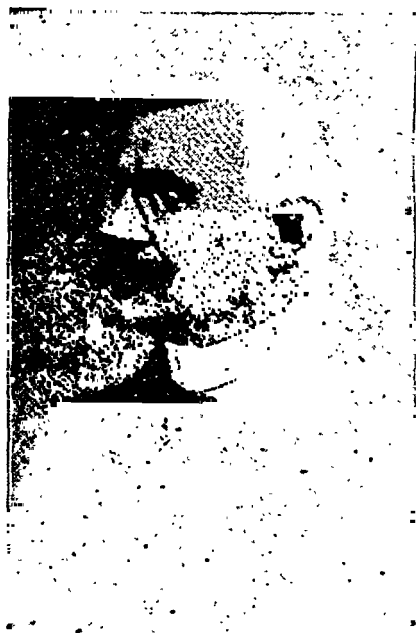
डैलकासी

कहा जाता है डैलकासी ने विदेश मंत्री का पद संभालते ही इंग्लैण्ड से सन्धि करने के लिए प्रयत्न आरम्भ कर दिया था। जब किचनर ने ओमदुर्मान का युद्ध जीता और खरतूम (Khartoom) में प्रवेश किया, डैलकासी ने "मिश्र के मामले में मतभेद होते हुए भी" उसे बधाई का सन्देश भेजा था। डैलकासी ने दोनों देशों के पारस्परिक

झगड़ों को विचार-विमर्श द्वारा सुलझाने की इच्छा भी प्रकट की थी। ब्रिटिश सरकार ने कहा कि विचार-विमर्श के लिए कोई समस्या नहीं है। जिस दिन किचनर मारचण्ड से फ़ैशोदा में मिला उससे एक दिन पहले डैलकासी और पेरिस स्थित इंग्लैण्ड के राजदूत में एक महत्त्वपूर्ण भेंट हुई। इस भेंट में डैलकासी ने राजदूत को बताया कि फ्रांस ने नील नदी के ऊपर के भाग पर ब्रिटेन के प्रभाव को कभी भी मान्यता नहीं दी थी और वास्तव में फ्रांस ने तो इसका विरोध किया था। बहर-उल गज़ल (Bahr-el-Ghazel) लम्बे समय से मिस्र के प्रभाव-क्षेत्र से परे रहा है और फ्रांस का फ़ैशोदा पर उतना ही अधिकार है जितना कि ब्रिटेन का खरतूम पर है। ब्रिटेन के राजदूत ने कहा कि उसकी सरकार समझौते के लिए तैयार नहीं है और परिस्थिति बहुत जटिल हो गई थी। एक और अवसर पर डैलकासी ने राजदूत से कहा कि वह इस प्रश्न पर बड़ी शान्ति से बातचीत करने को तैयार है किन्तु फ़ैशोदा बिना समझौते और शर्तों के खाली नहीं किया जाएगा। फ्रांस की सरकार के इस व्यवहार के कारण इंग्लैण्ड में बड़ा विरोध फैला और माँग की जाने लगी कि इस मामले में इंग्लैण्ड को झुकना नहीं चाहिए और फ्रांस को पाठ पढ़ाना चाहिए। लार्ड रोज़बरी ने घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार कुछ भी छोड़ने के लिए तैयार नहीं है और वह इस मामले को बल प्रयोग द्वारा सुलझाने के लिए तैयार है। इंग्लैण्ड के वित्तमन्त्री के भाषण की भी यही ध्वनि थी। चैम्बरलेन ने मुक्त सैनिकों को पुनः सेवा के लिए बुलाने की घोषणा की थी। पंच (Panch) पत्रिका में एक व्यंग-चित्र छिपा, जिसमें इंग्लैण्ड के बाजार में एक साधारण व्यक्ति की बेचैनी प्रदर्शित की गई थी। चित्र में एक फ्रांसीसी एक अंग्रेज से पूछता था, "यदि मैं यहाँ से चला जाऊँ तो मुझे क्या दोगे ?" अंग्रेज ने उत्तर दिया—"मैं तुम्हें तभी कुछ दूँगा जब तुम यहाँ से नहीं जाओगे।"

ब्रिटिश सरकार ने बिना शर्त के फ़ैशोदा को खाली करने की माँग की और डा० गूच का मत है कि ब्रिटेन ने अपनी बात युद्ध की धमकी देकर मनवाई। फ्रांस की सेनाएँ फ़ैशोदा से हट गईं और यह मामला शान्त हो गया। डैलकासी की दूरदर्शिता और नरमी ने युद्ध को टाल दिया। यदि चैनल (Channel) के दूसरी ओर के लोगों की तरह डैलकासी भी क्रोध में आ गया होता तो निश्चित रूप से झगड़ा हो जाता। इस युद्ध में इस प्रदेश के मूल्य से कहीं अधिक बलिदान देना पड़ता। जर्मनी फ्रांस का पहले ही से शत्रु था और वह इंग्लैण्ड से शत्रुता करके दूसरा शत्रु पैदा नहीं करना चाहता था। फ्रांस का जहाजी बेड़ा दुर्बल था और ब्रिटेन उससे उसका सारा औपनिवेशिक साम्राज्य छीन सकता था। यही धारणा थी कि जिसके कारण डैलकासी को इंग्लैण्ड से युद्ध करने की माँग करने वाले लोगों की उपेक्षा करनी पड़ी।

मारचण्ड के फ़ैशोदा छोड़ देने के बाद दोनों देशों में बातचीत आरम्भ हुई और अन्त में १८९९ में फ्रांस और इंग्लैण्ड के प्रभाव-क्षेत्रों के विषय में समझौता हुआ। इस समझौते के अनुसार इंग्लैण्ड ने फ्रांस द्वारा पश्चिमी अफ्रीका से मरुस्थल

की ओर अपना क्षेत्र बढ़ाने के अधिकार को मान्यता दी। यह समझौता डैलकासी और लार्ड सॉलिसबरी[1] की कठिन परिस्थिति में सूझबूझ का परिणाम था।"

जब फ़ैशोदा का मामला समाप्त हो गया तो डैलकासी ने फ्रांस के राजदूत से सॉलिसबरी को सन्देश भिजवाया कि अन्य पुराने झगड़ों को भी सुलझा लिया जाए। लार्ड सॉलिसबरी ने कहा कि अभी प्रतीक्षा करो और यह प्रतीक्षा चार वर्ष (१८९९-१९०३) तक करनी पड़ी।

डा० गूच (Gooch) के मतानुसार, "इंग्लैण्ड और फ्रांस में समझौते का विचार जून, १८९८ में डैलकासी द्वारा विदेश-मन्त्री का पद सँभालने के दिन ही उत्पन्न हुआ। यद्यपि वह मूलतः इंग्लैण्ड-विरोधी था तथापि उसने अपने कार्यालय में आने वाले प्रथम व्यक्ति से इंग्लैण्ड के साथ मैत्री स्थापना की बात कही थी। फ़ैशोदा छोड़ने के पश्चात् मैदान साफ हो गया, किन्तु फ्रांस की जनता और समाचारपत्रों द्वारा बोअर युद्ध के समय इंग्लैण्ड के प्रति विरोधी प्रचार के कारण कटुता बढ़ी थी। कठिनाइयाँ होने पर भी समझौते के समर्थकों ने साहस छोड़ा नहीं। १९०० में ब्रिटिश व्यापार मण्डल (Chamber of Commerce) ने पेरिस में अपना सम्मेलन करने की इच्छा प्रकट की और डैलकासी ने इसकी अनुमति दे दी। इस सम्मेलन में इंग्लैण्ड से बहुत से व्यक्ति पेरिस आए। १९०३ में सम्राट् एडवर्ड फ्रांस गए और वहाँ उनका स्वागत हुआ। इसी वर्ष फ्रांस के राष्ट्रपति लौबे और डैलकासी ने सद्भावना यात्रा की। इस प्रकार के मैत्री और पारस्परिक विश्वास के वातावरण में दोनों देशों में अपने हितों के विषय में विचार-विमर्श आरम्भ हुआ। निर्णय हुआ कि इंग्लैण्ड को मिस्र में और फ्रांस को मोरक्को में अपना क्षेत्र बढ़ाने की पूरी स्वतन्त्रता होगी। न्यूफाउण्डलैण्ड में मछली पकड़ने के विषय में भी समझौता हुआ। स्याम, मैडागास्कर और न्यू हैब्राइड्स (Hebrides) इत्यादि के प्रश्नों पर भी समझौता हुआ।

लार्ड लेन्सडोन और डैलकासी दोनों देशों के पुराने झगड़ों के निपट जाने पर सन्तुष्ट थे। अपने आलोचकों को उत्तर देते हुए डैलकासी ने कहा कि न्यूफाउण्डलैण्ड में फ्रांस ने अपने हितों को इसलिए छोड़ दिया क्योंकि इनकी रक्षा करना अत्यन्त कठिन था। प्रादेशिक समुद्री क्षेत्र में मछली पकड़ने, चारा और जाल खरीदने और सुखाने के अधिकार भी फ्रांस को मिले थे। अफ्रीका को भी ब्रिटिश सरकार ने अनेक सुविधाएँ दी थीं। डैलकासी के शब्दों में, "हमारे प्रभाव के कारण मोरक्को हमारे

---

१. यह ध्यान रखने योग्य बात है कि फ़ैशोदा के मामले ने फ्रांस और इंग्लैण्ड में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने का मार्ग तैयार किया। राजकुमार बूलो फ्रांस के राजदूत और इटली के राजदूत की बातचीत का उल्लेख करता है। इटली के राजदूत ने पूछा, "फ़ैशोदा के मामले का इंग्लैण्ड और फ्रांस के सम्बन्धों पर क्या प्रभाव पड़ेगा?" फ्रांस के राजदूत ने कहा, "इसका प्रभाव बहुत अच्छा होगा। एक बार सूडान का मामला सुलझ जाने पर इंग्लैंड के साथ सन्धि होने में कोई अड़चन नहीं रहेगी।" स्वयं बूलो ने कहा था, "पेरिस में इस बात पर बड़ी निराशा थी कि इंग्लैंड फ्रांस की मित्रता के लिए सूडान अथवा नील नदी के स्वार्थों को नहीं छोड़ता। किन्तु फ्रांस क्रोध में भरा हुआ इंग्लैंड की मित्रता के लिए सूडान में अथवा अन्य देशों में अपने स्वार्थों का परित्याग करने को तैयार था। फ़ैशोदा के मामले में फ्रांस की हार से फ्रांस की 'प्रतिशोध की नीति' को बड़ा धक्का था और अन्त में इसका परिणाम इंग्लैंड की अपेक्षा जर्मनी के प्रति घृणा पैदा करने के रूप में हुआ था।"

उत्तरी अफ्रीका के साम्राज्य के लिए शक्ति का स्रोत रहेगा। यदि यह किसी विदेशी शक्ति के प्रभाव में होता तो हमारे उत्तरी अफ्रीका के उपनिवेशों को सदा भय रहता।" मिस्र के विषय में कोई हानि नहीं हुई थी क्योंकि यह १८८२ में ही फ्रांस के हाथ से निकल चुका था।

इटली (Italy)—डैलकासी इंग्लैण्ड से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयत्नों के साथ-साथ इटली से भी समझौता करने का प्रयत्न कर रहा था। १९०० में उसने मोरक्को पर अधिकार करने के लिए अनुमति ले ली थी और कहा था कि इटली ट्रिपोली पर अपना अधिकार कर सकता है। १९०१ में इटली की सेना के एक दस्ते ने ट्युलोन (Toulon) का दौरा किया। १९०२ में इटली ने फ्रांस को आश्वासन दिया कि त्रिमुखी सन्धि फ्रांस के विरुद्ध नहीं की गई है और इटली फ्रांस के विरुद्ध युद्ध नहीं करेगा। १९०४ में राष्ट्रपति लौवेट ने रोम की यात्रा की और इससे दोनों देशों में मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो गए।

मोरक्को के विषय में स्पेन से समझौता करने के लिए डैलकासी ने स्पेन से भी बातचीत की थी।

६ अक्टूबर १९०४ को फ्रांस और स्पेन की एक सन्धि हुई जिसके अनुसार स्पेन ने अप्रैल १९०४ की इंग्लैण्ड और फ्रांस की सन्धि को मान्यता देते हुए मोरक्को में फ्रांस के प्रभाव को मान्यता दी। उसने फ्रांस और इंग्लैण्ड से मोरक्को की स्वतन्त्रता के विषय में आश्वासन भी प्राप्त किया था।

मोरक्को (Morocco)—इटली और स्पेन से मोरक्को के प्रश्न पर समझौता कर लेने के पश्चात् डैलकासी ने दिसम्बर, १९०४ में मोरक्को की राजधानी में एक शिष्ट मण्डल भेजा। फ्रांस के तत्त्वावधान में मोरक्को का विकास किया जाना था और फ्रांसीसियों ने पुलिस प्रशिक्षण, सड़कें बनाने, तार लगाने और सरकारी बैंक बनाने में सहायता देनी थी। मोरक्को के सुलतान ने यह सुझाव स्वीकार कर लिये। सारे कार्य सुचारु रूप से चल रहे थे किन्तु सहसा जर्मनी ने इसमें अड़चन डाली। पहले जर्मनी की सरकार का रुख था कि उसके मोरक्को में केवल व्यापारिक हित ही हैं। किन्तु बाद में उसका विचार बदल गया। विलियम द्वितीय टेन्जीयर्स गया और घोषणा की कि जर्मनी की सरकार मोरक्को के सुलतान पर किसी भी शक्ति द्वारा आधिपत्य स्वीकार नहीं करेगी। उसने यह भी घोषणा की कि जर्मनी की सरकार सब परिस्थितियों में सुलतान की स्वतन्त्रता की रक्षा करेगी। फ्रांस द्वारा इन घोषणाओं का विरोध किया।

जर्मन डैलकासी को अपना प्रथम दुश्मन मानते थे और चाहते थे कि डैल-कासी को अपदस्थ कर दिया जाए। जर्मनी ने माँग की कि मोरक्को के प्रश्न पर विचार करने के लिए सारी सम्बन्धित शक्तियों की एक सभा बुलाई जाए। डैलकासी जर्मनी की इस माँग को मानने के लिए तैयार नहीं था। उसकी धारणा थी कि जर्मनी अनुचित माँगें करके फ्रांस को तंग करना चाहता है। उसे अपने राष्ट्रपति

और प्रधानमन्त्री का समर्थन प्राप्त था। दूसरी ओर जर्मनी की माँग थी कि डैलकासी को अपदस्थ किया जाए और सम्मेलन बुलाया जाए। जर्मनी पत्रों ने प्रचार किया हुआ था कि यह झगड़ा डैलकासी की व्यक्तिगत शत्रुता के कारण था। फ्रांस जर्मनी से युद्ध नहीं करना चाहता था। जर्मनी द्वारा चुनौती दिए जाने की
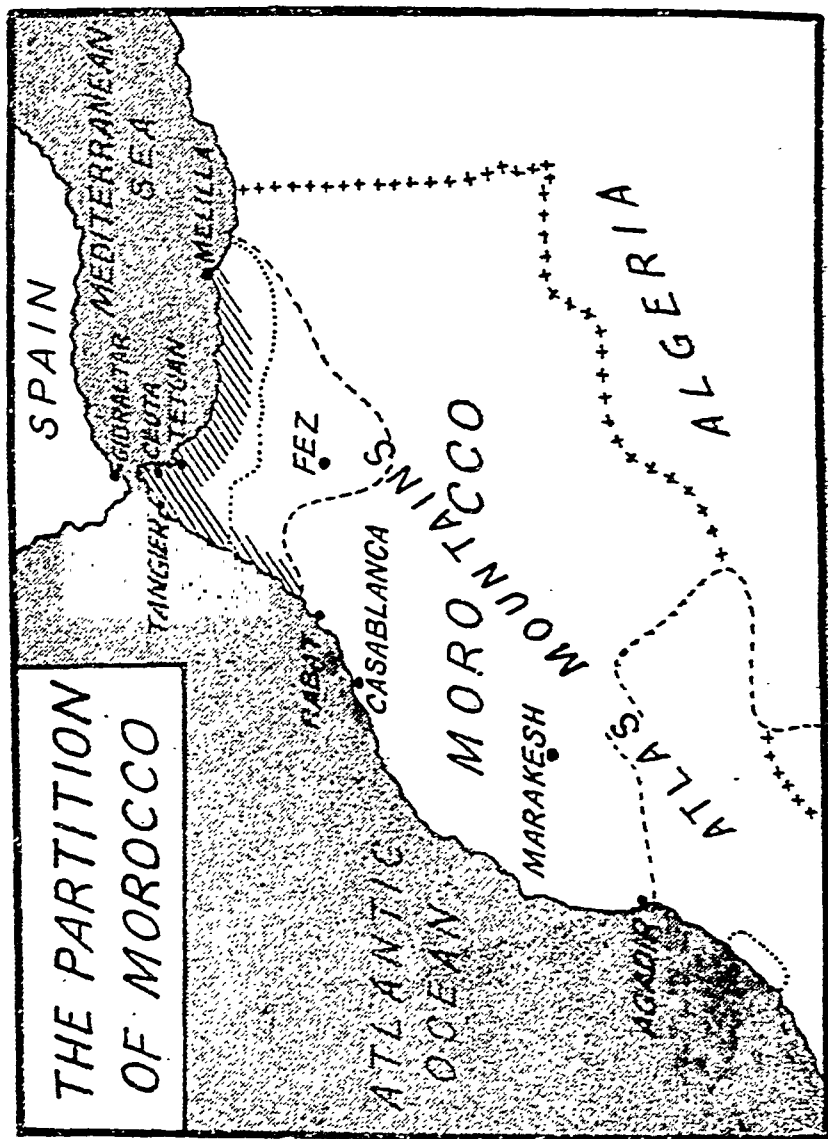
अफवाहें फैल गईं और फ्रांस भयभीत हो गया था क्योंकि उसकी सेनाएँ तैयार नहीं थीं। डैलकासी ने कहा कि इंग्लैण्ड ने फ्रांस की सहायता को १ लाख सैनिक देने को कहा है। डा० गूच का मत है कि यह सहायता डैलकासी की काल्पनिक

उपज थी। वास्तव में इंग्लैण्ड ने इस प्रकार का कोई प्रस्ताव नहीं किया था। इंग्लैण्ड ने केवल यह चेतावनी दी थी कि अमैत्रीपूर्ण कार्य होने की स्थिति में ब्रिटेन चुप नहीं रहेगा। यह चेतावनी वास्तविक रूप से फ्रांस को सहायता का वचन देने से बिलकुल भिन्न थी। सम्भवतः डैलकासी की इस कल्पना का आधार इंग्लैंड के प्रमुख व्यक्तियों द्वारा व्यक्त किए गए व्यक्तिगत विचार थे। फ्रांस के प्रधानमन्त्री की धारणा थी कि इस कथित सहायता के प्राप्त हो जाने पर भी इसका अर्थ जर्मनी से युद्ध करना होता था। इस अवस्था में जर्मनी के चान्सलर बूलो ने फ्रांस की सरकार को सूचित किया कि वह डैलकासी से कोई सम्बन्ध रखने को तैयार नहीं है। इस धमकी के कारण ही डैलकासी को त्यागपत्र देना पड़ा और फ्रांस को मोरक्को के प्रश्न पर सम्मेलन बुलाना भी स्वीकार करना पड़ा।

इस समय एक तथ्य ने बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया। फ्रांस और रूस की सन्धि के कारण फ्रांस रूस की मित्रता पर बड़ा निर्भर रहता था। किन्तु १९०५ में रूस और जापान के युद्ध में रूस की हार हो जाने के कारण रूस निर्बल हो गया था। दूसरी ओर विलियम द्वितीय रूस से मैत्री करने के लिए निरन्तर प्रयत्न कर रहा था। इस कारण इस युद्ध में जर्मनी ने रूस की यथाशक्ति सहायता की थी। १९०५ में विलियम द्वितीय और निकोलस द्वितीय ने बजारको सन्धि (Bjorko Pact) पर हस्ताक्षर किए। फ्रांस को जर्मनी की सम्मेलन बुलाने की माँग के आगे झुकना पड़ा क्योंकि अब वह रूस की मैत्री पर विश्वास नहीं कर सकता था। उसे इंग्लैंड की सैनिक सहायता पर भी पूरा विश्वास नहीं रहा था। ब्रिटिश सरकार ने भी फ्रांस को सम्मेलन बुलाने का सुझाव दिया। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि फ्रांस के झुक जाने के परिणामस्वरूप उसे एक अत्यन्त कुशल और निःस्वार्थ शासक की सेवाओं से वंचित होना पड़ा जिसने समूचे यूरोप में फ्रांस की प्रतिष्ठा को ऊँचा बनाया था। लॉर्ड लेन्सडोन ने अपने एक मित्र को लिखा था, "डैलकासी का पतन अत्यन्त घृणास्पद घटना है और इससे कूटनीतिज्ञ क्षेत्र में फ्रांस का मूल्य घट गया है।" बहुत वर्षों के पश्चात् फ्रांस में यह सबसे बड़ी अपमानजनक घटना थी। १९०६ के एलजिकिरास सम्मेलन (Algeciras Conference) में आस्ट्रिया के अतिरिक्त सारी शक्तियों ने जर्मनी के विरुद्ध मतदान किया। एलजिकिरास में जर्मनी की पराजय हुई और इसका श्रेय बहुत कुछ डैलकासी को ही था।

१९०५ में राजनीति से अवकाश ग्रहण कर लेने के बाद भी डैलकासी फ्रांस की राजनीति में एक प्रमुख व्यक्तित्व रहा। उसका किसी भी दल से सम्बन्ध नहीं था किन्तु उसके मित्रों के कारण उसका स्वागत होता था। जब वह फ्रांस का जल-नौका विभाग का मन्त्री बना, उसने फ्रांस के जहाज़ी बेड़े को अन्धमहासागर में केन्द्रित करने की नीति अपनाई थी।

१९१४ में उसे राजदूत बनाकर रूस भेजा गया था। रूस का समर्थक होने के नाते वह इस पद के लिए अत्यन्त योग्य व्यक्ति था और दोनों देशों को परस्पर निकट ला सकता था। यह तो सर्वविदित है कि १९०४ में डागर (Dogger) बैंक

के मामले में उसका कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। इसके हस्तक्षेप न करने की स्थिति में इंग्लैण्ड और रूस में युद्ध हो जाता।

यह प्रश्न पूछा जाता है कि डैलकासी (Delcasse) किस प्रकार १९०४ की मैत्री सन्धि के लिए उत्तरदायी है। यह सत्य है कि ब्रिटिश सरकार ने ही १९०३ में फ्रांस की सरकार को सूचित किया था कि अन्धमहासागर की यात्रा से लौटती बार सम्राट् एडवर्ड सप्तम (Edward VII) पेरिस देखकर प्रसन्न होंगे, किन्तु फ्रांस की सरकार ने भी इस सुझाव का स्वागत किया था। सम्राट् की यात्रा तथा उसको दिए गए सम्मान ने सुलह का मार्ग बना दिया। उसी वर्ष डैलकासी और राष्ट्रपति लौबे (Loubet) इंग्लैण्ड गए। इस अवसर पर दोनों देशों में यह बातचीत आरम्भ हुई। डैलकासी की यह दूरदर्शिता और देश-सेवा की भावना ही थी जिससे प्रेरित होकर उसने इंग्लैण्ड की मैत्री के लिए बढ़ाये हुए हाथ को पकड़ लिया। १९०३ में ब्रिटिश सरकार ने पहल की, किन्तु इस दिशा में फ़ैशोदा (Fashoda) की घटना के बाद १८९९ में डैलकासी पहल कर चुका था। लार्ड सॉलिसबरी ने केम्बोन को इन शब्दों में उत्तर दिया था, "मुझे डैलकासी और वर्तमान सरकार में बहुत विश्वास है, किन्तु कुछ ही महीनों के पश्चात् उन्हें हटा दिया जा सकता है और उनका उत्तराधिकारी सम्भवतः इनके बिलकुल विपरीत कार्य करेगा। नहीं ! अभी हमें थोड़ी प्रतीक्षा करनी चाहिए।" स्पष्ट है कि १८९९ में ब्रिटेन ने फ्रांस के प्रस्तावों को ठुकरा दिया था, किन्तु १९०३ में फ्रांस ने उसका सुझाव मान लिया था यद्यपि वह भी उसी तरह इनके प्रस्ताव को ठुकरा सकता था। ब्रिटेन के रुख में परिवर्तन इसलिए आया था कि उसे जर्मनी से मेल करने में असफलता मिली थी। १९०२ में जापान से सन्धि करने के पश्चात् इंग्लैण्ड भी फ्रांस के प्रति इसी उद्देश्य से झुका था।

मार्च, १९०४ में लार्ड लेन्सडौन (Lansdowne) यह जान कर बड़ा परेशान हुआ कि जो बातें डैलकासी (Delcasse) से हुई थीं वह उसने फ्रांस के मन्त्रिमण्डल को भी नहीं बतायीं। इसका कारण यह था कि डैलकासी को अपने अन्य सहकारियों पर विश्वास नहीं था। जब बातचीत अन्तिम दौर पर पहुँच गई तब उसने मन्त्रि-मण्डल को इस विषय में सूचित किया था। इससे प्रतीत होता है कि जब तक उसे अपनी सफलता का निश्चय नहीं हुआ वह अपनी लक्ष्य-प्राप्ति के लिए गुप्त रूप से कार्य करता रहा। १८९८ से १९०५ तक फ्रांस में अनेक मन्त्रिमण्डल बदले, किन्तु डैलकासी विदेशमन्त्री बने रहने में सफल रहा था और निरन्तर इंग्लैण्ड और इटली से मैत्री स्थापित करने के लिए यत्न करता ही रहा।

जर्मनी डैलकासी को अपना महान् शत्रु समझता था। इसकी धारणा थी कि उसका ध्येय जर्मनी पर घेरा डालना है। किन्तु यह आरोप सत्य नहीं है। वास्तव में डैलकासी एक महान् देशभक्त था और वह इंग्लैंड और इटली को अपने पक्ष म करके अपने देश की स्थिति को शक्तिशाली बनाना चाहता था। इस गठबन्धन के हो जाने पर ही फ्रांस जर्मनी के चंगुल से छूट सकता था। एक प्रसिद्ध इतिहासकार

के शब्दों में, "अपनी शक्ति के सीमित होते हुए भी सर्वसम्मति से फ्रांस के तृतीय प्रजातन्त्र में विदेश-नीति के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति था।"

१९०५ का मोरक्को का संकट (Morocco Crisis of 1905)—तीन बार मोरक्को का मामला सामने आया और हर बार जर्मनी और फ्रांस में युद्ध होने की आशंका हो गई थी। तीनों ही अवसरों पर इंग्लैण्ड ने फ्रांस का समर्थन किया और जर्मनी को मुँह की खानी पड़ी।

१९०५-६ के मोरक्को के संकट का उल्लेख किया जा चुका है। यह भी लिखा जा चुका है कि १९०४ की मैत्री सन्धि के पश्चात् डैलकासी ने एक अभियान दल मोरक्को पर अधिकार करने के लिए भेजा था। यद्यपि प्रगट रूप से इसका उद्देश्य मोरक्को की उन्नति और प्रशासन की प्रगति करने में सुलतान की सहायता करना था। किन्तु इसका अन्तिम परिणाम इस देश पर फ्रांस का पूर्ण नियन्त्रण हो जाना था। यद्यपि पहले जर्मनी यही कहता रहा कि मोरक्को में उसका कोई स्वार्थ नहीं है तथापि उसके रुख में परिवर्तन आ गया था। जर्मनी का सम्राट् टेन्जीयर्स (Tangiers) गया और उसने घोषणा की कि वह मोरक्को पर किसी भी देश का अधिकार नहीं होने देगा। जर्मनी ने डैलकासी के त्याग-पत्र तथा मोरक्को प्रश्न पर सम्मेलन बुलाने की माँग की थी। डैलकासी को १९०५ में पद-त्याग करना पड़ा और एलजिकिरॉस सम्मेलन (Algeciras Conference) १९०६ में हुआ। आस्ट्रिया-हंगरी के अतिरिक्त सारे देशों ने, जिनमें इटली भी शामिल था, फ्रांस के पक्ष में मतदान किया था। परिणामतः जर्मनी इस सम्मेलन से खाली हाथ लौटा। यह माना गया कि जर्मनी के आर्थिक और फ्रांस के राजनैतिक तथा आर्थिक हित मोरक्को में हैं। डा० गूच के मतानुसार, इस सम्मेलन से जर्मनी और फ्रांस के सम्बन्ध सुधरे नहीं और मोरक्को की आन्तरिक स्थिति में भी कोई सुधार नहीं हुआ। इस समझौते का तत्त्व यह था कि फ्रांस और स्पेन को यह अधिकार दिया गया कि वे एक स्विस निरीक्षक की देख-रेख में आठ बन्दरगाहों की सुरक्षा के लिए पुलिस सुरक्षा का प्रबन्ध करेंगे। किन्तु इस पुलिस दल की भर्ती कभी भी नहीं हुई। बूलो ने इस सम्मेलन के निर्णय को संतोषजनक माना यद्यपि जर्मनी को अपनी इच्छानुसार अधिकार प्राप्त नहीं हुए थे। बूलो के शब्दों में, "हम सुलतान की सर्वाधिकार सत्ता अक्षुण्ण रखने में तथा मोरक्को के राष्ट्रीय बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस नियन्त्रण प्राप्त करने में सफल हुए हैं। इस प्रकार हम मोरक्को में जर्मनी तथा अन्य देशों के आर्थिक हितों के लिए 'खुले द्वार' प्राप्त करने में सफल हुए हैं।...एलजिकिरॉस (Algeciras) सम्मेलन के निर्णयों ने मोरक्को के एकीकरण के लिए फ्रांस के प्रयत्नों के लिए द्वार बन्द कर दिया है। इस सम्मेलन ने हमें एक ऐसी घण्टी दी है कि जब फ्रांस पुनः अपनी पुरानी नीति का अनुसरण करने का प्रयत्न करेगा, हम उसे बजा कर यूरोप का ध्यान आकर्षित कर सकेंगे।" किन्तु निष्पक्ष पर्यवेक्षकों का मत है कि यह सम्मेलन जर्मनी की कूटनीतिक हार थी। यह सम्मेलन फ्रांस और इंग्लैण्ड की मैत्री सन्धि भंग कराने के उद्देश्य से किया गया था। किन्तु इसका वास्तविक परिणाम इस सन्धि को अधिक

दृढ़ बनाना हुआ। बूलो ने स्वयं माना था कि, "हमारा उद्देश्य फ्रांस और इंग्लैण्ड को अलग-अलग करना नहीं था। यूरोप की शक्तियों की पारस्परिक मित्रता को छिन्न-भिन्न करने का हमारा कोई विचार नहीं था। इंग्लैण्ड और जर्मनी के सम्बन्ध 'मैत्री-सन्धि' जैसे ही हैं, यदि इसके सदस्य शान्ति की स्थापना के लिए प्रयत्न करेंगे अन्यथा नहीं।"

केसाब्लांका का झगड़ा (Casablanca Case) (१६०८)—मोरक्को का दूसरा संकट केसाब्लांका की घटना से सम्बन्धित है। २५ सितम्बर, १६०८ को केसाब्लांका स्थित जर्मनी के राजदूत ने फ्रांस की विदेशी सेना के भगोड़ों को भागने में सहायता देने का प्रयत्न किया था किन्तु भगोड़ों को पकड़ लिया गया और फ्रांस के सैनिकों ने उनके साथ कठोर व्यवहार किया। जर्मनी के राजदूत पर भगोड़ों की सहायता करके अन्तर्राष्ट्रीय नियमों को तोड़ने का आरोप लगाया गया। जर्मनी ने फ्रांस पर दूतावास के विशेषाधिकारों को तोड़ने का आरोप लगाया। जर्मनी और फ्रांस में काफी उत्तेजना पैदा हुई। झगड़ा आगे नहीं बढ़ा और दोनों देशों ने पंचफैसले को मानने का निर्णय किया। पंच ने फैसला दिया कि दोनों पक्ष ही दोषी हैं। दोनों ही देश इस झगड़े का शान्ति से निपटारा हो जाने के कारण प्रसन्न हुए। तुर्की की १६०८ की क्रान्ति के कारण तथा १६०८-६ के बोसनिया के मामले में लगे होने के कारण यूरोप के अन्य देश भी प्रसन्न हुए। बलकान में उपद्रव की आशंका से मोरक्को के मामले को अधिक महत्त्व नहीं दिया गया। जर्मनी ने अनुभव किया कि बिना युद्ध के फ्रांस की मोरक्को में घुस-पैंठ को रोका नहीं जा सकेगा।

जर्मनी और फ्रांस में मोरक्को के विषय में बातचीत हुई और परिणामतः फरवरी, १६०६ में जर्मनी और फ्रांस में समझौता हो गया। जर्मनी को फ्रांस के बराबर ही व्यापारिक सुविधाएँ देने का आश्वासन दिया गया। जर्मनी ने फ्रांस के विशेष स्वार्थों को मान्यता दी और हस्तक्षेप न करने का विश्वास दिलाया।

कुछ विशेष कारणों से दोनों देशों में शीघ्रतापूर्वक समझौता हुआ। एक कारण था बोसनिया के विषय में आस्ट्रिया और सर्बिया में युद्ध की सम्भावना होना और दूसरा कारण था कि बूलो इंग्लैण्ड और जर्मनी की जल सेना की शक्ति के विषय में समझौता करने के लिए अत्यन्त चिन्तित था। बूलो की धारणा थी कि यह मामला फ्रांस से अच्छे सम्बन्ध होने पर ही सुलझ सकता है। मोरक्को के मामले में इंग्लैण्ड की चिन्ता तभी दूर हो सकती थी जब फ्रांस और जर्मनी इस मामले में परस्पर समझौता कर लें। सम्राट् एडवर्ड सप्तम बर्लिन की यात्रा करने वाला था और बूलो उसकी यात्रा से पहले ही इस विषय में विचार-विमर्श समाप्त कर लेना चाहता था जिससे कि इस समझौते का श्रेय सम्राट् को न मिले। १६०६ के समझौते का फ्रांस के पत्रों ने बहुत समर्थन किया और बूलो को बधाई दी गई। इसका महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि दो वर्ष (१६०६-१६११) के लिए फ्रांस और जर्मनी के सम्बन्ध अच्छे हो गए।

अगादिर का संकट (The Agadir Crisis) (१६११)—१६०६ के समझौते के कारण जर्मनी और फ्रांस के सम्बन्ध कुछ समय के लिए मैत्रीपूर्ण हो गए थे। किन्तु मोरक्को में अव्यवस्था के कारण फ्रांस को व्यवस्था स्थापित करने के बहाने अपनी पुलिस और सेना की वृद्धि करने का अवसर मिल गया। सुलतान को धमकी देकर एक बड़ा कर्जा लेने को बाध्य कर दिया गया जिसके कारण वह पूर्णतः फ्रांस के अधिकार में हो गया। धीरे-धीरे यह स्पष्ट हो गया कि बदली हुई परिस्थिति में सुलतान की स्वतन्त्रता नहीं रह सकती थी और जर्मनी को बराबर की आर्थिक सुविधाएँ भी नहीं दी जा सकती थीं। मोरक्को के जागीरदारों को फ्रांस के द्वारा अधिकार करने के तरीके अच्छे नहीं लगे और परिणामस्वरूप मोरक्को की राजधानी फ़ैज (Fez) में विद्रोह हुआ। यह घोषणा की गई कि यूरोपीय लोगों के जीवन खतरे में हैं। सेनानायक मारचण्ड (Marchand) की हत्या कर दी गई और फ्रांस ने यूरोपीय लोगों की जान बचाने के लिए सेना भेजी। यह कहा गया कि व्यवस्था स्थापित हो जाने पर सेना वापिस बुला ली जाएगी।

जर्मनी के विदेश मंत्री किडरलिन (Kiderlen) ने इस व्यवस्था के प्रति न तो विरोध प्रगट किया और न ही अनुमति दी। मोरक्को के विषय में उसके विचार इन शब्दों में व्यक्त किए गए थे, "एलजिकिरॉस (Algeciras) समझौते के अनुसार मोरक्को की स्वतन्त्रता के विषय में की गई व्यवस्था के तीन वर्ष के अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया है कि आन्तरिक विद्रोह तथा फ्रांस और स्पेन के साम्राज्यवादी दबाव के कारण स्वतन्त्रता का बना रहना असम्भव हो गया है। कालान्तर में मोरक्को को इसके पड़ोसी देश हड़प लेंगे। यह सत्य नहीं प्रतीत होता कि फ़ैज (Fez) जैसा प्राचीर से घिरा हुआ नगर विद्रोहियों के अधिकार में आ गया है। विद्रोह समाप्त होता प्रतीत होता है। किन्तु फ्रांस अपनी सुरक्षा के लिए चिन्तित है और इस कारण वह सैनिक अभियान भेजने की तैयारी कर रहा है। उन्हें ऐसा करने का अधिकार है और हमें घटना-चक्र को देखना चाहिए। किन्तु यदि वे फ़ैज (Fez) पर अधिकार कर लेंगे तो यह असम्भव है कि वे फिर लौट जाएँगे। यदि फ्रांस की जनता भी सेना के हट जाने का समर्थन करे तो भी इसका हटना मोरक्को की जनता फ्रांस की कमज़ोरी मानेगी। देश में फिर से नए विद्रोह होंगे और फ्रांस को नए सैनिक अभियान भेजने पड़ेंगे। घटना-चक्र से प्रतीत होता है कि एलजिकिरॉस (Algeciras) समझौते की व्यवस्था को क्रियान्वित नहीं किया जा सकता। एक सुलतान जो केवल फ्रांस की संगीनों के बल पर ही राज्य कर सकता हो कभी स्वतन्त्र नहीं रह सकता। जर्मनी को इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए अपनी नीति में परिवर्तन करना चाहिए। फ्रांस की सेना के फ़ैज (Fez) में कुछ दिन टिकने के बाद हम उनसे मैत्री-पूर्ण ढंग से पूछेंगे कि इनका विचार कब लौटने का है। जब वे वापिस जाना सम्भव नहीं समझेंगे तो हम कहेंगे कि हम उनकी परिस्थिति को समझते हैं किन्तु हम सम्मेलन की व्यवस्था के अनुसार मोरक्को के सुलतान को स्वतन्त्र नहीं मानते। क्योंकि सम्मेलन का समझौता एक रद्दी कागज हो जाएगा, इस पर हस्ताक्षर करने वाले अपनी इच्छानुसार कार्य

करने में स्वतन्त्र हो जाएँगे। फ्रांस द्वारा मोरक्को पर अधिकार करने का विरोध करने से कोई लाभ नहीं होगा। इसलिए हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि फ्रांस को क्षति-पूर्ति करनी पड़े। जिस प्रकार फ्रांस अपनी मोरक्को की प्रजा की सुरक्षा करता है उसी प्रकार हम मेगादिर (Magador) और अगादिर (Agadir) में अपनी प्रजा की रक्षा कर सकेंगे और वहाँ अपना जहाजी बेड़ा छोड़ देंगे। यदि हम इसमें सफल हुए तो हमारी पुरानी असफलताएँ विस्मृत कर दी जाएँगी और रीशस्टैग के आगामी चुनावों पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ेगा।"

फ्रांस की सरकार ने जर्मनी की सरकार को सूचित किया कि वह हर्जाने के प्रश्न पर बातचीत करने को तैयार है। किडरलिन (Kiderlen) सारा फ्रेंच कांगो (French Congo) चाहता था किन्तु फ्रांस के बर्लिन स्थित राजदूत केमबोन की धारणा थी कि कोई भी फ्रांस की सरकार सारा कांगो देने के लिए तैयार नहीं होगी।

१ जुलाई, १६११ को 'पैन्थर' नाम का एक जर्मन जंगी जहाज अगादिर (Agadir) की बन्दरगाह में पहुँचा। जर्मनी ने कहा कि जहाज दक्षिणी मोरक्को में जर्मन नागरिकों के जीवन की रक्षा के लिए भेजा गया है। मोरक्को में शान्ति स्थापित होते ही इसे वापिस बुला लिया जाएगा। कहा जाता है कि इस जहाज का वास्तविक उद्देश्य फ्रांस से अधिकाधिक सुविधाएँ प्राप्त करना था।

इस अवधि में जर्मनी और फ्रांस में हर्जाने के विषय में निरन्तर विचार-विमर्श हो रहा था। किडरलिन की धारणा यह बन गई थी कि बिना युद्ध के सन्तोषजनक रूप से समझौता हो ही नहीं सकता था। किन्तु कैसर मोरक्को के लिए फ्रांस से युद्ध नहीं करना चाहता था। उसने इस विषय में किडरलिन को आदेश भी दिये थे। किडरलिन ने त्यागपत्र देने की धमकी दी किन्तु उसे फ्रांस से बातचीत जारी रखने के लिए मना लिया गया।

इस अवसर पर इंग्लैण्ड ने हस्तक्षेप किया। ४ जुलाई, १६११ को सर एडवर्ड ग्रे ने जर्मनी को सूचित किया कि "जर्मनी द्वारा अगादिर में अपना जंगी जहाज भेजने से एक नई स्थिति पैदा हो गई है और भविष्य में होने वाले समझौते से ब्रिटेन के हितों पर पहले से अधिक सीधा प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए हम किसी भी ऐसे समझौते को मान्यता नहीं देंगे जो हमारी अनुमति के बिना किया जाएगा।" ग्रे जर्मनी के अफ्रीका के प्रदेशों का फ्रेंच कांगो से इस शर्त पर आदान-प्रदान स्वीकार करने के लिए तैयार था कि जर्मनी मोरक्को पर किसी अधिकार की माँग नहीं करेगा।

२१ जुलाई, १६११ को इंग्लैण्ड के वित्त मन्त्री लॉयड जार्ज (Lloyd George) ने अपने मेन्शन हॉउस के प्रसिद्ध भाषण में कहा था, "मुझे यह विवश होकर कहना पड़ रहा है कि केवल इस देश के लिए ही नहीं, अपितु सारे संसार के महान् हित के लिए यह अत्यावश्यक है कि ब्रिटेन को किसी भी कीमत पर संसार की महान् शक्तियों में अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखनी चाहिए। ब्रिटेन का शक्तिशाली प्रभाव भूत और

भविष्य में भी मानवता की स्वतन्त्रता की रक्षा में सहायक सिद्ध हुआ। इसने अनेक बार इस महाद्वीप में अनेक राष्ट्रों की रक्षा की है और वे इस उपकार को भूल जाते हैं। मैं शान्ति की रक्षा के लिए महान् बलिदान करने के लिए तैयार हूँ। मेरे विचार में हमारे राष्ट्र के लिए महत्त्वपूर्ण बातों को छोड़कर अन्य किसी भी कारण से अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना नष्ट नहीं होनी चाहिए। किन्तु यदि ऐसी स्थिति आ जाए जिसमें शान्ति की रक्षा ब्रिटेन द्वारा युगयुगान्तरों से वीरता और साहस द्वारा अर्जित महत्त्वपूर्ण स्थान को छोड़ने पर ही हो अथवा जहाँ ब्रिटेन के हितों को सीधा आघात पहुँचता हो और उसे नगण्य मानकर पूछा भी न जाए, तो मैं पूरी शक्ति से यह कहूँगा कि इस कीमत पर शान्ति बनाए रखना हमारे जैसे महान् राष्ट्र के लिए अपमानजनक होगा।"

इस भाषण का इच्छित परिणाम हुआ। जर्मनी में बड़ी बेचैनी हुई। इसका अर्थ यह लगाया गया कि ब्रिटेन व्यर्थ में फ्रांस और जर्मनी की बातचीत में हस्तक्षेप कर रहा है। युद्ध की पूर्ण आशंका थी और यह अनुभव हुआ कि ब्रिटेन बड़े खतरनाक तरीके से आग से खेल रहा है। किन्तु इस भाषण का प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि जर्मनी ने ब्रिटेन को सूचित किया कि अन्धमहासागर के मोरक्को वाले तट पर जर्मनी द्वारा कोई ठिकाना बनाना नहीं था। जर्मनी ने फ्रांस से भी अपनी शर्तें सरल कर दी थीं। चार महीने बातचीत होने के पश्चात् नवम्बर, १९११ में एक समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। जर्मनी ने मोरक्को पर फ्रांस का संरक्षण मान लिया और फ्रांस ने जर्मनी को फ्रेंच कांगो का एक लाख वर्गमील का प्रदेश दे दिया।

यद्यपि मोरक्को का मामला सुलझ गया था तथापि इंग्लैण्ड और जर्मनी के सम्बन्ध और भी बिगड़ गए थे। इंग्लैण्ड जर्मनी की युद्ध की इच्छा की आशंका करने लगा। ग्रे के शब्दों में, "अगादिर के झगड़े का अन्त फ्रांस की राजनैतिक पराजय अथवा युद्ध में होना था।" पुनश्च, जर्मनी के सैन्यवाद के अनुयायियों को अगादिर के मामले से बड़ी निराशा हुई थी और जब अगला झगड़ा आया तो हमने उन्हें युद्ध के लिए तैयार पाया था। रूस के राजदूत के शब्दों में, "जर्मनी और फ्रांस में युद्ध होने पर इंग्लैण्ड को युद्ध में कूदना ही पड़ेगा। यदि इस युद्ध में रूस भी फँसा तो इच्छा न होते हुए भी स्थितियों के दबाव के कारण उसे युद्ध में आना पड़ेगा और फिर आस्ट्रिया को भी युद्ध में आना ही पड़ेगा। इस दुर्घटना के होने पर अल्वानिया (Albania) में परिस्थिति बहुत बिगड़ जाएगी। परिणामतः यह युद्ध फ्रांस और जर्मनी का द्वन्द्व-युद्ध नहीं रह जाएगा अपितु एक सार्वभौमिक युद्ध होगा।" बूलो के शब्दों में, "यह एक पानी की बौछार की तरह आरम्भ हुआ—संसार प्रसन्न हुआ; और समाप्त हुआ तो हमें मूर्ख बनना पड़ा। पैन्थर (Panther) के अगादिर पर झपट लगाने पर बड़े वाद्य बजे किन्तु लॉयड जार्ज के भाषण हो जाने पर यह रुदन में परिणत हो गया।" अगादिर की घटना ने इंग्लैण्ड और फ्रांस को मैत्री के बन्धन में बाँध दिया। फ्रांस इंग्लैण्ड के मेन्शन हॉउस के भाषण के लिए कृतज्ञ था क्योंकि इससे मामला सुगमता से निपट गया। इस भाषण के एक दिन पहले जर्मनी से युद्ध आरम्भ

हो जाने की स्थिति में उत्तर-पूर्व क्षेत्र में इंग्लैण्ड और फ्रांस की मोर्चेबन्दी के विषय पर इंग्लैण्ड और फ्रांस के सैनिक पदाधिकारियों की एक सभा हुई थी। स्पष्ट है इस समस्या ने इंग्लैण्ड और फ्रांस को परस्पर निकट ला दिया था।

अगादिर के मामले का एक असर यह हुआ कि इटली ने ट्रिपोली पर अधिकार करने की सोची। इटली के इस निर्णय से तुर्की इतना दुर्बल हो गया कि यूरोप में तुर्की के साम्राज्य को समाप्त करने के लिए बलकान लीग बनाई गई। इस गठबन्धन के कारण १९१२-१३ का बलकान युद्ध हुआ जिसका अन्तिम परिणाम १९१४ का महायुद्ध हुआ।

ग्राण्ट (Grant) और टैम्परले (Temperley) के अनुसार, "अगादिर का झगड़ा एलजिकिरास (Algeciras) से कहीं अधिक गम्भीर और निस्सन्देह बोसनिया के मामले से अधिक जटिल था। त्रिमुखी संगठन बोसनिया में परास्त हुआ और रूस का अपमान हुआ। किन्तु इनकी पराजय और अपमान इतना नहीं हुआ जितना अगादिर में जर्मनी का हुआ। इस अवसर पर इंग्लैण्ड चमकदार कवच पहने अपने मित्र की सहायता के लिए आगे बढ़ा। एक प्रसिद्ध लेखक ने टिप्पणी करते हुए कहा था, "त्रिमुखी सन्धि (Triple Alliance) के बन्धन त्रिमुखी मैत्री सन्धि (Triple Entente) के बन्धनों से कम कड़े हैं, किन्तु कार्य दृष्टि से यूरोप दो पक्षों में बँट गया है और स्थिति में जो तनाव हो गया है उससे स्पष्ट है कि इस प्रकार के संघर्ष भविष्य में भी होंगे। रूस और मैत्री सन्धि के गुट ने अपनी हार १९०९ के झगड़े में बिना युद्ध किए ही मान ली थी। जर्मनी ने बिना युद्ध किए १९११ में अपनी हार मान ली थी किन्तु अब कोई भी पक्ष भविष्य में बिना युद्ध के पराजय स्वीकार नहीं करेगा। दोनों ही पक्षों ने खतरे को समझा था और दोनों ही युद्ध की तैयारियों में संलग्न हो गए थे। इंग्लैण्ड ने ६ डिवीजनों की एक सेना तैयार कर ली थी और अब वह अपनी जल सेना से उसको आवश्यकता के स्थान पर शीघ्रता से पहुँचाने का प्रबन्ध कर रहा था। इसका अर्थ फ्रांस की सहायता करना था। समाचारपत्रों पर प्रतिबन्ध (censor) लगाने तथा युद्ध-काल में कानून इत्यादि लागू करने की तैयारियाँ हो चुकी थीं। यदि एक शान्तिप्रिय देश और सरकार इस प्रकार वास्तविकता का सामना करने के लिए तैयारियाँ कर रहा था तो स्पष्ट है कि अन्य स्थानों पर भी सैनिक तथा नाविक तैयारियाँ होने लगी होंगी। था भी ऐसा ही। सेनाओं के पुनर्गठन के कारण स्थिति में और भी तनाव आ गया, विशेषतः रूस में सैनिक रेलों की व्यवस्था तथा जर्मनी में नहरों को युद्ध की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए तैयार करने से सारा वातावरण क्षुब्ध हो गया था।"

Suggested Readings

Bodley : *The Church in France,*
Bourgeois : *History of Modern France (Vols. I & II).*
Braco : *France under the Republic.*
Galton : *The Church and the State in France.*
Guerard : *French Civilisation in the Nineteenth Century.*

Seignobos : *Political History of Europe Since 1814.*
Seignobos, C. : *A History of the French People.*
Stannard, H. : *Gambetta.*
Vizetelly : *Republican France.*
Wright : *History of the Third French Republic.*
Zola : *The Downfall.*
Taylor, A. J. P. : *The Struggle for Mastery in Europe (1848-1918). 1954*
Chapman Guy : *The Dreyfus Case, London, 1855.*

अध्याय २३

१८७० के पश्चात् इटली

(Italy since 1870)

मेजिनी, केवूर, गैरीवाल्डी, विक्टर इमेनुअल (Emmanuel) द्वितीय इत्यादि के प्रयत्नों एवं विदेशी सहायता से इटली का एकीकरण हो गया। लुइगी स्टुर्जो (Luigi Sturzo) के मतानुसार, "इटली की एकता एक ऐसे राष्ट्र के लिए जो शताब्दियों से फूट और विरोधी स्वार्थों के वितण्डावाद में घिरा हुआ था, अत्यन्त शीघ्रता से प्राप्त हो गई थी। स्वतन्त्रता जो पीडमोण्ट (Piedmont) जैसे छोटे से देश में एक ज्योतिपुंज के रूप में सुरक्षित थी, जनता को एक उपहार के रूप में दी गयी, उन्होंने इसके लिए बलिदान देकर इसे जीता नहीं था, और 'राष्ट्रीयता' जिसका अर्थ स्वयं पर शासन करना तथा अपने मामलों का स्वयं निणय करना होता है, के प्रति जनसाधारण में समान जाग्रति नहीं थी।" इस कारण एकीकरण के पश्चात् भी इटली ने जर्मनी की तरह यूरोपीय राजनीति में कोई महत्त्वपूर्ण भाग नहीं लिया। इटली की जनता पिछड़ी हुई थी। देश अभी तक उन्नत नहीं था और इसलिए उसके साधन भी बहुत थोड़े थे। लोग शिक्षित न होने के कारण देश की राजनीति में भाग नहीं लेते थे। प्रांतीयता भी देश की उन्नति में बाधक थी। देश में भ्रष्टाचार फैला हुआ था और षड्यंत्रों का बोलबाला था। पोप और इटली के बीच झगड़ा भी देश के हित में नहीं था। इटली उन योग्य इटालवी कैथोलिकों की सेवाओं से वंचित रहा जो पोप की निषेधाज्ञा के कारण राजनीति में भाग न ले सके। इन सबका परिणाम यह हुआ कि इटली एक निम्न श्रेणी की शक्ति हो गया था। स्टुर्जो के शब्दों में, "इटली यूरोप के राजनीति के अखाड़े में हर बार दाव पर लगाया जाता रहा। कभी एक तथा कभी दूसरी शक्ति के लाभ के लिए इसका प्रयोग किया जाता रहा। हर बार इसे प्रतीत होता था कि इसे लाभ होगा किन्तु वास्तव में चुभन और निराशाओं के अतिरिक्त इसे कुछ नहीं प्राप्त हुआ। यह कुछ तो उसकी ऐतिहासिक कठिनाइयों के कारण तथा कुछ इसकी अस्थिर विदेश-नीति के कारण था। इस दाँव-पेच में इटली के हाथ से वह सुनहरे दाँव के पत्ते व्यर्थ ही गए जिसे इसने बहुत बार सहेज कर रख छोड़ा था। इस अवस्था में इटली न तो अपने साथियों से सहायता ले सका और न सहायता दे सका।"

"हमने इटली का निर्माण कर लिया किन्तु इटली वालों का निर्माण अभी

करना वाकी है।" इस उद्देश्य को लेकर अनेक कार्य किए गये। प्रशासनिक और न्यायिक व्यवस्था का पुनर्गठन करके केन्द्रित किया गया। फ्रांस की प्रणाली के अनुसार देश में स्थानीय स्वायत्त शासन-व्यवस्था का निर्माण किया गया। रेलों का राष्ट्रीयकरण किया गया और देश में सैनिक सेवा अनिवार्य कर दी गई। डाके-जनी को दमन किया गया। सिसली की माफिया और नेपल्स की कमोरा जैसी गुप्त सभाओं को समाप्त कर दिया गया। १८९७ में 'अनिवार्य शिक्षा विधेयक' इस उद्देश्य से बनाया गया कि देश में निरक्षरता कम हो। यह प्रयोजन धन के अभाव के कारण पूरा नहीं हो सका। गरीबी की समस्या के कारण देश की प्रगति धीमी रही। 'राष्ट्रीय-ऋण' बहुत बड़ा था, सरकार को अनेक योजनाओं पर धन व्यय करना पड़ रहा था, जनता पर करों (taxes) का भार असहनीय हो गया था। इटली की सरकार लगभग दिवालिया हो गई थी।

देश की जनसंख्या बढ़ती जा रही थी और सरकार इसे सँभालने में असमर्थ थी। हज़ारों लोग इटली से उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका चले गए।

जनता की दयनीय दशा के कारण समाजवादियों को विपत्ति के समय अपना प्रचार करने का अवसर प्राप्त हुआ। १८८९ में ट्युरिन, मिलान और रोम में भीषण दंगे हुए। चार वर्ष बाद सिसली में श्रमिकों के दंगे हुए। १८९८ में सारे देश में, विशेषतः मिलान में, झगड़े हुए। दक्षिणी और मध्य इटली में ये दंगे 'रोटी' (Bread Riots) के विषय में हुए। देश में इतना असंतोष था कि १९०० में राजा हम्बर्ट[1] (Humbert) की हत्या कर दी गयी। विक्टर इमेनुअल तृतीय उसका उत्तराधिकारी बना।

आन्तरिक राजनीति (Internal Politics)—ग्रेट ब्रिटेन के अनुरूप इटली में संसदीय प्रणाली अपनाई गई। किन्तु मताधिकार सीमित था और केवल वही लोग मतदान दे सकते थे, जो सम्पत्ति और शिक्षा की योग्यताएँ रखते थे। १८८२ में मताधिकार बढ़ा दिया गया और मतदाताओं की संख्या चार गुनी हो गई। १९१२ में इटली में वयस्क मताधिकार लागू कर दिया गया था।

इटली की राजनीति दूषित थी। देश में घोर भ्रष्टाचार और षड्यंत्र फैले हुए थे। देश का राजनीतिक जीवन अनैतिकता से पूर्ण था। इस काल में राजनैतिक क्षेत्र में तीन व्यक्ति प्रमुख थे। डिप्रीटिस (Depritis), क्रिस्पी (Crispi) और जिओलिट्टी (Giolitti)। डिप्रीटिस १८७६ से १८८७ तक सत्ता में रहा। इसके ही काल में इटली 'त्रिमुखी-मैत्री संगठन' में आया। शिक्षा अनिवार्य हो गई। रेलवे व्यवस्था पूर्ण कर दी गई थी। मताधिकार का विस्तार किया गया। नई औपनिवेशिक नीति का निर्माण हुआ। किन्तु डिप्रीटिस अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए भ्रष्टाचार करता रहा।

---

१. १८७८ में यह विक्टर इमेनुअल द्वितीय के बाद गद्दी पर बैठा। इमेनुअल के मकबरे पर लिखा था 'देश के पिता के प्रति।'

१८८७ में डिप्रीटिस की मृत्यु के पश्चात् क्रिस्पी ने शासन-भार सँभाला। वह एक सशक्त मन्त्री था और उसने जोरदार औपनिवेशिक नीति का अनुसरण किया। इसके ही काल में सोमालीलैण्ड पर इटली का संरक्षण स्थापित हुआ। १८९१ में वह सरकार से निकाल दिया गया, किन्तु दो वर्ष वाद फिर सत्ता में आया। १८९३ से १८९६ तक वह वास्तविक रूप से इटली का तानाशाह रहा। १८९६ में अडोवा की लड़ाई एवीसीनिया द्वारा इटली को हराने पर यह सरकार से निकल गया। प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व जियोलिट्टी का नाम अनेक घटनाओं से सम्वन्धित है।

१९०० में राजा हम्वर्ट की हत्या और विक्टर इमेनुअल तृतीय के राज्यारोहण के पश्चात् देश की अवस्था में सुधार हुआ। नया राजा युवक, प्रजातन्त्रवादी तथा उदार था। उत्तर में उद्योग-धन्धे वढ़ने लगे और दक्षिण में शराव का उद्योग वढ़ा। विदेशी पूँजी इटली में आने लगी और देश की उन्नति के लिए इसका प्रयोग हुआ। व्यापारिक समुद्री जहाज़ वनाए जाने लगे। पोप ने कैथोलिकों द्वारा राजनीति में भाग लेने पर लगी निषेधाज्ञा वापिस ले ली। एक नया सामाजिक वीमा कानून वनाया गया। १९०४ में शिक्षा-कानून वना। १९०५ में पहली वार देश के आय-व्यय लेखे में लाभ दिखाई पड़ा। १९१२ में वयस्क-मताधिकार दिया गया। विद्युत् के प्रयोग ने देश की औद्योगिक प्रगति को उन्नति प्रदान की।

रोम की समस्या (The Roman Question)—पोप ने इटली के एकीकरण का विरोध किया था किन्तु इसके विपरीत १८७० में यह कार्य पूर्ण हुआ। १८७० में इटली की सेनाओं के रोम में प्रविष्ट होने से पोप की प्रतिष्ठा को वड़ा धक्का पहुँचा। इटली की सरकार ने पोप से समझौता करना चाहा और इसी उद्देश्य से उन्होंने एक कानून (Law of Papal Guarantees) पास किया। नए कानून के द्वारा वाटिकन और लेटरन के महल, इनसे लगी हुई धरती और केसल गेन्डोलफो (Castle Gandolfo) की सरकार पोप के हाथों में सौंप दी गई। पोप को उतना ही सम्मान दिया गया जितना कि एक स्वतन्त्र राजा को दिया जाता है। उसे विदेशों की सरकारों और जनता से सीधा पत्र-व्यवहार करने की छूट भी दी गई। उसे प्रदेशों की कमी हो जाने के कारण क्षति-पूर्ति के रूप में राष्ट्रीय कोष से सवा तीन लाख लायर (lire) प्रतिवर्ष देने का वचन भी दिया गया। पोप पायस नवम ने इस कानून की भर्त्सना की। पोप द्वारा इस कानून को मान्यता देने का आशय यह होता कि उसने १८७० में इटली की सेना के अनधिकृत रूप से प्रविष्ट होने को मान्यता दी है। उसकी इच्छा थी कि इस कानून की व्यवस्था इटली की संसद् के कानून द्वारा नहीं, अपितु एक अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि द्वारा की जाए। पोप पायस नवम ने अपने को वाटिकन का वन्दी वताया था। उसने एक गश्ती चिट्ठी इटली के नाम प्रसारित की जिसमें उसने आदेश दिया था कि इटली के कैथोलिक ... चुनावों में भाग न लें, कोई राजपद न सँभालें। पोप का यह हठ एक प्रकार ... लिए अच्छा भी था। जव तक वह इटली की राजशाही सरकार से मनमुटा... तव तक उस पर इटली के स्वार्थ के लिए कार्य करने का आरोप नहीं लगाया

था। इस तथाकथित 'कैंदी' की अवस्था के कारण संसार भर के कैथोलिकों की सहानुभूति उसके साथ थी। किन्तु उसके इस व्यवहार से इटली के सौभाग्य को बड़ी चोट पहुँची। देश बहुत से योग्य व्यक्तियों की सेवाओं से वंचित रह गया क्योंकि ये लोग पोप के आदेश पालन करने के कारण देश के राजनैतिक जीवन से बिल्कुल अलग हो गए थे।

१८७८ में पोप पायस नवम (Pius) की मृत्यु हो गई और उसके उत्तराधिकारी लियो तेरहवें (Leo XIII) ने भी उसकी ही नीति का अनुसरण किया। १९०५ में पोप दशम द्वारा निषेधाज्ञा (Encyclical Non-expedit) आंशिक रूप से वापिस ले ली गई थी। १९१९ में बेनीडिक्ट पंद्रहवें (Benedict XV) ने इस निषेधाज्ञा को पूर्णतः समाप्त कर दिया था। पोप पायस (Pius) ग्यारहवें ने १९२२ में अपने अभिषेक के अवसर पर इटली की सेना को अपना आशीर्वाद दिया था।

औपनिवेशिक नीति (Colonial Policy)—इटली की जनसंख्या बड़ी तीव्रता से बढ़ती जा रही थी इसलिए औपनिवेशिक विस्तार आवश्यक हो गया था। इटली ने चीन में अन्य यूरोपीय देशों की तरह कुछ सुविधाएँ प्राप्त करने की कोशिश की किन्तु इटली ही एक ऐसा यूरोपीय देश था जिसे कुछ भी नहीं मिल सका था। ब्रिटेन ने इटली को ट्युनिस और ट्रिपोली पर अधिकार कर लेने को कहा। किन्तु इटली ने यह अवसर भी खो दिया। १८८१ में फ्रांस ने ट्युनिस पर अपना संरक्षण थोप दिया। इससे दोनों देशों में मन-मुटाव हो गया और ट्युनिस सदा के लिए इटली के हाथों से निकल गया। १९११ में इटली ने तुर्की पर आक्रमण किया और १९१२ में ट्रिपोली और सिरेनाइका (Cyrenaica) प्राप्त कर सका था। इस नए प्रदेश को लिबिया (Libya) का नाम दिया गया था।

ट्युनिस के हाथ से निकल जाने के पश्चात् इटली ने अफ्रीका में कुछ प्राप्त करने का प्रयत्न किया। १८८५ में इटली ने एबिसीनिया की बन्दरगाह मासोवा (Massowa) पर अधिकार कर लिया था। क्रिस्पी के काल में सोमालीलैण्ड को इटली ने अपनी संरक्षकता में ले लिया था। रक्त-सागर में इटली की बस्तियों को इरिट्रिया (Eritrea) का नाम दिया गया और इटली एबिसीनियां की ओर बढ़ने लगा। किन्तु १८९६ में इटली अडोवा (Adowa) के युद्ध में हार गया। मुसोलिनी के राज्यकाल में इटली ने अडोवा की हार का बदला चुकाया और समूचे एबिसीनिया को जीत कर अपने राज्य में मिला लियां।

विदेश-नीति (Foreign Policy)—आरम्भ में इटली की विदेश नीति मुख्यतः रोम के प्रश्न पर केन्द्रित थी। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है पोप ने इटली की सरकार से सहयोग करने से इन्कार कर दिया था और कैथोलिक देशों के राजाओं से इटली के विरुद्ध कार्यवाही करने को कहा था। इसलिए इटली के मामलों में फ्रांस और आस्ट्रिया के हस्तक्षेप का भय सर्वदा बना रहता था। यह भय केवल काल्पनिक नहीं अपितु वास्तविक था।

१८८१ में फ्रांस द्वारा ट्युनिस पर अपनी संरक्षकता जमा लेने के कारण इटली से उसके सम्बन्ध बुरी तरह बिगड़ गए थे। फ्रांस में इटली विरोधी प्रदर्शन हुए और बहुत से इटालवियों की हत्या कर दी गई थी। इटली पर फ्रांस के आक्रमण की आशंका थी। इन परिस्थितियों में इटली आस्ट्रिया और जर्मनी से समझौता करके १८८२ में त्रिमुखी-मैत्री संगठन (Triple Alliance) का सदस्य बन गया था। इस संगठन ने इटली को शक्ति और प्रतिष्ठा दोनों प्रदान किए और इस प्रकार इटली पर से फ्रांस के आक्रमण का भय टल गया। यद्यपि इस संगठन में इटली की अवस्था एक याचक की सी थी फिर भी उसे अनेक सुविधाएँ दी गई थीं। १८८७ में जब 'त्रिमुखी-मैत्री संगठन' पर पुनः हस्ताक्षर हुए तब इटली को और भी अच्छी शर्तें मिली थीं। १८८७ में इटली ने इंग्लैण्ड के साथ भी एक सन्धि की थी। इस सन्धि के अनुसार ब्रिटेन और इटली ने अन्धमहासागर, ऐड्रियाटिक, एजियन और काला सागर में यथास्थिति (status quo) को मान्यता दी थी। यह भी निश्चित हुआ कि यदि अन्धमहासागर में कोई-सा भी देश युद्ध-ग्रस्त हो गया तो परस्पर सहायता दी जाएगी। इटली ने मिश्र में ब्रिटेन की नीति का समर्थन करने का आश्वासन दिया। ब्रिटेन ने उत्तरी अफ्रीका में विशेषतः ट्रिपोली में इटली की नीति का समर्थन करने का आश्वासन दिया था। १८८७ के पश्चात् इटली और ब्रिटेन के सम्बन्ध और भी घनिष्ठ हो गए थे। १९०२ में इटली ने ब्रिटेन को आश्वासन दिया कि यद्यपि वह 'त्रिमुखी-मैत्री संगठन' का सदस्य है तो भी वह ब्रिटेन के विरुद्ध नहीं लड़ेगा। १९०६ में एलजैकिरॉस (Algeciras) सम्मेलन के अवसर पर इटली ने जर्मनी और आस्ट्रिया के विरुद्ध, ब्रिटेन और फ्रांस के साथ मतदान दिया।

१९०९ में जार निकोलस द्वितीय इटली के राजा इमेनुअल तृतीय से भेंट करने आया था। दोनों राजाओं ने बलकान में यथास्थिति बनाए रखने का भरसक प्रयत्न करने का एक दूसरे को आश्वासन दिलाया। रूस ने ट्रिपोली और सिरीनाइका के मामले में इटली की ओर उदारता का रुख रखने का वचन दिया था। इटली ने भी रूस के प्रति बॉसफोरस (Bosphorus) और डारडनेल्स (Dardanelles) के मामलों में मैत्री-भाव रखने का वचन दिया था।

यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही इटली दो घोड़ों पर सवार था। यद्यपि यह 'त्रिमुखी-मैत्री संघ' का सदस्य था, जर्मनी और आस्ट्रिया उसकी सहायता पर अधिक विश्वास नहीं रखते थे। १९०६ में इटली ने इन्हें धोखा दिया। १९०८-९ में बोसनिया के झगड़े के अवसर पर इटली ने आस्ट्रिया द्वारा बोसनिया और हर्जेगोविना को राज्य में मिलाने पर बुरा माना था कि इटली को केवल पूर्व-सूचना मात्र भी नहीं दी गई थी। वैसे भी आस्ट्रिया और इटली के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। आस्ट्रियन साम्राज्य में बचे हुए इटली-भाषा बोलने वाले प्रदेशों को प्राप्त करने के उद्देश्य से उच्च पदासीन नागरिकों ने ईरीडेनटिस्ट आंदोलन (Irredentist Movement) की सहायता की थी। परिणाम यह हुआ कि जब १९१४ में प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ तब इटली ने आस्ट्रिया और जर्मनी के साथ

युद्ध-घोषणा नहीं की थी। इसका कारण यह भी हो सकता है कि १९११-१२ के तुर्की के युद्ध के बाद वह थका हुआ था। किन्तु एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण यह था कि इटली धुरी-राष्ट्रों (Axis) से गठजोड़ करने से पहले आस्ट्रिया से कुछ सुविधाएँ प्राप्त करना चाहता था। यद्यपि जर्मनी ने भी आस्ट्रिया पर इस मामले में जोर डाला, किन्तु आस्ट्रिया इस विषय में अधिक उदार नहीं था। ब्रिटेन और फ्रांस दोनों इटली को अपनी गुटबन्दी में लाना चाहते थे। क्योंकि ये इटली को उसकी इच्छित सुविधाएँ देने के लिए तैयार थे इसलिए १९१५ में लन्दन-सन्धि पर हस्ताक्षर किए गए। इटली ने धुरी-राष्ट्रों को २३ मई, १९१५ को आस्ट्रिया पर आक्रमण करके आश्चर्य में डाल दिया, किन्तु इससे अधिक आश्चर्य यह था कि इटली ने २७ अगस्त, १९१६ तक जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा नहीं की थी।

यद्यपि इटली प्रथम विश्व-युद्ध में मित्र राष्ट्रों की ओर से लड़ा तो भी वह शान्ति-सन्धि से प्रसन्न नहीं हुआ। लन्दन सन्धि के अनुसार जो कुछ उसे मिलना था वह नहीं दिया गया था। इटली और यूगोस्लाविया के स्वार्थ आपस में टकराते थे और मित्र-राष्ट्र यूगोस्लाविया का पक्ष लेते थे। इससे इटली बड़ा असंतुष्ट था। इटली में वैसे भी बड़ा असंतोष था। देश में साम्यवादियों का प्रचार बढ़ता जा रहा था जिसके कारण देशव्यापी हड़तालें हो रही थीं। किसानों ने जमींदारों को निकाल कर उनकी सम्पत्ति हथिया ली थी। चारों ओर अराजकता फैली थी। इस प्रकार की परिस्थिति में १९२२ में मुसोलिनी ने सत्ता हथियायी।

मुसोलिनी (Mussolini) ने देश में फासिस्ट (Fascist) शासन चलाया। उसने देश के सम्मुख एक नया कार्यक्रम रखा जिसमें व्यक्तिगत सम्पत्ति की सुरक्षा, सरकार की महत्ता और शक्तिशाली विदेश-नीति द्वारा नए उपनिवेश प्राप्त करना सम्मिलित था। देश में कानून और व्यवस्था स्थापित हुई। असामाजिक तत्त्वों को कुचल दिया गया था। अत्यन्त कठोरता से अनुशासन का पालन किया जाने लगा था। १९२९ की सन्धि के द्वारा पोप से समझौता कर लिया गया था। पोप ने सवाय राजवंश के अधिकृत इटली के राज्य को इसकी राजधानी रोम के सहित मान्यता दी थी। इटली की सरकार ने पोप को एक पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न शक्ति माना और उसके प्रदेशों की क्षतिपूर्ति भी की। पोप ने घोषणा की कि रोम का प्रश्न पूर्णरूप से सर्वदा के लिए सुलझ गया है।

विदेशी मामलों में मुसोलिनी ने साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण करना आरम्भ किया। वह अन्य शक्तियों की दृष्टि में इटली की प्रतिष्ठा ऊँची करने के लिए दृढ़-संकल्प था। उसकी धारणा रोम को प्राचीन यशस्वी स्थिति में पुनः ला देने की थी। १९३४ में उसने इस प्रकार घोषणा की, "हमारी इच्छा है कि हम उत्तरोत्तर एक शक्तिशाली सशस्त्र राष्ट्र बन जाएँ। मुझे यह कहने में भी डर नहीं है कि हमारी इच्छा एक सैनिकवादी राष्ट्र बनने की है। राष्ट्र का सारा जीवन, राजनैतिक, आर्थिक और आध्यात्मिक, क्रमशः व्यवस्थित रूप से हमारी सेना की आवश्यकताओं की

पूर्ति में लग जाना चाहिए। युद्ध राष्ट्रों के बीच अपील का सर्वोच्च न्यायालय कहा गया है।"

एबिसीनिया की विजय (Conquest of Abyssinia)—इटली द्वारा एविसीनिया को विजय करने के अनेक कारण थे। इटली की जनसंख्या निरन्तर बढ़ती जा रही थी और इसके लिए अतिरिक्त क्षेत्र को प्राप्त करना आवश्यक हो गया था। इटली अपने पक्के माल के लिए कच्चा माल और मण्डियाँ चाहता था। मुसोलिनी की तानाशाही में लोगों की स्वतन्त्रता छिन गई थी और यह आवश्यक था कि वह जनता को इसके बदले में कुछ प्रदान करे। इटली की जनता का ध्यान अपने देश की बुरी आर्थिक अवस्था से हटाना भी आवश्यक था। यह सत्य है कि आर्थिक मन्दी से यूरोप के सारे देश पीड़ित थे किन्तु इटली की अवस्था अत्यन्त गिरी हुई थी। इटली की मुद्रा का मूल्य घट गया था। बेकारी बढ़ गई थी और मजदूरों के वेतन में कमी कर दी गई थी। आवश्यकता अनुभव हुई कि देश के आय-व्यय के लेखे में परिवर्तन किया जाए। इटली का व्यापार-संतुलन इसके विपरीत था। एविसीनिया के विरुद्ध युद्ध जनता में देशभक्ति की भावना को उभार सकता था क्योंकि १८९६ में इटली अडोवा के युद्ध में हार गया था। एविसीनिया को विजय करने से अनेक धातुएँ उसके अधिकार में आ जाती थीं। एविसीनिया इटली के लिए सामरिक (strategic) महत्त्व रखता था। इससे सोमालीलैण्ड, इरिट्रिया और दक्षिण-पूर्वी अफ्रीका के उपनिवेश एकसूत्र में बँध जाते थे। एविसीनिया से इटली सूडान में ब्रिटेन के अड्डे पर आक्रमण कर सकता था। इससे इटली अन्धमहासागर को इटली की एक बड़ी झील बना सकता था। मुसोलिनी ने एविसीनिया का युद्ध उस समय आरम्भ किया जो उसकी दृष्टि में अत्यन्त उपयुक्त था। जापान द्वारा मंचूरिया को विजय करने पर लीग ऑफ नेशन्ज़ (League of Nations) तथा बड़ी शक्तियों के रुख को देखकर मुसोलिनी इस तथ्य पर पहुँचा था कि सामूहिक-सुरक्षा के सिद्धान्त के होने पर भी कोई देश उसके द्वारा एविसीनिया को विजय करने में बाधा नहीं डाल सकता। भले ही उसके कार्य की निन्दा करने के लिए प्रस्ताव स्वीकृत हों किन्तु इटली के विरुद्ध एविसीनिया के राजा अथवा उसकी प्रजा की सहायता के लिए कोई सहायता नहीं भेजी जाएगी। पुनश्च, अभी तक विश्व आर्थिक मन्दी के दुष्प्रभाव से उभर नहीं पाया था। आर्थिक समस्याएँ यूरोप के सारे शासकों के लिए घोर चिन्ता का कारण बनी हुई थीं। जर्मनी में हिटलर के सत्तारूढ़ होने और उसके द्वारा आक्रामक नीति के अनुसरण पर उस समय यूरोप के सारे कूटनीतिज्ञों की आँखें लगी हुई थीं। इसलिए वे इटली को एविसीनिया पर अधिकार करने से रोकने की अपेक्षा यूरोप में शान्ति स्थापित करने को अधिक महत्त्व देते थे।

मुसोलिनी ने एबिसीनिया पर आक्रमण करने के लिए तैयारी करने में बहुत समय लिया। १९३२ में एक उच्चाधिकारी को एविसीनिया में जासूसी करके सफलता के अवसरों के लिए सूचना देने के लिए भेजा गया। इस अधिकारी ने सूचना

दीं, "एबिसीनिया की राजनैतिक अवस्था बहुत बिगड़ी हुई है। यदि हमने कूटनीति से काम लिया तो इस साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर देना कठिन कार्य नहीं होगा और हमारे लिए एक निश्चित सैनिक विजय होगी।" वहाँ की प्रजा में फूट डालने के लिए इटली ने बहुत धन व्यय किया। संघर्ष के लिए तैयारियाँ की गईं। इटली एबिसीनिया पर आक्रमण करने के लिए बहाना ढूंढ रहा था।

दिसम्बर, १९३४ में वालवाल (Walwal) गाँव के निकट एबिसीनिया और इटली के सैनिकों में झड़प हो गई जिसमें इटली के कुछ सैनिक मारे गए। यद्यपि इटली ने क्षतिपूर्ति के लिए अनुचित माँगें रखीं, किन्तु वह पंच फ़ैसले के लिए तैयार नहीं था। १८३५ में तैयारियाँ करने के पश्चात् इटली की सेनाओं ने अक्टूबर, १९३५ में सीमान्त पार करके एबिसीनिया पर धावा कर दिया।

एबिसीनिया के राजा ने, जैसी आशा थी, मामले को लीग ऑफ नेशन्ज़ में पेश किया। इटली के प्रतिनिधि ने वालवाल घटना पर विवाद करने का विरोध किया क्योंकि उसके विचारानुसार इस घटना से दोनों देशों के शान्तिपूर्ण सम्बन्धों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। लीग ऑफ नेशन्ज़ ने विवाद स्थगित कर दिया और इटली ने इसे शान्तिपूर्ण तरीकों से सुलझाने का आश्वासन दिया। प्रतिज्ञा के बाद भी इटली की सरकार ने मध्यस्थ की नियुक्ति नहीं की। जब एबिसीनिया ने दूसरी बार शिकायत की तो इटली के प्रतिनिधि ने सूचित किया कि इटली मध्यस्थता के लिए तैयार है। मध्यस्थों की नियुक्ति हो गई और उन्होंने सर्वसम्मति से व्यवस्था दी कि वालवाल दुर्घटना के लिए इटली और एबिसीनिया दोनों में से कोई भी उत्तर-दायी नहीं है।

ब्रिटेन युद्ध से बचाव करने के पक्ष में था। परिणामतः एन्थनी ईडन (Anthony Eden) ने औपचारिक रूप से मुसोलिनी के सम्मुख प्रस्ताव किया कि ब्रिटेन एबिसीनिया को ज़ेला (Zeila) की बन्दरगाह देगा और एबिसीनिया इटली को ओगाडीन (Ogaden) देगा। मुसोलिनी ने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया।

ब्रिटेन, फ्रांस और इटली के प्रतिनिधियों का अगस्त, १९३५ में पेरिस-सम्मेलन हुआ जिसमें यह निर्णय हुआ कि एबिसीनिया को निमन्त्रण भेजा जाए कि वह 'देश की आर्थिक उन्नति और प्रशासनिक पुनर्गठन' के लिए अन्य देशों के सहयोग के लिए प्रार्थना करे। मुसोलिनी ने इस सुझाव को भी अस्वीकार कर दिया। सितम्बर, १९३५ में ब्रिटेन के विदेश मन्त्री सर सैमुअल होर (Samuel Hoare) ने लीग ऑफ नेशन्ज़ में घोषणा की कि ब्रिटेन लीग ऑफ नेशन्ज़ के प्रतिज्ञा-पत्र के अनुसार अपना कर्तव्य पूर्ण करने के लिए तैयार है। लीग इटली और एबिसीनिया की सीमाएँ निर्धारित करने के प्रस्ताव पर विचार करने में व्यस्त थी लेकिन इन्हीं दिनों अक्टूबर १९३५ में इटली का एबिसीनिया पर आक्रमण हो गया।

लीग ऑफ नेशन्ज़ अब कार्यवाही करने को विवश हो गई। ७ अक्टूबर को लीग की कार्यकारिणी ने विज्ञप्ति में कहा—"इटली ने लीग के प्रतिज्ञापत्र की

वारहवीं धारा की अवहेलना करके युद्ध आरम्भ किया है। दो दिन पश्चात् लीग की सभा ने कार्य में तालमेल स्थापित करने के लिए एक संयोजक समिति की नियुक्ति की। समिति ने लीग के सारे सदस्य राष्ट्रों को आदेश दिया कि वे इटली को दिए जाने वाले सारे ऋणों तथा उधारों को रोक लें तथा इटली को माल भेजना वन्द कर दें। आस्ट्रिया, हंगरी और अल्वानिया को छोड़कर सारे यूरोपीय राष्ट्रों ने इन आदेशों का पालन किया। नवम्बर, १६३५ में इटली पर आर्थिक नाकावन्दी की गई किन्तु इससे फ्रांस प्रसन्न नहीं था। उसे डर था कि इससे सारे यूरोप में युद्ध फैल जाएगा। एविसीनिया की सेना, पूर्णतः आधुनिक यान्त्रिक शस्त्रों से सन्नद्ध इटली की सेना के मुकावले में नहीं टिक सकती थी। एविसीनिया के पास कोई आधुनिक अस्त्र-शस्त्र नहीं थे। उसके साधन भी थोड़े थे। परिणाम यह हुआ कि इटली की सेनाएँ एविसीनिया में वहुत दूर तक घुस गईं। उनकी सहायता को वमवर्षक वायुयान भी थे।

दिसम्बर, १६३५ में ब्रिटेन और फ्रांस की सरकारों ने अनुभव किया कि यदि इटली हार गया तो युद्ध की आग फैल जाएगी। इस प्रकार की स्थिति से वचने के लिए सर सैमुअल होर और लावेल ने विचार-विमर्श किया और निर्णय किया गया कि जितना प्रदेश इटली के पास उस समय था उससे भी अधिक प्रदेश इटली को एविसीनिया में दिलवा दिया जाए। यह प्रस्ताव किसी प्रकार ज्ञात हो गया और सर सैमुअल होर को त्यागपत्र देना पड़ा क्योंकि इंग्लैण्ड की जनता ने उसकी विदेश-नीति की घोर निन्दा की थी।

होर-लावेल योजना के असफल होने पर इटली ने वास्तविक रूप से एविसीनिया पर विजय करना आरम्भ किया और १६३६ में अप्रैल समाप्त होने तक इटली की सेनाएँ एविसीनिया की राजधानी के निकट जा पहुँची थीं। १ मई, १६३६ को एविसीनिया का राजा देश छोड़कर भाग गया और उसके जाते ही सारा विरोध समाप्त हो गया। एविसीनियां पर पूर्ण अधिकार हो गया और इटली के राजा को एविसीनिया का सम्राट् घोषित कर दिया गया।

यह ध्यान रखने योग्य वात है कि यदि सारे देशों ने एकता के साथ लीग द्वारा इटली पर लगाई गई आर्थिक नाकावन्दी का पालन किया होता तो सम्भवतः इटली घुटने टेक देता। किन्तु फ्रांस इस नाकावन्दी में कठोरता करने में सहमत नहीं था। लावेल के शब्दों में, "इस नाकावन्दी का इसलिए आदेश दिया गया था कि इटली ब्रिटेन और लीग ऑफ नेशन्स से अलग न हो जाए किन्तु इसको इस प्रकार लागू किया गया था कि हम लोग इटली से अलग न हों और युद्ध भी वन्द हो जाए।" ब्रिटेन के विदेश-मन्त्री को इस नाकावन्दी के प्रति वड़ा उत्साह था और वह इस दिशा में कुछ भी करने को प्रस्तुत था, किन्तु अन्य शक्तियों के रुख ने उसे भी निरुत्साहित कर दिया और नाकावन्दी के आदेश लौटा लिये गए।

इटली द्वारा एविसीनिया को जीतना लीग ऑफ नेशन्स के प्रतिज्ञा-पत्र का

घोर अपमान और उल्लंघन करना था। लीग बुरी तरह अपमानित हो चुकी थी। हिटलर को भी अपनी योजनाओं में प्रोत्साहन मिला। उसे दृढ़ विश्वास हो गया था कि लीग ऑफ़ नेशन्ज़ एक नपुंसक संस्था है और इसके सदस्य किसी भी आततायी से किसी भी देश की रक्षा करने के लिए युद्ध का खतरा उठाने के लिए तैयार नहीं थे। लीग पूर्णत: मर चुकी थी और १६३६ के बाद तो केवल इसका नाम ही शेष रह गया था।

गथोर्न-हार्डी (G. M. Gathorne Hardy) के शब्दों में, "एबिसीनिया की पराजय युद्धोत्तर इतिहास में एक बड़ा महत्त्वपूर्ण मोड़ है। इटली के नग्न और निर्लज्ज आक्रमण की जीत ने सारे विश्व पर बहुत प्रभाव डाला। इंग्लैण्ड ने इसे एक ऐसी परिपाटी का नष्ट होना माना जिसे भिन्न-भिन्न प्रणालियों की सरकारों ने अपनी विदेश-नीति का मुख्य आधार माना था। फ्रांस के लिए यह एक ऐसे शत्रु को प्रोत्साहन देना था जिससे वह बहुत डरता था और जिसने अब सिर उठाया था। अन्त में इटली के आक्रमणकारियों के लिए इसका अन्तिम परिणाम डेन्यूब (Danube) नदी से उसका प्रभाव समाप्त होना और ब्रैनर (Brenner) पर जर्मनी सेना का आगमन था।

स्पेन में जब गृह-युद्ध हुआ तो मुसोलिनी ने स्पेन की गणतन्त्रवादी सरकार के विरुद्ध जनरल फ्रैंको की सहायता की थी। यद्यपि रूस ने स्पेन की सरकार की सहायता की, मुसोलिनी और हिटलर को ही अन्त में सफलता मिली।

१६३६ में जर्मनी और जापान ने कोमिण्टर्न-विरोधी (Anti-Comintern) समझौते पर हस्ताक्षर किए। दोनों देशों ने निर्णय किया कि वे "साम्यवादियों के तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की गतिविधि के विषय में एक दूसरे को सूचित करते रहेंगे तथा सुरक्षा-सम्बन्धी कार्यवाही पर विचार-विमर्श करेंगे तथा परस्पर सहयोग से कार्यक्रम क्रियान्वित करेंगे।" १६३७ में इटली इस समझौते का सदस्य बना और इस प्रकार बर्लिन-रोम-टोकियो और धुरी-संगठन (Axis) का जन्म हुआ। हिटलर इस संगठन को 'विश्व का महान् राजनैतिक त्रिकोण' कहा करता था, जो शक्तिहीन मूर्तियों का नहीं, अपितु तीन राष्ट्रों का संगठन है, जो अपने अधिकारों और महत्त्वपूर्ण स्वार्थों की रक्षा के लिए सन्नद्ध तथा दृढ़प्रतिज्ञ है। स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की अपेक्षा मुसोलिनी ने हिटलर का पिछलग्गू बनना पसन्द किया। १६३८ के म्यूनिच (Munich) समझौते में इसने महत्त्वपूर्ण भाग लिया।

द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ होने के पश्चात् जब फ्रांस का पतन होने को था तो मुसोलिनी ने भी फ्रांस पर आक्रमण कर दिया। फ्रांस के पतन के पश्चात् इटली और जर्मनी की सेनाओं ने दक्षिणी अफ्रीका में सहयोग से कार्य किया। किन्तु जब संयुक्त राष्ट्रों की सेनाओं ने इटली के समुद्री तट के प्रदेशों पर अधिकार करना आरम्भ किया तो इटली की जनता ने ही उसकी हत्या कर डाली। संयुक्त राष्ट्रों ने इटली को भी जीत लिया।

Suggested Readings

King and Okey : *Italy Today.*
Royal Institute of International Affairs : *Abyssinia and Italy.*
Steer : *Caesar in Abyssinia.*
Underwood : *United Italy.*
Wallace : *Greater Italy.*
Cambridge Modern History, Vol. XII.

अध्याय २४

रूस १८७१ से १९१७ तक

(Russia from 1871 to 1917)

एलेग्जेण्डर तृतीय (Alexander III) (१८८१-९४)---एलेग्जेण्डर द्वितीय के पश्चात् एलेग्जेण्डर तृतीय गद्दी पर बैठा और उसने १३ वर्ष राज्य किया। वह मन और शरीर दोनों से उजड्ड व्यक्ति था और शिष्टाचार तथा कोमल भावनाओं से शून्य था। वह अपनी धृष्टता पर गर्व करता था। वह स्लाव लोगों का बहुत हितैषी था। वह उदारवाद का घोर विरोधी और स्वेच्छाचारिता का प्रबल समर्थक था। उसके शब्दों में, "परमेश्वर की वाणी ने हमें आज्ञा दी है कि हम स्वेच्छाचारिता और शक्ति की सच्चाई में पूर्ण विश्वास रखते हुए इस देश पर शासन करें और स्वेच्छाचारिता की शक्ति को संग्रहीत करके प्रजा की भलाई के लिए इसमें किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न होने दें।" प्लैह्वी (Plehve) और पोबड़नस्टसीव (Pobedonostsev) नाम के दो व्यक्ति उसकी नीति को कार्य रूप में परिणत करने में पूर्णत: सहायक थे। प्लैह्वी को पुलिस विभाग सौंपा गया और उसने इसे इतनी दक्षता से चलाया कि ज़ार की आज्ञाओं का सफलता से पालन हो सकता था। पोबडनस्टसीव एलेग्जेण्डर तृतीय का शिक्षक तथा कानून का विद्वान् था। उसे 'पवित्र सभा का संचालक' (Procurator of Holy Synod) नियुक्त किया गया और यह सभा रूस के प्राचीन चर्च का नियन्त्रण करती थी। पोबडनस्टसीव ने अपने नवीन पद पर आसीन होने के पश्चात् रूस के पादरियों के विचारों और कार्यों का ईस प्रकार संचालन किया कि ज़ार की नीति का पालन हो सके। इसका विचार था कि विधान सभाएँ स्वार्थी और महत्त्वाकांक्षी लोगों का जन्मस्थान होती हैं। समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता असत्य के प्रचार के अतिरिक्त कुछ नहीं है। धर्मनिरपेक्ष शिक्षा आचारहीन और खतरनाक है। सीमित राजशाही एक व्यर्थ की कल्पना है। जूरी न्याय-व्यवस्था धोखा है। उसके शब्दों में, "यदि जनता के प्रतिनिधि सन्त हों तो संसदीय प्रणाली सर्वश्रेष्ठ है किन्तु साधारणत: जनता के प्रतिनिधियों का चरित्र बहुधा संदेहास्पद होता है, संसदीय प्रणाली सबसे निकृष्ट है।" उसका उद्देश्य पश्चिम की उदार विचारधारा से रूस की जनता को अप्रभावित रखने की चेष्टा करना था।

एलेग्जेण्डर द्वितीय की हत्या से जो लोग किसी भी प्रकार से सम्बन्धित थे उन्हें कठोर दण्ड दिया गया। रूसी साम्राज्य में उदार तथा क्रान्तिकारी विचार-धाराओं का दमन करने के लिए व्यवस्था की गई। केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त ज़ागीरदारों को 'मीर' अर्थात् ग्राम पंचायतों का प्रशासन सौंप दिया गया।

जैम्स्टवोस के अधिकार कम कर दिए गए। इनके संविधान इस प्रकार बदले गये कि जागीरदारों और पदाधिकारियों को अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। व्यावसायिक वर्गों का प्रतिनिधित्व बिल्कुल समाप्त कर दिया गया। राज्यपालों को निषेधाधिकार प्रयोग करने के विशाल अधिकार दे दिए गए। धर्मनिरपेक्ष स्कूलों को अमान्य करके चर्चों के स्कूलों को मान्यता दी गई। राज्य के पाठ्यक्रम और शिक्षकों पर भी नियन्त्रण रखा गया। सब प्रकार के प्रकाशनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। व्यक्तिगत पत्र-व्यवहार को भी सेन्सर किया जाता था। संगठनों और सम्मेलनों पर नियन्त्रण किया जाने लगा। पुलिस इच्छानुसार जिसे चाहती थी पकड़ लेती थी और मनचाहा दण्ड दे सकती थी। राजनैतिक अपराधियों को या तो साइबेरिया में देशनिकाला दे दिया जाता था या रूस में ही कैद में डाल दिया जाता था।

एलेग्जेण्डर तृतीय ने भी रूसीकरण की नीति अपनाई थी। रूसी साम्राज्य में रूसी भाषा तथा रूस के प्राचीन रूढ़िवादी धर्म के अतिरिक्त कोई भाषा और धर्म नहीं चल सकता था। अल्पमतों को कुचल दिया गया। उन्हें अपनी भाषा, धर्म, रस्म-रिवाज छोड़कर ज़ार की आज्ञा का पालन करना पड़ता था। पोवडनस्टसीव ने प्राचीन रूढ़िवादी धर्म न मानने वालों को दण्ड दिया। ज़ार नित्य प्रति आज्ञप्तियाँ प्रसारित करके अधिकारियों को रूसीकरण का कार्य शीघ्रता से करने के लिए तंग किया करता था। पोलैण्ड के कैथोलिकों के साथ बड़ा अत्याचारपूर्ण वर्ताव किया गया। उनके चर्च में हस्तक्षेप किया जाने लगा। उनके स्कूलों का रूसीकरण कर दिया गया। उनकी भाषा और उनका साहित्य उन्हें रूसी भाषा में पढ़ाया जाने लगा। उन्हें पोलैण्ड के सारे पदों से च्युत कर दिया गया था। वे लोग अरूसियों को अपनी भूमि नहीं बेच सकते थे। श्वेत रूस और लुथेनिया में कैथोलिक चर्च के विरुद्ध भेद-भाव किया जाता था। उनकी शादियों और संतानों को अवैध समझा जाता था। यूक्रेन में प्रान्तीय भाषा में पुस्तकें प्रकाशित करना, प्रान्तीय भाषा में बोलना अथवा इस भाषा में गाना बन्द कर दिया गया। लटविया और इस्टोनिया में रूसी भाषा को राजभाषा बना दिया गया और प्रत्येक प्रोटेस्टैण्ट चर्च को बनाने के लिए 'पवित्र सभा' के संचालक की अनुमति अनिवार्य थी। स्कूलों और विश्वविद्यालयों में जर्मन भाषा का प्रयोग बन्द कर दिया गया। स्थानों के नाम जर्मन भाषा के बजाए रूसी भाषा में लिखे गए। यहूदियों पर बड़े अत्यचार किए जाने लगे। १८८२ में राज्य आज्ञा के अनुसार यहूदी अचल सम्पत्ति नहीं खरीद सकते थे। स्कूलों और विश्वविद्या-लयों में प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। आरम्भ में केवल १० प्रतिशत यहूदी शिक्षा संस्थाओं में भर्ती हो सकते थे किन्तु बाद में इस संख्या को घटा कर ३ प्रतिशत कर दिया गया। १८६० में आज्ञा दी गई कि केन्द्रीय रूस में रहने वाले सारे यहूदी पश्चिमी प्रदेशों में जाकर बसेंगे। यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो उन्हें सरकार से पार-पत्र प्राप्त करने पड़ेंगे। उन्हें जमीन खरीदने अथवा पट्टे पर लेने का अधिकार नहीं था। उन्हें कठोर सरकारी नियन्त्रण में रखा जाता था। बहुत से रूसी अधिकारियों ने यहूदियों की सामूहिक हत्याएँ की थीं। यहूदियों की हालत असहनीय हो गई और इस कारण १८६१ में ही तीन लाख यहूदी रूस छोड़कर अन्य देशों में चले गए।

एलेग्जेण्डर तृतीय ने साम्राज्यवादी नीति का बड़ी कठोरता से अनुसरण किया था। तुर्किस्तान पर अधिकार करने के कार्यक्रम को बड़ी लगन से अपनाया गया। काकेशस में सैनिक राज्य की स्थापना की गई। एशिया में रूसी प्रभाव बड़ी तेज़ी से फैल रहा था। एलेग्जेण्डर ने बल्गेरिया के मामले में हस्तक्षेप किया जिससे यूरोप में बड़ा तनाव पैदा हो गया। बल्गेरिया के राजकुमार एलेग्जेण्डर ने इसका विरोध किया और विरोधस्वरूप उसने राज्य का त्याग कर दिया। उसके बाद फर्डिनैण्ड गद्दी पर बैठा। इंग्लैण्ड और आस्ट्रिया ने उसका समर्थन किया और जर्मनी और रूस ने उसका विरोध किया। यह तनातनी चलती रही किन्तु बिस्मार्क ने इस विषय में ध्यान रखा कि रूस और आस्ट्रिया में खुले रूप में युद्ध न हो जाए।

एलेग्जेण्डर ने सर्बिया में आस्ट्रिया-विरोधी भावनाओं को उत्साहित किया और छोटे से राज्य मोण्टीनिग्रो (Montenegro) को अपने साथ मिला लिया।

१८८७ तक तीन सम्राटों की सभा बनी रही। किन्तु बल्गेरिया के झगड़े के कारण तथा रूस और आस्ट्रिया के मतभेद के कारण इसका अधिक चलना असम्भव हो गया था। इन परिस्थितियों में जर्मनी से पुनः विश्वास की सन्धि की गई थी। बिस्मार्क के त्यागपत्र के पश्चात् विलियम द्वितीय ने इसे भी समाप्त हो जाने दिया। इस प्रकार रूस और फ्रांस के बीच सन्धि का मार्ग बना और इस प्रकार १८९३ में यह संगठन पूरा हुआ।

निकलस द्वितीय (Nicholas II) (१८९४-१९१७)—एलेग्ज़ेण्डर तृतीय के पश्चात् उसका पुत्र निकलस द्वितीय गद्दी पर बैठा। वह एक दुर्बल व्यक्ति था और अध्यात्मवाद तथा भाग्य में विश्वास करता था। वह हठी था। उस पर उसकी पत्नी का पूरा नियन्त्रण था। दुर्भाग्य से वह भी रासपुटिन के प्रभाव में था। वह उसे मित्र और दैवी शक्ति वाला सलाहकार समझता था। उसकी अनुमति के बिना कोई नियुक्ति अथवा नवीन नीति निर्धारित नहीं की जाती थी। रासपुटिन स्वयं भी एक निपट प्रतिक्रियावादी था।

निकलस द्वितीय

निकलस द्वितीय स्वयं भी स्वेच्छाचारी सिद्धान्तों में विश्वास रखता था। उसके विचार से राजा की शक्ति को कम करना एक मूर्खतापूर्ण स्वप्न था। उसने पोबडनस्टसीव को १९०५ तक उसके पद पर बनाए रखा। प्लैह्वी को १९०१ में गृह-मन्त्री नियुक्त करके असीम अधिकार दे दिए गए थे। नवीन राज्य में भी रूसीकरण, दमन और प्रतिक्रिया की नीति निरन्तर बर्ताव में लाई जा रही थी। आर्मीनिया

के चर्च में हस्तक्षेप किया गया। यहूदियों की सामूहिक हत्याओं की घटनाओं की तीव्रता से पुनरावृत्ति होने लगी। रूसी भाषा पोल, लुथेनियन, फिन; इस्टोनियन, लटवियों इत्यादि पर बलपूर्वक थोपी गई। प्लैह्वी को फिनलैण्ड में राज्य मन्त्री नियुक्त किया गया जिससे रूसीकरण की नीति को तीव्रता से क्रियान्वित किया जा सके।

देश के उद्योगीकरण की गति तीव्र हो गई। कोयले और लोहे की खानों पर अधिक काम होने लगा। तेल के कुओं से तेल निकाला जाने लगा। देश में स्थान-स्थान पर कारखाने बनाए गए। जहाज़ बनाने के उद्योग की भी प्रगति हुई। कोयले और कच्चे लोहे का उत्पादन बहुत बढ़ गया था। यह आश्चर्यजनक उन्नति फ्रांस की पूंजी लगाए जाने, मुजारेदारी को तोड़ देने, और सस्ती मज़दूरी के कारण हुई। रेलों की बड़ी उन्नति हुई और इसके कारण देश में उद्योग, व्यापार और वाणिज्य की उन्नति हुई। साइबेरिया और केस्पियन सागर के आर-पार रेलों के जाल बिछ जाने से भी देश के धन की वृद्धि हुई। इस उन्नति के होने पर भी रूस मुख्यतः एक खेतिहर देश ही बना रहा।

यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि रूस में उद्योगों की वृद्धि कोर्ट सर्जविट, जो एलेग्ज़ेण्डर द्वारा वित्त मन्त्रालय में रेल विभाग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया गया था, की देख-रेख में हुई थी। १८९२ में उसे संचार (Communications) मन्त्रालय सौंप दिया गया। विट ने इस विभाग को १० वर्ष तक सँभाला। रूस में बड़े उद्योगों की उन्नति हुई थी। संरक्षण की नीति से छोटे उद्योगों की रक्षा की गई। विदेशी पूंजी को प्रोत्साहन दिया गया। छोटे उद्योगों को पुरस्कार दिए जाने लगे थे। राज्य के बैंकों को प्रोत्साहन दिया गया। रूसी मज़दूर को अधिक दक्ष बनाया गया। यह कार्य शराब पर राज्य का पूर्ण रूप से अधिकार करके कामगारों में शराब पीने की लत को कम करने के लिए किया गया। श्रमिकों का दुर्घटनाओं के विरुद्ध बीमा किया गया। सरकार ने खानों और कारखानों का राष्ट्रीयकरण आरम्भ कर दिया। देश में उद्योगीकरण की उन्नति ने रूस के साम्राज्य की वृद्धि में भी बड़ी सहायता प्रदान की थी।

विट की नीति का देश में बड़ा विरोध हुआ। उद्योगीकरण से कामगारों के हाथ मज़बूत हो गए और इससे सुधारवाद को प्रोत्साहन मिला। पोबडनस्टसीव और प्लैह्वी ने विट की नीति के खतरनाक परिणामों की ओर ध्यान दिलाया था। जागीर-दारों ने भी नीति का विरोध किया क्योंकि उद्योगीकरण के कारण खेती की उपेक्षा की जा रही थी। इन परिस्थितियों में १९०३ में विट को त्यागपत्र देना पड़ा किन्तु उसकी नीति पर बराबर अमल किया जाता रहा।

रूस के साम्राज्यवाद के कारण उसे जापान से टक्कर लेनी पड़ी क्योंकि वह भी रूस के प्रभाव को रोक कर अपना प्रभाव बढ़ाने का प्रयत्न करने लगा था। १९०४-५ की रूस और जापान की लड़ाई में जापान ने रूस को पराजित किया था। सितम्बर, १९०५ में पोर्टस्माउथ की सन्धि के अनुसार युद्ध बन्द हुआ और

रूस ने जापान को पोर्ट आर्थर, लियाओटंग और साखालिन द्वीप का एक भाग दे दिया। रूस ने जापान को कोरिया और चीन को मन्चूरिया देना भी स्वीकार किया।

१९०७ में रूस ने जापान से सुलह कर ली और इसी वर्ष रूस और इंग्लैण्ड की सन्धि हुई। यह निर्णय हुआ कि इंग्लैण्ड और रूस तिब्बत के मामले में दखल नहीं देंगे। तिब्बत पर चीन का आधिपत्य स्वीकार किया गया। यह भी स्वीकार हुआ कि रूस अफ़गानिस्तान से ब्रिटेन के माध्यम से सम्पर्क रखेगा। पर्शिया के मामले में रूस उत्तर में और इंग्लैण्ड दक्षिण में प्रभाव रखेगा।

रूस में निहिलवाद (Nihilism in Russia)—यह आवश्यक है कि रूस में निहिलवाद (Nihilism) की प्रगति और देश में प्रजातन्त्रवाद की अवनति का भी उल्लेख किया जाए। निहिलवाद के विषय में एलेग्ज़ेण्डर द्वितीय की प्रतिक्रियावादी नीति के कारण देश में निराशा और कटुता फैल गई थी। यह कटुता की भावना अनेक अवस्थाओं में से गुज़री। इसका प्रथम चरण अत्यन्त निराशापूर्ण था। यह भावना थी कि रूस में प्रगतिशील विचारों के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। पश्चिमी यूरोप के उदात्त दार्शनिकों और वैज्ञानिकों के ग्रन्थ पढ़ कर रूस का बौद्धिक वर्ग अत्यन्त कटु आलोचक बन गया और उसे निहिलवादी (Nihilist) कहा जाने लगा। स्टेवनिक के मतानुसार, "निहिलवाद का मौलिक सिद्धान्त पूर्ण व्यक्तिवाद था। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के नाम पर यह व्यक्ति पर आने वाले पारिवारिक जीवन और धर्म के सारे उत्तरदायित्वों को निःशेष कर देता था।" तुर्जेनीफ ने निहिलवाद की परिभाषा की है, "वह व्यक्ति जो किसी की सत्ता न माने और अन्य व्यक्तियों द्वारा महान् माने जाने वाले किसी भी धार्मिक सिद्धान्त को न माने।" निहिलवादी घोर व्यक्तिवादी थे और वे प्रत्येक मानवीय व्यवस्था को तर्क की कसौटी पर कसते थे। क्योंकि रूस की बहुत कम व्यवस्थाएँ उनके तर्क पर सही उतरीं, इसलिए उन्होंने सारी व्यवस्थाओं की निन्दा करना आरम्भ कर दिया था। निहिलवादियों ने कोई पृथक् राजनैतिक दल नहीं बनाया किन्तु सरकार, धर्म, विवाह और सदाचार की कटु आलोचना के कारण उनसे अधिकारी रुष्ट हो गए और वे लोग या तो विदेशों में भाग गए या गुप्त रूप से कार्य करने लगे। देशनिकाले के समय उन लोगों का अन्य उग्र क्रान्तिकारियों से सम्पर्क हुआ। इन लोगों में बैकूनिन भी था जो किसी प्रकार साइबेरिया से बच निकला और उस समय लन्दन में रह रहा था। बैकूनिन (Bakunin) एक आतंकवादी था और उसका विश्वास था कि सारी वर्तमान व्यवस्थाओं को तुरन्त ही नष्ट कर देना चाहिए जिससे कि ये करोड़ों व्यक्ति, जिनको धोखा दिया जाता है, जिन्हें गुलाम बनाया गया है, जिनसे अधिक कार्य लिया जाता है और जिनका शोषण किया जा रहा है, तुरन्त और सर्वदा के लिए स्वतन्त्रतापूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें और पुराने समाज के ध्वंसावशेषों पर नए प्रजातन्त्रवादी समाज का निर्णय हो सके।

१८७० के पश्चात् रूस में एक और आन्दोलन हुआ। इसका उद्देश्य था कि शिक्षित युवकों और युवतियों को ग्रामों और कारखानों में भेजकर किसानों और

मज़दूरों से सम्पर्क स्थापित किया जाए और उन्हें देश की दुर्दशा के प्रति उनके उपेक्षा-पूर्ण व्यवहार से हटाकर जाग्रत किया जाए। इस दल के सदस्य जनता से मिलकर वर्त्तमान समाज की व्यवस्था के ध्वंसावशेषों पर कामगरों का साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न करते थे। वे लोग बड़ी कठिन परिस्थितियों में धर्म-प्रचारकों जैसे उत्साह से काम करते थे। इस प्रकार की एक महिला सदस्य सोफी वरडीन (Sophie Berdine) ने एक कपड़े के कारखाने में १५ घण्टे प्रतिदिन काम करने की नौकरी इसलिए की थी कि वह वहाँ के मज़दूरों को जाग्रत करे। वह मज़दूरों के साथ एक प्रचार-पत्र (Pamphlet) पर विवाद करते हुए पकड़ी गई और उसने अदालत में स्वीकार किया कि उसका उद्देश्य मज़दूरों की आत्मा में अधिक न्यायपूर्ण व्यवस्था के आदर्श को जगाना था, वर्त्तमान व्यवस्था की त्रुटियों के प्रति ध्यान आकर्षित करके इन त्रुटियों की पुनरावृत्ति को रोकना था। अनुमान लगाया जाता है कि १८७२ से १८७८ के समय में लगभग दो हज़ार से तीन हज़ार प्रचारक प्रचार के कार्य में लगे हुए थे। किन्तु उन्हें पुलिस और अधिकारियों के विरोध के कारण सफलता नहीं मिली। बहुत से प्रचारकों को क़ैद करके साइबेरिया में देशनिकाला दे दिया गया था।

शान्तिपूर्ण प्रचार को असम्भव पाकर हिंसा का आश्रय लिया गया। यह समझा गया कि ज़ार के आततायी ढंग का उत्तर केवल आतंककारी कार्य ही है। आतंकवादी स्वभाव से रक्तपिपासु या निर्दय व्यक्ति नहीं थे। साधारणतः उनका विश्वास था कि प्रतिक्रियावादी और आततायी अधिकारियों से छुटकारा पाए बिना रूस में कोई सुधार नहीं हो सकता। उन्होंने अपनी व्यवस्था को दृढ़ बनाकर हिंसा के क्षेत्र में पदार्पण किया। बहुत से उच्चाधिकारियों को मार डाला गया, किन्तु इसके बदले में सरकार ने भी अनेक क्रान्तिकारियों को मृत्युदण्ड दिया था। कहा जाता है कि १८७८-७९ की शरद् ऋतु में अकेले सेन्ट पीटर्सबर्ग में २,००० व्यक्ति पकड़े गए थे। संदेहास्पद व्यक्तियों को न्यायपूर्ण ढंग से मुकदमा चलाए बिना ही मृत्यु-दण्ड दे दिया गया। हज़ारों को केवल अधिकारियों की आज्ञाओं से ही साइबेरिया भेज दिया गया। अन्त में क्रान्तिकारियों ने ज़ार की हत्या करने का निर्णय किया। अप्रैल, १८७९ में सोलोविफ नाम के एक स्कूल के शिक्षक ने सम्राट् पर पाँच गोलियाँ चलाईं किन्तु वह बच गया। दिसम्बर में जिस गाड़ी से ज़ार के आने की आशा थी उसे उड़ा दिया गया, किन्तु ज़ार पहली गाड़ी से आ चुका था। इसलिए बच गया। फरवरी, १८८० में भोजन करते समय ज़ार की हत्या का प्रयत्न किया गया। डायना-माइट फट गया और १० सिपाही मारे गए और ५३ घायल हुए। भोजनालय का फ़र्श नष्ट हो गया किन्तु नियत समय पर ज़ार के वहाँ न जाने के कारण वह बच गया।

सेंट पीटर्सबर्ग में आतंक का राज्य था। ज़ार एलेग्ज़ेण्डर ने मेलिनकोफ को तानाशाही अधिकार दिए किन्तु वह नरम नीति का मानने वाला था। उसने सैकड़ों क़ैदियों को छोड़ दिया और अनेक व्यक्तियों के मृत्युदण्ड क्षमा कर दिए। उसने ज़ार से प्रार्थना की कि वह जनता को शासन में थोड़ा अधिकार दे दे जिससे कि क्रान्ति-

कारियों की गतिविधि, क्योंकि यह जनता के असन्तोष का विस्फोट मात्र था, कम हो जाए। उसका विचार था कि ज़ार के अधिकारों में कमी किए बिना ही कुछ सुविधाएँ दे दी जाएँ। बहुत संकोच के पश्चात् ३० मार्च, १८८१ को ज़ार ने मेलिन-कोफ की योजना को सरकारी पत्रों में प्रकाशित करने की आज्ञा दे दी। किन्तु उसी दिन सैर से लौटते समय उसकी गाड़ी पर बम फेंका गया। गाड़ी नष्ट हो गई और बहुत से अंगरक्षक घायल हुए। एलेग्ज़ेण्डर तृतीय आश्चर्यजनक रूप से बच गया किन्तु दूसरा बम उसके निकट ही तब फटा जबकि वह घायलों की सहायता कर रहा था। उसे बहुत चोट आई और एक घण्टे बाद उसकी मृत्यु हो गई। यद्यपि रूस के सुधारवादी हताश हो चुके थे तो भी निहिलवाद का आन्दोलन समाप्त नहीं हुआ। एलेग्ज़ेण्डर और निकलस द्वितीय दोनों ने ही दमन की नीति अपनाई। इसका उत्तर निहिलवाद के अतिरिक्त कुछ नहीं था। प्लैह्वी और पोवडनस्टसीव दोनों ही प्रति-शोध की नीति का अनुसरण करते थे। देश में कहीं शान्ति नहीं थी। सर्वत्र आतंक का राज्य था। उदारवादियों ने निराश होकर अच्छे दिनों की प्रतीक्षा करनी शुरू कर दी थी।

रूस में उदारवादी प्रयोग (Liberal Experiment in Russia)—प्रतिक्रिया और दमन के वातावरण में कुछ नवीन तत्त्वों का प्रादुर्भाव हुआ। ज़ार ने साम्राज्य-वादी उद्देश्य से देश में उद्योगों की उन्नति कराई थी किन्तु औद्योगिक क्रान्ति की प्रगति के साथ-ही-साथ व्यापारी, कारखानों के स्वामी और बैंक के स्वामी देश में प्रमुखता प्राप्त करने लगे और उन्होंने ज़ार की असीम सत्ता पर प्रतिबन्ध लगाने का निर्णय किया। पश्चिम की उदार विचारधाराओं से प्रेरित होकर इन बुद्धिजीवी लोगों ने स्टटगार्ट (Stuttgart) जर्मन में 'लिबरेशन' (Liberation) नाम का एक पत्र चलाया। १९०४ में एक उदारदलीय राजनीतिक दल जिसे 'मुक्तिदाताओं की सभा' (Union of Liberators) कहा जाता था, संगठित किया गया। इसी काल में क्रान्तिकारी प्रचार देश में बढ़ रहा था। १९०४ में प्लैह्वी को मार डाला गया और रूस-जापान युद्ध में रूस की सेनाएँ पराजित होने लगी थीं। इन दोनों कारणों का रूस की सरकार पर भी प्रभाव पड़ा।

निकलस द्वितीय अपनी नीति में परिवर्तन करने की मनःस्थिति में था इसलिए उसने सितम्बर, १९०४ में उदार विचार वाले राजकुमार मिरस्की को गृहमन्त्री बनाया। नए मन्त्री ने घोषणा की, "यद्यपि अभी रूसी जनता संवैधानिक प्रणाली की सरकार के योग्य नहीं है, स्थानीय संस्थाओं को, यथा जैम्स्टवोस को बिना वर्त-मान प्रणाली में परिवर्तन किए ही अधिक अधिकार दिए जा सकते हैं।" उसने प्रजा में अखण्ड विश्वास को अच्छे शासन का आधार बताया। समाचार-पत्रों को विचार व्यक्त करने की अधिक स्वतन्त्रता दी गई थी। नवम्बर, १९०४ में जैम्स्टवोस (Zemstvos) के प्रतिनिधियों को सेंट पीटर्सबर्ग में देश की आवश्यकताओं पर विचार करने के लिए एक सम्मेलन करने की अनुमति दी गई। वकीलों, विद्वानों की सभाओं, नगरपालिकाओं तथा अन्य शिक्षा और व्यावसायिक संस्थाओं ने वर्तमान

व्यवस्था की कमियों की ओर ध्यान दिलाया और उन्हें सुधारने के सुझाव भी दिए। यद्यपि कार्य-प्रणाली के विषय में थोड़ा-सा मतभेद था तो भी कुछ महत्त्वपूर्ण समस्याओं के विषय में सब लोग एकमत थे। उन्होंने धर्म, विचार-अभिव्यक्ति, सार्वजनिक सभाओं और संगठनों की स्वतन्त्रता मांगी थी। उन्होंने मांग की थी कि न्याय केवल न्यायाधीशों द्वारा ही किया जाए। किसी भी व्यक्ति को दण्ड देने से पहले उचित रूप से न्याय परिपाटी का अनुसरण किया जाए। प्रजा को स्थानीय मामलों के प्रशासन में अधिक अधिकार मिलने चाहिएँ। समूचे देश की एक संसद् बनाई जाए, जिसे कानून बनाने तथा सरकार पर नियन्त्रण रखने का अधिकार हो। एक राष्ट्रीय संविधान बनाने की भी मांग की गई थी।

ज़ार इन सब मांगों को मान कर जनता पर उपकार करने के लिए तैयार नहीं था। परिणामतः असन्तोष बढ़ता रहा। जापान से युद्ध में पराजय के कारण लोगों में और भी असन्तोष बढ़ा। हज़ारों की संख्या में सैनिक आस्ट्रिया और जर्मनी भाग गए। अन्य बहुत से सैनिकों को तलवार की नोक पर मंचूरिया भेज दिया गया। युद्ध के कारण अनेक उद्योग समाप्त हो गए, हजारों मजदूर बेकार हो गए, इससे भी जनता में असन्तोष बढ़ा और असन्तुष्ट व्यक्तियों की संख्या बढ़ गई। उपज अच्छी नहीं होती थी। अधिकारी देश के हितों को हानि पहुँचा कर धनवान हो रहे थे। वे लोग मोर्चों पर रसद भेजने की अपेक्षा लाभ कमाकर बेच देते थे। रैडक्रास सोसाइटी के धन को भी नहीं छोड़ा गया था। जनवरी, १९०५ में लम्बे घेरे के पश्चात् पोर्ट आर्थर को छोड़ देना पड़ा। क्रान्तिकारी आन्दोलन चलता रहा। मास्को और सेंट पीटर्सबर्ग के विद्यार्थियों ने 'स्वेच्छाचारिता का नाश हो' और 'युद्ध बन्द करो' के नारे लगाते हुए नगरों में जलूस निकाले। दिसम्बर, १९०४ में ज़ार ने आज्ञप्ति निकाली और उसमें जो सुधार उसने उचित समझे, उनको देश में लागू करने का उल्लेख किया था। उसने इन सुधारों को लागू करने के लिए अपने मन्त्रियों को कानून बनाने के लिए कहा था। इन सुधारों में राष्ट्रीय सभा का उल्लेख नहीं था। जनता ने अनुभव किया कि यद्यपि ज़ार कुछ साधारण सुविधाएँ देने के लिए तैयार है तो भी वह सत्ता छोड़ने के लिए तैयार नहीं और जनता को शासन में भाग देना नहीं चाहता।

२२ जनवरी, १९०५ को 'खूनी रविवार' (Bloody Sunday) वाली दुर्घटना हुई। पादरी गैपोन के नेतृत्व में जनता की बहुत बड़ी भीड़ राजमहल के निकट गई। उनकी इच्छा सम्राट् के सम्मुख अपनी कठिनाइयाँ पेश करने की थी। जनता की कठिनाइयों को सुनने की अपेक्षा उन पर कोसेक्स (Cossacks) और सेना ने आक्रमण कर दिया और बहुत संख्या में लोग मारे गए। १९०५ में वर्ष भर देश में उपद्रव होते रहे। राजकुमार मिरस्की (Mirski) की बजाए ब्युलिग्युन (Buliguin) को नियुक्त किया गया और दमन की नीति पुनः अपना ली गई। अत्याचार की घटनाओं का उत्तर हत्याओं और बम फेंकने की घटनाओं से दिया गया। अनेक स्थानों पर हड़तालें हुईं। किसानों ने जागीरदारों के महल जला दिए। सेना और

नौसेना में विद्रोह हुए। ज़ार के प्रतिक्रियावादी चाचा ग्राण्ड ड्यूक सिरगस (Sergus) ने घमण्ड से कहा कि 'प्रजा डंडा चाहती है' और इसलिए उसकी हत्या कर दी गई। रूस सर्वनाश के दरवाजे पर खड़ा हुआ था।

इन परिस्थितियों में ज़ार निकलस द्वितीय ने अगस्त, १६०५ में एक अधिकार-पत्र की घोषणा की। इस घोषणा-पत्र में कहा गया था कि स्वेच्छाचारिता की शक्ति के मौलिक सिद्धान्तों की रक्षा करते हुए उसने जनवरी, १६०६ से पहले ही एक राज्य सभा अर्थात् ड्यूमा (Duma) बुलाने का निश्चय किया है, जिसमें रूस भर की जनता के प्रतिनिधि होंगे। जनता इस घोषणा से संतुष्ट नहीं हुई क्योंकि ड्यूमा केवल एक सलाहकार सभा थी, जनता की प्रतिनिधि कानून बना सकने वाली विधान सभा नहीं थी। मजदूरों और व्यवसायी वर्ग को मतदान का अधिकार नहीं दिया गया था। ड्यूमा के अधिवेशन सार्वजनिक नहीं थे। नियन्त्रित मतदान का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि सेंट पीटर्सबर्ग की डेढ़ करोड़ जनसंख्या में से केवल ६६ हज़ार लोगों को ही मताधिकार प्राप्त था।

क्योंकि यह सुधार अपर्याप्त और भुलावे में डालने वाला माना गया अतः क्रान्तिकारी दलों ने अपना आन्दोलन जारी रखा और हड़ताल के हथियार का प्रयोग किया। रेलवे में हड़तालें की गईं और यह हड़ताल रूसी साम्राज्य भर में फैल गई। रूस के भीतर और बाहर के सारे यातायात और सम्पर्क समाप्त हो गए। यदि कोई व्यक्ति यात्रा करना चाहता तो उसे सड़क या जलमार्ग से यात्रा करनी पड़ती थी। व्यापार रुक गया। व्यापारी न माल मँगा सकते थे न भेज सकते थे। कारखानों में भी इस प्रकार की हड़तालें हुईं। अन्न की दुकानों को छोड़कर लगभग सारी दुकानें बन्द हो गई थीं। बड़े नगरों में गैस (Gas) और बिजली की कम्पनियों ने काम बन्द कर दिया था। दवाइयाँ बेचने वालों ने ज़ार द्वारा सुधार किए जाने तक दवाइयाँ बेचना भी बन्द कर दिया था। वकीलों ने भी उनका अनुसरण किया और न्यायालय भी बन्द हो गए। कोई समाचार-पत्र नहीं छप सकता था। सारे देश का जीवन स्थिर-सा प्रतीत होता था।

इन परिस्थितियों में ज़ार ने अक्टूबर, १६०५ में एक और आज्ञप्ति निकाली। उसने नागरिक स्वतन्त्रता के आधारभूत सिद्धान्तों यथा, विचार-अभिव्यक्ति, धर्म और संगठन की स्वतन्त्रता का आश्वासन दिया। मतदान का क्षेत्र बढ़ा दिया गया। उसने घोषणा की कि मौलिक रूप से ड्यूमा की अनुमति के बिना कोई कानून लागू नहीं होगा और शासन के पदाधिकारियों के कार्यों की नियमितता की जनता के प्रतिनिधि देख-भाल कर सकेंगे। पोबडनस्टसीव को पदच्युत करके काउन्ट विट को प्रधान मन्त्री बना दिया गया।

क्रान्तिकारी इन सुविधाओं से संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने सार्वजनिक मताधिकार के सिद्धान्त से चुनी गई विधान सभा द्वारा रूस का संविधान बनाने की माँग की। ज़ार ने माँग स्वीकार नहीं की और परिणामतः नवम्बर, १६०५ में हड़तालें जारी रहीं और तार और डाक बाँटने वाले कर्मचारियों ने भी इसमें सहयोग दिया।

स्थल और जल सेना में विद्रोह हुए। मास्को और अन्य स्थानों पर खूब डट कर लड़ाइयाँ हुईं। सरकार ने संविधान सभा की माँग ठुकरा दी और नई ड्यूमा (Duma) के चुनावों की आज्ञा दे दी। फिनलैण्ड को भी कुछ सुविधाएँ दी गईं और वहाँ की जनता को थोड़ा संतोष हुआ। किन्तु रूस में शान्ति नहीं थी। देश में क्रान्तिकारियों और प्रतिक्रियावादियों में एक प्रकार का गृहयुद्ध चल रहा था। अक्टूबर, १९०५ की घोषणा के होने पर भी दमननीति का अनुसरण किया जाता था। कहा जाता है कि केवल जनवरी, १९०६ में ७८ समाचार-पत्र बन्द करा दिए गए और ५८ सम्पादकों को कैद कर लिया गया। हजारों व्यक्तियों को कैद में डाल दिया गया या साइबेरिया भेज कर देशनिकाला दे दिया गया। रूस के अनेक भागों में मार्शल लॉ लगा दिया गया था।

ड्यूमा (Duma) के अधिवेशन से भी पहले ज़ार ने एक आज्ञप्ति द्वारा साम्राज्य-परिषद् (Council of the Empire) बनाई थी। यह परिषद् मुख्यतः पदाधिकारियों से बनाई गई थी और इसका कार्य द्वितीय सदन का कार्य करना था और ड्यूमा को निम्न सदन बनाया गया। ज़ार के अनुमोदनार्थ भेजने से पूर्व कानूनों का दोनों सभाओं द्वारा स्वीकार होना आवश्यक था। स्पष्ट है कि अधिवेशन से भी पहले ड्यूमा के अधिकारों को कम कर दिया गया था।

ड्यूमा के चुनाव मार्च-अप्रैल, १९०६ में हुए और 'कैडेट' (Cadet) नाम के एक दल को बहुमत प्राप्त हुआ। विट ने त्यागपत्र दे दिया और गोरमिकिन प्रधान मन्त्री बना। प्रधान मन्त्री का पहला कार्य यह था कि उसने 'मौलिक कानून' (Organic Laws) बनाए जिनमें ड्यूमा (Duma) भी संशोधन नहीं कर सकती थी।

प्रथम ड्यूमा (First Duma) (१९०६)—१० मई, १९०६ को निकलस द्वितीय ने ड्यूमा का उद्घाटन किया। इसका जीवन अल्प किन्तु संघर्षमय रहा। इसने पश्चिम की प्रणाली पर रूस में व्यापक सुधार करने की इच्छा प्रकट की थी। किन्तु जो प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ ड्यूमा के जन्म को नहीं रोक सकीं वे इसे नपुंसक बना देने के लिए भरसक प्रयत्न कर रही थीं। ड्यूमा ने सारे राजनीतिक अपराधियों के लिए सार्वजनिक क्षमादान की माँग की। "रूस राष्ट्र की प्रथम प्रतिनिधि सभा का प्रथम कार्य उन व्यक्तियों के प्रति होना चाहिए जिन्होंने औरों की स्वतन्त्रता के लिए अपनी स्वतन्त्रता का बलिदान कर दिया है।" इसके प्रयत्न करने पर केवल आंशिक क्षमादान दिया गया। ड्यूमा ने साम्राज्य परिषद् की सदस्यता में भी परिवर्तन की माँग की क्योंकि यह पूर्णतः ज़ार के अधिकार में थी। इसने यह भी माँग की कि मन्त्रिमण्डल ड्यूमा के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। मार्शल लॉ को हटाने की भी माँग की गई। यह भी माँग की गई कि सरकार, ज़ार और मठों की धरती को लम्बे पट्टे पर किसानों को दिया जाए।

प्रथम ड्यूमा केवल दो महीने चली किन्तु इसके सदस्यों ने बड़ी उच्च स्तर की विद्वत्ता दिखाई। सरकार की कमियों की खुले आम कटु आलोचना की गई।

मन्त्रियों का रुख बड़ा घमण्डी था और ड्यूमा के विवादों में काफी तेजी रहा करती थी। सारे समय ज़ार और राज्यसभा इसका विरोध करते रहे। मन्त्रियों के ड्यूमा के प्रति उत्तरदायी होने के प्रश्न पर कार्य रुक गया। जनता में बड़ी उत्तेजना फैली और देश में अव्यवस्था फैल गई। किसानों का एक उग्र दल माँग कर रहा था कि बिना क्षतिपूर्ति के जागीरदारों की धरती किसानों को दे दी जाए। २२ जुलाई, १९०६ को ज़ार ने ड्यूमा भंग करके गुत्थी सुलझाई। उसने कहा, "उसे घोर निराशा हुई है। राष्ट्र के प्रतिनिधि क्रियात्मक कानून बनाने के कार्य को छोड़कर उस क्षेत्र में फँस गए, जो उनकी योग्यता और अधिकार से बाहर था। उन्होंने शाही आज्ञा द्वारा बनाई गई स्थानीय संस्थाओं के प्रशासन में हस्तक्षेप किया तथा उन मौलिक कानूनों की कमियों पर टिप्पणी की जिन्हें केवल हमारी शाही आज्ञा ही बदल सकती है।"

द्वितीय ड्यूमा (Second Duma) (१९०७)—द्वितीय ड्यूमा के उद्घाटन के लिए ५ मार्च, १९०६ का दिन नियत हुआ। गोरमिकिन (Goremykin) के स्थान पर स्टोलेपिन (Stolypin) को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया गया। प्रथम ड्यूमा के बहुत से सदस्यों ने फ़िनलैण्ड के विब्रोग (Vibrog) नामक स्थान से एक घोषणा-पत्र प्रकाशित किया जिस पर २३० सदस्यों के हस्ताक्षर थे। उन्होंने प्रथम ड्यूमा के भंग करने के विरुद्ध विरोध किया और जनता से अपील की कि वे दलितों के प्रतिनिधित्व के लिए उनकी सहायता करें। उन्होंने यह भी अपील की कि जनता सरकार को धन और सिपाही न दे। सरकार द्वारा ड्यूमा की अनुमति के बिना लिये गए ऋणों को अवैध घोषित कर दिया गया। इस घोषणा का जनता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि लोग उपेक्षा कर गए और कुछ वे ज़ार के अत्याचार से भयभीत भी थे।

द्वितीय ड्यूमा ५ मार्च, १९०७ को बैठी किन्तु कार्य सुचारु रूप से नहीं चला। आरम्भ से ही ड्यूमा और मन्त्रिमण्डल में संघर्ष चल पड़ा और कालान्तर में यह और भी तीव्र होता गया। सरकार ने ड्यूमा के १६ सदस्यों को पकड़ लिया और उन पर क्रान्तिकारी प्रचार करने का अभियोग लगाया। सरकार के इस कार्य के प्रति घोर रोष फैला और इसे वैधानिक स्वतन्त्रता पर आक्रमण माना गया। ड्यूमा ज़ार से टक्कर लेने की तैयारी कर रही थी कि १६ जून, १९०७ को इसे भी भंग कर दिया गया। सितम्बर, १९०७ में नई ड्यूमा के चुनावों की घोषणा हुई और इसका अधिवेशन नवम्बर में नियत किया गया। सरकार ने एक घोषणा द्वारा चुनाव-सम्बन्धी कानूनों में महत्त्वपूर्ण संशोधन कर दिए। परिणामतः नई ड्यूमा के अधिकांश सदस्यों को १ लाख ३० हज़ार जमींदारों द्वारा चुना जाना था। जनता ने विरोध किया किन्तु ज़ार ने कहा कि "चुनाव-सम्बन्धी कानूनों को भंग करके नए कानून बनाने का अधिकार उसी शक्ति को है, जिसने सर्वप्रथम ये कानून बनाए।" अर्थात् ये अधिकार रूस की ऐतिहासिक शक्ति ज़ार को ही हैं। सरकार देश पर स्वेच्छाचारी नियन्त्रण बनाए रखने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ थी। सरकारी कर्मचारियों द्वारा सब प्रकार की अनियमितताएँ की गई किन्तु उन्हें कोई रोक नहीं सकता था। प्रतिक्रिया का देश में बोलबाला था।

तृतीय ड्यूमा (Third Duma) (१९०७—१४)—इन परिस्थितियों में

सितम्बर में तृतीय ड्यूमा का चुनाव हुआ और नवम्बर, १६०७ में उसका अधिवेशन हुआ। इसमें बड़े जागीरदार और प्रतिक्रियावादी भरे थे। स्पष्ट है कि इसे ज़ार की इच्छानुसार काम करना था। यद्यपि प्रतिक्रियावादियों ने इसे भी भंग करने की माँग की थी किन्तु सरकार ने यह माँग नहीं मानी। ड्यूमा को बनाए रखा गया किन्तु यह विधानसभा के रूप में नहीं अपितु सलाहकार समिति के रूप में काम करती थी। इसकी सम्मति का कोई मूल्य नहीं था। यह अवस्था १६१४ तक चलती रहीं। इस प्रकार रूस में दो दशाब्दियों तक उदार सुधारवादी प्रयोग असफल रहे। प्रतिक्रियावादी सत्ताधारी बन गये और सुधारवादियों का अपमान होता रहा।

रूस में १६१७ की क्रान्ति (Russian Revolution of 1917)—शताब्दियों से चलता हुआ ज़ारशाही का राज्य १६१७ में क्रान्तिकारियों ने उखाड़ फेंका। इस विषय में यह प्रश्न स्वाभाविक है कि वे कौन से कारण थे, जिनसे यह परिवर्तन हुआ।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि प्रथम महायुद्ध के आरम्भ होने से पहले रूस में शासन के दोषों के विरुद्ध निरन्तर आन्दोलन चलते रहे थे। देश में असंतोष की आग सुलग रही थी और वह अनेक विस्फोटों के रूप में यदाकदा भड़क उठती थी। देश की अवस्था सुधारने के लिए वैधानिक और हिंसात्मक दोनों प्रकार के तरीके काम में लाए गए किन्तु दोनों ही असफल रहे। किन्तु इन असफलताओं से रूस के देशभक्त हताश नहीं हुए। अपने उद्देश्य की सफलता में उन्हें अखण्ड विश्वास था। रूस क विद्वान् व्यक्ति की स्वतन्त्रता और पूरे राजनीतिक सुधारों में विश्वास करते थे। रूस के सुधारवादी शान्तिपूर्ण और वैधानिक तरीकों से देश की अवस्था सुधारना चाहते थे। देश में प्रतिक्रियावादी शक्तियों के प्रभाव और ज़ार की दमन नीति के कारण वे अशक्त थे। रूस का किसान धरती माँगता था। जनसंख्या में वृद्धि के कारण धरती को पानी की लालसा बढ़ती जा रही थी। समाज क्रान्तिकारी दल (Social Revolutionary Party) के अधिकांश सदस्य किसान थे। वे लोग बड़े जागीरदारों की धरती छीन कर किसानों में बाँट देने के समर्थक थे। वे लोग अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हिंसात्मक तरीके प्रयोग करने के समर्थक थे।

मज़दूर-वर्ग मार्क्स के सिद्धान्तों का अनुयायी था और उनका अपना संगठन था, जिसे 'श्रमिक समाज प्रजातन्त्र दल' (Workmen's Social Democratic Party) कहते थे। १६०३ में इस दल में अनुशासन और कार्यप्रणाली के प्रश्न पर फूट पड़ गई। इसका उग्र गुट लेनिन के नेतृत्व में मुख्य दल से अलग हो गया और इन्हें 'बोल्शेविक' कहने लगे। इस दल के शान्तिप्रिय लोगों को मेनशेविक अर्थात् अल्पसंख्यक कहा जाने लगा। बोल्शेविकों ने श्रमिकों की तानाशाही स्थापित करने पर बल दिया और वे क्रान्तिकारी और हिंसात्मक तरीके भी अपनाने से नहीं हिचकते थे। वे केवल श्रमिकों के साथी थे, मध्यवर्ग से सहयोग करने के लिए तैयार नहीं थे। मेनशेविक अपने विचारों और तरीकों में शान्तिप्रिय थे। उनका ध्येय क्रमशः प्रगति

द्वारा परिवर्त्तन लाना था। किन्तु वे ज़ार के स्वेच्छाचारी शासन को नष्ट करने के लिए अन्य दलों से भी सहयोग करने के लिए तैयार थे।

यहूदी, पोल, फिन और अन्य अल्प मत रूसीकरण की नीति से दुःखी होकर देश के शासन में परिवर्त्तन करने के लिए आन्दोलन करने लगे। वे उन सब दलों से सहयोग करने लिए तैयार थे, जो ज़ारशाही को हटाने के लिए संघर्ष कर रहे थे।

यह बात उल्लेखनीय है कि औद्योगिक क्रान्ति के साथ-साथ विचारों में भी क्रान्ति आ रही थी। ज़ार ने पश्चिम की उदार विचारधारा से रूस की जनता को अछूता रखने का प्रयत्न किया किन्तु फिर भी पश्चिमी यूरोप की विचारधारा और उदाहरणों का रूस की जनता को ज्ञान हुआ और एक क्रान्तिकारी आन्दोलन चला जिसका उद्देश्य दृढ़ता से ज़ार के प्रतिक्रियावादी शासन का अन्त कर देना था। टाल्स्टाय, तुर्गनेव और दोस्तोवस्की के उपन्यासों ने रूस के युवकों की विचारधारा में विद्रोह की भावना भर दी। देश के बुद्धिजीवी पश्चिम की प्रणाली के सुधार चाहते थे। उग्रदल वाले मार्क्स, वाकुनिन, क्रोपाटकिन के अनुयायी बन गए और समाजवाद और आतंकवाद के समर्थक थे। संविधान प्रणाली की असफलता से रूस की जनता को विश्वास हो गया कि शान्तिपूर्ण तरीकों से आवश्यक परिणाम कभी भी नहीं निकल सकेंगे।

यह सत्य है कि रूस-जापान के युद्ध ने ज़ारशाही की अयोग्यता सिद्ध कर दी थी और शेष प्रथम महायुद्ध ने समाप्त कर दिया। उत्साह के होने पर भी रूसी युद्ध में अच्छी प्रकार नहीं लड़ सके थे। १९१५ में वे अनेक लड़ाइयों में परास्त हुए। १९१६ में कुछ अवस्था सँभली थी किन्तु पुनः विगड़ गई। ज़ारीना, जो रासपुटिन के प्रभाव में थी, से जनता घृणा करती थी। चारों ओर बेईमानी और भ्रष्टाचार का बोलबाला था। यह अफवाह थी कि ज़ार जर्मनी से अकेले ही सन्धि करने के पक्ष में है। ज़ारीना का ज़ार पर पूर्ण नियन्त्रण था और वह भी शान्ति की इच्छुक थी। सेना के अधिकारी लोग शिकायत करते थे कि शाही परिवार की गतिविधि से युद्ध का कार्य ठीक और व्यवस्थित रूप से नहीं चल पा रहा है। रासपुटिन की हत्या कर दी गई किन्तु इसके पश्चात् भी स्थिति नहीं सँभली थी।

ड्यूमा के संविधान के समर्थक प्रजातन्त्रवादी और अक्टूबर क्रान्ति के समर्थक सदस्य उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल बनाना चाहते थे। परिणामतः ड्यूमा भंग कर दी गई और इसके सदस्यों को वन्दी वना लिया गया या वापिस भेज दिया गया। स्थानीय जैम्स्टवोस के एक सम्मेलन में ड्यूमा के प्रस्तावों का समर्थन किया गया तो उन्हें भी भंग कर दिया गया। युद्ध में विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से रूस के देशभक्तों ने सुधारों की माँग की किन्तु ज़ार ने इनकी भी नहीं सुनी।

१९१६-१७ की शरद् ऋतु में जनता ने शिकायत की कि सरकार का युद्ध में मन नहीं था। विजित जातियाँ अशान्त हो रही थीं। मध्यमवर्ग भी शिकायत करने लगा था। ग्रामों में किसानों ने उपद्रव मचा दिया और नगरों में मजदूरों ने

हड़तालें की थीं। देश में अन्न की कमी थी और दरबारी दावतें उड़ाया करते थे। जनता भूखी फिरा करती थी। मार्च १९१७ में पेट्रोग्राड के मजदूरों ने हड़ताल कर

लेनिन

दी और लोगों ने रोटी के लिए विद्रोह कर दिया था। सैनिकों ने जनता पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया और जनता के साथ मिल गए। एक 'सोवियट' अर्थात् मजदूरों और सैनिकों की एक सभा बनाई गई। ड्यूमा ने इसके आदेश मानने से इन्कार कर दिया और इसके अध्यक्ष ने ज़ार को एक तार भेजा। उन्होंने सुधारवादियों का नया मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए प्रार्थना की। १५ मार्च, १९१७ को ड्यूमा का एक प्रतिनिधि-मण्डल ज़ार से मिला और उसे समझाया कि उसे राजत्याग कर ही देना चाहिए। निकलस द्वितीय ने अपने भाई ग्राण्ड ड्यूक ऑफ माइकेल के पक्ष में राज्य त्याग दिया। किन्तु जनता शाही परिवार के किसी भी सदस्य को अपना राज मानने के लिए तैयार नहीं थी। माइकेल ने राजसिंहासन लेने से इन्कार कर दिया। देश में एक अस्थायी सरकार बना दी गई। सदस्यता और विचारों की दृष्टि से यह पूर्णतः मध्यमवर्गीय सरकार थी। इसका नेतृत्व मेलिनकोव जैसे व्यक्ति कर रहे थे। देश में अभिव्यक्ति, समाचार-पत्रों, धर्म और संगठन इत्यादि के अनेक सुधार किए

गए। देश में स्थायी संविधान बनाने के लिए संविधान सभा बनाई गई। युद्ध को सफल बनाने के लिए प्रयत्न किए गए। देश की जनता इन सुधारों से संतुष्ट नहीं हुई क्योंकि उसकी आवश्यकता रोटी, धरती और शान्ति की थी। परिणामतः सुधारवादियों को उखाड़ दिया गया और करैन्सकी के नेतृत्व में मेनशेविक्स सत्ता में आए। लेनिन के नेतृत्व में नवम्बर १९१७ में बोल्शेविक्स ने मेनशेविक्स को उखाड़ दिया। १९२४ में मृत्यु के समय तक लेनिन सत्तारूढ़ रहा। राज्य के अध्यक्ष होने के काल में उसने ब्रैस्ट लिटोवस्क की जर्मनी से सन्धि की और अपने देश में शान्ति स्थापित की थी। प्रतिक्रियावादियों और क्रान्ति के विरुद्ध उपद्रव करने वालों को कठोरता से कुचल दिया गया। रूस में बोल्शेविक शासन को इंग्लैण्ड, फ्रांस और जापान ने मिल कर उखाड़ फैंकने का प्रयत्न किया किन्तु असफल रहे। कालान्तर में रूस की जनता ने बोल्शेविक शासन को स्वीकार कर लिया और वह आज तक चल रहा है।

Suggested Readings

Beazley : *Russia from the Varangians to the Bolsheviks.*
Blackwell, A. S. : *The Little Grandmother of the Russian Revolution.*
Carr, E. H. : *The Bolshevik Revolution (1917-1923), 1953*
Korff. S. A. : *Autocracy and Revolution in Russia.*
Mazour, A. G. : *The First Russian Revolution (1825), 1937.*
Olgin : *Soul of the Russian Revolution.*
Rose : *Development of European Nations.*
Skrine : *Expansion of Russia.*
Wallace : *Russia.*
Cambridge Modern History, Vol, XII.

अध्याय २५

पूर्व का प्रश्न १८७१ से आगे

(The Eastern Question After 1871)

बल्गारिया पर अत्याचार (Bulgarian Atrocities)—बलकान के ईसाइयों में घोर असंतोष और बेचैनी थी। बलकान में ज़ोरदार स्लाव समर्थक आन्दोलन चल रहा था और इसे रूस का प्रोत्साहन मिल रहा था। आस्ट्रिया-हंगरी भी ऐजियन सागर की ओर प्रहार करना चाहता था। रूस और आस्ट्रिया में संघर्ष अनिवार्य हो गया था। सुलतान ने अपनी ईसाई प्रजा के हित के लिए सुधार करने की प्रतिज्ञा पूरी नहीं की थी। तुर्कों का ईसाई प्रजा पर अत्याचार बढ़ गया था। परिणामत: १८७५ में बोसनिया और हर्ज़ीगोविना की जनता ने विद्रोह कर दिया था। सर्बिया और मोन्टीनीग्रो की जनता ने उनकी सहायता की थी। आन्दोलन फैलने लगा और जनसाधारण के युद्ध का रूप धारण करने लगा था। संघर्ष को स्थानीय बनाने के लिए यूरोपीय शक्तियों ने सुलतान को 'ऐण्ड्रेस्से पत्र' (Andrassy Note) के नाम से प्रसिद्ध विज्ञप्ति भेजी जिसमें बलकान में तुर्की के युद्ध की निन्दा की गई थी और उसकी कमियों का उल्लेख था। सुलतान ने सुधार करने की प्रतिज्ञा की। किन्तु बलकान के विद्रोही ईसाइयों ने सुलतान की प्रतिज्ञाओं को कोई महत्त्व नहीं दिया और इन प्रतिज्ञाओं की पूर्ति के लिए प्रत्यक्ष आश्वासन की माँग की। इसी अवसर पर बल्गारिया की जनता ने भी तुर्की के विरुद्ध आन्दोलन कर दिया। परिस्थिति गम्भीर हो गई और यूरोपीय शक्तियों ने 'बर्लिन स्मृति पत्र' (Berlin Memorandum) के नाम से प्रसिद्ध एक पत्र सुलतान को भेजा। सुलतान को कुछ क्रियात्मक सुधार करने का आदेश दिया गया था और अवज्ञा की स्थिति में उसे सशस्त्र हस्तक्षेप की धमकी दी गई थी। सुलतान ने ब्रिटेन के रुख के कारण यूरोपीय शक्तियों के विरोध की परवाह नहीं की। तुर्कों ने बल्गारिया के विद्रोह का सार्वजनिक हत्याकांड करके दमन करना चाहा। जब तुर्कों द्वारा बल्गारिया की जनता पर किए गए अत्याचारों की सूचना 'बारिंग रिपोर्ट' द्वारा इंग्लैण्ड पहुँची तो इंग्लैंड का जनमत तुर्की के विरुद्ध हो गया। ग्लैडस्टोन (Gladstone) के भाषणों ने उनकी सहानुभूति को और भी बढ़ावा दिया। ग्लैडस्टोन ने तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमन्त्री डिज़रेली (Disraeli) को बलकान में हस्तक्षेप करके तुर्की को बोरिये-बिस्तर सहित उस प्रान्त से निकाल भगाने की अपील की जिसे उन्होंने उजाड़कर जनहीन कर दिया था। डिज़रेली ने कार्यवाही करने से इन्कार कर दिया। वह इस सारे मामले को 'कहवाखाने की गर्मी' समझता था। क्रुटवैल (Crutwell) कहता है "किसी भी अन्य मामले

पर मानव-स्मृति में इंग्लैंड का जनमत बुरी तरह विवाद-ग्रस्त नहीं हुआ तथा विदेश-नीति की इतनी कटु आलोचना कभी नहीं हुई थी।" यद्यपि ब्रिटेन ने बलकान के पीड़ित ईसाइयों की ओर से हस्तक्षेप नहीं किया तो भी रूस उनकी सहायता करने को आगे बढ़ा। वह अपने सहधर्मियों की हत्या होते नहीं देख सकता था। उसने १८७७ में तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। सर्बिया, मोण्टीनीग्रो, रूमानिया और बलगारिया भी उसकी सहायता कर रहे थे। प्लैवना के स्थान पर तुर्कों ने उस्मान पाशा के नेतृत्व में कड़ा मुकाबला किया और बड़ी वीरता दिखाई। किन्तु प्लैवना के पतन के पश्चात् तुर्की का प्रतिरोध समाप्त हो गया और रूस एड्रियानोपल पर अधिकार कर के कुस्तुनतुनिया की ओर बढ़ा। तुर्की ने आत्मसमर्पण कर दिया और १८७८ में सान स्टिफैनो की सन्धि पर हस्ताक्षर किए।

सान स्टिफेनो की सन्धि (१८७८) (Treaty of San Stefano, 1878)—सान स्टिफैनो की सन्धि के द्वारा सुलतान ने सर्बिया, मोन्टीनीग्रो और रूमानिया की स्वतन्त्रता को मान्यता दी तथा इन्हें और प्रदेश भी दिया। बल्गारिया का एक अन्य करद राज्य बनाया गया जिसकी सीमाएँ डेन्यूब, कालासागर, ऐजियन (Aegean) सागर और अल्बानिया को छूती थीं। ईसाइयों के हित में हर्जीगोविना और बोसनिया में आमूल-चूल सुधार किए गए। बॉसफोरस और डारडिनिलेस की खाड़ियों को शान्तिपूर्ण व्यापारिक यातायात के लिए सर्वदा के लिए खोल दिया गया। डेन्यूब के तट के सारे तुर्की दुर्गों को नष्ट कर दिया गया। रूस को आर्मीनिया का एक भाग और डोब्रूजा के समुद्री तट की एक पट्टी दे दी गई, जिसे वह बेसेराबिया से बदलना चाहता था। उसे अर्डाहान, कारस, बाटुम और बयाजिड भी प्राप्त हुए। उसे क्षति-पूर्ति के रूप में विशाल धनराशि भी मिलनी थी। सुलतान ने आर्मीनिया में भी सुधार करने थे।

जैसी आशा थी इस सन्धि का ब्रिटेन और आस्ट्रिया-हंगरी ने विरोध किया। आस्ट्रिया-हंगरी ऐजियन (Aegean) सागर तक अपना प्रसार करके बलकान में शक्तिशाली स्थिति प्राप्त करना चाहता था। इसी प्रकार डिज़रेली भी बलकान में रूस का प्रभाव रोकना चाहता था। उसकी धारणा थी कि अन्धमहासागर के बीच से जाने वाले समुद्री मार्ग की सुरक्षा के लिए शक्तिशाली तुर्की की आवश्यकता है। इन परिस्थितियों में ब्रिटेन और आस्ट्रिया-हंगरी में पत्र-व्यवहार हुआ और दोनों इस बात पर सहमत हो गए कि रूस के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा लगाया जाए। मैदान तैयार करके डिज़रेली ने रूस से माँग की कि क्योंकि सान स्टिफैनो की सन्धि से १८५६ की पेरिस सन्धि की व्यवस्था भंग होती है, इसलिए वह इस सन्धि को यूरोपीय कूटनीतिज्ञों के सम्मेलन के सामने विचारार्थ रखे। आरम्भ में रूस इसके लिए नहीं माना तो डिज़रेली ने भारतीय सेना को माल्टा पहुँचने का आदेश दिया। ब्रिटिश बेड़े को भी तैयार रहने की आज्ञा दे दी गई। चारों ओर युद्ध की चर्चा होने लगी। सम्राज्ञी विक्टोरिया डिज़रेली की चाल को नहीं समझ सकीं, क्योंकि डिज़रेली युद्ध के प्रति बड़ा गम्भीर था।

जब रूस को युद्ध प्रत्यक्ष दीख पड़ा तो उसने आस्ट्रिया और ब्रिटेन का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। बिस्मार्क की अध्यक्षता में, जो उस समय 'एक

बर्लिन कांग्रेस
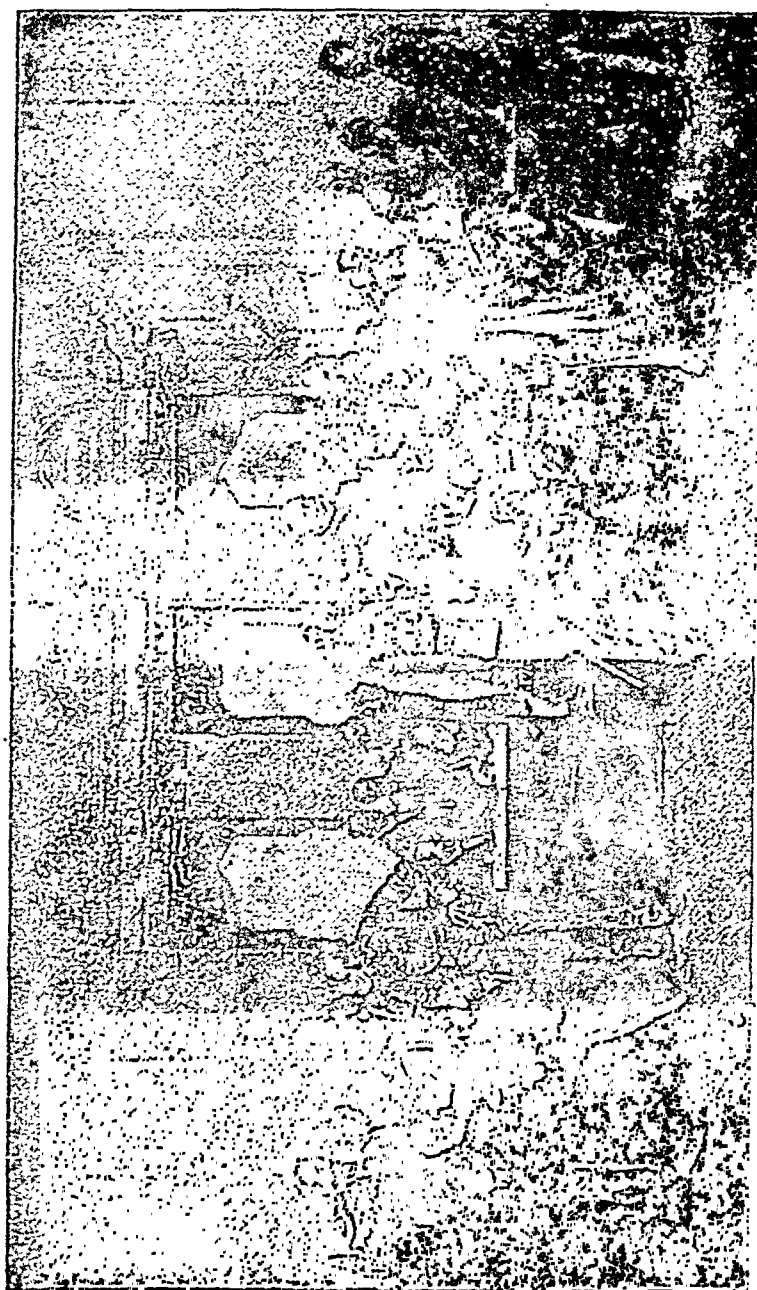
ईमानदार दलाल' का कार्य कर रहा था, बर्लिन में सम्मेलन हुआ। डिज़रेली और सॉलिसबरी ब्रिटेन का और गोर्टजाकोफ रूस का प्रतिनिधित्व कर रहे थे,

वाडिंगटन फ्रांस का और एण्ड्रास्से आस्ट्रिया का तथा इटली का प्रतिनिधित्व कोर्टी ने किया था।

बर्लिन समझौते की शर्तें (१८७८) (Terms of Berlin Settlement)—(१) प्रारम्भिक समझौते के अनुसार विशाल बल्गारिया को दो भागों में विभाजित कर दिया गया अर्थात् पूर्वी रूमीलिया (Roumelia) और बल्गारिया। पूर्वी रूमीलिया तुर्कों को लौटा दिया गया। रूस ने बयाजिड छोड़ दिया किन्तु कार्स (Kars), अर्डाहान (Ardahan) और बाटुम (Batoum) रख लिये। ब्रिटेन को साइप्रस (Cyprus) मिला। बल्गारिया को २५ लाख जनसंख्या और ३० हज़ार वर्गमील क्षेत्र की हानि हुई। उसने ऐजियन सागर में जाने का मार्ग भी खो दिया। निर्णय हुआ कि रूस बल्गारिया पर ६ महीने शासन करे और उसके पश्चात् यह सुलतान के आधिपत्य में करद स्वशासित राज्य बना दिया जाए। इसके राजा को जनता चुनेगी, सुलतान उसकी अनुमति देगा और शक्तियाँ उसे स्वीकार करेंगी। यूरोप में शासन करने वाले राजवंशों में से कोई भी इसका राजा नहीं चुना जाना था।

(२) साइप्रस में ब्रिटेन को 'शस्त्रागार' मिल गया जहाँ से वह रूस के एशिया माइनर में प्रसार को बिना कठिनाई के रोक सकता था और स्वेज़ नहर की रक्षा भी कर सकता था। ब्रिटेन ने आर्मीनिया में सुधार कराने का भार अपने ऊपर लिया और तुर्की ने इन सुधारों को कार्य रूप देने की प्रतिज्ञा की।

(३) आस्ट्रिया को बोसनिया और हर्जीगोविना पर अधिकार तथा शासन करने का अधिकार मिला किन्तु दोनों प्रदेश नाममात्र को तुर्की के आधिपत्य में छोड़ दिए गए। आस्ट्रिया को नोवी-बाजार के सन्जक में सेना की टुकड़ी रखने की भी आज्ञा दी गई थी। १९०८ में आस्ट्रिया ने बोसनिया और हर्जीगोविना को अपने राज्य में मिला लिया।

(४) सर्बिया की स्वतन्त्रता को मान्यता दी गई। उसे निश (Nish) तथा थोड़ा-सा प्रदेश बल्गारिया का भी दिया गया। इन प्रदेशों के प्राप्त करने से उसका क्षेत्रफल एक चौथाई और बढ़ गया। आस्ट्रिया को नोवी-बाजार का सन्जक का प्रदेश मिल जाने से उसे बड़ा दुःख हुआ।

(५) मोन्टीनीग्रो (Montenegro) स्वतन्त्र हो चुका किन्तु औपचारिक रूप से उसकी स्वतन्त्रता को मान्यता दी गई। उसे एड्रियाटिक (Adriatic) के तट पर एक बन्दरगाह और दे दी गई।

(६) रूमानिया को स्वतन्त्र मान लिया गया, किन्तु विवश होकर उसे डोब्रूजा (Dobrudja) के बदले में दक्षिणी बेसेरेबिया का प्रदेश रूस को देना पड़ा। डोब्रूजा के पास का बल्गारिया का प्रदेश भी दिया गया। उसने अपनी यहूदी प्रजा को समान राजनैतिक अधिकार देने की प्रतिज्ञा की थी।

(७) ग्रीस (Greece) ने क्रीट (Crete), इपिरस (Epirus), थिस्साले और अल्बानिया की माँग की किन्तु उसे कुछ नहीं मिला। सम्मेलन ने सुलतान को परामर्श

दिया था कि वह ग्रीस के उत्तरी सीमान्त में कुछ वृद्धि करके उसे ठीक कर दे किन्तु सुलतान ने इसकी उपेक्षा कर दी।

(८) तुर्की ने अपने सारे प्रजाजनों को धार्मिक स्वतन्त्रता, प्रदान की और उसने क्रीट, इपिरस, थिस्साले और मेरिडोनिया और अल्बानिया में सुधार करने का वचन दिया।

सन्धि की आलोचना (Criticism of the Settlement)—आलोचकों का मत है कि बर्लिन सम्मेलन रजिस्ट्रेशन अदालत से कुछ थोड़ा अच्छा था। बर्लिन सम्मेलन से पहले जो निर्णय हो चुके थे, इस सम्मेलन में उन्हें लेखबद्ध किया गया था। बर्लिन सम्मेलन ने सान स्टिफैनो की सन्धि द्वारा किए समझौते को रद्द करा दिया था।

सान स्टिफैनो की सन्धि के द्वारा रूस ने जो सुविधाएँ प्राप्त की थीं वे सारी छीन ली गईं और बलकान में उसका प्रभाव निर्बल हो गया। जर्मनी से षड्यन्त्र करके ब्रिटेन और आस्ट्रिया ने बड़े बलिदान देकर जीते गए युद्ध के सारे लाभों को रूस से छीन लिया।

यह सोचा गया कि विशाल बल्गारिया रूस के प्रभाव में रहेगा किन्तु पूर्वी रूमेलिया (Rumelia) और मेसिडोनिया (Macedonia) को पृथक् कर देने से तुर्की एड्रियानोपल (Adrianople) और कुस्तुनतुनिया के मार्गों की सरलता से रक्षा कर सकेगा।

रूमानिया रूस की कृतघ्नता पर बड़ा रुष्ट था इसलिए वह आस्ट्रिया और त्रिमुखी सन्धि पर अधिक विश्वास करने तथा निर्भर रहने लगा। सर्बिया को रूस से शिकायत थी कि रूस ने स्लाव-जाति के उत्थान के कार्य में उसकी सहायता नहीं की थी। इसी कारण उसने १८८१ में आस्ट्रिया से एक गुप्त सन्धि की।

बेकन्सफील्ड ने यूरोप में रूस की प्रगति पर बड़ा कड़ा प्रतिबन्ध लगा दिया था, किन्तु बर्लिन सन्धि की एक त्रुटि यह थी कि रूस की गतिविधि बॉसफोरस से हटकर भारतवर्ष और अफगानिस्तान की सीमाओं पर बढ़ गई। लार्ड सॉलिसबरी का विचार था कि बर्लिन सम्मेलन में ब्रिटेन ने गलत घोड़े पर दाव लगाया था।

बर्लिन सम्मेलन में बिस्मार्क के व्यवहार से रूस जर्मनी से वैमनस्य करने लगा। परिणामतः रूस में जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की माँग होने लगी। रूस में बिस्मार्क की कटु आलोचना ही १८७९ में बिस्मार्क द्वारा आस्ट्रिया और जर्मनी सन्धि का एक कारण थी। इस सन्धि के पश्चात् सन्धियों का अनवरत चक्र चलने लगा जिसका अन्तिम परिणाम यूरोप का दो विरोधी सशस्त्र गुटों में बँट जाना था।

स्लाव समर्थक आन्दोलन को बड़ा धक्का पहुँचा। आस्ट्रिया का बोसनिया, हर्जेगोविना और नोवी-बाजार पर अधिकार, सर्बिया, बोसनिया और मोन्टीनीग्रो के संगठन में बाधक था। आस्ट्रिया बलकान में प्रहरी का कार्य करने लगा और इस कारण वह बलकान की राजनीति पर छाया रहा।

यद्यपि बीकन्सफील्ड (Beaconsfield) ने घोषणा की थी कि उसने सम्मान सहित शान्ति की स्थापना की थी किन्तु यह उल्लेखनीय तथ्य है कि उसने यूरोप में न शान्ति की स्थापना की और न ब्रिटेन को सम्मान ही दिलाया। वास्तव में साइप्रस यूरोप के लिए बिल्कुल सैनिक महत्त्व का सिद्ध नहीं हुआ और इसलिए इसकी उन्नति नहीं की गई। १८८६ में रूस ने बाटूम (Batoum) की मोर्चेबन्दी की थी। १८६६ में आर्मीनिया की जनता की सामूहिक हत्याएँ की गईं। ब्रिटेन ने कुछ भी नहीं किया यद्यपि तुर्की ने उसे सुधार करने का वचन दिया हुआ था। १८८५ में पूर्वी रूमेलिया और बल्गारिया संगठित हो गए क्योंकि दोनों की जनता ने एक ही राजकुमार को अपना शासक चुना था।

तुर्की का मेसीडोनिया पर शासन व्यर्थ सिद्ध हुआ। इसके कारण सर्वदा उपद्रव होते रहते थे। १८६७ में ग्रीस और तुर्की में युद्ध हुआ।

रूमानिया ने वचन देने पर भी यहूदियों को समान राजनैतिक अधिकार नहीं दिए।

लार्ड सॉलिसबरी ने बर्लिन सन्धि पर अपना मत प्रकट करते हुए कहा था, "बल्गारिया अब डेन्यूब नदी की सीमा में बँधकर रह गया है, परिणामतः उसके पास से केवल बन्दरगाह ही नहीं छिन गई बल्कि अब वह समुद्र से लगभग १०० मील दूर हो गया है। इयुक्सेन (Euxine) नदी पर बोरगास (Bourgas) की महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह तुर्की की सरकार को लौटा दी गई थी और बल्गारिया के पास उसके समुद्रतट का आधा तट रह गया। उसके पास वर्ना की छोटी-सी बन्दरगाह के अतिरिक्त कोई बन्दरगाह नहीं थी और इसे व्यापारिक प्रयोग के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार के प्रयोग में नहीं लाया जा सकता था। बोरगास तथा इयुक्सेन की समुद्री पट्टी तुर्की के अधिकार में सौंप देने के कारण तथा बाटूम को केवल व्यापारिक सहायता देने के कारण कालासागर की स्वतन्त्रता का भय मिट गया। रूस की राजनैतिक शक्ति के केन्द्रों को बलकान द्वीपसमूह से पीछे धकेल दिया गया तथा सुलतान के राज्य की सुरक्षा करने योग्य सीमा निर्धारित कर दी गई।"

ब्रिटिश सरकार का यह कहना था कि यदि सान स्टिफैनो की सन्धि द्वारा रूस को एक नया आश्रित राज्य प्राप्त हुआ था तो बर्लिन सन्धि के द्वारा ब्रिटेन ने उसकी योजना को नष्ट कर दिया तथा बलकान के दक्षिण की ओर के देशों पर तुर्की का सैनिक नियन्त्रण पुनः स्थापित करा दिया था। फ़ाईफ़ (Fyffe) के मतानुसार, "यदि इतिहास ने पूर्व के प्रश्न को हल करने में कोई शिक्षा दी है तो वह यह थी कि जो देश तुर्की के आधिपत्य से निकल चुके थे उन पर उसका सैनिक नियन्त्रण रखने का प्रयत्न व्यर्थ था तथा रूस के प्रभव को रोकने के लिए सबसे अच्छा प्रतिरोध देशों को विभाजित करने में नहीं अपितु तुर्की के आधिपत्य से छुटकारा पाए हुए देशों को संगठित तथा शक्तिशाली बनाने में था। लार्ड बेकन्सफील्ड के विचार, धारणाएँ तथा अनुमान जहाँ तक उनका पूर्वी यूरोप से सम्बन्ध है, भविष्य की घटनाओं ने असत्य सिद्ध कर दिए हैं। जो ग्रीस, सर्बिया और रूमानिया में हुआ था वही

अब बल्गारिया में हो गया है। १८७८ में ब्रिटेन ने अनुभव द्वारा प्राप्त शिक्षा की अवहेलना कर दी थी किन्तु जिन्होंने भी इसके सन्देश को सुना उन्होंने इसके औचित्य को माना। बलकान में तुर्की दुर्ग नाम की कोई वस्तु विद्यमान नहीं थी, बोरगास पर तुर्की का एथेन्स और बेलग्रेड से अधिक अधिकार नहीं था। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता, ग्रीस, सर्बिया और रूमानिया में एक जाग्रत शक्ति थी और इसने बल्गारिया में भी अपनी शक्ति सिद्ध कर दी थी। रूस से इसकी शस्त्र शक्ति द्वारा मुक्त कराई गई जनता पर अपना प्रभाव डालने के प्रयत्नों को असम्भावित दृढ़ता से असफल कर दिया गया था। जिस प्रकार रूमानिया के दो भागों ने अपना संगठन कर लिया उसी प्रकार बल्गारिया ने भी अपना संगठन कर दिखाया।

यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि बर्लिन सन्धि का मुख्य प्रभाव तुर्की के साम्राज्य के ध्वंसावशेषों पर उगते हुए नए राष्ट्रों में पाया जाता है। स्लाव जातिवाद ने बलकान की समस्या हल नहीं की किन्तु राष्ट्रवाद ने बर्लिन सन्धि के महत्त्वपूर्ण संशोधन के रूप में इस समस्या को अधिक सफलता से हल किया था।

"दक्षिण-पश्चिमी यूरोप के पिछले पाँच वर्ष का इतिहास मुख्यतः स्लाव जाति का ग्रीकों और तुर्कों से पृथक्करण का इतिहास है और अब यह इतिहास-क्रम स्लाव जाति के विभिन्न अंगों का पारस्परिक विच्छेद का इतिहास है।" १८८१ में रूमानिया एक राजशाही प्रणाली का राज्य बन गया और १८८२ में सर्बिया। १९०८ में फर्डिनैण्ड को बल्गारिया का ज़ार घोषित कर दिया गया। १९१० में निकोलस मोन्टीनीग्रो का प्रथम राजा बना। इस घटनाचक्र ने ग्लैडस्टोन के सिद्धान्त की पुष्टि कर दी कि, "यदि तुम रूस और तुर्की के बीच एक दीवार खड़ी करना चाहते हो तो स्वतन्त्र जातियों के सीने से बढ़ कर अन्य दृढ़ प्रतिरोध कोई वस्तु नहीं हो सकती।"

थामसन का विचार है, "बर्लिन सम्मेलन का आश्चर्यजनक परिणाम यह हुआ कि इससे प्रत्येक शक्ति असंतुष्ट और अधिक चिन्तित हो गई। यह रूस की प्रतिष्ठा की पराजय थी। १८७८ में डारडिनिलेस के मार्ग से अपना जहाजी बेड़ा भेजकर ब्रिटेन ने तुर्की में अपनी दिलचस्पी की पुष्टि कर दी थी और अब तुर्की के नष्टप्राय साम्राज्य के गिरते ही निकट पूर्व में रूस और ब्रिटेन की सीधी टक्कर हो गई थी। यदि आस्ट्रिया-हंगरी का उद्देश्य तुर्की की शक्ति को बनाए रखना था तो वह भी बुरी तरह असफल हुआ था। डिजरेली भी साइप्रस पर अधिकार करने तथा 'सम्मान सहित' शान्ति स्थापना की डींग मारने पर भी असफल ही रहा। ब्रिटेन ने वास्तव में अन्धमहासागर में तथा समुद्री खाड़ियों में अपना जहाज़ी बेड़ा शक्तिशाली बनाकर अपनी महत्ता प्रकट कर दी थी। फ्रांस ने भी अपनी शक्ति का पुनर्गठन करने तथा भावी औपनिवेशिक नीति के लिए कूटनीति के नए द्वार खोल दिए थे। यदि बलकान देशों की राष्ट्रीयता की भावना और उनकी विवशता की विरासत यूरोप भर के राष्ट्रों को निरन्तर युद्ध में ग्रस्त रखती रही होती तो प्रादेशिक लाभ, यथा रूस द्वारा बेसेरेबिया प्राप्त करना अथवा आस्ट्रिया द्वारा बोसनिया और हर्ज़ीगोविना की प्राप्ति, विशेष लाभप्रद नहीं हो सकते थे। इन कुछ वर्षों की घटनाओं से अन्तर्राष्ट्रीय

तनाव कम नहीं हुआ अपितु बढ़ गया था। शक्ति का नवीन संतुलन अब जर्मनी पर केन्द्रित हो गया था और इसके कारण एक युग तक शान्ति की स्थापना हो जाने की आशा थी। किन्तु दुर्भाग्य से निरन्तर होने वाली युद्ध की आशंकाओं और झगड़ों के कारण यह शान्ति अत्यन्त अस्थिर और कठिनता से स्थिर हो सकी थी। इसके पश्चात् अगला साधारण यूरोपीय सम्मेलन चालीस वर्ष पश्चात् वर्लिन में नहीं अपितु पेरिस में हुआ—और इस सम्मेलन में ड्रीकेसरबण्ड (Dreikaiserbund) का कोई प्रतिनिधि नहीं था।" (Europe Since Napoleon, pp. 432-3)

यह उल्लेखनीय है कि वर्लिन सम्मेलन में डिज़रेली की नीति के परिणामस्वरूप १६१२ और १६१३ के बलकान युद्धों तथा प्रथम विश्वयुद्ध के कारणों का जन्म हुआ। डिज़रेली ने घमण्ड से कहा था, "यूरोप में अब फिर एक तुर्की है।" उसका दावा था कि उसने तुर्की को छिन्न-भिन्न होने से बचा लिया था। किन्तु कहा जाता है कि यद्यपि सान स्टिफ़नो (San Stefano) की सन्धि द्वारा खोए हुए कुछ प्रदेशों और जनसंख्या को तुर्की ने पुनः प्राप्त कर लिया था तथापि वह बुरी तरह अस्त-व्यस्त हो गया था और उसका पुनर्गठन असम्भव हो गया था। डिज़रेली केवल इतना ही कर पाया कि उसने तुर्की के पूर्णतः लुप्त होने के समय को बढ़ा दिया। बलगारिया को काटने का मूल्य १६१३ के युद्ध में चुकाना पड़ा और मेसिडोनिया को देने का मूल्य १६१२ के बलकान युद्ध के रूप में देना पड़ा था।

यह स्मरणीय है कि डिज़रेली ने रूस को बलकान क्षेत्र से निकाल कर आस्ट्रिया-हंगरी को वहाँ प्रविष्ट करा दिया। आस्ट्रिया-हंगरी को बोसनिया, हर्जीगोविना और नोवी-बाजार के सन्जक पर अधिकार करके उस पर शासन करने का अधिकार दे दिया गया था। परिणामस्वरूप बलकान में आस्ट्रिया-हंगरी की लालसाएँ बढ़ने लगीं और वह एड्रियाटिक और ऐजियन सागर पर अधिकार जमाने के स्वप्न देखने लगा था। एक पक्ष में रूस और सर्बिया और दूसरे पक्ष में आस्ट्रिया-हंगरी, इन दोनों में घोर प्रतिद्वन्द्विता होने लगी। यह संघर्ष बलकान की शान्ति के हित में नहीं था और इस कारण प्रथम विश्वयुद्ध का भी एक कारण था।

तुर्की भी इस समझौते से सन्तुष्ट नहीं था। उसने कहा कि स्वयं को उसका मित्र बताने वाले लुटेरे बन चुके हैं। सर्बिया, मोन्टीनीग्रो (Montenegro) रूमानिया और बलगारिया को स्वतन्त्र घोषित कर देना उसे रुचिकर नहीं लगा था। उसने बोसनिया, हर्जीगोविना और सन्जक (Sanjak) का आस्ट्रिया को दिए जाने का भी विरोध किया। कहा गया था कि "डिज़रेली की 'सम्मान सहित शान्ति' की घोषणा को 'साइप्रस द्वीप और रूस की लालसाओं पर ब्रिटेन के हित में रोक लगाने की शान्ति' पढ़ा जाना चाहिए था।"

यह बात निर्विवाद है कि बर्लिन के समझौते से पूर्व का प्रश्न हल नहीं हुआ। बलकान में इतने विरोधी स्वार्थों की समस्या थी कि इन सबके लिए सन्तोषजनक हल ढूँढना असम्भव था। वास्तव में जब १६१४ का विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ तो उस समय भी पूर्वीय प्रश्न हल नहीं हो पाया था।

१८७८ से १६०८ तक पूर्वीय प्रश्न (Eastern Question from 1878 to 1908)—१८७८ से १६०८ की अवधि में बलकान में हुई घटनाओं का उल्लेख भी यहां आवश्यक है। इन घटनाओं से सम्बन्धित देश थे बल्गारिया, आर्मीनिया, ग्रीस, रूमानिया, मोन्टीनीग्रो, सर्विया, जर्मनी और तुर्की।

बल्गारिया (Bulgaria)—बल्गारिया समस्या बर्लिन सम्मेलन की पैदा की हुई थी। सान स्टिफैनो (San Stefano) की सन्धि से विशाल बल्गारिया बनाया गया था किन्तु इससे पूर्वी रूमेलिया (Roumelia) को पृथक् करके भावी संघर्ष का बीजारोपण कर दिया गया।

१८७६ में राजकुमार बैटनवर्ग को बल्गारिया का राजा चुना गया और उसने इस पद को १८८६ तक संभाला। उसे एक बुद्धिमान् शासक, सिद्ध योद्धा और सब प्रकार से योग्य व्यक्ति बताया जाता है। राज्यारोहण के समय उसकी आयु २१ वर्ष की थी। वह रूस का समर्थक था और उसने रूस-टर्की युद्ध में रूस की ओर से युद्ध किया था। उसे ज़ार ने चुना था जो उसका विवाह सम्बन्ध के कारण चाचा लगता था। उससे एक रूसी सेनापति की वर्दी पहन कर संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ ग्रहण की थी। ज़ार ने बल्गारिया के शिष्टमण्डल से कहा था, "आप लोग अपना राजा मेरे हाथों से लीजिए और उसे उसी प्रकार प्रेम कीजिए जैसा कि मैं उसे प्रेम करता हूँ।"

यह सत्य है कि राजकुमार एलेग्जेण्डर रूस के प्रति मित्र भाव रखता था किन्तु जब रूस ने बल्गारिया में अत्यधिक हस्तक्षेप करना आरम्भ करके उसे एक रूसी प्रान्त बना दिया तो झगड़ा होने लगा। एलेग्जेण्डर द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् एलेग्जेण्डर तृतीय के १८८१ में राज्यारोहण के पश्चात् परिस्थिति और भी बिगड़ गई। गृह, युद्ध और न्याय विभागों में रूसी सेनाध्यक्षों को नियुक्त कर दिया गया। राजकुमार यह नहीं सुनना चाहता था कि रूसी अधिकारी अपने आदेश उसकी अपेक्षा रूस से प्राप्त करते हैं। राजकुमार द्वारा रूसी हस्तक्षेप की शिकायत करने के कारण रूसी उससे घृणा करने लगे। यह तनाव १८८५ तक चलता रहा और स्थिति अत्यन्त विस्फोटक हो गई।

आरम्भ में रूस का व्यवहार पूर्वी रूमेलिया की ओर सहानुभूतिपूर्ण था और वह इसके बल्गारिया से संगठित होने के पक्ष में था। ज़ार ने पूर्वी रूमेलिया की जनता को एक रूसी सेनापति भेजकर परामर्श दिया कि वे थोड़े समय के लिए विभाजन मान लें। उसके सन्देश के शब्द इस प्रकार थे : "रूस आपकी सहायता के लिए जो कुछ कर सकता है उसने किया है। वह आपके बल्गारिया से पृथक्करण का उत्तरदायी नहीं है। इन राइफलों को स्वीकार कर लो, इनको प्रयोग करना सीखो और बाद में स्वयं अपनी सहायता करो।" किन्तु १८८५ के पश्चात् यह सहानुभूतिपूर्ण रुख बदल गया।

१८८५ में आस्ट्रिया के विदेश-मन्त्री ने राजकुमार को सैनिक प्रदर्शन देखने के लिए निमन्त्रण भेजा, इस अवसर पर रूस के विदेशमन्त्री थीयर्स को भी बुलाया

गया था। राजकुमार ने रूस के विदेश-मन्त्री से भेंट की और उसे आश्वासन दिया कि पूर्वी रूमेलिया के विषय में कोई झगड़ा नहीं होगा और 'यथास्थिति' रखी जाएगी। दुर्भाग्य से राजकुमार की अनुमति के बिना ही पूर्वी रूमेलिया के देश-भक्तों का एक सम्मेलन पहले ही हो चुका था। इस में पूर्वी रूमेलिया को बल्गारिया में मिला देने का निर्णय हो चुका था। लौटने पर राजकुमार को यह निर्णय बताया गया। उसका संकोच करना स्वाभाविक था। वह रूसी विदेश-मन्त्री को दिए गए वचन से नहीं हटना चाहता था कि बलकान में 'यथास्थिति' बनाए रखी जाएगी। किन्तु उससे कहा गया कि देश विभाजन से बहुत दुःखी है। या तो वह इसे स्वीकार कर ले अन्यथा उसे पदच्युत कर दिया जाएगा। राजकुमार ने इस धमकी की उपेक्षा कर दी। एक नियत दिन पूर्वी रूमेलिया की राजधानी फिलिप्पोलिस में विद्रोह हुआ। जनता ने उपद्रव किया और राजमुकुट राजकुमार एलेग्जेण्डर को देने का प्रस्ताव किया। संकोच करते हुए भी उसने दबाव में आकर यह भेंट स्वीकार कर ली।

सम्राज्ञी विक्टोरिया राजकुमार पर स्नेह रखती थी और उसने दोनों देशों के संगठन को मान लिया। लार्ड सॉलिसबरी भी सहानुभूति रखता था। आस्ट्रिया का रुख भी सहानुभूतिपूर्ण था किन्तु बल्गारिया के प्रश्न पर बिस्मार्क ने रूस का समर्थन करने का निर्णय किया। उसने कहा कि "बलगारिया में मैं रूसी हूँ।" बिस्मार्क का विचार था कि बर्लिन सम्मेलन ने बल्गारिया को रूस के प्रभाव-क्षेत्र में माना था।

१ फरवरी, १८८६ को तुर्की ने राजकुमार एलेग्जेण्डर को पूर्वी रूमेलिया का पाँच वर्ष के लिए राज्यपाल मान लिया। किन्तु रूस ने विरोध किया और बिस्मार्क ने उसका समर्थन किया। परिणामतः राजकुमार एलेग्जेण्डर की उपाधि में परिवर्तन करने का निर्णय किया गया कि "बल्गारिया का राजा पूर्वी रूमेलिया का राज्यपाल होगा।" रूस इससे भी सन्तुष्ट नहीं हुआ। रूस के गुप्तचर षड्यन्त्र करते रहे और कुछ असन्तुष्ट अधिकारियों ने राजमहल में घुस कर राजकुमार को कैद करके उड़ा दिया। इस घटना को सुन कर सम्राज्ञी विक्टोरिया ने लिखा था, 'शब्द मेरी भावनाओं को व्यक्त करने में पर्याप्त नहीं हैं। तुम्हारे माता-पिता इससे अधिक चिन्तित कभी नहीं हुए होंगे। तुम्हारे बर्बर, एशियाई, अत्याचारी भाई के प्रति मुझे इतना रोष है कि इसे व्यक्त करने में मैं असमर्थ हूँ।" स्टेम्बोलोव की अध्यक्षता में सोफिया में एक अस्थायी सरकार की स्थापना की गई किन्तु यह केवल तीन दिन ही चली। राजकुमार को पुनः देश आने का निमन्त्रण भेजा गया जिसे उसने स्वीकार कर लिया। जैसे ही वह देश में पहुँचा, उसे रूस के राजदूत ने सूचित किया कि बल्गारिया की भलाई रूस से समझौते में ही है। राजकुमार को राजधानी पहुँचने तक इसका उत्तर नहीं देना चाहिए था। दुर्भाग्य से वह रूस के शत्रुतापूर्ण व्यवहार से दुःखी था और उसने ज़ार को तार द्वारा संदेश भेज कर अपने जीवन की सबसे बड़ी भूल की थी। उसने कहा, "रूस ने मुझे मुकुट दिया था और मैं इस मुकुट को उसके राजा को लौटाने को तैयार हूँ।" रूस और जर्मनी इस राजत्याग

पर बड़े प्रसन्न हुए किन्तु सम्राज्ञी विक्टोरिया और बल्गारिया की जनता को बड़ी निराशा हुई।

यद्यपि राजकुमार एलेग्जेण्डर १८८६ में मार्ग से हट गया तो भी इससे समस्या हल नहीं हुई। अत्यन्त कठिनाई का समय अभी आना बाकी था। बड़ी शक्तियाँ इस विवाद मे पड़ गई। १८७९ की जर्मनी के साथ सन्धि के कारण आस्ट्रिया का विचार था कि वह जर्मनी के बहुत निकट है और जर्मनी सब मामलों में उसकी अवश्य ही सहायता करेगा। किन्तु बल्गारिया के प्रश्न पर रूस और आस्ट्रिया के निजी स्वार्थों की टक्कर थी, क्योंकि दोनों ही बलकान पर अपना प्रभाव जमाना चाहते थे। विस्मार्क की स्थिति बड़ी द्विविधाजनक हो गई, क्योंकि वह दोनों ही देशों से मैत्री रखना चाहता था। जर्मनी के सम्राट् ने उसकी स्थिति के विषय में कहा था, "तुम एक उस घुड़सवार की तरह हो जो हवा में पाँच गेंदें उछाल कर सब को एक साथ पकड़ लेता है।" विस्मार्क ने एक हल निकाला कि साधारणतः वह आस्ट्रिया की सहायता करेगा किन्तु बल्गारिया के मामले में वह रूस का साथ देगा। विस्मार्क की अब भी यही धारणा थी कि पूर्वी प्रश्न इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है कि इसके लिए यूरोपीय देशों के नागरिकों का बलिदान दिया जाए। अतः वह रूस को बलकान मे पूरी स्वतन्त्रता देने के पक्ष में था। आरम्भ से ही उसने आस्ट्रिया को सावधान कर दिया था कि वह रूस को रुष्ट न करे और १८८१ के 'ड्रीकैसरबण्ड' की व्यवस्था का अक्षरशः पालन करे। उसने सुझाव दिया कि बलकान को रूस और आस्ट्रिया परस्पर दो पूर्वी और पश्चिमी प्रभाव-क्षेत्रों में बाँट लें। रूस ने यह सुझाव मान लिया किन्तु आस्ट्रिया ने नहीं माना क्योंकि वह रूस को बलकान क्षेत्र से पूर्णतः निकाल देना चाहता था। आस्ट्रिया रूस द्वारा बल्गारिया पर अधिकार की चेष्टा को रोकने के लिए कटिबद्ध था।

आस्ट्रिया को विस्मार्क द्वारा रूस को असीम अधिकार देने की चाल अच्छी नहीं लगी। बल्गारिया के मामले में आस्ट्रिया बहुत बड़ा हो गया। एण्ड्रास्से (Andrassy) का विचार था कि चूंकि रूस को बल्गारिया से बर्लिन सन्धि के द्वारा निकाल दिया गया है अतः वहाँ पर अब उसका अधिकार नहीं होने देना चाहिए। उसके विचार से १८७९ की आस्ट्रिया और जर्मनी की सन्धि ही पर्याप्त थी और वह १८८१ की 'तीन सम्राटों की सभा' के पक्ष में नहीं था। अन्य आस्ट्रियन कूटनीतिज्ञों का भी विचार था कि यदि आस्ट्रिया को रूस के आगे झुकने के लिए विवश होना पड़े तो उसकी जर्मनी से मैत्री बनाए रखना व्यर्थ है। परिणामतः विस्मार्क ने रूस को कहा कि यदि वह रूस द्वारा बल्गारिया पर अधिकार करने के विरुद्ध नहीं है तो वह आस्ट्रिया को उत्तेजित न करे।

बल्गारिया का सिंहासन अनेक राजकुमारों को देने का प्रस्ताव किया गया किन्तु किसी ने भी इसे स्वीकार नहीं किया। १८८७ में सेक्से कोबुर्गगोथा (Saxe Coburg Gotha) के राजकुमार फर्डिनैण्ड ने इसे स्वीकार कर लिया और वह १९१८ तक शासन करता रहा। जार ने शक्तियों को कहा कि राजकुमार को हटा

कर उसके स्थान पर दोनों बल्गारिया पर शासन करने के लिए एक रूसी सेनापति को राज्यपाल नियुक्त कर दिया जाए। बिस्मार्क ने बल्गारिया से कूटनीतिक सम्बन्ध तोड़ दिए। किन्तु ब्रिटेन ने रूस को कहा कि वह बल्गारिया में उसका हस्तक्षेप सहन नहीं करेगा। ब्रिटेन का रुख लार्ड सॉलिसबरी के शब्दों से प्रकट होता है कि "पोर्टे के प्रति मैत्री रखने वाला तथा विदेशी हस्तक्षेप का विरोधी बल्गारिया शासन में विभाजित और तुर्की को अपने देश कीं उन्नति में बाधक समझने में संगठित विदेशी आक्रमण के विरुद्ध अधिक शक्तिशाली मोर्चा हो सकेगा।" इटली की सरकार का रुख भी बल्गारिया के प्रति सहानुभूतिपूर्ण था। इटली, रूस की इच्छानुसार फर्डिनैण्ड को पदच्युत करने की अपेक्षा उसे मान्यता देने को तैयार था। आस्ट्रिया बल्गारिया के प्रश्न पर रूस से युद्ध तक करने को तैयार था। रूस और आस्ट्रिया दोनों ही देशों में बड़ा उत्तेजना थी और दोनों ही देशों के समाचारपत्र एक दूसरे पर कीचड़ उछाल रहे थे। दोनों देशों के विदेश मन्त्री भी आलोचना में हाथ बँटा रहे थे। अन्त में ज़ार ने रूसी तरीके से इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया। उसने कहा कि फर्डिनैण्ड को पदच्युत करके यदि दूसरा राजा चुन लिया जाय तो वह हस्तक्षेप नहीं करेगा। जर्मनी और फ्रांस रूस के समर्थक तथा आस्ट्रिया और अन्य शक्तियाँ विरोधी थीं। इसी अवसर पर तुर्की ने फर्डिनैण्ड के पद को अवैध घोषित कर दिया किन्तु फिर भी रूस अथवा तुर्की ने कोई सक्रिय कार्यवाही नहीं की। परिणामतः फर्डिनैण्ड बल्गारिया के सिंहासन पर जमा रहा और जर्मनी की सहायता होने पर भी रूस बल्गारिया में असफल रहा। किन्तु बल्गारिया में बिस्मार्क द्वारा रूस की सहायता का महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि आस्ट्रिया और रूस में युद्ध टल गया। वह दोनों देशों पर प्रभाव डाल कर युद्ध रोकता रहा। तनावपूर्ण स्थिति में यह एक महत्त्वपूर्ण सफलता थी।

इस प्रकरण में राजकुमार एलेग्ज़ेण्डर के साथ सम्राट् विलियम प्रथम की पौत्री के विवाह का उल्लेख आवश्यक है। यह राजकुमारी सम्राज्ञी विक्टोरिया की नातिन थी और राजकुमार एलेग्ज़ेण्डर से प्रेम करती थी। सम्राज्ञी तथा राजकुमारी के पिता ने इस सम्बन्ध की अनुमति दे दी, किन्तु इस विवाह का रूस के रुष्ट हो जाने के डर से बिस्मार्क विरोध करता था। १८८४ में उसने बड़े रूखेपन से राजकुमार को कहा, "यह विवाह असम्भव है और जब तक मैं चान्सलर हूँ उस समय तक यह विवाह नहीं होगा। जर्मनी को बल्गारिया में कोई दिलचस्पी नहीं है। हमारा हित रूस के साथ शान्ति रखने में है। अब तुम बल्गारिया के निवासी हो। अतः तुम्हें रूस के आगे झुकना पड़ेगा।" १८८८ में राजकुमार एलेग्ज़ेण्डर के विवाह का प्रश्न पुनः उठा, किन्तु इस बार भी बिस्मार्क ने इसका विरोध किया और इस प्रश्न पर वह त्यागपत्र देने को तैयार हो गया। उसे विश्वास था कि अभी भी राजकुमार के पुनः सोफिया आने की सम्भावना है और किसी भी अवस्था में रूस राजकुमार के राजवंश से सम्बन्धित हो जाने के कारण जर्मनी पर अविश्वास करने लगेगा। उसने राजकुमारी के पिता सम्राट् फ्रेड्रिक को लिखा, "१८७१ के पश्चात् जर्मनी की विदेश-नीति का उद्देश्य शान्ति की स्थापना तथा जर्मनी-विरोधी गुटबन्दियों को रोकना रहा है और

इस नीति की धुरी रूस है।" यह उल्लेखनीय है कि अन्ततः राजकुमार ने एक गायिका से विवाह कर लिया था और १८६३ में उसकी मृत्यु हो गई।

राजकुमार फर्डिनैण्ड १९१८ तक शासन करता रहा। यद्यपि वह युवा तथा महत्त्वाकांक्षी था तो भी वह शासनकार्य में सक्रिय भाग नहीं लेता था। शासन-कार्य स्टेम्बोलोव (Stambolov) के हाथों में था। १८९४ में स्टेम्बोलोव को पदच्युत कर दिया गया। उसने त्यागपत्र दे दिया था और फर्डिनैण्ड वास्तविक शासक बन गया। उसने रूस के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया। उसका यह कार्य १८९४ में एलेग्ज़ेण्डर तृतीय की मृत्यु और निकलस द्वितीय के राज्यारोहण से और भी सरल हो गया था। १८९६ में फर्डिनैण्ड के पुत्र और उत्तराधिकारी बोरिस को प्राचीन मत में दीक्षा दी गई। १८९८ में राजा और रानी दोनों रूस गए, जिससे दोनों देशों की शत्रुता समाप्त हो गई। फर्डिनैण्ड के नेतृत्व में बल्गारिया समृद्धि-शाली होता गया। १९०८ में राजकुमार फर्डिनैण्ड ने अपने को बल्गारिया का राजा घोषित कर दिया। बल्गारिया ने १९१२-१३ के बलकान युद्धों में भाग लिया।

आर्मीनिया का प्रश्न (The Armenian Question)—आर्मीनिया के ईसाईयों की अवस्था तुर्की के अत्याचारपूर्ण व्यवहार के कारण बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण थी। बर्लिन सम्मेलन तथा साइप्रस गोष्ठी में तुर्की ने आर्मीनिया के ईसाइयों के साथ अच्छा व्यवहार करने की प्रतिज्ञा की थी। उसने अपनी प्रतिज्ञाओं का कभी भी पालन नहीं किया और आर्मीनिया की अवस्था बिगड़ती चली गई। १८७८ में यूरोपीय शक्तियों की दिलचस्पी के कारण आर्मीनिया के निवासियों में आशा का संचार हुआ किन्तु विदेशी शक्तियों की आर्मीनिया में दिलचस्पी रखने के कारण सुलतान नाराज था। परिणामतः सुलतान अब्दुल हमीद ने उन्हें पाठ पढ़ाने का निर्णय किया। उसे भली प्रकार मालूम था कि यूरोपीय शक्तियों में परस्पर फूट है और वे उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं करेंगी। सुलतान आर्मीनिया निवासियों की जागृति से घृणा करता था और तुर्की साम्राज्य में एक अन्य स्वतन्त्र राज्य के जन्म को कभी सहन नहीं कर सकता था। आर्मीनिया की जनता के प्रति तुर्की के रुख के विषय में एक तुर्क राजनीतिज्ञ ने कहा था, "आर्मीनिया के प्रश्न से पीछा छुड़ाने का एकमात्र

अब्दुलहमीद द्वितीय

उपाय आर्मीनिया निवासियों से पीछा छुड़ाना है।" आर्मीनिया की जनता का दमन करने के लिए बहाना खोजना कठिन नहीं था। १८९३ में कुछ आर्मीनिया निवासियों ने तुर्क अधिकारियों का विरोध किया था और १८९४ में सरकार ने प्रतिशोध लेना आरम्भ कर दिया। तुर्की सैनिकों को आर्मीनिया के ईसाइयों पर खुला छोड़ दिया गया और अत्यन्त रोमाञ्चकारी दृश्य देखने में आए। यह क्रम १८९४ और १८९५ तक चलता रहा और अनुमान लगाया जाता है कि इस अवधि में लगभग ५०,००० आर्मीनियन ईसाइयों की हत्या कर दी गई थी। अगस्त, १८९६ में कुस्तुनतुनिया के आर्मीनियन ईसाइयों ने विद्रोह किया और गलाटा के तुर्की बैंक पर आक्रमण कर दिया था। परिणाम यह हुआ कि कुस्तुनतुनिया में चौबीस घण्टों में छः हजार आर्मीनियनों की हत्या कर दी गई। यूरोपीय शक्तियों ने उनकी सहायता नहीं की। रूस ने भी विद्रोह के प्रति अरुचि होने के कारण उनकी सहायता नहीं की। आर्मीनियन कट्टरपंथी ईसाई नहीं थे अतः उनमें उसे कोई विशेष लगाव नहीं था। रूस बल्गारिया को स्वतन्त्र कराने के पश्चात् उसकी कृतघ्नता को भूला नहीं था। वह किसी अन्य राज्य को कष्ट उठाकर सहायता देकर स्वतन्त्र कराने तथा बाद में उसकी कृतघ्नता सहन करने के लिए तैयार नहीं था। इसके अलावा वह सुदूर पूर्व में व्यस्त था और तुर्की के मामलों में हस्तक्षेप करने की मनोदशा में नहीं था। रूस का रुख था कि जिस प्रकार इंग्लैण्ड ने उसे १८७८ में छकाया था, वह उसे १८९६ में आर्मीनिया में छकाएगा।

विलियम द्वितीय ने भी आर्मीनिया की सहायता नहीं की क्योंकि वह उस समय तुर्की से मैत्री करने की नीति का पालन कर रहा था। आस्ट्रिया-हंगरी जर्मनी के पद-चिह्नों का अनुसरण कर रहे थे। फ्रांस इंग्लैण्ड से मिस्र के मामले पर नाराज़ था अतः उसने आर्मीनिया के प्रश्न पर उससे सहयोग नहीं किया। इसका परिणाम यह हुआ कि आर्मीनिया की सहायता के लिए केवल इंग्लैण्ड ही रह गया। उसने विरोध प्रगट किया। किन्तु सुलतान अब्दुल हमीद ने इस विरोध तथा धमकी की उपेक्षा कर दी। ग्लैडस्टोन (Gladstone) ने अब्दुल हमीद को 'महान् हत्यारा' कहा था। सर विलियम वाटसन (Sir William Watson) ने उसे 'सारे प्राणियों में सबसे अधिक नारकीय जीव' कहा था। यद्यपि इंग्लैण्ड की जनता आर्मीनिया के प्रश्न पर अत्यन्त क्षुब्ध थी किन्तु लार्ड सालिसबरी आर्मीनिया के प्रश्न पर यूरोपीय युद्ध नहीं कराना चाहता था। महान् शक्तियों की परस्पर ईर्ष्या के कारण आर्मीनिया की जनता पर अत्याचार हुआ। लार्ड सॉलिसबरी इस निर्णय पर पहुँचा कि तुर्की की सहायता करके इंग्लैण्ड ने गलत घोड़े पर दाँव लगाया है।

ग्रीस (Greece)—१८२९ में ग्रीस की स्वतन्त्रता को मान्यता देने के पश्चात् इसका सीमांकन हुआ और १८३३ में बावेरिया का राजकुमार ओटो ग्रीस का शासक बनाया गया। वह १८३३ से १८६२ तक शासन करता रहा। देश ने उसके शासन काल में उन्नति नहीं की थी। देश में प्रशासनिक अकुशलता, सामाजिक दुर्व्यवस्था तथा आर्थिक दिवालियापन था। जनता की अवस्था इतनी शोचनीय थी कि १८६२

में विद्रोह हुआ और राजा को राज्य परित्याग कर देना पड़ा।

ग्रीस के लिए नया राजा प्राप्त करना बड़ा कठिन हो गया। सिंहासन राजकुमार अल्फ्रेड और इंग्लैण्ड के लार्ड स्टेनले को देने का प्रस्ताव किया गया। अन्त में डेन्मार्क के राजकुमार जार्ज ने इसे स्वीकार किया और उसने राजा जार्ज प्रथम के नाम से १८६२ से १९१३ तक शासन किया। १८६४ में एक नवीन प्रजातन्त्र प्रणाली की सरकार की स्थापना हुई। देश में प्रजातन्त्रीय शासन को चलाने के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ होते हुए भी देश में आर्थिक और बौद्धिक उन्नति हुई। खेती की उन्नति हुई, जैतून के तेल, शराब और अन्न की पैदावार बढ़ गई। एक हज़ार मील लम्बा रेल-मार्ग बनाया गया। ग्रीस के समुद्री जहाजों ने पूर्वी अन्धमहासागर के व्यापार के बड़े भाग पर अधिकार कर लिया था।

यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि जब ग्रीस का राज्य बनाया गया तो सारे ग्रीक इसमें नहीं मिलाए गए थे। ग्रीकों की बड़ी जनसंख्या एपिरस, मेसिडोनिया, थ्रासे, आयोनियन द्वीपसमूह, क्रीट, कुस्तुनतुनिया, सुमरना तथा एशिया माइनर के समुद्री तट के कस्बों में रहती थी।

आरम्भ में ग्रीस की सरकार ने अपना ध्यान थिस्साले और एपिरस को अधिकार में करने पर लगाया क्योंकि ये दोनों प्रदेश सुलतान के अधिकार में थे। ग्रीस को तुर्की से युद्ध करना पड़ा। क्रीमिया युद्ध के अवसर पर ग्रीस ने थिस्साले पर आक्रमण किया किन्तु बड़ी शक्तियों ने उन्हें वहाँ से लौट जाने की आज्ञा दी थी। ग्रीस के राजा को तटस्थ रहने को विवश कर दिया गया। १८५६ में जब पेरिस सम्मेलन हुआ तो ग्रीस को कुछ भी नहीं दिया गया। १८७७-७८ में रूस और तुर्की के युद्ध के समय ग्रीस ने थिस्साले पर फिर आक्रमण किया और पुनः उसकी सेनाओं को लौट जाने को विवश होना पड़ा। ग्रीस को सान स्टिफैनो और बर्लिन सन्धि से कुछ भी नहीं मिला। डिज़रेली का मत था, "ग्रीस का भविष्य उज्ज्वल है। अतः उसे प्रतीक्षा करनी चाहिए।" किन्तु १८८१ में ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री ग्लैडस्टोन (Gladstone) के प्रयत्नों से तुर्की को विवश करके ग्रीस को एपिरस का एक तिहाई तथा थिस्साले का बड़ा भाग दिलवा दिया गया। १८८४ में ब्रिटेन ने १८१५ में प्राप्त आयोनियन द्वीपसमूह ग्रीस को दे दिया। इन द्वीपों की जनता असन्तुष्ट थी और ग्रीस से मिलना चाहती थी।

'ग्रीस के सर्वश्रेष्ठ द्वीप' क्रीट के निवासी सुलतान के अत्याचारी शासन से तंग आ चुके थे और ग्रीस से एक होने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ थे। कहा जाता है १८३० से १९१० तक ग्रीस में १४ विद्रोह हुए थे। किन्तु १८६६ से पूर्व सुधारों के झूठे आश्वासनों के अतिरिक्त कुछ नहीं हुआ। द्वीप में राष्ट्रीयता की भावना उत्तरोत्तर बढ़ती गई, विशेषतः १८८५ के बाद बल्गारिया और पूर्वी रूमेलिया के संगठित हो जाने पर यह आन्दोलन और भी तीव्र हो गया। १८९७ में ग्रीस ने क्रीट निवासियों की सहायता के लिए तुर्की से युद्ध आरम्भ कर दिया। ग्रीस की सेनाओं के सुव्यवस्थित न होने के कारण तथा तुर्की की सेनाओं के जर्मनी के युद्ध-विशेषज्ञों

द्वारा प्रशिक्षित किए जाने के कारण ग्रीस की सेनाएँ हार गई। ग्रीस को थिस्साले के सीमान्त पर मोर्चेबन्दी की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान देना पड़ा। उसे बहुत बड़ी धनराशि युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में देनी पड़ी। यद्यपि ग्रीस क्रीट को अपने राज्य में मिलाने में असफल रहा तथापि तुर्की का शासन इस पर से पूर्णतः समाप्त हो गया। क्रीट को चार शक्तियों—रूस, ब्रिटेन, फ्रांस और इटली के संरक्षण में पूर्ण स्वायत्त शासन प्राप्त हो गया। इन शक्तियों ने ग्रीस के राजा के एक पुत्र को क्रीट का राजा मनोनीत किया। क्रीट निवासियों की ग्रीस के साथ अत्यन्त घनिष्ठ एकता प्राप्त करने की माँग के कारण १९०५ में एक और विद्रोह हुआ। बड़ी शक्तियों को फिर हस्तक्षेप करना पड़ा। किन्तु उन्होंने क्रीट (Crete) पर सुलतान के नाममात्र के आधिपत्य को बनाए रखने का हठ किया। क्रीट को अपना राज्यपाल मनोनीत करने का अधिकार दिया गया। क्रीट की सेना के नियन्त्रण और निर्देशन करने का कार्य ग्रीक सैन्याधिकारियों को सौंपा गया। क्रीट का ग्रीस के साथ संगठन स्थापित करने के आन्दोलन का आधार क्रीट में उत्पन्न हुआ। वैनिजेलोस नाम का नेता था। १८९७ के पश्चात् उसने क्रीट के शासन में भी बड़ा कार्य किया। १९१० में उसे ग्रीस का प्रधानमन्त्री बनाया गया। अपने नवीन पद पर आने के पश्चात् उसने ग्रीस के आर्थिक, नाविक और स्थल सेना के क्षेत्र में बहुत सुधार किए। १९१२ में उसने 'बलकान लीग' बनाने में बड़ी भूमिका अदा की जिसके कारण १९१२-१९१३ का बलकान युद्ध हुआ। १९१३ में ग्रीस को क्रीट का द्वीप प्राप्त हुआ।

रूमानिया (Rumania)—१८५६ की पेरिस सन्धि में मोलडेविया और वालाचिया के प्रान्तों को स्वशासन दिया गया था। १८६२ में दोनों प्रान्तों को एक राजा के आधिपत्य में संगठित होने की अनुमति दी गई और इस प्रकार रूमानिया के राज्य का प्रादुर्भाव हुआ। १८६६ में देशीय राजा को पदच्युत करके जर्मनी का राजकुमार चार्ल्स प्रथम रूमानिया का राजा बना। उसने १८६६ से १९१४ तक शासन किया। बर्लिन सम्मेलन में रूमानिया को पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई और १८८१ में इसे एक राज्य के रूप में मान्यता दी गई।

ग्रीस की भाँति बहुत से रूमानिया के नागरिक केवल तुर्की में ही नहीं अपितु रूस के आधिपत्य में वेसेरेबिया, आस्ट्रिया के आधिपत्य में बुकोविना के प्रान्तों में रहा करते थे। इसमें संशय नहीं कि रूमानिया के एकीकरण की समस्या ग्रीस की समस्या से भी अधिक जटिल थी। रूमानिया को तीन शक्तियों—रूस, आस्ट्रिया-हंगरी और तुर्की का मुकाबला करना था।

रूमानिया के राजनीतिज्ञ भी राष्ट्रीय एकीकरण के विषय में परस्पर एकमत नहीं थे। एक मत था कि रूमानिया को वेसेरेबिया को लेने का विचार त्याग देना चाहिए तथा रूस के साथ मिलकर आस्ट्रिया-हंगरी से बुकोविना और ट्रांसलवानिया प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। दूसरे पक्ष का विचार था कि रूमानिया को बुकोविना और ट्रांसलवानिया को भूलकर और रूस से वेसेरेबिया प्राप्त करने के

प्रयत्न में संलग्न हो जाना चाहिए। राजा चार्ल्स प्रथम का झुकाव आस्ट्रिया की ओर था और रूमानिया ने रूस से वेसेरेविया प्राप्त करने का प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। १८८३ में रूमानिया ने आस्ट्रिया से सन्धि की और आगामी तीस वर्ष तक रूमानिया पर जर्मनी का प्रभाव सब से अधिक रहा। सेना का जर्मनी पद्धति पर पुनर्गठन किया गया और यह सेना वलकान में सबसे विशाल सेना हो गई।

इस अवधि में खेती के लिए वैज्ञानिक प्रसाधनों का प्रयोग करने तथा विदेशी व्यापार को बढ़ा कर देश की बड़ी उन्नति की गई। उपजाऊ काली धरती होने के कारण रूमानिया संसार का महान् गेहूँ पैदा करने वाला देश बन गया। देश के खनिज पदार्थों के उपयोग के लिए विदेशी पूँजी को लगाया गया। देश में बहुत-सा कोयला और पेट्रोल निकाला गया। कारखाने बनाए गए और रेल-मार्गों का निर्माण किया गया; किन्तु देश के किसानों की अवस्था गिरी हुई थी जिसके परिणाम-स्वरूप १९०७ में विद्रोह हुआ और सेना ने इस विद्रोह का बड़ी कठिनाई से दमन किया।

मोण्टीनीग्रो (Montenegro)—सर्ब जाति के पास मोण्टीनीग्रो और सर्विया के दो स्वतन्त्र राज्य थे। मोण्टीनीग्रो अर्थात् 'काला पर्वत' एड्रियाटिक समुद्र के निकट एक छोटा-सा राज्य था। इस पर स्थानीय राजा राज्य करते थे, किन्तु वर्लिन सम्मेलन में ही इसकी स्वतन्त्रता को मान्यता दी गई थी। १८६० से १९१८ तक इस पर निकलस प्रथम ने राज्य किया था। वह रूस का बड़ा प्रशसक था। अतः उसके देश से बहुत मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहा। वह एक युद्ध-प्रिय तथा उदार स्वेच्छाचारी राजा था। उसकी सारे सर्वराज्यों को अपने आधिपत्य में संगठित करने की बड़ी लालसा थी। इस उद्देश्य को लेकर कभी वह सर्विया के साथ और कभी सर्विया के विरुद्ध षड्यन्त्र करता रहा। १९०५ में उसने अपने देश को संविधान प्रदान किया। १९१० में उसने 'मोण्टीनीग्रो का बादशाह' की पदवी ग्रहण की। राज्य का क्षेत्रफल थोड़ा होने पर भी इसके निवासियों की युद्ध-कुशलता ऊँचे स्तर की थी और इस कारण उसने १९१२-१३ की वलकान की लड़ाइयों में बडा महत्त्वपूर्ण भाग लिया।

सर्विया (Serbia)—वर्लिन सम्मेलन ने सर्विया की पूर्ण स्वतन्त्रता को मान्यता दी थी। किन्तु देश में काराजॉर्ज (Karageorge) और ओब्रेनोविक (Obrenovic) वंशों की आन्तरिक गुटवन्दी और प्रतिद्वन्द्विता के कारण देश में फूट थी। काराजॉर्ज तुर्की के विरुद्ध विद्रोह करने वाला आदि नेता था ओब्रेनोविक वह नेता था, जिसने सर्विया में वास्तव में स्वराज्य प्राप्त किया था। ओब्रेनोविक वंश १८१७ से १८४२ तक तथा १८५९ से १९०३ तक सत्तारूढ़ रहा। इस अवधि में काराजॉर्ज वंश ने अनेक वार विद्रोह किए और दो हत्याएँ भी हुईं। वंशों के संघर्ष के कारण देश में अराजकता फैल गई और सर्विया अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक खेल में एक गेंद बन गया।

१८७७-७८ के तुर्की और रूस के युद्ध के समय मिलान ओब्रेनोविक सर्विया पर शासन करता था। वह आस्ट्रिया का हितैषी था और रूस से विशेषतः रुष्ट था

क्योंकि उसने सान स्टिफैनो और बर्लिन सन्धियों में सर्बिया की अपेक्षा बल्गारिया की ओर अधिक ध्यान दिया था। १८८१ में उसने आस्ट्रिया-हंगरी से एक गुप्त सन्धि की। १८८२ में उसने अपनी जागीर को एक राज्य का रूप दे दिया। १८८५ में जब पूर्वी रूमेलिया और बल्गारिया एक हुए, तो सर्बिया ने बल्गारिया से युद्ध आरम्भ कर दिया किन्तु बुरी तरह पराजित हुआ। यदि आस्ट्रिया-हंगरी ने इसका साथ न दिया होता तो सर्बिया बुरी तरह कुचल दिया जाता। आस्ट्रिया के हस्तक्षेप का परिणाम यह हुआ कि १८८५ के बाद सर्बिया पूर्णतः आस्ट्रिया के नियन्त्रण में आ गया। यह स्थिति १९०३ तक चलती रही। १८८९ में मिलान ओब्रेनोविक ने अपनी प्रजा को उदार प्रजातन्त्रीय शैली का संविधान प्रदान किया। दो महीने पश्चात् उसने अपने पुत्र एलेग्जेण्डर द्वितीय के पक्ष में राज्य त्याग कर दिया।

१९०३ की क्रान्ति (Revolution of 1903)—एलेग्जेण्डर द्वितीय ने १८८९ से १९०३ तक शासन किया। वह स्वेच्छाचारी व्यक्ति था और अपनी सारी शक्ति अपने चापलूसों पर खर्च करता था। उसका ड्रागा मासिन (Draga Masin) नाम की स्त्री से प्रेम था। उसने केवल उससे विवाह ही नहीं किया अपितु उसके सम्बन्धियों को उच्चपदों पर भी नियुक्त किया। राजा, रानी और उनके कृपापात्रों को समाप्त करने के उद्देश्य से सैनिक अधिकारियों ने एक षड्यन्त्र रचा। परिणाम-स्वरूप जून १९०३ में राजा एलेग्जेण्डर, रानी ड्रागा, उनके मन्त्रियों और सेवकों की हत्या कर दी गई। इस घटना से सर्बिया में वंश परम्पराओं का युद्ध आरम्भ हो गया और काराजॉर्ज का वंशज पीटर प्रथम सर्बिया का राजा बन गया।

१९०३ के विद्रोह का महत्त्व कम नहीं था। यह सर्बिया के इतिहास के प्रवाह को बदल देने वाली घटना थी। इससे ओब्रेनोविक वंश पूर्णतः नष्ट हो गया और देश की फूट भी समाप्त हो गई। इससे सर्बिया पर आस्ट्रिया-हंगरी का प्रभुत्व भी समाप्त हो गया। इसके पश्चात् सर्बिया ने सारी सर्ब जाति को अपने आधिपत्य में संगठित करने की आकांक्षा को पूर्ण करने के लिए रूस से सहयोग करना आरम्भ कर दिया। पीटर प्रथम एक युद्ध-प्रिय राजा था और वह सर्बिया की प्रजा की इच्छाओं का मान करता था। उसने १८८९ का प्रजातन्त्रीय संविधान पुनः लागू कर दिया और अपने मन्त्रियों को उग्र राष्ट्रीय दल में से चुना, जिसका नेता निकलस पेसिक (Nicholas Pasic) था। राजा ने अपनी सारी शक्ति सेना के सुधार में लगा दी और पेसिक ने राष्ट्र की वित्त-व्यवस्था का पुनर्गठन करके आर्थिक स्थिति को शक्तिशाली बना दिया। उसने विदेशों में भी अपने देश का प्रचार किया। उसने अन्य बलकान राज्यों से भी सन्धिवार्ता की थी। सर्बिया ने उन सर्ब लोगों को भी अपने नियन्त्रण में लाने का प्रयत्न किया जो आस्ट्रिया के अधिकार में थे। आस्ट्रिया द्वारा १९०८ में बोसनिया और हर्जीगोविना को आस्ट्रिया में मिलाने के कारण सर्बिया और आस्ट्रिया के पारस्परिक सम्बन्ध कटु हो गए। इस प्रकार १९१४ के विश्वयुद्ध का एक कारण यह भी था।

तुर्की में जर्मनी का प्रभाव (German Influence in Turkey)—यह

उल्लेखनीय है कि लगभग चौथाई शताब्दी तक ब्रिटेन तुर्की का समर्थक रहा था किन्तु बर्लिन सम्मेलन के पश्चात् दोनों देशों के सम्बन्धों में खिचाव आ गया। लार्ड सॉलिसबरी आर्मीनिया के मामले से विशेषतः तुर्की के विरुद्ध हो गया था। तुर्की और ब्रिटेन में खिचाव हो जाने के कारण ओटोमान साम्राज्य में एक स्थान रिक्त हो गया था और इसकी पूर्ति जर्मनी ने की थी। यह सर्वविदित है कि विस्मार्क ने तुर्की को महत्त्व नहीं दिया और उसने रूस और आस्ट्रिया से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाने पर अधिक बल दिया था। किन्तु विस्मार्क के त्याग-पत्र के पश्चात् विलियम द्वितीय ने जर्मनी के विदेश सम्बन्धों में एक नवीन अध्याय आरम्भ किया। नये जर्मन सम्राट् ने १८८९ में तुर्की की यात्रा की। १८९९ में उसने 'पवित्र देश' की तीर्थ-यात्रा की। तत्पश्चात् दूसरी बार भी यात्रा की, दमिश्क में उसने कहा था, "सम्राट् सुलतान अब्दुल हमीद और तीन करोड़ मुसलमान जो उसकी खलीफ़ा की तरह पूजा करते हैं, विश्वास रखें कि जर्मनी का सम्राट् सर्वदा उनका मित्र रहेगा।"

जर्मनी के सेना-विशेषज्ञों ने तुर्की की सेना का पुनर्गठन किया। जर्मन व्यापारी और पूँजीपति भी तुर्की गए। बर्लिन के ड्यूश (Deutsche) बैंक की एक शाखा कुस्तुनतुनिया में खोली गई। जर्मनी की सरकार ने मध्यपूर्व में अपना प्रभाव बढ़ाना आरम्भ कर दिया। बर्लिन-बगदाद रेलवे बनाने की बड़ी महत्त्वपूर्ण योजना तैयार की गई। इस योजना का आधार अनातोलिया रेलवे के लिए तुर्की द्वारा १८९९ में जर्मन कम्पनी को दी गई सुविधाएँ थीं। योजना थी कि बासफोरस से बगदाद तक तथा वहाँ से बसरा तक रेलमार्ग बनाया जाए। इसका उद्देश्य पूर्व में जर्मनी की व्यापारिक घुसपैठ के लिए मार्ग तैयार करना था।

अन्य शक्तियों ने इस योजना का विरोध किया। इससे सीरिया में फ्रांस की तथा भारतवर्ष में इंग्लैण्ड की शक्ति को भय उत्पन्न हो जाता था। रूस ने फ्रांस का मित्र और सहयोगी होने के कारण इसका विरोध किया था। जर्मनी का भय वास्तविक था, क्योंकि वह निरन्तर पूर्व में अपना प्रभाव बढ़ाने की नीति का अनुसरण कर रहा था। उसने १८७९ में आस्ट्रिया-हंगरी से सन्धि की। १८८२ में इसी सन्धि ने 'त्रिमुखी सन्धि' का रूप धारण कर लिया था। चार्ल्स प्रथम के रूप में एक जर्मन राजकुमार को रूमानिया के सिंहासन पर बैठा दिया गया था। एक अन्य जर्मन राजकुमार को ग्रीस के सिंहासन पर तथा बल्गारिया का फर्डिनैण्ड भी एक जर्मन राजकुमार था।

तुर्की (Turkey)—सुलतान अब्दुल हमीद द्वितीय १८७३ में सुलतान बना और वह इस पद पर १९०९ तक बना रहा। १८७६ में उसने अपना शासन तुर्की की प्रजा को उदार संविधान प्रदान करके आरम्भ किया। देश के प्रतिक्रियावादी क्षेत्रों से इसका विरोध हुआ और परिणामस्वरूप संविधान को तीन वर्ष से अधिक समय तक के लिए स्थगित कर दिया गया। हमीद द्वारा बोसनिया और बल्गारिया के विद्रोहों को शक्ति से कुलचने के प्रयत्न के परिणामस्वरूप १८७७-७८ में रूस और

तुर्की का युद्ध हुआ और अन्त में बर्लिन सन्धि के अनुसार तुर्की को उसके बहुत बड़े प्रदेश से वंचित कर दिया गया।

ओटोमान साम्राज्य के विरुद्ध अनेक शक्तियाँ क्रियाशील थीं। बड़ी शक्तियों के आक्रमण का भय था। १८७८ में तुर्की से ब्रिटेन, रूस और आस्ट्रिया-हंगरी ने प्रदेश छीन लिये। देश की आर्थिक स्थिति इतनी बिगड़ गई थी कि १८८१ में सुलतान अब्दुल हमीद को सारी व्यवस्था को विदेशी पूँजीपतियों के एक आयोग को सौंपना पड़ा था। परिणामस्वरूप प्रजा पर बहुत कर लगा दिए गए और इससे देश में बड़ा असन्तोष फैल गया। विदेशी पूँजीपतियों ने विशेषतः ब्रिटेन, जर्मनी और फ्रांस के लोगों ने लाभदायक सुविधाएँ प्राप्त कर ली थीं जिससे इन देशों का तुर्की पर नियन्त्रण बढ़ गया था।

दूसरा भय बलकान की जनता की स्वतन्त्रता की भावना से था। १८७८ में तुर्की को रूमानिया, सर्बिया और मोन्टीनीग्रो की पूर्ण स्वतन्त्रता, बल्गारिया का पूर्ण स्वशासन तथा पूर्वी रूमेलिया का आंशिक स्वशासन स्वीकार करना पड़ा था। कोई भी राज्य संतुष्ट नहीं हुआ अतः प्रकाशनों, छापामार दस्तों और गुप्त दलों का प्रचार बढ़ता जा रहा था। सर्व, ग्रीस और बल्गारिया की प्रजाओं को अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहन दिया गया जो केवल तुर्की को हानि पहुँचा कर ही पूरा हो सकता था।

एक भय था तुर्की के एशिया के प्रयोजनों में राष्ट्रीयता की जाग्रति होना। यह जाग्रति आर्मीनियन, अल्बानियन, सीरिया, मेसोपोटामिया और हेजाज़ के अरबों में भी फैल गई थी।

सुलतान अब्दुल हमीद एक चतुर व्यक्ति था और उसने स्थिति को अपने ढंग से सुलझाने का प्रयत्न किया था। वह बड़ी शक्तियों को तथा बलकान राज्यों को परस्पर लड़ाता रहा। आरम्भ में वह रूस को रोकने के लिए ब्रिटेन पर निर्भर रहा और बाद में उसने फ्रांस की ब्रिटेन के प्रति ईर्ष्या और आस्ट्रिया के रूस से भय का लाभ उठाया। अन्ततः वह जर्मनी पर निर्भर रहने लगा क्योंकि उसे तुर्की के आन्तरिक मामलों में सबसे कम रुचि थी। उसने १८८९ और १८९९ में विलियम द्वितीय की यात्राओं का स्वागत किया था। जर्मन सैनिक अधिकारियों को सेना का पुनर्गठन करने के लिए नियुक्त किया गया। जर्मन अर्थशास्त्री उसके सलाहकार बना लिये गए। जर्मन पूँजीपतियों को सुविधाएँ दी गईं। किन्तु अब्दुल हमीद ने अपना सर्वस्व एक ही सत्ता के हाथों में नहीं सौंपा। उसने अनातोलिया और मेसोपोटामिया की उन्नति के लिए जर्मनी की, सीरिया के लिए फ्रांस की, और ब्रिटेन की सहायता फारस की खाड़ी के लिए माँगी। उसने बड़ी शक्तियों में परस्पर ईर्ष्या और शत्रुता उत्पन्न करने का प्रयत्न किया, जिससे कि एक साथ सारे तुर्की के विरुद्ध सामूहिक कार्यवाही न कर सकें। सुलतान अपना प्रभाव दृढ़ करने के लिए चालाकी और निर्दयता का प्रयोग भी करता था। उसने गुप्तचरों की एक बड़ी सेना इसलिए नियुक्त कर रखी थी कि वे उसे गुप्त संस्थाओं के विषय में सूचना देती रहें, जिससे उपयुक्त

अवसर पर उनके विरुद्ध कार्यवाही की जा सके। अविश्वस्त सैनिक अधिकारी तथा राजनीतिक विरोधियों को पदच्युत कर दिया गया और प्रशासन को केन्द्रित कर दिया गया। ईसाई प्रजा पर अत्याचार की नीति अपनाने के कारण वे लोग अपनी धारणा में अधिकाधिक दृढ़प्रतिज्ञ हो गए। सुलतान ने ईसाइयों को कठोर दण्ड देकर अपने देश की सेवा नहीं की।

१६०८ की युवा तुर्क क्रान्ति (Young Turk Revolution of 1908)—तुर्की का प्रगतिशील वर्ग सुलतान के प्रतिक्रियावादी शासन से घृणा करता था। प्रगतिशील वर्ग पश्चिम की राष्ट्रीयता की विचारधारा से प्रभावित था और सुलतान के अत्याचारी तथा स्वेच्छाचारी शासन को सहन करने को तैयार नहीं था। तुर्की का एक राजनीतिज्ञ कमालपाशा इस निर्णय पर पहुँचा कि तुर्की में ब्रिटेन की शैली की संवैधानिक सरकार की स्थापना होनी चाहिए। वह सुलतान के शासन में १८८१ से १८८७ तक और पुनः १८९६ में महामन्त्री रहा था। वह अपने पद से अवकाश ग्रहण करके सुधारवादी विचारधारा का प्रसार करने में लग गया और अनेक शिक्षित तुर्क उसके अनुयायी बन गए। तुर्की में कमालपाशा से भी अधिक उग्र क्रान्तिकारी थे। उन्होंने अनेक गुप्त संस्थाएँ बना ली थीं। उनका उद्देश्य था कि देश में राष्ट्रीय सुधारवादी सरकार स्थापित की जाए। इन लोगों को 'युवा तुर्क' (Young Turk) कहा जाता था। देश से निकाले हुए 'युवा तुर्कों' ने संविधान तथा गणतन्त्र की स्थापना के लिए बहुत समय से षड्यन्त्र किए थे। किन्तु १९०५ में ओटोमान साम्राज्य में सुधार का आन्दोलन पेरिस से स्वतन्त्र हो गया और यूरोपीय और एशियाई तुर्कों में संस्थाओं का जाल बिछा दिया गया। इनका केन्द्रीय कार्यालय सलोनिका में था। मेसिडोनिया में अराजकता थी और बड़ी शक्तियाँ यहाँ हस्तक्षेप करने को ललचाने लगीं। किन्तु युवा तुर्कों ने निर्णय किया कि तुर्की में सुधार विदेशियों द्वारा नहीं अपितु स्वयं तुर्की द्वारा किए जाने चाहिएँ। उनका प्रोग्राम था कि किसी अत्यन्त नाजुक अवसर पर सेना में हड़ताल करा दी जाए और इस कार्य के लिए मेसिडोनिया में स्थित तृतीय पैदल सेना (Third Army Crops) को चुना गया। अनेक बार गुप्तचरों को षड्यन्त्रों का पता लग जाता था और मार्च, १९०८ में कुस्तुनतुनिया से एक आयोग भेजा गया कि वह मेसिडोनिया में षड्यन्त्रों के विषय में जाँच करके तथ्यों का संग्रह करे। भेद खुल जाने के डर से 'संगठन और प्रगति' समिति ने सितम्बर, १९०८ में विद्रोह करने का निर्णय किया। किन्तु एडवर्ड सप्तम और जार की रेवाल में भेंट के कारण तुरन्त कार्यवाही आवश्यक हो गई। ३ जुलाई, १९०८ को नियाज़ी बे ने विद्रोह का ध्वज उठाया और अनवर बे उसके साथ आ मिला। ६ जुलाई को मुनास्तर छावनी के सैनिक अधिकारी छावनी को छोड़कर विद्रोहियों से आ मिले तथा भारी संख्या में अल्बानिया और मेसिडोनिया से स्वयंसेवक विद्रोहियों से आ मिले। २२ जुलाई को नियाज़ी ने मुनास्तर में प्रवेश किया और १८७६ के संविधान की घोषणा कर दी गई। सुलतान को चुनौती दी गई कि "वह या तो आत्मसमर्पण करे अन्यथा हम इस्तम्बोल पर आक्रमण कर देंगे।"

परिणाम यह हुआ कि सुलतान अब्दुल हमीद ने समर्पण कर दिया। उसने संविधान के लागू होने का समर्थन किया। उसने समाचारपत्रों पर प्रतिबन्ध समाप्त कर दिया और अपनी सेवा से बहुत से गुप्तचरों को निकाल दिया। उसने संसदीय सरकार का प्रथम महामन्त्री कमालपाशा को नियुक्त किया। थोड़ा-सा विरोध भी हुआ किन्तु विरोधियों को विना कठिनाई के समाप्त कर दिया गया। दिसम्बर, १६०८ में औपचारिक नीति से चुनी हुई संसद् का अधिवेशन कुस्तुनतुनिया में हुआ और देश में सुधारों की समस्या पर विचार किया जाने लगा।

युवा तुर्क क्रान्ति से लाभ उठा कर बल्गारिया ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी और इसके राजा ने 'बादशाह' की उपाधि ग्रहण कर ली। आस्ट्रिया-हंगरी ने बोसनिया और हर्जीगोविना को अपने राज्य में मिला लिया।

कमालपाशा और अनवर बे जैसे अन्य क्रान्तिकारियों में मतभेद हो गए। सुलतान ने इस स्थिति से लाभ उठाकर कमालपाशा को पदच्युत कर दिया। उसने प्रतिक्रियावादी नीति का अनुसरण करना आरम्भ कर दिया। परिणामतः अप्रैल, १६०८ में अनवर बे और संगठन और प्रगति समिति ने दूसरी वार विद्रोह किया। अब्दुल हमीद को राज्यच्युत कर के बन्दी कर लिया गया। उसके भाई को नया सुलतान बना दिया गया और उसे मुहम्मद पंचम की उपाधि दी गई। मुहम्मद पचम ने १६०६ से १६१८ तक राज्य किया।

१६०६ से १६१८ तक तुर्की पर वस्तुतः युवा तुर्की का तानाशाही राज्य रहा। इन लोगों की नीति 'आक्रामक राष्ट्रीयता' थी। सारे साम्राज्य की राजभाषा तुर्की बना दी गई। तुर्की राष्ट्रीय स्कूलों की स्थापना की गई। देश में अनिवार्य सैनिक सेवा का सिद्धान्त लागू कर दिया गया। सारे ओटोमान साम्राज्य में तुर्की की सभ्यता का प्रसार करने का प्रयत्न किया जाने लगा। किन्तु यह असम्भव कार्य था। यूरोप के ईसाई और एशिया के अरब युवा तुर्की की प्रणाली को अपनाने को तैयार नहीं थे। उनके कार्यक्रम का विरोध हुआ और युवा तुर्कों ने दमन करना आरम्भ कर दिया। जितना अधिक दमन किया गया, उतना ही विरोध बढ़ता गया।

इटली-तुर्की युद्ध (१६११-१२) (Italo-Turkish War)—इस प्रकार की परिस्थितियों में १६११ में इटली ने सहसा तुर्की पर आक्रमण कर दिया। बहुत समय से इटली ट्रिपोली और सारिनाइका पर आँख लगाए था। युवा तुर्की की क्रान्ति के पश्चात् उसे भय होने लगा था कि सम्भवतः वह ट्रिपोली और सारिनाइका को कभी विजय नहीं कर सकेगा। युवा तुर्क उससे अधिक शक्तिशाली हो जाएँगे। युवा तुर्कों के प्रयत्नों के विपरीत इटली सफल हुआ। यह युद्ध चल ही रहा था कि १६१२ में बलकान लीग की स्थापना हो गई। बलकान लीग से तुर्की को अधिक भय था इसलिए तुर्कों ने अक्टूबर, १६१२ में लायुस्नने के स्थान पर इटली से सन्धि कर ली। इस सन्धि के परिणामस्वरूप इटली को ट्रिपोली मिल गया।

हेज़न (Hazen) के मतानुसार, "इस युद्ध का महान् महत्त्व इस तथ्य में नहीं है कि इटली को एक नया उपनिवेश मिल गया था, अपितु इसका महत्त्व यह है

कि १८७८ के पश्चात् तुर्की साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने का जो क्रम रुक गया था वह पुनः आरम्भ हो गया। इससे साम्राज्य की सैनिक निर्बलता तथा राज्य की अक्षुण्णता की रक्षा की असामर्थ्य स्पष्ट हो गयी। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि बलकान राज्यों को तुर्की पर अधिक गम्भीर आक्रमण करने का साहस हो गया, जिसका अन्तिम परिणाम यूरोपीय देशों में घोर युद्ध हुआ। इटली का ट्रिपोली पर आक्रमण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और सामयिक था।

बोसनिया का संघर्ष, १९०८-९ (Bosnian Crisis of 1908-9)—१८७८ की बर्लिन सन्धि के अनुसार आस्ट्रिया-हंगरी को बोसनिया, हर्जीगोविना और नोवी-बाजार के सन्जक प्रदेश पर अधिकार करके शासन करने का अधिकार दिया गया था। लगभग ३० वर्ष तक आस्ट्रिया इन प्रदेशों को अपने राज्य में बिना मिलाए शासन करता रहा। किन्तु सितम्बर १९०८ में आस्ट्रिया के विदेशमन्त्री अहरिनथल और रूस के विदेशमन्त्री इज़वोल्सकी में सौदा हुआ। इसके अनुसार इजवोल्सकी ने आस्ट्रिया द्वारा बोसनिया और हर्जीगोविना के प्रदेशों को राज्य में मिला लेना स्वीकार कर लिया और इसके बदले में आस्ट्रिया ने रूस को बलकान की खाड़ी में रूस के लड़ाकू जहाज़ों को मार्ग देना स्वीकार कर लिया। अहरनिथल ने यह भी माना कि वह सन्जक रेलवे की योजना तथा सालोनिका पर अपना प्रभाव जमाने की इच्छा भी छोड़ देगा। उसने नोवी-बाजार के सन्जक से आस्ट्रिया की सैनिक टुकड़ियाँ भी वापिस बुला लेना स्वीकार कर लिया।

यह सौदा हो जाने पर भी अहरिनथल ने शीघ्रता की और ७ अक्टूबर, १९०८ को बोसनिया तथा हर्जीगोविना को आस्ट्रियन साम्राज्य में मिला लेने की घोषणा कर दी। जर्मनी तक को भी पहले सूचित नहीं किया गया। रूसी युद्धपोतों को खाड़ी में मार्ग देने की व्यवस्था को ब्रिटेन और फ्रांस के विरोध के कारण क्रियान्वित नहीं किया जा सका। इज़वोल्सकी ने शिकायत की कि अहरिनथल 'सज्जन' नहीं है और उसने इन प्रदेशों को अपने देश में मिलाने में शीघ्रता करके 'विश्वासघात' किया है।

इस समस्या का यहीं पर अन्त नहीं हुआ। बोसनिया और हर्जीगोविना को आस्ट्रियन साम्राज्य में मिलाने के कारण सर्बिया में बड़ा क्षोभ और उत्तेजना फैली। समाचारपत्रों के विशेष संस्करण निकाल कर आस्ट्रिया द्वारा बर्लिन सन्धि को तोड़ने की निन्दा की गई और युद्ध की माँग की जाने लगी। सर्बिया के मन्त्रिमण्डल ने घोषणा की कि युद्ध अवश्यम्भावी हो गया है अतः आवश्यक तैयारियाँ की जाने लगीं। सर्बिया का राजकुमार रूस से सहायता लेने के लिए दौड़ा गया। अन्य मन्त्री आस्ट्रिया के विरुद्ध सहायता जुटाने के लिए यूरोप के अन्य देशों में गए। सर्बिया ने क्षतिपूर्ति की माँग भी की थी।

इज़वोल्सकी बड़ी कठिनाई में पड़ गया। उसने स्वयं ही षड्यन्त्र किया जिसमें आस्ट्रिया से उसने विश्वासघात किया था। यद्यपि उसे कुछ नहीं मिला तो भी आस्ट्रिया ने अपना हिस्सा प्राप्त कर लिया था। उसने सर्बिया को थोड़े समय

तक संतोष करने की सलाह दी जिससे वह बलकान की खाड़ी पर अपना अधिकार कर सके। उसने बर्लिन सन्धि पर हस्ताक्षर करने वाली शक्तियों का एक सम्मेलन बुलाने की माँग की। इज़वोल्सकी भली प्रकार जानता था कि यदि वह शक्तियों के सम्मेलन को नहीं बुला सका तो उसे एक अपमानजनक कूटनीतिक हार स्वीकार करनी पड़ेगी। उसने सर्बिया को यह जताने की चेष्टा की कि उसने ही आस्ट्रिया को बोसनिया और हर्जीगोविना को हथिया लेने की अनुमति दी थी। उसने आस्ट्रिया की निन्दा की और कहा कि आस्ट्रिया पर से रूस और समस्त यूरोपीय शक्तियों का विश्वास उठ गया है। उनने आशा तथा दृढ़ धारणा व्यक्त की कि इस क्षेत्र में आस्ट्रिया के कार्य का गम्भीरता से उचित बदला लिया जाएगा। किन्तु उसे पता लगा कि जर्मनी आस्ट्रिया की माँग की पूरी शक्ति से सहायता कर रहा है कि जब तक प्रस्तावित सम्मेलन के निर्णयों के विषय में पूर्व निश्चय न कर लिया जाए उस समय तक सम्मेलन नहीं बुलाया जाना चाहिए। इज़वोल्सकी ने अनुभव किया कि यदि वह सम्मेलन के प्रश्न पर हठ करेगा तो युद्ध होने का डर है और उस समय रूस युद्ध के के लिए तैयार नहीं था। रूस अभी तक १६०४-५ के जापान-रूस युद्ध से उबर नहीं पाया था।

इज़वोल्सकी की स्थिति बड़ी बेढंगी थी। कई महीने तक वह इस आशा में सर्बिया को उकसाता रहा कि राज्य में मिलाने की समस्या के पुनर्विचार के लिए सम्मेलन बुला लिया जाएगा। वास्तव में उसने इसके लिए पूरी शक्ति से जोर भी लगाया था। किन्तु फिर भी सर्बिया, बोसनिया और क्रोशिया में आन्दोलन और उत्तेजना बढ़ती हुई। आस्ट्रिया के विरुद्ध बड़े प्रदर्शन हुए। परिणामतः आस्ट्रियन सरकार ने दमन की शरण ली और बहुत लोगों को बन्दी बना लिया गया। आन्दोलनकारियों के विरुद्ध अनेक प्रकार के अपराध लगाए गए। परिस्थिति इतनी बिगड़ गई कि आस्ट्रिया को सर्बिया के सीमान्त पर सेना भेजनी पड़ी और आस्ट्रिया तथा सर्बिया में युद्ध की आशंका बढ़ती जा रही थी। इस बात का कोई विश्वास नहीं था कि यह संघर्ष स्थानीय ही रहेगा और सारे यूरोप में नहीं फैलेगा। किन्तु रूस युद्ध से बचना चाहता था क्योंकि उसे पता था कि सर्बिया की वह सहायता नहीं कर सकेगा। रूस को यह भी विश्वास नहीं था कि बलकान युद्ध में उसका साथी फ्रांस उसकी सहायता करेगा। रूस ने इसलिए सर्बिया से प्रार्थना की कि वह उस समय संतोष करके भविष्य में आशा रखे। उसके शब्दों में, "जब हमारा शस्त्रीकरण का कार्यक्रम पूरा हो जाएगा, उस समय हम आस्ट्रिया-हंगरी से अपना निपटारा करेंगे। इस समय युद्ध मत आरम्भ करो क्योंकि यह तुम्हारी आत्महत्या के बराबर होगा। अपना लक्ष्य प्रगट मत करो और तैयारियाँ करो। तुम्हारी प्रसन्नता के दिन शीघ्र ही आने वाले हैं। परिस्थिति भयानक है, रूस युद्ध के लिए तैयार नहीं है और रूस की हार स्लाव जाति का विनाश होगा। जार की धारणा है कि भविष्य में जर्मनवाद से संघर्ष होना अवश्यम्भावी है और इसके लिए हमें पूरी तरह तैयार रहना चाहिए।"

बहुधा कहा जाता है कि अहरिनथल को जर्मनी ने अपने स्वार्थों की रक्षा के लिय बोसनिया और हर्जीगोविना पर अधिकार करने के लिए उकसाया था। प्रो० फे० इस विचार से सहमत नहीं हैं। उनका विचार है कि यह धारणा निर्मूल है। सत्य यह है कि जर्मनी को समय से पूर्व सूचित ही नहीं किया गया और क़ैसर को उसी दिन सूचना मिली जिस दिन प्रदेशों पर अधिकार कर लिया गया था। वह आस्ट्रिया के कार्य पर रुष्ट भी हुआ और उसने इसे तुर्की पर आक्रमण समझा था। आस्ट्रिया द्वारा इस प्रकार की कार्यवाही से कुस्तुनतुनिया पर जर्मनी के प्रभाव पर बड़ा बुरा असर पड़ा और इससे बर्लिन-बगदाद रेलमार्ग की योजना पर भी दुष्प्रभाव पड़ने की सम्भावना थी। क़ैसर के शब्दों में, "विआना पर दाँव-बाजी पर आरोप लगाया जाएगा और यह असत्य भी नहीं होगा। उसने हमें विचित्र तरीक़े से धोखा दिया है। एक व्यक्तिगत मित्र होने के नाते उसने मेरी भावनाओं को बड़ी ठेस पहुँचाई है।" क़ैसर का मत था कि यदि जर्मनी ने इस घटना का विरोध किया तो उस पर इस कार्यवाही का समर्थन करने का आरोप लगाया जाएगा। वह आस्ट्रिया से मैत्री टूट जाने के खतरे को उठाकर भी इस कार्य का खुले रूप से विरोध करने के पक्ष में था।

किन्तु चान्सलर बूलो का क़ैसर से मतभेद था। वह त्रिमुखी सन्धि को कमज़ोर करने के पक्ष में नहीं था। अतः आस्ट्रिया के प्रत्येक कार्य का समर्थन करने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ था। उसका विचार था कि यदि जर्मनी ने आस्ट्रिया का हार्दिक समर्थन न किया तो आस्ट्रिया उसे कभी भी क्षमा नहीं करेगा। जर्मनी को भले ही आस्ट्रिया से इस बात की शिकायत हो कि उसे समय पर सूचित नहीं किया गया था किन्तु जब आस्ट्रिया ने बोसनिया और हर्जीगोविना को राज्य में मिला ही लिया तो उसका विरोध करना उचित नहीं था। अन्ततः क़ैसर को बूलो के विचार से सहमत होना पड़ा और उसने विआना को सूचित किया कि, "कठिनाइयों और जटिल परिस्थितियों में हमारा मित्र हम पर निर्भर रह सकता है।"

यह भी ध्यान में रखने योग्य बात है कि बोसनिया और हर्जीगोविना पर अधिकार करने के पश्चात् आस्ट्रिया ने तुर्की को धन देकर अपनी ओर करने का प्रयत्न किया था। यद्यपि आरम्भ में तुर्की बहुत रुष्ट था तथापि जब उसने देखा कि कोई भी यूरोपीय शक्ति उसे सैनिक सहायता देने को तैयार नहीं, तो उसने बोसनिया और हर्जीगोविना पर से अपना औपचारिक आधिपत्य उठाने के लिए आस्ट्रिया का क्षतिपूर्ति का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

तुर्की से सौदा हो जाने के कारण सर्बिया और भी उत्तेजित हो गया। अब तक उसकी धारणा यही थी कि सारी शक्तियाँ, तुर्की सहित, इस मामले को सम्मेलन में विचारार्थ रखने के लिए उसकी सहायता करेंगी और सर्बिया इन प्रदेशों के लिए स्वशासन तथा अपने लिए क्षतिपूर्ति प्राप्त करने में सफल हो जाएगा, किन्तु तुर्की से सौदा हो जाने के पश्चात् उसकी आशाएँ धूल में मिल गई और आस्ट्रिया ने स्पष्ट

कह दिया कि वह अब कोई समझौता करने के लिए तैयार नहीं है। प्रगट रूप से परिस्थिति बड़ी गम्भीर हो गई थी।

संघर्ष से बचने के लिए जर्मनी ने एक प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव इस प्रकार था कि जर्मनी आस्ट्रिया से एक पत्र द्वारा शक्तियों से इन प्रदेशों को अपने राज्य में मिलाने के कार्य का अनुमोदन करने के लिए एक सम्मेलन बुलाएगा, किन्तु रूस को आस्ट्रिया द्वारा निमन्त्रण मिलने पर सम्मेलन से पहले ही अपनी अनुमति देनी पड़ेगी। जर्मनी के १९०९ के प्रस्ताव से अनेक लाभ थे। इससे आस्ट्रिया की इच्छा भी पूरी हो जाती थी और त्रिमुखी सन्धि के सदस्य देशों की माँग भी पूरी हो जाती थी कि बर्लिन सन्धि में बिना उनकी अनुमति के कोई परिवर्तन नहीं किया जाएगा। रूस की सम्मेलन की माँग को बिल्कुल अस्वीकार कर देने के कारण अपमान से भी रक्षा हो जाती थी। इसका उद्देश्य इज़वोल्सकी को तत्कालीन कठिन परिस्थितियों से निकालना भी था। इज़वोल्सकी ने इस प्रस्ताव की सराहना की और वह इसे मानने के लिए तैयार था। उसे यह भी मालूम था कि रूस युद्ध के लिए तैयार नहीं है और इसलिए वह सर्बिया की सशस्त्र सहायता भी नहीं कर सकता। इज़वोल्सकी यह भी समझता था कि बुकलायु समझौता करने में वह कठिन परिस्थिति में फँस गया था। अहरिनथल द्वारा इस समझौते के पत्र को प्रकाशित कर देने के परिणाम से भी वह बहुत डर रहा था।

अहरनिथल (Aehrenthal) जर्मनी के इस प्रस्ताव को स्वीकार करने को सहमत था किन्तु वह चाहता था कि सर्बिया आस्ट्रिया द्वारा बोसनिया (Bosnia) और हर्जीगोविना के आस्ट्रिया राज्य में मिला दिए जाने को स्वीकार कर ले और प्रतिज्ञा करे कि वह विरोधी रुख छोड़ देगा।

उपर्युक्त परिस्थितियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कहना नितान्त असत्य है कि जर्मनी ने रूस को चुनौती भेजकर डरा दिया था और इसलिए रूस ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया था। यह कहानी इज़वोल्सकी (Izvolski) के आलोचकों का मुँह बन्द करने के लिए घड़ी गई थी। उसने सर्बिया और आस्ट्रिया में युद्ध होने से बचाव किया क्योंकि इसमें रूस का फँस जाना तथा पराजित होना स्वाभाविक था। वास्तव में रूस ने प्रसन्नता से इस प्रस्ताव को स्वीकार किया था और सारी शक्तियों ने पत्र-व्यवहार द्वारा आस्ट्रिया द्वारा इन प्रदेशों के अपने राज्य में मिला दिए जाने की अनुमति दे दी थी। सर्बिया ने भी आवश्यक घोषणा इस प्रकार की थी कि, "सर्बिया, जो स्थिति बोसनिया में हो चुकी है उसे मान्यता देता है और यह मानता है कि उस स्थिति में उसके अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिए बर्लिन सन्धि की धारा पच्चीस के विषय में शक्तियाँ जो भी निर्णय करें उनका अनुमोदन करता है। बड़ी शक्तियों के परामर्श का आदर करते हुए सर्बिया ने जो विरोधात्मक व्यवहार, इस प्रदेश के आस्ट्रिया द्वारा पिछले शिशिर में अपने राज्य में मिला लेने पर अपनाया था, उसे छोड़ देगा। वह आस्ट्रिया-हंगरी के प्रति अपनी

नीति के रुख में परिवर्तन करने का आश्वासन दिलाता है और भविष्य में आस्ट्रिया-हंगरी के साथ अच्छे पड़ोसी जैसा व्यवहार रखेगा।"

"इन घोषणाओं का अनुसरण करते हुए तथा आस्ट्रिया-हंगरी की शान्ति-प्रियता में विश्वास करते हुए अपनी सेना को जहाँ तक इसकी व्यवस्था, स्थान तथा सैनिकों की संख्या का सम्बन्ध है, उसी स्थिति में कर लेगा जिसमें वह १६०८ की वसन्त ऋतु में थी। वह अपनी स्वयंसेवक तथा आपातकालीन सेना को शस्त्रहीन करके सेवामुक्त कर देगा तथा अपने देश में अनियमित सैन्य संगठन को रोकने का प्रयत्न करेगा।" इसका परिणाम यह हुआ कि आस्ट्रिया और सर्विया ने अपनी सेनाएँ कम कर दीं जिससे यह समस्या समाप्त हो गई।

बोसनिया की समस्या के परिणामों का उल्लेख भी आवश्यक है। इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि १६०६ में अहरिनथल (Aehrenthal) को एक कूटनीतिक विजय प्राप्त हुई और सर्विया तथा रूस का अपमान हुआ। यद्यपि अहरिनथल को बहुत बधाइयाँ और काउंट की उपाधि भी मिली किन्तु आस्ट्रिया की कूटनीति के प्रति यूरोपीय शक्तियों का अविश्वास हो गया। यह धारणा हो गई कि आस्ट्रिया ने बिना किसी औचित्य के एक विश्वासपूर्ण समझौते को तोड़ा है। सर्विया को विवश करके उससे एक ऐसी घोषणा कराना, जिसे कोई भी देशभक्त कूटनीतिज्ञ या शासक पूरा नहीं कर सकता, उचित नहीं था। बोसनिया और हर्जीगोविना पर आस्ट्रिया के नियन्त्रण को कड़ा कर देने का वास्तविक उद्देश्य ही नष्ट हो गया। आस्ट्रिया ने अस्थायी सफलता प्राप्त करके अपने लिए भविष्य में बहुत-सी कठिनाइयाँ खड़ी कर ली थीं। अहरिनथल (Aehrenthal) के शब्दों में, "मुझे आशा है कि हमारा कार्य सफल होगा, यदि न हुआ तो मेरा पतन अनिवार्य है किन्तु उस परिस्थिति में हमें सम्मान सहित पराजय मिलेगी अन्यथा शनैः-शनैः हमारा पतन निरन्तर होता चला जाएगा।"

आस्ट्रिया से सहयोग करने के कारण जर्मनी को भी इस निन्दा का भागी होना पड़ा। जर्मनी पर सर्विया, रूस और इंग्लैण्ड अविश्वास करने लगे। जर्मनी का एक शान्तिपूर्ण हल निकालने के प्रयत्न का आशय, शक्तिपूर्ण धमकी और चुनौती समझा गया। इसे जर्मनी का रूस को नीचा दिखाने के लिए अमानुषिक प्रयत्न तथा त्रिमुखी सन्धि पर कुठाराघात करके रूस को इससे अलग कर देने की चाल माना गया। यह सम्भव है कि इस प्रकार की धारणा १६१० में कैसर के एक भाषण द्वारा बनाई गई हो जिसमें उसने कहा था कि "वह अपने मित्र की सहायता के लिए चमकदार कवच पहन कर खड़ा था।"

बोसनिया समस्या का इटली पर बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण प्रभाव पड़ा। आस्ट्रिया ने उससे पहले परामर्श नहीं किया था। उसने अनुभव किया कि उसके सम्मान को ठेस पहुँचाई गई है और आस्ट्रिया के इस कार्य से बलकान में उसकी महत्त्वाकांक्षाओं को नष्ट कर दिया गया है। इटली को अनुभव होने लगा कि उसके लिए त्रिमुखी सन्धि व्यर्थ है और वह १६०६ में रूस से सन्धि करने के लिए पूर्णतः तैयार था। इस प्रकार

बोसनिया की घटना से त्रिमुखी सन्धि को बड़ा धक्का लगा।

इस घटना का रूस पर भी प्रभाव पड़ा। जर्मनी के विरुद्ध प्रचार बढ़ गया। यह कहा जाने लगा कि स्लाववाद और ट्युटोनवाद में युद्ध अवश्यम्भावी है। रूस ने आस्ट्रिया और जर्मनी से अवश्यम्भावी युद्ध के लिए अपनी सेनाओं और समुद्री बेड़े का पुनर्गठन करके बढ़ाना आरम्भ कर दिया। जहाँ तक इज़वोलसकी का सम्बन्ध है बोसनिया की घटना उसकी बहुत बड़ी कूटनीतिक हार थी। वह अत्यन्त दुःखी हो गया और उसने १९१० में विदेश-मन्त्री का पद त्याग दिया।

बलकान की लड़ाइयाँ (१९१२-१३) (Balkan Wars)—१९१२-१३ की बलकान की लड़ाइयाँ, १९०८ की युवा-तुर्क क्रान्ति का परिणाम थीं। युवा तुर्क अपने आधीन ईसाइयों पर तुर्की की सभ्यता लादना चाहते थे तथा उनकी सामूहिक हत्याएँ कर रहे थे। बलकान के राज्य भय से संगठित होने लगे। उन्होंने यूरोप से तुर्कों को आमूल उखाड़ फेंकने के उद्देश्य से संगठित होने का दृढ़ निश्चय किया। वे तुर्की को इतना समय नहीं देना चाहते थे कि तुर्की उनके विरुद्ध अपनी सारी संगठित शक्ति का प्रयोग कर सके।

जब १९११-१२ में तुर्की ट्रिपोली के मामले में इटली से लड़ रहा था, बलकान राज्यों में विचार-विमर्श आरम्भ हुआ जिसका परिणाम बलकान लीग का निर्माण हुआ। ऐतिहासिक, जातिगत और भावना के आधार पर परस्पर घृणा करने वाले बलकान राज्यों को संगठित करना सरल कार्य नहीं था। किन्तु तुर्की के प्रति उनकी घृणा और उनके अत्याचार का एक ऐसा आधार था जिसके कारण वे सब संगठित हो गए। युवा तुर्कों द्वारा ईसाइयों की सामूहिक हत्याओं ने जनता की घृणा को खूब उभारा और वे अपने एक-मात्र शत्रु के विरुद्ध लड़ने के लिए एकत्रित हो गए। बलकान लीग का प्रादुर्भाव तुर्की और सारे यूरोप के लिए एक आश्चर्यजनक घटना थी क्योंकि बलकान देशों का संगठित होकर मोर्चा लेने का प्रयत्न उनके लिए एक स्वप्नमात्र था। इटली से युद्ध होने के पश्चात् तुर्की की निर्बलता तथा नैतिक पतन से बलकान राज्यों को और भी प्रोत्साहन मिला।

अक्टूबर, १९१२ में बलकान के राज्यों ने, जिनमें मोन्टीनीग्रो (Montenegro), सर्बिया, बल्गारिया और ग्रीस थे, तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। युद्ध थोड़े ही समय तक हुआ किन्तु इसका परिणाम संगठित राज्यों की चमत्कारी विजय हुआ। युद्ध १५ अक्टूबर, १९१२ को आरम्भ हुआ। ग्रीक मेसिडोनिया (Macedonia) में घुस गए और उन्होंने तीन सप्ताह के पश्चात् सलोनिका (Salonica) पर अधिकार कर लिया। सर्बिया और मोण्टीनीग्रो भी सफल हुए। बल्गारिया को तुर्की पर अनेक लड़ाइयों में विजय प्राप्त हुई। परिणामतः तुर्की की सैन्य-शक्ति पूर्णतः छिन्न-भिन्न कर दी गई। नवम्बर के मध्य तक बल्गारिया की सेनाएँ चातलजा की मोर्चेबन्दी पर पहुँच गईं जो मारमोरा के समुद्र से कालासागर तक फैली हुई थीं। इसके पीछे केवल पच्चीस मील की दूरी तक कुस्तुनतुनिया बसा हुआ था।

तुर्की की शक्ति का लगभग पूर्ण विनाश हो चुका था। केवल ऐड्रियानोपल (Adrianople). जानिना (Janina), स्कुटारी (Scutari) बच रहे थे। यह विनाश तुर्की, बड़ी शक्तियों और बलकान राज्यों के लिए एक बड़ा आश्चर्य था। दिसम्बर, १९१२ में अनेक देशों के प्रतिनिधियों का, शान्ति की शर्तों पर समझौता करने के लिए लन्दन में एक सम्मेलन हुआ। यह वार्ता असफल हुई क्योंकि तुर्की ऐड्रियानोपल देना नहीं चाहता था किन्तु बल्गारिया इसे जीतने पर अड़ा हुआ था। परिणामस्वरूप मार्च, १९१३ में युद्ध पुनः आरम्भ हो गया। जानिना का ६ मार्च, ऐड्रियानोपल का २६ मार्च और स्कुटारी (Scutari) का २३ अप्रैल, १९१३ को पतन हुआ। इन परिस्थितियों में तुर्की को सन्धि की शर्तें माननी पड़ीं। ३० मई, १९१३ को लन्दन की सन्धि पर हस्ताक्षर हुए।

लन्दन सन्धि (१९१३) (Treaty of London)—इस सन्धि के अनुसार ऐजियन (Aegean) समुद्र पर स्थित इनोस (Enos) से लेकर कालासागर पर स्थित मिडिया (Midia) तक एक रेखा खींची गई। इस रेखा के पश्चिम की ओर स्थित तुर्की का सारा प्रदेश मित्रराष्ट्रों को दे दिया गया, किन्तु अल्बानिया को बड़ी शक्तियों के अधिकार में छोड़ दिया गया क्योंकि उसकी स्थिति और सीमांकन का कार्य उन्हें सौंप दिया गया था। क्रीट भी बड़ी शक्तियों को सौंप दिया गया जिससे वे निर्णय करें कि ऐजियन (Aegean) समुद्र में ग्रीस द्वारा अधिकार किए हुए द्वीपों पर किसको अधिकार दिया जाए। दिसम्बर, १९१३ में बड़ी शक्तियों ने क्रीट का द्वीप ग्रीस को दे दिया। यूरोप में सुलतान का राज्य लगभग लुप्त हो गया। पाँच शताब्दियों के पश्चात् सुलतान ने अपने को यूरोप से लगभग निष्कासित पाया। सर्वसाधारण की मुक्ति के उद्देश्य से संगठित चार बलकान राज्यों ने यह महान् कार्य कर दिखाया। बड़ी शक्तियों ने इसमें कुछ भी सहयोग नहीं दिया था। बड़ी शक्तियों को युद्ध में बिना लपेटे ही यूरोप के मानचित्र में एक महान् परिवर्तन हो गया था।

किन्तु लन्दन सन्धि अधिक दिन नहीं चली। तुर्की के पराभव के पश्चात् युद्ध से प्राप्त हुए प्रदेशों के बँटवारे पर बलकान राज्य परस्पर झगड़ने लग गए। आस्ट्रिया और इटली द्वारा अल्बानिया (Albania) का नया स्वतन्त्र राज्य बनाने के हठ के कारण झगड़ा होने लगा। एड्रियाटिक समुद्र के तट पर अल्बानिया का नया राज्य बन जाने से सर्बिया की समुद्री मार्ग प्राप्त करने की लालसा पूरी नहीं होती थी। यह बात उल्लेखनीय है कि युद्ध से पहले ही सर्बिया और बल्गारिया ने मेसिडोनिया (Macedonia) में अपने भावी प्रभाव-क्षेत्रों का निर्णय कर लिया था। इसके अनुसार मेसिडोनिया का एक बड़ा भाग बल्गारिया को मिलना था और सर्बिया को एड्रियाटिक का समुद्री तट दिया जाना था। अल्बानिया के बनाए जाने का परिणाम सर्बिया को स्थल से घिरा हुआ देश बना देना था। आस्ट्रिया दृढ़-प्रतिज्ञ था कि उसे एड्रियाटिक समुद्र का राज्य नहीं बनने दिया जाएगा। वह सर्बिया की उन्नति का सर्वदा विरोध करता रहा क्योंकि उसके शासन में लाखों स्लाव लोग रहते थे। उसे डर था कि कहीं वे स्वतन्त्र बढ़े हुए प्रदेश तथा सम्मान वाले सर्बिया

की ओर आकर्षित न हो जाएँ। उसका विश्वास था कि सर्बिया रूस की कठपुतली बन जाएगा। अतः यथाशक्ति आस्ट्रिया किसी भी मूल्य पर अपने दक्षिणी सीमान्त पर और एड्रियाटिक (Adriatic) समुद्र पर रूस का प्रभाव सहन नहीं कर सकता था। वह इस समुद्री क्षेत्र में पहले से कम महत्त्वपूर्ण नहीं होना चाहता था। वह एड्रियाटिक से सर्बिया को निकाल देना चाहता था। सर्बिया का समुद्री मार्ग बन्द कर देने के कारण दूसरा बलकान युद्ध हुआ। सर्बिया की जनता बड़ी क्रुद्ध हुई, किन्तु विवश थी। इसलिए उसने मेसिडोनिया (Macedonia) में अधिक-से-अधिक प्रदेश प्राप्त करके अपनी क्षति-पूर्ति करने का प्रयत्न किया। किन्तु बल्गारिया ने इस ओर कोई सुविधा नहीं देनी चाही और कहा कि जो समझौता युद्ध से पहले हुआ था उसका अक्षरशः पालन होना चाहिए। सहसा प्राचीन कटु घृणा की ज्वाला एक बार फिर धधक उठी। सर्बिया ने दावा किया कि तुर्कों का पराभव सारे मित्र-राष्ट्रों का कार्य था अतः सारी प्राप्त भूमि का सबके नाम में उचित बँटवारा होना चाहिए। दूसरी ओर बल्गारिया का दावा था कि केवल उसने ही युद्ध में प्रमुख भाग लिया है, उसके पास विशाल सेना है तथा उसकी किर्क किलिस्सी (Kirk Kilisse) और बुरगास (Burgas) की विजयों के कारण ही यूरोप में तुर्की की शक्ति समाप्त हुई थी। उसने कहा कि मेसिडोनिया के निवासी मूलतः बल्गारियन हैं। इसलिए उसे इस प्रदेश पर अधिकार करने का पूर्ण अधिकार है, इस स्थिति में अन्य भी कई स्वार्थ निहित थे।

बल्गारिया (Bulgaria) स्वेच्छानुसार कार्यवाही करने को दृढ़प्रतिज्ञ था। उसकी सेनाओं में अप्रत्याशित सफलताओं के कारण बड़ा उत्साह था। वह ग्रीकों (Greeks) और सर्बिया के संगठन के लिए की गई सेवाओं को क्षुद्र समझने लगा था। उसका विचार था कि आवश्यकता पड़ने पर वह सरलता से दोनों पर विजय प्राप्त कर सकता है। बल्गारिया के सैनिक दल ने अपना औचित्य खो दिया, उसने अपने सहयोगियों के अधिकारों की उपेक्षा कर दी और इस कारण नए संघर्ष का सूत्रपात हुआ। जून, १९१३ में उसने धोखे से सर्बिया और ग्रीस पर आक्रमण कर दिया। कुछ दिनों तक बड़े घमासान का युद्ध होता रहा।

द्वितीय बल्कान युद्ध, १९१३ (Second Balkan War)—बल्गारिया द्वारा टाले जा सकने वाले संघर्ष में कूद पड़ना और भी मूर्खतापूर्ण बात थी क्योंकि अपने पड़ोसी देश रूमानिया से भी उसके सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। रूमानिया ने यह माँग की थी कि उसे बल्गारिया के उत्तर-पूर्व की ओर थोड़ा प्रदेश मिलना चाहिए जिससे बलकान राज्यों में उचित शक्ति-संतुलन बना रहे। बल्गारिया ने इस माँग को ठुकरा दिया था। परिणामतः अब बल्गारिया पर रूमानिया ने भी युद्ध की घोषणा कर दी। तुर्कों ने भी अपने प्रदेशों को वापिस लेने का अवसर देखकर बल्गारिया पर आक्रमण कर दिया।

बुखारेस्ट की सन्धि, १९१३ (Treaty of Bucharest, 1913)—बल्गारिया चारों ओर से शत्रुओं से घिर गया। वह तीन की अपेक्षा पाँच राज्यों से युद्ध कर

रहा था क्योंकि मोण्टीनीग्रो भी इस संघर्ष में कूद पड़ा था। जुलाई के मध्य में उसने अनुभव किया कि उसके दावे व्यर्थ हैं और उसने सन्धि करना स्वीकार कर लिया। १० अगस्त, १९१३ को बुखारेस्ट (Bucharest) की सन्धि पर हस्ताक्षर हुए और इसके अनुसार ग्रीस और सर्विया को इतना बड़ा प्रदेश मिला जिसकी उन्हें कभी भी आशा नहीं थी। रूमानिया को भी उसका इच्छित प्रदेश प्राप्त हो गया। तुर्कों ने भी बहुत बड़ा प्रदेश छीन लिया जिसमें एड्रियानोपल का महत्त्वपूर्ण नगर और दुर्ग भी था। यह सब बल्गारिया (Bulgaria) को देना पड़ा। उसे अपने हठ और उद्दण्डता के कारण वह सब क्षेत्र देना पड़ा, जिसे वह समझौते के द्वारा रख सकता था। बल्गारिया को इस सन्धि से बड़ा क्षोभ हुआ और वह इसे फाड़ फेंकने के अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। वह इसे बलकान राज्यों का स्थायी समझौता मानने से इन्कार करता रहा। १९१३ का वर्ष समस्त बल्गारियनों के मन में एक स्मृति छोड़ गया था।

बलकान की लड़ाइयों के परिणाम, १९१२-१३ (Results of Balkan Wars, 1912-13)—क्षेत्र और जनसंख्या की दृष्टि से केवल तुर्की ही पराजित हुआ। युद्ध से पूर्व उसके यूरोपीय राज्य की जनसंख्या लगभग ६,१३०,२०० थी और क्षेत्रफल ६५,३५० वर्गमील था। जनसंख्या में उसने ४,२३९,२०० खोये और उसके पास ८८२ वर्गमील क्षेत्र बच रहा। ग्रीस ने सबसे अधिक लाभ उठाया। उसकी जनसंख्या २,६६६,००० से ४,३६३,००० तक और उसका क्षेत्रफल २५,०१४ वर्गमील से ४१,९३३ वर्गमील तक बढ़ गए। सर्विया ने लगभग ३० लाख जनसंख्या से ४५ लाख तथा १८,६५० वर्गमील के क्षेत्रफल से ३३,८९१ वर्गमील तक का क्षेत्रफल प्राप्त कर लिया। रूमानिया ने अपनी जनसंख्या में २,८६,००० नागरिक बढ़ा लिये। उसकी जनसंख्या ७५ लाख हो गई जो बलकान राज्यों में सबसे अधिक थी। उसने अपने क्षेत्रफल में २,६८७ वर्गमील का क्षेत्र केवल बल्गारिया से ही छीना था। बल्गारिया को केवल ९,६६३ वर्गमील क्षेत्र तथा १,२५,९९० नागरिकों की जनसंख्या प्राप्त हुई। मोण्टीनीग्रो ने अपनी जनसंख्या २,५०,००० से ४,८०,००० तथा क्षेत्रफल ३,४७४ वर्गमील से ५,६०३ वर्गमील कर लिया।

ग्राण्ट (Grant) और टैम्परले (Temperley) के मतानुसार, "१९१४ के विश्वयुद्ध के कारणों में अन्य किसी भी घटना ने इतना प्रभाव नहीं डाला था जितना कि १९१२-१३ के बलकान (Balkan) के युद्धों ने। एलजिकिरास (Algeciras) बोसनिया या अगादिर इत्यादि की घटनाओं ने केवल परिस्थिति में खलबली ही मचा दी थी क्योंकि इनसे भविष्य में शक्ति-संतुलन बिगड़ने की आशंका थी। किन्तु तुर्की के पतन से तुरन्त ही खतरा पैदा हो गया था क्योंकि इससे वर्तमान में ही शक्ति का संतुलन बिगड़ गया था। सर्विया, बल्गारिया, ग्रीस (Greece) और रूमानिया (Rumania) विजयी राज्यों के रूप में प्रगट हुए थे। जर्मनी द्वारा एक बलवान साथी के रूप में तुर्की की प्रशिक्षित सेनाएँ बुरी तरह पराजित हो चुकी थीं। सर्विया ने लगभग १५ लाख जनसंख्या जीतकर बोसनिया के छिन जाने की क्षतिपूर्ति कर ली

तथा सर्व समर्थक तथा यूगोस्लाव उत्साह का प्राणदाता बन गया था। जिस प्रकार इटली का जन्म पीडमोण्ट से हुआ उसी प्रकार संगठित यूगोस्लाविया का जन्म सर्बिया से होना था। ग्रीस और रूमानिया द्वारा प्राप्त सम्मान सर्बिया से दूसरी श्रेणी का था। तीनों देश बड़ी आशा से भविष्य में उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे जिस दिन इन तीनों की ध्वजाएँ बलकान (Balkan) में अपने-अपने बन्धुओं को संगठित करके एक विशाल ग्रीस, एक विशाल रूमानिया, एक विशाल सर्बिया का निर्माण करेंगे। तुर्की और हैप्सबर्ग के शासन में उनके बन्धु इस प्रतीक्षा में थे कि कब उनके स्वतन्त्र बन्धु उन्हें दासता के घृणित बन्धनों से छुटकारा दिलाएँगे। आस्ट्रिया-हंगरी और तुर्की में निरन्तर प्रगतिशील राष्ट्रीयता की भावना, जिसका वहाँ होना खतरनाक था, बलकान युद्ध का सीधा परिणाम था।"

ग्रीस (Greece)—'यूरोप में तुर्की' के मान चित्र (map) में हुए परिवर्तनों का महत्त्व केवल आँकड़ों में नहीं मापा जा सकता। बुखारेस्ट सन्धि द्वारा किया गया कार्य न तो सम्पूर्ण ही था और न संतोपजनक ही। आधुनिक विद्रोहियों में ग्रीस को सबसे अधिक संतुष्टि हुई थी। उसकी उत्तर-पूर्वी सीमा पर क्षेत्रीय लाभ केवल आँकड़ों में ही अधिक नहीं थे अपितु व्यापारिक और सामरिक महत्त्व के भी थे। ग्रीक जाति के लिए केवल सलोनिका की प्राप्ति ही पर्याप्त थी और उसे इसकी प्राप्ति हो जाने के बाद ही संतुष्ट हो जाना चाहिए था। ग्रीस के जातिगत दावे भले ही कवाला (Kavala) पर रहे हों, किन्तु इसे प्राप्त करने का हठ आज एक बड़ी भारी राजनैतिक भूल मानी जाती है। उत्तर-पश्चिम की सीमा पर ग्रीस को जानीना (Janina) के विशाल दुर्ग सहित एपिरस का बहुत बड़ा भाग मिला था किन्तु फिर भी इसे संतोष नहीं हुआ। कई महीने तक वह दक्षिणी अल्बानिया (Albania) के उस भाग को प्राप्त करने का प्रयत्न करता रहा जिसे बड़ी शक्तियों ने नए स्वतन्त्र अल्बानिया राज्य के लिए पृथक् कर दिया था। इस प्रदेश को प्राप्त करने की माँग पर अधिक बल देने से ग्रीस की इटली से मुठभेड़ हो जाना सम्भव थी। मारक्युस डि सान ग्युलियानो (Marquis di san Giuliano) के कथनानुसार, "इटली ग्रीस के वलोना (Valona) पर अधिकार करने को रोकने के लिए युद्ध भी करने को तैयार है। इस विषय में उसका निर्णय अपरिवर्तनीय है।" इस ओर से भी ग्रीस असंतुष्ट रहा। अब द्वीपों का प्रश्न रह गया। क्रीट पूर्णतः ग्रीस को मिल ही गया था और १४ दिसम्बर, १९१३ को राजा कान्स्टैंटाइन ने युवराज और प्रधान मन्त्री विनिज़िलोस को साथ लेकर औपचारिक रूप से इस द्वीप पर अधिकार कर लिया था। अन्य द्वीपों का प्रश्न बड़ी शक्तियों पर निर्भर था और उन्होंने डारडिनिलेस (Dardanelles) के मुहाने की सुरक्षा के लिए अत्यावश्यक इम्ब्रोस और टिनिडोस के द्वीपों को छोड़कर अन्य सारे द्वीप जो तुर्की से लिये जा सके थे, सब ग्रीस को दे दिए। स्पोरोड्स और रोहड्स द्वीप इटली के अधिकार में रह गए। इस कारण भी ग्रीस को असीम असंतोष था। लगभग ३ लाख ग्रीक अब भी बल्गारिया के थ्रासे और पूर्वी मेसिडोनिया प्रदेश में रह गए थे। ओटोमान साम्राज्य में भी लगभग ३० लाख अमुक्त ग्रीक बन्धु रह गए थे।

रूमानिया (Rumania)—रूमानिया के बलिदानों के अनुपात में उसका लाभ बहुत था। किन्तु उसके बड़े दावों के लिए बलकान युद्धों ने कोई विशेष अवसर प्रदान नहीं किया। अमुक्त रूमानियन आस्ट्रिया-हंगरी या रूस की प्रजा का अंग थे। ट्रांस्लवेनिया (Transylvania) और बुकोविना (Bukovina) और बेसेरेबिया के प्रांतों पर रूमानिया का दावा था।

बल्गारिया (Bulgaria)—१६१३ में बल्गारिया की स्थिति अच्छी नहीं थी, किन्तु यह उनकी अपनी मूर्खता के ही कारण थी। जब लन्दन में सन्धि पर हस्ताक्षर हुए उस समय भाग्य बल्गारिया के लिए उज्ज्वल भविष्य लिये हुए था। ग्रीकों का वैमनस्य और लेटिन जातियों की प्रतिद्वन्द्विता होने पर भी बल्गारिया का बलकान राज्यों में विशेष सम्मान था। बल्गारिया में अपने पड़ोसी राज्यों जैसी सभ्यता नहीं थी और वे बलकान राज्यों का नया सदस्य था किन्तु उसने युद्ध और शान्ति की कला में अपनी कुशाग्रता और तेजस्विता का परिचय दे दिया था। किन्तु उन्होंने एक युग के सतत प्रयत्न द्वारा संचित और सुरक्षित महान् स्थिति को थोड़े से दिनों में उठाकर फेंक दिया। इसके कारण उन्हें जो प्रदेश मिला, वह कट चुका था और बहुत बुरे समुद्री तट वाला था। इससे भी अधिक, उसके हाथ से ओक्रिडा (Ochrida) और मुनास्तर (Monastir) के महत्त्वपूर्ण स्थान निकल गए। इतिहास पर निष्पक्ष दृष्टि डालने से अनुभव होता है कि बल्गारिया के भाग का इतनी सूक्ष्मता से बँटवारा करके सर्बिया और ग्रीस ने पक्षपात और अदूरदर्शिता प्रदर्शित की थी। बल्गारिया को ऐजियन (Aegean) समुद्र की ओर अधिक चौड़ा मार्ग मिलना चाहिए था। ग्रीस द्वारा सलोनिका (Salonika) पर अधिकार करने को बल्गारिया कभी भी सहन नहीं कर सका था।

सर्बिया (Serbia—सर्बिया की बुद्धिमत्तापूर्ण उदारता की न्यूनता प्रगट हो गई। सर्बिया को बहुत लाभ हुआ था। वह नोवी-बाज़ार (Novi-Bazar) का मोण्टीनीग्रो (Montenegro) से बँटवारा करके 'काला पर्वत' के अंचल में बसे हुए दक्षिणी स्लावों (Slavs) के निकट हो गया था। प्राचीन सर्बिया और केन्द्रीय मेसिडोनिया (Macedonia) पर अधिकार हो जाने से उसकी दक्षिणी सीमा ऐजियन (Aegean) समुद्र तक फैल गई थी। किन्तु सर्बिया की प्रमुख समस्या अभी भी हल नहीं हुई थी। वह अब भी स्थल से घिरा हुआ देश था और अब भी उसे ऐंजियन (Aegean) समुद्र की ओर प्राकृतिक मार्ग प्राप्त नहीं हुआ था। अपनी सर्वोच्च महत्त्वाकांक्षा के अपूर्ण रहने के कारण निराश और विजय के मद-में उन्मत्त स्वार्थी परामर्श द्वारा पथ-भ्रष्ट सर्बिया को बल्गारिया को नीचा दिखाने तथा अप्रत्याशित क्षेत्रीय लाभ के लालच में फँस जाने का दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

मोण्टीनीग्रो (Montenegro)—मोण्टीनीग्रो अपनी बन्धु जातियों की सफलता और निराशा का साझीदार रहा। स्कुटारी (Scutari) के छिन जाने से राजा निकलस को इतनी घोर निराशा हुई कि नोवी-बाज़ार के आधे पश्चिमी भाग को प्राप्त करके भी उसे सान्त्वना नहीं मिली। समुद्री मार्ग की दृष्टि से उसकी स्थिति

सर्विया से अच्छा थी। किन्तु उसे भी यूरोप के देशों से अपना निपटारा करना बाकी था।

अल्बानिया (Albania)—बड़ी शक्तियाँ अल्बानिया को स्वशासित देश बनाने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ थीं। इस योजना के अनेक लाभ थे। इससे इटली और आस्ट्रिया-हंगरी की महत्त्वाकांक्षाओं पर रोक लग जाती थी। इससे ग्रीस (Greece) की 'उत्तरी साम्राज्य' की माँग भी समाप्त हो जाती थी। इससे दक्षिणी स्लाव और एड्रियाटिक (Adriatic) के एक बन जाने की भी सम्भावना थी। निकट पूर्व के सम्बन्ध में जर्मनी की योजनाओं में बलकान राज्यों के संगठन से जो उथल-पुथल पैदा हो गई थी उसके पुनर्निर्माण की भी आशा थी। नवम्बर, १९१३ में अल्बानिया को स्वराज्य दे दिया गया किन्तु इस देश में उपद्रव होने लगे और विभिन्न शक्तियों ने इसके प्रदेश पर अधिकार कर लिया था।

जर्मनी ने बुखारेस्ट की सन्धि द्वारा स्थापित शान्ति का श्रेय लिया। विलियम द्वितीय ने रूमानिया के राजा को उसकी 'बुद्धिमत्तापूर्ण तथा कुशल राजनीतिज्ञ जैसी नीति' के लिए बधाई भेजी। उसके शब्दों में, "हम सब के द्वारा किए गए शान्ति स्थापना के प्रयत्नों पर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है।" ग्रीस के राजा को प्रशिया की सेना के सेनापति की उपाधि के चिह्नस्वरूप एक राजदण्ड भेंट किया गया था।

इसमें सन्देह नहीं कि आस्ट्रिया-हंगरी ने युद्ध-क्षेत्र बढ़ाने का भरसक प्रयत्न किया था। बुखारेस्ट की सन्धि पर हस्ताक्षर होने से पहले आस्ट्रिया-हंगरी ने जर्मनी और इटली को सूचित किया था कि वह सर्विया के विरुद्ध कार्यवाही करना चाहता है और अपने कार्य को उसने 'सुरक्षात्मक' बताया था। जर्मनी और इटली दोनों ने ही आस्ट्रिया-हंगरी पर दबाव डाला और आक्रमण स्थगित कर दिया गया। किन्तु यह आक्रमण एक वर्ष पश्चात् प्रथम विश्वयुद्ध के रूप में हुआ था। कहा गया था कि सर्विया ने दो अक्षम्य अपराध किए थे और इनके दण्डस्वरूप उसे पूर्णतः नष्ट कर देना चाहिए। उसने आस्ट्रिया-हंगरी और सलोनिका (Salonika) के बीच की दीवार दृढ़ कर दी थी और स्लाव (Slav) जाति की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करके अपनी प्रतिष्ठा में वृद्धि कर ली थी। सर्विया अकेला नहीं था। रूमानिया और ग्रीस भी आस्ट्रिया-हंगरी की आँख में खटक रहे थे। इसलिए आस्ट्रिया की १९१४ की कार्यवाही आश्चर्यजनक नहीं थी। उसने अपने इस कार्य से यूरोप को एक महान् संघर्ष में फँसा दिया।

Suggested Readings

Davis, W. S.	: *A Short History of the Near East.*
Forbes and Others	: *The Balkans.*
Gooch	: *Modern Europe (1878-1919).*
Helmreich, E. C.	: *The Diplomacy of the Balkan Wars (1912-1913),* 1938.
Marriot, J. A. R.	: *The Eastern Question.*

Millard : *Democracy and the Eastern Question.*
Miller, W. : *The Ottoman Empire and its Successors, 1934.*
Rose : *Development of the European Nations.*
Schevill : *The Balkan Peninsula.*
Seton-Watson, R. W. : *The Rise of Nationality in the Balkans. 1917.*
Seton-Watson, R. W. : *Disraeli, Gladstone and the Eastern Question, 1933.*
Temperley, H. W. V. : *History of Serbia.*
Taylor, A. J. P. : *The Struggle for Mastery in Europe (1848-191), 1954.*

अध्याय २६

अफ्रीका के लिए संघर्ष

(Scramble for Africa)

अफ्रीका का विभाजन (Partitioning of Africa)—पन्द्रहवीं शताब्दी के पश्चात् यूरोप के नाविक देशों ने अफ्रीका के तट पर अनेक स्थानों पर अधिकार कर लिया था। किन्तु अफ्रीका में शक्ति प्राप्त करने के लिए संघर्ष उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ। उस समय तक अफ्रीका को एक 'अन्धेरा-महाद्वीप' (Dark Continent) माना जाता था और सारी दुनिया को इसके विषय में अधिक जानकारी नहीं थी। खोज करने वालों और धर्म-प्रचारकों ने इसका मार्ग दिखा कर अफ्रीका के साधनों की ओर ध्यान आकृष्ट था। स्टेनले (Stanley), लिविंगस्टोन (Livingstone), बेकर, बुरटन (Burton), ग्राण्ट (Grant) और स्पीके (Spcke) के नाम इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध हैं। इन लोगों ने चार प्रसिद्ध नदियों—नील, नाइजर, कांगो और ज़ैम्बेज़ी (Zambezi) के उद्गम का पता लगाया। ईसाई धर्म के प्रचारकों ने दक्षिणी अफ्रीका और गायना तट पर सक्रिय प्रचार किया था। यूरोप के देशों की उत्सुकता और दिलचस्पी स्टेनले की पुस्तकों के प्रकाशन के पश्चात् और भी तीव्र हो गई थी। स्टेनले की प्रसिद्ध पुस्तकें 'मैंने लिविंगस्टोन को किस प्रकार पाया' (How I Found Livingstone), 'अन्धेरे महाद्वीप में से' (Through the Dark Continent) और 'घोर अन्धेरे के अफ्रीका में' (In Darkest Africa) थीं।

बेल्जियम का राजा लियोपोल्ड द्वितीय अफ्रीका में बड़ी गहरी दिलचस्पी रखता था। १८७६ में उसने संसार भर से भूगोलशास्त्रियों का एक सम्मेलन केवल इसलिए बुलाया ताकि वह जान सके कि किस प्रकार अफ्रीका के विषय में खोज की जाए और इसे सभ्य बनाया जाए। अफ्रीका के भीतरी प्रदेश में उद्योग और व्यापार की वृद्धि के लिए सुझाव माँगे गए। एक अन्तर्राष्ट्रीय अफ्रीकन सभा स्थापित की गई और बहुत से देशों में इसकी शाखाएँ खोली गई थीं। स्टेनले की यात्राओं ने अफ्रीकन सभा का ध्यान काँगो की ओर आकर्षित किया और इसकी खोज पर ज़ोर देने का निर्णय किया गया, क्योंकि इस व्यवस्था पर राजा ल्योपोल्ड (Leopold) ने व्यक्तिगत रूप से सारा व्यय भार वहन किया था। काँगो-फ्री-स्टेट का प्रदेश राजा ल्योपोल्ड की व्यक्तिगत सम्पत्ति हो गई थी। ल्योपोल्ड के लाभों से अन्य देशों को बड़ी ईर्ष्या हुई थी। फ्रांस और पुर्तगाल ने काँगो (Congo) पर अपने दावे पेश किए। बहुत सी यूरोपीय जातियों ने अफ्रीका में सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए अफ्रीका

के भिन्न-भिन्न भागों में अपने प्रतिनिधि भेजे। आदिवासियों के सरदारों से अनेक समझौते किए गए और इस प्रकार प्रभाव-क्षेत्रों का निर्माण किया गया। १८८४-८५ में बर्लिन में एक सम्मेलन हुआ और उस समय तक आदिवासी सरदारों से किए गए सारे समझौतों को मान्यता दी जा चुकी थी। इसके बाद भी एबिसीनिया (Abyssinia) और लाइबेरिया को छोड़ कर अफ्रीका में अधिकार जमाने का क्रम जारी रहा। यूरोप के विभिन्न राष्ट्रों ने लगभग सारे अफ्रीका पर अधिकार कर लिया था।

PARTITION OF AFRICA
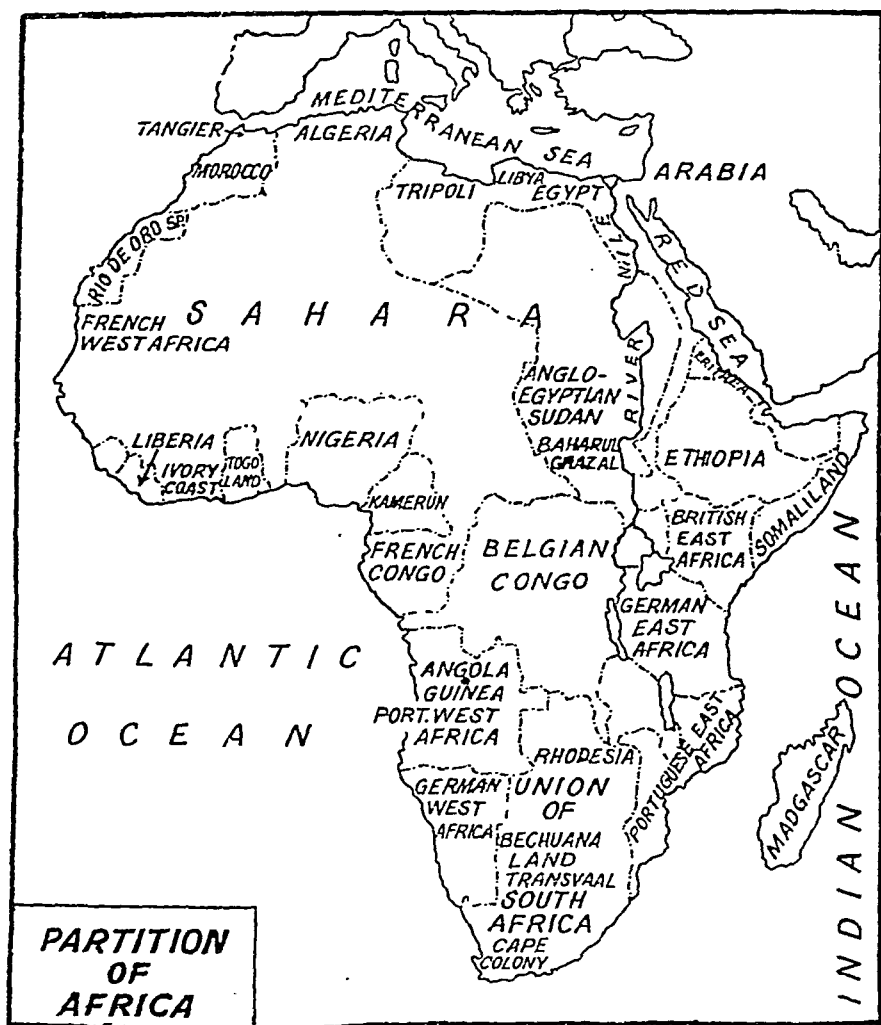
१९०८ तक कांगो-फ्री-स्टेट (Congo-Free-State) बेल्जियम के राजा लियोपोल्ड (Leopold) द्वितीय की निजी सम्पत्ति बनी रही। किन्तु इस व्यवस्था की बड़ी आलोचना हुई। परिणामतः १९०८ में बेल्जियम की सरकार ने राजा से यह

प्रदेश ले लिया। पुर्तगाल ने भी बेल्जियम और कांगो के दक्षिण में स्थित अंगोला (Angola) के प्रदेश पर अपना अधिकार जमा लिया। पुर्तगाल ने मोज़म्बीक (Mozambique) अर्थात् पुर्तगाली पूर्वी अफ्रीका पर भी अधिकार कर लिया था। इटली ने इरिट्रिया (Eritrea) और सोमालीलैण्ड को हथिया लिया था। उसने एबिसीनिया पर अधिकार करने का प्रयत्न किया किन्तु अडोवा के युद्ध में उसकी पराजय हुई। इटली ट्यूनिस पर भी अधिकार जमाना चाहता था किन्तु इसने इस मामले में देर कर दी। फ्रांस ने १८८१ में इसे अपनी संरक्षकता में ले लिया था। १६११-१२ में इटली तुर्की के विरुद्ध लड़ा और ट्रिपोली तथा सिरेनेका पर अधिकार कर लिया। जिब्राल्टर के सामने के तट पर स्पेन ने भी उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका में एक प्रदेश पर अधिकार कर लिया। यद्यपि बिस्मार्क औपनिवेशिक क्षेत्र में प्रवेश नहीं करना चाहता था तथापि बाद में उसका विचार बदल गया। जर्मनी ने दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका, दक्षिण-पूर्वी अफ्रीका, कैमेरून (Cameroons) और टोगोलैण्ड (Togoland) पर अधिकार कर लिया।

फ्रांस लुई फिलिप के राज्यकाल में अलजीरिया पर अधिकार कर चुका था। नेपोलियन तृतीय के राज्यकाल में इस प्रदेश को और बढ़ाया गया था। १८८१ में फ्रांस ने ट्यूनिस (Tunis) पर अपनी संरक्षकता स्थापित कर दी। मिस्र पर फ्रांस और ब्रिटेन का दोहरा अधिकार था किन्तु १८८२ में फ्रांस ने ब्रिटेन के साथ अरबी (Arabi) के विद्रोह का दमन करने में सहयोग करने से इन्कार कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि १८८२ में मिस्र पर ब्रिटेन का एकाधिपत्य हो गया और फ्रांस को निकाल दिया गया। फ्रांस का उत्तर और पश्चिम में एक बड़ा औपनिवेशिक साम्राज्य था और इसकी इच्छा अफ्रीका के पूर्व में घुसने की थी। इस उद्देश्य से फ्रांस ने मारचण्ड (Marchand) को भेजा। १८६८ में प्रसिद्ध फशोदा संकट उत्पन्न हुआ। फ्रांस और इंग्लैण्ड में युद्ध की सम्भावना हो गई थी किन्तु डैलकासे (Delcasse) और सॉलिसबरी के प्रयत्नों से यह दुर्घटना टल गई। १८६६ के समझौते द्वारा अफ्रीका में फ्रांस और इंग्लैण्ड के प्रभाव-क्षेत्रों का स्पष्ट बँटवारा कर दिया गया। १६०४ की मैत्री सन्धि (Entente Cordiale) के अनुसार इंग्लैण्ड को मिस्र के मामलों में हस्तक्षेप करने का खुला अधिकार दे दिया गया, किन्तु शर्त यह थी कि उसे मोरक्को में उसकी सहायता करनी पड़ेगी। जब फ्रांस ने मोरक्को पर अधिकार करने का प्रयत्न किया तो १६०५-६, १६०८ और १६११ में झगड़े हुए। १६१२ में मोरक्को वस्तुतः फ्रांस की संरक्षकता में आ गया। १८६६ में फ्रांस ने मैडागास्कर (Madagascar) के द्वीप पर अधिकार कर लिया। इसका सारे मरु प्रदेश पर प्रभाव था। सैनेगल (Senegal), आइवरी कोस्ट और कांगो (Congo) में भी उसके प्रदेश थे।

दक्षिणी अफ्रीका (South Africa)—दक्षिणी अफ्रीका में बुशमैन (Bushman), हाटनटाट (Hottentots), काफिर (Kafirs), जूलू (Zulus) और अन्य जातियों का यरोपीय जातियों से संघर्ष हुआ था। डच और ब्रिटिश सरकार

में भी संघर्ष चल रहा था। डच वोग्रर जाति निर्दयी ग्रौर पिछड़ी हुई थी किन्तु ब्रिटिश उपनिवेशों के निवासी, पदाधिकारी ग्रौर सिपाही सभ्य थे ग्रौर इन्हें ब्रिटिश सरकार का समर्थन भी प्राप्त था। काफिरों ग्रौर यूरोपियनों में सीमान्त युद्ध हुए थे। १८३६-४० के ग्रेट-ट्रेक (Great Trek) का परिणाम यह हुग्रा कि दक्षिणी ब्रिटिश ग्रफ्रीका से ७००० डच वोग्रर ग्रोरेन्ज ग्रौर वाल (Vaal) नदी की घाटियों में जाकर वस गए। वोग्ररों के प्रति ब्रिटेन की नीति ग्रस्थिर थी। कुछ समय तक उन्हें स्वतंत्र छोड़ दिया गया था। १८४२ में ब्रिटिश सरकार ने नेटाल पर ग्रपना ग्रधिकार जताया ग्रौर १८४८ में ब्रिटेन ने 'ग्रोरेन्ज रिवर' (Orange river) कालोनी को ग्रपने प्रदेश में मिला लिया था। वोग्रर एक वार फिर ट्रांसवाल की ग्रोर चले। ब्रिटेन ने ट्रांसवाल की स्वतन्त्रता को मान्यता दे दी ग्रौर वोग्ररों को ग्रोरेन्ज (Orange) नदी की वस्तियाँ वापिस कर दीं। डिज़रेली (Disraeli) ब्रिटेन के नियन्त्रण में दक्षिणी ग्रफ्रीका के सारे राज्यों का एक संघ वनाना चाहता था ग्रौर उसकी इच्छा थी कि ट्रांसवाल के वोग्रर भी इस संघ के सदस्य वनें। इस कार्य के लिए उसने सर वार्टल फ्रेरी (Borrtal Frere) को नियुक्त किया ग्रौर वड़े झगड़ों के पश्चात् ट्रांसवाल पर भी ग्रधिकार कर लिया गया। किन्तु १६ दिसम्वर, १८८० को वोग्ररों ने क्रूगर के नेतृत्व में ग्रपने को स्वतन्त्र घोपित कर दिया। युद्ध थोड़े ही दिन चला ग्रौर चार पराजयों के पश्चात् ब्रिटेन की सेनाएँ पीछे हट गईं। ग्रन्तिम हार माजुवा पर्वत पर फरवरी, १८८१ में हुई। इस हार का सरलता से प्रतिकार किया जा सकता था। जनरल रावर्ट्स को ग्रसाधारण सेना के साथ भारतवर्ष से ग्रफ्रीका भेजा जा चुका था। किन्तु ब्रिटिश सरकार ने ग्रपना विचार वदल दिया ग्रौर ग्लैडस्टोन (Gladstone) इस निर्णय पर पहुँचा कि वोग्रर ग्रपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए कटिवद्ध हैं ग्रौर केवल ब्रिटेन की शस्त्र-शक्ति के सम्मान की रक्षा के लिए रक्तपात करना व्यर्थ है। कोई शक्ति वोग्ररों के स्वतन्त्रता प्राप्त करने के दृढ़ संकल्प को वदल नहीं सकती थी। इन परिस्थितियों में मार्च, १८८१ में वोग्ररों के साथ सन्धि कर ली गई। ब्रिटेन के संरक्षण में वोग्ररों को पूर्ण स्वाधीनता प्रदान कर दी गई।

ग्लैडस्टोन की शान्तिप्रिय नीति को वोग्ररों ने ब्रिटिश सरकार की कमजोरी समझा ग्रौर उन्होंने क्रूगर (Kruger) की ग्रध्यक्षता में एक शक्तिशाली स्वाधीनता ग्रान्दोलन चलाया। प्रतिक्रियास्वरूप ब्रिटिश उपनिवेशों के निवासियों ने भी ग्रान्दोलन किया ग्रौर इसका नेता सिसिल रोहड्स (Cecil Rhodes) था। रोहड्स एक कट्टर साम्राज्यवादी व्यक्ति था ग्रौर वह केप (Cape) से मिस्र की राजधानी काहिरा तक ब्रिटिश साम्राज्य के स्वप्न देखा करता था। उसकी देख-रेख ग्रौर संरक्षकता में एक कम्पनी वनाई गई ग्रौर इस कम्पनी ने उस प्रदेश पर, जो रोडेशिया के नाम से प्रसिद्ध है, ग्रधिकार कर लिया। डचों को ग्रपनी स्थिति खतरे में प्रतीत हुई। ट्रांसवाल में हीरे ग्रौर सोने की खानों का भी ग्राकर्पण था। १८९५ में डा० जेमिसन (Jameson) के नेतृत्व में ट्रांसवाल पर ग्राक्रमण हुग्रा किन्तु यह ग्राक्रमण ग्रसफल रहा। ग्राक्रमणकारियों पर कावू पा लिया गया। जर्मन सम्राट् विलियम द्वितीय ने राष्ट्रपति क्रूगर (Kruger) को वधाई का तार भेजा जिसके कारण ब्रिटेन ग्रौर

जर्मनी के बीच वहुत मनमुटाव पैदा हो गया। पराजय के बाद भी आधिपत्य प्राप्त करने का संघर्ष जारी रहा और अन्त में १८९९-१९०१ में बोअर-युद्ध हुआ। बोअरों ने घोर युद्ध किया किन्तु अन्त में वे पराजित हुए। १९०२ में शान्ति स्थापित हुई और ट्रांसवाल और ओरेञ्ज (Orange) के दोनों गणतन्त्र ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिए गए। शान्ति के पाँच वर्ष पश्चात् ट्रांसवाल और ओरेञ्ज-फ्री-स्टेट को स्वायत्त शासन सौंप दिया गया। १९०९ में दक्षिणी अफ्रीका के सारे ब्रिटिश उपनिवेशों को दक्षिणी अफ्रीका के संघ में संगठित कर लिया गया। १९१४ में जब प्रथम विश्व-युद्ध हुआ तब स्मट्स (Smuts) और बोथा (Botha) के नेतृत्व में वोअर सेनाओं ने जर्मन पूर्वी अफ्रीका पर अधिकार कर लिया।

मिस्र (Egypt)—नेपोलियन प्रथम के मिस्र छोड़ने के पश्चात् यहाँ अराज-कता फैल गई थी किन्तु मेहमतअली ने व्यक्तिगत प्रयत्नों और साधनों से इस देश पर अपना अधिकार कर लिया। उसने ग्रीक लोगों के स्वातन्त्र्य-युद्ध के समय सुलतान की सहायता की और सुलतान ने उसकी सेवाओं के पुरस्कारस्वरूप उसे क्रीट (Crete) का द्वीप प्रदान किया। वह इससे संतुष्ट नहीं हुआ और उसने सीरिया और एशिया-माइनर (Asia Minor) पर भी अधिकार कर लिया था। उसने कुस्तुनतुनिया पर भी आक्रमण करने की सोची, किन्तु सुलतान के रूस से १८३३ में अंक्यार-स्कैलैसी (Unkiar-Skelessi) की सन्धि कर लेने के कारण उसे चुप रहना पड़ा। सुलतान ने पुनः लड़ाई लड़ी किन्तु वह हार गया और युद्ध में मारा गया। १८४० में लन्दन-सन्धि के कारण यूरोप की शक्तियों ने युवक सुलतान की रक्षा की। मेहमत-अली को सीरिया (Syria) से निकाल दिया गया, किन्तु १८४१ के समझौते के पश्चात् उसे मिस्र का वंशानुगत राज्यपाल माना गया। १८४७ में मृत्यु से पहले मेहमतअली ने मिस्र की बहुत उन्नति की। उसने देश में नहरों, सड़कों, कारखानों, शस्त्रागारों, स्कूलों और हस्पतालों को बनवाया। उसने नील नदी के डेल्टे में कपास की खेती आरम्भ करवाई जो कालान्तर में देश में धन और समृद्धि का मुख्य स्रोत बनी।

मेहमतअली के बाद उसका पुत्र इब्राहीम गद्दी पर बैठा किन्तु कुछ ही महीनों के पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। १८४९ में अब्बास गद्दी पर बैठा और उसने पाँच वर्ष तक राज्य किया। वह निर्दयी, विलासी, अस्थिर विचारों का व्यक्ति था और एक गुलाम ने उसकी हत्या कर डाली थी। उसका उत्तराधिकारी सईद बना जिसने १८५४ से १८६३ तक राज्य किया। देश में रेलें बिछाने का कार्य आरम्भ हुआ और १८५५ में एलेग्जेण्ड्रिया और काहिरा के बीच रेल यातायात चालू हो गया। स्वेज नहर की खुदाई भी इसके ही राज्यकाल में आरम्भ हुई थी। सईद ने प्राचीन इमारतों की खोज और सुरक्षा को प्रोत्साहन दिया और काहिरा में एक अजायब घर बनवाया था। उसने १८६२ में ३,२९२,८०० पौण्ड ८ प्रतिशत व्याज पर उधार लिया किन्तु इस ऋण को चुकाने का कोई प्रबन्ध नहीं किया।

इस्माईल (Ismail)—इब्राहीम का पुत्र इस्माईल १८६३ में गद्दी पर

बैठा। उसने रेल, तार, प्रकाशगृह (Light House), बन्दरगाहें और स्वेज़ नहर बनवाने पर बहुत-सा धन व्यय किया। १८६६ में स्वेज नहर यातायात के लिए खोल दी गई। मिस्र ने नहर के बनाने का आधा खर्च वहन किया था। इस अवसर पर बहुत से राजा, शासक, यूरोप से मिस्र में आए और बहुत-सा धन खर्च किया गया। सूडान के युद्ध में भी बहुत-सा धन खर्च किया गया। शाही महलों के बनवाने पर भी बहुत खर्च किया गया। खर्च के मामलों में इस्माईल बहुत ही लापरवाह था और आय-व्यय का कोई खाता नहीं रखता था। वह स्वयं ही अपना वित्त-मन्त्री था। यद्यपि वह अपने को बहुत चतुर समझता था किन्तु अन्य लोग उसे ठग लिया करते थे। प्रत्येक ऋण पर राज्य की आय का लगभग १२ प्रतिशत व्यय होता था। १८६६ के रेल ऋण पर २६·६ प्रतिशत व्यय हुआ। १८७३ के ६२० लाख पौण्ड के ऋण के लिए राज्य की सारी सम्पत्ति को जमानत पर लिया गया था किन्तु मिस्र के राष्ट्रीय कोष में कुल २०७ लाख पौण्ड ही प्राप्त हुआ। देश की आर्थिक

अवस्था इतनी शोचनीय हो गई कि ८ अप्रैल, १८७६ को राज्य की हुण्डियों (Treasury Bills) का भुगतान रोक दिया गया।

२ मई, १८७६ को इस्माइल ने एक सार्वजनिक-ऋण आयोग (Public Debt Commission) बैठाया। फ्रांस, आस्ट्रिया और इटली ने अपने-अपने सदस्यों की नियुक्ति की किन्तु ब्रिटेन ने अपना कोई प्रतिनिधि नहीं भेजा। अन्ततः मिस्र पर ब्रिटेन और फ्रांस का दोहरा नियन्त्रण स्थापित कर दिया गया।

१८७८ में ब्रिटेन ने फ्रांस के साथ सहयोग किया और मिस्र की आर्थिक अवस्था के विषय में पूरी जाँच कराने की माँग की। इस्माईल को झुकना पड़ा। उसे मिस्र में उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल के सिद्धान्त को भी मानना पड़ा। दोहरा नियंत्रण रोक दिया और उत्तरदायी मन्त्रियों ने पाँच वर्ष तक शासन-भार सम्भाला। खेडीव (Khedive) की सारी सम्पत्ति राज्य ने ले ली और इस पर नए ऋण उगाहे गए।

१८७९ के आरम्भ में इस्माईल ने मन्त्रियों से त्यागपत्र माँगे थे। इससे अत्यन्त जटिल परिस्थिति उत्पन्न हो गई। इटली खेदीव (Khedive) के प्रति मैत्री भाव रखता था किन्तु रूस निष्पक्ष रहा। तुर्की स्थिति का अध्ययन करता रहा। इंग्लैण्ड, फ्रांस और जर्मनी ने संगठन करके सुलतान से माँग की कि इस्माईल को अपदस्थ कर दिया जाए। जून, १८७९ में खेदीव को हटाकर उसके पुत्र तौफीक को उसके पद पर नियुक्त कर दिया गया। तौफीक (Tewfik) पाशा को एक दिवालिया राज्य, अनुशासनहीन सेना और असंतुष्ट प्रजा प्राप्त हुई थी। युवावस्था और अनुभवहीनता के कारण वह परिस्थिति को सँभाल नहीं पाया। तुर्की ने मिस्र पर अपना नियन्त्रण करने का प्रयत्न किया। मिस्र पर इंग्लैण्ड और फ्रांस का नियन्त्रण पुनः लागू हो गया। देश की आधी आय राज्य के ऋण को निवटाने के लिए सुरक्षित कर दी गई थी। १८८१ तक परिस्थिति सुधरती प्रतीत होती थी किन्तु इसी वर्ष विद्रोहियों के कहने पर तौफीक ने अपने युद्ध मन्त्री को पदच्युत कर दिया।

१८८१ के लगभग देश में 'मिस्र, मिस्र वालों का' आन्दोलन चलाया गया था। सितम्बर, १८८१ में एक मिस्र अधिकारी, अरबी (Arabi) ने ५००० सिपाहियों के साथ शाही महलों को घेर लिया और सेना की संख्या में वृद्धि, मन्त्रिमण्डल में परिवर्तन और राष्ट्रीय विधान सभा की नियुक्ति की माँग की। सरकार ने माँगें मान लीं और अरबी की पदोन्नति हुई। अरबी राष्ट्रीय नायक बन गया। किन्तु तुर्की मिशन के आ जाने से समस्या और भी जटिल हो गई।

गेम्बैट्टा (Gambetta) ने तौफीक की सुरक्षा का प्रबन्ध करने के लिए ब्रिटेन को निमन्त्रण भेजा और संयुक्त सहायता देने का प्रस्ताव किया। यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और तौफीक को पहुँचा दिया गया। किन्तु जनवरी, १८८२ का यह प्रस्ताव एक दुर्भाग्यपूर्ण क़दम था। तौफीक कृतज्ञ नहीं हुआ और इस विदेशी हस्तक्षेप से सभी लोग रुष्ट हो गए थे। राष्ट्रीय दल, सेना और मन्त्रिमण्डल सभी इंग्लैण्ड और फ्रांस के विरुद्ध संगठित हो गए थे। डा० गूच (Gooch) के मतानुसार, "एंग्लो-फ्रैन्च प्रस्ताव प्रथम श्रेणी की त्रुटि थी। इससे तौफीक को नहीं अपितु अरबी को सहायता मिली, वह देश का नेता बन गया था। उसे युद्ध मन्त्री नियुक्त कर दिया गया और नियन्त्रकों के अधिकार कम कर दिए गए।" लार्ड क्रोमर (Cromer) के अनुसार, "जिस घड़ी यह प्रस्ताव भेजा गया उसी घड़ी से ही विदेशी हस्तक्षेप एक अनिवार्य आवश्यकता हो गई थी।" प्रस्ताव के भेजने के पश्चात् गेम्बैट्टा (Gambetta) का पतन हो गया और उसके स्थान पर फ्रेसिन्ट (Freycinet) ने कार्यभार सँभाला। सुलतान मिस्र में विदेशी शक्तियों के हस्तक्षेप के विरुद्ध था। विस्मार्क को इस विषय में अधिक दिलचस्पी नहीं थी। उसने कहा कि मिस्र दो पश्चिमी शक्तियों की साझे की रोटी हैं जिसको प्राप्त करने लिए दोनों सामूहिक रूप से प्रयत्न करेंगे किन्तु अन्त में लूट पर लड़ेंगे।

जून, १८८२ में एलेग्जेण्ड्रिया में दंगे हुए और बहुत से लोग मारे गए। फ्रेसिन्ट

अरवी (Arabi) के साथ समझौता करने की सोचने लगा किन्तु ब्रिटिश सरकार ने अरवी को कुचलने का निर्णय किया क्योंकि मिस्र की सरकार एलेग्जेण्ड्रिया (Alexandria) की वन्दरगाह की मोर्चावन्दी करने लगी थी। इस वन्दरगाह में जहाजों का ठहराना असुरक्षित हो गया था। ब्रिटिश दस्तों को आदेश दिया गया कि यदि तोपों की मोर्चावन्दी जारी रहे तो मिट्टी की दीवारों को वारूद से उड़ा दिया जाय। फ्रांस से सहयोग करने के लिए कहा गया किन्तु उसने इन्कार कर दिया और फ्रांस का जहाजी वेड़ा एलेग्जेण्ड्रिया (Alexandria) से दूर चला गया। फ्रांस की सरकार के असहयोग के अनेक कारण वताए जाते हैं। प्रथम यह कि एलेग्जेण्ड्रिया पर गोलावारी युद्ध-कार्य था जो चैम्वर आफ डेपुटीज़ (Chamber of Deputies) की अनुमति के विना नहीं किया जा सकता था। फ्रांस ने १८८१ में ट्यूनिस को अपनी संरक्षकता में ले लिया था और उसके सारे साधन इस ओर लगाए जा रहे थे। फ्रांस को यह भी डर था कि विस्मार्क मिस्र में फ्रांस के लिए जाल न विछा रहा हो। इस प्रकार मिस्र में इंग्लैण्ड अकेला रह गया। इटली को ब्रिटेन ने सहायता के लिए कहा किन्तु उसने भी इन्कार कर दिया। कहा जाता है कि इस असहयोग पर ब्रिटेन के विदेश मन्त्री ने प्रसन्न हो कर कहा था, "हमने उपयुक्त कार्य किया है। हम ने औरों को अपने साथ सहयोग देने को कहा किन्तु हमें अव एक साथी से होने वाली असुविधाएँ नहीं भोगनी पड़ेंगी।" सामूहिक कार्यवाही के कारण भविष्य में झगड़े की आशंका थी। सुलतान ने सेना भेजने को कहा किन्तु उसकी सहायता स्वीकार नहीं की गई। इंग्लैण्ड ने घोषणा की कि स्वेज नहर की सुरक्षा हमारे हाथ में रहेगी।

जनरल वुल्ज़ले (Wolseley) पोर्ट सईद से जलमार्ग से आया और उसने सितम्वर, १८८२ में तेल-एल-काविर (Tel-el-Kabir) की लड़ाई में अरवी को परास्त किया। इस प्रकार इंग्लैण्ड ने परिस्थिति पर काबू पा लिया। विस्मार्क इंग्लैण्ड की विजय पर वड़ा प्रसन्न हुआ और उसने कहा, "हमारे लिए मिस्र के भाग्य की अपेक्षा ब्रिटिश साम्राज्य की मैत्री अधिक महत्त्वपूर्ण है।" उसने इंग्लैण्ड द्वारा मिस्र को अपने साम्राज्य में मिलाने का विरोध तो नहीं किया किन्तु वह इस प्रकार की सलाह भी देने को प्रस्तुत नहीं था। फ्रांस को ऋण-आयोग की अध्यक्षता देने का प्रस्ताव किया गया, किन्तु फ्रांस ने इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि खजाञ्ची की पदवी फ्रांस की शान के विरुद्ध है। दोनों देशों में कटु पत्र-व्यवहार हुआ और उसके पश्चात् फ्रांस को मनचाहा कार्यक्रम अपनाने की छूट मिल गई। १९०४ तक मिस्र के मामले में दोनों देशों में तनाव वना रहा, किन्तु मैत्री संगठन (Entente-Cordiale) के पश्चात् इंग्लैण्ड को मिस्र में और फ्रांस को मोरक्को में पूर्ण स्वतन्त्रता मिल गई।

जव ब्रिटेन मिस्र में अपनी शक्ति का संगठन कर रहा था उस समय सूडान में मिस्र के शासन के विरुद्ध मेहदी (Mahdi) ने विद्रोह कर दिया था। मेहदी ने मिस्र की सेना को पराजित कर दिया था। ब्रिटिश सरकार असमंजस में पड़ गई कि

क्या करे। थोड़े विचार के पश्चात् यह निर्णय किया गया कि सूडान (Sudan) को छोड़ दिया जाए अतः इस कार्य के लिए जनरल गोरडन (Gordon) को नियुक्त किया गया। दुर्भाग्य से गोरडन आदेशों से अधिक आगे बढ़ गया और सूडान में घिर गया। इससे पहले कि सहायता पहुँच पाती उसे बन्दी बना लिया गया और खारतूम (Khartum) में मार डाला गया। मेहदी ने आतंक और विनाश का राज्य फैला दिया था। ब्रिटेन सावधानी से प्रतीक्षा कर रहा था। किन्तु अन्त में किचनर (Kitchener) को जीतने के लिए भेजा गया। जीतने के पश्चात् सूडान को ब्रिटेन और फ्रांस के दोहरे अधिकार रखा में गया।

१८८२ में जब इंग्लैण्ड ने मिस्र पर अधिकार किया ग्लैडस्टोन (Gladstone) की सरकार ने घोषणा की थी कि ब्रिटेन मिस्र में अधिक दिन नहीं रहेगा। कुस्तुन-तुनिया से लार्ड डफरिन को काहिरा भेजा गया कि वह खेदीव को उसके राज्य की पुनर्स्थापना के विषय में सलाह दे। अरबी पाशा (Arabi Pasha) पर मुकद्दमा चला कर जीवन भर के लिए लंका में निष्कासित कर दिया गया था। लार्ड डफरिन ने मिस्र की क्रमशः उन्नति का सुझाव दिया कि मिस्र में केन्द्रित स्वेच्छाचारी राजशाही प्रणाली न होकर जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों का शासन स्थापित हो। विधानसभा की स्थापना हो किन्तु वह केवल एक सलाहकार समिति का कार्य करे। विदेशियों की सहायता से सेना, पुलिस, न्यायालय और कर व्यवस्था में सुधार किए जाएँ। ग्रेनविले ने घोषणा की, "सम्राट् की सरकार इस बात की बड़ी इच्छुक है कि देश की अवस्था तथा खेदीव (Khedive) के शासन को बनाए रखने के लिए सुव्यवस्था होने पर शीघ्रातिशीघ्र मिस्र पर से अपना अधिकार हटा लेगी।" स्वेज़ नहर युद्ध की अवस्था में तटस्थ तथा शान्ति में सारे देशों के लिए खुली रहेगी।

१८८४ में लार्ड नार्थब्रुक ने मिस्र की यात्रा की और ब्रिटिश सरकार को दो रिपोर्टें पेश कीं, जिनमें उसने सुझाव दिए थे। किन्तु इन सुझावों को सरकार ने स्वीकार नहीं किया। १८८८ में स्वेज़-नहर-सन्धि हुई जिसमें फ्रांस भी संतुष्ट हुआ। किन्तु ब्रिटेन ने युद्ध में स्वेज़ नहर को बन्द कर देने का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखा था।

मिस्र में क्रोमर (Cromer in Egypt)—१८८२ में ब्रिटेन ने बेरिंग (Baring) को मिस्र में अपना प्रमुख सलाहकार और प्रतिनिधि नियुक्त किया तथा वह १९०७ तक इस पद पर रहा। बाद में यही व्यक्ति लार्ड क्रोमर (Cromer) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अपनी पदावधि में उसने बहुत से ऐसे कार्य किये जिससे देश में सुख और समृद्धि की उन्नति हुई थी। देश में कानून और व्यवस्था स्थापित की गई और इसे सुरक्षित रखा गया। देश के घाटे के आय-व्यय लेखे को लाभमय बना दिया गया। पुलिस व्यवस्था आधुनिक परिपाटी पर व्यवस्थित हुई। देश में शिक्षा और स्वास्थ्य की उन्नति हुई। मिस्र की जनता को शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेश यात्रा करने में प्रोत्साहन दिया गया। विदेशों से लौटने वाले मिस्र के नागरिक

अपने साथ प्रगति और राष्ट्रीयता के विचार लाए। शासन से भ्रष्टाचार समाप्त कर दिए गए और अनुचित करों को समाप्त कर दिया गया।

प्रथम विश्वयुद्ध (World War I)—इस प्रकार की परिस्थितियों में १६१४ में प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ था। अभी तक मिस्र नाममात्र को तुर्की के अधिकार में था। तुर्की इंग्लैण्ड के विरुद्ध युद्ध कर रहा था इसलिए मिस्र पर इसके अधिकार को समाप्त करने का निर्णय किया गया। १८ दिसंम्बर, १६१४ को ब्रिटेन ने घोषणा की, "तुर्की के कार्यों से युद्ध की जो स्थिति पैदा हो गई है उस पर विचार करते हुए मिस्र को सम्राट् के संरक्षण में रखा जा रहा है और आज के पश्चात् मिस्र ब्रिटेन का संरक्षित देश माना जाएगा।" खेदीव (Khedive), अब्बास हिलेमी (Abbas Hilmi) जो उस समय कुस्तुनतुनिया में था, को गद्दी पर से हटा करके उसके चाचा हुसेन कामिल (Hussein Kiamil) को मिस्र का भावी राजा घोषित किया और सुलतान की उपाधि दी गई। ब्रिटेन के इस कार्य से मिस्र के राष्ट्रवादी बड़े रुष्ट हुए। उनका विचार था कि बार-बार मिस्र से अपना अधिकार हटाने की घोषणा करने पर भी ब्रिटेन मिस्र पर अपना अधिकार क्रमशः दृढ़ करता जा रहा था। क्षोभ और असंतोष होने पर भी युद्धकाल में मिस्र में शान्ति रही थी। तुर्की और जर्मनी ने स्वेज़ नहर पर अधिकार करने के उद्देश्य से मिस्र पर दो बार आक्रमण किए किन्तु दोनों ही प्रयत्न असफल रहे। १६१४ की जुलाई में सुलतान की हत्या करने का भी प्रयत्न किया गया था।

युद्ध के पश्चात् जब मित्रराष्ट्रों ने आत्म-निर्णय (self-determination) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तो मिस्र में बहुत गड़बड़ हुई। मिस्र की माँग थी कि यह सिद्धान्त उसके लिए भी लागू होना चाहिए और उसे अपना भविष्य स्वयं निर्णय करने का अधिकार मिलना चाहिए। मिस्र ने पूर्ण स्वराज्य, स्वेज़ नहर को तटस्थ और सूडान पर अधिकार की माँगें कीं। किन्तु ब्रिटिश सरकार मिस्र पर से अपना अधिकार हटाने के लिए तैयार नहीं थी। मिस्र पर उसके संरक्षण को मित्रराष्ट्रों ने मान्यता दे दी थी। १६२० की तुर्की और मित्रराष्ट्रों के बीच हुई सन्धि में भी इसे मान्यता दी गई थी।

जगलुल (Zuglul)—जगलुल मिस्र के राष्ट्रवादियों का नेता था। क्योंकि उसने अपना आन्दोलन बन्द नहीं किया अतः उसे गिरफ्तार करके मार्च, १६१६ में माल्टा द्वीप में नजरबन्द कर दिया गया। किन्तु इससे स्वातन्त्र्य आन्दोलन का दमन होने की अपेक्षा देश में ब्रिटिश विरोधी भावना और भी प्रबल हो गई। रेल-सड़क यातायात नष्ट कर दिए गए। जगह-जगह लूट-मार और अग्निकाण्ड हुए। ब्रिटिश नागरिकों और सैनिकों पर हमले किए गए। विदेशी बस्तियों पर घेरा डाल दिया गया। काहिरा (Cairo) का संसार से सम्बन्ध तोड़ दिया गया। यद्यपि विद्रोह को कुचल दिया गया तो भी ब्रिटिश सरकार को यह स्पष्ट ज्ञात हो गया कि मिस्र पर शासन करना सरल कार्य नहीं। लार्ड मिलनर (Milner) की अध्यक्षता में एक शिष्टमण्डल मिस्र भेजा गया कि वह "अशान्ति के कारणों का पता लगाए और देश

की वर्त्तमान स्थिति के विषय में सूचना दे और किस प्रकार की स्थिति के संरक्षण में शान्ति और समृद्धि का विकास हो सकता है तथा स्वराज्य के लिए किस प्रकार की प्रणाली अपनाई जाये जिससे विदेशी स्वार्थों की सुरक्षा हो सके।" मिस्र निवासियों ने इस शिष्टमण्डल का बहिष्कार कर दिया था। शिष्टमण्डल ने एक उदार रिपोर्ट दी और देश में स्वायत्त शासन की स्थापना के लिए बहुत से सुझाव दिए थे। देश में उपद्रव निरन्तर चालू रहे। जनरल एलनबी (Allenby) के नेतृत्व में ६० हज़ार सैनिकों की सेना मिस्र भेजी गई। यद्यपि उसने विद्रोह को कुचल दिया किन्तु उसका विचार था कि मिस्र को स्वराज्य दे देना चाहिए अथवा ब्रिटेन को शक्ति प्रयोग द्वारा इसे अपने साम्राज्य में मिला लेना चाहिए। १९२१ में मिस्र से एक सन्धि हुई जिसमें घोषणा की गई कि "मिस्र एक स्वतन्त्र और सर्वाधिकार-सम्पन्न राष्ट्र है।" सुलतान अहमद फुआद (Sultan Ahmed Fuad) को मिस्र का शासक माना गया। ज़गलुल इत्यादि राष्ट्रवादी नेताओं ने इस सन्धि को मानने से इन्कार कर दिया। किन्तु फरवरी, १९२२ में ब्रिटेन ने इस सन्धि को क्रियान्वित कर दिया। ब्रिटिश सरकार को ज़गलुल को मुक्त करना पड़ा और वह मिस्र का प्रधान मन्त्री बना। मिस्र ने अपना शासन एक सर्वाधिकारसम्पन्न देश के अनुसार चलाना आरम्भ कर दिया किन्तु ब्रिटेन अभी तक यही समझता रहा कि मिस्र ब्रिटिश साम्राज्य का एक अङ्ग है।

१९२७ में ज़गलुल की मृत्यु हो गई किन्तु उसके अनुयायियों ने उसके कार्य-क्रम को आगे चलाया। फुआद (Fuad) के राज्यकाल में मिस्र में ब्रिटेन का बड़ा प्रभाव था। १९३० में एक नया संविधान लागू किया गया।

१९३६ में इंग्लैण्ड और मिस्र में एक सन्धि हुई। उस समय मुसोलिनी की एबीसीनिया में गतिविधि के कारण मिस्र को बड़ा खतरा था। १९३६ की सन्धि में ब्रिटेन ने बाहरी आक्रमण की दशा में मिस्र की रक्षा का वचन दिया था। स्वेज़ नहर की सुरक्षा का कार्य ब्रिटेन ने अपने हाथ में ले लिया था। यह सन्धि बीस वर्ष की अवधि के लिए हुई थी। दूसरे विश्वयुद्ध के समय ब्रिटेन की सेनाओं ने मिस्र में पड़ाव डाला था। जर्मनी और इटली उत्तरी अफ्रीका में युद्ध कर रहे थे इसलिए मिस्र को एक बार फिर अपनी सुरक्षा के लिए भय हुआ था। नहर के प्रदेश पर हवाई आक्रमण किए गए। संयुक्त राष्ट्रों ने मिस्र के अड्डों से इन आक्रमणों का मुकाबला किया। यह निर्विवाद तथ्य है कि संयुक्त राष्ट्रों की विजय में मिस्र ने अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण भाग लिया।

१९४५ में द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त होने पर मिस्र में १९३६ की सन्धि तोड़ने की माँग की जाने लगी। अक्टूबर, १९५१ में वफ्द (Wafd) सरकार ने अपनी ओर से १९३६ की सन्धि भंग कर दी। बादशाह फारूक को मिस्र और सूडान का राजा घोषित कर दिया गया। ब्रिटिश सरकार से कहा गया कि वह स्वेज़ नहर क्षेत्र से अपनी सेनाएँ हटा ले। सारे मिस्र में भीषण उपद्रव हुए। देश में कई सरकारें बदली गईं। जनरल नजीब और उसके साथियों ने एक सैनिक षड्यन्त्र द्वारा बादशाह फारूक

(Farouk) को राजत्याग करने के लिए विवश कर दिया और वह मिस्र से भाग गया। थोड़े दिनों पश्चात् नासिर (Nasser) ने नजीब को हटा दिया। नासिर आजकल मिस्र का राष्ट्रपति है। सीरिया का मिस्र में विलीनीकरण हो गया है और इस एकीकृत राज्य का नाम संयुक्त अरब गणराज्य रखा गया। ब्रिटेन स्वेज नहर का प्रदेश छोड़ चुका है। ब्रिटेन और फ्रांस को मिस्र पर आक्रमण करने का बहुत मूल्य चुकाना पड़ा। स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण हो चुका है। मिस्र बहुमुखी उन्नति कर रहा है।

Suggested Readings

Campbell, R. J. : *Livingstone.*
Cromer : *Modern Egypt.*
Gibbons : *The New Map of Africa.*
Harris : *Intervention and Colonisation in Africa.*
Hoskins, H. L. : *European Imperialism in Africa.*
Hughes : *David Livingstone.*
Johnston, H. H : *The Opening up of Africa.*
Johnston : *The Colonisation of Africa.*
Lucas, C. : *The Partition and Colonisation of Africa.*
Stanley : *Autobiography.*

अध्याय २७

जापान की विदेश-नीति

(Foreign Policy of Japan)

१८६७-६८ से पहले जापान एक पिछड़ा हुआ देश था। किन्तु इस वर्ष में देश में क्रान्ति हुई जिसने जापान की काया पलट दी। सामन्तशाही समाप्त कर दी गई। शोगुनेट (Shogunate) जिसने सरकार पर नियन्त्रण किया हुआ था, को समाप्त कर दिया गया और जापान के सम्राट् को पुनः सारी सत्ता सौंप दी गई। सेना में सुधार करके सैनिकों में निःस्वार्थ देशभक्ति की भावना को प्रेरित किया गया। जापान ने यूरोप की सभ्यता और परिपाटियों को अपनाकर अनुसरण करना आरम्भ कर दिया। उसने विश्व की एक महान् शक्ति बनने के स्वप्न देखने आरम्भ कर दिए। उसकी जनसंख्या बढने लगी और उसे अपने कारखानों के कच्चे माल और तैयार माल के लिए मण्डियों की आवश्यकता होने लगी। वह अपनी अधिक जन-संख्या को बसाने के लिए अधिक प्रदेशों को प्राप्त करने की इच्छा करने लगा। वह यूरोपीय शक्तियों द्वारा थोपी गई असमान सन्धियों को समाप्त करना चाहता था। इन सब तथ्यों के लिए एक शक्तिशाली विदेश-नीति की आवश्यकता थी।

चीन और जापान का युद्ध (१८९४-५) (Sino-Japanese War)—जापान की विदेश-नीति में प्रथम महत्त्वपूर्ण घटना १८९४-५ का चीन-जापान युद्ध था। जापान कोरिया के विषय में चीन से झगड़ा कर चुका था। उसे डर था कि कोई यूरोपीय शक्ति कोरिया की निर्बलता से लाभ उठाकर कहीं उस पर अपना आधिपत्य न जमा ले। वह कोरिया की स्वतन्त्रता को अपनी सुरक्षा के लिए अत्यावश्यक मानता था क्योंकि शत्रु के हाथ में कोरिया का पड़ जाना जापान के सीने में छुरा घोंपने के समान था। १८९४ में जापान ने कोरिया के राजा को चेतावनी दी कि वह जापान द्वारा तैयार की गई सुधारों की योजना को स्वीकार करे। राजा ने इस प्रस्ताव को टालने का प्रयत्न किया और परिणामस्वरूप जापान ने कोरिया पर आक्रमण करके राजा को बन्दी बना लिया। चीन कोरिया की ओर से युद्ध में आया और परास्त हो गया। चीन की पराजय का कारण अत्यधिक आत्म-विश्वास, अकुशलता तथा दुर्व्यवस्था थी। एक वर्ष से कम अवधि में जापान समूचे कोरिया और दक्षिणी मन्चूरिया पर अधिकार करके पेकिंग पर जा चढ़ा। अप्रैल, १८९५ में शिमोनोशेकी (Shimonosheki) की सन्धि पर हस्ताक्षर किए गए।

इस सन्धि के अनुसार चीन ने जापान को लिआओ-टुंग (Liao-tung) प्रायद्वीप, पोर्ट आर्थर (Port Arthur) और फारमूसा का द्वीप दे दिया। चीन

ने युद्ध की क्षतिपूर्ति के लिए वहुत वड़ी धनराशि तथा जापान को व्यापार में कुछ विशेष व्यापारिक सुविधाएँ देना स्वीकार किया। उसने कोरिया की स्वतन्त्रता को मान्यता देकर जापान को मनमानी करने की छूट भी दी थी। चीन-जापान युद्ध का परिणाम यह हुआ कि जापान को एक महान् शक्ति माना जाने लगा और यूरोपीय देश इस 'पीले खतरे' से डरने लगे। जापान में विदेशों के विशेषाधिकार समाप्त कर दिए गए।

किन्तु १८९५ की सन्धि के लाभों का अकेला उपभोग जापान नहीं कर सका। रूस, फ्रांस और जर्मनी ने जापान को एक संयुक्त-पत्र भेजा और उसे मैत्री-पूर्ण सुझाव दिया कि वह चीन के मुख्य देश के किसी भी भाग को अपने राज्य में न मिलाए। युद्ध का खतरा उठाने की अपेक्षा, जापान ने इस सुझाव को मान लेना अच्छा समझा। पोर्ट आर्थर (Port Arthur) और लिआओ-टुंग के प्रदेश चीन को लौटा दिए गए। जापान ने इन तीन शक्तियों के समक्ष अपने को निस्सहाय पाया और अपमानित अनुभव किया।

यह वात उल्लेखनीय है कि इन तीन शक्तियों ने केवल मानवीय भावनाओं से प्रेरित होकर जापान को यह सुझाव नहीं दिया था अपितु इसमें उनका अपना निजी स्वार्थ था। रूसी साम्राज्यवादी जानते थे कि कोरिया और लिआओ-टुंग प्रायद्वीप उनके देश के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। यदि जापान कोरिया पर अधिकार कर लेगा तो वह जापान समुद्र के दोनों मार्गों पर जहाँ रूस की व्लाडिवोस्टक (Vladi Vostok) की वन्दरगाह स्थित है, नियन्त्रण रखने में समर्थ हो जाएगा। व्लाडिवोस्टक ट्रांस-साइवेरियन रेलवे का अन्तिम स्टेशन भी थी। यदि जापान लिआओ-टुंग प्रायद्वीप पर अधिकार कर लेगा तो रूस के लिए दक्षिण में हिम-क्षेत्र शून्य कोई भी वन्दरगाह प्राप्त करने की सम्भावना नहीं रह जाएगी। इन परिस्थितियों में रूस के स्वार्थो का हित इसी में था कि जापान को इन प्रदेशों से निकाल दिया जाये। फ्रांस ने एक विश्वासपात्र साथी की भाँति विश्व कूटनीति में रूस का साथ दिया। जर्मन सम्राट् विलियम द्वितीय भी 'पीले खतरे' से टक्कर लेने और सहयोग देने के लिए उद्यत था। उसका विचार था कि ईसाई धर्म के अनुयायियों को पूर्व के मूर्तिपूजक के विरुद्ध दृढ़ता से डट जाना चाहिए। वह रूस से अच्छे सम्वन्ध स्थापित करना चाहता था इसलिए वह रूसी साम्राज्यवाद का फ्रांस की अपेक्षा अधिक उत्सुक समर्थक था। वह रूस-फ्रांस की मैत्री को कमजोर करके जर्मन-विरोधी काँटे को निकाल देना चाहता था। विलियम द्वितीय और टर्पिट्ज़ (Tirpitz) के संस्मरण वताते हैं कि उस समय जर्मनी, सुदूरपूर्व में एक समुद्री जहाज़ों का अड्डा वनाने का इच्छुक था। इन स्वार्थों के कारण जर्मनी, फ्रांस और रूस परस्पर निकट आ गए थे।

जापान को चीन में उसके लाभों से वंचित करके तीनों शक्तियाँ चीन सरकार से अधिकाधिक सुविधाएँ प्राप्त करने की अत्यन्त इच्छुक थीं। फ्रांस को फ्रैन्च हिन्द-चीन के पास दक्षिण के तीन प्रांतों की सारी खानों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गया था। उसे अन्नाम (Annam) से चीन तक फ्रांस की रेलवे को वढ़ाने का भी अधिकार

मिला। रूस ने अपना प्रभाव रूस-चीन बैंक की स्थापना करके बढ़ाना आरम्भ कर दिया। उसे पोर्ट आर्थर (Port Arthur) भी मिला। जर्मनी को इस बन्दरगाह का तथा किआओ-चाऊ प्रान्त (Kiao Chow) ९९ वर्ष के पट्टे पर दिया गया और शानटुंग में दोनों रेलों पर भी विशेष छूट दी गई। ब्रिटेन को वाई-हाई वाई (Wei-hai Wei) का पट्टा "उस समय तक जब तक पोर्ट आर्थर पर रूस का अधिकार

EXPANSION OF JAPAN
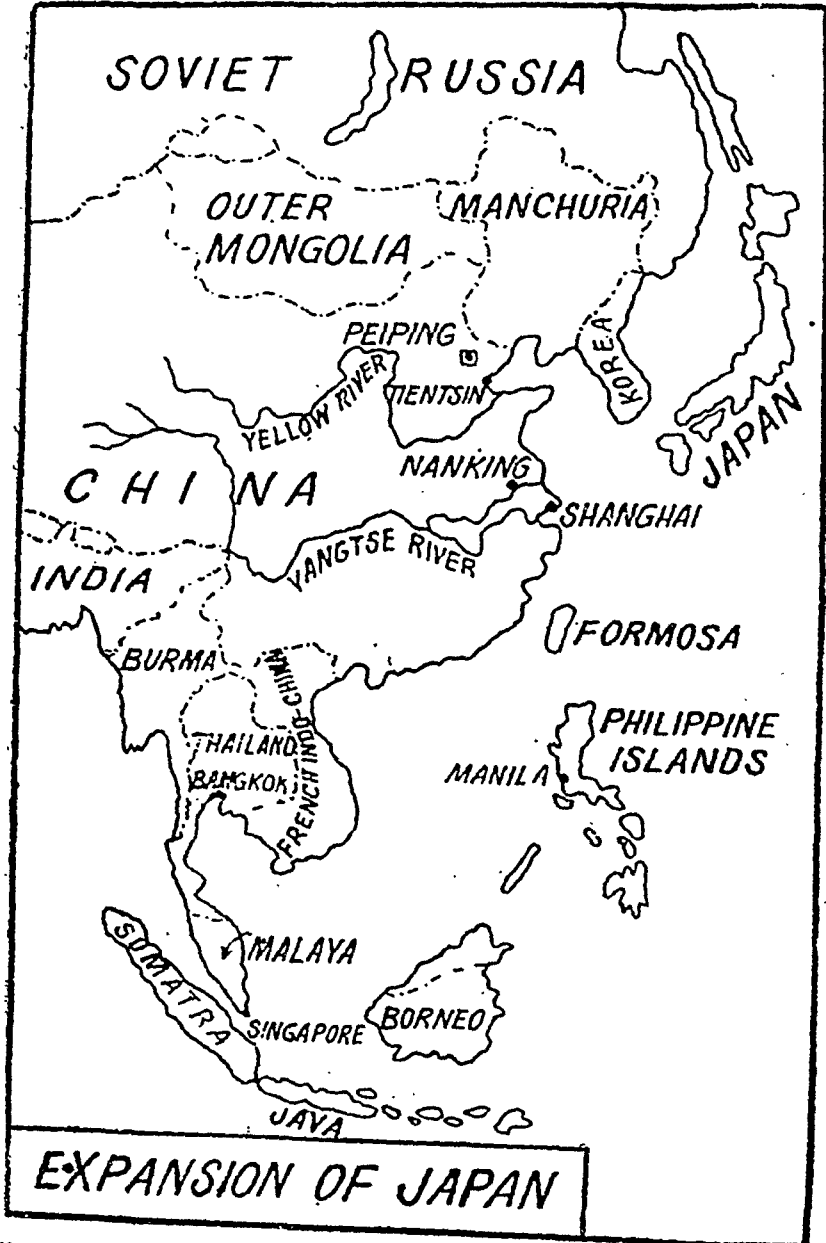
रहे" प्राप्त हुआ। यह निर्विवाद है कि शिमोनोशेकी (Shimonosheki) की सन्धि ने चीन पर यूरोपीय राष्ट्रों के आक्रमण का मार्ग खोल दिया था।

एंग्लो-जापान सन्धि, १६०२ (The Anglo-Japanese Alliance)—जनवरी १६०२ में एंग्लो-जापान सन्धि पर हस्ताक्षर किए गए और इस सन्धि के करने में जापान और इंगलैण्ड के अपने-अपने स्वार्थ थे। जापान का स्वार्थ था कि १८६४-६५ की जापान-चीन लड़ाई की क्षतिपूर्ति से रूस, फ्रांस और जर्मनी ने उसे वंचित कर दिया था। लिआओ-टुंग (Liao-tung) प्रायद्वीप और पोर्ट आर्थर (Port Arthur) चीन को लौटा देने पर विवश कर दिया गया था। १८६७ में रूस ने स्वयं पोर्ट आर्थर पर अधिकार कर लिया था। रूस को ट्रांस-साइबेरियन (Trans-Siberian) रेलवे के लिए विशेष छूट भी मिली थी। इस सबसे जापान को बड़ा दुःख हुआ था। इंग्लैण्ड ही एक ऐसा देश था जो जापान के विरुद्ध इस गुट में सम्मिलित नहीं हुआ था। जापान को अन्य यूरोपीय शक्तियों के विरुद्ध शिकायत थी और वह रूस की महत्त्वाकांक्षाओं को रोकने के उद्देश्य से, इंग्लैण्ड को मित्र मानने लगा था। इन परिस्थितियों में एंग्लो-जापान सन्धि का बीजारोपण हुआ था। कहा जाता था कि जोसेफ (Joseph) चैम्बरलेन ने १८६८ में ही एंग्लो-जापान सन्धि की चर्चा की थी। रूस ने बोअर विद्रोह द्वारा उत्पन्न चीन की स्थिति से लाभ उठाने का प्रयत्न किया था। उसने मंचूरिया (Manchuria) पर आक्रमण करके अधिकार कर लिया और राजमाता पर प्रभाव डाल कर उसकी स्थिति को मान्यता देने के लिए दबाव डाला। अन्य शक्तियों ने मंचूरिया पर रूस के सैनिक संरक्षण के विरुद्ध घोर विरोध किया और रूस को वहाँ से हटने के लिए विवश कर दिया। जापान और इंग्लैण्ड, दोनों देशों ने यह अनुभव किया कि रूस की साम्राज्यवादी मनोवृत्ति पर दोनों देशों के संगठन से ही रोक लगाई जा सकती है। काउण्ट हयाशी (Count Hayashi) ने लार्ड लैन्सडौन से कहा कि जापान मचूरिया पर रूस के राज्य को स्वाभाविक रूप से नहीं चाहता था क्योंकि पहले उसने रूस को इस देश से निकाल दिया था। किन्तु जापान को मञ्चूरिया की अपेक्षा कोरिया में अधिक रुचि थी। रूस का व्यवहार यह था कि वह मञ्चूरिया को अपने अधिकार में रखना चाहता था और दूसरी ओर जापान को कोरिया में स्वतन्त्रता नहीं देना चाहता था। कोरिया के मामलों में विदेशी शक्तियों के हस्तक्षेप की पूरी सम्भावना थी किन्तु जापान कोरिया को किसी शत्रु के हाथों में देखना सहन नहीं कर सकता था क्योंकि कोरिया का शत्रु के हाथों में रहना जापान की छाती में छुरा घोंपने के समान था। कोरिया किसी भी प्रकार अपनी शक्ति के सहारे स्वयं खड़ा नहीं हो सकता था और इसकी जनता घोर अज्ञान में पड़ी थी। इसलिए यह निर्णय करना आवश्यक था कि यह रूस के हाथों में रहेगा अथवा नहीं। जापान इस पर रूस के "अधिकार को रोकने के लिए अवश्य ही लड़ेगा"। इसलिए उसकी कूटनीति का अन्तिम उद्देश्य रूस को विलग करके उससे युद्ध करना था। लार्ड न्यूटन (Newton) के मतानुसार, "जापान कोरिया के लिए रूस से अकेला ही लड़ने को तैयार था किन्तु यदि जर्मनी या फ्रांस जैसी कोई शक्ति हस्तक्षेप करती तो यह कार्य उसकी सामर्थ्य से बाहर था। इस परिस्थिति में जापान के लिए इंग्लैण्ड से सन्धि करना अत्यन्त आवश्यक हो गया था।

जापान से सन्धि करने के इंगलैण्ड के अपने विशेष कारण थे। उन्नीसवीं

शताब्दी में इंग्लैण्ड 'शानदार अकेला रहने' की नीति का अनुसरण करता रहा था इस कारण वह किसी भी देश के साथ सन्धि नहीं करता था। १८७९ में आस्ट्रिया-जर्मनी सन्धि की गई और १८८२ में जर्मनी, इटली और आस्ट्रिया-हंगरी में त्रिमुखी सन्धि हुई। १८९४ में रूस और फ्रांस ने सन्धि की। इस प्रकार जब अन्य यूरोपीय शक्तियाँ सन्धियाँ कर रही थीं, इंग्लैण्ड सन्धियों से अलग रहा किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में उसे यह अनुभव होने लगा कि अकेला रहना खतरनाक है और उसके हित में नहीं है। १८९८ में फैशोदा (Fashoda) संकट के समय भी यही भावना थी। बोअर युद्ध के समय यूरोपीय देशों के रुख से भी इंग्लैण्ड को यह अनुभव नहीं हुआ कि उसकी अकेले रहने की नीति ठीक नहीं है। उसने जर्मनी से सन्धि करनी चाही किन्तु विलियम द्वितीय का व्यवहार सहायक नहीं हुआ। इंग्लैण्ड और जर्मनी की मैत्री स्थापित करने के लिए जोसेफ (Joseph) चैम्बरलेन जैसे व्यक्तियों के प्रयत्न भी असफल रहे। सम्राज्ञी विक्टोरिया की मृत्यु पर शोक करने के लिए विलियम द्वितीय के इंग्लैण्ड आने के अवसर पर १९०१ में इस और अन्तिम प्रयत्न किया गया था। जब विलियम द्वितीय से इस विषय में परामर्श किया गया तो उसका प्रसिद्ध उत्तर था "बर्लिन का मार्ग वियाना में से होकर है।" कहा जाता है चैम्बरलेन ने कहा कि यदि जर्मनी की जनता में बुद्धि नहीं है तो इसमें हम क्या कर सकते हैं। इस प्रकार की परिस्थिति में इंग्लैण्ड ने जापान से सन्धि करने का निश्चय किया और यह सन्धि जनवरी, १९०२ में कर ली गई।

इंग्लैण्ड की जापान से सन्धि करने की इच्छा का एक यह कारण भी था कि सुदूर पूर्व में रूस की बढ़ती हुई ताकत को रोकने के लिए इंग्लैण्ड और जापान दोनों ही दृढ़प्रतिज्ञ थे और समान उद्देश्य की प्राप्ति के कारण दोनों देश एक साथ मिल गए।

सन्धि की शर्तें (Terms of the Treaty)—(१) जापान और इंग्लैण्ड दोनों ही देशों ने घोषणा की थी कि चीन अथवा कोरिया में उनका उद्देश्य आक्रमण करने का नहीं है। उन्होंने इन देशों में यथास्थिति बनाए रखने की भी इच्छा व्यक्त की।

(२) इंग्लैण्ड और जापान ने इस बात पर सहमति प्रकट की कि इंग्लैण्ड के स्वार्थ चीन में तथा जापान के स्वार्थ चीन और कोरिया दोनों में हैं। यह भी समझौता हुआ कि दोनों को इस बात की अनुमति प्राप्त थी कि वे इन स्वार्थों की रक्षा के लिए, चाहे इनको अन्य आक्रामक राष्ट्रों द्वारा अथवा चीन और कोरिया में विद्रोह के कारण, खतरा होने पर आवश्यक कार्यवाही कर सकेंगे।

(३) यदि इंग्लैण्ड अथवा जापान इन हितों की रक्षा करते समय किसी अन्य शक्ति से युद्धग्रस्त हो जाएँ तो दूसरा देश दृढ़ता से तटस्थ रहेगा। यह अन्य शक्तियों को मित्रराष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध में भाग लेने से रोकने के लिए पूर्ण शक्ति से प्रयत्न करेगा।

(४) यदि कोई एक अथवा अधिक शक्तियाँ मित्र देश के विरुद्ध युद्ध करने लग जाएँ तो दूसरा मित्र देश उसकी सहायता में एक साथ युद्ध करेगा तथा शान्ति समझौता भी दूसरे से सम्मति लेकर करेगा।

(५) इंग्लैण्ड और जापान ने स्वीकार किया कि वे एक दूसरे के हितों को हानि पहुँचाने की इच्छा से एक दूसरे से परामर्श किए बिना अन्य शक्ति से कोई समझौता नहीं करेंगे।

(६) यदि किसी समय निजी हितों के विषय में परस्पर मतभेद हो जाए, दोनों सरकारें निस्संकोच होकर आपस में स्पष्टता से खुल कर परामर्श करेंगी।

(७) यह समझौता तुरन्त ही लागू हो जाएगा और पांच वर्ष तक चलेगा।

१९०२ की एंग्लो-जापान सन्धि में १९०५ में संशोधन किया गया। संशोधित सन्धि के अनुसार, प्रत्येक देश दूसरे किसी भी देश के साथ युद्धग्रस्त हो जाने पर उसकी सहायता करेगा और इस सन्धि का क्षेत्र बढ़ा दिया गया और इसमें ब्रिटिश भारतवर्ष को भी मिला लिया गया। यह समझौता दस वर्ष के लिए किया गया। १९११ में अमेरिका और जापान में परस्पर युद्ध होने की स्थिति में ब्रिटेन के खतरे को दूर करने के लिए इस सन्धि में पुनः संशोधन हुआ और यह सन्धि १९२३ तक चलती रही।

सन्धि का महत्त्व (*Importance of the Treaty*)—एंग्लो-जापान सन्धि के महत्त्व पर अधिक बल नहीं दिया जा सकता। कहा जाता है कि १९०२ की सन्धि से जितना लाभ जापान और इंग्लैण्ड को हुआ उतना लाभ किसी भी देश को किसी अन्य सन्धि से नहीं हुआ था। जापान रूस के सुदूर पूर्व में प्रसार को रोकने के लिए एक विश्वस्त साथी चाहता था। यह साथी उसे इंग्लैण्ड के रूप में मिला। इस सन्धि के अनुसार उसकी और रूस की लड़ाई हो जाने पर, इंग्लैण्ड को यथाशक्ति अन्य शक्तियों को जापान के विरुद्ध रूस की ओर से युद्ध करने से रोकना पड़ता था। इस अवस्था से जापान रूस से अच्छी तरह लड़ सकता था। जापान अकेले रूस से इतना नहीं डरता था जितना कि वह रूस को अन्य देशों द्वारा दी गई सहायता से भयभीत था। १९०२ की सन्धि से अपने आपको सुरक्षित करके जापान ने इस सन्धि के दो वर्ष पश्चात् ही १९०४ में रूस से युद्ध छेड़ने का सुअवसर देखा।

ब्रिटेन को इस सन्धि से बहुत लाभ हुआ। वह स्वयं भी सुदूर-पूर्व में रूस के प्रसार को रोकने का उतना ही इच्छुक था जितना कि जापान। वह यथाशक्ति जापान की सहायता करने को इसलिए तैयार था ताकि वह रूस पर प्रभावशाली चोट कर सके। दूसरी ओर इंग्लैण्ड जर्मनी की समुद्री सेना की उन्नति के कार्यक्रम से चिन्तित था। जर्मनी बड़ी तेजी से अपनी जल-सेना तैयार कर रहा था जिससे ब्रिटेन के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो गया था। इस परिस्थिति में ब्रिटेन प्रशान्तसागर से अपनी समुद्री सेना को हटा लेना चाहता था। यह कार्य वह केवल जापान से

सन्धि करके ही कर सकता था क्योंकि प्रशान्त महासागर में जापान एक शक्तिशाली देश था।

यह विशेष तथ्य है कि एक अन्य दृष्टिकोण से यह सन्धि जापान के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी। इससे जापान का स्तर ऊँचा उठ गया था। संसार के साम्राज्यों[1] में सबसे महान् ने उसे अपना समकक्ष मान कर सन्धि की थी; इससे जापान की महत्त्वाकांक्षाओं को और भी प्रोत्साहन मिला था।

लैन्सडाउन के मतानुसार, "यह सन्धि केवल सावधानी के रूप में हुई थी। इससे अन्य देशों के उचित हितों को कोई भय नहीं था।" यह शान्ति की सुरक्षा के लिए थी किन्तु यदि दुर्भाग्य से शान्ति भंग हो जाती तो इसका उद्देश्य युद्धक्षेत्र को सीमित रखना होता।

१९०२ की सन्धि ने जापान को सुदूर पूर्व में खुली स्वतन्त्रता प्रदान कर दी थी। सदूर पूर्व में उसके प्रसार के इतिहास में यह निर्विवाद रूप से एक महान् घटना थी। अब वह केवल अपनी शक्ति पर ही निर्भर नहीं था अपितु उस सहायता पर भी निर्भर था जो उसे १९०५ की संशोधित सन्धि के अनुसार प्राप्त होनी थी। सन्धि के अनुसार यदि जापान किसी एक देश के विरुद्ध लड़ाई में ग्रस्त हो जाता तो इंग्लैण्ड जापान की सहायता करने को वचनबद्ध था।

ग्राण्ट और टैम्परले के मतानुसार, "यह सन्धि सब दृष्टिकोणों से एक नवीन युग की निर्मात्री थी। जहाँ तक जापान का सम्बन्ध है इसका आशय कुछ रहस्यपूर्ण था। इंग्लिश कूटनीतिज्ञों की धारणा थी कि वे जापान को उत्पात करने से रोक लेंगे और रूस पर उसका आक्रमण नहीं होने देंगे। घटनाओं ने सिद्ध कर दिया कि उनकी यह धारणा भ्रमपूर्ण थी। जापान की सैनिक और नाविक तैयारियाँ १९०३ में पूरी होने वाली थीं और उन्हें आशा थी कि इंग्लैण्ड की मैत्री की छत्र-छाया में उपयुक्त अवसर पर वे रूस पर आक्रमण कर सकेंगे। यह भूल केवल इंग्लैण्ड की ही नहीं थी। उसकी ओर से सन्धि करने वालों का विश्वास था कि इस सन्धि का प्रभाव केवल चीन के क्षेत्र में ही रहेगा। किन्तु महान् देशों (Great Powers) की कूटनीति कार्य और प्रसार की दृष्टि से विश्व पर प्रभाव डालने वाली थी और जापान के समुद्र पर प्रभाव डालने वाले समझौते ने भूमध्य सागर (Mediterranean) और उत्तर सागर (North Sea) तक अपना प्रभाव फैलाया। इंग्लैण्ड की स्थिति इतनी बुरी नहीं थी जितनी प्रतीत होती थी। उसकी फ्रांस और रूस से मैत्री नहीं थी किन्तु जर्मनी से भी उसके कोई विशेष सम्बन्ध नहीं थे। जापान से सन्धि करने के पश्चात् वह त्रिमुखी (Triple) अथवा द्विमुखी सन्धि (Dual Alliance) में सम्मिलित हो सकता था। जर्मनी इस समय तक त्रिमुखी सन्धि (Triple Alliance) की आशा कर रहा था।"

---

१. यह ध्यान में रखने योग्य बात है कि इंग्लैण्ड 'एक असभ्य मंगोलियन जाति' को अपने सम्मान के अयोग्य नहीं मानता था।

इस सन्धि का सुरक्षात्मक और आक्रामक प्रभाव शीघ्र ही प्रकट हो गया। विलियम द्वितीय ने इस सन्धि पर अपना संतोष प्रकट किया था। इटली और आस्ट्रिया ने भी बधाई भेजी। किन्तु फ्रांस और रूस ने अपनी निराशा को छुपाने का कोई प्रयत्न न किया।

एंग्लो-जापान सन्धि से इंग्लैण्ड की 'अलगाव' की नीति (Policy of Isolation) समाप्त हो गई। १९०२ के पश्चात् उसने फ्रांस से मैत्री-सन्धि की तथा १९०७ में रूस से एंग्लो-रूसी समझौता किया।

रूस-जापान युद्ध (Russo-Japanese War) (१९०४-५)—मञ्चूरिया को सुदूरपूर्व का अन्न भण्डार कहा जाता है। खेती की उपज के अतिरिक्त वहाँ इमारती लकड़ी और खनिज पदार्थ भी बड़ी मात्रा में पाए जाते हैं। जापान के लिए इस देश का बड़ा महत्त्व था। १८९५ में जापान को अनिच्छा से लिआओ-टुंग प्रायद्वीप (Liao-Tung Peninsula) इसलिए छोड़ना पड़ा क्योंकि उसकी धारणा थी कि वह जर्मनी और फ्रांस की सामूहिक शक्ति का मुकाबला नहीं कर सकेगा। रूस को पोर्ट आर्थर (Port Arthur) और उसके निकट टालियन-वान (Talien-Wan) की बन्दरगाहें पच्चीस वर्ष के पट्टे (Lease) पर मिली थीं। उसे मञ्चूरिया के बीचों-बीच ब्लाडिवास्टक तक ट्रांस-साइबेरियन रेलवे ले जाने का भी अधिकार मिल गया था। ट्रांस-साइबेरियन रेलवे के मञ्चूरिया के भाग का नाम पूर्वी चीन रेलवे (Chinese Eastern Railway) था। जापान ने अनुभव किया कि पूर्वी चीन रेलवे का जितना व्यापारिक महत्त्व है उतना ही उसका सामरिक (Strategic) महत्त्व भी है। मञ्चूरिया में रूस के हज़ारों सैनिकों की छावनी थीं। पोर्ट आर्थर की मोर्चेबन्दी कर ली गई थी और वहाँ पर एक विशाल समुद्री बेड़ा तैनात कर दिया गया था। जापान भयभीत था कि रूस अगला आक्रमण कोरिया पर करेगा। स्थिति गम्भीर थी।

१९०२ में चीन और रूस में एक सन्धि हुई जिसके अनुसार रूस ने चीन की अक्षुण्णता को मान्यता देने तथा मञ्चूरिया को खाली कर देने का वचन दिया था। चीन ने वचन दिया कि वह इस प्रदेश में रूसी नागरिकों तथा रूसी उद्योगों इत्यादि की रक्षा करेगा। मञ्चूरिया से रूसी सेना को हटाने का कार्य छः-छः महीने की तीन अवधियों में होना था। प्रत्येक अवधि के पश्चात् सन्धि के अनुसार खाली किया गया प्रदेश चीन को लौटा दिया जाना था। अक्टूबर, १९०२ में रूस ने सन्धि की व्यवस्था को कार्यरूप में परिणत करना आरम्भ कर दिया। किन्तु अप्रैल, १९०३ में मञ्चूरिया का दूसरा भाग रूस की सेना के अधिकार में ही था और रूस ने चीन को सूचित किया कि भविष्य में मञ्चूरिया को कुछ शर्तों पर खाली किया जाएगा। शर्त यह थी कि चीन रूस को कुछ विशेष सुविधाएँ देगा। रूस की नई माँग १९०२ की सन्धि के विरुद्ध थी। ब्रिटेन, अमरीका और जापान ने चीन का पक्ष लिया। चीन ने रूस की माँग को मानने से इन्कार कर दिया। उस समय रूसी नागरिक उत्तरी कोरिया में कुछ उद्योग-धन्धों में संलग्न थे। बेजोब्राजोफ नाम का एक साहसी व्यक्ति

कोरिया की सरकार द्वारा दी गई सुविधाओं से लाभ उठा रहा था। इन सुविधाओं में यालू नदी (Yalu) पर जंगलों की कटाई का कार्य भी सम्मिलित था। बेजोब्राजोफ का ज़ार के दरबारियों पर बड़ा प्रभाव था। १६०३ में उसने यालू नदी पर अपना कार्य आरम्भ किया और इस बहाने रूसी सेना नदी की ओर बढ़ने लगी। यह कार्य रूस और जापान के कोरिया सम्बन्धी समझौतों के विरुद्ध था। जापान ने कोरिया पर अपना प्रभाव डालने तथा नियन्त्रण जमाने के लिए बड़ा परिश्रम तथा धन व्यय किया था, इस कारण वह रूस को अपनी मनमानी नहीं करने देना चाहता था। जापान ने सेण्ट पीटर्सबर्ग में अपना विरोधपत्र भेजा और कहा कि रूसी नागरिकों की उक्त गतिविधियाँ रूस द्वारा जापान को दिए गए आश्वासनों के प्रतिकूल हैं। जापान रूस से मन्चूरिया में उसके हितों की रक्षा के लिए एक नई सन्धि करने को तैयार था किन्तु वह चाहता था कि कोरिया में उसके हितों की रक्षा का वचन मिलना चाहिए। रूस ने अपना उत्तर अक्टूबर, १६०३ में भेजा जिसमें कोरिया के प्रति जापान पर कुछ प्रतिबन्ध लगाने की शर्त थी और रूस स्वयं मन्चूरिया और यालू नदी के क्षेत्र में बिलकुल स्वतन्त्र रहना चाहता था। दोनों देशों में कई महीनों तक असफल वार्ता चलती रही। रूस ने इस अवकाश से लाभ उठा कर सुदूरपूर्व में अपनी स्थिति को दृढ़ बना लिया। १३ जनवरी, १६०४ को जापान ने मन्चूरिया को अपने प्रभाव-क्षेत्र से बाहर स्वीकार किया और प्रस्ताव किया कि रूस को कोरिया से अपना प्रभाव समाप्त कर देना होगा। जापान ने रूसी सेना की बढ़ती हुई कार्यवाहियों के कारण शीघ्र उत्तर भेजने की माँग की। उत्तर प्राप्त होने पर जापान ने ५ फरवरी, १६०४ को परामर्श समाप्त करने का निर्णय किया और रूस से अपने कूटनीतिक सम्बन्ध तोड़ दिए।

यह उल्लेखनीय है कि फरवरी, १६०४ के आरम्भ में बैकल झील (Lake Baikal) के पूर्वी क्षेत्र में रूस के लगभग ८०,००० मैदानी सैनिक, २५,००० किलेबन्द सेना और लगभग ३,००० रक्षक सेना स्थित थी। यह सेना पश्चिम में बैकल झील से लेकर पूर्व में व्लाडिवास्टक तक, उत्तर में निकोलाई वस्क और दक्षिण में पोर्ट आर्थर तक एक बहुत बड़े प्रदेश में फैली हुई थी। सेना के दो प्रमुख समूहों में ६०० मील की दूरी थी। यूरोपीय रूस के साधनों को सुदूरपूर्व में भेजने की गति पूर्वी साइबेरियन रेलवे की क्षमता पर निर्भर थी। पूर्वी साइबेरियन रेलवे का स्थायी मार्ग स्टेशनों और माल उतारने के अड्डों की संख्या और क्षमता, गाड़ियों का प्रकार इत्यादि, सेना की भारी माँग को पूरा कर सकने में पूर्णतः असमर्थ थे। किन्तु सबसे बड़ी कठिनाई बैकल झील के कारण थी जहाँ लगभग १०० मील के क्षेत्र पर रेलमार्ग बनाने का कार्य अभी पूरा होना बाकी था। इस भाग पर सवारियों और युद्ध-सामग्री को ३० मील के क्षेत्र पर समुद्री मार्ग द्वारा ले जाना पड़ा। शरद् ऋतु के कारण पानी बर्फ़ बन गया और चीजों को बर्फ़ पर से ले जाना पड़ा। किन्तु जब बर्फ़ पिघलने लगी तो सारा यातायात बर्फ़ पिघलने और पानी के जहाज़ चलाने योग्य होने के समय तक यथास्थान रुक गया। रूसी सरकार के लिए यह बहुत बड़ी कठिनाई थी जिसका उसे जापान

युद्ध में सामना करना पड़ा था। अप्रैल के अन्त तक रूस कोई युद्ध-सामग्री या सेना नहीं भेज सकता था। जापान को पूर्ण विश्वास था कि आरम्भ में उसे बहुत अल्प संख्या में रूसी सेना का मुकाबला करना पड़ेगा।

रूस के मुकाबले में युद्ध आरम्भ होने के समय जापान के पास १,८०,००० सैनिकों की सक्रिय सेना थी और दो लाख सैनिक आरक्षी सेना में तथा ४,७०,००० दक्ष सुशिक्षित सैनिक थे। कुल मिलाकर जापान की सारी सेना लगभग ८,५०,००० थी।

जापान युद्ध के लिए पूर्णतः तैयार था। चीन से युद्धक्षति के रूप में प्राप्त विशाल धनराशि का जापान ने अपनी सेना और जहाज़ी बेड़ को उन्नत करने में सदुपयोग किया। "उसके गुप्तचर और प्रतिनिधि कोरिया और मन्चूरिया के साधनों और भौगोलिक स्थिति से पूर्णतः परिचित हो चुके थे। उसके कूटनीतिज्ञों ने ब्रिटेन से मैत्री सन्धि करके युद्ध के लिए मार्ग तैयार कर दिया था। उसके सैनिकों को बॉक्सर युद्ध (Boxer Campaign) में रूसी सैनिकों से मुकाबला करने का अवसर प्राप्त हो चुका था और इस युद्ध के परिणाम ने उन्हें निराश नहीं किया था। संसार के आर्थिक क्षेत्रों में जापान की धाक जमी थी और गोला-बारूद तथा अन्य युद्ध-सामग्री का पर्याप्त भण्डार था। उसने यूरोप की एक महान् शक्ति को चुनौती देकर चकित कर दिया था, किन्तु अपने में दृढ़ आत्मविश्वास रखते हुए—ऐसा आत्मविश्वास जो अलौकिक सम्राट् से लेकर एक युद्ध सैनिक तक देश के प्रत्येक नागरिक के रोम-रोम में बसा हुआ था।"

रूस और जापान का युद्ध स्थल और जल दोनों पर हुआ। इस युद्ध की सबसे बड़ी लड़ाई मन्चूरिया की राजधानी मुकडेन (Mukden) पर हुई। यह लड़ाई अत्यन्त भयंकर थी, इसमें प्रत्येक पक्ष के लगभग ६०,००० सैनिक घायल हुए और युद्ध में काम आए। लड़ाई में जापान ने ही विजय प्राप्त की थी। किन्तु वह बुरी तरह थक गया और विजय को आगे नहीं बढ़ा सका। रूस ने अपना बाल्टिक समुद्री बेड़ा सुदूरपूर्व में भेज दिया। किन्तु जब यह बेड़ा कोरिया और जापान के बीच त्सुशिमा (Tsushima) की खाड़ी में पहुँचा तो उसे जापान की समुद्री सेना के सेनापति टोगो (Admiral Togo) ने पूर्णतः नष्ट कर दिया। त्सुशिमा (Tsushima) की लड़ाई की ट्रैफल्गर की लड़ाई से तुलना की जाती है। यह एक पूर्णतः निर्णायक युद्ध था। जापान को प्रशान्त महासागर (The Pacific) पर अधिकार प्राप्त हो गया।

दोनों पक्ष पूर्णतः थक चुके थे और अमरीका के राष्ट्रपति थ्योडोर रूजवेल्ट (President Theodore Roosevelt) के सद्प्रयत्नों से शान्ति स्थापित हुई। सितम्बर, १९०५ में पोर्ट्समाउथ की सन्धि पर हस्ताक्षर हुए और रूस ने कोरिया को जापान के प्रभाव-क्षेत्र में मान लिया। उसने लिआओ-टुंग प्रायद्वीप का पट्टा (Lease of Liao-tung Peninsula) भी जापान को दे दिया। उसने साखालिन

के द्वीप का आधा दक्षिणी भाग भी जापान को दे दिया और मन्चूरिया को भी खाली करना स्वीकार कर लिया।

युद्ध के परिणाम (Effects of the War)—(१) रूस-जापान युद्ध के बड़े दूरगामी परिणाम हुए। इसका प्रभाव केवल रूस और जापान के इतिहास पर ही नहीं पड़ा अपितु चीन, भारतवर्ष तथा समूचे पूर्व और पश्चिम पर भी पड़ा। रूस के सुदूरपूर्व में एक गर्म-जल-बन्दरगाह प्राप्त करने के स्वप्न पूर्णतः नष्ट हो गए। सुदूरपूर्व में रूस को धक्का लगने के कारण उसने अपना ध्यान अधिकाधिक निकट पूर्व और मध्यपूर्व पर केन्द्रित करना आरम्भ कर दिया था। रूस की पराजय से रोमनोव (Romanov) वंश की निर्बलता भी प्रगट हो गई। उदारवादी और क्रान्तिकारी शक्तियाँ रूस में प्रबल हो गईं और परिणामतः जार को १९०५ में कुछ सुधार करने पड़े थे। इससे रूस में कुछ समय के लिए सुधारवादी प्रयोग होने आरम्भ हो गए।

(२) १८९५ में रूस और उसके सहयोगियों ने जापान को उसके लाभों से वंचित कर दिया था। १९०४-५ में रूस को पराजित करके जापान को अनुभव हुआ कि उसने अपना प्रतिशोध ले लिया है। कुछ समय तक उसे बड़ी निराशा हुई किन्तु १९०५ के पश्चात् उसकी धारणा हो गई कि वह अपने विजय और प्रसार के कार्यक्रम को क्रियान्वित कर सकता है। कोरिया पूर्णतः उसकी दया पर आश्रित था और इसलिए उसने १९१० में इसे अपने राज्य में मिला लिया था। १९०५ के बाद जापान एक पूर्ण साम्राज्यवादी देश बन गया था। सुदूर पूर्व में उसे मार्ग प्राप्त हुआ और चीन में अन्य यूरोपीय राष्ट्रों के साथ खुले रूप से प्रतिद्वन्द्विता और प्रतियोगिता करने पर उतारू हो गया। यह क्रम द्वितीय विश्वयुद्ध के अन्त तक चलता ही रहा।

(३) रूस-जापान युद्ध की यूरोप की राजनीति पर भी प्रतिक्रिया हुई। इसी युद्ध में जर्मन सम्राट् विलियम द्वितीय ने रूस को अपने पक्ष में मिलाने का प्रयत्न किया था। जर्मनी ने बाल्टिक सागर में रूस के जहाजी बेड़े को ईंधन पहुँचाया था। रूस को यह विश्वास दिलाने की चेष्टा की गई थी कि वह कठिनाई के समय में जर्मनी की मैत्री पर निर्भर रह सकता है। रूस इंग्लैण्ड पर भरोसा नहीं कर सकता था क्योंकि वह पहले ही जापान के साथ सन्धि कर चुका था। जुलाई, १९०५ में विलियम द्वितीय और निकलस द्वितीय की ब्जोरको में भेंट हुई। दोनों सम्राटों में यह फैसला हुआ कि इंग्लैण्ड द्वारा बाल्टिक पर आक्रमण करने की स्थिति में वे युद्धकाल में डेन्मार्क पर अधिकार करके अपने हितों की रक्षा करेंगे। काइज़र (Kaiser) ने सन्धि का मसविदा रखा और जार ने दो साथियों की उपस्थिति में उस पर हस्ताक्षर किए। इस सन्धि के मसविदे के अनुसार यह समझौता हुआ कि यदि कोई यूरोपीय शक्ति दोनों में से किसी एक पर आक्रमण कर दे तो दूसरा अपनी पूरी शक्ति से उसकी सहायता करेगा और कोई भी निजी रूप से शान्ति सन्धि नहीं करेगा। यह सन्धि रूस-जापान की सन्धि हो जाने पर लागू होनी थी।

तथा इसे एक वर्ष की सूचना देकर समाप्त किया जा सकता था। रूस इस सन्धि की शर्तों से फ्रांस को सूचित करेगा तथा उससे इसमें सम्मिलित होने के लिए आग्रह करेगा। काइज़र इसको पूरा करके अत्यन्त प्रसन्न हुआ था। यह सन्धि रूस के लिए उपयोगी थी क्योंकि इससे विदेशों के आर्थिक क्षेत्रों में विश्वास उत्पन्न हो जाता था और उन्हें रूसी उद्योगों में पूंजी लगाने के लिए प्रोत्साहन मिलता था। इसके परिणामस्वरूप विलियम द्वितीय की उद्दण्डता और घमण्ड कम होने की भी आशा थी। इस सन्धि से यह आशा थी कि हॉलैण्ड, बेल्जियम, डेन्मार्क, स्वीडन और नार्वे नए गुरुत्वाकर्षण केन्द्र की ओर खिच आयेंगे और महान् शक्तियों के सूर्य-मण्डल में सम्मिलित होकर घूमने लगेंगे। ऐसा प्रतीत होने लगा कि जर्मनी के नेतृत्व में यूरोपीय महाद्वीप की शक्तियों के संगठन को बनाने का पुराना स्वप्न पूरा होने जा रहा था।

किन्तु ज़ार को ब्जोरको समझौते (Bjorko Pact) के प्रति अधिक उत्साह नहीं था। जापान से युद्ध की समाप्ति पर उसने ब्जोरको में हुए समझौते की अपने विदेश-मंत्री से चर्चा की थी। कहा जाता है कि रूस के विदेश-मंत्री को अपनी आँखों और कानों पर विश्वास नहीं हुआ। ब्जोरको सन्धि को भंग करना आवश्यक हो गया क्योंकि फ्रांस इसके विरुद्ध था और रूस के मन्त्रियों को भी इसकी उपयोगिता पर सन्देह था। ज़ार भी पश्चात्ताप करने लगा। विलियम द्वितीय ने निकलस द्वितीय का ब्जोरको समझौते के नैतिक दायित्वों की ओर ध्यान दिलाया और उसे सुझाव दिया कि वह थोड़ा समय, परिश्रम और धैर्य रखकर फ्रांस को इसमें सम्मिलित होने के लिए राजी करे। उसने उसे परमात्मा के सम्मुख इस समझौते को करने की तथा प्रतिज्ञा करने की भी याद दिखाई। उसने कहा, "जिस पर हस्ताक्षर हो चुके, हो चुके, परमात्मा हमारा साथी है।" ब्जोरको सन्धि की कुछ भी प्रगति न हुई। पेरिस स्थित रूसी राजदूत ने ज़ार को सूचित किया कि फ्रांस किसी भी शर्त पर जर्मन संगठन का सदस्य नहीं बनेगा। निकलस द्वितीय ने कहा कि इस समझौते को इसलिए लागू नहीं किया गया क्योंकि इस पर विदेश-मन्त्री के हस्ताक्षर नहीं थे। इस परिस्थिति में ब्जोरको सन्धि एक मृत समझौता बनकर रह गया। यह धोखे से कराई गई थी और शीघ्रता से भंग भी कर दी गई। इसलिए इसका यूरोपीय राजनीति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

(४) फ्रांस, एडवर्ड सप्तम, ग्रे और इज़वोल्सकी के प्रयत्नों से १९०७ में ऐंग्लो-रूसी सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। इसे रूस और जापान के युद्ध का परोक्ष परिणाम कह सकते हैं।

(५) रूस-जापान युद्ध ने चीन की नींद खोल दी। उसे इस बात से बड़ा दुःख हुआ कि दो विदेशी शक्तियों ने उसके प्रदेश को युद्धक्षेत्र बना दिया। अपने देश को अपने पैरों पर खड़ा करने के लिए चीन के देशभक्त पुरानी परिपाटियों को तोड़ कर देश में क्रान्तिकारी परिवर्तन करना चाहते थे। १९०४-५ के युद्ध से चीन को सुधार के आन्दोलन की प्रेरणा मिली।

(६) रूस और जापान के युद्ध ने पूर्व के देशों की विचारधारा पर बड़ा गम्भीर प्रभाव डाला। आधुनिक इतिहास में यह पहला अवसर था कि एक एशियाई शक्ति ने एक पश्चिमी शक्ति से केवल मुकाबला ही नहीं किया अपितु उसे पूरी तरह पराजित भी किया। इससे पूर्व की राष्ट्रीयता की भावना को बड़ा प्रोत्साहन मिला। यह उल्लेखनीय है कि त्सुशिमा (Tsushima) की लड़ाई पश्चिम की प्रतिष्ठा के लिए प्रथम अफगान युद्ध की अपेक्षा अधिक हानिकारक थी। पूर्व के लिए यह नवीन आशाओं तथा आत्म-विश्वास का प्रतीक था।

प्रथम विश्व-युद्ध (First World War)—जब १९१४ में प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ जापान ने भी धुरी शक्तियों (Central Powers) के विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर दिया। उसने बड़ी शक्तियों के युद्ध के यूरोपीय रंगमंच में फँसे होने से पूरा लाभ उठाया। उसने किआओ-चाऊ (Kiao Chou) पर अधिकार कर लिया और शांटुंग (Shantung) में अन्य जर्मन सुविधाएँ भी छीन लीं। मित्र राष्ट्रों ने एक गुप्त सन्धि द्वारा ये प्रदेश जापान को दे दिए। जनवरी, १९१५ में जापान ने चीन के सामने प्रसिद्ध 'इक्कीस माँगें' पेश कीं। अन्य शक्तियों से इन माँगों के प्रस्ताव को गुप्त रखा गया किन्तु किसी प्रकार यह प्रकट हो गया। ये माँगें शांटुंग, मञ्चूरिया, पूर्वी आन्तरिक मंगोलिया, तथा लोहे और कोयले पर छूट के सम्बन्ध में थीं। यह भी कहा गया था कि चीन अपनी किसी भी खाड़ी, बन्दरगाहों और तटों को किसी भी अन्य देश को नहीं देगा। इसका उद्देश्य यूरोप के लिए चीन का मार्ग बन्द करके एशिया को केवल एशिया वालों के लिए ही रखना था। इस सिद्धान्त को 'एशिया का मुनरो सिद्धान्त' (Asiatic Monroe Doctrine) कहा गया है। जापान ने यह भी कहा कि चीन को एक जापानी सलाहकार रखना होगा, जापानी शस्त्र और गोला बारूद खरीदने होंगे, पुलिस पर नियन्त्रण तथा धार्मिक प्रचार की स्वतन्त्रता देनी होगी। जापान ने चीन से अपनी माँगें मनवाने के लिए सब प्रकार का दबाव डाला। चीन के राष्ट्रपति युआन-शिह-काई से उसकी साम्राज्यवादी योजना में सहायता देने का प्रस्ताव किया गया। मई, १९१५ में चीन को एक चुनौती भेजी गई और उसे जापान की बहुत-सी माँगें स्वीकार करनी पड़ी थीं। कहा जाता है कि १९१५ की चीन और जापान की सन्धि "युआन-शिह-काई और जापान में व्यक्तिगत सौदेबाजी का परिणाम था। कानूनी दृष्टि से इसे संसद् ने कभी भी स्वीकार नहीं किया था और इसलिए इस सन्धि को क्रियात्मक रूप से लागू नहीं किया जा सकता था। युआन्-शिह-काई इस समय चीनी गणतन्त्र के प्रति एक देशद्रोही बन चुका था और उसे चीन की जनता का जो जापान से घोर घृणा करती थी, प्रतिनिधित्व करने का कोई अधिकार नहीं था।"

१९१७ में जापान ने अमरीका से लानसिग-इशही समझौता (Lansing-Ishii Agreement) किया जिसके अनुसार अमरीका ने यह स्वीकार किया कि प्रादेशिक विशेषताओं ने दोनों देशों में विशेष सम्बन्ध उत्पन्न कर दिए हैं और जापान

के चीन में विशेष स्वार्थ हैं। दूसरे शब्दों में अमरीका नें भी जापान के चीन पर विशेष दावों को मान्यता दे दी।

जापान और चीन दोनों ही मित्र राष्ट्रों की ओर से युद्ध में लड़े थे, किन्तु शान्ति सम्मेलन के अवसर पर इन्होंने एक दूसरे के विरुद्ध दावे किए थे। सम्मेलन ने जापान के दावों को स्वीकार किया और चीन की माँगों को नहीं माना। जापान को वही सम्पूर्ण अधिकार दिए गए जो जर्मनी को किआओ-चाऊ (Kiao Chou) और शान्टुंग (Shantung) प्रान्त में युद्ध से पूर्व प्राप्त थे। उसे भूमध्य रेखा के निकट जर्मनी का एक द्वीप भी दिया गया था। चीन का शान्ति सन्धि से असन्तुष्ट होना स्वाभाविक था।

वाशिंगटन सम्मेलन (Washington Conference) (१९२१)—अमरीका जापान की शक्ति वृद्धि से प्रसन्न नहीं था और इसलिए वह इसकी शक्ति पर प्रतिबन्ध लगाना चाहता था। जापान सुदूर पूर्व में सबसे बड़ी समुद्री शक्ति था और अमरीका इस स्थिति को सहन नहीं कर सकता था। परिणामतः अमरीका ने जापान, ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, चीन, पुर्तगाल, बेल्जियम और हॉलैण्ड को एक सम्मेलन में भाग लेने का निमन्त्रण दिया "जिसमें शस्त्रीकरण पर प्रतिबन्ध लगाने पर विचार किया जाएगा और इस विषय में प्रशान्त महासागर और सुदूर पूर्व के प्रश्न पर भी विचार-विमर्श होगा।" नवम्बर १९२१ में वाशिंगटन में सम्मेलन हुआ। वाशिंगटन में तीन सन्धियों पर हस्ताक्षर हुए: 'चार शक्तियों की सन्धि', 'पाँच शक्तियों की सन्धि' और 'नौ शक्तियों की सन्धि'। चार शक्तियों की सन्धि ब्रिटेन, जापान, फ्रांस और अमरीका में हुई। चारों शक्तियों ने प्रशान्त महासागर में प्रत्येक के अधिकृत प्रदेशों पर अधिकार को मान्यता देने का निर्णय किया। यदि उनमें कोई विवाद हो तो वे परस्पर परामर्श करेंगे। किसी अन्य शक्ति द्वारा आक्रमण होने पर आपस में विचार-विमर्श करेंगे। 'पाँच शक्तियों की सन्धि' में समुद्री सेना के निःशस्त्रीकरण (Disarmament) की व्यवस्था थी। इसमें अनेक देशों की समुद्री सेना की शक्ति निर्धारित की गई थी। इसमें व्यवस्था की गई थी कि अमरीका और इंग्लैण्ड की समुद्री शक्ति बराबर रहेगी और जापान की इंग्लैण्ड या अमरीका की शक्ति का ६० प्रतिशत। फ्रांस और इटली के समुद्री बेड़ों की शक्ति अमरीका या इंग्लैण्ड की शक्ति का ३५ प्रतिशत की गई। ये प्रतिबन्ध केवल बड़े जंगी जहाज़ों पर लागू थे, हल्के लड़ाकू जहाज, तोपखाने वाले जहाज और पनडुब्बियों पर लागू नहीं थे। सम्मिलित देश प्रशान्त महासागर (The Pacific) में यथा स्थिति (Status quo) बनाए रखेंगे। 'नौ शक्तियों की सन्धि' के अनुसार सारी शक्तियों ने, जो वाशिंगटन में सम्मिलित हुई थीं, प्रतिज्ञा की कि वे चीन की अक्षुण्णता का आदर करेंगे और "चीन की परिस्थिति से लाभ उठाने का तथा इस प्रकार की विशेष सुविधाएँ अथवा अधिकार प्राप्त नहीं करेंगे जिससे इस मित्र देश के नागरिकों के अधिकारों को आघात पहुँचता हो।" वाशिंगटन सम्मेलन में जापान ने किआओ-चाऊ (Kiao-Chou) प्रदेश चीन को लौटा देने का वचन दिया। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वाशिंगटन सम्मेलन ने जापान की बढ़ती हुई शक्ति पर रोक लगा दी थी।

समुद्री शक्ति की दृष्टि से उसे नीचा स्थान दिया गया और उससे प्रथम विश्व-युद्ध में प्राप्त हुए लाभ भी छीन लिये गए। जापान के देशभक्त इन शर्तों को अधिक समय तक नहीं मान सकते थे और भविष्य में झगड़ा होना अवश्यम्भावी था।

मञ्चूरिया (Manchuria)—जापान को मञ्चूरिया के मामलों में बड़ी गहरी दिलचस्पी थी। उसकी जनसंख्या बड़ी तीव्रता से बढ़ रही थी। उसे अपनी जनसंख्या के लिए अधिक भूमि की आवश्यकता थी। उस के कारखानों को केवल कच्चा माल ही नहीं अपितु तैयार माल के लिए नई मण्डियों की भी आवश्यकता थी। जापान की पूँजी अपने लिए नया क्षेत्र चाहती थी। मञ्चूरिया जापान के निकट था और उसका सामरिक (Strategic) महत्त्व जापान के सेनाध्यक्षों से छुपा नहीं था। दक्षिणी मञ्चूरियन रेलवे (South Manchurian Railway) पर जापान पहले से ही नियंत्रण कर चुका था। उसे इसकी रक्षा के लिए मञ्चूरिया की राजधानी मुकडेन (Mukden) में छावनी बनाकर देश में १५ हज़ार सैनिक रखने का भी अधिकार था। इस रेलवे का अन्तिम स्टेशन डैरियन (Darien) था जो जापान के अधिकार में था और इस बन्दरगाह के मार्ग से मञ्चूरिया का आधा विदेशी व्यापार होता था। जापान ने रेलवे मार्ग के निकट नगर बसाए और वहाँ आधुनिक सुविधाएँ प्रदान कीं जिनसे यह प्रदेश बहुत समृद्धिशाली हो गया। विदेशी मुद्रा (Foreign Exchange) का व्यापार सम्पूर्ण रूप से जापान के हाथ में था। १९३१ तक मञ्चूरिया में जापान की लगभग दस लाख डालर की पूँजी लग चुकी थी।

जापान की मञ्चूरिया पर बहुत देर से आँखें लगी थीं किन्तु उसने अनुभव किया कि १९३१ का वर्ष इस देश पर अधिकार करने के लिए अत्यन्त उपयुक्त समय है। यूरोप स्वयं अपनी समस्याओं में व्यस्त था। व्यापार में विश्वव्यापी गिरावट यूरोप के कूटनीतिज्ञों के लिए कठिन समस्या थी। बेकारी, ऋण, निःशस्त्रीकरण, चुंगी के प्रतिबन्ध इत्यादि समस्याएँ उनके सामने थीं। जर्मनी और इटली में राजनीतिक स्थिति असाधारण थी। चीन भी बड़े कठिन समय से गुज़र रहा था। १९२५ में डाक्टर सनयात सेन (Sunyat-Sen) की मृत्यु के पश्चात् चीन में अनेक दल सत्ता हथियाने के लिए संघर्ष कर रहे थे। यद्यपि जनरल च्यांग-काई-शेक (Chiang Kai-shek) ने देश में अपनी सत्ता जमा ली थी फिर भी उसे अनेक प्रतिद्वन्द्वियों का सामना करना पड़ रहा था। चीन के दलों में एकता नहीं थी। देश के दूरस्थ प्रदेशों पर केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण नहीं था। राजनीतिक दल परस्पर व्यवहार में विश्वासघात करते थे। अकालों और बाढ़ों से देश में और भी अधिक विपत्ति आ गई थी। स्थानीय सैनिक पदाधिकारी लूटमार में व्यस्त थे। यदि जापान कभी भी मञ्चूरिया पर विजय करना चाहता था तो इस कार्य के लिए इस समय से बढ़कर अधिक उपयुक्त समय कभी नहीं आया था।

१८-१९ सितम्बर, १९३१ की रात्रि को जापान के प्रहरी दस्ते ने चीन की सेना का एक दस्ता मुकडेन के निकट मञ्चूरियन रेलवे को उड़ाने का प्रयत्न करते हुए देखा। जापान के लिए यह बहाना पर्याप्त था। थोड़ी झड़प हुई और मुकडेन में

चीन के दस हज़ार सैनिकों के शस्त्र छीन कर उन्हें भगा दिया गया। चार ही दिन में मुकडेन के उत्तर की ओर के २०० मील के घेरे के प्रदेश पर जापानी सेना ने अधिकार कर लिया। मञ्चूरिया की चीनी सरकार ने मुकडेन खाली कर दिया। नवम्बर, १९३२ तक सारे उत्तरी मञ्चूरिया पर जापान ने अधिकार कर लिया था। जनवरी, १९३३ तक सारा मञ्चूरिया जापान ने जीत लिया था।
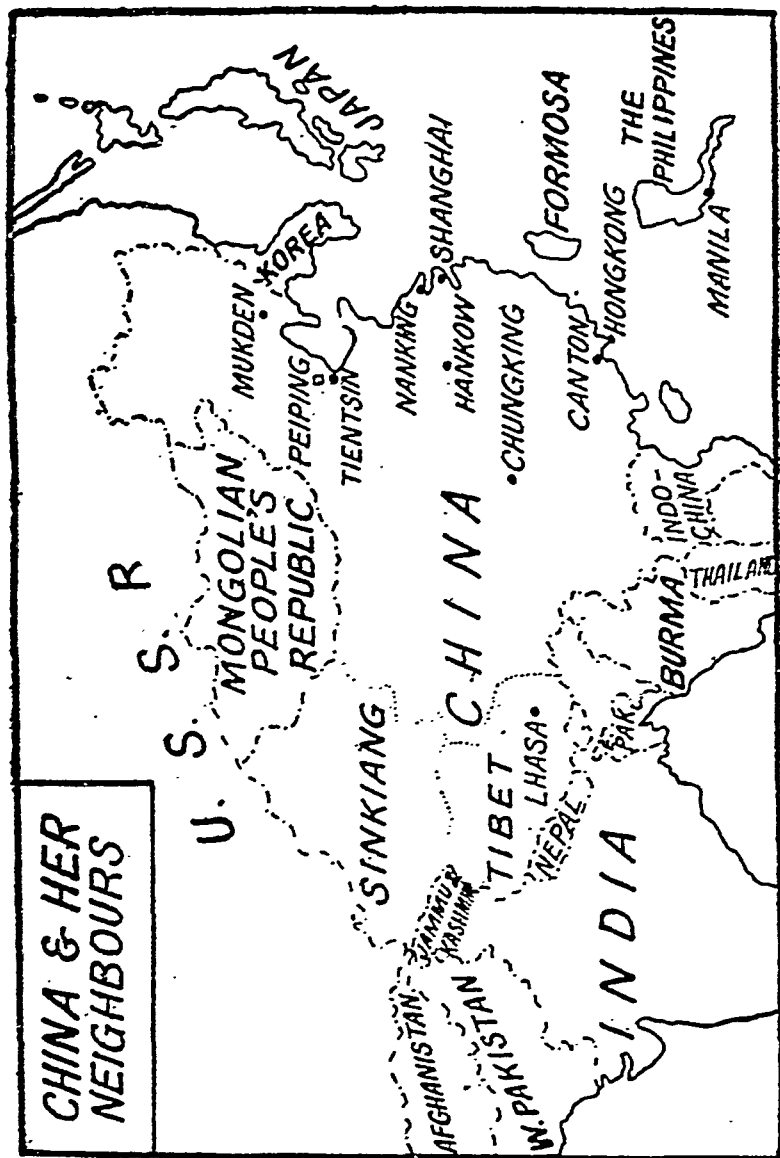
चीन ने जापान के आक्रमण के विरुद्ध लीग ऑफ नेशन्ज़ (League of Nations) में सदस्य राष्ट्रों से सामूहिक सुरक्षा के नाम पर अपील की। लीग ऑफ

नेशन्ज़ में जापान के प्रतिनिधियों ने अन्य देशों का भय यह कह कर दूर कर दिया कि जापान का उद्देश्य मञ्चूरिया को अपने राज्य में मिलाने का नहीं है अपितु जापानी नागरिकों की सम्पत्ति की सुरक्षा का प्रबन्ध होते ही वहाँ से सेनाएँ हटा ली जाएँगी। जापान ने अपने आक्रमण को केवल 'पुलिस कार्यवाही' बताया। यह सत्य होते हुए भी कि जापान आक्रमणकारी था, लीग ऑफ नेशन्ज़ ने इसके विरुद्ध कोई भी कार्यवाही न करने का निर्णय किया और ३० सितम्बर, १९३१ को एक प्रस्ताव स्वीकार किया जिसके अनुसार जापान को मञ्चूरिया से सेना हटाने का अवसर दिया गया। अमरीका की सरकार भी जापान के इस आक्रमण से चिन्तित हुई। वह चीन की अक्षुण्णता की रक्षा के लिए यथाशक्ति कार्य करने को तैयार थी। यद्यपि अमरीका लीग ऑफ नेशन्ज़ का सदस्य नहीं था; उसने लीग की कौंसिल (Council) के सम्मेलनों में भाग लिया और कहा कि यदि जापान के विरुद्ध कोई कार्यवाही की गई तो वह उसमें सहयोग देगा। लीग ऑफ नेशन्ज़ ने जापान के विरुद्ध कार्यवाही करने से जितना संकोच किया उतना ही जापान का रुख कठोर होता गया और वह मञ्चूरिया के मामलों से अन्य देशों के हस्तक्षेप से रुष्ट होने लगा।

जब यह स्पष्ट हो गया कि जापान अपने हठ पर अड़ा रहेगा तो लीग ऑफ नेशन्ज़ ने प्रसिद्ध लिट्टन आयोग (Lytton Commission) की स्थापना की और इसे उस स्थान पर जाकर उन परिस्थितियों की जाँच करने का कार्य सौंपा जिनसे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति पर प्रभाव पड़ता था और चीन और जापान की शान्ति भंग होने की आशंका थी। किन्तु आयोग को आदेश दिया गया कि वह दोनों पक्षों की सैनिक स्थिति में कोई हस्तक्षेप न करे। अपना कार्य समाप्त करने के पश्चात् इस आयोग ने नवम्बर, १९३२ में अपनी रिपोर्ट पेश की। इस रिपोर्ट में दोनों पक्षों को प्रसन्न करने के असम्भव कार्य को करने का प्रयत्न किया गया था। इसकी भाषा अत्यन्त नम्र थी। इसने सुझाव दिया कि दोनों देश परस्पर सीधी बातचीत करें। चीन को अपने संरक्षण में मञ्चूरिया में एक स्वशासन करने वाली सरकार (Autonomous Government) की स्थापना करने को कहा गया। इसने मञ्चूरिया में रेल व्यवस्था में पुनः परिवर्तन करने का सुझाव दिया। राजनीतिक तथा आर्थिक मामलों में विदेशी विशेषज्ञों की नियुक्ति का सुझाव भी दिया। रिपोर्ट में जापान को आक्रमणकारी घोषित करने से बचाने का प्रयत्न किया गया था।

जापान ने लीग ऑफ नेशन्ज़ के विरुद्ध एक विशिष्ट अवहेलनापूर्ण कार्य किया था, किन्तु लीग जापान के विरुद्ध कोई भी प्रभावशाली कार्यवाही नहीं कर सकी थी। इसका कारण कुछ देशों का रुख भी था। ब्रिटेन के विदेश-मन्त्री सर जॉन साइमन ने घोषणा की कि वह मञ्चूरिया के प्रश्न पर जापान से युद्ध करने के लिए तैयार नहीं है। १९३३ में कन्जर्वेटिव दल (Conservative Party) के एक प्रसिद्ध कूटनीतिज्ञ एल. एस. ऐमरी (L. S. Amery) ने हाउस ऑफ कामन्स में कहा, "मैं स्वीकार करता हूँ कि हमें वचन अथवा कर्म से अथवा सहानुभूति के दृष्टिकोण से ऐसा कोई कारण नहीं प्रतीत होता जिसके आधार पर हम अपनी ओर से अथवा अन्तर्राष्ट्रीय

संगठन की ओर से इस मामले में जापान के विरुद्ध जाएँ। जब आप इस तथ्य को मानते हैं कि जापान को मण्डियों की आवश्यकता है और इसके लिए यह अत्यावश्यक है कि जिस संसार में वह रहता है वहाँ शान्ति और व्यवस्था रहे, तो हम लोगों में ऐसा कौन-सा व्यक्ति है जो पत्थर फेंक कर यह कह सके कि जापान को मञ्चूरिया में शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए कार्यवाही नहीं करनी चाहिए थी। अथवा चीन के उग्र राष्ट्रीयवाद के सतत आक्रमण से अपनी रक्षा का प्रबन्ध नहीं करना चाहिए था। यदि हम जापान की इस विषय में निन्दा करते हैं तो हमारी भारतवर्ष के प्रति और मिस्र के प्रति नीति स्वयमेव निन्दनीय हो जाती है।"

लीग ऑफ नेशन्ज़ द्वारा जापान के विरुद्ध कोई कार्यवाही न किए जाने के कारण मञ्चूरिया उसके ही अधिकार में रह गया। लीग ऑफ नेशन्ज़ की असफलता से सामूहिक सुरक्षा के सिद्धान्त को बड़ा भारी धक्का पहुँचा। इससे हिटलर और मसोलिनी जैसे व्यक्तियों का साहस बढ़ जाना स्वाभाविक था। जापान ने भी समझा कि वह चीन का और भी भाग छीन सकता है और कोई भी उसे रोक नहीं सकेगा। उसके साम्राज्यवाद को प्रोत्साहन मिलना स्वाभाविक हो गया था।

जापान की मञ्चूरिया पर विजय के विषय में हार्डी का मत है, "इस घटना से जो अत्यन्त जोरदार झटका सामूहिक सुरक्षा प्रणाली को लगा उसका प्रभाव बहुत गहरा तथा घातक था और जिस प्रश्न पर इस विषय में मतभेद है वह यह है कि इसका सारा उत्तरदायित्व जापान पर है अथवा इस उत्तरदायित्व को उन सब लोगों पर बाँटा जाना चाहिए जिन्होंने इस प्रणाली की योजना बनाई क्योंकि इस प्रणाली को तत्कालीन संसार कार्य रूप में परिणत नहीं कर सकता था। बहुत से लोगों का यह विचार है कि जापान को दण्ड देना सम्भव था किन्तु इसे क्रियात्मक रूप देने के मार्ग में इतनी कठिनाइयाँ थीं और विश्व को युद्ध की आग में झोंक देने की इतनी आशंका थी, कि लीग ऑफ नेशन्ज़ के सदस्यों की अकर्मण्यता, यदि पूर्णतः न्यायोचित नहीं तो क्षम्य अवश्य है।" मैकिनटोश का मत है, "इटली और जर्मनी की यह धारणा बन गई कि सन्धियाँ करने तथा आक्रमण करने में कोई भय नहीं क्योंकि लीग ऑफ नेशन्ज़ कोई भी कार्यवाही संगठित रूप से नहीं कर सकती। जापान ने लीग के आडम्बर का आवरण हटाकर संसार के सम्मुख यह स्पष्ट कर दिया कि युद्ध का थोड़ा-सा भी भय इसके समर्थकों का उत्साह शान्त करने के लिए पर्याप्त है।" यह भी कहा जाता है कि लीग की इस कार्यवाही से सामूहिक प्रणाली को एक घातक चोट पहुँची, निःशस्त्रीकरण की आशा को नष्ट कर दिया तथा एक ऐसे युद्ध की दशा में घटनाचक्र के प्रवाह को मोड़ दिया गया कि जब भी यह युद्ध हो, वह लीग ऑफ नेशन्ज़ के सिद्धान्तों को जापान के विरुद्ध लागू करने से जो हानि वर्तमान सामाजिक तथा साम्राज्यवादी व्यवस्था से होती, उससे सौ गुना अधिक हानि होती तथा घोर विनाश होता।"

जापान द्वारा मञ्चूरिया पर अधिकार कर लेने से उसकी लालसा इतनी बढ़ गई कि जापान के देशभक्त, उद्योगपति और सैनिक सारे पूर्वी एशिया पर अधिकार

करने की सोचने लगे। जापान ने अन्य देशों को धमकी देना आरम्भ कर दिया कि यदि वे चीन की सरकार का समर्थन करेंगे तो उनके विरुद्ध युद्ध किया जाएगा। जापान ने घोषणा की थी,......"इसलिए चीन द्वारा जापान का मुकाबला करने के लिए किसी अन्य सरकार की सहायता लेने के प्रयत्न का हम विरोध करते हैं; हम चीन द्वारा एक शक्ति को दूसरी शक्ति से लड़ाने के प्रयत्न का भी विरोध करते हैं। मञ्चूरिया और शंघाई की घटनाओं के पश्चात् विदेशी शक्तियों द्वारा विशेषज्ञों की सलाह अथवा आर्थिक रूप में सहायता देने के प्रयासों का परिणाम राजनैतिक महत्त्व रखने वाला माना जाएगा। साधारणतः व्यापारिक अथवा आर्थिक सम्बन्धों और परामर्श देने पर कोई आपत्ति नहीं है किन्तु चीन को युद्ध के वायुयान देना, चीन में हवाई अड्डे बनाना, चीन में सैनिक शिक्षा अथवा सैनिक विशेषज्ञ नियुक्त करना, इत्यादि का परिणाम चीन-जापान तथा अन्य देशों के सम्बन्धों को बिगाड़ देना होगा तथा पूर्वी एशिया में शान्ति और व्यवस्था को अव्यवस्थित कर देना होगा। जापान इस प्रकार की सारी कार्यवाहियों का घोर विरोध करेगा।" यह सत्य है कि अमरीका और ब्रिटेन ने जापान के उपर्युक्त दावों को स्वीकार नहीं किया, किन्तु फिर भी चीन के छिन्न-भिन्न होने को रोकने के लिए कुछ भी नहीं किया गया। जापान पूरी शक्ति से विदेशों द्वारा चीन की सहायता को रोकने के लिए तैयार था। उसने चीन में फूट डालने का पूरा प्रयत्न किया था। इससे पहले कि चीन के देशभक्त देश में राष्ट्रीयता की भावना को जाग्रत करते तथा संगठित रूप से आक्रमणकारी का मुकाबला कर सकते, जापान ने चीन को समाप्त कर देने का दृढ़ निश्चय कर लिया था।

१९३५ में जापान ने चीन के उत्तरी प्रान्त को शेष देश से अलग करने का प्रयत्न किया। किन्तु उपयुक्त समय पर चीन को कार्यवाही से सफलता नहीं मिली। स्थानीय जापानी सैनिक अधिकारियों ने 'पूर्वी होपेई (Hopei) स्वायत्त सरकार' नाम की एक कठपुतली सरकार स्थापित कर दी थी। जापान ने बहुत बड़े स्तर पर तस्कर व्यापार (Smuggling) करके चीन की आर्थिक व्यवस्था को चोट पहुँचाने का प्रयत्न किया था। चीन में जापान के विरुद्ध घोर क्षोभ था और १९३६ में वहाँ बहुत से जापानियों को मार डाला गया। जुलाई, १९३७ में पीकिंग के निकट चीन और जापान के सैनिक दस्तों में मुठभेड़ हुई। औपचारिक रूप से युद्ध की घोषणा नहीं हुई थी किन्तु दोनों देशों में बहुत बड़े स्तर पर झड़पें होनी आरम्भ हो गईं। जर्मनी की तरह जापान का पूरे चीन पर विजय प्राप्त करने का क्रम निरन्तर चलता ही रहा। पीकिंग पर अधिकार कर लिया गया। नानकिंग (Nanking) भी जापान ने हथिया लिया। यद्यपि चीन में रहने वाले ब्रिटिश नागरिकों के प्रति जापान का रुख अपमानजनक था, तथापि ब्रिटेन युद्ध के मैदान में नहीं आया। लीग ऑफ नेशन्ज बड़े पवित्र प्रस्ताव स्वीकार करके ही संतुष्ट हो गई। जापान किसी भी ओर से बिना विरोध के आक्रमण और विजय का कार्य पूरा करता रहा। हानकाओ (Hankow) और कैण्टन (Canton) पर भी अधिकार कर लिया गया। जापान ने चीन की सारी बन्दरगाहों और समुद्र के समूचे तट पर अधिकार कर लिया। थोड़े

समय तक रूस ने चीन की सहायता की, किन्तु वह भी कालान्तर में कम होती गई। १६३६ में जापान ने हिन्द-चीन आने वाली रेलवे लाइन काट दी। चीन को अपनी रसद वर्मा की सड़क से प्राप्त होती थी, किन्तु जापान द्वारा वर्मा पर विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् वह भी वेकार हो गई। १६४१ में जापान ने पर्ल हार्वर पर आक्रमण किया जिसके कारण अमरीका भी द्वितीय विश्वयुद्ध में सम्मिलित हो गया। थोड़े समय तक जापान की विजय होती रही। सिंगापुर भी उसके हाथ लगा। फ्रेंच हिन्द-चीन, स्याम, मलाया और वर्मा पर भी जापान का अधिकार हो गया। आस्ट्रेलिया की सुरक्षा को भी खतरा हो गया। अंत में मित्रराष्ट्रों के संगठित आक्रमण से जापान को पीछे हटा दिया गया। १६४५ में हिरोशिमा और नागासाकी पर दो अणु-वम गिराए जाने के कारण जापान को आत्म-समर्पण करना पड़ा।

Suggested Readings

Allen : *The Hungry Guest.*
Asakawa : *Russo-Japanese Conflict.*
Causton : *Militarism and Foreign Policy in Japan.*
Chamberlain : *Japan over 'Asia.*
Chang, C. F. : *The Angla-Japanese Alliance.*
Colegrove : *Militarism in Japan.*
Douglas : *Europe and the Far East.*
Gibbons : *New Map of Asia*
Hershey : *Modern Japan.*
Hornbeck : *Contemporay Politics in the Far East.*
Mellaren, W. W. : *A Political History of Japan.*
Saito : *Japan's Policies and Purposes.*
Treat : *Japan and the United States.*
Wildes : *Japan in Crisis, 1934.*
Whyte, Sir A. F. : *China and the Foreign Powers.*
Yen, E. T. : *The Open Door Policy.*

अध्याय २८

अमरीका की विदेश-नीति

(American Foreign Policy)

मेक्सिको (Mexico)—१८६१-६५ के गृह-युद्ध (Civil War) के पश्चात् संयुक्त-राज्य अमरीका एक महान् शक्ति के रूप में उदित हुआ और इसने अमरीका तथा संसार की राजनीति में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया। आरम्भ में इसने फ्रांस के विरुद्ध मेक्सिको में 'मुनरो सिद्धान्त' (Monroe Doctrine) का प्रयोग किया। फ्रांस में नेपोलियन तृतीय के शासन-काल में मेक्सिको ने अन्तर्राष्ट्रीय ऋणों को अस्वीकार (repudiate) कर दिया। फ्रांस ने उस समय मेक्सिको में हस्तक्षेप किया था। नेपोलियन ने इस देश को जीतने के लिए एक बहुत बड़ी सेना भेजी और विजय करने के पश्चात् आस्ट्रिया के सम्राट् के भाई मेक्सिमिलियन (Maximillian) को इसके सिंहासन पर बैठा दिया। जब तक अमरीका में गृह-युद्ध चलता रहा, फ्रांस ने इस देश पर अपना अधिकार बनाए रखा। किन्तु जब संयुक्त राज्य अमरीका में शान्ति हो गई तो अमरीका की सरकार ने 'मुनरो सिद्धान्त' का प्रयोग करके फ्रांस को देश छोड़ जाने के लिए कहा। नेपोलियन इसका मुकाबला नहीं कर पाया और उसने अपनी सेना को वापिस बुलाने का निर्णय किया। मेक्सिमिलियन ने देर कर दी। परिणामस्वरूप उसे गोली मार दी गई। इस प्रकार अमरीका की सरकार ने मेक्सिको से फ्रांस की सेनाओं को निकाल दिया था।

'अलबामा' के दावे (Alabama Claims)—'अल्बामा' नाम के जंगी जहाज़ ने ब्रिटेन की बन्दरगाहों से आकर गृह-युद्ध के दिनों में अमरीका के व्यापार को बहुत क्षति पहुँचाई थी जिसके फलस्वरूप अमरीका की सरकार ने क्षतिपूर्ति का दावा कर दिया। स्थिति बड़ी गम्भीर हो गई किन्तु अन्त में दोनों देशों ने इस मामले में पंच फैसले (arbitration) को मानना स्वीकार किया। दोनों देशों में बहुत विचार-विमर्श के पश्चात् मई, १८७१ में वाशिंगटन की सन्धि (Treaty of Washington) हुई। इस सन्धि में ब्रिटेन ने कहा "सम्राज्ञी की सरकार मैत्री भाव में इस भूल के लिए खेद प्रकट करती है जो किन्हीं परिस्थितियों में 'अल्बामा' और अन्य जहाज़ों ने, ब्रिटिश बन्दरगाहों से, इस प्रकार के खेदजनक कार्य किए।" इस सन्धि में कनाडा और संयुक्त राज्य अमरीका के बीच मछली पकड़ने इत्यादि के पुराने झगड़ों का बड़ी समझदारी से फैसला किया गया। इस सन्धि के अनुसार वेन्कूवर सीमा (Vancouver Boundary) का झगड़ा जर्मनी के सम्राट् के पास पञ्च फैसले के लिए भेजा गया और सम्राट् ने ब्रिटेन के विरुद्ध निर्णय दिया। मित्र देशों

के विरुद्ध निष्पक्ष देशों की बन्दरगाहों में जहाजों को शस्त्र-सज्जित करने के विषय में अत्यधिक सावधानी और चौकसी रखने के लिए नए अन्तराष्ट्रीय कानूनों को मान्यता दी गई थी। 'अल्बामा' के विरुद्ध दावे को ब्रिटेन, अमरीका, इटली, स्विट्ज़रलैण्ड और ब्राज़ील के प्रतिनिधियों के एक विशेष न्यायालय को विचारार्थ

भेजने का निर्णय भी हुआ। पञ्च फैसले के अनुसार ब्रिटेन को ३,५०,००० पौण्ड क्षतिपूर्ति के रूप में अमरीका को देना पड़ा। ग्लैडस्टोन इस निर्णय के प्रति मुख्यतः उत्तरदायी था। उसने इस निर्णय के विषय में कहा, "मात्रा की दृष्टि से दण्ड

अत्यधिक है और आधार की दृष्टि से यह न्यायपूर्ण नहीं है।" किन्तु इसके साथ उसने यह भी कहा, "तलवार की ताकत से अपने झगड़े का निर्णय करने की अपेक्षा इंग्लैण्ड और अमरीका के महान् राष्ट्रों ने एक न्यायालय के सम्मुख शान्तिपूर्वक तथा मित्रतापूर्वक जाकर जो आदर्श प्रस्तुत किया है उसके नैतिक मूल्य की तुलना में इस देश पर लगाए गए दण्ड को मैं धूल के बराबर समझता हूँ।"

वेनेजुएला सीमा-विवाद (Venezuela Boundary Dispute)—ब्रिटेन और वेनेजुएला में सीमा के विषय में झगड़ा था। इस झगड़े को सुलझाने के अनेक प्रयत्न किए गए किन्तु असफल हुए। १८९५ में राष्ट्रपति क्लीवलैण्ड (President Cleveland) के राष्ट्र सचिव श्री ओलने (Secretary of State Mr. Olney) ने कहा कि ब्रिटेन को यह मामला पंच फैसले को भेजना पड़ेगा। यह माँग बड़ी अद्भुत थी और जिन शब्दों में इसे पेश किया गया था वह किसी भी प्रकार अपमान से कम नहीं थी। अमरीकी सरकार ने मुनरो सिद्धान्त (Monroe Doctrine) के आधार पर अपने हस्तक्षेप की रक्षा की। ओलने ने लिखा, "अमरीका के एक राज्य और यूरोप के राज्य के बीच तीन हजार मील लम्बे समुद्र की दूरी किसी प्रकार के संगठन को अप्राकृतिक और असम्भव बनाती है, इस बात से कोई भी इनकार नहीं कर सकता। दक्षिणी और उत्तरी अमरीका के राज्य भौगोलिक सामीप्य, प्राकृतिक सहानुभूति, समान शासन संविधान, व्यापारिक तथा राजनीतिक दृष्टिकोण से संयुक्त-राज्य अमरीका के सहकारी और मित्र हैं। अमरीका इस महाद्वीप पर सर्वाधिकार सम्पन्न है और इसके कानून अपनी जनता पर लागू होते हैं। पुनश्च इस देश में एक 'अमरीकन-सार्वजनिक' कानून है जो सिद्धान्त और पूर्व घटनाओं के आधार पर पूर्णतः सत्य है। किसी भी यूरोपीय शक्ति द्वारा अमरीका के राज्य पर शक्ति प्रयोग द्वारा राजनीतिक नियन्त्रण रखना, अमरीका पर आघात करना माना जायगा।"

यद्यपि ओलने का पत्र अत्यन्त उत्तेजक था, लार्ड सेलिसबरी उत्तेजित नहीं हुआ। उसने इस विवाद में 'मुनरो सिद्धान्त' के प्रयोग पर नम्रता से आपत्ति की और इस बात पर ज़ोर दिया कि "संयुक्त राज्य अमरीका को उन अनेक देशों के विषय में, जिनके आचरण का वह कोई भी उत्तरदायित्व स्वीकार नहीं करता, यह कहने का अधिकार नहीं है कि उन देशों में घटने वाली सभी परिस्थितियों से संयुक्त-राज्य अमरीका के हित सम्बन्धित हैं केवल इसी कारण के लिए कि वे पश्चिमी गोलार्द्ध (Western Hemisphere) में स्थित हैं।" किन्तु लार्ड सेलिसबरी ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि ब्रिटेन अमरीका के साथ किसी गम्भीर झगड़े में नहीं उलझना चाहता। लार्ड सेलिसबरी के नम्र व्यवहार पर भी राष्ट्रपति क्लीवलैण्ड ने अमरीका की काँग्रेस (Congress) को १७ दिसम्बर, १८९५ को यह सन्देश भेजा कि "यदि कोई यूरोपीय शक्ति अपनी सीमाओं का विकास करके हमारे पड़ोसी गणतन्त्र को बिना उसकी इच्छा के तथा उसके अधिकारों का हनन करके अपने अधिकार में कर लेती है तो किस प्रकार माना जाए कि वह यूरोपीय शक्ति इस प्रकार प्राप्त किए हुए इस महाद्वीप के एक भाग पर अपनी शासन-प्रणाली को नहीं थोप रही है।

राष्ट्रपति मुनरो ने इस प्रकार के कार्य को ही हमारी शान्ति और सुरक्षा के लिए भयप्रद बताया था।" दोनों देशों में युद्ध की बहुत सम्भावना थी। किन्तु लार्ड सेलिसबरी ने इस मामले को अधिक महत्त्व देना नहीं चाहा। ब्रिटेन और वेनेज़ुएला दोनों ने अमरीका द्वारा नियुक्त एक जाँच समिति को अपना झगड़ा निर्णय के लिए सौंप दिया। पंच फैसले के अनुसार ब्रिटेन को विवादग्रस्त प्रदेश का बहुत-सा भाग प्राप्त हुआ। किन्तु इस कार्यवाही से अमरीका ने यह सिद्ध कर दिया कि वह दक्षिणी अमरीका के लेटिन राज्यों का संरक्षक है।

वेनेज़ुएला के विवाद में अमरीका के हस्तक्षेप से अमरीका को संसार की राजनीति से एकाकी रखने वाला युग समाप्त हो गया। अमरीका के एक लेखक के अनुसार, "वेनेज़ुएला के मामले में क्लीवलैण्ड की नीति ने संसार में एक भूकम्प जैसी शक्ति से यह घोषणा कर दी थी कि अमरीकी प्रजातन्त्र युवा हो गया है।" क्लीवलैण्ड और ओलने द्वारा प्रतिपादित नीति से उत्पन्न स्थिति से अमरीका पीछे नहीं हट सकता था। तथा जो स्थिति अमरीका की थी उसके कारण वह अपने पड़ोसियों के कार्यों के उत्तरदायित्व से भी नहीं बच सकता था। अतः उसे कानून और व्यवस्था की देखभाल रखनी पड़ती थी। उसके कुछ पड़ोसी दुर्बल तथा कुछ उत्पात करने वाले थे इसलिए १९०४ में राष्ट्रपति रूजवेल्ट (President Roosevelt) ने घोषणा की कि, "संयुक्त राज्य अमरीका को मुनरो सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए अत्यन्त अराजकता, उत्पात अथवा दुर्बलता की अवस्था में, को अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति की नीति का प्रयोग करना आवश्यक है।"

स्पेन से युद्ध (War with Spain) १८९८—२१ अप्रैल, १८९८ को स्पेन और अमरीका में युद्ध छिड़ गया। स्पेन के अधिकृत क्यूबा (Cuba) द्वीप में असंतोष-जनक अवस्था इस युद्ध का एक कारण थी। १८६८ में क्यूबा की जनता ने विद्रोह किया और यह अवस्था लगभग १० वर्ष तक बनी रही। यह सत्य है कि १८७८ में समझौता हो गया था किन्तु स्थानीय सरकार भ्रष्टाचारी और अत्याचारी थी। १८९५ में एक नया विद्रोह हुआ। जनरल वेलर (Weyler) को परिस्थिति सँभालने के लिए पूर्ण अधिकार देकर भेजा गया। उसने विद्रोह का दमन करने के लिए अत्यन्त निर्दयतापूर्ण ढंग अपनाए। अमरीका के क्यूबा के साथ घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध थे। अमरीका वालों ने इस द्वीप में बहुत-सी पूँजी लगा रखी थी जिससे इस द्वीप में अराजकता के कारण उन्हें बड़ी हानि हुई। १८९७ में अमरीका ने स्पेन को अपनी सद्भावना से झगड़े में बीच-बचाव कराने का प्रस्ताव किया जिसे ठुकरा दिया गया। वेलर के अत्याचारों के कारण अमरीका में बड़ा क्षोभ था। अमरीका में एक 'क्यूबा सहायक समिति' की स्थापना की गई और राष्ट्रपति क्लीवलैण्ड ने हस्तक्षेप करने की धमकी दी। १८९८ में परिस्थिति अत्यन्त जटिल हो गई। 'मेन' (Maine) नाम के एक जंगी जहाज़ को जो हवाना (*Havana*) की बन्दरगाह में लंगर डाले था, बारूद से उड़ा दिया गया। अमरीका की जनता ने इसे स्पेन के गुप्तचरों का कार्य बताया और युद्ध के लिए माँग की गई। अमरीका की कांग्रेस (Congress) और

राष्ट्रपति मेकिनले (President Mckinley) जनमत से सहमत थे। संसद् में प्रस्ताव स्वीकार हुआ कि स्पेन क्यूबा को स्वतन्त्र करे और इसे अपने साम्राज्य में मिलाने का विचार छोड़ दे। स्पेन को अमरीका से युद्ध छेड़ने के लिए उकसाया जाने लगा। अमरीका के साधनों की श्रेष्ठता के कारण युद्ध शीघ्र ही समाप्त हो गया। स्पेन की सेना और जहाज़ी बेड़ा दोनों ही सैण्टियागो (Santiago) में थे जहाँ अमरीका की सेनाओं ने उनका मार्ग रोक लिया। परिणामस्वरूप स्पेन का समुद्री सेनापति और बेड़ा कुछ घण्टों के युद्ध के पश्चात् ही नष्ट कर दिए गए। चौदह दिन के पश्चात् सेण्टियागो के नगर पर भी अधिकार कर लिया गया।

इस युद्ध में अमरीका ने पोर्टो रिको (Porto Rico) पर अधिकार कर लिया और स्पेन केरिवियन सागर (Carribean Sea) से अदृश्य हो गया। कुछ समय तक क्यूबा पर अमरीका की सेनाओं का अधिकार रहा किन्तु बाद में इसे स्वतन्त्र घोषित कर दिया गया। यह डर था कि क्यूबा को अमरीका में मिला लेने से अन्य विवाद उठ खड़े होंगे। किन्तु अमरीका ने समय पड़ने पर इसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार अपने लिए सुरक्षित रखा।

स्पेन और अमरीका का युद्ध एटलाण्टिक-महासागर (The Atlantic) तक ही सीमित नहीं रहा, अपितु यह फ़िलिपाइन्ज़ (Philippines) तक फैल गया था। क्यूबा पर स्पेन का शासन दमनकारी, अत्याचारी और प्रभावहीन था। इस द्वीप पर स्पेन के राजा के नाम पर धर्म-प्रचारक (Missionary friars) राज्य करते थे। बराबर उपद्रव होने के कारण फिलिपाइन्ज़ से इन धर्म-प्रचारकों को निकालने के लिए आन्दोलन हुआ। १८९६ में इन द्वीपों की जनता ने जापान के सम्राट् से द्वीपों को अपने राज्य में मिलाने के लिए प्रार्थना की थी। जापान के राजा ने इस प्रस्ताव का स्वीकार करने की अपेक्षा स्पेन के राजा को सूचना दे दी। परिणामस्वरूप देश में आतंक का राज्य हो गया। उपनिवेशों में रहने वालों ने संवैधानिक सरकार, समाचारपत्रों की स्वतन्त्रता, न्याय की समानता तथा धर्म-प्रचारकों को निकालने की माँगें कीं।

फ़िलिपाइन्ज़ (Philippines) में इस प्रकार की स्थिति स्पेन-अमरीका के युद्ध आरम्भ होने के समय थी। जल-सेनापति डेवी (Dewey) के नेतृत्व में अमरीका का एक जंगी बेड़ा 'मनीला' (Manila) गया और दो घण्टे में स्पेन का सारा बेड़ा नष्ट कर दिया गया। जुलाई में मनीला पर अधिकार कर लिया गया। स्पेन ने सब कुछ जाता देखा दिसम्बर, १८९८ में पेरिस में शान्ति-सन्धि करली। फ़िलिपाइन्ज़ द्वीप-समूह अमरीका को दे दिया गया और अमरीका ने दो करोड़ डालर क्षतिपूर्ति के रूप में स्पेन को दिए। अमरीका किसी भी शर्त पर फिलिपाइन्ज द्वीप-समूह अपने हाथ से नहीं जाने देना चाहता था। इन्हें स्वतन्त्रता देने की भी कोई सम्भावना न थी। राष्ट्रपति मेकिनले ने अमरीका के शान्ति आयोग (American Peace Commission) को आदेश दिया था, "आंशिक अथवा पूर्णरूप से अधिकार की भावना के बिना भी हमारी सेनाओं की मनीला में उपस्थिति और सफलता से हमें कुछ इस प्रकार के

कर्त्तव्य करने पड़ेंगे जिनकी उपेक्षा करना हमारे लिए असम्भव है। घटनाओं का क्रम ही मनुष्य के कार्यों का नियन्त्रण या खण्डन करता है। हम जिस उद्देश्य की भावना से प्रेरित हुए थे हम उसके प्रति अब भी दृढ़ हैं। हम विना किसी इच्छा और उद्देश्य के इस वात को भूल नहीं सकते कि युद्ध ने हमें कुछ नये कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व सौंपे हैं जिन्हें एक महान् राष्ट्र होने के नाते पूरा करना हमारे लिए शोभनीय है। विशेषतः इस कारण कि राष्ट्रों के स्वामी (परमात्मा) ने हमारे हाथों में सभ्यता की रक्षा सौंपी है।"

यद्यपि १८९८ की पेरिस सन्धि के अनुसार फिलिपाइन्ज़ द्वीप-समूह अमरीका को दे दिया गया तथापि वहाँ शान्ति स्थापित नहीं हुई थी। विद्रोही नेता ऐक्वीनाल्डो (Acquinaldo) को १८९७ में देशनिकाला दे दिया गया। १८९८ में उसे मनीला आने की आज्ञा दे दी गई। ऐक्वीनाल्डो ने फिलिपाइन्ज़ को स्वतन्त्र घोषित करके प्रजातन्त्र प्रणाली की सरकार वना दी और स्वयं इसका राष्ट्रपति वन वैठा। यह घटना फ़रवरी, १८९९ में हुई और अमरीका को एक वार फिर शक्ति का प्रयोग करना पड़ा। १८९९ की समाप्ति तक सारा विरोध समाप्त कर दिया गया किन्तु ऐक्वीनाल्डो छिप गया और छापामार युद्ध (Guerilla Warfare) दो वर्ष तक चलता रहा। अप्रैल १९०१ में ऐक्वीनाल्डो पकड़ा गया और विद्रोह का अन्त घोषित कर दिया गया। शान्ति की स्थापना के पश्चात् देश का शासन न्यायाध्यक्ष टाफ्ट (Judge Taft) के आधीन एक नागरिक सरकार को सौंप दिया गया। १९०२ में संसदीय प्रणाली की सरकार वना दी गई जिसमें आदिवासियों को देश के शासन में वहुत से अधिकार दिए गए। १९०४ में राष्ट्रपति थ्योडोर रूज़वेल्ट (President Theodore Roosevelt) ने कांग्रेस (Congress) को दिए गए सन्देश में कहा, "मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप लोग फिलिपाइन्ज़ के नागरिकों को सभ्यता की सीढ़ी पर दिन प्रति दिन ऊँचे चढ़ने में तथा स्वशासन की योग्यता प्राप्त करने में सहायता दे सकते हैं और मुझे पूर्ण आशा है कि अन्त में ये लोग यदि पूर्णतः नहीं तो आंशिक रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ इस प्रकार से सम्बन्धित रहेंगे जैसे आज क्यूवा हमारे साथ है।" फिलिपाइन्ज़ की जनता को धीरे-धीरे स्वायत्त शासन (Autonomy) सौंप दिया गया और द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् इन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी गई।

सैण्डविच द्वीप-समूह (Sandwich Islands) (१८९८)—अमरीका ने लगभग पचास वर्ष से अधिक समय से सैण्डविच द्वीपसमूह के भविष्य में अपनी दिलचस्पी दिखाई थी। १८५४ में अमरीका ने स्थानीय सरकार से इन्हें अपने राज्य में मिला लेने के लिए सन्धि की थी, किन्तु फिर भी इस ओर कोई कार्यवाही नहीं की गई। आदिवासी सरदारों में परस्पर झगड़े, थे और १८८७ में राजा कालाकाना (Kalakana) ने इस प्रकार की सरकार स्थापित की जिसमें श्वेत-वस्ती वालों का नियन्त्रण निहित था। १८९२ में आदिवासी दल ने फिर सिर उठाया और षड्यन्त्र द्वारा सरकार पर अधिकार कर लिया। इसके वाद विद्रोह के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई और यूरोपीय लोगों की सरकार पुनः स्थापित हो गई। प्रान्तीय प्रतिनिधियों द्वारा

वाशिगटन में विलीनीकरण की सन्धि (Treaty of Annexation) पर हस्ताक्षर हुए और इसे सीनेट (Senate) की अनुमति के लिए भेज दिया गया। किन्तु राष्ट्रपति ने इसे वापस मंगा लिया। जुलाई १८९८ में सेण्डविच द्वीप-समूह को पूर्ण रूप से संयुक्त राज्य अमरीका में मिला लिया गया। १९०० में इन्हें हवाई प्रदेश (Hawaii Territory) बना दिया गया।

सैमोआ द्वीप-समूह (Samoa Islands)—जर्मनी ने कुछ समय तक प्रशान्त महासागर में बड़ी हलचल मचाई थी। दिसम्बर, १८८५ में जर्मन शासकों और आदिवासियों में झगड़े होने लगे। जनवरी, १८८६ में अमरीका के राज्यसचिव मि० बेयर्ड (Secretary of State, Mr. Bayard) ने बर्लिन स्थित राजदूत को जर्मनी की सरकार से यह आशा प्रकट करने को कहा कि वर्तमान सन्धि के विरुद्ध कोई ऐसा कार्य नहीं किया जाएगा जिससे दोनों देशों के मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को आघात पहुँचे। इसका उत्तर मैत्रीपूर्ण था और सम्मेलन हुआ जिसमें तुर्की, अमरीका और ब्रिटेन ने भाग लिया। जर्मनी ने सहसा लड़ाई छेड़ दी और सैमोआ पर राज्य करने वाले राजा को अपदस्थ (depose) करके निष्कासित (exile) कर दिया तथा अपनी इच्छा से नया राजा नियुक्त करके अपने प्रतिनिधि को उसका सलाहकार बना दिया। सितम्बर, १८८८ में आदिवासियों ने जर्मनी द्वारा नियुक्त राजा और उसके सलाहकार के विरुद्ध विद्रोह करके उसे गद्दी पर से हटा दिया और अपनी ओर से एक नया राजा गद्दी पर बैठा दिया। जर्मनी ने जलसेना को द्वीप में उतार दिया किन्तु आदिवासियों ने इन पर छुप कर धावा किया और बहुत हानि पहुँचाई। जर्मनी ने शिकायत की कि छुपकर धावा करने वालों का नेतृत्व अमरीका के नागरिकों ने किया था। परिणामतः जर्मनी और अमरीका के सम्बन्ध बिगड़ने लगे। किन्तु बिस्मार्क शान्ति रखने का इच्छुक था और १८८९ में बर्लिन में एक और सम्मेलन हुआ। परिणामतः सैमोआ द्वीपसमूह पर जर्मनी, अमरीका और ब्रिटेन का सामूहिक नियन्त्रण हो गया। सामूहिक नियन्त्रण संतोषजनक रीति से नहीं चला अतः सैमोआ द्वीपसमूह को जर्मनी और अमरीका ने बाँट लिया और ब्रिटेन की अन्य स्थान पर क्षतिपूर्ति कर दी गई।

चीन में 'खुले द्वार' की नीति (Policy of Open Door in China)—अमरीका चीन में खुले-द्वार की नीति का पालन करता था। अमरीका चीन साम्राज्य की प्रादेशिक अक्षुण्णता का समर्थक था और अन्य देशों की भाँति चीन से व्यापार करने की सुविधा चाहता था। राज्य-सचिव मि० जॉन हे (Secretary of State, Mr. John Hay) ने खुले-द्वार नीति का इस प्रकार वर्णन किया था, "हम वास्तव में उस साम्राज्य को छिन्न-भिन्न करने के विरोधी हैं तथा अमरीका का जनमत इस लूटमार के खेल में हमारे दाँव-पेच का समर्थन नहीं करेगा। किन्तु इसके साथ हम इस साम्राज्य में अपने व्यापारिक अधिकारों की रक्षा के लिए गम्भीरता से उत्सुक हैं। हमारे प्रतिनिधियों को आदेश है कि वे ठीक प्रकार से सब चीज़ों की जाँच-पड़ताल करें कि कहीं उनमें हमारे हितों को आघात पहुँचाने की कोई सामग्री तो

नहीं हैं ? उन्हें आदेश दिया गया है कि वे हमें हानि पहुँचाने वाली सभी गतिविधियों का ज़ोरदार तथा उपयुक्त समय पर विरोध प्रकट करके रोकने का प्रयत्न करें। भविष्य की घटनाओं का सामना करने के लिए हम किसी प्रकार से बन्धन में नहीं हैं किन्तु इस समय हमारी श्रेष्ठ नीति यह है कि हम अपने व्यापारिक हितों की जागरूकता से अन्य शक्तियों से औपचारिक गठबन्धन किए बिना रक्षा करें।" ब्रिटेन ने अमरीका की इस नीति को स्वीकार किया और अन्य देशों ने भी पारस्परिक ईर्ष्या के कारण इसको स्वीकार किया। ब्रिटेन और अमरीका में इतना घनिष्ठ सहयोग था कि दोनों देशों की सन्धि होने की चर्चा होने लगी थी। किन्तु किसी प्रकार की सन्धि सीनेट की अनुमति के बिना असम्भव थी और वास्तव में कोई सन्धि हुई भी नहीं।

श्री हे की 'खुले-द्वार' नीति १६०० के बॉक्सर उत्पात (Boxer Rising) में नष्ट हो गई होती। बॉक्सर आन्दोलन विदेशियों का विरोधी था और इसका उद्देश्य विदेशी शैतान को भगाना और चीन को चीन वालों के लिए सुरक्षित करना था। यह विद्रोह कुछ तो चीन में ईसाई धर्म-प्रचारकों की गतिविधियों के कारण और कुछ यूरोपीय शक्तियों द्वारा चीन में प्रभाव-क्षेत्र बनाने की होड़ के कारण हुआ। चीन की सरकार और सम्राज्ञी को बॉक्सर नेताओं के साथ गुप्त रूप से सहानुभूति थी। बॉक्सरों ने पीकिंग में विदेशी राजदूतों के कार्यालयों पर आक्रमण किया और उन पर घेरा डाल दिया। लगभग एक महीने तक बाहरी दुनिया को चीन का कोई समाचार नहीं मिला। स्थिति गम्भीर थी और साधनों तथा रसद की कमी के कारण विदेशी राजदूतों द्वारा आत्म-समर्पण कर देने की पूरी सम्भावना थी। अमरीका ने बॉक्सरों का दमन करने के लिए रसद भेजने के कार्य में अन्य देशों को सहयोग दिया। जब से विद्रोह समाप्त हुआ तो अन्य देशों ने चीन के प्रदेशों पर अधिकार करने पर ज़ोर दिया था। किन्तु श्री हे ने हठ किया कि विदेशी सेनाएँ हटा लेनी चाहिएँ और चीन से केवल युद्ध की क्षतिपूर्ति की माँग की। अमरीका को भी क्षतिपूर्ति में धन मिला, किन्तु बाद में इसका कुछ भाग चीनी विद्यार्थियों को अमरीका के विश्वविद्यालयों में अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति के रूप में वापस कर दिया गया।

वेनेज़ुएला का घेरा (Blockade of Venezuela)—वेनेज़ुएला को अनेक देशों का ऋण चुकाना था जिनमें इंग्लैण्ड, जर्मनी और इटली भी थे। चूँकि ये देश अपनी पूँजी साधारण रूप से प्राप्त नहीं कर सके, ब्रिटेन, जर्मनी और इटली ने प्रशान्त महासागर की ओर के समुद्री तट का मार्ग बन्द करने का निर्णय किया। १६०२ में जर्मन और ब्रिटेन ने वेनेज़ुएला से दौत्य (Diplomatic) सम्बन्ध तोड़ दिए। उन्होंने इसकी बन्दरगाहों पर गोलाबारी करके इन पर अधिकार करने की योजना भी बनाई। अमरीका ने विरोध प्रकट किया और ब्रिटेन ने इस योजना से हट जाने की इच्छा प्रकट की। जर्मनी ने ऋण के मामले को पञ्च फैसले (Arbitration) के लिए भेजने का प्रस्ताव नहीं माना। राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने इस गुत्थी को सुलझाया। उसने जर्मनी के राजदूत को ह्वाइट हाउस (White House) में बुलाकर कहा कि

डेवी (Dewey) का आदेश दिया जा चुका है कि वह सेना लेकर वेनेजुएला पहुँच जाए और इसके प्रदेश पर किसी को अधिकार न करने दे। जर्मनी के पीछे हटने को गुप्त रखा जाएगा और काइज़र (Kaiser) को इस उदार कार्य का श्रेय दिया जाएगा। जर्मनी अकेला रह गया इसलिए जर्मनी का बेड़ा भी पीछे हट गया। ऋणों को पञ्च फैसले के लिए भेजा गया और चूंकि इन्हें कम कर दिया गया था अतः इनका पूरा भुगतान कर दिया गया।

पनामा नहर (Panama Canal)—संयुक्तराज्य अमरीका की बड़ी इच्छा थी कि केन्द्रीय अमरीका (Central America) के प्रायद्वीपों में से किसी एक को काटकर एक नहर निकाली जाए किन्तु १८५० की सन्धि इसमें एक बड़ी बाधा थी। १८५० की क्लेटन-बुलवर (Clayton-Bulwer) सन्धि के अनुसार यह निर्णय हुआ था कि पनामा नहर बनाने की स्थिति में कोई भी देश इस पर पूर्णाधिकार नहीं रखेगा। किन्तु प्रशान्त महासागर में उपनिवेश प्राप्त करने के पश्चात् अमरीका ने अनुभव किया कि उसे पनामा नहर पर एकाधिकार मिलना चाहिए। राष्ट्रपति थ्योडोर रूजवैल्ट ने ब्रिटिश सरकार को मना लिया कि अमरीका १८५० की सन्धि को रद्द करके एक नया समझौता कर ले। यह कार्य १९०१ की हे-पान्सफूट (Hay-Pauncefoote) सन्धि द्वारा पूरा हुआ और ब्रिटिश सरकार ने अमरीका के पनामा प्रायद्वीप में नहर निकालने तथा इसकी सुरक्षा करने के एकाधिकार को मान्यता दी। अमरीका की कांग्रेस (Congress) निकारागुआ और पनामा के समर्थकों में विभाजित थी। किन्तु अमरीका की कांग्रेस ने राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया कि यदि कोलम्बिया के गणतन्त्र से संतोषजनक सन्धि हो जाए तो पनामा प्रायद्वीप में, अन्यथा निकारागुआ में नहर निकाली जाए। सचिव हे (Secretary Hay) ने कोलम्बिया को २ करोड़ ५० लाख डालर एक बार तथा मार्ग अधिकार के किराये के रूप में २५ लाख डालर प्रति वर्ष देने का प्रस्ताव किया। कोलम्बिया के मन्त्री ने यह सुझाव मान लिया और वाशिंगटन में सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। किन्तु कोलम्बिया में इसका बहुत विरोध हुआ और कोलम्बिया की सभा ने इस सन्धि को सर्वसम्मति से अस्वीकार कर दिया। राष्ट्रपति रूजवैल्ट ने इस चुनौती को स्वीकार किया और अमरीका की कांग्रेस को एक सन्देश द्वारा सलाह दी कि पनामा प्रायद्वीप पर अधिकार करके बिना विचार-विमर्श किए नहर खोदनी शुरू कर दी जाए। उसने अपनी इस अनधिकार चेष्टा का यह कह कर समर्थन किया कि यह कार्य सभ्यता के विकास के हित में है।

पनामा की जनता कई बार कोलम्बिया की केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर चुकी थी इसलिए सन्धि के अस्वीकृत हो जाने पर बड़ी निराश हुई। फ्रांस की एक कम्पनी, जिसने नहर खोदना आरम्भ कर दिया था और जिसे चार करोड़ डालर का ठेका मिला था बड़ी निराश हुई। किन्तु १८४६ में संयुक्तराज्य अमरीका और कोलम्बिया में एक सन्धि हुई जिसके अनुसार अमरीका ने पनामा की निष्पक्षता तथा कोलम्बिया की सर्वाधिकार-सम्पन्नता का आश्वासन दिया। अमरीका ने कोलम्बिया में विद्रोह रोकने में कई बार सहायता की थी किन्तु अब बदली हुई परिस्थिति में एक नई नीति की आवश्यकता थी। रूजवैल्ट स्वयं पनामा द्वारा

कोलम्बिया के विरुद्ध विद्रोह करने के पक्ष में था। उसने एक मित्र को पत्र में लिखा था, "व्यक्तिगत रूप से मैं तुम्हें स्पष्ट रूप से बताता हूँ कि यदि पनामा एक स्वतन्त्र राज्य होता तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होती, किन्तु मेरे द्वारा सार्वजनिक रूप से इस प्रकार कहने का अर्थ विद्रोह को उकसाना लगाया जाएगा इसलिए मैं यह नहीं कह सकता।" इस प्रकार के रुख से विद्रोही नेताओं को प्रोत्साहन मिला। एक जंगी जहाज को आज्ञा देकर कोलोन (Colon) भेजा गया कि वह पनामा में ५० मील के क्षेत्र में सरकारी अथवा विद्रोही सेना को उतरने दे। प्रायद्वीप का मार्ग केवल समुद्र से था। यह प्रबन्ध विद्रोहियों के लिए लाभदायक स्थिति उत्पन्न करने के लिए किया गया था। आज्ञानुसार पनामा में विद्रोह हुआ और तीन दिन पश्चात् पनामा राज्य को अमरीका ने मान्यता दे दी। नए गणतन्त्र से अमरीका ने सन्धि कर ली, जिसके अनुसार अमरीका को नहर की पट्टी का प्रदेश लाभदायक शर्तों पर मिल गया। निस्सन्देह रूप से पनामा के मामले का हल पनामा की जनता, फ्रांस की कम्पनी के साझीदारों, अमरीका और सभ्यता के हित में हुआ। किन्तु कोलम्बिया के लोगों ने इस पर बहुत बुरा माना। बाद में कोलम्बिया को भी कुछ धन क्षतिपूर्ति के रूप में दिया गया। नहर की खुदाई का काम प्रगति करने लगा और यह कार्य १९१४ में चालीस करोड़ डालर की लागत से पूर्ण हुआ।

कनाडा से सीमा विवाद (Boundary Dispute with Canada)—१८६७ में अमरीका ने रूस से अलास्का (Alaska) प्रदेश खरीदा था। दूरी के कारण अलास्का की उपेक्षा होती रही। १८९७ में सोने की खानों का पता लगने पर यह प्रसिद्ध हो गया। अलास्का और कनाडा की सीमा की व्याख्या इस प्रकार थी, "यह देश समुद्री तट के मोड़ से तीस मील पीछे तक है।" कनाडा का दावा था कि तीस मील को सँकरी खाड़ियों (narrow Bays) से नापा जाना चाहिए और उसे गहरे समुद्री मार्ग का अधिकार है। अमरीका इस दावे को आधारहीन मानता था। रूज़वैल्ट इस मामले में पञ्च फैसले के लिए तैयार नहीं था क्योंकि उसका विचार था कि अमरीका का पक्ष प्रबल है और पञ्च बहुधा समझौता (Compromise) कराते हैं। उसने इस मामले को एक संयुक्त आयोग (Joint Commission) को सौंपने का सुझाव दिया और साथ ही यह स्पष्ट कर दिया कि यदि आयोग के सदस्य किसी निर्णय पर नहीं पहुँचे तो विवाद पञ्च फैसले के लिये नहीं भेजा जायगा। सेनाओं को आज्ञा दी जायगी कि वे उसके द्वारा ठीक समझे जाने वाली सीमा पर सीमांकन कर दें। संयुक्त आयोग बना दिया गया और सदस्यों ने अमरीका के पक्ष में निर्णय किया। इंग्लैण्ड में अमरीका की बड़ी निन्दा की गई। अमरीकी सरकार की निन्दा भी की गई कि उन्होंने आयोग पर उन लोगों को नियुक्त किया जिनके विचार इस विवाद के विषय में पहले से ज्ञात थे।

सेण्टो डोमिंगो (Sainto Domingo)—सेण्टो डोमिंगो बुरी तरह ऋण भार से दबा हुआ था और राष्ट्रपति रूज़वैल्ट ने इस द्वीप में १९०५ में एक अमरीकी राजस्व अधिकारी (Receiver of Customs) की नियुक्ति की थी। परिणामतः डोमिंगो पर अमरीका की संरक्षता (Protectorate) स्थापित हो गई। केल्वो

सिद्धान्त (Calvo Doctrine) को १९०७ में हेग सम्मेलन (Hague Conference) द्वारा स्वीकृत होने के कारण विदेशी आक्रमण का भय जाता रहा। इस सिद्धान्त का तात्पर्य यह था कि ऋण देने वाला देश अपना धन उस समय शक्ति प्रयोग द्वारा वसूल करेगा जब ऋणी देश पञ्च फैसले को अस्वीकार कर दे।

रूस और जापान का युद्ध (Russo-Japanese War)—राष्ट्रपति थ्योडोर रूजवैल्ट ने रूस और जापान के युद्ध में हस्तक्षेप किया। यह बात उल्लेखनीय है कि रूस और जापान दोनों ही युद्ध से थक गए थे किन्तु कोई भी प्रतिष्ठा के कारण शान्तिवार्ता के लिए तैयार नहीं था। कुछ तो अमरीका के हितों के कारण और कुछ मानवीय भावनाओं से प्रेरित होकर राष्ट्रपति रूजवैल्ट ने शान्तिवार्ता के लिए मध्यस्थता करने का प्रस्ताव रखा। परिणामतः पोर्ट्समाऊथ (न्यू हेम्पीशायर) में शान्ति सम्मेलन (Peace Conference) हुआ और रूजवैल्ट इसकी प्रगति से बराबर ताल-मेल बनाए रहा। उसने जापान को धन के रूप में क्षतिपूर्ति की माँग छोड़ने के लिए मना लिया और रूस को इस बात पर राजी कर लिया कि वह साखालिन द्वीप (Sakhalin Island) के नीचे का प्रदेश जापान को दे दे। इस प्रकार पूर्व का एक खतरा टल गया। किन्तु जापान की यह धारणा बनी रही कि उससे विजय का उचित पुरस्कार छीन लिया गया है। परिणामतः १९०५ के बाद दोनों देशों में काफी खिंचाव बना रहा।

अमरीका के पश्चिमी तट पर बहुत से जापानी प्रतिवर्ष जाकर बस जाते थे और अमरीका में इन्हें रोकने के लिए माँग की जाने लगी थीं। १९०६ में सान-फ्रांन्सिस्को के स्कूलों में जापानी बच्चों को दाखिल करने से इन्कार कर देने पर स्थिति बिगड़ गई। बहुत झगड़ों के बाद एक समझौता हुआ कि केवल १६ वर्ष से अधिक आयु के बच्चों को साधारण स्कूलों में भर्ती न किया जाए। सचिव रूट (Secretary Root) ने वाशिंगटन-स्थित जापानी राजदूत से पत्रव्यवहार किया और यह निर्णय हुआ कि जापान अमरीका में कुली मजदूरों को नहीं आने देगा और चीन में यथास्थिति को मान्यता देगा। १९०८ का यह 'सज्जनों का फैसला' (Gentleman's agreement) अमरीका की बड़ी भारी राजनीतिक जीत थी।

राष्ट्रपति रूजवैल्ट ने इंग्लैण्ड और अमरीका के बीच पारस्परिक सहयोग के नए बन्धनों पर जोर देते हुए कहा था—"सफल कूटनीति की एक मुख्य समस्या यह है कि जापानियों तथा एशिया महाद्वीप में उनके बन्धुओं के साथ अच्छे सम्बन्ध रखे जाएं किन्तु साथ ही साथ अमरीका और आस्ट्रेलिया में इन्हें बसाया नहीं जाना चाहिए। यह अमरीका और ब्रिटेन दोनों के लिए समान हित की बात है कि एशिया से आस्ट्रेलिया अथवा उत्तरी अमरीका में लोग अधिक संख्या में आकर न बसें। यह रोका जा सकता है और जापान तथा इंग्लिश भाषा बोलने वाली जातियों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध भी बनाए रखे जा सकते हैं यदि हमारा व्यवहार दृढ़तापूर्ण और सौजन्यपूर्ण हो।"

ऐल्जेकिराज़ सम्मेलन (Algeciras Conference)—१९०६ में अमरीका ने

भी ऐल्जेकिराज़ सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन के सम्बन्ध में प्रारम्भिक वार्ता वाशिंगटन में हुई थी और जिस योजना को अन्त में स्वीकार किया गया उस पर सचिव रूट (Secretary Root) के हस्ताक्षर थे। राष्ट्रपति रूज़वेल्ट की वाशिंगटन स्थित फ्रांस और जर्मनी के राजदूतों से व्यक्तिगत मैत्री से इस सम्मेलन को बड़ी सहायता मिली। रूज़वेल्ट ने अपनी पूर्ण शक्ति और बुद्धि से जर्मन राजदूत को यह समझाया कि युद्ध हानिकारक है। अमरीका के प्रतिनिधि ने आस्ट्रिया और जर्मनी द्वारा प्रस्तावित मोरक्को के विभाजन के प्रस्ताव का समर्थन करने से इन्कार कर दिया और सचिव रूट द्वारा तैयार की गई योजना को प्रस्तावित किया। यह योजना थोड़े संशोधनों के पश्चात् स्वीकार कर ली गई।

प्रथम विश्वयुद्ध (World War I)—१९१४ में जब प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ, भूतपूर्व राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने जर्मनी द्वारा बेल्जियम पर आक्रमण की निन्दा की और अमरीका की सरकार को हस्तक्षेप करने को कहा। किन्तु राष्ट्रपति विल्सन कुछ समय तक सावधानी से स्थिति को देखता रहा। १९१७ में पनडुब्बियों की गतिविधि के कारण अमरीका का 'लुसिटेनिया' जहाज़ डुबो दिया गया और इसमें बहुत से अमरीकी नागरिक मारे गए थे। इसलिए जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी गई। १९१८ में युद्ध की समाप्ति के पश्चात् शान्ति व्यवस्था (Peace Settlement) में राष्ट्रपति विल्सन (President Wilson) ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। यह उन्हीं के प्रयत्नों का परिणाम था कि वर्साई की सन्धि (Treaty of Versailles) में लीग ऑफ़ नेशन्स का कवनैण्ट (Covenant of the League of Nations) भी सम्मिलित कर लिया गया।

वाशिंगटन सम्मेलन (Washington Conference)—१९२१ में वाशिंगटन सम्मेलन हुआ, जिसमें ब्रिटेन, जापान, फ्रांस, इटली, चीन इत्यादि को बुलाया गया था। इसका उद्देश्य शस्त्रों पर रोक लगाना तथा सुदूर पूर्व और प्रशान्त महासागर के मामलों का निर्णय करना था। एक सन्धि के अनुसार अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस और जापान ने यह निर्णय किया कि वे प्रशान्त महासागर में एक दूसरे के अधिकारों का सम्मान करेंगे और झगड़े की अवस्था में एक-दूसरे से विचार-विमर्श करेंगे। जापान के समुद्री बेड़े की शक्ति अमरीका और ब्रिटेन की ६० प्रतिशत, फ्रांस और इटली की ३५ प्रतिशत निर्धारित की गई। सब देशों ने प्रशान्त महासागर की यथास्थिति (Status Quo) को मान्यता दी। तीसरी सन्धि के अनुसार वाशिंगटन सम्मेलन में भाग लेने वाले देशों ने वचन दिया कि वे चीन की स्वतन्त्रता और अक्षुण्णता का आदर करेंगे तथा उसकी दुर्बल स्थिति से अनुचित लाभ नहीं उठायेंगे। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य जापान की बढ़ती हुई शक्ति पर रोक लगाना था। यद्यपि जापान उस समय मान गया तथापि बाद में उसने अपनी मनमानी की।

मंचूरिया (Manchuria)—१९३१ में जापान ने मंचूरिया पर आक्रमण करके थोड़े ही समय में उस पर अधिकार कर लिया। अमरीका चिन्तित हो गया। उसने जापान के आक्रमण को रोकने के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित कर दीं। वह

मंचूरिया के प्रश्न पर लीग ऑफ नेशन्स की कार्यवाही में भाग लेने को भी तैयार था। किन्तु जापान ने अपनी मनचाही कार्यवाही की और मंचूरिया पर पूर्ण अधिकार कर लिया। अन्य शक्तियों से सहयोग न मिलने के कारण अमरीका भी कुछ न कर सका।

१९३० में अमरीका ने निष्पक्षता की नीति का अनुसरण किया और इस प्रकार उसने युद्ध से परे रहने का प्रयत्न किया। १९३९ में भी उसने औपचारिक रूप से युद्ध में भाग नहीं लिया अपितु ब्रिटेन, फ्रांस और अन्य देशों की सहायता करता रहा। १९४१ में पर्ल हार्बर (Pearl Harbour) पर जापान के आक्रमण के पश्चात् अमरीका युद्ध में आया। १९४५ में धुरी राष्ट्रों (Axis Powers) की पराजय में अमरीका का बहुत बड़ा भाग था।

Suggested Readings

Adam, R. G. : *A History of the Foreign Policy of the United States.*
Buell. : *The Washington Conference.*

अध्याय २६

ब्रिटेन की विदेश-नीति

(British Foreign Policy)

पृथक्त्व की नीति (Policy of Isolation)—१८१५ में वाटरलू के युद्ध में नेपोलियन की हार के पश्चात् इंग्लैण्ड ने यूरोप की राजनीति में निर्लेपता (Non-involvement) की नीति अपनाई थी। १८१५ से १८२२ तक उसने चतुर्मुखी संगठन (Quadruple Alliance) के अन्य सदस्यों का साथ दिया किन्तु १८२२ में कैसलरे (Castlereagh) की मृत्यु के पश्चात् कैनिंग (Canning) सत्तासीन हुआ। उसे अन्तर्राष्ट्रीय मेल-जोल से कुछ प्रेम नहीं था। परिणामतः १८२२ में वेरोना के सम्मेलन के पश्चात् सम्मेलन-युग (Era of Congresses) समाप्त हो गया। किन्तु फिर भी कैनिंग को ग्रीस के स्वतन्त्रता-युद्ध में हस्तक्षेप करना पड़ा। पामर्सटन (Palmerston) को भी बेल्जियम, मिस्र और बलकान प्रदेश के मामलों में हस्तक्षेप करना पड़ा। क्रीमिया युद्ध में रूस की हार के पश्चात् ब्रिटेन एक युग तक यूरोपीय राजनीति से अलग ही रहा। १८७७ में प्रसिद्ध 'बल्गारिया के अत्याचार' हुए। तुर्की ने हजारों ईसाइयों की हत्या कर दी। रूस ने बल्गारिया की सहायता की और तुर्कों के विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर दिया। ग्लैडस्टोन (Gladstone) ने डिज़रेली (Disraeli) से त्रस्त ईसाइयों की सहायता करने को कहा, किन्तु उसने अस्वीकार कर दिया। तुर्की की हार हुई और उसे रूस से १८७८ में सॉन स्टिफैनो की सन्धि (Treaty of San Stefano) करनी पड़ी। इस सन्धि से रूस की बलकान प्रदेश में उच्च स्थिति हो गई किन्तु यह बात ब्रिटेन और

ग्लैडस्टोन

आस्ट्रिया को सहन नहीं हुई। परिणामतः रूस से कहा गया कि वह सॉन स्टिफैनो को सन्धि को यूरोपीय कूटनीतिज्ञों के सन्मुख विचारार्थ रखे, अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाए। जब रूस ने देखा कि ब्रिटेन और आस्ट्रिया युद्ध के लिए तैयार हैं तो उसे झुकना पड़ा। रूस एक युद्ध से थका हुआ था और आस्ट्रिया और ब्रिटेन की चुस्त सेनाओं से नहीं लड़ सकता था। बर्लिन सम्मेलन (Congress of Berlin) में ब्रिटेन ने रूस को सॉन-स्टिफैनो की सन्धि द्वारा हुए लाभों से वंचित कर दिया। उसे साइप्रस का द्वीप भी प्राप्त हुआ। डिज़रेली (Disraeli) जब बर्लिन से लन्दन को वापस लौटा तो उसने घोषणा की कि उसने 'सम्मान शान्ति' को प्राप्त किया है।

किन्तु समुचित रूप से ब्रिटेन निर्लिप्तता की नीति का अनुसरण कर रहा था। इस नीति को देश के हितों के लिए श्रेष्ठ समझा गया। यदि कभी-कभी हस्तक्षेप करने से ही उसका कार्य पूरा होता था तो यह स्पष्ट है कि उसे यूरोपीय राजनीति में निरन्तर फँसे रहने से कोई लाभ नहीं था। किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में ब्रिटेन के कूटनीतिज्ञों का यह अनुभव होने लगा कि अब शानदार निर्लिप्तता की नीति (Policy of Splendid Isolation) का अनुसरण करना असम्भव है। १८७० के पश्चात् यूरोप में घटित घटनाओं के कारण यह आवश्यक हो गया था कि एक प्रबल तथा कुशल नीति का अनुसरण किया जाए।

बिस्मार्क (Bismarck) ने यूरोप में जर्मनी का प्रभाव जमा रखा था। १८७१ से १८९० तक यूरोपीय राजनीति में उसका व्यक्तित्व सबसे अधिक शक्तिशाली था। १८७१ में उसने ऐल्ज़ास (Alsace) और लोरेन (Lorraine) पर अधिकार करके फ्रांस की प्रतिष्ठा को चोट पहुँचाई थी। इसलिए उसे 'प्रतिशोध युद्ध' (War of Revanche) का डर था। उसे मालूम था कि फ्रांस इन प्रदेशों को लेने का प्रयत्न करेगा इसलिए उसने फ्रांस को यूरोप से अलग कर देने का प्रयत्न किया। इसी उद्देश्य से उसने १८७३ में 'तीन सम्राटों की सभा' (Three Emperors League) बनाई। इस से रूस, जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी के सम्राटों को इकट्ठा कर दिया गया। १८७८ में बर्लिन-सम्मेलन (Congress of Berlin) के अवसर पर रूस और आस्ट्रिया-हंगरी में मतभेद हो जाने के कारण यह संगठन टूट गया। १८७८-७९ में रूस और जर्मनी के सम्बन्ध अत्यन्त कटु हो गए जिसके परिणामस्वरूप आस्ट्रिया और जर्मनी में द्विमुखी सन्धि (Dual Alliance) हुई। इस सन्धि के अनुसार जर्मनी और आस्ट्रिया-हंगरी में प्रतिज्ञा हुई कि रूस द्वारा आक्रमण करने की अवस्था में दोनों देश परस्पर सहायता करेंगे। यह सन्धि पाँच वर्ष के लिए हुई थी किन्तु अवधि पूर्ण होने पर इसे दुहराया जाता रहा और यह सन्धि १९१४ तक निरन्तर चलती रही। १८८२ में इस सन्धि में इटली भी सदस्य बन गया और इस प्रकार त्रिमुखी संगठन (Triple Alliance) का जन्म हुआ।

जब तक बिस्मार्क के हाथ में सत्ता रही उसने फ्रांस को मित्रहीन करने का पूरा प्रयत्न किया और इसी उद्देश्य से रूस से मैत्री सम्बन्ध स्थापित किए। १८८७

में रूस और आस्ट्रिया के सम्बन्ध, बल्गारिया के मामले में अत्यन्त कटु हो गए थे। इसलिए बिस्मार्क ने रूस में १८८७ से पुनराश्वासन सन्धि (Reinsurance Treaty) की। यह १८९० में बिस्मार्क के त्याग-पत्र देने तक चलती रही। १८८७ की सन्धि जर्मनी के काइज़र विलियम द्वितीय (Kaiser William II) के व्यवहार के कारण समाप्त हो गई। फ्रांस और रूस के स्वार्थों ने इन्हें एक दूसरे के निकट ला दिया और १८९४ में फ्रांस और रूस का गठवन्धन हुआ। जर्मनी, इटली और आस्ट्रिया-हंगरी एक पक्ष में तथा रूस और इटली दूसरे के पक्ष में हो गए थे।

इस परिस्थिति । ब्रिटेन ने यूरोप की राजनीति में अपने को अकेला पाया। उसे डर था कि युद्ध की स्थिति में ब्रिटेन बड़ी कठिन परिस्थिति में पड़ जाएगा। उसने मित्रों के विषय में सोचा और उसने जर्मनी को अपने अधिक निकट पाया। सम्राज्ञी विक्टोरिया विलियम द्वितीय की नानी थी और इंग्लैण्ड में यह धारणा भी प्रबल थी कि ब्रिटन के पूर्वज जर्मनी से आए थे। अफ्रीका में इंग्लैण्ड और फ्रांस की होड़ के कारण और कोई चुनाव हो नहीं सकता था। किन्तु जर्मनी की ओर से इसका उत्तर सन्तोषजनक नहीं मिल रहा था।

फ़ैशोदा घटना (Fashoda Incident)—१८९८ में प्रसिद्ध फैशोदा घटना हुई। फ्रांसीसी सरकार ने मार्चण्ड (Marchand) को मध्य अफ्रीका में घुस कर पूर्वी तट पर पहुँचने का आदेश दिया था। उस समय ब्रिटिश सरकार सूडान में अपनी स्थिति दृढ़ बना रही थी। नील नदी पर फैशोदा नामक स्थान पर मार्चण्ड ने फ्रांस का राष्ट्रीय ध्वज लहरा दिया। जब किचनर (Kitchener) को इस बात का पता चला तो वह वहाँ पहुँचा और मार्चण्ड से उस स्थान से चले जाने के लिए कहा। झगड़ा होने की पूरी सम्भावना थी। किन्तु समझदारी से काम लिया गया और मार्चण्ड और किचनर ने इस मामले को अपनी-अपनी सरकारों को निर्णयार्थ भेजना स्वीकार कर लिया। डेलकास्सी (Delcasse) की ब्रिटेन समर्थक (pro-British) नीति के कारण तथा लॉर्ड सेलिसबरी की समझौते की नीति के कारण यह मामला शान्ति से सुलझ गया। १८९९ में फ्रांस ने ब्रिटेन से सारे पुराने झगड़ों को निपटाने की अपील की किन्तु सेलिसबरी ने इस विषय में कोई उत्सुकता नहीं दिखाई।

ब्रिटेन का जर्मनी के पास जाना (Britain approaches Germany)—इस समय जर्मन की मैत्री प्राप्त करने के प्रयत्न किए गए। १९०१ में सम्राज्ञी विक्टोरिया की मृत्यु के समय विलियम द्वितीय इंग्लैण्ड गया और वहाँ बहुत दिन तक रहा। उसने सम्राज्ञी की मृत्यु पर हार्दिक शोक प्रकट किया और जनता पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने जर्मनी के ब्रिटेन के साथ सम्बन्धों की डींग मारी और उसने ब्रिटिश जल-सेना से अपने सम्बन्धों के विषय में भी गर्व प्रकट किया। ब्रिटेन के राजनीतिज्ञों ने इस अवसर को जर्मनी से मैत्री करने का अत्यन्त उपयुक्त समय माना। उन्होंने इस विषय में प्रस्ताव भी किया किन्तु दुर्भाग्य से इसका मैत्रीपूर्ण उत्तर नहीं आया। विलियम द्वितीय का उत्तर था कि "बर्लिन का मार्ग

विश्राना से होकर जाता है" ("The road to Berlin lies through Vienna") । इस उत्तर से जर्मनी के साथ मैत्री के समर्थकों का उत्साह ठण्डा पड़ गया। परिणामतः जर्मनी से मैत्री करने के प्रयत्न छोड़कर अन्य देशों से सहयोग करने का प्रयत्न किया जाने लगा।

इंग्लैण्ड और जापान की सन्धि (Anglo-Japanese Alliance) (१६०२)—ब्रिटेन की निर्लेपता की नीति सर्वप्रथम १६०२ में तोड़ी गई जिस समय ब्रिटेन ने जापान से सन्धि की। सन्धि में घोषणा की गई कि, "इस सन्धि का एकमात्र उद्देश्य सुदूर पूर्व में सार्वजनिक शान्ति और यथास्थिति बनाए रखना है तथा हमारा उद्देश्य चीन और कोरिया के साम्राज्यों की प्रादेशिक अक्षुण्णता और स्वतन्त्रता की रक्षा करना है।" इसमें सब देशों को समान रूप से व्यापार और उद्योग की सुविधाएँ मिलनी थीं। इंग्लैण्ड को विशेषतः चीन में और जापान को चीन और कोरिया में विशेष दिलचस्पी थी। इस सन्धि के अनुसार यदि जापान या इंग्लैण्ड अपने हितों की रक्षा के लिए किसी अन्य देश से युद्धग्रस्त हो जाए तो दूसरा देश निष्पक्ष रहेगा। यदि जापान या इंग्लैण्ड दो या इससे अधिक देशों के विरुद्ध युद्धग्रस्त हो जाएँ तो दूसरा देश भी युद्ध में भाग लेगा। इस सन्धि के परिणामस्वरूप जापान को रूस-जापान युद्ध की अवस्था में फ्रांस या जर्मनी अथवा दोनों के हस्तक्षेप करने पर उसे ब्रिटेन की जल-सेना की सहायता प्राप्त हो जाती। १८६५ में जापान को चीन के विरुद्ध युद्ध करने पर क्षतिपूर्ति नहीं मिली थी। उस स्थिति को फिर दोहराने की सम्भावना नहीं थी। इस सन्धि के अनुसार इंग्लैण्ड प्रशान्त महासागर से अपनी जल-सेना हटा कर उत्तरी समुद्र (North Sea) में जर्मनी के विरुद्ध अपनी शक्ति संचित कर सकता था।

मैत्री संगठन (Entente Cordiale) (१६०४)—ब्रिटेन केवल जापान से सन्धि करके संतुष्ट नहीं हुआ। जैसे-जैसे जर्मनी से भय बढ़ता गया उसकी मित्रों की खोज बढ़ती गई। १६०३ में एडवर्ड सप्तम (Edward VII) ने फ्रांस की यात्रा की और वहाँ सारे देश में उसका बड़ा भारी स्वागत हुआ। इससे उसका मन बड़ा प्रभावित हुआ। एडवर्ड सप्तम विलियम द्वितीय से व्यक्तिगत रूप से घृणा और फ्रांस से प्रेम करता था। इससे दोनों देशों की मैत्री के लिए बहुत अच्छा वातावरण उत्पन्न हो गया।

एडवर्ड सप्तम की यात्रा के पश्चात् फ्रांस का राष्ट्रपति लौबे (President Loubet) और डेलकास्सी (Delcasse) इंग्लैण्ड आए। दोनों देशों के राजनीतिज्ञों में पुराने झगड़ों को निपटाने के लिए विचार-विमर्श हुआ। इस सबका परिणाम १६०४ का 'मैत्री संगठन' (Entente Cordiale) हुआ। यह संगठन सन्धि नहीं थी किन्तु इसके द्वारा दोनों देशों में झगड़ों के कारण समाप्त हो गए और दोनों देश अब परस्पर अधिकाधिक सहयोग कर सकते थे। इसके द्वारा फ्रांस ने इंग्लैण्ड के मिस्र में विशेष हितों को मान्यता दी और प्रत्युत्तर में इंग्लैण्ड ने मोरक्को में फ्रांस के हितों को मान्यता दी। न्यूफाउण्डलैण्ड (Newfoundland) में मछली पकड़ने के उद्योग

के विषय में यह निर्णय हुआ कि फ्रांस इसके तट पर अपना दावा छोड़ देगा और ब्रिटेन फ्रांस को समुद्र-तट पर मछली पकड़ने के उद्योग में सब सुविधाएँ देगा। अन्य पुराने झगड़ों का निपटारा भी विचारविमर्श द्वारा हो गया।

यह बात उल्लेखनीय है कि कालान्तर में यह संगठन उत्तरोत्तर दृढ़ होता गया। इंग्लैण्ड और फ्रांस के परस्पर सहयोग के भी अनेक कारण थे। १९०४-५ के रूस-जापान युद्ध में रूस की हार के कारण फ्रांस क्रमशः इंग्लैण्ड पर अधिकाधिक निर्भर होने को विवश हो गया था। जर्मनी की प्रगतिशील समुद्री शक्ति के कारण इंग्लैण्ड अपनी जल-शक्ति को उत्तरी सागर (North Sea) में केन्द्रित करने को विवश हो गया था। परिणामतः उसे अपनी जल-सेना अन्ध महासागर से हटानी पड़ी। यह सुरक्षा के साथ उसी समय हो सकता था जब फ्रांस का जहाज़ी बेड़ा वहाँ की सुरक्षा का भार उठाए। इसलिए उसे भी फ्रांस पर निर्भर होना पड़ा।

ब्रिटेन के तीनों मोरक्को विद्रोहों (Three Morocco Crises) के समय के रुख से प्रकट हो गया था कि वह फ्रांस के निकट आता जा रहा है। १९०५ में जब फ्रांस ने मोरक्को में अपने पैर ज़माने चाहे तो विलियम द्वितीय ने टेञ्जियर्स जाकर घोषणा की कि जर्मनी फ्रांस द्वारा मोरक्को पर अधिकार करने को कभी सहन नहीं करेगा। जर्मनी ने डेलकास्सी को पदच्युत करना तथा मोरक्को के मामले पर एक सम्मेलन बुलाने का प्रस्ताव किया। ये दोनों बातें मान ली गई और १९०६ में ऐल्जेकिराज़ सम्मेलन की तैयारियाँ की गई। सम्मेलन से तुरन्त पहले इंग्लैण्ड और फ्रांस के जल और स्थल सेना के अधिकारियों का सम्मेलन हुआ। सम्मेलन में भी इंग्लैण्ड ने फ्रांस का समर्थन किया और जर्मनी वस्तुतः अकेला रह गया। इसी प्रकार १९०८ और १९११ में भी इंग्लैण्ड ने फ्रांस का समर्थन किया। जब लार्ड हाल्डेन (Lord Haldane) १९१२ में जर्मनी गया तो उसने स्पष्टतः कहा कि इंग्लैण्ड किसी भी मूल्य पर फ्रांस का बलिदान नहीं करेगा। कालान्तर में इंग्लैण्ड और फ्रांस के मैत्री सम्बन्ध मज़बूत होते चले गए।

ब्रिटेन और रूस का समझौता (Anglo-Russian Convention) (१९०७)—इंग्लैण्ड और रूस के बीच समझौता होना फ्रांस के हित में था। डेलकास्सी ने इसके लिए बड़ा प्रयत्न किया और पदच्युति के पश्चात् भी वह इस ओर निरन्तर प्रयत्नशील रहा। परिणामतः १९०७ में ब्रिटेन और रूस में समझौता हुआ जिसके अनुसार अफ़ग़ानिस्तान, तिब्बत और ईरान के विषय में इंग्लैण्ड और रूस के विवादों का निपटारा हुआ। अफ़ग़ानिस्तान के विषय में फैसला हुआ कि रूस इसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा तथा इस देश से ब्रिटेन के माध्यम से ही सम्पर्क रखेगा। अफ़ग़ानिस्तान की सरकार ने इस समझौते को बुरा माना क्योंकि उससे इस विषय में अनुमति नहीं ली गई थी। तिब्बत के विषय में दोनों देशों ने इसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने का निर्णय किया। दोनों देशों ने इस पर चीन का संरक्षण स्वीकार किया। ईरान के विषय में इसके उत्तरी प्रदेश को रूस के प्रभाव में तथा दक्षिणी प्रदेश को ब्रिटेन के प्रभाव में माना गया। मध्य ईरान को

स्वदेशी सरकार के अधिकार में छोड़ दिया गया।

इससे स्पष्ट हो गया कि बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ब्रिटेन ने 'शानदार निष्पक्षता' (Splendid Isolation) की नीति को छोड़ कर उन सन्धियों में सम्मिलित होना स्वीकार किया जिनके कारण १९१४ का विश्वयुद्ध हुआ था।

सर ऐडवर्ड ग्रे (Sir Edward Grey, १९०५-१६)—लार्ड लैन्सडौन के पदत्याग के पश्चात्, सर ऐडवर्ड ग्रे दिसम्बर, १९०५ में ब्रिटेन का विदेश-मन्त्री बना। वह एक ऐसे समय में इंग्लैण्ड का विदेश-मन्त्री था जब देश बड़ी कठिन परिस्थितियों में से गुजर रहा था, उसने परिस्थिति को इतनी दक्षता से संभाला और वे कार्य किए जिनके परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड प्रथम विश्वयुद्ध में विजय प्राप्त कर सका तथा इसका श्रेय ग्रे को ही है।

इस प्रश्न का उत्तर कि सर ग्रे की विदेश-मन्त्रालय में क्या नीति थी, उसके ही शब्दों में इस प्रकार है, "यदि सारे गुप्त भेद खोल दिए जाएँ तो पता लगेगा कि ब्रिटेन के विदेश-मन्त्रियों ने भविष्य के विषय में गणनाएँ करते हुए अपने देश के वर्तमान हित के लिए ही अपनी नीति में परिवर्तन किए थे।" यह बात उसने ब्रिटेन के साधारणतः सभी विदेश मन्त्रियों के लिए कही थी। वह त्रिमुखी-संगठन (Triple Alliance) का विरोधी नहीं था किन्तु उसकी इच्छा थी कि 'त्रिमुखी संगठन' और 'त्रिमुखी-मैत्री संघ' (Triple Entente) में समझौता हो जाए। उसे सभी कार्यों में एक प्रेरणा प्रमुख दिखाई पड़ती थी कि वह इंग्लैण्ड के लिए मित्र खोजने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ था। वह युद्ध नहीं चाहता था किन्तु उसकी नीति का लक्ष्य था कि यदि युद्ध हो जाए तो इंग्लैण्ड अकेला न रहे। उसने अपनी नीति का इसी उद्देश्य से निर्माण किया।

सर ऐडवर्ड ग्रे

ग्रे और मोरक्को के झगड़े (Grey and Morocco Crises)—१९०५-६, १९०८ और १९११ में मोरक्को के झगड़ा के विषय में ग्रे की नीति से पता चलता है कि वह जर्मनी के विरुद्ध लड़ने के लिए तैयार था किन्तु वह फ्रांस के कुचले जाने के लिए तैयार नहीं था। ब्रिटेन ने फ्रांस को स्पष्ट शब्दों में आश्वासन दिया था कि मोरक्को के मामले में उसे पूर्ण स्वतन्त्रता होगी और चूँकि फ्रांस ने

भी इंग्लैण्ड को मिस्र के मामलों में इसी प्रकार का आश्वासन दिया था अतः इंग्लैण्ड के लिए अपना वचन पूरा करने में कोई संकोच नहीं था। जर्मनी ने डेलकास्सी की पदच्युति की माँग की और उस माँग को पूरा कर दिया गया। उसने मोरक्को के प्रश्न पर सम्मेलन की माँग की, फ्रांस ने उसे भी मान लिया। फ्रांस को जर्मनी के सामने इसलिए झुकना पड़ा क्योंकि उसे इंग्लैण्ड पर पूरा भरोसा नहीं था।

इस अवस्था तक भले ही इंग्लैण्ड के व्यवहार से फ्रांस को शंका हुई हो किन्तु जब फ्रांस के राजदूत ने ग्रे को जर्मनी के आक्रमण की सम्भावना बताई तो उसने ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री की अनुमति से फ्रांस और इंग्लैण्ड के सैनिक अधिकारियों का एक सम्मेलन बुलाया। प्रो० ट्रेविलयन (Prof. Trevelyan) के मतानुसार यह एक ठीक कार्य था, "क्योंकि ब्रिटेन के हस्तक्षेप की सम्भावना को मानना और फिर भी युद्ध की योजना न बनाना एक पागलपन होता। जब तक ब्रिटेन अपनी कमर में तलवार बाँधने में उलझा होता शायद उस समय जर्मनी एक महीने में पैरिस में आ गया होता। १९०६ का सैनिक सम्मेलन पूर्णतः युक्तियुक्त था जैसा कि बाद में १९१४ की घटनाओं से सिद्ध हो गया।" किन्तु ग्रे के विरोधी उसके इस कार्य की निन्दा करते हैं। कहा जाता है कि सम्मेलन से सैनिक गठ-बन्धन का मार्ग बन गया। यह भी कहा जाता है कि यद्यपि ग्रे ने फ्रांस को सहायता देने की प्रतिज्ञा नहीं की तथापि उसने कार्यों द्वारा इंग्लैण्ड को, जर्मनी द्वारा फ्रांस पर आक्रमण किए जाने की अवस्था में, सहायता प्रदान करने के लिए बाँध दिया था। ग्रे ने स्पष्ट कह दिया था कि सैनिक अधिकारियों की वार्ता से दोनों देश किसी भी बन्धन में नहीं बँधते तथा अपने हितों की रक्षा के लिए इंग्लैण्ड किसी भी नीति का अनुसरण कर सकता है।

जनवरी, १९०६ में यह 'सैनिक वार्ता' हुई थी। जब ऐल्जेकि राज में मोरक्को के प्रश्न पर विचार करने के लिए सम्मेलन हुआ तो ग्रे ने फ्रांस का साथ दिया। ट्रेविलयन (Trevelyan) ने सम्मेलन में ग्रे के व्यवहार के विषय में कहा, "जर्मनी ने १९०४ में लेन्सडोन द्वारा फ्रांस के साथ झगड़ों के समझौते को बुरा माना और वह फ्रांस को यह दिखाना चाहता था कि फ्रांस इंग्लैण्ड पर निर्भर नहीं हो सकता, किन्तु इंग्लैण्ड ने दिखा दिया कि वह निर्भर हो सकता है। यह मैत्री-संगठन (Entente) की कसौटी थी।" यद्यपि इंग्लैण्ड ने फ्रांस का समर्थन किया था उसने यह जताने का प्रयत्न किया था कि वह बाध्य नहीं है। किन्तु जर्मनी की यह धारणा हुई कि इंग्लैण्ड ने फ्रांस के कठिन समय में सहायता की है।

१९०८ में कैसाब्लांका (Casablanca) के मामलों में भी ग्रे ने फ्रांस की जर्मनी के विरुद्ध सहायता की और जर्मनी को चुप रह जाना पड़ा। १९११ में जर्मनी ने मोरक्को में फ्रांस द्वारा हस्तक्षेप करने का विरोध किया। फैज़ (Fez) में युरोपीय नागरिकों की रक्षा के बहाने फ्रांस ने मोरक्को की राजधानी पर आक्रमण करने के लिए सेना भेजी। जर्मनी के विदेश-मन्त्री ने फ्रांस के कार्य का विरोध किया। फ्रांस पर दबाव डालने के साथ-साथ जर्मनी ने अपना युद्ध-पोत 'पैन्थर' (Panther)

अगादिर (Agadir) की ओर रवाना कर दिया। जर्मनी ने उस
जहाज़ को हटाने से इन्कार कर दिया जब तक उसके हितों की सुरक्षा न
सर ऐडवर्ड जर्मनी के इस व्यवहार से दंग रह गया। उसने 'पैन्थर' की य
यथास्थिति बनाए रखने के समझौते को भंग करना माना और घोषणा की कि हम।
विचार से जर्मनी के युद्धपोत की अगादिर यात्रा से एक नई स्थिति उत्पन्न हो गई
है। भविष्य में इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो सकती है और ब्रिटेन के हितों पर इस
प्रकार का दुष्प्रभाव पड़ सकता है जैसा कि आज तक नहीं पड़ा इसलिए हम किसी
भी प्रकार की व्यवस्था को जो हमारी अनुमति के बिना की जाएगी नहीं मानेंगे।"
उसने फ्रांस के राजदूत को कहा, "ब्रिटिश सरकार इस मामले में फ्रांस, जर्मनी, स्पेन
और इंग्लैण्ड के बीच विचार-विमर्श करना चाहती है।" यद्यपि जर्मनी का रुख
पर्याप्त रूप से उत्तेजक था फिर भी १९११ में लॉयड जार्ज ने स्पष्ट रूप से जर्मनी
को कह दिया कि यदि इंग्लैण्ड की प्रतिष्ठा और हितों पर आघात किया गया तो
इंग्लैण्ड को युद्ध करना पड़ेगा। इस प्रकार की परिस्थिति आ जाने पर जर्मनी को
होश आया और उसने उचित रुख अपनाया।

इंग्लैण्ड और रूस का समझौता (Anglo-Russian Convention) (१९०७)—सर एडवर्ड ग्रे ने रूस और इंग्लैण्ड के बीच मनमुटाव के कारण को मिटा कर दोनों देशों में परस्पर सहयोग स्थापित कराने का प्रयत्न किया। मैत्री-संगठन (Entente) के हित में था कि इंग्लैण्ड और रूस में मैत्री सम्बन्ध स्थापित हों। रूस फ्रांस का मित्र था। इंग्लैण्ड और रूस में युद्ध होने की परिस्थिति में फ्रांस की हानि अनिवार्य थी। फ्रांस की सरकार और ग्रे (Grey) के प्रयत्नों के फलस्वरूप १९०७ में इंग्लैण्ड और रूस में समझौता हुआ। इस समझौते के अनुसार दोनों देशों द्वारा अफ़गानिस्तान, तिब्बत और ईरान के मामलों को सुलझाया गया। दोनों देशों ने तिब्बत पर चीन का संरक्षण स्वीकार किया और इसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने की प्रतिज्ञा की। रूस ने इंग्लैण्ड के माध्यम से ही अफगानिस्तान से सम्पर्क रखना स्वीकार किया। इसी प्रकार उत्तरी ईरान पर रूस का तथा दक्षिणी ईरान पर इंग्लैण्ड का प्रभाव-क्षेत्र माना गया। ग्रे के प्रयत्नों से १९०४ का मैत्री-संगठन (Entente Cordiale) १९०७ में त्रिमुखी-संगठन (Triple Entente) में बदल गया। यद्यपि इस समझौते की आलोचना की जाती है कि इंग्लैण्ड ने अपने हितों के लिए रूस को अधिक सुविधाएँ देने के लिए बलिदान कर दिया, ट्रैवियलन का मत है कि, "यह समझौता हमारी सुरक्षा की दृष्टि से एकमात्र मार्ग था।"

फ्रांस और रूस के प्रति ग्रे का व्यवहार प्रशंसनीय है। दोनों ही देशों को इंग्लैण्ड से शिकायत थी कि यद्यपि यह मैत्री प्रकट करता था तथापि किसी अन्य देश द्वारा आक्रमण किए जाने पर, सहायता देने का कोई आश्वासन नहीं देता था। किन्तु ग्रे की नीति बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई और इसका ध्येय यूरोप में शान्ति बनाए रखना था। वह अपने देश की सुरक्षा के लिए किसी भी नीति का अनुसरण

भी इंग्लैण्ड को मित्र था किन्तु उसकी नीति का रूस और फ्रांस पर अच्छा प्रभाव के लिए अ न रूस और फ्रांस को आक्रमण की अवस्था में सहायता का वचन की पदर्ज। तो इससे ये दोनों जर्मनी और आस्ट्रिया-हंगरी से व्यर्थ में झगड़ा कर बैठते। १९१४ की घटनाओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आरम्भ में रूस और फ्रांस हिचकते रहे किन्तु जैसे ही यह प्रकट हुआ कि इंग्लैण्ड उनकी सहायता करेगा, रूस ने फौरन ही सर्बिया का पक्ष लेने की घोषणा कर दी और १९१४ का विश्व-युद्ध आरम्भ हो गया किन्तु ग्रे की हिचकिचाहट और अस्पष्ट व्यवहार से भी एक स्वार्थ सिद्ध हुआ। यदि उसका रुख इस प्रकार का होता तो विश्व-युद्ध और भी पहले छिड़ गया होता।

ग्रे और जर्मनी (Grey and Germany)—यह कहना कि ग्रे जर्मनी से किसी भी प्रकार शत्रुता रखता था, गलत है। वह जर्मनी का शत्रु नहीं था। ३ अगस्त, १९१४ को ब्रिटिश संसद् में उसकी पुकार, "मुझे युद्ध से घृणा है, घृणा है, घृणा है" उसकी मनोदशा को दर्शाती है। ग्रे की इच्छा जर्मनी से युद्ध करने की नहीं थी। वह यथाशक्ति दोनों देशों के बीच तनाव के कारणों को दूर करने के लिए तैयार था। १९१२ से १९१४ तक इंग्लैण्ड में जर्मनी के राजदूत लिचनोवस्की (Lichnowsky) ने ग्रे की नीति के विषय में कहा, "उसका ध्येय हमको मित्रहीन करने का न होकर अपनी पूरी शक्ति के द्वारा वर्त्तमान संगठन में साझीदार बनाना था।.........फ्रांस और रूस के साथ इंग्लैण्ड की मैत्री ने, जिसका ध्येय आक्रामक नहीं था—ग्रे जर्मनी के साथ पूर्व सम्बन्ध तथा सुव्यवहार स्थापित करना चाहता था ताकि दोनों गुट एक दूसरे के निकट आ सकें।" ग्रे की नीति फ्रांस और रूस के संगठन (Franco-Russian) तथा त्रिमुखी-सन्धि (Triple Alliance) के सदस्य राष्ट्रों के बीच की वैमनस्य की खाई को पाटने का प्रयत्न करना था। यह दुर्भाग्यपूर्ण बात थी कि विलियम द्वितीय अपने राजदूतों की सलाह और विचारों की अवहेलना करके अपने सैनिकों तथा जल-सेना के नायकों की सलाह मानता रहा।

१९०६ के पश्चात् ग्रे ने जर्मनी और इंग्लैण्ड के बीच टकराव के सारे कारणों को हटाने का पूर्ण प्रयत्न किया। उसने इंग्लैण्ड और जर्मनी के बीच समुद्री बेड़े की होड़ की समस्या को सुलझाने का पूरा प्रयत्न किया। उसने जर्मनी की सरकार को स्पष्ट रूप से बता दिया था कि हर हालत में ब्रिटेन के समुद्री बेड़े की श्रेष्ठता को बनाए रखा जाएगा, किन्तु वह जर्मनी के साथ दोनों देशों की समुद्री शक्ति की आनुपातिक कटौती के लिए समझौता करने को पूरी तरह तैयार था। दुर्भाग्य से विलियम द्वितीय ने इंग्लैण्ड के सारे प्रस्तावों को दुर्बलता समझा। टिरपिट्ज (Tirpitz) की नीति का उद्देश्य अपने प्रतिद्वन्द्वियों को डरा कर शान्ति को बनाए रखना था। जर्मनी की धारणा थी कि वह इंग्लैण्ड को डरा कर झुका लेगा। किन्तु यह उसकी भारी भूल थी। निस्सन्देह इंग्लैण्ड शान्ति बनाए

रखने का इच्छुक था। किन्तु यह सोचना बड़ी भूल थी कि
सुरक्षा और प्रतिष्ठा को भी बेच सकता है।

विलियम द्वितीय ने उस समय तक समुद्री सुविधाओं के विषय म
करने से इन्कार कर दिया जब तक इंग्लैण्ड यह आश्वासन न दे दे कि वह जर्मनी और फ्रांस में युद्ध की अवस्था में निष्पक्ष रहेगा। इस आश्वासन के बिना काइजर अपना समुद्री वेड़ा कम करने को तैयार नहीं था। उसका सिद्धान्त था कि वह अपने समुद्री वेड़े की कीमत पर अच्छे सम्वन्ध वनाने को तैयार नहीं है। इस परिस्थिति में १९१२ में वार्ता भंग हो गई। ग्रे फ्रांस का वलिदान देकर जर्मनी से अच्छे सम्बन्ध वनाने के लिए तैयार नहीं था।

समुद्री वेड़े के सम्बन्ध में १९१२ की वार्ता भंग हो जाने से सर एडवर्ड ग्रे हताश नहीं हुआ। वह जर्मनी और इंग्लैण्ड में सुलह कराने का सतत प्रयत्न करता रहा। जून, १९१४ तक वर्लिन-वगदाद रेलवे के विषय में और पुर्तगाल के उपनिवेशों को पुर्तगाल द्वारा छोड़ने की स्थिति के विषय में फैसला हुआ। इसके द्वारा झगड़ा टल गया और दोनों देश परस्पर निकट आ गए।

१९०८-१९०९ में वोसनिया के मामले में युद्ध की सम्भावना थी किन्तु ग्रे के प्रयत्नों और प्रतिष्ठा के कारण यूरोप युद्ध से वच गया।

ग्रे और वलकान युद्ध (Grey and Balkan Wars) (१९१२-१३)—
१९१२-१३ के वलकान युद्धों के विषय में ग्रे की नीति का उल्लेख आवश्यक है। उसने इस दुर्घटना को एक ही स्थान पर केन्द्रित करने का प्रयत्न किया था। उसकी अध्यक्षता में लन्दन में एक सम्मेलन हुआ और वह अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के प्रयोग की सफलता से वड़ा प्रभावित हुआ। यदि उसने सूझ-बूझ से काम न लिया होता तो यह आगे यूरोप के विभिन्न भागों में फैल जाती और यह यूरोप के लिए शुभ नहीं था क्योंकि उस समय यूरोप वारूद के ढेर पर खड़ा हुआ था।

जव १९१४ में सेराजिवो (Serajevo) में आस्ट्रिया-हंगरी के सिंहासन के उत्तराधिकारी आर्चड्यूक फ्रांसिस फर्डिनैण्ड (Archduke Francis Ferdinand) की हत्या हुई, उस समय ग्रे ने इस झगड़े को निपटाने के लिए एक सम्मेलन वुलाने की सलाह दी। यदि उस समय विलियम द्वितीय ने वर्चटोल्ड (Berchtold) की सलाह मानने की अपेक्षा ग्रे का प्रस्ताव मान लिया होता तो सम्भव है कि विश्वयुद्ध टल जाता।

यह निर्विवाद तथ्य है कि ग्रे की विदेश-नीति के कारण अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इंग्लैण्ड की स्थिति शक्तिशाली हो गई थी। उसे विश्वस्त सहयोगी प्राप्त हो गए थे। वह अव यूरोप में अकेला नहीं था। युद्ध को कुछ समय तक टालने का श्रेय भी ग्रे की ही नीति को है। दुर्भाग्य से शक्तिशाली शक्तियों के कारण १९१४ में विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ और इंग्लैण्ड को भी इसमें घसीट लिया गया था।

अध्याय ३०

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध (१८७१-१९१४)

(International Relations, 1871-1914)

फ्रांस-प्रशिया युद्ध (Franco-Prussian War) और प्रथम विश्व-युद्ध (World War I) के बीच की अवधि में यूरोपीय शक्तियों की गुटबन्दी में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। १८७१ में अपेक्षाकृत शान्ति प्रतीत होती थी, किन्तु १९१४ में यूरोप दो विरोधी सशस्त्र दलों में बँट गया था। इस अवधि में यूरोप के राज्यों की गुटबन्दी का वर्णन बड़ा रोचक तथा शिक्षाप्रद है।

तीन सम्राटों की सभा (Three Emperors' League)—यह ध्यान में रखना चाहिए कि १८७१ से १८९० की अवधि में यूरोप के मामलों में जर्मनी की धाक थी। जर्मनी का चान्सलर बिस्मार्क यूरोपीय राजनीति का भाग्य-विधाता प्रतीत होता था। १८७१ के पश्चात् जर्मनी एक परिपूर्ण देश (saturated country) बन चुका था और इस कारण उसे अपनी क्षेत्रवृद्धि की लालसा नहीं रह गई थी। बिस्मार्क ने फ्रांस का अपमान किया था इसलिए उसे इस देश से आक्रमण का भय था। विदेशी मामलों में उसकी नीति का मुख्य उद्देश्य फ्रांस को अकेला कर देना था, ताकि वह जर्मनी से बदला न ले सके। इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए बिस्मार्क ने १८७३ में तीन सम्राटों की सभा अथवा 'ड्रेकेसरबण्ड' (Dreikaiserbund) बनाई। जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी और रूस के सम्राटों ने निर्णय किया कि वे शान्ति रक्षा के लिए परस्पर सहयोग करेंगे तथा युद्ध का भय उपस्थित होने की स्थिति में सामूहिक कार्यवाही के लिए परस्पर विचार-विमर्श करेंगे। यह सभा १८७८ तक चलती रही, किन्तु बर्लिन सन्धि (Treaty of Berlin, 1878) के कारण वह टूट गई। आस्ट्रिया और जर्मनी ने एक दूसरे का साथ दिया और रूस ने सोचा कि जर्मनी ने उसे धोखा दिया है। १८७९ से १८८१ तक जर्मनी और रूस के सम्बन्ध परस्पर अत्यन्त कटु रहे। किन्तु १८८१ में बिस्मार्क तीन सम्राटों की सभा का पुनर्गठन करने में सफल हो गया। नए समझौते के अनुसार तीनों शक्तियों ने परस्पर प्रतिज्ञा की कि किसी का अन्य चौथी शक्ति के साथ युद्ध होने की स्थिति में अन्य दोनों शक्तियों में मैत्रीपूर्ण निष्पक्षता (benevolent neutrality) का व्यवहार करेगी। यह समझौता तीन वर्ष के लिए हुआ और १८८४ में पुनः इसे आगामी तीन वर्ष के लिए बढ़ा दिया गया। यह उल्लेखनीय तथ्य है कि आरम्भ से ही इस सभा का संगठन शक्तिशाली नहीं था। बिस्मार्क ने आस्ट्रिया को आश्वासन दिया कि आस्ट्रिया और रूस में झगड़ा हो जाने की अवस्था में जर्मनी आस्ट्रिया का रूस के विरुद्ध समर्थन करेगा और १८८१ का समझौता उसके मार्ग

में अड़चन नहीं बनेगा। जर्मनी सुरक्षा की नीति (Policy of Protection) का अनुसरण करता था जो आंशिक रूप से जर्मनी में रूसी अन्न की आमद के विरुद्ध थी। १८७८ के पश्चात् बलकान प्रदेश के प्रश्न पर रूस और आस्ट्रिया का द्वन्द्व बढ़ जाने के कारण उनके सम्बन्ध कटु हो गए। परिणामतः दोनों देश परस्पर सहयोग न बना सकते थे। उनमें कटुता होने के कारण तीन सम्राटों की सभा दुर्बल हो गई।

पुनराश्वासन सन्धि (Reinsurance Treaty)—तीन सम्राटों की सभा १८८७ में टूट गई। बलगारिया के प्रश्न पर रूस और आस्ट्रिया विरोधी पक्षों में थे अतः इन दोनों का साथ रहना सम्भव नहीं था। बिस्मार्क ने १८७९ में जर्मनी को आस्ट्रिया से जोड़ दिया था, किन्तु वह रूस की सद्भावना को भी खोना नहीं चाहता था। रूस को अकेला छोड़ देने पर उसकी फ्रांस से मिल जाने की सम्भावना थी। रूस के अन्य दल में चले जाने से आस्ट्रिया और रूस में युद्ध होने की भी पूरी सम्भावना थी। इसलिए बिस्मार्क ने १८८७ में रूस से 'पुनराश्वासन' सन्धि ('Reinsurance' Treaty) की। इस सन्धि की अवधि तीन वर्ष थी। इसके अनुसार यदि एक शक्ति का किसी चौथी शक्ति से युद्ध हो जाए तो अन्य सदस्य मैत्रीपूर्ण निष्पक्षता का व्यवहार करके संघर्ष का क्षेत्र छोटा रखने (localise the conflict) का प्रयत्न करेगा। रूस ने जर्मनी से सहमति प्रगट करते हुए बर्लिन सन्धि (Treaty of Berlin) के अनुसार आस्ट्रिया के हितों का आदर करने की प्रतिज्ञा की घोषणा की। यूरोप में तुर्की की क्षेत्रीय स्थिति के विषय में कोई भी परिवर्तन तीनों शक्तियों में परस्पर परामर्श के बगैर नहीं हो सकता था। उन्होंने 'स्ट्रेट्स' (The Straits) को बन्द करने के सिद्धान्त को मान्यता दी। इस बात की भी देखभाल रखनी थी कि तुर्की किसी शक्ति को विशेष सुविधाएँ न दे। यदि तुर्की ऐसा करे तो तीनों शक्तियाँ उससे युद्ध करेंगी। यह सत्य है कि जर्मनी और रूस की इस नई मैत्री ने आस्ट्रिया रूस का युद्ध तथा फ्रांस और रूस की पारस्परिक मैत्री होने को रोक दिया।

सीमैन (Seaman) के मतानुसार, "जून १८८७ की इस सन्धि से बिस्मार्क ने बलगारिया में रूस के अधिकार की पुष्टि कर दी और अगस्त १८८७ से पहले रूस ने बिस्मार्क से बलगारिया से सेक्से-कोबर्ग के फर्डिनण्ड को हटाने में सहायता की माँग की। बिस्मार्क पुनः अपना वचन पालन करने में असमर्थ अनुभव करने लगा। वास्तव में जर्मनी और रूस में परस्पर इतना मतभेद हो गया था कि ज्यों-ज्यों बिस्मार्क की प्रतिष्ठा का सूर्य उदय होने लगा त्यों-त्यों वह हैप्सबर्ग वंश की समृद्धि के लिए इंग्लैण्ड से सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगा था। इंग्लैण्ड को इस ओर कोई रुचि नहीं थी। इंग्लैण्ड और दो जर्मन शक्तियों के मेल से रूस के साथ युद्ध हो जाना निश्चित था और बिस्मार्क इस संघर्ष से बचने के लिए अत्यन्त चिन्तित था।"

"१८७९ की द्विमुखी सन्धि (Dual Alliance) से 'पुनराश्वासन' सन्धि (Reinsurance Treaty) किसी प्रकार मेल नहीं रखती थी, इस विषय में विवाद

केवल बौद्धिक विवाद हैं। इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि इसके द्वारा रूस की फ्रांस की ओर झुकाव की प्रगति किसी भी प्रकार से रुकी नहीं। वास्तव में १८८७ के अन्त में रूस की पूंजी को बर्लिन के व्यापारिक क्षेत्र से निकाल कर बिस्मार्क ने, किसी भी अन्य देश से, रूस और फ्रांस के परस्पर उन आर्थिक बन्धनों को स्थापित करने में कम सहयोग नहीं दिया, जो इन दोनों देशों में बाद में होने वाले निकट सैनिक और कूटनीतिक सम्बन्धों की एक भूमिका मात्र थे।"

आस्ट्रिया-जर्मनी सन्धि, १८७९ (Austro-German Alliance, 1879)— जर्मनी और आस्ट्रिया की सन्धि का तात्कालिक कारण बर्लिन सम्मेलन (Congress of Berlin) था। १८७१ के पश्चात् बिस्मार्क की नीति आस्ट्रिया और रूस से मैत्री स्थापित करके फ्रांस को मित्रहीन कर देने की थी। उसने इस उद्देश्य की पूर्ति ड्रैकेसरबण्ड (Draikaiserbund) से की, जिसे उसने १८७३ में बनाया और १८७८ तक बनाए रखा। बलकान प्रदेश में रूस और आस्ट्रिया के स्वार्थों में संघर्ष होता था। बिस्मार्क के लिए इन दोनों को साथ रखना कठिन हो गया किन्तु फिर भी जैसे-तैसे १८७८ तक उसने इन्हें साथ रखा। बर्लिन सम्मेलन के अवसर पर यह स्पष्ट हो गया कि ये दोनों साथ नहीं चल सकते। रूस ने सान स्टिफैनो की सन्धि (Treaty of San Stefano) द्वारा बलकान राज्यों पर अपना आधिपत्य जमा लिया था। किन्तु आस्ट्रिया रूस के पास उसके हथियाए हुए प्रदेश छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। आस्ट्रिया ने इंग्लैण्ड को अपनी ओर मिला लिया था और सम्मेलन के अवसर पर इन दोनों शक्तियों ने मिल कर एक कार्यवाही की थी। परिणाम यह हुआ कि रूस ने अपने को इंग्लैण्ड और आस्ट्रिया के गठजोड़ के मुकाबले में अकेला पाया। बिस्मार्क को जो अपने को 'ईमानदार दलाल' (Honest Broker) कहता था, यह निर्णय करना था कि वह रूस का पक्ष ले अथवा आस्ट्रिया का। यह चुनाव इसलिए आवश्यक था कि रूस और आस्ट्रिया का एक साथ रहना असम्भव हो गया था। अन्त में उसने आस्ट्रिया के साथ रहने का निर्णय किया। डा० गूच (Gooch) के मतानुसार, "बर्लिन सम्मेलन के उच्च राजनीति के क्षेत्र में प्रमुख महत्त्वपूर्ण परिणाम रूस और जर्मनी के सम्बन्धों में तनाव का आ जाना था।"

रूस को जर्मनी का व्यवहार अत्यन्त अरुचिकर प्रतीत हुआ। उसे जो मिला उसके प्रति उसे घोर निराशा हुई। उसके अपार व्यय और रक्तपात के सामने बैस्सरबिया, बातूम, कार्स और अर्डाहन के प्रदेशों का मूल्य नगण्य था। अक्साकॉफ़ (Aksakoff) ने कहा था, "सम्मेलन रूसी जाति के विरुद्ध एक षड्यन्त्र है जिसमें रूस का प्रतिनिधि भाग ले रहा है। सेन्ट पीटर्सबर्ग की कूटनीति निहिलवाद से भी अधिक भयानक है। रूस के ऐतिहासिक महान् कार्य (historic mission of Russia) के विरुद्ध नीचतापूर्ण विश्वासघात है, जिसके कारण स्लाव जाति (The Slavs) ने रूस का प्रेम और आदर खो दिया है। रूस के अपने कूटनीतिज्ञों ने उसे फाँसी पर चढ़ा दिया है। उसके सिर पर मूर्ख की टोपी और घंटियाँ पहना दी गई हैं।" कैटकॉफ़ (Katkoff) ने कहा था कि जर्मनी ने रूस को कठिन परिस्थिति

में फँसा दिया है। रूस का युद्ध-मन्त्री मिलुटिन (Milutin) फ्रांस से खुले रूप में सन्धि करने के प्रयत्न में लग गया। शुवलॉफ़ को, जो सम्मेलन में रूस का अधिकृत प्रतिनिधि था, लन्दन से वापस बुलाकर अपमानित किया गया। गार्टचकॉफ़ (Gortschakoff) जो उस समय रूस का विदेश-मन्त्री था, बिस्मार्क के प्रति शत्रुता रखने लगा और बिस्मार्क से सम्बन्ध विच्छेद करने का विचार करने लगा। ज़ार (Tsar) भी बड़ा रुष्ट हुआ। उसने बिस्मार्क के नेतृत्व में यूरोप के गठबन्धन की बड़ी कटु आलोचना की थी।

एक अन्य कारण से रूस की कटुता और भी बढ़ गई। अन्तर्राष्ट्रीय सीमा-विघटन आयोग (International Delimitation Commission) में नियुक्त जर्मनी के प्रतिनिधियों ने रूस के विरुद्ध आस्ट्रिया का साथ दिया। रूस की धारणा थी कि ऐसा जान-बूझ कर किया जा रहा है। किन्तु वास्तव में सत्य यह था कि जर्मनी के प्रतिनिधियों को बहुमत के साथ सहयोग करने का आदेश दिया गया था। आस्ट्रिया के साथ इंग्लैण्ड था। रूस के अकेला होने के कारण जर्मन प्रतिनिधियों ने आस्ट्रिया का ही समर्थन किया। यह कहना कि उन्हें रूस का विरोध करने के विषय में विशेष आदेश थे, सत्य नहीं है। किन्तु स्पष्ट रूप से स्थिति यह थी कि जर्मनी द्वारा आस्ट्रिया का समर्थन होने से रूस रुष्ट हो गया। कटुता इतनी बढ़ गई कि १८७९ में इटली से यह पूछा गया कि क्या वह आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध में सहयोग दे सकेगा अथवा नहीं। इसी प्रकार का प्रश्न फ्रांस से भी पूछा गया। किन्तु इस दौड़-धूप का कोई परिणाम नहीं निकला। रूसी सेनाओं को सज्जित करके जर्मनी और आस्ट्रिया की सीमाओं पर एकत्रित कर दिया गया। जून, १८७९ में ज़ार ने अपने चाचा के विवाह की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर जाने का कार्यक्रम रद्द कर दिया। ज़ार को यह भी कहते सुना गया कि, "यदि जर्मनी सौ वर्ष की मैत्री को बनाए रखना चाहता है तो उसे अपना व्यवहार सुधारना पड़ेगा।" उसने काइज़र को एक पत्र द्वारा जर्मनी के व्यवहार के विषय में शिकायत भी की। उसने १८७० की अपनी सहायता की याद दिलाते हुए कहा कि, "तुमने इन्हें अविस्मरणीय कहा था तथा इस तनाव के परिणाम दोनों देशों के लिए ही विनाशकारी सिद्ध होंगे।" काइज़र को इस पत्र की कटुता से बड़ा दुःख पहुँचा और बिस्मार्क को इसका उत्तर तैयार करने का आदेश दिया गया। यदि काइज़र ने इस पत्र का उत्तर वैसी ही कटु भाषा में दिया होता तो अवश्य ही युद्ध छिड़ गया होता। जर्मनी रूस के आगे घुटने टेकने को तैयार नहीं था। काइज़र ने केवल आरोप को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया।

इस घटना के पश्चात् बिस्मार्क ने एक नई नीति का प्रतिपादन किया। वह रूस के व्यवहार से क्रुद्ध हो गया। रूस में समाचारपत्रों की आलोचना से वह बड़ा रुष्ट हुआ। सब जगह उसकी निन्दा हो रही थी। वह इसे रूस की सबसे बड़ी कृतघ्नता मानता था। १८८८ में उसने लिखा, "मैंने एक प्रकार से तीसरे रूसी प्रतिनिधि का कार्य किया। रूस की कोई भी ऐसी इच्छा नहीं थी जो मुझ तक पहुँची हो और उसे मैंने पूरा न किया हो। मैंने इस प्रकार का व्यवहार किया कि

सम्मेलन के अन्त में मैंने सोचा कि यदि अब तक मुझे रूस की ओर से बुद्धिमत्ता का कार्य करने के पारितोषिक स्वरूप सर्वोच्च उपाधि नहीं मिली है तो अब अवश्यमेव मिल जाएगी। मेरी धारणा थी कि मैंने एक विदेशी शक्ति की एक ऐसी सेवा की है जो सेवा वास्तविक मन्त्री भी नहीं कर पाएगा। इस कारण मुझे इस आन्दोलन से बड़ा ही आश्चर्य हुआ है।"

बिस्मार्क चुनाव करने को विवश हो गया। बर्लिन सम्मेलन के अवसर पर वह आस्ट्रिया का साथ दे ही चुका था। उसने पुनः विचार किया। यह सच है कि आर्थिक दृष्टि से रूस अधिक लाभदायक था किन्तु उसने आस्ट्रिया के साथ रहना अधिक अच्छा समझा क्योंकि इसकी जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग जर्मन था और वे लोग स्वतः ही जर्मनी के हितचिन्तक थे।

एक अन्य घटना ने उसे शीघ्रता से निर्णय करने के लिए विवश कर दिया। उसे सूचना मिली कि आस्ट्रिया का विदेश-मन्त्री ऐण्ड्रास्सि (Andrassy) त्यागपत्र देने वाला है। बिस्मार्क ने बर्लिन सम्मेलन में इस व्यक्ति की सहायता की थी। उसके त्यागपत्र देने से पहले बिस्मार्क ने आस्ट्रिया से सन्धि करने का निर्णय कर लिया। ये दोनों कूटनीतिज्ञ सन्धि करने के लिए इच्छुक थे। इन्होंने सोचा कि अधिक देर करना ठीक नहीं। इन कूटनीतिज्ञों की गैसटीन (Gastein) में भेंट हुई। उन्होंने रूस की समस्या तथा इससे भय के विषय में विचार-विमर्श किया। दोनों अपने स्वामियों से अनुमति लेने के लिए अपने-अपने देश गए और पुनः भेंट करने का निश्चय भी किया। ऐण्ड्रास्सि ने लिखा कि फ्रांसिस जोसेफ आस्ट्रिया की जर्मनी से सन्धि करने के पक्ष में था। किन्तु काइज़र ने इसका विरोध किया। उसने लौह-पुरुष चान्सलर को कहा कि वह इस सन्धि को अपनी अनुमति नहीं दे सकता। काइज़र ने अपने चचेरे भाई ज़ार के विरुद्ध आस्ट्रिया से सन्धि करने से इन्कार कर दिया। उसने ज़ार से सितम्बर में भेंट की तथा ज़ार ने काइज़र से खेद प्रकट किया और कहा कि वह अपने देश को जर्मनी का मित्र रखना चाहता है। काइज़र को विश्वास हो गया कि ज़ार के हृदय में कोई दुर्भावना नहीं है। अगले दिन वह गीयर्स (Giers) और मिलुटिन (Milutin) से मिला और सन्तुष्ट हो गया कि वे किसी प्रकार भी जर्मनी के विरुद्ध नहीं थे। परिणामतः काइज़र सन्तुष्ट होकर जर्मनी लौट आया।

उसने रूस के विरुद्ध आस्ट्रिया से सन्धि करने के लिए बिस्मार्क को स्पष्ट रूप से मना कर दिया। उसने रूस के प्रति जर्मनी की परम्परागत नीति में परिवर्तन करने से इन्कार कर दिया। उसने कहा, "क्षण भर के लिए तुम मेरी स्थिति में होने की कल्पना करो। मैं एक व्यक्तिगत मित्र, निकट सम्बन्धी और एक मित्र के सम्मुख हूँ और शीघ्रता तथा वास्तविक रूप में गलत समझे गए पत्र के वाक्यों के विषय में समझौता करने के लिए प्रयत्नशील हूँ और हमारी भेंट का परिणाम भी सन्तोषप्रद होगा। मैं तुम्हारे स्मृति-पत्र में वर्णित खतरों का पूर्णतः खण्डन नहीं करूँगा, वे एक दिन उपस्थित हो सकते हैं, विशेषतः शासकों के बदले जाने पर।

किन्तु मैं तुरन्त ही कोई आकस्मिक भय नहीं देखता। किसी सम्भावित घटना को रोकथाम करने के लिए अपने हाथों को बाँध लेना मेरी राजनीतिक धारणाओं तथा आत्मा के विरुद्ध हैं। सन्धि की बात तो दूर मैं तुम्हें किसी प्रकार का समझौता करने की भी अनुमति नहीं दे सकता। मैं वर्णन नहीं कर सकता कि इस मामले से मुझे कितना दुःख हुआ है, विशेषतः जब मैं सोचता हूँ कि पिछले १६ वर्षों में प्रथम बार यह प्रतीत होता है कि हम दोनों सहमत नहीं हो रहे हैं।"

काइज़र के इतना कहने पर भी बिस्मार्क आस्ट्रिया से सन्धि करने पर तुला हुआ था। उसने कहा कि रूस पर आक्रमण करने का कोई विचार नहीं है। यदि आस्ट्रिया पर आक्रमण हो जाए और वह खतरे में पड़ जाए तो जर्मनी को अपने स्वार्थ के लिए उसकी सहायता करनी ही पड़ेगी, चाहे सन्धि हो अथवा न हो। क्योंकि विजयी रूस का मुकाबला करने पर विवश होकर हारे हुए आस्ट्रिया और विरोधी फ्रांस के सम्मुख जर्मनी बड़ी कठिनाई में पड़ जाएगा। रूस उसी समय तक मित्र है जब तक वह आस्ट्रिया अथवा फ्रांस अथवा दोनों को नहीं जीत लेता। चान्सलर अपने व्यवहार पर अड़ा रहा। उसने बैवेरिया के राजा (King of Bavaria) को अपने पक्ष में मिला लिया। उसने चारों ओर से काइज़र पर दबाव डाल कर उसके विचार को परिवर्तित करने का प्रयत्न किया। काइज़र वास्तव में घिर गया था। जिस राजकुमार को काइज़र का विचार बदलने का कार्य सौंपा गया था उसने शिकायत की कि एक ओर बिस्मार्क त्यागपत्र देने को और दूसरी ओर काइज़र राज्य छोड़ने को तैयार था। काइज़र को कहते सुना गया था, "विश्वासघात से तो राज्य छोड़ना अच्छा है।" किन्तु फिर भी बिस्मार्क अपनी बात पर अड़ा रहा। काइज़र हिचकिचाया, किन्तु अन्त में ५ अक्टूबर, १८७९ को झुक गया। सन्धि पर विआना (Vienna) में हस्ताक्षर हुए और दोनों सरकारों ने उसे इसी महीने स्वीकार कर लिया।

सन्धि की शर्तें—इस द्विमुखी सन्धि से दोनों देश गठबन्धन में बँध गए। इस सन्धि की प्रमुख शर्तें निम्नलिखित थीं—

(१) यदि आशाओं और इच्छाओं के विपरीत दोनों शक्तियों में किसी पर भी रूस आक्रमण कर दे तो दूसरा देश पीड़ित देश की सहायता करने को बाध्य होगा तथा सामूहिक सन्धि करेगा।

(२) यदि दोनों में से किसी एक पर रूस की सहायता से कोई अन्य शक्ति आक्रमण करे तो दूसरा सहायता करेगा। यदि किसी देश पर आस्ट्रिया या जर्मनी आक्रमण कर दें और रूस उस देश की सहायता न करे तो दूसरा निष्पक्ष (Neutral) रहेगा।

(३) सन्धि गुप्त रखी जाएगी।

(४) यह सन्धि पाँच वर्ष चलेगी और यदि दोनों पक्ष इसे तोड़ना न चाहेंगे तो इसकी अवधि तीन वर्ष के लिए और बढ़ा दी जाएगी।

कहा जाता है ऐण्ड्रास्सि (Andrassy) और विस्मार्क इस सन्धि के पूरे हो जाने पर बड़े प्रसन्न हुए। चान्सलर आत्मविभोर हो उठा। उसने गर्व से कहा, "युद्ध के भय ने सब देशों और कालों में शान्ति में ही आश्वासन प्राप्त किया है। यह मेरे १८६६ के कार्य की सम्पूर्णता है।" ऐण्ड्रास्सि ने आस्ट्रिया के लिए अपनी इच्छित वस्तु प्राप्त कर ली थी। उसे अपने कार्य पर गर्व था। अगले महीने विस्मार्क ने फ्रांस के राजदूत से कहा, "छः सप्ताह पहले रूस गोला-बारूद के स्वप्न देख रहा था। आस्ट्रिया से मेरे समझौते ने उसकी बुद्धि ठीक कर दी है। सेण्ट पीटर्सबर्ग में उसकी घोषणा के पश्चात् शान्ति हो गई है। आस्ट्रिया और जर्मनी के विरुद्ध समाचारपत्रों का आन्दोलन पूर्णतः रोक दिया गया है और युवराज काइजर का अभिनन्दन करने के लिए आने वाला है।"

डा० रोज़ (Rose) का कथन है कि अपने जीवन-काल की समाप्ति के समय विस्मार्क कहा करता था कि आस्ट्रिया-जर्मन सन्धि का आशय तीन सम्राटों की सभा की समाप्ति नहीं था अपितु इस नए गठबन्धन ने, रूस के आस्ट्रिया पर आक्रमण को असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य बना दिया था और इस प्रकार इस नवीन सन्धि ने प्राचीन संगठन की आयु वृद्धि कर दी थी। वास्तव में यह सभा 'आडम्बरपूर्ण शून्य' थी क्योंकि इस त्रिकोण के सब से निर्बल सदस्य को सबसे शक्तिशाली सदस्य से रक्षा करने के लिए संगठित होना पड़ा था। डा० रोज की धारणा है कि प्राचीन त्रिमुखी सन्धि वातावरण की परिस्थितियों में परिवर्तन हो जाने के कारण धीरे-धीरे समाप्त हो गई थी। तीनों सम्राटों ने १८८१, १८८४ और १८८५ में मैत्री वार्ता के लिए भेंट की थी और १८८७ की भेंट के पश्चात् रूस और जर्मनी की एक सन्धि हुई, जिसमें दोनों ने परस्पर आश्वासन दिलाया था कि किसी अन्य तीसरी शक्ति द्वारा आक्रमण करने की स्थिति में दूसरी शक्ति मैत्रीपूर्ण निष्पक्षता का वर्ताव करेगी। सम्भवतः निहिलवाद (Nihilism) अथवा अफ़गानिस्तान के प्रश्नों के कारण रूस को विस्मार्क के कार्य को सहन करना पड़ा। किन्तु जब इंग्लैण्ड और रूस में युद्ध का भय टल गया और क्रान्तिकारियों का दमन भी हो गया, तब यह समझौता स्वतः समाप्त हो गया और विस्मार्क के पतन के पश्चात् इस समझौते को दुहराया नहीं गया।

यह कहा जा सकता है कि आस्ट्रिया और जर्मनी के समझौते का तात्कालिक परिणाम रूस का खिंच जाना नहीं था। विस्मार्क १८८१ में रूस से मैत्री सम्बन्ध सुधारने में सफल हुआ और ये सम्बन्ध १८९० तक चलते रहे किन्तु इस तथ्य से कोई भी इन्कार नहीं कर सकता कि इस सन्धि के द्वारा ही दोनों देश १९१४ में युद्ध-क्षेत्र में एक दूसरे के विरुद्ध लड़े। रूस यदि इस सन्धि को चिन्ताकारक नहीं तो एक धक्का अवश्य मानता था। सॉन स्टिफैनो के पश्चात् रूस ने आस्ट्रिया को खो दिया और अब उसने जर्मनी को भी खो दिया था किन्तु इटली के राजा को इस से संतोष हुआ और उसने इसे शान्ति की सुरक्षा माना। अक्टूबर में लार्ड सेलिसबरी ने कहा, "समाचारपत्रों से पता लगता है कि जर्मनी और आस्ट्रिया में एक सुरक्षा सन्धि हो गई है। यदि यह सत्य है तो यह अत्यन्त प्रसन्नता की सूचना है।"

इस सन्धि के होने पर अन्य देशों में कुछ भी प्रतिक्रिया हुई हो किन्तु इसने एक ऐसी परिपाटी का सूत्रपात किया जिसका अन्य देशों ने अनुकरण किया और जो अत्यन्त भयानक था। १८८२ में इटली इस सन्धि का सदस्य बन गया। १८९३-९४ में रूस और फ्रांस में भी इस प्रकार की सन्धि हुई। निर्विवाद सत्य है कि १८७९ में यह बीमारी आरम्भ हुई और इसने यूरोप के लगभग सारे राष्ट्रों को पीड़ित किया तथा यही बीमारी प्रथम विश्व-युद्ध के प्रति मुख्यतः उत्तरदायी थी। बिस्मार्क को सन्धियों के उन्माद का प्रेरक होने के कारण क्षमा नहीं किया जा सकता।

प्रो० फे (Fay) के मतानुसार, "आस्ट्रिया और जर्मनी की सन्धि ने केन्द्रीय साम्राज्यों (Central Empires) को संगठित कर दिया और नवम्बर, १९१८ में इनके पतन के समय तक यह सन्धि जर्मनी की नीति की आधार-शिला बनी रही। इससे एक राजनीतिक प्रवृत्ति का ज्ञान होता है, जिससे बिस्मार्क और उसके उत्तराधिकारी अधिक अलग नहीं हुए। मूलतः तथा जब तक बिस्मार्क जर्मनी का सर्वेसर्वा रहा, यह सन्धि वास्तविक तथा उद्देश्य की दृष्टि से सुरक्षात्मक ही रही। आस्ट्रिया और जर्मनी ने स्लाववाद (Pan-Slavism) के उठते हुए ज्वार से एक दूसरे की रक्षा की थी। जिस प्रकार जर्मनी फ्रांस में प्रतिशोध की ज्वाला दहकने पर आस्ट्रिया की निष्पक्षता पर निर्भर रह सकता था, उसी प्रकार आस्ट्रिया इटली में विद्रोह होने की स्थिति में जर्मनी पर विश्वास कर सकता था। समकालीन ऐतिहासिक लेखक बिस्मार्क द्वारा इस सन्धि का करना उसकी नीति-कुशलता का श्रेष्ठ उदाहरण मानते हैं।

त्रिमुखी सन्धि, १८८२ (The Triple Alliance, 1882)—१८७९ की आस्ट्रिया और जर्मनी की सन्धि १८८२ में त्रिमुखी सन्धि में परिवर्तित हो गई। इस वर्ष इटली इस सन्धि में सम्मिलित हुआ। इस से पहले भी इटली ने आस्ट्रिया और जर्मनी से समझौता करना चाहा था। १८७७ में बिस्मार्क ने क्रिस्पी (Crispi) से कहा, "यदि इटली पर फ्रांस आक्रमण करेगा तो हम संगठित होकर इस कार्य के लिए एक सन्धि कर लेंगे। मैं आस्ट्रिया की ओर से युद्ध की आशंका नहीं करता। मैं आपका मित्र हूँ, किन्तु मैं आस्ट्रिया से पृथक् नहीं हो सकता। यदि वह बोसनिया पर अधिकार कर लेता है तो आप अल्बानिया ले सकते हैं।"

१८७९ में बिस्मार्क आस्ट्रिया-जर्मनी गुट में इटली का तीसरे साथी के रूप में स्वागत करने को तैयार था, किन्तु इटली की सरकार ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। किन्तु १८८१ में बार्डो की सन्धि (Treaty of Bardo) के द्वारा फ्रांस का ट्यूनिस पर संरक्षण हो जाने के कारण इटली के रुख में परिवर्तन हुआ। इटली की ट्यूनिस पर आँख थी क्योंकि यह देश इटली के निकट था और उपनिवेश बसाने के लिए अच्छा स्थान था। फ्रांस द्वारा ट्यूनिस पर संरक्षण जमाने से इटली में बड़ा क्षोभ हुआ। इटली के देशभक्तों के सम्मान को बड़ी ठेस पहुँची और उन्होंने फ्रांस के विरुद्ध कार्यवाही करने का निश्चय किया। यह भी डर था कि ट्यूनिस ट्रिपोली को हथियाने की भूमिका है और फ्रांस इटली को लोहे के घेरे में बाँध सकता है। मारसिलेस (Marseilles) में कुछ गड़बड़ हुई। बहुत से इटालियन मारे गए और

अनेक नगर छोड़ कर भाग गए। इटली में फ्रांस-विरोधी प्रदर्शन भी हुए। यह अनुभव हुआ कि अकेले रहना आत्मघात करना है। इटली की वास्तव में ब्रिटेन से सन्धि करने की बड़ी इच्छा थी क्योंकि अन्ध महासागर (The Atlantic) में वह सब से बड़ी समुद्री शक्ति थी किन्तु ब्रिटेन ने सन्धि से इन्कार कर दिया।

इन रिस्थितियों में इटली का राजा अपने प्रधान मन्त्री और विदेश मन्त्री को लेकर विआना गया। सन्धि का प्रस्ताव अभ्यागत (host) की ओर से नहीं हुआ और अतिथि ने अपमान के डर से स्वयं प्रस्ताव नहीं किया, किन्तु मैत्रीपूर्ण स्वागत और परिस्थिति पर साधारणतः विचार करने से मार्ग बन गया। बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के विदेशमन्त्री को सूचित किया कि इटली से किया गया कोई भी समझौता एक पक्ष का ही होगा क्योंकि इटली विश्वासपात्र मित्र नहीं हो सकता। उसने इटली की गीदड़ वाली नीति का उल्लेख करते हुए संकेत किया कि इटली से की गई सन्धि का विशेष मूल्य नहीं होगा। किन्तु इटली सन्धि के लिए अत्यन्त उत्सुक था और इसे किसी भी मूल्य पर करने के लिए तैयार था। यह सत्य है कि परामर्श और वार्त्ता सरल नहीं थी किन्तु अन्त में प्रयत्न सफल हुआ और १८८२ में त्रिमुखी सन्धि (Triple Alliance) हो गई।

प्रो० फे (Fay) का मत है कि यह सोचना ठीक नहीं है कि बिस्मार्क त्रिमुखी सन्धि के लिए उत्तरदायी था। यह सत्य है कि बिस्मार्क ने फ्रांस को ट्यूनिस का 'पका फल' तोड़ने के लिए प्रोत्साहित किया और उसके औपनिवेशिक प्रयत्नों में भी सहायता प्रदान की किन्तु इसका अर्थ यह नहीं था कि उसे आशा थी कि फ्रांस १८७०-७१ का अपना अपमान भूल कर जर्मनी से शान्ति रखेगा। वास्तव में त्रिमुखी सन्धि का जन्म इटली से हुआ था।

२० मई, १८८२ को इटली, जर्मनी और आस्ट्रिया में त्रिमुखी सन्धि हुई। इस की अवधि पाँच वर्ष थी और इसे गुप्त रखना था। इस सन्धि के अनुसार यदि फ्रांस बिना किसी कारण के आक्रमण करता तो आस्ट्रिया और जर्मनी को अपनी पूरी सैन्य शक्ति से सहायता करनी थी। इटली ने प्रतिदान स्वरूप इस प्रकार की स्थिति में जर्मनी की सहायता करने का वचन दिया। रूस द्वारा अकारण ही जर्मनी अथवा आस्ट्रिया पर आक्रमण करने पर इटली को मैत्रीपूर्ण निष्पक्षता रखनी थी। यदि आक्रमण एक अथवा अधिक शक्तियाँ करें तो इटली को सक्रिय सहायता करनी थी। आस्ट्रिया और जर्मनी के रूस से सम्बन्धित समझौते को इटली से गुप्त रखा गया। इटली ब्रिटेन को भी इस त्रिमुखी सन्धि में लाना चाहता था, किन्तु बिस्मार्क ने इस सुझाव को नहीं माना। किन्तु यह घोषणा की गई कि त्रिमुखी सन्धि को किसी भी प्रकार इंग्लैण्ड के विरुद्ध नहीं समझा जाएगा।

डा० गूच (Gooch) ने ठीक कहा कि, "यद्यपि इटली प्रार्थी था फिर भी उसे आस्ट्रिया की अपेक्षा अधिक लाभ हुआ।" आस्ट्रिया फ्रांस के आक्रमण के विरुद्ध इटली की सहायता करने को बाध्य था। किन्तु आस्ट्रिया पर रूस द्वारा आक्रमण की स्थिति में उसकी सहायता करने के लिए इटली पर प्रतिबन्ध नहीं

था। इस सन्धि द्वारा इटली को आस्ट्रिया की ओर से आक्रमण का भय जाता रहा। १८७८ में बर्लिन सम्मेलन के अवसर पर इटली ने कोई विशेष कार्य नहीं किया। १८८२ के पश्चात् उसकी गणना भी बड़ी शक्तियों में होने लगी। इस सन्धि से केन्द्रीय शक्तियों को ठोस लाभ हुए। बिस्मार्क को अल्पसम्भावी भय से छुटकारा ही नहीं मिला कि इटली सम्भवतः आक्रमण के समय फ्रांस से मिल जाएगा, अपितु उसे इस प्रकार के आक्रमण को रोकने के लिए एक साथी भी मिल गया था। आस्ट्रिया का भी पीछे से छुरा लगने का भय जाता रहा। विशेषतः जब यह रूस के विरुद्ध जीवन-मरण के संघर्ष में संलग्न होता। वह रूस-फ्रांस के आक्रमण का सामना करने में इटली की सहायता पर निर्भर रह सकता था। इटली को बड़ा लाभ हुआ किन्तु एक प्रकार से उसे हानि भी हुई। सन्धि ने एड्रियाटिक और बलकान में उसकी महत्त्वाकांक्षाओं का मार्ग बन्द कर दिया।

यह ध्यान रखना चाहिए कि १८८७ में त्रिमुखी सन्धि की पुनरावृत्ति (renewal) हुई और इटली के हित में कुछ परिवर्तन भी किए गए। १८८२ में इटली की अवस्था एक प्रेमी की थी किन्तु १८८७ में आस्ट्रिया को रूसी तथा जर्मनी को फ्रांसीसी आक्रमण का भय था अतः इटली अपनी मैत्री का मूल्य प्राप्त कर सकता था। आस्ट्रिया को बलकान में इटली के स्वार्थों को तथा तुर्की के विभाजन की क्षतिपूर्ति की माँग को मानना पड़ा। इटली ने आस्ट्रिया पर आक्रमण होने की स्थिति में सहायता का वचन देने से इन्कार कर दिया। उत्तरी अफ्रीका में इटली की महत्त्वाकांक्षाओं पर आघात होने पर जर्मनी ने उसकी सहायता करने का आश्वासन दिया। आस्ट्रिया ने पश्चिमी मोर्चेबन्दी पर जाने के लिए अपने प्रदेश में से मार्ग देने का वचन दिया।

इटली ने त्रिमुखी सन्धि को क्यों और कब छोड़ा (How and why Italy left Triple Alliance)—यह सत्य है कि इस सन्धि द्वारा तीनों देश एक दूसरे के मित्र बन गए, किन्तु जो घनिष्ठ सम्बन्ध आस्ट्रिया और जर्मनी में थे वे इटली के साथ नहीं थे। इसका कारण था कि इटली के प्रति अविश्वास की धारणा थी अतः उस पर विश्वास नहीं किया गया। बिस्मार्क के शब्दों में, "चंचल आँखों वाला, कभी लुप्त न होने वाला इटली इधर-उधर दौड़ भाग करता रहता है। वह स्वाभाविक रूप से भ्रष्टाचार और विपत्ति की गन्ध से आकर्षित होकर और पीछे से वार करने में उद्यत तथा थोड़ी-सी लूटमार करके भाग जाने वाला है।"

यह नहीं भूलना चाहिए कि इटली प्रगट रूप से केन्द्रीय शक्तियों से मैत्री रखता था किन्तु साथ-साथ वह अन्य देशों से भी अपने सम्बन्ध स्थापित करता जा रहा था। बिस्मार्क के पतन के पश्चात् फ्रांस से उसके सम्बन्धों में सुधार हो गया। इटली की जनता की धारणा थी कि वह जर्मनी की अपेक्षा प्रजातन्त्रवादी फ्रांस के अधिक निकट है। १८९६ में इटली ने ट्यूनिस पर फ्रांस की संरक्षकता को मान्यता प्रदान की। १८९६ में दोनों देशों में चुंगी पर संघर्ष समाप्त हो गया। दिसम्बर, १९०१ में फ्रांस से एक समझौता किया गया जिसमें अन्ध महासागर

(The Atlantic) में दोनों देशों के हितों को मान्यता दी गई तथा फ्रांस ने इटली द्वारा ट्रिपोली में अपने प्रभाव का प्रसार करने का अधिकार मान लिया। जून, १९०२ में त्रिमुखी सन्धि की पुनरावृत्ति होने से पहले इटली ने फ्रांस को आश्वासन दिया था कि वह फ्राँस के विरुद्ध किसी भी आक्रामक योजना में साथ देने को बाध्य नहीं है। नवम्बर, १९०२ में फ्रांस और इटली में समझौता हुआ कि यदि एक देश पर आक्रमण होगा तो दूसरा पूर्णतः निष्पक्ष रहेगा। १९०३ में राजा विक्टर इम्मेनुअल (King Victor Emmanual) और रानी का पेरिस में मैत्रीपूर्ण स्वागत हुआ और १९०४ में राष्ट्रपति लोवे (President Loubet) का रोम में स्वागत किया गया। फ्रांस के राष्ट्रपति की रोम यात्रा से पोप का रुष्ट होना भी दोनों देशों की मैत्री को और दृढ़ बनाने में सहायक हुआ। १९०४ की इंग्लैण्ड और फ्रांस की मैत्री सन्धि से इटली और फ्रांस के सम्बन्ध उसी प्रकार घनिष्ठ हो गए जिस प्रकार इंग्लैण्ड और रूस के सम्बन्धों में घनिष्ठता हो गई थी। १९०६ में ऐल्जेकिराज़ सम्मेलन से इंग्लैण्ड और फ्रांस के सम्बन्धों की घनिष्ठता तथा इटली और इसके त्रिमुखी सन्धि के अन्य साथियों में सम्बन्धों की शिथिलता पूर्णतः स्पष्ट हो गई।

१९०८-९ के बोसनिया के झगड़े से स्पष्ट हो गया कि त्रिमुखी सन्धि को बनाए रखना एक कूटनीतिक व्यंग्य था। आस्ट्रिया द्वारा बोसनिया और हर्जेगोविना को लेने के कारण इटली बड़ा चिन्तित था। इटली की संसद् में एक सदस्य ने कहा, "जिस देश से हमें युद्ध का भय है, उससे हमारी मैत्री सन्धि है।" इटली में अनेक राजनीतिज्ञों का विचार था कि इटली को केन्द्रीय शक्तियों (Central Powers) से विच्छेद करके त्रिमुखी मैत्री सन्धि (Triple Entente) में सम्मिलित हो जाना चाहिए। किन्तु इटली के विदेश मन्त्री ने बड़ी दृढ़ता से इस सुझाव को ठुकरा दिया कि एक सन्धि के लिए दूसरी को छोड़ दिया जाए। उसने कहा कि, "आस्ट्रिया-हंगरी और जर्मनी से हमारी सन्धि मेरे विचार में हमारी इंग्लैण्ड से परम्परागत मैत्री में अथवा फ्रांस से पुनः स्थापित मैत्री में अथवा अभी हाल में ही किए गए रूस के साथ समझौते में किसी भी प्रकार बाधक नहीं होनी चाहिए।" बोसनिया इत्यादि के राज्य में सम्मिलित करने के पश्चात् टिट्टोनी (Tittoni) द्वारा इटली, आस्ट्रिया-हंगरी और रूस में समझौता कराने के सारे प्रत्यन विफल हो गए।

१९०९ में ज़ार निकलस द्वितीय की राजा विक्टर इम्मेनुअल से राक्कोनिगी (Racconigi) में भेंट से इटली और अन्य केन्द्रीय साम्राज्यों के सम्बन्धों में बढ़ता हुआ तनाव और भी अधिक प्रकट हो गया। दोनों राजाओं ने प्रतिज्ञा की कि वे बलकान में अपनी पूरी शक्ति से यथास्थिति (status quo) रखने का पूरा प्रयत्न करेंगे। यदि यह सम्भव नहीं हुआ तो वे वहाँ के राज्यों को उन्नत करके आस्ट्रिया और इटली दोनों को वहाँ से निकाल देने का प्रयत्न करेंगे। इटली के ट्रिपोली और सायरनैका (Cyrenaica) में हितों के प्रति रूस ने उदारतापूर्ण

व्यवहार करने का आश्वासन दिया। वासफोरस और डार्डेनल्ज के विषय में इटली ने यही वर्ताव रूस के प्रति करने का वचन दिया। फ्रांस और इंग्लैण्ड ने रावकोनिगी समझौते को स्वीकार किया। इस समझौते से इटली त्रिमुखी सन्धि (Triple Alliance) से एक कदम और दूर हट कर त्रिमुखी मैत्री सन्धि (Triple Entente) के निकट आ गया। किन्तु फिर भी औपचारिक दृष्टि से त्रिमुखी सन्धि अक्षुण्ण वनी रही।

१८८७ में ब्रिटेन और इटली ने एक समझौता किया जिसके द्वारा दोनों देशों ने अन्वमहासागर, ऐड्रियाटिक, ऐजियन और काला सागर में यथास्थिति रखने की प्रतिज्ञा की। यह भी आश्वासन दिया गया कि यदि दोनों में से कोई भी देश अन्वमहासागर में किसी युद्ध में फँस जाए तो दूसरा सहायता करेगा। इटली ने मिस्र में ब्रिटेन की नीति का समर्थन तथा ब्रिटेन ने उत्तरी अफ्रीका में विशेष रूप से ट्रिपोली में इटली की नीति का समर्थन करने का आश्वासन दिया। कालान्तर में दोनों देशों के सम्वन्ध क्रमशः घनिष्ठ होते गए और १९०६ में ऐल्जेकिराज सम्मेलन के अवसर पर इटली ने जर्मनी के विरोध में अपना मत दिया।

इर्रिडैण्टिस्ट आन्दोलन (Irredentist Movement) के अतिरिक्त इटली और आस्ट्रिया के सम्वन्धों को कटु वनाने वाले अन्य भी कई कारण थे। आस्ट्रिया की अल्वानिया प्राप्त करने की इच्छा से तथा इटली आस्ट्रिया की अल्वानिया और वैलोना पर अधिकार की इच्छा से चिढ़ते थे। यद्यपि दोनों देशों में समझौता हो चुका था कि वे अल्वानिया में यथास्थिति वनाए रखेंगे तथापि दोनों ही इस प्रदेश पर अपने प्रभाव की वृद्धि करने के लिए परोक्ष रूप से प्रयत्नशील थे। आस्ट्रिया द्वारा नोवी वाज़ार के सञ्जक में रेल मार्ग निकालने के प्रयास से दोनों देशों में और भी दुर्भावना वढ़ गई।

जर्मनी इटली से मैत्री सम्वन्ध वनाए रखने में वड़ी कठिनाई अनुभव कर रहा था। जर्मनी की नीति तुर्की को अपने पक्ष में मिलाने की थी और वह इस ओर वड़ा प्रयत्न कर रहा था। किन्तु १९११ में इटली ने तुर्की के विरुद्ध युद्ध करके ट्रिपोली पर अधिकार कर लिया था। युद्ध काल में जर्मनी की स्थिति वड़ी कठिन हो गई क्योंकि वह अपने दो मित्रों में युद्ध को नहीं रोक सका था।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि १९०२ से १९१४ तक इटली दोनों पक्षों में अपना पांव फँसाए हुए था और वह त्रिमुखी-सन्धि (Triple Alliance) के अन्तर्गत अपने कर्त्तव्यों तथा त्रिमुखी मैत्री सन्धि (Triple Entente) के सदस्यों से की गई प्रतिज्ञाओं को पूरा करना कठिन अनुभव कर रहा था।

इस प्रकार की परिस्थितियों में प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ। त्रिमुखी सन्धि (Triple Alliance) का सदस्य होने पर भी इटली युद्ध में सम्मिलित नहीं हुआ। उसने क्षतिपूर्ति की माँग करते हुए ट्रेण्टीनो की ओर संकेत किया। आस्ट्रिया ने माँग ठुकरा दी। इटली की नीति थी "जो कुछ भी प्राप्त हो सके ले लो।" इटली ट्रिपोली

के युद्ध से थक गया था अतः उसे युद्ध में कूदने की कोई शीघ्रता नहीं थी। ट्रेण्टीनो की माँग को आस्ट्रिया ने ठुकरा दिया। जर्मनी ने आस्ट्रिया पर जोर डाल कर इटली को कुछ दिलाना चाहा, किन्तु आस्ट्रिया नहीं माना। वर्चटोल्ड (Berchtold) के अपदस्थ कर देने के वाद भी आस्ट्रिया की नीति में परिवर्तन नहीं हुआ। इटली की माँग को एक दम मानकर आस्ट्रिया ने उसे अपने पक्ष में मिलाने की अपेक्षा धीरे-धीरे अपनी माँग को वढ़ाना आरम्भ कर दिया। इटली भी उसी प्रकार अपनी माँग वढ़ाने लगा। अन्ततः अप्रैल, १९१५ में इटली ने सारे दक्षिणी टायरोल (South Tyrol), गोरिज़िया (Gorizia), ग्राडिस्का (Gradisca) और ट्रीस्टी (Trieste) तथा डलमटियन समुद्री तट (Dalmatian Coast) के अनेक द्वीपों, वैलोना (Valona) पर इटली का आधिपत्य तथा अल्वानिया में आस्ट्रिया की निःस्वार्थता की माँग रखी।

इटली की निष्पक्षता का मूल्य सक्रिय सहायता की अपेक्षा कम होना स्वाभाविक था। यह भी उतना ही स्वाभाविक था कि आस्ट्रिया द्वारा इसके मूल्य की अपेक्षा त्रिमुखी मैत्री सन्धि के सदस्यों ने इटली को अधिक देने का वचन दिया। फ्रांस और इंग्लैण्ड ने इटली की सहायता का वहुत ऊँचा मूल्य लगाया और इस विषय में परामर्श करने के लिए लन्दन में वार्ता आरम्भ हुई। फ्रांस और रूस ने इटली की माँग को अनुचित रूप से अधिक समझा किन्तु सामरिक (strategic) स्थिति इटली के हित में थी और मित्र राष्ट्रों (The Allies) को इटली की सहायता की वड़ी आवश्यकता थी। इस परिस्थिति में १९१५ में लन्दन में सन्धि पर हस्ताक्षर किए गए।

लन्दन सन्धि (Treaty of London) के अनुसार इटली को ट्रेण्टीनो, ब्रेन्नर दर्रे तक दक्षिणी टायरोल, ट्रीस्ट का नगर और प्रदेश, ग्राडिस्का का प्रदेश, उत्तरी डेलमाटिया, इस्ट्रिया (Istria) इत्यादि देने का आश्वासन दिया गया। उसे अन्य वारह द्वीप देने भी स्वीकार किए गए। लिविया (Libya) में उसे पूरे अधिकार और सुविधाएँ दी गईं। इटली को सोमालीलैण्ड, इरिट्रिया (Eritrea) और लिविया में प्रसार करने की भी छूट दी गई। ब्रिटेन ने उसे एक ऋण देने का तथा युद्ध की क्षतिपूर्ति में भी भाग देने का आश्वासन दिया। परस्पर समझौता हुआ कि सन्धि को गुप्त रखा जाए और इटली एक मास में ही युद्ध में सम्मिलित हो जाएगा। इस वात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि लन्दन सन्धि से मित्र-राष्ट्रों की भौतिक स्थिति अच्छी हो गई किन्तु इससे उनके सदाचार का सम्मान समाप्त हो गया। ऐड्रियाटिक सागर के इटली की झील वनने की आशंका से सर्व (Serbs) अत्यन्त क्रुद्ध हो गए।

लन्दन सन्धि पर हस्ताक्षर हो जाने के पश्चात् भी इटली आस्ट्रिया से युद्ध का वहाना ढूँढने के लिए वार्त्ता करता रहा। २१ अप्रैल, १९१३ को इटली ने घोषणा की कि दोनों देशों में इतने अधिक मतभेद हैं कि इन्हें मिटाना असम्भव है। ३ मई को इटली त्रिमुखी सन्धि (Triple Alliance) से अलग हो गया। आस्ट्रिया की

सरकार ने इटली को अपने पक्ष में मिलाने के लिए कुछ सुविधाएँ देने का प्रस्ताव रखा, किन्तु अब बहुत देर हो चुकी थी। १२ मई, १९१६ को इटली ने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। आश्चर्यजनक रूप से २७ अगस्त, १९१६ तक जर्मनी के विरुद्ध युद्ध नहीं छेड़ा गया। उपर्युक्त घटना-क्रम से स्पष्ट हो जाता है कि "इटली ने १८८२ में किस प्रकार त्रिमुखी सन्धि में सम्मिलित होकर इसे १९१५ में छोड़ दिया।" दोनों ही अवसरों पर इटली का उद्देश्य अपनी स्वार्थपूर्ति करना था।

फ्रांस-रूस सन्धि (Franco-Russian Alliance) (१८९३)—यह स्मरणीय तथ्य है कि आस्ट्रिया-जर्मन सन्धि बहुत थोड़े समय में पूरी हुई थी, किन्तु फ्रांस और रूस की सन्धि पर बहुत दिनों तक औपचारिक रूप से वार्त्ता आरम्भ होने से पहले ही सार्वजनिक तथा गुप्त रूप से विचार-विमर्श होता रहा था फिर भी बहुत समय बाद यह सन्धि हुई। १८७१ से १८९० तक बिस्मार्क फ्रांस को अकेला करने की नीति का अनुसरण करता रहा और इसलिए वह रूस और फ्रांस में सन्धि नहीं होने देना चाहता था। उसने तीन सम्राटों की सभा (Three Emperors' League) बनाई जो १८७३ से १८७८ तक चली। यद्यपि रूस और जर्मनी के सम्बन्धों में १८७९-१८८१ में खिचाव आ गया था और इस अवधि में रूस-फ्रांस सन्धि होने की सम्भावना थी तथापि बिस्मार्क ने फ्रांस को सहायता देने की नीति का अनुसरण करके यह सन्धि नहीं होने दी। बल्गारिया की घटना के अवसर पर बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के विरुद्ध रूस का समर्थन किया। १८८१ में उसने तीन सम्राटों की सभा को पुनर्जीवित किया और फिर १८८७ तक चलती रही। १८८७ में उसने रूस से पुनराश्वासन-सन्धि (Reinsurance Treaty) करके रूस को १८९० तक जर्मनी के साथ रखा।

एक अन्य कारण यह भी था कि फ्रांस के मन्त्रिमण्डल जल्दी-जल्दी बदलते रहते थे और एक मन्त्रिमण्डल द्वारा आरम्भ की गई वार्त्ता दूसरा मन्त्रिमण्डल सफलतापूर्वक पूरी नहीं कर पाता था। रूस में पूर्ण निरंकुश राज्य था और फ्रांस में पूर्ण गणतन्त्री शासन। अतः यह भी धारणा थी कि निरंकुश तथा गणतन्त्र प्रणाली के राज्यों में सन्धि होना शुभ नहीं होगा। ज़ार एक ऐसे गणतन्त्री देश से सन्धि करने से संकोच करता था जो क्रान्तिकारियों का आश्रय हो। रूस का विदेश-मन्त्री गीयर्स (Giers) रोगी था अतः वार्त्ता उसकी सुविधानुसार ही हो सकती थी। स्वयं ज़ार भी अपना विचार बदल लेता था और अनेक अवसरों पर फ्रांस से वार्त्ता करने से इन्कार कर देता था। किन्तु इन कठिनाइयों के विपरीत समान स्वार्थों और हितों के कारण अन्त में यह सन्धि सम्पन्न हुई।

१८७३ में फ्रांस की सरकार ने रूसी सरकार से पूछा कि क्या वह फ्रांस पर आक्रमण होने पर उसकी सहायता करेगी। रूसी सरकार ने कोई प्रतिज्ञा नहीं की अपितु इतना कहा कि वह फ्रांस को एक महान् शक्ति के रूप में देखना चाहता है। १८७५ में युद्ध की उत्तेजना के समय रूस ने फ्रांस के प्रति अपनी सक्रिय सहानुभूति

का परिचय दिया। जर्मनी फ्रांस के पर्याप्त रूप से शक्तिशाली होने तथा उसे चुनौती देने योग्य होने से पूर्व ही आक्रमण करके उसे कुचल देना चाहता था। इस अवसर पर जार ने अपने विदेश-मन्त्री गॉर्टचैकॉफ़ (Gortschakoff) के साथ जर्मनी जाकर उसे शान्त किया। रूस ने स्पष्ट रूप से जर्मनी को कहा कि यदि उसने फ्रांस पर आक्रमण किया तो उसे रूस की निष्पक्षता पर भरोसा नहीं करना चाहिए। रूस का यह कार्य फ्रांस के लिए उसके घनिष्ठ सम्बन्धों की भूमिका हुई।

१८७७ में वैडिंगटन ने फ्रांस की बागडोर सँभाली। वह जर्मनी से अच्छे सम्बन्ध रखने का समर्थक था। वर्लिन सम्मेलन के पश्चात् जो तनाव हुआ उस समय रूसी सरकार फ्रांसीसी सरकार से सन्धि करने के लिए तैयार थी, किन्तु फ्रांस ने इन्कार कर दिया। वैडिंगटन ने कहा था "मेरे विचार से रूस मैत्री करना चाहता है किन्तु विस्मार्क की आँखें हम पर लगी हैं। यदि हमने सन्धि करने का प्रयत्न किया तो वह इसका उत्तर युद्ध से दे सकता है।" गैम्बेट्टा (Gambetta) भी, जो जर्मनी का शत्रु था विस्मार्क से अच्छे सम्बन्ध रखने के पक्ष में था। उसके शब्दों में "यूरोप में द्वितीय श्रेणी के राष्ट्र का कार्य करना चाहिए और जब तक हमारी सेना पर्याप्त रूप से शक्तिशाली न हो जाए उस समय तक बहुत गम्भीर रहना चाहिए। उस अवस्था में ही मैं रूस के साथ सन्धि करने के पक्ष में होऊँगा।" १८८१ में विस्मार्क ने भी कहा कि "मैं फ्रांस के साथ हाथ-से-हाथ मिला कर चलना चाहता हूँ।" जर्मनी और फ्रांस में रूस के प्रति उदासीनता इतनी अधिक थी कि १८८० में फ्रेसिने (Freycinet) ने ज़ार पर बम मारने की योजना बनाने के अपराधी हर्टमैन्न को रूस को सौंपने से इन्कार कर दिया। ज़ार बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने रूसी राजदूत को फ्रांस से वापिस बुला लिया। १८८५ में फ्रांस ने क्रोपोटकिन (Kropotkin) को फ्रांस की जेल से दण्ड की अवधि पूरी होने से पहले ही मुक्त करके तथा ज़ार के मित्र फ्रांसीसी राजदूत को वापिस बुला कर, रूसी सरकार को बहुत रुष्ट कर दिया था। क्रोधावेश में ज़ार ने नए फ्रांसीसी राजदूत का स्वागत करने से इन्कार कर दिया।

बल्गारिया के झगड़े के दिनों में फ्रांस-रूस सन्धि की सम्भावना हुई और इस उद्देश्य से दोनों देशों में प्रचार आरम्भ हो गया। कैटकॉफ (Katkoff) ने लिखा, "यदि जर्मनी इतना ऊँचा है तो क्या इसका कारण यह नहीं है कि वह रूस के कंधों पर चढ़ा हुआ है? यदि रूस अपने कार्यों में स्वतन्त्रता बरतनी आरम्भ कर दे तो जर्मनी की सर्वशक्तिमत्ता का भूत लुप्त हो जाए। हम फ्रांस-रूस मैत्री की माँग नहीं कर रहे। हमारी इच्छा है कि रूस और जर्मनी के सम्बन्ध स्वतन्त्र और मैत्रीपूर्ण रहें किन्तु यह भी चाहते हैं कि अन्य देशों से भी उसके सम्बन्ध इसी प्रकार के होने चाहिएं, विशेषतः फ्रांस से क्योंकि यूरोप में उसे उसकी शक्ति के योग्य उन्नत स्थान प्राप्त होता जा रहा है। हमारा झगड़ा किस कारण हो सकता है। उसके आन्तरिक मामलों से हमें क्या मतलब?···क्रान्तिकारी प्रचार का शिक्षागृह होने के कारण मैं फ्रांस से घृणा करता हूँ। किन्तु अब आस्ट्रिया और जर्मनी से रूस को भय उत्पन्न

हो गया है और अब उसके लिए अनिच्छा होते हुए भी सन्धि करना अनिवार्य हो गया है।" किन्तु १८८६ में जब सन्धि के लिए औपचारिक रूप से प्रस्ताव किया गया तो फ्रांस ने इन्कार कर दिया।

१८८७ में फ्रांस म नया मन्त्रिमण्डल पदासीन हुआ। नया विदेशमन्त्री रूस के प्रति मित्र-भाव रखता था और उसने बल्गारिया को सलाह दी कि वह रूस से झगड़ा समाप्त करके समझौता कर ले। डा० गूच (Gooch) के अनुसार, "जिस समय बिस्मार्क को छोड़कर यूरोप के सारे कूटनीतिज्ञ बल्गारिया में रूस की अनधिकार चेष्टा की आलोचना कर रहे थे, फ्रांसीसी सरकार के समर्थन से पेट्रोग्राड में अपार हर्ष और कृतज्ञता की भावना फैली।"

इसी वर्ष फ्रांस में बाउलैंगर (Boulanger) की घटना हुई। रूसी सरकार ने जर्मनी को शान्त करने में हस्तक्षेप किया क्योंकि अभी तनाव था और फ्रांस और जर्मन में टक्कर होने की आशंका थी। बिस्मार्क ने रूसी सरकार से पूछा कि युद्ध की स्थिति में उसका क्या रुख रहेगा। ज़ार ने जो उत्तर भेजा, वह "यद्यपि स्पष्टतः रूस के स्वार्थों के हित में था तथापि रूस तीनों युद्धों में निष्पक्ष रहा। आज रूस को अपने हितों का अधिक ध्यान रखना होगा और वह निरन्तर प्रशिया की सहायता नहीं कर सकता क्योंकि वह साथ में सम्राट् फ्रांसिस जोसेफ़ का भी मित्र है।" ज़ार ने निष्पक्षता की प्रतिज्ञा करने से इन्कार कर दिया क्योंकि फ्रांस के नष्ट हो जाने से यूरोप में शक्ति-संतुलन (Balance of Power) बिगड़ जाता था। वह स्वतन्त्र रहना चाहता था। उसने फ्रांस को आश्वासन दिया कि वह उसकी नैतिक सहायता पर विश्वास कर सकता है।

१८८३ में रूस के ग्रैंड ड्यूक ने पेरिस की यात्रा की और फ्रांस की नई राइफलों का निरीक्षण करने की इच्छा प्रगट की। उसकी इच्छा कुछ संकोच के पश्चात् पूरी की गई। १८८९ में रूस ने फ्रांस को पचास हज़ार राइफलें तैयार करने का ठेका दिया। फ्रांस की सरकार इस शर्त पर राइफलें बनाने को तैयार हो गई कि इन्हें फ्रांस के विरुद्ध प्रयोग में नहीं लाया जाएगा। १८९० में राइफलें बनाई जाने लगीं, किन्तु इस अवधि में रूसी अधिकारियों ने फ्रांस की भर्ती, यातायात और रसद पहुँचाने की व्यवस्था का अध्ययन किया। फ्रांस का एक विशेषज्ञ रूस में गोला-बारूद बनाने की व्यवस्था को ठीक करने के लिए भेजा गया।

१८८८ में रूस की सरकार ने फ्रांस में ऋण लेने का प्रयत्न किया और जनता ने नियत राशि से भी अधिक धन ऋण के रूप में दिया। रूस फ्रांस का कृतज्ञ हो गया। अगले वर्ष भी एक और ऋण लिया गया। इन ऋणों से दोनों देश और भी निकट हो गए।

फ्रेसिने (Freycinet) का मन्त्रिमण्डल रूस के प्रति उदार था। १८९० में बिस्मार्क के पतन तथा रूस से 'पुनराश्वासन' सन्धि (Reinsurance Treaty) समाप्त हो जाने से रूस और फ्रांस के घनिष्ठ होने के मार्ग से एक और अड़चन दूर

हो गई। १८९० में ग्रैण्ड-ड्यूक दूसरी बार फ्रांस गया और उसने पेरिस में कहा, "यदि इस विषय में मुझे कोई अधिकार है, तो युद्ध की स्थिति में दोनों देश एक होंगे। यह बात यदि अन्य शक्तियों को भी मालूम है, तो यह युद्ध के लिए एक भारी रोक है क्योंकि फ्रांस और रूस को कोई भी चुनौती नहीं दे सकता।" जुदा होते समय उसके शब्द थे, "मैं फ्रांस का सबसे बड़ा मित्र हूं।"

१८९० में फ्रांस का मुख्य सेनापति जनरल ब्वाडेफ़े (Boisdeffre) सन्धि करने के लिए रूस गया। किन्तु इस यात्रा का कोई परिणाम नहीं निकला क्योंकि ज़ार ने इस सम्बन्ध को उपयोगी नहीं माना। फ्रांस की जनता सन्धि करने के लिए ज़ोर दे रही थी। बेल्जियम के एक मन्त्री ने कहा, "पेरिस में इस सन्धि का स्वप्न एक धुन बन गया है। केन्द्रीय शक्तियों (Central Powers) के आक्रमण को रोक सकने की इच्छा तथा बड़ी शक्ति का आसरा लेने का यह स्वाभाविक परिणाम है। रूस के प्रति मैत्री की भावना फ्रांस के सारे वर्गों में एक सनक का रूप धारण कर चुकी है। द्वितीय साम्राज्य (Second Empire) में जिस प्रकार पोलैण्ड सर्वप्रिय था उसी प्रकार आज रूस बन गया है। सब लोगों का पूर्ण विश्वास है कि यदि सन्धि नहीं तो कोई गुप्त समझौता अवश्य ही हो चुका है। इसलिए किसी भी माननीय अधिकारी का आगमन एक महत्त्वपूर्ण घटना मानी जाती है। ग्रैण्ड ड्यूक की यात्रा साधारण औपचारिक रूप के अतिरिक्त एक गम्भीर राजनीतिक महत्त्व की घटना मानी जा रही है। एक नया समाचारपत्र 'फ्रांस-रूस एकता' अभी हाल ही में प्रकाशित होने लगा है और पेरिस के समाचारपत्रों के रूस सम्बन्धी मैत्रीपूर्ण लेखों का समर्थन करता है। दोनों देशों की राजनीतिक परिपाटियों का भेद पेरिस में अनुभव नहीं किया जा रहा है।"

१८९१ में विलियम द्वितीय की मां सम्राज्ञी फ्रेड्रिक ने फ्रांस की यात्रा की। जब वह वर्साई और सेण्ट क्लाउड गई तो बड़े विशाल प्रदर्शन किए गए। विलियम द्वितीय ने स्पष्टतः कह दिया था कि यदि किसी भी प्रकार उसकी मां का अपमान हुआ तो वह फ्रांस पर आक्रमण कर देगा। किन्तु सम्राज्ञी की गाड़ी के एक घण्टे पहले चले जाने के कारण कोई दुर्घटना होने से बच गई। इस अवसर पर भी रूस ने फ्रांस का साथ दिया। फ्रांस के राष्ट्रपति कारनट (President Carnot) को सेण्ड ऐण्ड्र्यू का ग्रैण्ड क्रॉस भेंट किया गया। किन्तु फिर भी रूस प्रजातन्त्रवादी फ्रांस से सन्धि करने में संकोच करता ही रहा। मास्को में फ्रांस की एक प्रदर्शनी हुई। ज़ार ने इसका खुले रूप से विरोध किया और अपने भाई को, जो मास्को का गवर्नर था, इस समारोह में कोई भाग न लेने का आदेश दिया। यह प्रदर्शनी पूर्णतः असफल रही।

किन्तु रूस और फ्रांस के बीच यह क्षणिक तनाव त्रिमुखी सन्धि (Triple Alliance) की पुनरावृत्ति होने पर समाप्त हो गया। रूस अपने को अकेला अनुभव कर रहा था अतः उसे साथी की आवश्यकता थी। इसी तथ्य के कारण रूसी सरकार फ्रांस का जहाज़ी बेड़ा रूस में बुलाने को विवश हो गई। क्रॉन्सटड (Cronstadt)

१८९१ में रूस गया और वहाँ फ्रांसीसियों का बड़ा भारी स्वागत किया गया। ज़ार ने समुद्री बेड़े के बाजे को फ्रांस के राष्ट्रगीत मारसिलेस की धुन बजाने का आदेश दिया। फेसिने के शब्दों में, "जैसे ही बेड़े ने लंगर डाला सन्धि हो गई। केवल औपचारिक रूप से इसको लेखबद्ध करना ही बाकी रह गया था। ज़ार वचन दे चुका था।" फ्रांस के समुद्री बेड़े की यात्रा से यूरोप पर बड़ा प्रभाव पड़ा। यह सोचा जाने लगा कि यह रूस-फ्रांस सन्धि की भूमिका है।

गीयर्स (Giers) ने फ्रांस को कहा कि रूस की सरकार परस्पर हित की समस्याओं पर विचार-विमर्श करने को तैयार है। १८९१ में दोनों देशों में एक राजनीतिक समझौता हुआ। दोनों देशों ने घोषणा की कि वे शान्ति को नष्ट करने वाले सारे मामलों पर तथा वर्त्तमान और भविष्य में होने वाले सब खतरों का मुकाबला करने के लिए परस्पर वार्ता करेंगे।

१८९१ में रूस ने फ्रांस में पाँच सौ फ्रैंक के मूल्य के दस लाख ऋण-पत्रों पर तीन प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर पर ऋण उठाया। यह ऋण दस लाख ऋण-पत्रों की अपेक्षा अस्सी लाख पत्रों का दिया गया। इसी वर्ष जब गीयर्स पेरिस आया तो रूसी सरकार ने इस मामले में फिर ढील कर दी और गीयर्स ने सैनिक सन्धि करने से इन्कार कर दिया। किन्तु फ्रांस ने रूस को पूरी तरह अपने पक्ष में कर लिया था। १८९१ में तुर्की के मामले में रूस और फ्रांस दोनों ने मिल कर कार्यवाही की और सुलतान को सूचित किया कि अन्धमहासागर (Atlantic) के विषय में दोनों देश साथ कार्यवाही करेंगे।

यद्यपि सैनिक सन्धि पर वार्ता चल रही थी किन्तु फ्रांस देरी होने के कारण धैर्य खोता जा रहा था। गीयर्स (Giers) की अस्वस्थता के कारण और भी देरी होती जा रही थी। ज़ार इस सन्धि को गुप्त रखने के लिए चिन्तित था। अक्टूबर १८९३ में रूस का जहाजी बेड़ा फ्रांस के बेड़े की १८९३ की यात्रा के प्रत्युत्तर स्वरूप फ्रांस आया। पेरिस के स्त्री-पुरुष आनन्द-विभोर हो गए और उन्होंने रूसियों को गले लगा लिया। उन्हें बार-बार अपने निवास-स्थानों के छज्जों पर आना पड़ा। प्रेम-चिह्न के रूप में उन्हें अपने दस्तानों के टुकड़े-टुकड़े करके भीड़ में बाँटने पड़े। मार्सिलेज और ल्योन्स में भी रूसी अधिकारियों का इसी प्रकार अभिनन्दन हुआ। थोड़े समय बाद गीयर्स ने फ्रांस की सरकार को सूचित किया कि रूस सैनिक सन्धि करने के लिए तैयार है। ३१ दिसम्बर, १८९३ को इस सन्धि पर हस्ताक्षर किए गए। इसके अनुसार यदि जर्मनी अथवा जर्मनी की सहायता से इटली, फ्रांस पर आक्रमण करेगा तो रूस जर्मनी का मुकाबला करने के लिए अपनी सारी सैन्य शक्ति का प्रयोग करेगा। फ्रांस और रूस दोनों ही शत्रु के विरुद्ध नियत सेना का प्रयोग करेंगे। यदि रूस पर आस्ट्रिया या जर्मनी, या जर्मनी की सहायता से आस्ट्रिया, आक्रमण करेगा तो फ्रांस पूरी शक्ति से जर्मनी पर आक्रमण करेगा। दोनों देशों के सैन्य अधिकारी उपर्युक्त कार्यवाही को सुचारु रूप से पूरा करने के लिए सर्वदा परामर्श करते रहेंगे। त्रिमुखी सन्धि (Triple Alliance) के सदस्यों की सैन्य शक्ति के विषय में परस्पर

सूचनाओं का आदान-प्रदान होता रहेगा। दोनों देश किसी भी अन्य शक्ति से पृथक् सन्धि नहीं करेंगे। इस सन्धि की शर्तें गुप्त रखी जाएँगी और सन्धि उस समय तक चलेगी जब तक त्रिमुखी सन्धि (Triple Alliance) रहेगी। १८९४ में दोनों देशों ने सन्धि को स्वीकृति प्रदान कर दी।

अन्य देशों को रूस और फ्रांस में इस सन्धि की सूचना १८९५ में प्राप्त हुई। प्रधान मन्त्री रिबोट (Ribot) ने कहा, "फ्रांस ने एक अन्य राष्ट्र के हितों में शान्ति-रक्षा तथा यूरोप में शक्ति-सन्तुलन बनाए रखने के लिए सहयोग किया है। इस सम्बन्ध का देश के सारे वर्गों ने समर्थन किया है और यह हमारी शक्ति और प्रतिष्ठा का प्रतीक है।" सितम्बर, १८९५ में ज़ार निकलस द्वितीय को विलियम द्वितीय ने एक पत्र लिखा कि "मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम हम पर आक्रमण करने की बात स्वप्न में भी नहीं सोच सकते, किन्तु तुम्हें आश्चर्य नहीं होगा कि औपचारिक रूप से तुम्हारे सैनिक अधिकारियों के फ्रांस में उपस्थित होने से फ्रांस में उत्तेजना और प्रतिशोध की ज्वाला को बढ़ते देखकर, शक्तियों (Powers) को चिन्ता होने लगी है। भलाई अथवा बुराई की दृष्टि से यदि तुम्हारा फ्रांसीसियों से सम्बन्ध हो गया है तो भले ही रहे, किन्तु तुम इन मूर्खों को शान्ति से चुपचाप बैठाए रहो। मुझे फ्रांस और रूस की मैत्री से चिन्ता नहीं है अपितु प्रजातन्त्रवाद को उत्साहित करके राजशाही के सिद्धान्त को नीचा कर देने की चिन्ता हो रही है। पर्यवेक्षणों, प्रीतिभोजों, घुड़दौड़ों और अन्त्येष्टि समारोहों पर प्रजातंत्र के प्रमुखों के साथ राजकुमारों, ग्रैण्ड ड्यूकों इत्यादि के निरन्तर उपस्थित होने के कारण प्रजातन्त्रवादियों को यह विश्वास होने लगा है कि वे ईमानदार, शिष्ट लोग हैं जिनके संसर्ग में राजघराने के व्यक्ति बराबरी से व्यवहार कर सकते हैं।"

डा० गूच (Gooch) का मत है कि "द्विमुखी सन्धि (Dual Alliance) का होना केवल रूस और फ्रांस के लिए ही नहीं अपितु सारे यूरोप के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। एक प्रथम श्रेणी की शक्ति का फ्रांस से सन्धि करने की इच्छा करना इस तथ्य का द्योतक था कि फ्रांस अपनी घोर पराजय के पश्चात् पुनः पनपने लगा है। फ्रांस से मैत्री करने की इच्छा में फ्रांस और रूस की शासन-प्रणालियों का विशाल अन्तर भुला दिया गया। सन्धि की शर्तों के गुप्त रखे जाने से उग्र देशभक्तों को यह आशा होने लगी कि सम्भवतः इस सन्धि में राइन प्रान्तों की पुनः प्राप्ति के विषय में भी कोई व्यवस्था भी हुई होगी। रूस की ओर से सम्मान को चोट पहुँचाने वाली कोई बात थी ही नहीं अतः इसे एक अच्छा सौदा माना गया। सुदूर पूर्व (Far East) में प्रसार करने के लिए विशेषतः साईबेरियन रेलमार्ग के लिए बहुत बड़ी पूँजी की आवश्यकता थी और इस पूँजी को मितव्ययी फ्रांस कम ब्याज पर देने के लिए तैयार था। यूरोपीय राजनीति के दृष्टिकोण से इस सन्धि पर हस्ताक्षरों का होना बिस्मार्क युग की समाप्ति का द्योतक था।"

प्रो० फ़े (Fay) के मतानुसार, फ्रांस-रूस सन्धि आरम्भ में एक सुरक्षात्मक समझौता था, किन्तु डेलकासी (Delcasse), इजवोल्स्की और पॉएनकेयर के काल

में इसे आक्रामक सन्धि में परिवर्तित कर दिया गया। जर्मनी द्वारा आक्रमण होने की परिस्थिति में इस सन्धि का मुख्य उद्देश्य जर्मनी को पराजित करना था। आरम्भ में जर्मनी ने उपेक्षा की, क्योंकि उसकी धारणा थी कि त्रिमुखी सन्धि (Triple Alliance) की शक्ति द्विमुखी सन्धि (Dual Alliance) की शक्ति के बराबर थी। उसे विश्वास था कि इंग्लैण्ड इस सन्धि का सदस्य नहीं बनेगा और शक्ति का संतुलन बना रहेगा। किन्तु इस तथ्य को नहीं भूला जा सकता कि इस सन्धि के कारण जर्मनी रूस और फ्रांस का सम्मान करने को विवश हो गया। फ्रांस का एकाकीपन समाप्त हुआ और अब वह इंग्लैण्ड और जर्मनी के प्रति अपना व्यवहार कड़ा कर सकता था। अनेक बार विलियम ने द्विमुखी और त्रिमुखी सन्धि के सदस्यों को संगठित करके एक विशाल महाद्वीप सभा (Continental League) की स्थापना करने का प्रस्ताव किया। उसका विचार था कि इस प्रकार के संगठन से शान्ति की रक्षा होगी और औपनिवेशिक मामलों में इंग्लैण्ड का आधिपत्य समाप्त हो जाएगा। प्रो० फ़े के मतानुसार, "इस प्रकार द्विमुखी सन्धि होने से प्रथम कुछ वर्षों में यूरोप में शान्ति को खतरा होने की अपेक्षा उसकी रक्षा हुई। यह त्रिमुखी सन्धि की शक्ति का एक अच्छा शक्तिशाली सन्तुलन था। दोनों गुटों में कोई भी इतना शक्तिशाली नहीं था कि दूसरे पर आक्रमण करने का साहस कर सकता अथवा शक्ति की धमकी से दूसरे पर दवाव डाल सकता। किन्तु १८९४ से १९०४ तक के दस वर्ष की अवधि में दो ऐसे परिवर्तन हुए जिनका अन्तिम परिणाम शक्ति का संतुलन बिगड़ जाना हुआ। ये घटनाएँ गुप्त समझौतों के क्रम की प्रगति में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थीं—अर्थात् शानदार निष्पक्षता (Splendid Isolation) छोड़कर इंग्लैण्ड का फ्रांस के साथ मैत्री सन्धि करना और इटली का मित्रराष्ट्रों के प्रति सन्देहपूर्ण झुकाव होना।"

मैत्री सन्धि, १९०४ (Entente Cordiale)—इंग्लैण्ड और फ्रांस के सम्बन्धों में १८९८ का वर्ष अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वर्ष था। इस वर्ष फ्रांस और इंग्लैण्ड की प्रतिद्विन्द्विता सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गई थी और दोनों देशों में किसी भी समय टक्कर होने की सम्भावना थी। इंग्लैण्ड और फ्रांस बहुत समय से प्रतिद्वन्द्वी रहे थे। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अफ्रीका के मामले में यह संघर्ष और भी घनिष्ठ हो गया था। १८९० के इंग्लैण्ड और फ्रांस के समझौते के बाद अफ्रीका की अनेक जटिल समस्याएँ सुलझ गई थीं और फ्रांस को मडगास्कर के द्वीप पर अपना संरक्षण जमाने की छूट दे दी गई थी। सहारा मरुस्थल में भी फ्रांस का प्रभाव प्रमुख मान लिया गया था किन्तु फिर भी दोनों देशों में तनाव बना ही रहा। इसका कारण था कि फ्रांस पश्चिमी अफ्रीका से पूर्वी अफ्रीका तक और सूडान पर अपना आधिपत्य जमाना चाहता था। किन्तु ब्रिटिश सरकार भी फ्रांस के इस कार्य को रोकने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ थी क्योंकि वह स्वयं उत्तरी और दक्षिणी अफ्रीका में अपने उपनिवेशों को संगठित करने के लिए प्रयत्नशील थी, यद्यपि सूडान को जीता नहीं गया था तथापि ब्रिटेन इसे अपना ही प्रदेश मानता था।

१८९७ में एक फ्रांसीसी सैनिक तथा साहसी अन्वेषक, मार्चण्ड (Marchand)

ने जो ब्रिटेन के उपनिवेशवाद (Colonialism) का घोर विरोधी था, अफ्रीका के घने जंगलों के बीच में से अपना प्रयाण आरम्भ किया। उसने 'फेडहर्बी' (Paidherbe) नाम के समुद्री जहाज़ को खोल कर टुकड़े कर लिये और यह इस उद्देश्य से कि वह जब नील नदी पर पहुँच जाएगा, इसे पुनः जोड़कर प्रयोग में लाएगा, अपने साथ ले गया। घने जंगलों के बीच में से सैंकड़ों मील की दूरी उसने इस जहाज़ के मुख्य अंग को लकड़ी के लट्ठों पर लुढ़का कर पार की। एक वर्ष से भी अधिक समय के पश्चात् १६ जुलाई, १८९८ को मार्चण्ड फैशोदा (Fashoda) पहुँचा। उसने वहाँ का दुर्ग अपने अधिकार में कर लिया, स्थानीय मुखिया से सन्धि करके उसके राज्य पर अधिकार कर लिया तथा दुर्ग पर फ्रांसीसी ध्वज लहरा दिया।

१५ दिन पश्चात् मार्चण्ड से भी अधिक सेना लेकर किचनर (Kitchener) फैशोदा पहुँचा। संघर्ष की पूरी सम्भावना थी। जब मार्चण्ड ने अपना प्रयाण आरम्भ किया था तो फ्रांस के विदेश-मन्त्री ने उसे सरकार की पूरी सहायता देने का आश्वासन देते हुए कहा था कि, "तुम नील नदी पर एक पिस्तौल की गोली छोड़ने जा रहे हो, हम इसके सारे परिणामों के लिए उत्तरदायी हैं।"

किन्तु किचनर और मार्चण्ड दोनों ने ही वीरता और सम्मान से व्यवहार किया और संघर्ष टल गया। किचनर ने कहा कि, "मैं यहाँ मिस्र का ध्वज अवश्य ही फहराऊँगा।" मार्चण्ड ने उत्तर दिया "अवश्य ! इस गाँव पर मिस्र का ध्वज लहराने के लिए मैं स्वयं तुम्हारी सहायता करूँगा।" किचनर ने कहा "ध्वज दुर्ग पर भी लगाया जाएगा।" मार्चण्ड ने कहा, "मैं इसका विरोध करूँगा।" किचनर ने कहा, "मेजर ! क्या तुम जानते हो कि इसका परिणाम फ्रांस और इंग्लैण्ड में युद्ध होगा ?" मार्चण्ड अपनी डायरी में लिखता है कि उसने बिना बोले ही सिर झुका दिया। अन्त में यह निर्णय हुआ कि किचनर दुर्ग के बाहर के भाग पर मिस्र का ध्वज लहराएगा और दुर्ग पर फ्रांस का ध्वज लगा रहेगा। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि इस मामले को वे अपनी-अपनी सरकारों को विचारार्थ भेजेंगे।

इसी समय फ्रांस में मन्त्रिमण्डल परिवर्तित हुआ और डैलकासी (Delcasse) विदेशमन्त्री बना। उसने इस समस्या पर नए दृष्टिकोण से विचार किया और कहा कि फ्रांस इंग्लैण्ड से युद्ध करने की स्थिति में नहीं है। इसका कारण यह था कि यदि फ्रांस ऐलसेस-लोरेन (Alsace-Lorraine) के प्रान्तों को पुनः प्राप्त करना चाहे तो इसका एक ही मार्ग था कि वह इंग्लैण्ड से सहायता प्राप्त करे। इन परिस्थितियों में इंग्लैण्ड से झगड़ा करना आत्म-हत्या करना था। अतः डैलकासी ने फैशोदा छोड़ने का निर्णय किया और इस उद्देश्य से उचित आदेश भी दे दिए। फ्रांस के इस प्रदेश पर अधिकार के विषय में वार्ता हुई किन्तु इंग्लैण्ड के कड़े व्यवहार के कारण फ्रांस को झुकना पड़ा। मार्च, १८९९ के एक सम्मेलन के अनुसार एक सीमा-रेखा खींची गई और यह समझौता हुआ कि फ्रांस रेखा के पूर्व की ओर और इंग्लैण्ड पश्चिम की ओर अपने क्षेत्रों का प्रसार और प्रभाव नहीं बढ़ाएँगे। यद्यपि डैलकासी ने इंग्लैण्ड से अन्य पुराने झगड़ों को निपटाने के लिए मैत्री का भी प्रस्ताव किया। किन्तु

था। फ्रांस की जनता में उसकी अच्छी प्रतिष्ठा थी क्योंकि वह वहां अनेक बार जाया करता था। १९०३ में जब ऐडवर्ड सप्तम फ्रांस गया तो वहाँ पर उसका सब स्थानों पर बड़ा स्वागत हुआ। लोग उसकी गाड़ी के पीछे दौड़ते और उसका स्वागत करते थे। उसकी यात्रा बड़ी सफल रही। इसी वर्ष इस यात्रा के प्रत्युत्तर स्वरूप राष्ट्रपति लूबे और डैलकासी भी इंग्लैण्ड गए और वहाँ उनका भी बड़ा स्वागत हुआ। इन यात्राओं के परिणामस्वरूप १९०३ में इंग्लैण्ड और फ्रांस में पञ्च फैसले (Arbitration) के लिए एक सन्धि हुई। किन्तु मुख्य सन्धि पर १९०४ में हस्ताक्षर किए गए। इस सन्धि में मिस्र, मोरक्का, न्यूफ़ाउण्डलैण्ड, पश्चिमी अफ्रीका, मेडागास्कर, स्याम और न्यूहिब्राइड्स के मामलों पर समझौता किया गया। इस सन्धि का इंग्लैण्ड तथा फ्रांस, दोनों की सरकारों ने अनुमोदन किया। न्यूफ़ाउण्ड्लैण्ड में मछली पकड़ने के विषय में सद्भावनापूर्ण समझौता हुआ। फ्रांस ने न्यूफ़ाउण्डलैण्ड के समुद्री तट पर मछली पकड़ने और जाल सुखाने के अधिकार को छोड़ दिया किन्तु उसे मछली पकड़ने का अधिकार दिया गया। उसे पश्चिमी अफ्रीका में भी सुविधाएँ दी गई। उसे चौदह हज़ार वर्गमील का प्रदेश दिया गया और नाइजर नदी पर स्थित उपनिवेशों से चाड झील (Lake Chad) पर स्थित वस्तियों पर जाने का अनवरुद्ध मार्ग भी दिया गया। स्याम, मेडागास्कर और न्युहिब्राइड्स के मामले भी सुलझा दिए गए।

लार्ड लैन्सडाउन (Lansdowne) और डैलकासी इंग्लैण्ड और फ्रांस के पुराने झगड़ों का मैत्रीपूर्ण समझौता हो जाने पर बड़े सन्तुष्ट थे। आलोचकों को उत्तर देते हुए डैलकासी ने कहा कि न्यूफ़ाउण्डलैण्ड में फ्रांस ने केवल उन विशेषाधिकारों को छोड़ा है, जिनकी रक्षा करना फ्रांस के लिए कठिन था और अनावश्यक था, किन्तु फ्रांस ने अपना मछली पकड़ने का मुख्य अधिकार नहीं छोड़ा है। पश्चिमी अफ्रीका में ब्रिटेन द्वारा दी गई सुविधाएँ भी काफी महत्त्वपूर्ण थीं। नाइजर-चाड सीमान्त की उन्नति हुई। उसके शब्दों में, "हमारे प्रभाव में मोरक्को हमारे उत्तरी अफ्रीका के साम्राज्य के लिए शक्ति का स्रोत बन जाएगा। यदि इस पर किसी विदेशी शक्ति का अधिकार हो जाता तो यह हमारे उत्तरी अफ्रीका के उपनिवेशों के लिए एक अत्यन्त चिन्ता और भय का कारण बन जाता।" मिस्र का बलिदान नगण्य था। राजनीतिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है और फ्रांस के आर्थिक हितों की सुरक्षा कर दी गई है। ब्रिटेन ने १८८८ के स्वेज़ नहर समझौते (Suez Canal Convention) का पालन करने का भी आश्वासन दिया है।

यह सोचना कि १९०४ की मैत्री सन्धि किसी प्रकार से सैनिक समझौता था, त्रुटिपूर्ण है। यह दोनों देशों के पुराने झगड़ों का निपटारा मात्र था। किन्तु झगड़ों के निपटारे से दोनों देशों में मैत्री का वातावरण बन गया। इस सन्धि से भविष्य में उनके सम्बन्ध और भी घनिष्ठ हो सकने की आशा थी।

यद्यपि १९०४ के समझौते (Entente) से दोनों देशों ने परस्पर सहायता का वचन नहीं दिया था तथापि कुछ परिस्थितियों ने दोनों को परस्पर घनिष्ठ कर

दिया। जर्मनी की समुद्री शक्ति बड़ी तीव्रता से बढ़ती जा रही थी और इंग्लैण्ड में भय छाया हुआ था कि यदि इंग्लैण्ड अपनी समुद्री शक्ति का आधिपत्य बनाए रखना चाहता है तो उसे जर्मनी की अपेक्षा अधिक जहाज बनाने चाहिएँ। ब्रिटेन की सरकार ने प्रशान्त महासागर (Pacific) से अपना बेड़ा हटा कर उत्तरी समुद्र (North Sea) में स्थित करने का भी निर्णय किया। किन्तु इस निर्णय को उसी अवस्था में क्रियान्वित किया जा सकता था जब वह अपना बेड़ा भूमध्यसागर (Mediterranean) से हटा लेता। यह तभी हो सकता था जब कोई मित्र देश भूमध्यसागर (Mediterranean) का नियन्त्रण अपने हाथों में ले ले। भूमध्यसागर से ब्रिटिश जल-सेना को हटाने की आवश्यकता के कारण ही इंग्लैण्ड अधिकाधिक फ्रांस पर निर्भर होने लगा और भूमध्यसागर के नियन्त्रण को सम्भालने के लिए फ्रांस की जल-सेना पर विश्वास भी किया जा सकता था।

इस सन्धि को १९०५-६, १९०८ और १९११ के मोरक्को के तीनों झगड़ों के समय कसौटी पर कसा गया और प्रत्येक बार इंग्लैण्ड ने फ्रांस का समर्थन किया। सन्धि के कसौटी पर खरा उतरने से यह और भी दृढ़ हो गई। वास्तव में अपने-अपने स्वार्थों के कारण ही इंग्लैण्ड और फ्रांस के सम्बन्ध दिन प्रतिदिन घनिष्ठ हो गए और दोनों देश परस्पर निकट आ गए। इंग्लैण्ड और फ्रांस का सहयोग इतना गहरा हो गया था कि १९१२ में जब लार्ड हालडेन बर्लिन गया तो ग्रे (Grey) ने कहा था कि इंग्लैण्ड जर्मनी की मित्रता के लिए फ्रांस का बलिदान नहीं करेगा।

इस सन्धि के विषय में बूलो (Bulow) और डा० गूच के विचारों का उल्लेख करना भी उचित होगा। बूलो ने कहा था, "मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि हमारे पास यह विश्वास करने के लिए कोई भी आधार नहीं है कि यह सन्धि किसी शक्ति के विरुद्ध की गई है, यह शान्ति से इंग्लैण्ड और फ्रांस के मतभेदों को निपटाने का एक प्रयत्न मात्र है। जर्मनी के हितों की दृष्टि से हमें कोई शिकायत नहीं है, क्योंकि हम इंग्लैण्ड और फ्रांस में दुर्भावनापूर्ण सम्बन्धों को नहीं देखना चाहते क्योंकि इस प्रकार की स्थिति में विश्व शान्ति, जो हमें अत्यन्त प्रिय है, खतरे में पड़ जाएगी। मोरक्को के विषय में जो इस समझौते का महत्त्वपूर्ण विषय है, हमें उतनी ही रुचि है, जैसी कि वास्तव में सारे भूमध्यसागर में है। यह दिलचस्पी मूलतः आर्थिक है और हमें मोरक्को में अपने व्यापारिक हितों की रक्षा करनी ही चाहिए और हम यह कार्य अवश्य ही करेंगे।"

डा० गूच के मतानुसार, "यह खेदजनक बात है कि ब्रिटेन के मन्त्रिमण्डल ने स्वयं नहीं देखा—अथवा फ्रांस को इस तथ्य पर विचार करने के लिए सहायता नहीं दी कि वह केवल परामर्श द्वारा ही जर्मनी की स्वीकृति प्राप्त कर लेता। यद्यपि १९०४ की गुप्त सन्धियों में मोरक्को के अस्थायी विभाजन में ब्रिटेन को कोई भाग नहीं दिया गया था और यह कहा जाता है कि इस समझौते को करने वाले साथियों को मोरक्को का आन्तरिक निर्बलता के कारण पतन हो जाने की स्थिति में कोई व्यवस्था करनी युक्तियुक्त थी, तथापि इस सौदेबाजी में हमारे सहयोग से यह प्रतीत

है। यह धारणा ही १६०२ में जापान के साथ उसकी सन्धि का कारण थी। इसी उद्देश्य से १६०४ में सारे झगड़ों का निपटारा करके फ्रांस से मैत्री सन्धि की गई। यद्यपि १६०४ की सन्धि सैनिक सन्धि नहीं थी तथापि परिस्थितियों के प्रवाह ने दोनों देशों को परस्पर निकट ला दिया और मोरक्को के प्रश्न पर इंग्लैण्ड ने १६०६, १६०८ और १६११ में फ्रांस का समर्थन किया।

यह ठीक ही कहा जाता है कि इंग्लैण्ड और रूस की मैत्री सन्धि वास्तव में फ्रांस और इंग्लैण्ड की मैत्री सन्धि की एक शाखा थी। जब तक डैलकासी पदासीन रहा उसने इंग्लैण्ड और रूस को निकट लाने का भरसक प्रयत्न किया। उसकी धारणा थी कि इंग्लैण्ड और फ्रांस में युद्ध होने की स्थिति में फ्रांस की शक्ति और भी निर्बल हो जाएगी और १८६३ की फ्रांस-रूस सन्धि तथा १६०४ की मैत्री सन्धि की व्यवस्था भी छिन्न-भिन्न हो जाएगी। इसके दो मित्रों के परस्पर झगड़ने से फ्रांस बड़ी कठिनाई में पड़ जाएगा। इसी कारण जब डागर बैंक (Dogger Bank) की घटना घटी तो डैलकासी को इंग्लैण्ड और रूस में परस्पर समझौता कराने के लिए घोर परिश्रम करना पड़ा। इंग्लैण्ड में रूस के प्रति क्षुब्ध वातावरण होने पर भी मामले को दबा दिया गया और इंग्लैण्ड और रूस में युद्ध की सम्भावना टल गई। डैलकासी को यह भी डर था कि इन दोनों में युद्ध हो जाने पर रूस जर्मनी से मिल जाएगा और फिर फ्रांस के अस्तित्व को भी खतरा पैदा हो जाएगा। रूस-जापान युद्ध के कारण रूस बहुत निर्बल हो गया था और भविष्य में भी रूस और जापान में संघर्ष होने की आशंका थी। रूस को पुनः अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए बहुत समय तक शान्ति की आवश्यकता थी और यह उसी अवस्था में हो सकता था जब जापान के मित्र इंग्लैण्ड को अपने पक्ष में मिला लिया जाता। इस आधार पर इंग्लैण्ड और रूस की सन्धि वार्ता आरम्भ हुई।

ऐसा प्रतीत होता है कि रूस-जापान युद्ध के समय एडवर्ड सप्तम ने इज़वोल्स्की से, जो बाद में रूस का विदेश-मन्त्री बना, इंग्लैण्ड-रूस के सम्बन्धों के विषय में वार्ता की थी कि किस प्रकार दोनों देश पुनः परस्पर निकट आ सकते हैं। दोनों ने ही परस्पर समझौता हो जाने के विचार का समर्थन किया प्रतीत होता है। रूस ने यह अनुभव किया कि यदि ब्रिटेन से उसके झगड़े समाप्त हो जाएँ तो वह बलकान और सुदूरपूर्व में शक्तिशाली नीति का अनुसरण कर सकेगा। यदि इंग्लैण्ड से सन्धि और जापान से सुलह हो जाए तो यह चतुर्मुखी संगठन (Quadruple Alliance) त्रिमुखी सन्धि (Triple Alliance) के संगठन से बहुत अधिक शक्तिशाली हो जाएगा।

एडवर्ड सप्तम और ग्रे दोनों ही रूस से समझौता करने के पक्ष में थे। १६०५-६ के प्रथम मोरक्को झगड़े तथा जर्मनी की बढ़ती हुई समुद्री शक्ति के कारण इंग्लैण्ड में बड़ी चिन्ता थी तथा रूस से समझौता करने की सच्ची इच्छा थी, ताकि जर्मनी द्वारा आक्रमण करने की स्थिति में इंग्लैण्ड की स्थिति निर्बल न रहे। सर चार्ल्स हार्डिङ्ग, जो रूस में राजदूत रह चुका था, रूस के साथ सन्धि करने का समर्थक

था। उसने भी ग्रे पर रूस से समझौता करने के लिए बड़ा दबाव डाला। रूस में नए राजदूत सर आर्थर निकलसन ने बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

मई, १९०६ में इजवोल्स्की के रूस में विदेश-मन्त्री बनते ही वार्ता आरम्भ हो गई। अक्टूबर, १९०६ में उसने स्वीकार किया कि वार्ता चल रही है। आरम्भ में
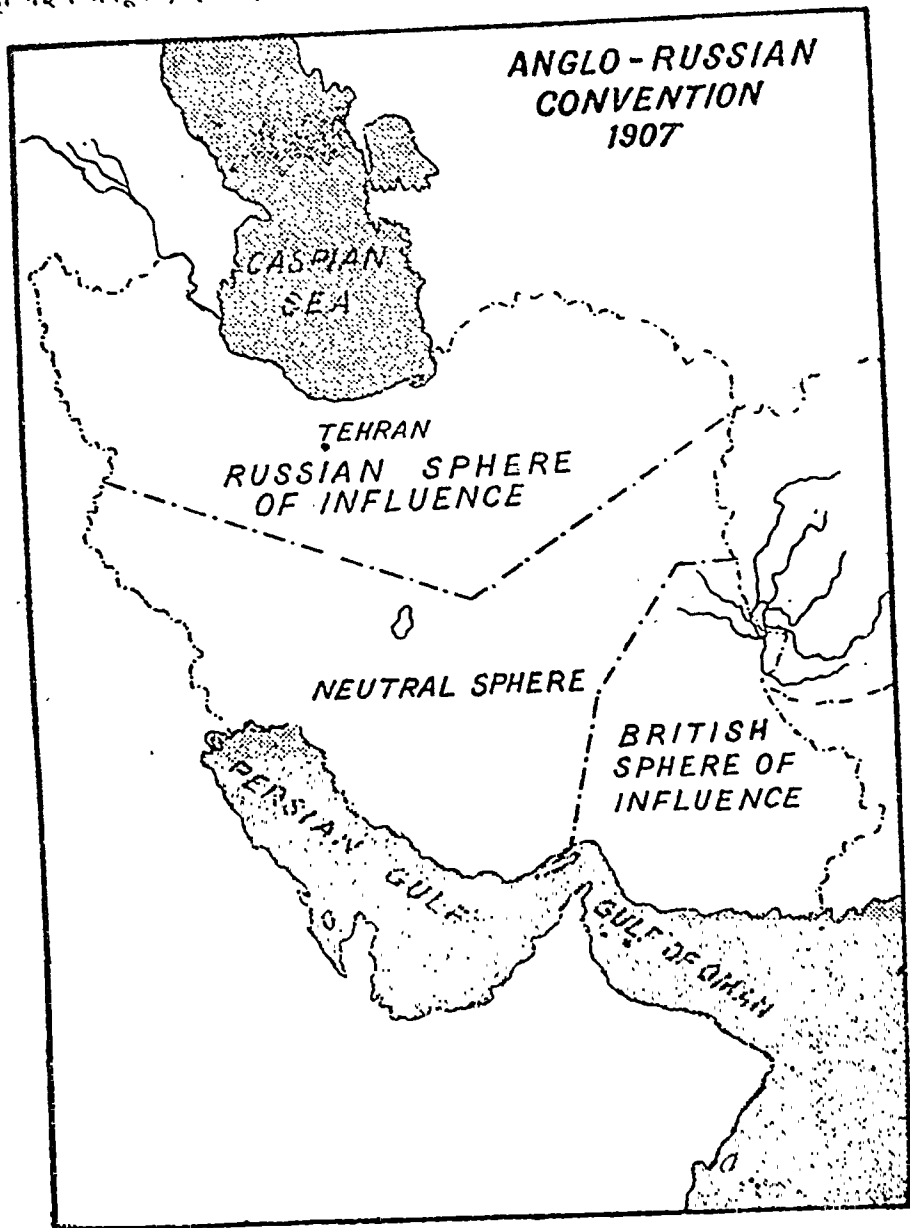
रूस ईरान को प्रभाव-क्षेत्रों में विभाजित करने के विरुद्ध था किन्तु इंग्लैण्ड के हठ के कारण उसे झुकना पड़ा। मार्च, १९०७ में रूस का समुद्री बेड़ा पोर्ट्समाउथ पहुँचा। ब्रिटेन की सरकार के निमन्त्रण पर रूसी अधिकारियों और समुद्री सेना के अधि-

कारियों का एक शिष्टमण्डल लन्दन गया और वहाँ समुद्री सेना के सेनापति का अतिथि बना। प्रीतिभोज के पश्चात् नृत्य समारोह, जिसमें सर जॉन फिशर, जो समुद्री सेना का सर्वोच्च शासक था और सर एडवर्ड ग्रे भी उपस्थित हुए। यह एक असाधारण बात थी।

कुछ कठिनाइयों के कारण बात-चीत में बाधा पड़ गई थी। इंग्लैण्ड की उदार प्रजातन्त्रीय प्रणाली तथा रूस की कठोर निरंकुश राजशाही में समझौता करना बड़ा कठिन था। जार, रूसी प्रतिक्रियावादी और सैन्यवाद के समर्थक इंग्लैण्ड से समझौता करने के विरुद्ध थे, अतः इज़वोल्स्की को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा था। इंग्लैण्ड के उदारवादी समाचारपत्रों ने रूस के कार्यक्रम तथा जार के दमनशील और प्रतिक्रियावादी शासन की निन्दा तो की। फिर भी दोनों ओर से समझौते के सच्चे प्रयत्नों के कारण कठिनाइयों को पार कर लिया गया।

देरी का एक और भी कारण था कि इंग्लैण्ड जापान और रूस में मेल कराना चाहता था। यह धारणा थी कि चीन के मामले पर रूस और जापान में सन्तोषप्रद समझौता होना आवश्यक है। केवल रूस और इंग्लैण्ड की सन्धि से कोई लाभ नहीं होता था यदि ब्रिटेन के दो मित्र परस्पर झगड़ते रहें। ब्रिटेन की सरकार ने रूस और जापान का समझौता कराने में इतनी दिलचस्पी ली कि इन दोनों का समझौता ३१ अगस्त, १९०७ को इंग्लैण्ड-रूस सन्धि होने से पहले ही हो गया था।

१९०७ की रूस-इंग्लैण्ड सन्धि में तिब्बत, अफ़गानिस्तान और ईरान के विषय में समझौता हुआ। तिब्बत के सम्बन्ध में इंग्लैण्ड और रूस ने इस देश पर चीन के आधिपत्य को स्वीकार किया और यहाँ के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप तथा विशेष सुविधाएँ प्राप्त न करने का निश्चय किया। रूसी भालू और इंग्लिश शेर के बीच लामाओं का देश दीवार बना दिया गया।

ईरान के विषय में इंग्लैण्ड और रूस में समझौता हुआ कि वे इस देश की प्रादेशिक अक्षुण्णता और स्वतन्त्रता का सम्मान करेंगे किन्तु साथ ही इस देश को तीन भागों में विभाजित भी कर दिया गया। उत्तर में रूस का तथा दक्षिण में इंग्लैण्ड का प्रभाव-क्षेत्र माना गया तथा इन दो क्षेत्रों के बीच के क्षेत्र में रूस और इंग्लैण्ड दोनों में से कोई भी सुविधाएँ प्राप्त नहीं करेगा। यह ध्यान में रखना चाहिए कि इस व्यवस्था के विषय में ईरान के बादशाह से परामर्श नहीं किया गया था। ईरान के बादशाह के साथ इस व्यवहार के विषय में इंग्लैण्ड की 'पञ्च' (Punch) पत्रिका ने एक व्यंग चित्र बनाया था जिसमें रूसी भालू और इंग्लिश शेर द्वारा एक दुःखी ईरानी बिल्ली को खाते हुए दिखाए गया था। शेर भालू से कह रहा था "देखो! तुम इसके सिर से खेल सकते हो और मैं इसकी पूँछ से खेलूँगा और हम दोनों ही इसकी कमर के बीच थप्पड़ लगा सकते हैं।" बिल्ली केवल इतना कह रही थी, "मुझे याद नहीं आता कि इस विषय में मुझसे भी पूछा गया हो।"

ग्रे के मतानुसार, इंग्लैण्ड ने रूस की अपेक्षा अधिक लाभदायक सौदा किया था। उसके शब्दों में, "हमें इस समझौते से जो प्राप्त हुआ वह वास्तविक था और

जो रूस ने प्राप्त किया वह केवल दिखावा है।" किन्तु प्रो० फे इस विचार से सहमत नहीं है। उसके विचार में रूस को ही लाभ हुआ। इंग्लैण्ड को नहीं। यद्यपि इंग्लैण्ड को भारतवर्ष की सीमा की ओर से शान्ति मिल गई थी किन्तु अन्य देशों में उसे हानि ही हुई थी। ईरान में उसकी कार्य करने की स्वतन्त्रता समाप्त हो गई और ग्रे के अनेक बार विरोध करने पर भी वह इस देश में रूस की प्रगति को नहीं रोक सका था। एक बार तो वह त्यागपत्र देने को तैयार हो गया था। इंग्लैण्ड के जर्मनी से भयभीत होने तथा रूस पर निर्भर होने के कारण, रूस ने अनुचित लाभ उठाया। साज़ोनोव (Sazonov) ने रूस के रुख की संक्षेप में इस प्रकार व्याख्या की है "लन्दन का मन्त्रिमण्डल १९०७ के इंग्लैण्ड-रूस समझौते को इंग्लैण्ड के एशियाई स्वार्थों के कारण महत्त्वपूर्ण मानता है, किन्तु यूरोप में इंग्लैण्ड की नीति के दृष्टिकोण से इस सन्धि का महत्त्व और भी बड़ा है। इंग्लैण्ड यूरोप में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति में लगा है और इसलिए आवश्यकता पड़ने पर यह एशिया में अपने स्वार्थों का, इस समझौते को बनाए रखने के लिए, बलिदान कर सकता है। यह एक ऐसी स्थिति है, जिससे हम निश्चित रूप से लाभ उठा सकते हैं—उदाहरणतः ईरान में।"

प्रो० फ़े के मतानुसार, "यद्यपि इज़वोल्स्की (Izvolsky) को आशा थी कि त्रिमुखी मैत्री हो जाने पर निकट पूर्व और मध्य पूर्व के देशों में उसे कार्य की अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाएगी, तथा फ्रांसीसी भी इस सन्धि का मोरक्को के विषय में यही आशय समझते थे, तथापि जहाँ तक इंग्लैण्ड का सम्बन्ध है उसका उद्देश्य शक्ति संतुलन द्वारा शान्ति की स्थापना करना था। यह जर्मनी के सम्भावित आक्रमण के विरुद्ध एक रोक थी, यूरोप में जर्मनी की वर्तमान स्थिति तथा व्यापारिक क्षेत्र में उसके विरुद्ध आक्रमण करने की योजना नहीं थी। किन्तु जर्मनी इस सन्धि को बड़ी दुर्भावना और कटुता की दृष्टि से देखता था।"

यद्यपि इंग्लैण्ड-रूस सन्धि की शर्तें सार्वजनिक रूप में प्रकट कर दी गई थीं और दोनों पक्षों ने कोई सैनिक सहायता का आश्वासन नहीं दिया था, तथापि कालान्तर में दोनों देश परस्पर निकट आ गए। दोनों ने अनुभव किया कि जर्मनी से इतना बड़ा भय था कि दोनों देश अपने छोटे-छोटे मतभेद भूल गए। इस मैत्री सन्धि के कारण ही १९१४-१८ के युद्ध में रूस और इंग्लैण्ड फ्रांस की ओर से लड़े थे।

जर्मनी का घेरा (Encirclement of Germany)—मैत्री सन्धि की शक्तियों (Entente Powers) द्वारा जर्मनी पर किए-जाने-वाले घेरे का वर्णन आवश्यक है। यह सर्वविख्यात है कि बिस्मार्क के समय जर्मनी यूरोप का भाग्यविधाता था किन्तु १८९० में उसके त्यागपत्र के पश्चात् परिस्थिति में परिवर्तन आ गया। एक समय था जब इंग्लैण्ड जर्मनी से सन्धि करने को उत्सुक था किन्तु १९०१ में जब विलियम ने जर्मनी और इंग्लैण्ड की सन्धि के प्रस्ताव को टाल दिया, तो परिस्थिति बदल गई। इसके बाद ही इंग्लैण्ड ने १९०२ में जापान से सन्धि कर ली। १९०४ में फ्रांस से मैत्री सन्धि हुई। १९०७ के समझौते से रूस और इंग्लैण्ड परस्पर निकट आ गए

थे। ब्रिटिश सरकार की सद्भावना से जापान और रूस के झगड़े भी शान्ति से निपटा दिए गए।

जर्मनी को एक नई परिस्थिति का सामना करना पड़ा। उसे अनुभव हुआ कि इंग्लैण्ड ने अपनी स्थिति को इतना बलवान बना लिया है कि अपेक्षाकृत जर्मनी की स्थिति उससे निर्बल हो गई है। यद्यपि प्रकट रूप से उसने घबराहट नहीं दिखाई किन्तु आन्तरिक रूप से उसे अनुभव हो रहा था कि त्रिमुखी मैत्री सन्धि (Triple Entente) के आर्थिक, सैनिक और समुद्री साधन त्रिमुखी सन्धि (Triple Alliance) के साधनों से विशेष रूप से उच्च और अधिक थे। जर्मनी को अनुभव हुआ कि मैत्री सन्धि की शक्तियों ने चारों ओर से उसकी प्रगति को अवरुद्ध कर दिया है। ऐलसेस लोरेन, मोरक्को, समुद्री बेड़े की प्रतियोगिता, बर्लिन-बगदाद रेलमार्ग इत्यादि के विषयों पर मैत्री सन्धि का कोई-न-कोई सदस्य जर्मनी का विरोध करता था। बलकान के मामले में भी रूस और आस्ट्रिया में आधिपत्य के लिए झगड़ा चल रहा था और आस्ट्रिया के युद्ध में फँस जाने की स्थिति में जर्मनी का युद्ध में घसीटा जाना स्वाभाविक था। इस प्रकार की स्थिति में जर्मनी के लिए दो ही मार्ग थे कि वह आत्म-समर्पण कर दे या युद्ध करे और दोनों ही मार्ग सुखद नहीं थे। यद्यपि रूस और इंग्लैण्ड दोनों ने ही स्पष्ट रूप से कहा था कि १९०७ का समझौता जर्मनी के विरुद्ध नहीं है, तो भी जर्मनी को संतोष नहीं हुआ।

बर्लिन-बग़दाद रेलमार्ग (Berlin-Baghdad Railway) के प्रश्न पर कटुता और भी गहरी हो गई थी। रूस इस योजना का राजनीतिक, आर्थिक और सामरिक कारणों से विरोध करता था। डेलकासी रूस से मैत्री होने के कारण विरोध करता था। उसने तो पेरिस के सट्टे बाज़ार के दर और भावों में बग़दाद रेलवे के हिस्सों के दामों का उल्लेख भी बन्द कर दिया था। ब्रिटिश सरकार इस योजना का इसलिए विरोध करती थी कि इससे मेसोपोटेमिया और ईरान की खाड़ी में इसके स्वार्थों पर बुरा प्रभाव पड़ता था, इससे उसके भारतवर्ष के साम्राज्य को भी खतरा उत्पन्न हो जाता था। जर्मनी १९०४ में इस योजना का एक भाग पूर्ण कर चुका था और मैत्री सन्धि की शक्तियों (Entente Powers) के विरोध के कारण इसकी प्रगति रुक गई थी। जर्मनी मोरक्को पर अपना दावा छोड़ने के लिए तैयार था यदि फ्रांस उसकी बग़दाद रेलमार्ग योजना का समर्थन करने लिए तैयार हो। फ्रांस ने समर्थन करने से इन्कार कर दिया। ब्रिटिश सरकार ने कहा कि या तो इस योजना का अन्तर्राष्ट्रीय-करण (Internationalisation) कर दिया जाए या बग़दाद से फारस की खाड़ी तक का भाग ब्रिटेन के नियन्त्रण में कर दिया जाए। जर्मनी इंग्लैण्ड की इस माँग को स्वीकार नहीं कर सकता था अतः कटुता बढ़ती चली गई। जर्मनी और इंग्लैण्ड में समुद्री बेड़े की उन्नति के विषय पर होड़ के कारण सर जॉन फिशर को 'बड़ी कठोर और खेदहीन' नीति अपनाने को विवश होना पड़ा। ब्रिटेन अपनी समुद्री सेना की शक्ति को सर्वोपरि रखने के लिए जितना दृढ़-प्रतिज्ञ था उतना ही इस विषय में विलियम द्वितीय ब्रिटेन को पराजित करने लिए दृढ़-संकल्प था। समझौते की

कोई सम्भावना नहीं थी जैसा कि विलियम द्वितीय के कथन से पूर्णतः स्पष्ट होता है कि, "काउन्ट मेटरनिक को यह सूचना अवश्य ही दे देनी चाहिए कि जर्मनी की समुद्री सेना की उन्नति के मूल्य पर इंग्लैंण्ड से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करना मुझे स्वीकार नहीं है। यदि इंग्लैण्ड कृपा करके अपना मैत्री का हाथ इस भावना से बढ़ाता है कि हम अपने समुद्री बेड़े को सीमित रखें, तो यह उसकी असीम उद्दण्डता है और जर्मन जाति तथा उनके काइजर का भारी अपमान है। राजदूत को इसे बिल्कुल नहीं मानना चाहिए। फ्रांस और रूस भी इसी आधार पर हमारी स्थल सेना की शक्ति को सीमित करने की माँग कर सकते हैं। जर्मनी का बेड़ा किसी के विरुद्ध नहीं बनाया जा रहा है—इंग्लैण्ड के विरुद्ध तो बिलकुल नहीं, अपितु इसे हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बनाया जा रहा है। यह समुद्री बेड़े के नियमों (Navy Act) में है और पिछले ११ वर्षों से यह नियम बदला नहीं गया है। हम इस नियम का अक्षरशः पालन करेंगे, भले ही यह ब्रिटेन को बुरा लगे, हमें इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि उन्हें युद्ध की इच्छा है तो वे आरम्भ करें, हमें इससे बिलकुल भय नहीं है।" जर्मनी के सेनाध्यक्षों के सम्मुख एक भाषण में काइज़र ने अपनी हार्दिक इच्छा प्रकट करते हुए कहा था, "एक शक्तिशाली समुद्री बेड़ा, एक शक्तिशाली स्थल सेना और सूखा हुआ बारूद हमारी आकांक्षा है।"

विलियम द्वितीय स्वयं जर्मनी को संसार की सबसे बड़ी शक्तिशाली शक्ति बनाने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ था। किन्तु उसका उद्देश्य ब्रिटेन और उसके साथियों को परास्त करके ही पूरा हो सकता था। विलियम द्वितीय 'विश्व प्रभुत्व अथवा पतन' (World Power or Downfall) की नीति में विश्वास करता था तथा अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सब कुछ करने को तैयार था। विलियम द्वितीय की इस नीति के कारण यदि उसके द्वारा पीड़ित राष्ट्रों ने सामूहिक विरोध तथा सुरक्षा का प्रबन्ध किया तो उसे इस विषय में रुष्ट नहीं होना चाहिए था। वास्तव में जर्मनी पर 'घेरा डालने' वाली कोई बात नहीं थी। तथ्य यह था कि विलियम द्वितीय की धारणा थी कि उसकी महत्त्वाकाक्षांओं की पूर्ति के मार्ग में मैत्री-सन्धि के सदस्य राष्ट्र (Entente Powers) बाधाएँ उपस्थित कर रहे हैं। इस विषय में प्रो० फ़े (Fay) ने कहा है कि, "बग़दाद रेलमार्ग योजना का इंग्लैण्ड द्वारा विरोध करना, जर्मनी की जल-सेना की उन्नति को सीमित करने के प्रयत्न का जर्मनी पर प्रभाव, तथा रूस, फ्रांस और इंग्लैण्ड का त्रिमुखी मैत्री सन्धि में संगठित होने के कारण जर्मनी में यह दृढ़ धारणा बन गई कि जर्मनी को चारों ओर से घेरा जा रहा है। जर्मनी का विश्वास था कि यह घेरा एडवर्ड सप्तम की व्यक्तिगत योजना थी और इसका उद्देश्य जर्मनी के व्यापारिक और औपनिवेशिक प्रसार का गला घोंटना तथा जर्मनी की सैनिक और राजनीतिक स्थिति पर आक्रमण करना भी था। ये सब धारणाएँ जर्मनी की कल्पना, भय और संदेह की उपज थीं।

त्रिमुखी सन्धि तथा त्रिमुखी मैत्री सन्धि की प्रतिद्वन्द्विता (Rivalry between Triple Alliance and Triple Entente)—१९०७ से १९१४ की अवधि में त्रिमुखी सन्धि (Triple Alliance) तथा त्रिमुखी मैत्री सन्धि (Triple

Entente) के सदस्यों में घोर प्रतिद्वन्द्विता थी। जर्मनी त्रिमुखी सन्धि को शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न कर रहा था और पॉएनकेयर (Poincare) त्रिमुखी मैत्री सन्धि को ठोस तथा शक्तिशाली बनाने में जुटा हुआ था तथा अन्त में पॉएनकेयर को ही अधिक सफलता मिली। यद्यपि त्रिमुखी सन्धि की १९०७ और १९१२ में पुनरावृत्ति (Renewal) हुई तथापि अनेक कारणों से यह संगठन क्रमशः दुर्बल होता चला गया। स्वयं आस्ट्रिया में ही आन्तरिक झगड़े चल रहे थे। वह बलकान की कूटनीति में भी बहुत उलझा हुआ था। 'स्वतन्त्रताहीन इटली' (Unredeemed Italy) के कारण आस्ट्रिया और इटली में अविश्वास था। आस्ट्रिया के आधिपत्य में इटली की भाषा बोलने वाली जनता को स्वतन्त्र कराने के लिए इटली संघर्ष कर रहा था। आस्ट्रिया इटली की इच्छा-पूर्ति के लिए तैयार नहीं था अतः दोनों में हार्दिक सहयोग भी नहीं था। आस्ट्रिया और इटली बलकान में विरोधी थे और दोनों ही ऐड्रियाटिक समुद्र पर आधिपत्य जमाने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ थे। इन सब कारणों से त्रिमुखी सन्धि की क्रियात्मक प्रभावशीलता घट गई थी। इटली ने १९०२ में फ्रांस से तथा १९०९ में रूस से सन्धि कर ली थी। ऐलजिकिरास सम्मेलन के अवसर पर उसने फ्रांस के पक्ष में तथा जर्मनी के विरुद्ध मतदान दिया।

दूसरी ओर त्रिमुखी मैत्री सन्धि (Triple Entente) सक्रिय रूप से बलशाली थी। सदस्य राष्ट्रों के मतभेद सुलझाए जा चुके थे। पुनश्च, विशाल स्वार्थों और हितों के लिए वे छोटी-छोटी समस्याओं पर ध्यान नहीं देते थे। इंग्लैण्ड और फ्रांस तथा रूस और फ्रांस के बीच स्थल और जल सेना सम्बन्धी वार्ताओं से तीनों देशों के सामरिक साधन (strategic resources) संग्रहीत हो चुके थे। मैत्री सन्धि के सदस्य परस्पर किसी भी प्रकार का सन्देह या अविश्वास न होने देने के लिए सर्वदा सचेत रहते थे। ग्रे हॉलडेन शिष्टमण्डल की असफलता को, फ्रांस में अविश्वास पैदा करने की अपेक्षा, अधिक अच्छा मानता था। मोरक्को के प्रश्न पर उसने फ्रांस की हार्दिक सहायता की और वह इस विषय में फ्रांस की ओर से जर्मनी से युद्ध तक करने को तैयार था।

यूरोप दो सशस्त्र गुटों में विभाजित हो गया था। एक गुट में त्रिमुखी सन्धि के राष्ट्र थे और दूसरे गुट में त्रिमुखी मैत्री सन्धि के राष्ट्र थे। प्रत्येक पक्ष अपने गुट में सन्देह, अविश्वास और तनाव को मिटाने तथा गुट में सद्भावना, संगठन और सुरक्षा की उन्नति के लिए प्रयत्नशील था। कभी-कभी एक साथी दूसरे साथी को 'कोरे चैक' दिया करते थे। कभी-कभी संगठन के प्रति कर्त्तव्यों की पूर्ण सम्पन्नता का आश्वासन दिया करते थे। आस्ट्रिया के विदेश-मन्त्री बर्चटोल्ड (Berchtold) ने १९१३ में जर्मनी के सम्राट् विलियम द्वितीय से भेंट का उल्लेख करते हुए लिखा "डेढ़ घण्टे की भेंट में जब भी तथा जितनी बार भी अवसर मिला और मित्र होने के नाते हमारे सम्बन्धों की चर्चा हुई, सम्राट् ने प्रत्येक अवसर पर मुझे यह आश्वासन दिलाने की चेष्टा की कि हम उसकी सहायता पर पूर्णतः निर्भर रह सकते हैं। यह

लाल धागा सम्राट् की सारी बातचीत में पिरोया हुआ था। सम्राट् ने यह कहकर मेरा सम्मान किया कि विग्राना के विदेश-मन्त्रालय का प्रत्येक सन्देश मेरे लिए आज्ञा है।" सहयोगी राष्ट्र क्रमशः परस्पर अधिकाधिक निर्भर रहने लगे थे। स्थल और जल सेना के शस्त्रों के उत्पादन की होड़ लगी हुई थी। इससे भय और आशंका की वृद्धि हुई तथा इस भय और आशंका से शस्त्रों का उत्पादन और भी बढ़ा। प्रो० श्मिट (Schmitt) के शब्दों में, "१९०७ में त्रिमुखी सन्धि और त्रिमुखी मैत्री सन्धि के सदस्य बराबर खड़े थे, किन्तु १९१४ में ये एक दूसरे के सम्मुख डटे हुए थे।" ग्रान्ट और टैम्परले का विचार है, "इस अन्तर्राष्ट्रीय रोक और सन्तुलन की अद्भुत व्यवस्था से बहुत समय तक लोगों में शान्ति बनी रही, किन्तु इसके अस्तित्व से ही संघर्ष का भय बना रहता था। क्योंकि यह व्यवस्था प्रतिद्वन्द्वी गुटों की थी, सार्वजनिक तथा सार्वभौमिक नहीं थी। जैसे ही एक गुट शक्तिशाली बन कर उन्नति करता इसके आँचल से बाहर वाले राष्ट्रों में तीव्रता से स्वतः ही इसका सन्तुलन पूरा करने की गतिविधियाँ बढ़ जाया करती थीं। प्रतियोगिता करने वाले गुटों ने टक्कर के शस्त्रास्त्र बनाए और घृणा और भय का भाव इन दोनों गुटों को युद्धक्षेत्र में ले गया।" स्पैण्डर (J. A. Spender) के मतानुसार, "जिस अवस्था को यूरोप पहुँच गया था वह अर्ध अन्तर्राष्ट्रीयता की थी जिसने विभिन्न राष्ट्रों को दो गुटों में संगठित कर दिया था किन्तु इन दोनों के बीच जोड़ने वाला पुल नहीं था। युद्ध और शान्ति के हित में इससे बुरी परिस्थिति और नहीं हो सकती थी। यह सन्तुलन इतना नाजुक था कि हवा का एक हल्का-सा झोंका इसे नष्ट कर सकता था।" लार्ड ऑक्सफ़ोर्ड के मतानुसार, "हम बहुधा इस विषय में जागरूक रहते थे कि हम बर्फ़ की बहुत पतली परत पर दौड़ रहे हैं और यूरोप की शान्ति न देखी जा सकने वाली तथा अदृश्य दुर्घटनाओं के क्रम पर निर्भर है।" यह अदृश्य दुर्घटना २४ जून, १९१४ को सर्विया के लोगों द्वारा आर्क ड्यूक फ्रांसिस फर्डिनैण्ड की हत्या थी, जिसके कारण प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ।

Suggested Readings

Brandenberg : *From Bismarck to the World War, 1927.*
Coolidge, A. C. : *The Origins of the Triple Alliance.*
Dickinson, G. Lowes : *The International Anarchy (1904-14), 1926.*
Fay : *Origins of the World War.*
Gooch, G. P. : *Franco-German Relations, 1871-1914.*
Gooch, G. P. : *History of Modern Europe (1878-1919).*
Gooch, G. P. : *Recent Revolutions on Europeon Diplomacy.*
Grey, Lord : *Twenty-Five Years.*
Langer, W. L. : *Diplomacy of Imperialism (1890-1902).*
Langer, W. L. : *The Franco-Russian Alliance.*
Lippmann : *Stakes of Diplomacy.*
Mansergh, N. : *The Coming of the First World War (1878-1914), 1949.*

Michon, G. : *The Franco-Russian Alliance (1891-1917), 1929.*
Renouvin, P. : *The Immediate Origins of the War, 1928.*
Rohrbach : *Germany's Isolation, 1915.*
Sontag, R. J. : *Europeon Diplomatic History (1871-1932) 1933.*
Spender, J. A. : *Fifty Years of Europe, 1936.*
Taylor, A. J. P. : *The Struggle for Mastery in Europe (1848-1918), 1954.*

अध्याय ३२

प्रथम विश्वयुद्ध (१६१४-१८)

(The World War I—1914-18)

युद्ध के कारण (Causes of the War)—(१) प्रथम विश्वयुद्ध के अनेक कारण थे और सबसे महत्त्वपूर्ण कारण था गुप्त सन्धियां (Secret Alliances)। १६१४ से पहले यूरोप दो सशस्त्र गुटों में विभक्त था। १८७६ में जर्मनी ने आस्ट्रिया से सन्धि की थी। १८८२ में इटली आस्ट्रिया-जर्मनी के गुट में सम्मिलित हो गया और इसे त्रिमुखी सन्धि (Triple Alliance) के नाम से पुकारा जाने लगा। बिस्मार्क के प्रयत्नों के कारण फ्रांस और रूस में सन्धि नहीं हो सकी थी। किन्तु उसके त्यागपत्र के पश्चात् जर्मनी रूस की उपेक्षा करने लगा, परिणामस्वरूप रूस का रुख फ्रांस की ओर झुकने लगा। अन्य भी कई कारणों से दोनों देश परस्पर निकट आये। इस प्रकार १८१४ में फ्रांस और रूस की सन्धि हुई। कुछ समय तक घटनाचक्र यों ही चलता रहा।

यद्यपि उन्नसीवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड 'शानदार निष्पक्षता' (Splendid Isolation) की नीति का अनुसरण करता रहा किन्तु उसे अनुभव होने लगा कि वह मित्रहीन है और इसे अपनी इस अवस्था से भय होने लगा। आरम्भ में उसने जर्मनी से सन्धि करने का प्रयत्न किया किन्तु जब वह इसमें असफल रहा तो उसने १६०२ में जापान से सन्धि कर ली। १६०४ में इंग्लैण्ड और फ्रांस में मैत्री सन्धि (Entente Cordiale) हुई। जब १६०७ में इंग्लैण्ड ने रूस से एक समझौता किया तो त्रिमुखी मैत्री सन्धि (Triple Entente) का जन्म हुआ। जर्मनी ने तुर्की को अपनी ओर मिला लिया था। इस प्रकार यूरोप दो गुटों में बँट गया था—एक दल में, इंग्लैण्ड, फ्रांस, रूस और जापान थे और दूसरे दल में जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी, तुर्की और इटली थे। इन दलों में केवल ईर्ष्या ही नहीं अपितु शत्रुता भी थी। गुप्त सन्धियों की नीति द्वारा जाग्रत की हुई परस्पर घृणा के कारण ही अन्त में १६१४ का विश्वयुद्ध हुआ। गुप्त सन्धियों के परिणामस्वरूप इस युद्ध के होने में उनके महत्त्व के विषय में कहा जा सकता है कि, "यह केवल गुप्त सन्धि प्रणाली का परिणाम था जो आधुनिक युग के लिए महाभिशाप है।"

(२) युद्ध का दूसरा कारण था सैन्यवाद (Militarism)। सैन्यवाद का अर्थ है बहुसंख्यक सेनाओं का भयानक और बोझिल यंत्र जिसमें विशाल जहाजी बेड़ा और गुप्तचर व्यवस्था भी सम्मिलित थी। इसका अर्थ मुख्य सेनाध्यक्ष के नेतृत्व में शक्तिशाली स्थल और जल-सेना के अधिकारियों का एक विशेष वर्ग भी है। "यही लोग थे जो अनेक देशों के भाग्यविधाता बने हुए थे, विशेषतः कठिन परिस्थितियों में

महान् शक्तियों की स्थल और जल सेना के शस्त्र प्रत्येक वर्ष बढ़ते जा रहे थे। इन विशाल शस्त्रागारों को सुरक्षा और शान्ति रक्षा के लिए बनाया जा रहा बताया जाता था। वे सुरक्षा की भावना को बनाने वाले थे। किन्तु इनका वास्तविक परिणाम हुआ राष्ट्रों में भय, अविश्वास और घृणा की उत्पत्ति। यह तथ्य इंग्लैण्ड
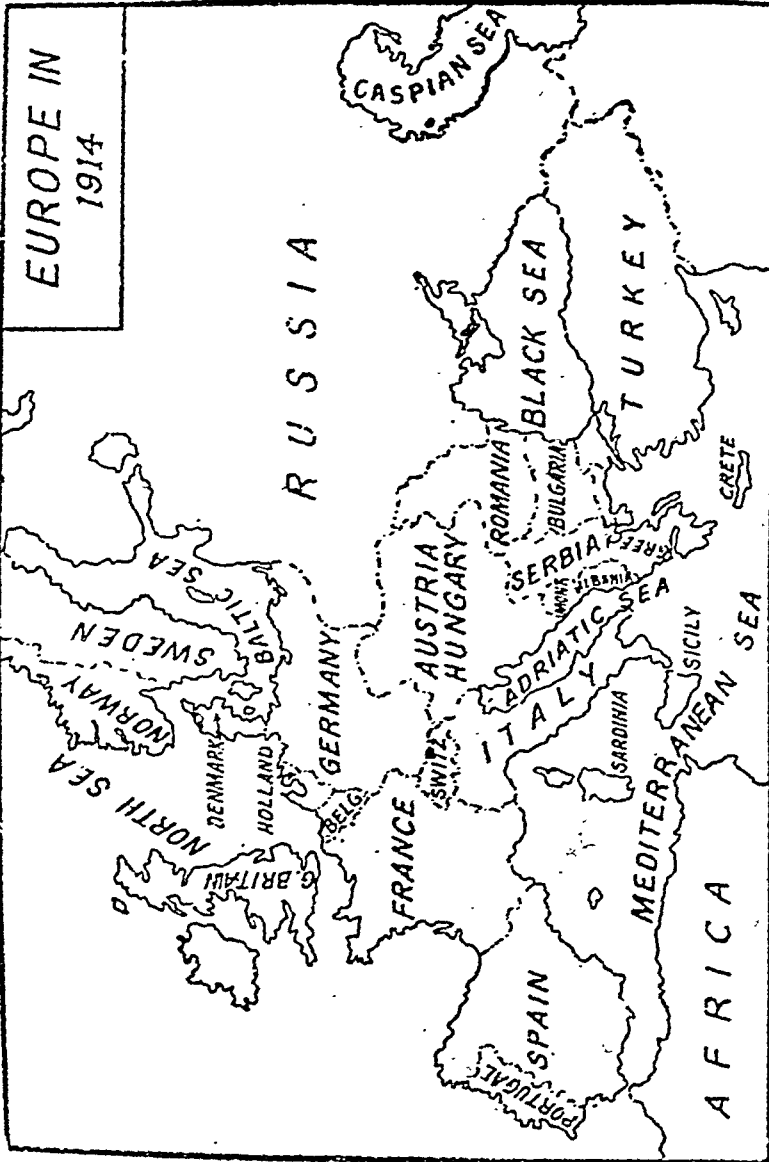
और जर्मनी की पारस्परिक जहाजी बेड़े की प्रतियोगिता (Naval Competition) से पर्याप्त रूप से स्पष्ट हो जाता है।

(३) संकुचित राष्ट्रवाद (Narrow Nationalism) या प्रतियोगितापूर्ण देशभक्ति (Competitive Patriotism) भी एक कारण था। अपने देश की भक्ति के कारण दूसरों से घृणा की जाती थी। जर्मनी के प्रति प्रेम का अर्थ था फ्रांस से घृणा करना और यही फ्रांस का जर्मनी के प्रति व्यवहार था। सर्बिया में कट्टर देशभक्ति की भावना थी जिसके कारण आस्ट्रिया-हंगरी से उसकी कटुता बढ़ गई थी। इस घृणा के कारण ही १६१४ में आस्ट्रिया-हंगरी के राज्य के उत्तराधिकारी आर्क ड्यूक फर्डिनैण्ड की हत्या कर दी गई थी।

(४) आर्थिक साम्राज्यवाद (Economic Imperialism) भी युद्ध का कारण था। आर्थिक साम्राज्यवाद के कारण देशों में प्रतिद्वन्द्विता बढ़ी। प्रत्येक देश संसार के हर कोने में मण्डियाँ (Markets) हथियाना चाहता था। इससे कटुता और ईर्ष्या बढ़ी। अन्य देशों पर अपना संरक्षण और प्रभाव-क्षेत्र बढ़ाने के कारण भी देशों में परस्पर वैमनस्य बढ़ा। जब जर्मनी ने इंग्लैण्ड की मण्डियों पर अधिकार करना चाहा तो दोनों देशों के सम्बन्ध कटु हो गए। ब्रिटेन अपने उपनिवेश, संरक्षित राज्य, प्रभाव-क्षेत्र तथा मण्डियाँ जर्मनी को प्रसन्न करने के लिए नहीं छोड़ना चाहता था। जर्मनी इन्हें किसी भी मूल्य पर प्राप्त करना चाहता था इसलिए युद्ध हुआ। अनेक देशों में परस्पर चुंगी (Tariff) के विषय पर संघर्ष चल रहा था। इस तनाव के कारण भी पारस्परिक सम्बन्ध बिगड़ गए थे।

(५) समाचारपत्रों द्वारा जनमत को विषाक्त कर देना भी युद्ध का कारण बना। बहुधा सारे देशों के समाचारपत्र अन्य देशों की स्थिति का झूठा वर्णन करके देशवासियों की राष्ट्रीय भावनाओं को भड़काने का प्रयत्न किया करते थे। राजदूत तथा मन्त्री बहुधा इस बात को स्वीकार करते थे कि उनके देश के समाचारपत्रों का रुख ठीक नहीं है। वे दुःख प्रकट करते हुए कहा करते थे कि यदि दूसरा देश अपने समाचारपत्रों पर प्रतिबन्ध लगा दे तो वे भी अपने देश में इन प्रतिबन्धों को लगा देंगे। दोनों देशों के समाचारपत्र किसी विवाद-ग्रस्त विषय को लेकर इतनी अतिशयोक्ति करते थे कि जब तक पूर्ण रूप से एक समाचारपत्रों का युद्ध आरम्भ न हो जाए वे एक-दूसरे पर आरोप लगाते रहा करते थे। बिस्मार्क के शब्दों में, "प्रत्येक देश को किसी-न-किसी समय उसके समाचारपत्रों द्वारा तोड़ी गई खिड़कियों के लिए हिसाब देना पड़ता है और इस हिसाब का भुगतान दो देशों में एक दूसरे के प्रति वैमनस्य के रूप में किया जाता है।"

(६) जर्मनी के सम्राट् विलियम द्वितीय का चरित्र भी युद्ध का एक कारण था। वह बहुत उद्दण्ड और क्रोधी स्वभाव का व्यक्ति था। वह अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी भी था। उसकी नीति थी 'विश्व प्रभुत्व या सर्वनाश'। वह अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में किसी से भी कोई समझौता करने के लिए तैयार नहीं था। वह हर मामले में अपनी मर्जी पूरी करना चाहता था। इंग्लैण्ड निवासियों के चरित्र को वह अत्यन्त निम्न-कोटि का मानता था। उसकी धारणा थी कि इंग्लैण्ड उसकी सब माँगों को मान लेगा और उससे युद्ध नहीं करेगा। वह इंग्लिश राष्ट्र के चरित्र के विषय में भ्रम में था। ब्रिटेन की शान्ति बनाए रखने की इच्छा उसकी कायरता या कमज़ोरी नहीं थी।

ब्रिटिश जनता के चरित्र के विषय में उसका भ्रम ही इंग्लैण्ड के प्रति उसके रुख के लिए उत्तरदायी था और यही त्रुटि अन्त में उसके नाश का कारण बनी थी।

(७) युद्ध का एक कारण यह भी था कि फ्रांस की जनता १८७१ के युद्ध में जर्मनी द्वारा छीने गए ऐलसेस-लोरेन (Alsace-Lorraine) के प्रदेश को पुनः प्राप्त करना चाहती थी। फ्रांस के तृतीय प्रजातन्त्र की सरकार ने इन दो प्रदेशों को पुनः प्राप्त करने की आशा में जनता की प्रतिशोध की भावना को भड़काया। पेरिस के 'प्लेस डीला कोनकोर्ड' में खड़ी स्ट्रासबर्ग की मूर्ति उन्हें सर्वदा उनके खोए हुए प्रान्तों की याद दिलाती रहती थी। डॉडे (Daudet) की कविता ('La derniere classe') फ्रांस के स्कूलों में पढ़ने वाले बालकों की आंखों में आंसू ला देती थी और उनके हृदयों में प्रतिशोध की भावना जाग्रत होती थी।

(८) युद्ध का एक कारण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को नियन्त्रण करने वाली व्यवस्था का अभाव था। बहुत से देशों के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में स्वेच्छाचारिता थी। सब कुछ गुप्त रखा जाता था और शेष जनता को कुछ भी पता नहीं होता था। यह भी सत्य है कि कूटनीति के गुप्त भेद मन्त्रिमण्डल के सारे सदस्यों को भी मालूम नहीं होते थे। अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों के विषय में विधान मण्डल (Legislative) को भी अज्ञान में रखा जाता था। यद्यपि सर एडवर्ड ग्रे ने १९०५ में फ्रांस और इंग्लैण्ड में सैनिक और नाविक बेड़े की सैनिक तैयारियों के विषय में वार्ता की अनुमति दे दी थी, मन्त्रिमण्डल को इस विषय में १९१२ में और संसद् (Parliament) को १९१४ में बताया गया था। गुप्त कूटनीति के कारण लोगों के मन में बड़ी आशंका रहती और इस कारण जनता हमेशा अन्धकार में रहती थी। गम्भीरता और लगन की अपेक्षा उत्तेजना फैल जाया करती थी। सारे यूरोप के विदेश-मन्त्रालयों (Foreign Offices) और चान्सलरियों (Chancellories) में चोरी, झूठ, घूस और भ्रष्टाचार का राज्य था।

(९) यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय कानून और सदाचार की संहिता (Code of international law and morality) थी, इन्हें लागू करने के लिए कोई शक्ति नहीं थी। १८९९ और १९०७ के हेग सम्मेलनों में अनेक प्रस्ताव स्वीकार हुए किन्तु सभी देश अपनी सुविधाओं के अनुसार ही इनका अनुसरण करते थे। प्रत्येक देश अपने को सर्वाधिकारसम्पन्न मानकर अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञाओं के प्रति अवहेलना का रुख अपनाया करता था। यद्यपि इटली त्रिमुखी सन्धि (Triple Alliance) का सदस्य था, उसने १९०२ में फ्रांस से और १९०९ में रूस से पृथक् सन्धियाँ कीं। वह विरोधी गुट के साथ भी गठबन्धन करने को तैयार था।

(१०) युद्ध का एक अन्य कारण यह भी था कि जर्मनी प्रशिया की भावना से ओत-प्रोत था। इस भावना के अनुसार, "जो सफल है वह कभी त्रुटिपूर्ण कार्य नहीं करता।" विजय का अर्थ सदाचार माना जाता था। प्रशिया की जनता को सिखाया गया था कि युद्ध ही संसार में सबसे अधिक युक्तियुक्त तथ्य है। मिरेबो (Mirabeau) के शब्दों में, "युद्ध प्रशिया का राष्ट्रीय उद्योग था।" ट्रिट्स्के (Treitsachke) के अनुसार, "राज्य का सबसे अधिक आध्यात्मिक कर्त्तव्य अपनी

शक्ति का ध्यान रखना है। सब राजनीतिक कमज़ोरियों में निर्बलता सबसे अधिक बुरी और घृणा योग्य है। राजनीति की पवित्र भावना के प्रति यह एक पाप है।" नीट्‌ज़श (Nietzsche) के शब्दों में, "तुम्हारे विचार से एक सत्कार्य के लिए युद्ध भी मान्य है किन्तु मेरे विचार से युद्ध सारे कार्यों को यश प्रदान करता है। पड़ोसियों में प्रेम की अपेक्षा युद्ध और साहस ने अधिक महान् कार्य किए हैं।" जर्मनी की युवा पीढ़ी को इन सिद्धान्तों का पाठ पढ़ाया गया था। डाहलमैन (Dahlmann), ड्रॉयसेन (Droysen), साइवेल (Sybel) और ट्रिट्स्के (Treitschke) जैसे महान् इतिहासज्ञों ने अपनी शक्ति और विद्वत्ता प्रशिया की प्रणाली को जर्मनी की जनता में कूट-कूट कर भर देने में लगा दी। वर्नहार्डी (Bernhardi) ने भी इसी प्रकार का प्रयास अपने ग्रन्थों में किया है। वर्नहार्डी के शब्दों में, "वह सब जो अन्य देशों ने शताब्दियों की स्वाभाविक प्रगति से प्राप्त किया है—अर्थात् राजनीतिक एकता, उपनिवेश, समुद्री शक्ति, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार—अभी तक हमारे राष्ट्र को नहीं मिला था। अब जो कुछ हम प्राप्त करना चाहते हैं, वह विरोधी स्वार्थों और शक्तियों के विरुद्ध लड़ कर जीतना पड़ेगा।" प्रो० लैम्प्रक्ट (Lamprecht) के अनुसार, "रक्तपात के पश्चात् विजय के द्वारा संसार के घाव जर्मनी की संस्कृति के प्रभाव से भर जाएँगे। ट्रिट्स्के (Treitschke) के शब्दों में, "जिस प्रकार जर्मनी की महत्ता जर्मनी पर प्रशिया द्वारा शासन में निहित है उसी प्रकार संसार की भलाई और महत्ता जर्मन संस्कृति, जर्मन बुद्धि, संक्षेप में जर्मन चरित्र में निहित है।"

(११) ट्रैण्टिनो (Trentino) के प्रदेश को, जो ट्रीस्ट (Trieste) की बन्दरगाह के पास था और जहाँ मुख्यतः इटली निवासी रहा करते थे और जो अभी तक आस्ट्रिया-हंगरी का भाग बना था उसे पुनः प्राप्त करने की इटली की इच्छा भी युद्ध का एक कारण थी। बहुधा 'परतन्त्र इटली' ('Italia Irredenta' or Unredeemed Italy) को मुक्त कराने के लिए प्रदर्शन हुआ करते थे जिनमें इटली के मन्त्रिमण्डल के सदस्य भी भाग लिया करते थे। ये प्रदर्शन एक प्रकार से युद्ध की ललकार थे और इस परिस्थिति में यूरोप में शान्ति नहीं रह सकती थी। इटली आस्ट्रिया से ऐड्रियाटिक समुद्र पर अधिकार करने में संघर्ष करने लगा था। आस्ट्रिया अपना मुकाबला नहीं चाहता था और इसलिए दोनों देशों के सम्बन्ध कटु होने स्वाभाविक ही थे।

(१२) युद्ध का कारण निकट पूर्व (Near East) की समस्या भी थी। अनेक परिस्थितियों के कारण बलकान में स्थिति जटिल हो गई थी। टर्की के कुशासन (misgovernment) के कारण बड़ा असन्तोष था। ग्रीस, बल्गारिया और सर्विया में और मैसेडोनिया पर जहाँ मिश्रित जनसंख्या थी, अधिकार करने के लिए परस्पर प्रतिद्वन्द्विता छिड़ी हुई थी। रूस को बलकान की राजनीति में बड़ी दिलचस्पी थी। १९०८-९ की बोसनिया की समस्या के समय रूस ने सर्विया की सहायता की थी। स्लाव जाति (The Slavs) के हितों की रक्षा की दृष्टि से पहले ही कठिन स्थिति थी, यह और भी भयंकर बन गई। आस्ट्रिया और जर्मनी के नारे, 'पूर्व की ओर बढ़ो' ने हालात और भी बिगाड़ दिए थे।

(१३) वोसनिया और हर्जीगोविना के प्रान्तों ने बलकान में दूसरा 'ऐलसेस-लोरेन' बना दिया था। १८७८ के बर्लिन सम्मेलन ने ये दोनों प्रान्त आस्ट्रिया-हंगरी को दे दिए थे। किन्तु उसे इन प्रान्तों को केवल-मात्र अधिकार में करके शासन करने का अधिकार दिया था, इन्हें अपने राज्य में मिला देने का अधिकार नहीं दिया गया था। इन पर सुलतान के अधिकार को मान्यता दी गई थी। किन्तु आस्ट्रिया-हंगरी ने १९०८ में अपनी इच्छा से ही बिना पूछे इन्हें अपने राज्य में मिला लिया। सर्विया ने इसके विरुद्ध बड़ा विरोध प्रकट किया था। इन प्रान्तों को आस्ट्रिया-हंगरी से पृथक् करके इन्हें सर्विया में मिला देने के लिए घोर आन्दोलन हुआ। वोसनिया और हर्जीगोविना की जनता सर्विया से मिल जाने की अपेक्षा आस्ट्रिया से अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने की अधिक इच्छुक थी किन्तु वे स्वतन्त्रता प्राप्त करने के संघर्ष में सर्विया की सहायता लेने को तैयार थे। १९०९ के पश्चात् बलकान में आस्ट्रिया और सर्विया में प्रतिद्वन्द्विता बढ़ गई और १९१४ में इसका विस्फोट युद्ध के रूप में हुआ।

(१४) युद्ध का तात्कालिक कारण (Immediate Cause)—आस्ट्रिया के सिंहासन के उत्तराधिकारी आर्क ड्यूक फर्डिनैण्ड की हत्या था। वास्तव में हुआ यह कि आस्ट्रिया-हंगरी और सर्विया में द्वन्द्व चल रहा था। १९०९ के पश्चात् यह और भी अधिक हो गया। १९१२-१३ की बलकान की लड़ाइयों (Balkan Wars) से सर्विया के क्षेत्र, जनसंख्या और साधनों में वृद्धि हुई थी। विजय से उसे घमण्ड हो गया था। १९०९ का अपमान उसे भूला नहीं था। स्लाव जाति को संगठित करने के लिए अनेक गुप्त संस्थाएँ बनाई गई थीं। 'काला हाथ' (Black Hand) और 'संगठन या मृत्यु' (Union or Death) इत्यादि नाम की संस्थाओं ने वोसनिया के गवर्नर ऑस्कर पोटियोरेक की हत्या करने की योजना बनाई। इन संस्थाओं का निशान "मुर्दे की खोपड़ी, एक के ऊपर दूसरी आड़ी हड्डियाँ, एक छुरा, एक बम और विष की एक बोतल" था। इसी समय पता लगा कि आर्क ड्यूक फ़र्डिनैण्ड वोसनिया जा रहा है और राज्यपाल के बदले उसकी हत्या की योजना बनाई गई। सर्विया की सरकार के उच्च पदाधिकारियों ने उन व्यक्तियों को, जिन्होंने हत्या करनी थी, हथियार, गोला बारूद और आदेश दिए थे। योजना के अनुसार आर्क ड्यूक और उसकी पत्नी २८ जून, १९१४ को वोसनिया के एक नगर सराजिवो गए। दुर्भाग्य से वह दिन सर्विया के लिए शोक मनाने का दिन था क्योंकि इसी दिन १३८९ में कोसोवो के युद्ध में तुर्की ने उन्हें पराजित किया था और इन्हें अपना दास बनाया था। जब शाही दल नगर के मुख्य भवन की ओर जा रहा था तो एक षड्यन्त्रकारी ने आर्क ड्यूक की मोटर पर बम फेंका। किसी प्रकार आर्क ड्यूक बच गया और अन्य लोग घायल हुए। अपराधी पकड़ा गया और जलूस नगर के अजायबघर की ओर बढ़ा। दुर्भाग्य से आर्क ड्यूक की मोटर गलती से दूसरे मार्ग पर चली गई और ड्राईवर ने इसे पीछे की ओर मोड़ा। इससे हत्या करने के लिए आए हुए दल के एक अन्य सदस्य को मौका मिल गया। उसने भीड़ से निकल कर बिल्कुल निकट आकर दो गोलियाँ चलाईं। परिणामतः आर्क ड्यूक और उसकी पत्नी मारे गए।

आस्ट्रिया-हंगरी पहले से ही सर्बिया से तंग था और उसने इस नवीन घटना से लाभ उठाकर उसे कुचल देने का निश्चय किया। जर्मनी ने आस्ट्रिया-हंगरी को सहायता का वचन दिया। उसने उसे कोई सलाह नहीं दी अपितु खुली छुट्टी (Blank cheque) दे दी। १ अगस्त, १९१४ को जर्मनी द्वारा प्रकाशित 'श्वेत पत्रिका' (White Book) में लिखा था, "आस्ट्रिया को स्पष्ट पता लग चुका था कि उसकी प्रतिष्ठा और राजशाही की सुरक्षा के लिए सीमा के पार इस आन्दोलन (सर्बिया के) को निठल्लेपन से देखते रहना उपयुक्त नहीं है। शाही सरकार ने जर्मनी को अपनी धारणा बताई और हमारी सम्मति पूछी। हम पूर्ण हृदय से अपने साथी द्वारा किए गए स्थिति के अध्ययन से सहमत हैं और प्रत्येक कार्य जो राजशाही की सुरक्षा के हित के लिए, सर्बिया के आन्दोलन को समाप्त करने के उद्देश्य से किया जाएगा, उसमें उसे हमारी अनुमति प्राप्त होगी।

"हम भली प्रकार समझते हैं कि आस्ट्रिया-हंगरी के सर्बिया के विरुद्ध युद्ध जैसे रुख के कारण रूस भी मैदान में आ सकता है। इससे हम अपने मित्र के प्रति कर्त्तव्य-पालन करते हुए युद्ध में भी फँस सकते हैं। किन्तु हम आस्ट्रिया-हंगरी के बहुमूल्य हितों का ध्यान करते हुए, जो इस समय अत्यन्त खतरे में पड़े हैं, अपने साथी को यह सलाह नहीं दे सकते कि वह अपने सम्मान को छोड़ कर झुक जाए और हम इस कठिन समय में उसे अपनी सहायता से भी वंचित नहीं कर सकते। सर्बिया के आन्दोलन से स्वयं हमारे हितों को भी खतरा है अतः हम ऐसा कभी भी नहीं कर सकते। यदि सर्ब लोग (The Serbs) फ्रांस और रूस की सहायता से आस्ट्रिया-हंगरी के अस्तित्व को खतरे में डालते रहे, तो आस्ट्रिया के क्रमशः पतन और अकेले रूस के राजदण्ड के नीचे स्लावों की दासता ही इसका परिणाम होगा। इससे ट्यूटानिक जाति (Teutonic race) की मध्य यूरोप में स्थिति अत्यन्त खतरे में पड़ जाएगी। रूस द्वारा स्लावों (Slavs) की सहायता करने के कारण और उसके दबाव के कारण हम निर्बल हुए आस्ट्रिया की मित्रता पर वैसा विश्वास नहीं रख सकेंगे जैसा कि अपने पूर्वी और पश्चिमी पड़ोसियों के वैमनस्यपूर्ण व्यवहार के कारण हमें रखना चाहिए। इसलिए हमने सर्बिया के मामले में आस्ट्रिया को इच्छानुसार जो भी कार्य वह चाहे करने की अनुमति दे दी है किन्तु हमने उसकी तैयारियों में सहयोग नहीं दिया है।"

आरम्भ में आस्ट्रिया स्थानीय युद्ध के पक्ष में था किन्तु क्रमशः परिस्थिति बहुत गम्भीर हो गई। यदि आस्ट्रिया सर्बिया को समाप्त करना चाहता था तो सर्बिया का भी आस्ट्रिया के प्रति वही रुख था। सर्बिया के अधिकारियों और समाचारपत्रों का रुख और भाषण नितान्त असहनीय थे। आस्ट्रिया ने सर्बिया को चुनौती (Ultimatum) भेजी। रूस के विदेशमन्त्री सोजोनोव ने रूस में सर्बिया के राजदूत से कहा कि, "रूस किसी भी हालत में सर्बिया पर आस्ट्रिया के आक्रमण को नहीं होने देगा।" इससे सर्बिया को सहारा मिला और उसने आस्ट्रिया की माँगों को पूर्णतः मानने से इन्कार कर दिया।

बहुत से देशों ने सर्बिया के उत्तर को उचित ही समझा। विलियम द्वितीय ने स्वयं ही कहा था कि उत्तर से युद्ध के सारे कारण समाप्त हो गए हैं। आस्ट्रिया को पंचफैसला (Arbitration) करने को कहा गया किन्तु ऐसा करने की अपेक्षा उसने २८ जुलाई, १९१४ को सर्बिया से लड़ाई छेड़ दी। सर्बिया ने स्वयं भी युद्ध का स्वागत किया और अपना उत्तर भेजने से पहिले ही उसने सार्वजनिक लामबन्दी (*General mobilization*) की आज्ञा दे दी थी।

ब्रिटेन और जर्मनी ने युद्ध को स्थानीय बनाने (Localising the War) का प्रयत्न किया किन्तु स्थिति उनके भी काबू से बाहर हो चुकी थी। २० जुलाई से २३ जुलाई, १९१४ तक फ्रांस का राष्ट्रपति रूस गया और उसने आस्ट्रिया के विरुद्ध फ्रांस की सहायता का वचन दिया। उसने कहा, "रूस की जनता में सर्बिया के बहुत से घनिष्ठ मित्र हैं किन्तु रूस का भी एक साथी है और वह है फ्रांस।"

जब रूस ने २३ जुलाई, १९१४ को सार्वजनिक लामबन्दी (general mobilization) की घोषणा की तो जर्मनी ने १२ घण्टे में सेना भंग करने (Demobilization) के लिए चुनौती (ultimatum) भेजी। रूस ने जर्मनी की चुनौती को ठुकरा दिया और जर्मनी ने रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। प्रो० फ़े (Fay) के मतानुसार, "जिस समय जर्मनी आस्ट्रिया को समझाने का प्रयत्न कर रहा था उस समय रूस की सार्वजनिक लामबन्दी ने समस्या को अत्यन्त जटिल बना दिया और जर्मनी को भी लामबन्दी और अन्त में युद्ध की घोषणा करने को विवश कर दिया।"

यद्यपि सर एडवर्ड ग्रे ने शान्ति बनाए रखने का प्रयत्न किया किन्तु उसने इसके लिए उपयुक्त मार्ग नहीं अपनाया। उसे स्पष्ट रूप से जर्मनी को बता देना चाहिए था कि यदि उसने फ्रांस या रूस पर आक्रमण किया तो ब्रिटेन उसके विरुद्ध युद्ध छेड़ देगा। सम्भवत: युद्ध रुक जाता। यदि ब्रिटेन ने रूस और फ्रांस को भी यह कहा होता कि उनके युद्ध पर उतारू होने की स्थिति में वह निष्पक्ष रहेगा तो भी युद्ध रुक जाता। किन्तु ग्रे ने इन दोनों मार्गों में से कोई-सा मार्ग भी नहीं अपनाया। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल में मतभेद के कारण उसने फ्रांस और रूस का पूरे मन से समर्थन नहीं किया। यद्यपि ग्रे कहा करता था कि ब्रिटेन किसी भी देश की सहायता करने को बाध्य नहीं है, तो भी वह सत्य नहीं कहता था; क्योंकि दोनों देशों की सैनिक वार्ताओं के रूप में वे परस्पर सहायता का वचन दे चुके थे। ग्रे भले ही युद्ध के पक्ष में न रहा हो किन्तु वास्तव में युद्ध होने की अवस्था में वह रूस और फ्रांस का साथ देने को तैयार था। ब्रिटेन में जनमत बलकान के प्रश्न पर युद्ध करने के पक्ष में नहीं था। किन्तु जर्मनी ने अपनी सेनाओं को बेल्जियम की ओर प्रयाण करने की आज्ञा दे दी। यह १८३९ की अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि (International Treaty of 1839) की अवहेलना थी, क्योंकि इस सन्धि के अनुसार बेल्जियम को युद्ध की स्थिति में निष्पक्ष (Neutral) रहने देने का आश्वासन दिया गया था और ब्रिटेन ने भी इस सन्धि पर हस्ताक्षर किए थे। बेल्जियम के राजा ने मुकाबला किया और ब्रिटेन ने उसको

सहायता दी ।-इस प्रकार ब्रिटेन भी अगस्त, १९१४ में प्रथम विश्वयुद्ध में सम्मिलित हो गया ।

युद्ध का प्रवाह (Course of War)—यद्यपि इंग्लैण्ड बेल्जियम की निष्पक्षता पर आक्रमण होने के कारण युद्ध में शामिल हुआ, फिर भी बेल्जियम की रक्षा न हो सकी । जर्मनी की विशाल सेना ने बेल्जियम की जनता के विरोध को कुचल दिया । इसके बाद फ्रांस की बारी आई । फ्रांस की भूमि पर घोर युद्ध हुआ । मोर्चे-बन्दी की लड़ाइयों में मार्ने का युद्ध (Battle of Marne) स्मरणीय है । विरडुन की लड़ाई (Battle of Verdun) ने युद्ध के भाग्य का मित्रराष्ट्रों के पक्ष में निर्णय कर दिया । जर्मनी ने पनडुब्बियों का युद्ध (Submarine warfare) आरम्भ किया और समुद्र पर सब कुछ नष्ट कर दिया । समुद्री युद्ध के विषय में सारे सिद्धान्तों को छोड़कर "किसी भी मूल्य पर विजय प्राप्त करने" का सिद्धान्त अपनाया गया ।

यद्यपि रूस मित्रराष्ट्रों की ओर से १९१७ तक युद्ध में लड़ता रहा तो भी उस देश में क्रान्ति हो गई । ज़ार के शासन को समाप्त करके सत्ता लेनिन और उसके साथियों के हाथों में आ गई । रूस में बोल्शेविक दल का राज्य (Bolshevik Regime) शान्ति का इच्छुक था । परिणामतः रूस ने जर्मनी से समझौता कर लिया और रूस और जर्मनी ने ब्रेस्ट लिटवॉस्क (Brest Litvosk) की सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिए ।

१९१७ में रूस के हट जाने पर जर्मनी की स्थिति बहुत शक्तिशाली हो गई । हिन्डनबर्ग (Hindenburg) और लुडेनडार्फ (Ludendorff) के आक्रमणों के आगे कोई भी न ठहर सका । ऐसा प्रतीत होने लगा कि मित्रराष्ट्र (The Allies) पराजित हो जाएँगे किन्तु अमरीका ने उनकी सहायता की । एक जर्मनी पनडुब्बी ने अमरीका के एक जहाज़ 'लुसीटेनिया' (Lusitania) पर गोला मारकर उसे डुबो दिया, जिससे बहुत से अमरीकन डूब गए । अमरीका में बड़ा क्षोभ फैला और इस कारण राष्ट्रपति विल्सन को जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने का बहाना मिल गया । अमरीका से नई सेना यूरोप में आने लगी । सम्पूर्ण प्रयत्न करने पर भी जर्मनी युद्ध में डटा न रह सका और अन्त में नवम्बर, १९१८ में उसे आत्म-समर्पण करना पड़ा ।

तुर्की धुरी राष्ट्रों (Central Powers) की ओर से लड़ा । यह सत्य है कि आरम्भ में उसे विजय मिली और विशेषतः मैसोपोटेमिया और गैलीपोली (Gallipoli) में मित्रराष्ट्रों (The Allies) की हार हुई, किन्तु अन्त में तुर्की परास्त हुआ और उसे हथियार डालने पड़े ।

जापान ने १९१४ में धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया और उसने काई-चाओ (Kai-Chow) प्रान्त तथा शानटुंग (Shantung) प्रान्त में जर्मनी की बस्तियों पर अधिकार कर लिया । यद्यपि चीन भी मित्रराष्ट्रों का साथी था तथापि जापान ने उससे २१ माँगें स्वीकार करने को कहा । यूरोप की शक्तियाँ जीवन और मृत्यु के संघर्ष में फँसी थीं, परिणामतः जापान अपनी मनमानी करने में [illegible] ।

उसकी सारी माँगें मान ली गईं और चीन जापान के अधिकार में आ गया। यह ठीक है कि चीन में जापान के विरुद्ध बड़ा क्षोभ था किन्तु १९१९ के पेरिस सम्मेलन में भी जापान की स्थिति की पुष्टि की गई।
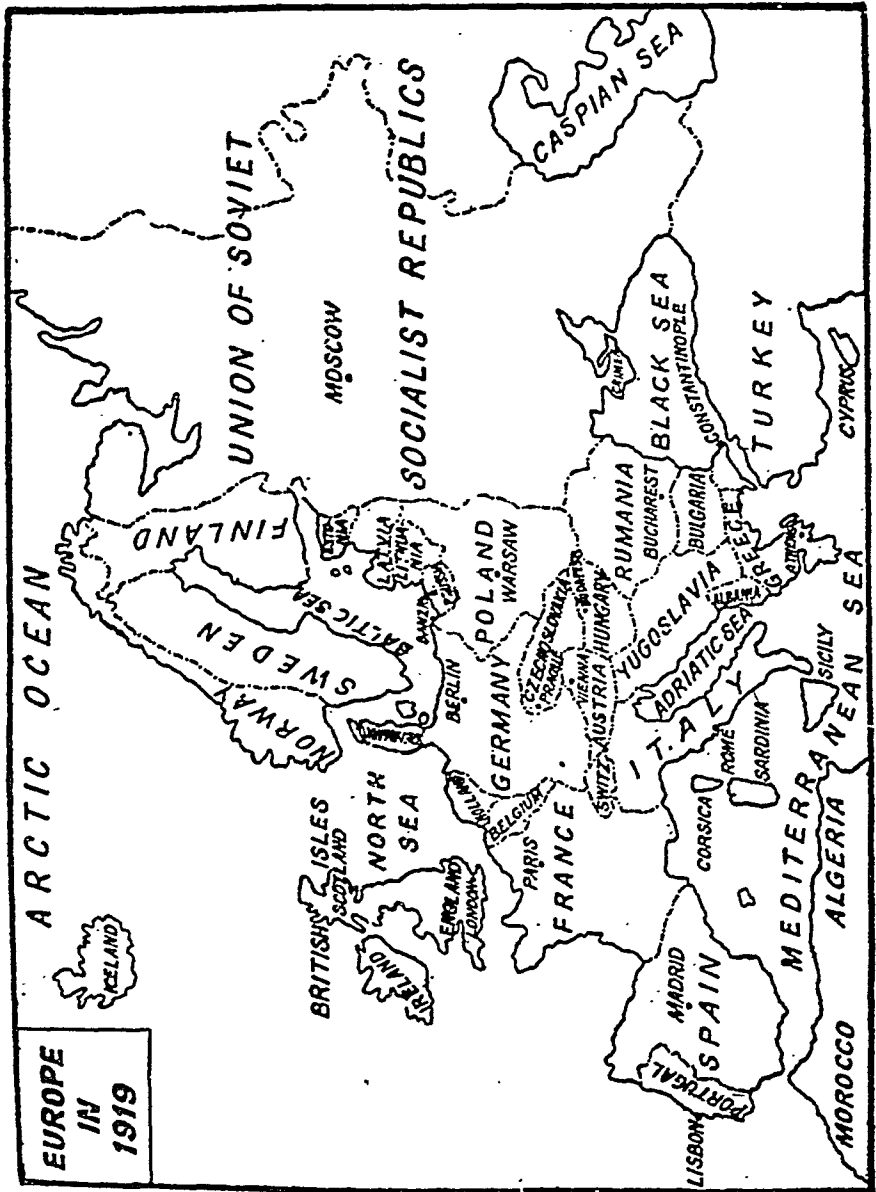
१९१९-२० की शान्ति व्यवस्था (Peace Settlement, 1919-20)—जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी और तुर्की को हराने के पश्चात् मित्रराष्ट्रों के कूटनीतिज्ञ यूरोप के भावी मानचित्र के विषय में निर्णय करने के लिए पेरिस में इकट्ठे हुए। सम्मेलन

के लिए पेरिस का चुना जाना शुभ नहीं था। इसका कारण यह था कि पेरिस तथा इसके निकट के प्रदेश में बड़ा घोर युद्ध हुआ था और बहुत विनाश भी। युद्ध की कटु स्मृतियों और सम्बन्धों का सम्मेलन के वाद-विवाद पर प्रभाव होना स्वाभाविक था। स्विट्ज़रलैण्ड के किसी स्थान को सम्मेलन के लिए चुन लेना अधिक अच्छा होता। सम्मेलन पेरिस में ही हुआ और राष्ट्रपति विल्सन (President Wilson), लॉयड जार्ज (Lloyd George), क्लेमान्सो (Clemenceau) और ऑरलैण्डो (Orlando) ने सम्मेलन में बड़ा महत्त्वपूर्ण भाग लिया। परामर्श का कार्य सरल नहीं था। जर्मनी ने राष्ट्रपति विल्सन के चौदह सिद्धान्तों (Fourteen Points) के आधार पर आत्म-समर्पण किया था। किन्तु इन सिद्धान्तों को शान्ति-सन्धि का आधार नहीं बनाया जा सका। इन सिद्धान्तों में शत्रु की सम्पत्ति के बँटवारे के विषय में मित्र राष्ट्रों में हुए गुप्त समझौतों के अनुसार काट-छाँट करनी पड़ी। परिस्थिति को देखते हुए राष्ट्रपति विल्सन को अनेक बातों में समझौता करने के लिए विवश होना पड़ा था। पेरिस समझौते का अनेक दृष्टियों से असंतोषजनक होना स्वाभाविक था।

विल्सन, लॉयड जार्ज और क्लेमान्सो का परिचय भी आवश्यक है। विल्सन दृढ़-प्रतिज्ञ और अदम्य पुरुष था। वह झुकने की अपेक्षा टूट जाना अधिक पसन्द करता था। उसका कठोर चरित्र एकदम उसका गुण और अवगुण भी था। कभी-कभी उसका हठ त्रुटिपूर्ण निर्णय और विद्वत्ता से शून्य सुविधाएँ दिला देता था। वह एक महान् वक्ता था किन्तु उसकी बुद्धि कुशाग्र नहीं थी। वह वाद-विवाद तथा वार्तालाप में दक्ष नहीं था। अपने चरित्र की शक्ति के ज़ोर से विल्सन एक ऐसी शक्ति बन गया था, जिसे न तो कोई समझ सकता था और न ही उसका विरोध कर सकता था। यह उसके हठ का ही परिणाम था कि वर्साई की सन्धि (Treaty of Versailles) में उसने लीग ऑफ नेशन्स के कवनैण्ट (Covenant of League of Nations) का समावेश कर दिया था। कुटिलता में वह लॉयड जार्ज और क्लेमान्सो की बराबरी नहीं कर सकता था। इन्होंने विल्सन से वे कार्य करा लिये जिन्हें वह स्वेच्छा से कभी भी न करता।

क्लेमान्सो (Clemenceau) फ्रांस का प्रधान मन्त्री था। उसे 'चीता' (Tiger) कहा जाता था। छोटे कद का, वह पूर्व का कोई सन्त-सा लगता था। कभी वह व्यंग और घृणा का प्रदर्शन करता और कभी साहित्यिक और कलात्मक रुचि दिखाता। वह जानता था कि किस अवसर पर उसे अपना रुख बदलना होगा। वह छोटे देशों की परवाह नहीं करता था किन्तु यह भली-भाँति जानता था कि इंग्लैण्ड और अमरीका से वह अपनी इच्छानुसार कार्य नहीं करा सकेगा। वह केवल शक्ति पर आधारित शान्ति को मानने वाला था और राष्ट्रपति विल्सन के चौदह सिद्धान्तों का उपहास किया करता था। वर्साई की सन्धि का दुर्भाग्यपूर्ण भाग उसके प्रभाव का परिणाम था।

लॉयड जार्ज वास्तव में एक राजनीतिज्ञ के सभी गुणों से सम्पन्न था।

व्यक्तिगत रूप से वह क्षतिपूर्ति (compensation) के रूप में जर्मनी से असम्भव रूप से विशाल धनराशि बटोरने के पक्ष में नहीं था। उसके शब्दों में "क्या जर्मनी को एक गाय मानकर उससे एक ही साथ दूध और मांस ले लेने की आशा करना बुद्धिमत्ता थी ?" किन्तु परामर्श के दौरान में उसे इंग्लैण्ड की ओर से बहुत तंग किया गया। उसके देशवासियों ने उससे कहा कि वह जर्मनी से अधिकाधिक अच्छी शर्तें मनवाए। यह सत्य है कि लॉयड जार्ज का जो भी प्रभाव वर्साई की सन्धि पर पड़ा वह उसके देशवासियों द्वारा भेजे गए तारों का परिणाम था।

लॉयड जार्ज को सम्मेलन में कठिन परिस्थिति का सामना करना पड़ा। उसने देखा कि राष्ट्रपति विल्सन और क्लेमान्सो अनेक बातों में सहमत नहीं थे। विल्सन शान्ति सन्धि को शान्ति और आदर्शों के आधार पर बनाना चाहता था किन्तु क्लेमान्सो शक्ति के आधार पर समझौता चाहता था। लॉयड जार्ज को अपने साथियों में समझौता कराने के लिए बड़ा परिश्रम करना पड़ा। अनेक अवसरों पर उसे अपने हितों का बलिदान करना पड़ता था। यह नहीं कहा जा सकता कि उसने विशुद्ध ब्रिटिश हितों की उपेक्षा कर दी थी। किन्तु फिर भी उसने सन्धि में अनेक श्रेष्ठ और सार्वभौमिक हितों के लिए व्यवस्था करा दी थी।

वर्साई की सन्धि (१९१९)—२८ जून, १९१९ को जर्मनी से वर्साई की सन्धि पर हस्ताक्षर कराना सरल कार्य नहीं था। जब सन्धि का मसौदा (Draft) तैयार हो गया, तब जर्मनी को अपना प्रतिनिधि मण्डल भेजने के लिए कहा गया। जर्मनी ने कुछ निम्न स्तर के अधिकारियों को सन्धि का मसौदा जर्मनी में विचारार्थ लाने के लिए भेजने का निर्णय किया। इसे मित्र-राष्ट्रों का अपमान समझा गया और जर्मनी को कहा गया कि वह इस मसौदे को लेने के लिए एक उच्चस्तरीय शिष्ट-मण्डल भेजे, अन्यथा उसे विपत्ति का सामना करना पड़ेगा। अन्त में विदेश मन्त्री के नेतृत्व में एक प्रतिनिधिमण्डल वर्साई गया। दुर्भाग्य से मण्डल के सदस्यों पर कड़ी निगरानी रखी गई और उन्हें बाहर घूमने की स्वतन्त्रता नहीं दी गई थी। उन्हें कांटेदार तारों के घेरे में एक होटल में ठहराया गया। उन्हें किसी से भी परामर्श करने की अनुमति नहीं दी गई। ७ मई, १९१९ को जर्मन प्रतिनिधि मण्डल को सन्धि

क्लेमान्सो

की शर्तें दे दी गई। कहा जाता है कि इस अवसर पर जब मित्र-राष्ट्रों और अमरीका

के प्रतिनिधिमण्डल आए तो सेना ने उनका अभिनन्दन किया किन्तु जब जर्मन प्रतिनिधिमण्डल आया तो वह टुकड़ी वहाँ से हटा ली गई। फ्रांस के प्रधानमन्त्री क्लेमान्सो ने जर्मन प्रतिनिधिमण्डल से कहा, "तुम्हारे सम्मुख उन सब छोटे और बड़े राष्ट्रों के प्रतिनिधि हैं जिन्हें निर्दयता से थोपे गए युद्ध में संगठित होकर लड़ना पड़ा था। वह समय आ गया है जब हमें अपना हिसाब-खाता पूरा करना चाहिए। तुमने शान्ति की याचना की है। हम तुम्हें शान्ति देने के लिए तैयार हैं।" जर्मनी के विदेश-मन्त्री ने बैठे हुए ही क्लेमान्सो को उत्तर दिया। उसने कहा कि जर्मनी को अपनी पराजय की गम्भीरता और असहाय अवस्था के विषय में कोई भ्रम नहीं है। किन्तु उसने युद्ध के प्रति जर्मनी के उत्तरदायित्व को मानने से इन्कार किया। उसने कहा कि जर्मनी मित्रहीन है किन्तु फिर भी सत्य और न्याय उसके पक्ष में है। जर्मनी के प्रतिनिधिमण्डल को कहा गया कि मसौदे का उत्तर तीन सप्ताह में अवश्य भेजना होगा तथा सारा पत्र-व्यवहार उन्हें लिखित रूप से करना होगा।

शान्ति की शर्तों के प्रकाशित होने पर जर्मनी के सारे देश में क्षोभ की लहर फैल गई। मित्रराष्ट्रों की उनके विश्वासघात और धोखे के लिए निन्दा की गई। जर्मनी ने सन्धि पर एक लम्बा स्मृतिपत्र (Memorandum) तैयार किया। सन्धि की शर्तें २३० पृष्ठों की थीं और जर्मनी का स्मृति-पत्र ४४३ पृष्ठों का था। लॉयड जार्ज के सुझाव के कारण शर्तों में सूक्ष्म-सा परिवर्तन किया गया और संशोधित सन्धि जर्मनी को भेज दी गई और उसे पाँच दिन का समय देते हुए कहा गया कि यदि इस अवधि में इसे स्वीकार नहीं किया गया तो जर्मनी पर आक्रमण कर दिया जाएगा। सन्धि की शर्तें इतनी अन्यायपूर्ण थीं कि इसे स्वीकार करने की अपेक्षा बहुत से जर्मन नागरिक मित्रराष्ट्रों के विरुद्ध लड़ते हुए नष्ट हो जाना अधिक श्रेयस्कर समझते थे। किन्तु महासेनापति हिण्डनवर्ग ने स्पष्ट कर दिया कि मित्रराष्ट्रों के विरुद्ध लड़ कर जीतना असम्भव है। जर्मनी में अकाल पड़ा था और वाइमार स्थित जर्मन विधान सभा (German Assembly at Weimar) ने सन्धि की शर्तों को स्वीकार करने का निर्णय किया। किन्तु उसने युद्ध के अपराध और युद्ध के अपराधियों को सौंप देने के विषय की शर्तों पर आक्षेप किया। मित्रराष्ट्रों ने बिना शर्त के स्वीकृति पर जोर दिया। क्योंकि जर्मनी के पास और कोई मार्ग ही नहीं था, उसे झुकना पड़ा। जर्मनी के प्रतिनिधि ने कहा, "हमारा देश विशाल शक्ति के दबाव के कारण झुक रहा है किन्तु इसके कारण वह न्याय की अपेक्षा और अत्यन्त अन्यायपूर्ण सन्धि की शर्तों के विषय में अपने विचार नहीं छोड़ेगा।" वर्साई जाकर सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए कोई माननीय जर्मन नागरिक नहीं मिल रहा था। अन्त में जर्मनी के विदेश-मंत्री के नेतृत्व में प्रतिनिधिमण्डल गया। दूसरी बार भी जर्मन प्रतिनिधिमण्डल के साथ पेरिस में कैदियों जैसा बर्ताव किया गया। जब प्रतिनिधिमण्डल पेरिस से वर्साई जाने लगा, जहाँ, 'शीशमहल' (Hall of Mirrors) में सन्धि पर हस्ताक्षर होने थे, पेरिस की भीड़ ने उन पर पत्थर फेंके और गालियाँ दीं। इन परिस्थितियों में २८ जून, १९१९ को आर्क ड्यूक फर्डिनैण्ड की हत्या की पाँचवीं बरसी के दिन जर्मनी के प्रतिनिधियों ने वर्साई की संधि पर हस्ताक्षर किए।

२८ जून, १६१६ को हुए दृश्य का आँखों देखा हाल इस प्रकार है, "आज मैंने जर्मनों को हस्ताक्षर करते देखा। गेलरी डिस ग्लासिस (Galerie des Glaces) का द्वार दो सीढ़ियों पार था जिस पर एक कतार में खड़े हुए सैनिक पहरा दे रहे थे। उन्होंने नीली वर्दी पहन रखी थी, लोहे का कवच और घुड़सवारों के लम्बे झब्बे वाले लोहे के टोप पहन रखे थे। वे बड़े सुन्दर प्रतीत हो रहे थे। दोपहर तीन बजे सहसा एक दम सब कुछ निःशब्द हो गया और चार सैनिक अधिकारियों के पीछे जर्मन दिखाई पड़े। एक पीला, झुका हुआ और विद्यार्थी जैसा चश्मा पहिने हुए था मुल्लर (Muller)। उसके बाद वाले व्यक्ति की गर्दन तनी हुई और उसके कलाकार जैसे बाल थे, बैल (Bell)। इसके तुरन्त ही आगे चलने वाले सैनिकों ने अपनी तलवारें म्यान में रख दीं। मेरे विचार से यह पहले से सोचा हुआ था। यह एक चिह्नात्मक और ज्ञान का प्रतीक कार्य था। घृणा का वातावरण खूब घना था। वे आगे बढ़े और वर्ग की चौथी ओर बैठ गए। वहीं निकट ही गुलाब और बादाम की लकड़ी की बनी हुई मेज पर सन्धि रखी हुई थी। एक दो मिनट बाद क्लेमान्सो उठा और तीखी, स्पष्ट और संगीतमय वाणी से जो घण्टे की ध्वनि जैसी थी, बोला, 'हम पूर्णतः सहमत हैं। मुझे जर्मनी के प्रतिनिधि महाशयों से हस्ताक्षर करने के लिए कहने का गर्व प्राप्त हुआ है।' इस पर जर्मन उठे और उन्होंने नीचे सिर झुकाया। उन्हें बैठ जाने के लिए कहा गया और भाषण का अनुवाद करके सुनाया गया। इसके पश्चात् उन्होंने आगे आ कर तनावपूर्ण खामोशी में धीरे-धीरे हस्ताक्षर किए।

"इसके बाद विल्सन अपने अधिकारियों के साथ आया, फिर लायड जार्ज जो हस्ताक्षर करने के बाद मुस्कराया, उपनिवेशों के प्रधान-मन्त्रीगण और महाराजा बीकानेर जो पीली-खाकी पगड़ी में बड़ा शानदार लग रहा था। उसके बाद पिचोन और टारड्यू के साथ क्लेमान्सो आया। उसके बाद सोन्नीनो अपने राज्य के अन्तिम दिवस पर तथा अन्य छोटे-छोटे देशों के प्रतिनिधि आए। जैसे ही पादरेवस्की ने नाटकीय ढंग से हस्ताक्षर किए बाहिर तोपों की गर्जना होने लगी।

"रस्म पूरी हो जाने के पश्चात् जर्मनों को बड़े ध्यान से बाहिर ले जाया गया और क्लेमान्सो भवन से धीरे-धीरे, मुस्कराते हुए हाथ मिलाते हुए बाहिर आए। जैसे ही वह आए उन्होंने मेरी ओर हाथ बढ़ाया या यों कहिए भूरे दस्ताने में सर्दा की तरह ढंका हुआ हाथ आगे आया······मैंने कहा, 'बधाई' और उसने कहा, 'धन्यवाद'······एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्षण। किन्तु मुझे डर है कि यह शान्ति बिना जीत के है ठीक उसी तरह जैसे हमें बिना शान्ति के विजय प्राप्त हुई है।"

सन्धि की व्यवस्थाएँ (Provisions of the Treaty)—वर्साई की सन्धि की शर्तें १५ भागों में थीं और अनेक संयुक्त पत्रों के अतिरिक्त इसकी ४४० धाराएँ थीं। मुख्य व्यवस्थाएँ निम्नलिखित थीं :—

(१) जर्मनी को ऐलसेस-लोरेन फ्रांस को, यूपेन (Eupen) और मेलमिडे (Malmedy) बेल्जियम को, मेमेल (Memel) लिथुआनिया को और पोसेन (Posen) एवं पश्चिमी प्रशिया का एक बड़ा भाग पोलैण्ड को देना पड़ा। ऊपरी

सिलेसिया (Upper Silesia) और पूर्वी प्रशिया (Eastern Prussia) का दक्षिणी भाग (यदि वहाँ के निवासी पोलैण्ड में मिलना चाहें तो सार्वजनिक मतदान द्वारा उनकी इच्छा जानकर) पोलैण्ड को दे दिया जाए। किन्तु जब वास्तव में मतदान हुआ तो ७ लाख व्यक्तियों ने जर्मनी के पक्ष में और ४ लाख ८० हज़ार व्यक्तियों ने पोलैण्ड के पक्ष में मत दिए। यह हो जाने के बाद पोलैण्ड ने कहा कि इस प्रदेश में जहाँ पोल लोगों का बहुमत है वह क्षेत्र उसे दिया जाए। जर्मनी ने कहा कि यह प्रदेश एक समूची आर्थिक इकाई है जिसे विभक्त नहीं किया जा सकता। कुछ समय तक समस्या उलझी रही किन्तु अंत में यह निर्णय हुआ कि सिलेसिया को इस तरह बाँटा जाए कि भूमि और जनसंख्या का अधिक भाग जर्मनी को मिल जाए। किन्तु पोलैण्ड को अधिक आर्थिक साधन दिए गए। पोलैण्ड को ६७ में से ५३ कोयले की खानें, १४ में से ९ इस्पात बनाने के कारखाने दिए गए। उसे जस्त और सीसे के कारखाने भी दिए गए और उसे १६ में से ११ जस्त और सीसे की खानें भी दी गई थीं।

(२) डेनज़िग (Danzig) को स्वतंत्र नगर के रूप में लीग ऑफ नेशन्ज़ के अधिकार में रख दिया गया। पोलैण्ड को डेनज़िग में विशेषाधिकार दिए गए।

(३) राइनलैण्ड (Rhineland) को सेना रहित (Demilitarise) कर दिया गया। जर्मनी द्वारा राइन नदी के दाएँ या बाएँ तट कर नदी के पूर्व की ओर ५० किलोमीटर दूर खेंची गई रेखा के क्षेत्र में किसी भी प्रकार मोर्चेबन्दी करना निषिद्ध कर दिया गया। उपस्थित मोर्चेबन्दियों को नष्ट कर दिया गया। इस क्षेत्र में सेना रखना वर्जित कर दिया गया। राइनलैण्ड में सब प्रकार की सैनिक गतिविधि बन्द कर दी गई।

(४) "उत्तरी फ्रांस की कोयले की खानों के नष्ट कर देने की क्षतिपूर्ति स्वरूप तथा युद्ध की हानि की क्षतिपूर्ति के एक भाग के रूप में जर्मनी को सार की घाटी (Saar Valley) की कोयले की सारी खानों का अधिकार और इनमें से कोयला निकालने के सम्पूर्ण अधिकार फ्रांस को देने होंगे।" १५ वर्ष की अवधि के लिए सार घाटी को लीग ऑफ नेशन्ज़ के अधिकार में रखा गया और इसके बाद इस प्रदेश को फ्रांस को दिया जाए अथवा जर्मनी को, इसका निर्णय सार्वजनिक मतदान द्वारा सम्पन्न होने की व्यवस्था की गई। जब मतदान हुआ तब सॉर घाटी की जनता ने जर्मनी में मिलना स्वीकार किया।

(५) व्यवस्था की गई कि हेलिगोलैण्ड (Heligoland) और ड्यून (Dune) की बन्दरगाहें और मोर्चेबन्दियाँ नष्ट कर दी जाएँ। जर्मनी ने आस्ट्रिया की स्वतन्त्रता को मान्यता देने तथा इसका सम्मान करने का वचन दिया।

(६) जर्मनी को अपने समुद्र-पार के उपनिवेशों पर सारे अधिकार मित्र-राष्ट्रों को देने के लिए विवश कर दिया गया और ये उपनिवेश ब्रिटेन, फ्रांस, जापान, आस्ट्रिया, न्यूज़ीलैण्ड, दक्षिणी अफ्रीका और बेल्जियम ने आपस में बाँट लिये। जापान को क्याओ-चाओ (Kiao-Chow) और शाण्टुंग (Shantung) प्रान्त में जर्मनी की बस्तियाँ पट्टे पर दी गईं। न्यूज़ीलैण्ड को समोआ (Samoa) द्वीप का जर्मन-

भाग दिया गया। इंग्लैण्ड को पश्चिमी अफ्रीका का जर्मन भाग मिला। कैमरून (Cameroons) और टोगोलैण्ड को फ्रांस और इंग्लैण्ड ने आपस में बाँट लिया।

(७) बेल्जियम, पोलैण्ड और चैकोस्लोवाकिया की स्वतन्त्रता और सर्वाधिकार सम्पन्नता को जर्मनी ने मान्यता दी। उसने ब्रेस्ट-लिटवॉस्क और बुखारेस्ट की सन्धियों को रद्द कर देना भी स्वीकार किया।

(८) जर्मनी ने चीन, थाईलैण्ड, मिस्र, मोरक्को और लिबेरिया में अपने अधिकार और विशेष सुविधाएँ भी छोड़ना स्वीकार किया। मित्र-राष्ट्रों ने समुद्रपार रहने वाले जर्मन नागरिकों तथा कम्पनियों की सारी सम्पत्ति, अधिकार और हितों को रखने और बेचने का अधिकार भी अपने हाथ में ले लिया और व्यवस्था की कि इनकी क्षतिपूर्ति जर्मनी की सरकार स्वयं करेगी। बल्गारिया और तुर्की में जर्मनी की सम्पत्ति और सुविधाएँ जब्त कर ली गई।

(९) जर्मनी की सैन्य-शक्ति को सर्वदा के लिए एक ही बार समाप्त करने का प्रयत्न किया गया। जर्मनी का सेनापति विभाग तोड़ दिया गया। जर्मनी की कुल सेना की संख्या एक लाख नियत की गई। जर्मनी की सेना का कार्य देश में शान्ति और व्यवस्था रखना तथा सीमान्त की रक्षा करना था। यह विशेष रूप से कहा गया कि चुंगी के अधिकारी, तट के रक्षक तथा वन रक्षकों की संख्या १९१३ की संख्या से अधिक नहीं होगी। पुलिस की संख्या केवल जनसंख्या के अनुपात से ही बढ़ाई जाए। जर्मनी द्वारा शस्त्रों, गोलाबारूद आदि युद्ध-सामग्री के उत्पादन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। युद्ध-सामग्री के मँगाने और विदेशों में भेजने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया। टैंक, हथियारबन्द गाड़ियाँ और ज़हरीली गैसों को जर्मनी नहीं बना सकता था और न बाहर से मँगा सकता था। जर्मनी में लामबन्दी नहीं होगी। जर्मनी के सैनिकों और पदाधिकारियों को समय से पहले और बहुधा सेवा से मुक्त नहीं किया जाएगा जिससे देश की प्रभावशाली सैन्यशक्ति को बढ़ाया जा सके। "शिक्षा संस्थाएँ, विश्वविद्यालय, सेवा मुक्त सैनिकों की संस्थाएँ, शिकार और भ्रमण के क्लब अर्थात् सब प्रकार के संगठन, चाहे उनके सदस्यों की आयु कुछ भी हो, किसी भी प्रकार के सैनिक मामलों से कोई सम्बन्ध नहीं रखेंगे।"

(१०) जर्मनी के समुद्री बेड़े के साथ भी सौतेला व्यवहार किया गया। जर्मनी कुल ६ युद्धपोत, ६ हल्के लड़ाकू जहाज़, १२ तोपची जहाज और १२ टारपीडो नावें रख सकता था। इसे एक भी पनडुब्बी रखने की आज्ञा नहीं थी। पनडुब्बियों के तार इसे समर्पण करने पड़े। नए युद्धपोत को पुराने पोत के काम में लाने के अयोग्य हो जाने पर ही बनाया जा सकता था। समुद्री सेना अधिकारियों को मिला कर १५,००० सैनिक रखने की आज्ञा थी। जर्मनी के व्यापारिक जहाज़ों के नाविकों को समुद्री युद्ध की शिक्षा देनी वर्जित थी। सारे फालतू जहाज़ों को या तो व्यापारिक जहाज़ बना दिया जाएगा, या नष्ट कर दिया जाएगा या मित्र-राष्ट्रों को सौंप देना होगा। जर्मनी नाविक या वायु सेना नहीं रखेगा। उसे सारी हवाई युद्ध-सामग्री समर्पण

करनी होगी। मित्र-राष्ट्रों को यह अधिकार होगा कि इन व्यवस्थाओं के परिपालन की जांच करने के लिए वे उच्चाधिकारी नियुक्त करें।

(११) जर्मनी के सम्राट् विलियम द्वितीय पर, 'अन्तर्राष्ट्रीय सदाचार तथा सन्धियों के विरुद्ध घोर अपराध' करने का अभियोग लगाया गया। उस पर एक सैनिक न्यायालय द्वारा मुकदमा चलाया जाएगा। यह व्यवस्था व्यर्थ गई क्योंकि नीदरलैण्ड्स की सरकार ने सम्राट् को समर्पण करने से इन्कार कर दिया। जर्मनी ने उन लोगों को, जिन्होंने युद्ध की परिपाटी और नियमों का उल्लंघन किया था समर्पण कर देना स्वीकार किया। किन्तु दर्जन भर साधारण व्यक्तियों पर मुकदमे चलाकर न्यायालय ने केवल हल्की सजाएँ दीं।

(१२) जर्मनी को १९१४-१९ के युद्ध का उत्तरदायित्व स्वीकार करना पड़ा। सन्धि की २२३ वीं धारा इस प्रकार थी : "मित्र और सम्मिलित राष्ट्र अभियोग लगाते हैं और जर्मनी अपनी और अपने साथियों की ओर से स्वीकार करता है कि जर्मनी और उसके साथियों द्वारा जबरदस्ती लादे गए युद्ध के कारण मित्र और सम्मिलित राष्ट्रों तथा उनके नागरिकों को जो भी हानि और नुकसान हुआ है, उसका उत्तरदायित्व जर्मनी तथा उसके साथियों पर ही है।" किन्तु यह माना गया कि जर्मनी सारे नुकसान और विनाश की क्षति-पूर्ति नहीं कर सकेगा इसलिए उससे मित्रराष्ट्रों और उनके साथियों की नागरिक जनता की सम्पत्ति को स्थल, जल और वायु द्वारा तथा अन्य हानि जो संयुक्त पत्र संख्या १ में लिखी है, देनी होगी।" इस संयुक्त पत्र में हानि इत्यादि की दस किस्में थीं। जर्मनी को बेल्जियम द्वारा युद्धकाल में लिया गया ऋण भी देना पड़ा। उसे इस ऋण पर ५ प्रतिशत की दर से ब्याज भी देना पड़ा।

(१३) जर्मनी द्वारा दी जाने वाली क्षतिपूर्ति के धन की राशि तथा देने के ढंग का निर्णय करने के लिए एक 'क्षतिपूर्ति आयोग' (Reparation Commission) बैठाने की भी व्यवस्था की गई। किन्तु मई, १९२१ तक जर्मनी को ५,००,०००,००० डालर देने थे। युद्ध में नष्ट हुए प्रदेशों के पुनर्निर्माण के लिए जर्मनी के आर्थिक साधनों का प्रयोग किया गया। जर्मनी ने फ्रांस, बेल्जियम, इटली और लक्सेम्बर्ग को कोयले की निर्धारित मात्राएँ देनी स्वीकार कीं। फ्रांस को तारकोल और नौशादर की कुछ राशि भी प्राप्त हुई।

(१४) जर्मनी को १८७०-७१ के फ्रांस-प्रशियन युद्ध में फ्रांस से प्राप्त कलात्मक कृतियाँ, ध्वज और अन्य वस्तुएँ वापिस करनी पड़ीं। उसे लुवेन के विश्वविद्यालयों की पाण्डुलिपियाँ तथा अन्य पुस्तकों को नष्ट कर देने के लिए क्षतिपूर्ति करनी पड़ी। उसे हैजाज के राजा (King of Hedjaz) को खलीफा ओथमान (Caliph Othman) का मूल कुरान लौटाना होगा। सुलतान-मकवावा (Sultan Mkwawa) की खोपड़ी भी इंग्लैण्ड को लौटानी होगी।

(१५) ऐल्ब, डेन्यूब, ओडर और नीमन नदियों का अन्तर्राष्ट्रीयकरण (Internationalization) कर दिया गया। राइन नदी को एक अन्तर्राष्ट्रीय आयोग

के अधिकार में रखा गया। कील नहर और इसके मार्ग को सब राष्ट्रों के लिए खोल दिया गया। हेमबर्ग और स्टेटिन की बन्दरगाहों में चैकोस्लोवाकिया को ६६ वर्ष के लिए बिना किराए पर स्वतन्त्र क्षेत्र देने होंगे। जर्मनी की रेलों पर मित्र-राष्ट्रों के माल पर कम किराया लिया जाएगा।

(१५) इन व्यवस्थाओं को लागू करने के लिए भी प्रबन्ध किया गया। राइन नदी के पश्चिमी क्षेत्र पर पुलों सहित १५ वर्ष तक मित्र-राष्ट्रों का अधिकार रहेगा। यदि जर्मनी अपनी प्रतिज्ञाओं का ठीक-ठीक पालन करता रहा तो कोलोन (Cologne) के पुल का क्षेत्र पाँच वर्ष बाद, कॉबलैंज (Coblenz) १० वर्ष बाद और मेन्ज़ (Mainz) १५ वर्ष बाद खाली कर दिया जाएगा। यदि जर्मनी ने अपनी प्रतिज्ञाएँ पूरी न कीं तो अधिकार की अवधि बढ़ाई भी जा सकती है। वास्तव में १६३० में ही सारी सेना हटा ली गई थी।

क्षतिपूर्ति आयोग की स्थापना हुई और युद्ध की क्षति ४५,०००,०००,०००,००० डालर आँकी गई।

सेण्ट जर्मेन की सन्धि (१६१६) (Treaty of St. Germaine)—यह सन्धि मित्रराष्ट्रों और आस्ट्रिया-हंगरी में हुई। आस्ट्रिया ने हंगरी, चैकोस्लोवाकिया, पोलैण्ड और युगोस्लाविया की स्वतन्त्रता को मान्यता दी। उसने आस्ट्रिया-हंगरी के राज्य में पहले से सम्मिलित प्रदेशों को छोड़ दिया। इस सन्धि का परिणाम यह हुआ कि आस्ट्रिया क्षेत्र और जनसंख्या में पुर्तगाल से भी छोटा गणतन्त्र रह गया। उससे उसकी बन्दरगाहें छीन ली गईं। उसकी सेना घटाकर ३०,००० सैनिक कर दी गई। अन्तर्राष्ट्रीय क्षतिपूर्ति आयोग को आस्ट्रिया द्वारा दी जाने वाली क्षतिपूर्ति की राशि नियत करनी थी।

ग्राण्ट और टैम्परले के मतानुसार, "सेन्ट जर्मेन की सन्धि ने आस्ट्रिया को घटाकर उसकी प्राचीन जनसंख्या के आधे से भी कम कर दिया। उसने गैलीशिया (Galicia) के ७५,००,००० स्लाव लोग (Slavs) नए पोलैण्ड को दिए। इसके अतिरिक्त दस लाख से अधिक अ-जर्मन (Non-Germans) भी देने पड़े। उसे लगभग चालीस लाख जर्मनों को भी देना पड़ा जिनमें ३५ लाख व्यक्ति चैकोस्लोवाकिया की प्रजा बन गए। आस्ट्रिया की नई सीमाओं ने उसे आस्ट्रिया की आर्कडचियाँ स्टीरिया (Styria) और टायरोल (Tyrol) की सीमा में बाँध दिया जिसमें अस्सी लाख विशुद्ध जर्मन जाति की जनता रह गई थी। प्राचीन गौरवशाली आस्ट्रिया को जिसने दो करोड़ जनता और १५ विभिन्न जातियों पर राज्य किया था, घटाकर अपनी प्राचीन सीमा का आधा कर दिया गया और वह अपनी विशुद्ध जर्मन प्रजा के एक तिहाई भाग को खो बैठा। वह अत्यन्त गरीब हो गया और इसके बाद बड़ी कठिनाई से जीवित रह सका और १६३८ में जर्मनी ने इसे अपने राज्य में मिला लिया।"

ट्रायनन की सन्धि (१६२०) (Treaty of Trianon)—यह सन्धि हंगरी और मित्रराष्ट्रों के बीच हुई थी। इसके अनुसार हंगरी ने अ-मैग्यार (Non-Magyar)

की जनसंख्या त्याग दी। स्लोवॉक (Slovak) प्रांतों को चैकोस्लोवाकिया को, ट्रांसिल-वानिया रूमानिया को और क्रोशिया (Croatia) यूगोस्लाविया को दे दिया गया। नए हंगरी राज्य की जनसंख्या लगभग अस्सी लाख और क्षेत्रफल ३५,००० वर्गमील था।

ग्राण्ट और टैम्परले के मतानुसार, "इस सन्धि के अनुसार उत्तर में इससे स्लोवाक और कुछ मैग्यार अलग करके चैकोस्लोवाकिया को दे दिए गए। इससे रूमानियन और मैग्यारों को अलग करके दक्षिण में यूगोस्लाविया को दे दिया गया। इसके पास केवल ७५ लाख की जनसंख्या रह गई जिनमें ६० लाख से अधिक मैग्यार थे। इस प्रकार लगभग ३० लाख मैग्यार इससे अलग हो गए। चैकोस्लोवाकिया, रूमानिया और यूगोस्लाविया ने इससे केवल अपनी जाति के लोग ही नहीं छीने, अपितु ३० लाख मैग्यार भी छीन लिये, जिनमें से पाँच लाख यूगोस्लाविया, १० लाख चैकोस्लोवाकिया और शेष १५ लाख के लगभग रूमानिया में चले गए। यह बात स्मरणीय है कि युद्ध से पहले हंगरी की आधी प्रजा इसके विरुद्ध थी और चेकोस्लो-वाकिया, यूगोस्लाविया और रूमानिया की जनसंख्या १९१४ में हंगरी की अपेक्षा अधिक जातिगत एकता की दृष्टि से विभाजित थी।

न्यूली की सन्धि (१९१९) (Treaty of Neuilly)—यह सन्धि बल्गारिया और मित्रराष्ट्रों में हुई। बल्गारिया ने प्रथम विश्वयुद्ध में तथा १९१२-१३ की बलकान की लड़ाइयों में जीते हुए सारे प्रदेश लौटा दिए। उसने यूगोस्लाविया को मेसेडोनिया का कुछ भाग भी दिया और रूमानिया को सारा डोब्रुजा (Dobrudja) वापिस कर दिया। उसने थरेस का समुद्री तट (Thracian Coast) मित्रराष्ट्रों को दे दिया, जिन्होंने इसे यूनान को सौंप दिया था। बल्गारिया को ५० लाख डालर युद्ध क्षतिपूर्ति के रूप में देना पड़ा। उसकी सेना घटाकर ३३ हज़ार सैनिक कर दी गई।

सेवरेज़ की सन्धि (१९२०) (Treaty of Sevres)—तुर्की युद्ध में जर्मनी की ओर से लड़ा था और उसके ही साथ पराजित हुआ था। सेवरेज़ की सन्धि तुर्की और मित्रराष्ट्रों के बीच हुई। इसके अनुसार हेजाज़ के अरब राज्य (Arab State of Hedjaz) को औपचारिक रूप से स्वतन्त्र करके ब्रिटेन के नियन्त्रण में रख दिया गया। आर्मीनिया को एक ईसाई राज्य बनाकर अन्तर्राष्ट्रीय प्रबन्ध के अधीन रख दिया गया। मेसोपोटेमिया, ट्रांस-जोर्डन, सीरिया और फ़िलस्तीन को तुर्की से ले लिया गया। सीरिया को लीग ऑफ़ नेशन्ज़ के संरक्षण (Mandate) में फ्रांस को दे दिया गया। संरक्षण व्यवस्था (Mandate System) के अनुसार फिलस्तीन मेसोपोटेमिया और ट्रांस-जोर्डन ब्रिटेन को दिए गए। गैलीशिया को फ्रांस का प्रभाव-क्षेत्र माना गया। अनाटोलिया (Anatolia) का दक्षिणी प्रदेश इटली का प्रभाव-क्षेत्र माना गया। एड्रियानोपल (Adrianople), गेल्लीपोली (Gallipoli), ऐमबोस और टिनीडोस के द्वीप (Ambos and Tenedos Islands), स्मर्ना (Smyrna) और एशिया माइनर (Asia Minor) के समुद्री तट का प्रदेश यूनान को दे दिए गए। दो द्वीपों को छोड़कर डोडीकेनीज़ के द्वीप भी यूनान को दिए गए। डार्डनल्ज़ और बोसफ़ोरस के द्वीपों को अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण में रखा गया। तुर्की को एक भारी राशि युद्ध की क्षति-पूर्ति के रूप देनी थी।

तुर्की की सन्धि बड़ी कठोर थी और इसकी बड़ी निन्दा हुई। इससे तुर्की में मुस्तफा कमाल पाशा उदय हुआ। तुर्की ने उसके नेतृत्व में सैवरेज की सन्धि का विरोध किया। बड़ी दुर्व्यवस्था फैली और अन्त में तुर्की और यूनान में युद्ध छिड़ गया। कोई भी अन्य देश इसमें सहायता के लिए नहीं आया अतः युद्ध जैसे-तैसे चलता ही रहा। अन्त में १९२३ में लासेन्न की सन्धि (Treaty of Lausanne) तुर्की से हुई, उसने ट्रांस-जोर्डन, फ़िलस्तीन, मेसोपोटेमिया, सीरिया और हेजाज़ छोड़ना स्वीकार किया। किन्तु अनाटोलिया, एड्रियानोपल, पूर्वी थरेस, स्मर्ना, गैलीशिया, अडालिया (Adalia) इत्यादि प्रदेश तुर्की के पास ही छोड़ दिए गए। डार्डेनल्ज़ और बोसफोरस द्वीपों का अन्तर्राष्ट्रीयकरण (Internationalization) कर दिया गया।

पोलैण्ड (Poland)—अठारहवीं शताब्दी में पोलैण्ड के तीन विभाजनों ने पोलैण्ड का नाम यूरोप के मानचित्र से मिटा दिया था, किन्तु पोल जाति ने वीरता से उन्नीसवीं शताब्दी में संघर्ष किया। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान में जैसे ही रूस, आस्ट्रिया-हंगरी और जर्मनी की हार हुई, पोलैण्ड से उनका शिकंजा ढीला पड़ गया। पोल जाति ने इससे पूरा लाभ उठाया और १९१८ में पूरी तरह युद्ध समाप्त होते-होते वे एक स्वतन्त्र राष्ट्र बन चुके थे। जब शान्ति सम्मेलन में पोलैण्ड की स्वतन्त्रता को माना गया उस समय एक वास्तविक तथ्य को ही मान्यता दी गई थी।

बड़ी शक्तियों ने पोलैण्ड का सीमांकन किया, जो विशुद्ध पोलैण्ड के क्षेत्र की पूर्वी सीमा बताती थी। इसे 'कर्ज़न लाइन' के नाम से पुकारा जाता था और यह सीमा उत्तर में पुन्स्क (Punsk) से लेकर ग्रोडो-व्लोडावा (Grodow-Vlodava), खोल्म के उत्तर में (North of Kholm) और वहाँ से पूर्वी गैलिशिया की सीमा तक थी। यह सीमा पोलैण्ड को मान्य नहीं थी अतः उसने पूर्वी गैलिशिया और विलना (Vilna) पर अधिकार कर लिया। वह सोवियत रूस से लड़ा और उसे १९२० में 'रीगा' की दो सन्धियाँ मानने पर विवश कर दिया। इसके अनुसार उसे 'कर्ज़न लाइन' से दुगुनी जनसंख्या और प्रदेश प्राप्त हुआ। पोलैण्ड की जनसंख्या दो करोड़ सत्तर लाख थी जिनमें रुथिनिया और लिथुआनिआ के लोग विदेशी थे।

शान्ति व्यवस्था की आलोचना (Criticism of Peace Settlement)—

(१) १९१९-२० की शान्ति-व्यवस्था की कटु आलोचना हुई थी। कारविन (Carvin) के मतानुसार, "यूरोप बलकान बन गया अर्थात् अनेक टुकड़ों में बँट गया, ऐलसेस-लोरेन जैसी विकट समस्याओं से झुलसी हुई परिस्थितियों द्वारा उत्पन्न इस सन्धि ने जितनी समस्याएँ सुलझाईं उससे कहीं अधिक समस्याएँ पैदा कर दी थीं। परिणामस्वरूप, यूरोप महाद्वीप में शक्ति द्वारा प्राप्त सारे प्रदेश और स्थितियाँ केवल शक्ति द्वारा ही बनाई रखी जा सकती थीं। इसलिए निःशस्त्रीकरण (Disarmament) का जो चरम लक्ष्य प्रतीत होता था वह शीघ्र ही एक स्वप्न मात्र बन गया। नए राष्ट्र जितने संरक्षित थे उतने ही सैन्यवादी बन गए।" विल्सन के चौदह सिद्धान्त चौदह निराशाएँ बन गईं। सबसे बड़ी खेदजनक बात तो यह है कि

अमरीका की शक्ति के बिना इन सन्धियों को इतना घृणित और इतना दुर्भाग्यपूर्ण कभी भी नहीं बनाया जा सकता था।

(२) केन्ज़ (Keynes) के मतानुसार, यह व्यवस्था कार्थेजियन शान्ति ('Carthagian Peace') थी। लेनसिंग (Lansing) के मतानुसार, वर्साई की सन्धि की शर्तें अप्रत्याशित रूप से कठोर और अपमानजनक थीं। इनमें से कुछ को तो क्रियात्मक रूप से लागू करना असम्भव था। शान्ति सन्धि का आधारभूत सिद्धान्त था, "विजेता का ही लूट पर अधिकार है और इस बार मित्रराष्ट्र ही विजेता थे।"

(३) जनरल स्मट्स ने शान्ति सन्धि पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था, "मैंने सन्धि पर इसलिए हस्ताक्षर नहीं किए कि यह एक सन्तोषजनक पत्र था अपितु इसलिए कि युद्ध को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक थी।" वर्साई की सन्धि पर हस्ताक्षर करने के पश्चात् कर्नल हाऊस ने अपनी डायरी में लिखा कि, "मैं एक अन्य प्रकार की शान्ति को अधिक पसन्द करता।"

(४) आलोचक कहते हैं कि वर्साई की सन्धि वास्तव में जर्मनी की जनता पर थोपी गई थी। यह एक आज्ञा स्वरूप सन्धि थी। यह पहले ही कहा जा चुका है कि जब इस सन्धि की शर्तों को जर्मनी को बताया गया उस समय देश में बड़ी बेचैनी फैली हुई थी और कहा गया था कि जर्मनी ने विल्सन के चौदह सिद्धान्तों के आधार पर आत्म-समर्पण किया है और यह सन्धि इन सिद्धान्तों से पूर्णतः शून्य थी। जर्मनी की जनता इस सन्धि को मानने के लिए तैयार नहीं थी किन्तु जब उनके देश पर आक्रमण करने की धमकी दी गई तो उन्हें घुटने टेकने पर विवश होना पड़ा। इसके पश्चात् भी जर्मनी के प्रतिनिधियों ने दृढ़ता से कहा था कि उन्होंने दबाव से डर कर सन्धि पर हस्ताक्षर किए थे किन्तु न्याय उनके ही पक्ष था। स्पष्ट है कि वर्साई की सन्धि पर संगीन की नोक पर हस्ताक्षर कराए गए। इसकी नींव तनिक भी सदाचार पर नहीं थी। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि हिटलर ने शीघ्रातिशीघ्र शक्ति प्राप्त करते ही इस सन्धि को फाड़ फेंका।

(५) डा० लांगसेम के मतानुसार, "वर्साई की सन्धि ने जर्मनी के क्षेत्रफल का आठवाँ भाग तथा इसकी जनसंख्या छः लाख पचास हजार कम कर दी। इसके सारे उपनिवेश और विदेशों में लगी हुई सारी पूँजी और सम्पत्ति छीन ली गई। उसकी खेती की भूमि का पन्द्रह प्रतिशत, बारह प्रतिशत पशुधन और दस प्रतिशत कारखाने छीन लिये गए। उसके व्यापारिक समुद्री जहाज़ों को सत्तावन लाख टन से घटा कर केवल पाँच लाख टन कर दिया गया। उसका जहाजी बेड़ा, जो केवल ब्रिटेन के बेड़े से कम था, पूर्णतः नष्ट कर दिया गया। उसकी सेनाओं को फ्रांस की सेना का सातवाँ भाग कर दिया गया। यूरोप को दिए गए प्रदेशों के कारण जर्मनी ने पोटाश, लोहा, जस्त, सीसा और खाद्य-पदार्थ खो दिया। उसने अपने कोयले के भण्डार के पाँच भागों में से दो भाग, दो-तिहाई कच्चा लोहा, दस भाग में से सात भाग जस्त और आधे से अधिक सीसा खो दिया। उपनिवेशों के छिन जाने से रबर तेल और

रुई की बड़ी मात्रा उसके हाथ से निकल गई। नवीन प्रादेशिक सम्बन्धों के कारण उद्योग और व्यापार के युद्ध के पूर्व की व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई और बहुत काल तक जो कुछ औद्योगिक कारखाने जर्मनी के पास बच रहे थे वे भी पूरी गति और कुशलता से काम नहीं कर सकते थे।"

(६) शान्ति सन्धि प्रतिशोध की भावना से ओतप्रोत थी। इस सन्धि का आधारभूत सिद्धान्त था : "विजेताओं का ही लूट पर अधिकार है और इस बार मित्रराष्ट्र ही विजेता थे।" स्वयं लॉयड जार्ज ने प्रसिद्ध खाकी चुनाव इस नारे के बल पर जीता था कि "हम काइज़र को फाँसी पर लटका देंगे और जर्मनी को हानि की पाई-पाई देनी पड़ेगी।" शान्ति का निर्माण करने वालों को सोचना चाहिए था कि जर्मनी की जनता से कठोर व्यवहार करने की अपेक्षा दयामय व्यवहार करने से यूरोप में शान्ति स्थापना की अधिक सम्भावना थी। युद्ध का वास्तविक जन्मदात विलियम द्वितीय जर्मनी से भाग गया था और देश में प्रजातन्त्रात्मक सरकार की स्थापना हो गई थी। विजेताओं को नए प्रजातन्त्र से दया का व्यवहार करना चाहिए था। उनके कठोर व्यवहार से जर्मनी में प्रजातन्त्र आरम्भ में ही निर्बल हो गया था। यह निर्विवाद तथ्य है कि १९१९ की सन्धि द्वारा जर्मनी के साथ कठोर व्यवहार ने, विशेषत: फ्रांस ने जर्मनी में प्रजातन्त्रात्मक शासन की सफलता की सम्भावना पूर्णत: नष्ट कर दी। इसी पृष्ठभूमि के आधार पर १९३३ में हिटलर शक्ति प्राप्त कर सका था। १९१९-२० की शान्ति सन्धि करने वाले राष्ट्रों ने द्वितीय विश्वयुद्ध के मार्ग का निर्माण किया। यदि १८७०-७१ में बिस्मार्क के फ्रांस के प्रति दुर्व्यवहार के कारण १९१४ का युद्ध हुआ तो उसी प्रकार वर्साई की सन्धि ही १९३९ के युद्ध के लिए उत्तरदायी थी। १९१९-२० की शान्ति सन्धि में ही द्वितीय विश्वयुद्ध का बीजारोपण हुआ। जर्मनी के सारे देशभक्तों ने इस सन्धि की शर्तों का घोर विरोध किया था। यह इतना घोर अपमान था कि इसे सहन करना असम्भव था।

(७) जर्मनी के बीच में पोलैण्ड को 'बरामदा' (Corridor) देने से देश को दो भागों में बाँट दिया गया था और जर्मनी की जनता में इससे बड़ा रोष और क्षोभ फैला। इसकी तुलना में कहा जाता था कि शरीर के टुकड़े करके सिर और पैरों को छोड़कर इसका वक्षःस्थल काट लिया गया है।

(८) केवल जर्मनी के साथ ही दुर्व्यवहार नहीं हुआ अपितु इसके सहयोगियों के साथ भी नीचता का व्यवहार किया गया। आस्ट्रिया को एक अत्यन्त छोटा देश बना दिया गया। उसका साम्राज्य, वंश, सेना सब एक भँवर में लुप्त हो गए। हंगरी वालों ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी। चैक (Czech) और स्लोवाक (Slovak) भी अलग हो गए। सर्ब जाति (Serbs) ने अपनी विजय का लाभ उठाया और आस्ट्रिया के मूल्य पर एक विशाल यूगोस्लाविया का निर्माण हुआ। अन्त में लगभग साठ लाख व्यक्तियों वाले मेटरनिक के समय के शक्तिशाली आस्ट्रिया-हंगरी के साम्राज्य का केवल एक छोटा-सा गणतन्त्र बच रहा। वह यूरोप का एक नगण्य-सा देश रह गया और उसका निराशा के घोर गर्त में गिर जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी।

(९) हंगरी को भी कष्ट उठाना पड़ा। उसे अपनी अमैग्यार (Non-Magyar) प्रजा से हाथ धोना पड़ा। स्लोवाकिया चैकों (Czechs) को दे दिया गया। ट्रांसिलवानिया (Transylvania) पर रूमानिया ने अधिकार कर लिया। सर्बिया ने क्रोशिया (Croatia) को अपने राज्य में मिला लिया। लगभग छः लाख मैग्यार जाति के स्त्री-पुरुष तथा उसकी प्रजा के अन्य पैंतालीस लाख व्यक्ति विरोधी राज्य के अधिकार में सौंप दिए गए। मैग्यार जाति के लिए यह एक अत्यन्त अपमानजनक बात थी। मैग्यार सामन्त ट्रांसिलवानिया के रमणीक प्रदेश में अपने खेल किया करते थे और इसके छिन जाने से उनकी भावनाओं को बड़ी ठेस पहुँची।

(१०) सन्धि की एक त्रुटि यह थी कि इससे लगभग दो लाख तीस हज़ार जर्मन टायरोल निवासी और तेरह लाख यूगोस्लाव इटली को सौंप दिए गए।

(११) मित्रराष्ट्रों की आर्मीनिया (Armenia) के ईसाइयों के प्रति व्यवहार की बड़ी निन्दा हुई। इन लोगों ने तुर्की के शासन में घोर अत्याचार सहे थे और समय-समय पर इनकी सामूहिक हत्याएँ की जाती रही थीं। युद्ध के दौरान में ब्रिटेन ने घोषणा की थी कि उन्हें तुर्की की दासता से मुक्ति दिला दी जाएगी। किन्तु जब लासेन्न (Lausanne) में तुर्की से अन्तिम समझौता हुआ तो यह वचन पूरा नहीं किया गया। भाग्यहीन आर्मीनियनों को पूर्णतः तुर्की की दया पर छोड़ दिया गया और बाद में भी उन्हें बड़े कष्ट उठाने पड़े थे।

(१२) आलोचकों का मत था कि क्षतिपूर्ति की धाराओं को कठोरता से लागू करने से, देने तथा लेने वाले दोनों राष्ट्रों का नाश हो जाएगा। क्योंकि जर्मनी को यह क्षतिपूर्ति तीस वर्ष में देनी थी उन्हें निरुत्साहित करने के लिए यही पर्याप्त था। इससे बदले की भावना का जाग्रत होना स्वाभाविक था। इसके अतिरिक्त क्योंकि यह क्षतिपूर्ति माल के रूप में करनी थी, सोने की धातु के रूप में नहीं, अतः इस माल को प्राप्त करने से बेकारी बढ़ जाती, व्यापार मन्दा पड़ जाता और विजयी देशों में समृद्धि समाप्त हो जाती।

(१३) कहा जाता है कि विल्सन के चौदह सिद्धान्तों से सन्धि की शर्तों के हट जाने का अर्थ विश्वासघात था। फ्रांस द्वारा राइन का सीमान्त, इटली द्वारा डलमातिया और पोलैण्ड द्वारा सारा ऊपरी सिलेशिया (Upper Silesia) लेने के प्रयत्न को किसी भी प्रकार जाति के आधार पर न्याययुक्त नहीं कहा जा सकता। यद्यपि इस विषय में समझौता हो गया था तो भी विजेता शक्तियों की इस प्रकार समृद्धि की लालसा चौदह सिद्धान्तों के प्रति भक्ति के अनुकूल नहीं थी।

(१४) यह बात ध्यान रखने योग्य है कि जब जर्मनी को निःशस्त्र बनाया गया तो यह विचार था कि अन्य राष्ट्रों के साथ भी यही कार्यवाही की जाएगी। किन्तु ब्रिटेन को छोड़कर और सारे देश सशस्त्र बने रहे। उन्होंने अपनी शस्त्र-शक्ति को सीमित करने से इन्कार कर दिया और इससे यह आशंका उत्पन्न हो गई कि वे लोग एक और युद्ध के लिए तैयारियाँ कर रहे हैं। इससे शस्त्रीकरण में प्रतियोगिता

होने लगी और इसका परिणाम १९३९ का युद्ध हुआ। यह बात स्मरणीय है कि ब्रिटेन ने अपनी स्थल, जल और वायु सेनाओं को इतना घटा दिया था कि जब १९३९ में द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ तो उसकी सुरक्षात्मक शक्ति अत्यन्त दुर्बल थी और यह अशंका थी कि वह हार जाएगा।

(१५) शान्ति सन्धि के आलोचक विजेताओं की कुटिलता का वर्णन करते हैं। उन्होंने '१९१८ के प्रजातन्त्र देशों के अज्ञान और क्रूरता' की निन्दा की है। कहा जाता है कि यह सन्धि "एक साम्राज्यवादी शान्ति को विल्सन के प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तों के वेश में छुपा देने" के प्रयत्न के कारण दोषी थी।

(१६) इटली को इस सन्धि से बहुत निराशा हुई। १९१५ में जब उसे मित्र राष्ट्रों की ओर से लड़ने के लिए प्रेरित किया गया तो उसे बड़े प्रलोभन दिए गए थे। क्लेमान्सो और लॉयड जार्ज ने ओरलैण्डो की बुरी तरह उपेक्षा कर दी थी। साढ़े सत्रह लाख व्यक्तियों को युद्ध में घायल और मरवा कर तथा १२० करोड़ डालर खर्च करके उसे केवल ट्रेन्टीनो, दक्षिणी टायरोल (Tyrol) और डलमातिया का थोड़ा-सा भाग मिला। यद्यपि उसका बलिदान कम नहीं था और मित्रराष्ट्रों की विजय में उसके सहयोग को मान्यता भी दी गई, फिर भी उसे ब्रिटेन, फ्रांस और जापान के मुकाबले में बहुत कम प्राप्ति हुई। उसे कोई उपनिवेश नहीं दिया गया था। इटली के देशभक्तों को इस बात का बड़ा खेद था कि यद्यपि टायरोल (Tyrol) और फिऊम (Fiume) में इटली भाषा-भाषी जनता थी फिर भी ये प्रदेश इटली को नहीं दिए गए।

(१७) सीमैन के मतानुसार, "वर्साई व्यवस्था की वास्तविक कमजोरी जर्मनी के पूर्व और दक्षिण में छोटे-छोटे राज्य बना देने में नहीं थी अपितु इनको बनाए रखने तथा उनके अस्तित्व की रक्षा करने की व्यवस्था न होने में थी। १९२० में यूरोप के राजनीतिक मानचित्र पर दृष्टि पड़ते ही एक स्वप्न-सा दिखाई पड़ता है। यह स्वप्न स्पष्टतः अतीत की ओर देखने वाले फ्रांसीसी का देखा हुआ है। फ्रांस के प्रतिष्ठित शत्रु हेप्सबर्ग वंशज समाप्त हो गए और जर्मनी निःशस्त्र हो गया। प्राचीन शासन (Ancien regime) का ऋणी जर्मनी है। पोलैण्ड पुनः जीवित हो गया; वह पोलैण्ड जिसका विभाजन बुर्बोर्न वंश की उतनी ही बड़ी पराजय थी जितना कि बास्टाइल का पतन। मित्र ओटोमन तुर्क समाप्त हो गया किन्तु उसके स्थान पर अधिक मैत्रीपूर्ण उत्तराधिकारियों के रूप में यूगोस्लाविया और रूमानिया थे जो जर्मनों को तंग करने के लिए सर्वदा उद्यत रहते थे। अब यदि बैवेरिया जर्मनी पर फ्रांस की ओर से चौकीदारी करने के लिए नहीं रहा था तो सम्भवतः चैकोस्लोवाकिया इस कार्य को अधिक सफलता से कर सकता था। १९२७ तक फ्रांस इन सब राज्यों से सन्धियाँ कर चुका था किन्तु औपचारिक रूप से सन्धि करना इस तथ्य पर जोर देने के लिए कि वर्साई की सन्धि का परिणाम फ्रांस का आदर्श यूरोप था, अनावश्यक था। यह बात तथ्यहीन नहीं है कि इस सन्धि को कुछ आलोचकों ने 'क्लेमान्सो की शान्ति' कहा है। क्योंकि नेपोलियन द्वारा बनाए गए यूरोप के मान-

चित्र को छोड़कर अन्य कोई भी मानचित्र इतना स्पष्टतः 'फ्रांस द्वारा बनाया हुआ' (Made in France) नहीं था। यदि कोई राष्ट्र सफल हो सकता है तो फ्रांस। फैशोदा के बाद उसने जो ताना-बाना बुना उसमें वह १९२० में जाकर सफल हुआ और वह इस तथ्य पर पहुँचा कि उसके राष्ट्रीय पुनर्जीवन के अवसर अफ्रीका में नहीं, अपितु यूरोप में ही हैं।"

विल्सोनियन शान्ति (Wilsonian Peace)—जनवरी, १९१८ में विल्सन ने संसार से मित्रराष्ट्रों को सहायता देने की अपील की क्योंकि वे कुछ मूल सिद्धान्तों के लिए लड़ रहे थे और उसने इन सिद्धान्तों को 'चौदह सिद्धान्तों' के रूप में पेश किया। चौदह सिद्धान्तों में निम्नलिखित व्यवस्थाएँ निहित थीं :—

(१) शान्ति के समझौते सार्वजनिक रूप से किए जाएँगे। कोई गुप्त समझौता नहीं होगा।

(२) प्रादेशिक समुद्री क्षेत्र के बाहर के समुद्रों में युद्ध और शान्ति कालों में समुद्री जहाज़ चलाने की सम्पूर्ण स्वतन्त्रता।

(३) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सब प्रकार के प्रतिबन्धों का हटाना।

(४) राष्ट्रीय शस्त्रों में कमी करना।

(५) उपनिवेशों के दावों का निष्पक्ष निर्णय। केवल उपनिवेशीय शक्तियों के दावों का ही ध्यान नहीं अपितु शासित प्रजा की भावनाओं और हितों का भी ध्यान रखना।

(६) रूस के प्रदेशों को खाली करना। रूस को अपने भविष्य का कार्यक्रम निश्चित करने की पूर्ण स्वतन्त्रता देना।

(७) बेल्जियम को खाली करना तथा पुनर्स्थापन।

(८) फ्रांस के प्रदेश को खाली करके लौटाना तथा १८७१ में फ्रांस के साथ ऐलसेस-लोरेन के मामले में हुए अन्याय को न्याय में परिणत करना।

(९) इटली की सीमा को मान्यता देने योग्य राष्ट्रीयता के आधारों पर निर्धारित करना।

(१०) आस्ट्रिया-हंगरी की जनता की स्वायत्त-शासन की उन्नति।

(११) सर्बिया, मॉण्टीनीग्रो और रूमानिया के प्रदेशों को खाली करके लौटाना तथा सर्बिया को समुद्री मार्ग देना।

(१२) ओटोमान साम्राज्य के तुर्की भाग को सर्वाधिकारसम्पन्न बनाना तथा अन्य भागों को स्वशासन दिलाना और 'स्ट्रेट्स' (The Straits) में जहाज़ चलाने की पूर्ण स्वतन्त्रता दिलाना।

(१३) समुद्री मार्ग सहित स्वतन्त्र पोलैण्ड का निर्माण करना।

(१४) संसार के छोटे और बड़े देशों की भौगोलिक अक्षुण्णता तथा स्वतन्त्रता की सुरक्षा के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना करना।

यह सत्य है कि मित्र राष्ट्रों के परस्पर समझौतों के कारण विल्सन के उपर्युक्त चौदह सिद्धान्तों में अनेक बातों को छोड़ना पड़ा, किन्तु फिर भी बहुत से मौलिक सिद्धान्तों को १९१९-२० की सन्धि में रखा गया। अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना

के विषय में यह सत्य है कि राष्ट्रपति विल्सन के पूर्ण हार्दिक सहयोग के विना लीग ऑफ नेशन्ज़ के कवनैण्ट को सन्धि के मसौदे में सम्मिलित नहीं किया जाता। लीग ऑफ नेशन्ज़ की धारणा मूलतः विल्सन की ही नहीं थी। यह प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान में शान्ति चाहने वाले लोगों की कल्पना थी। इस कल्पना को क्रियात्मक प्रस्ताव का रूप दिया गया और इसमें जनरल स्मट्स और लार्ड फिल्लीमोर का बड़ा सहयोग रहा था। विल्सन ने स्मट्स और फिल्लीमोर का मसौदा लेकर पेरिस में इकट्ठे हुए कूटनीतिज्ञों के सामने एक प्रमुख विचारणीय प्रस्ताव के रूप में रखा। उसने लीग ऑफ नेशन्ज़ के कवनैण्ट का मसौदा तैयार करने वाले एक आयोग की स्वयं अध्यक्षता की थी। यह उसकी महत्ता ही थी जिसके कारण यह कार्य सफलता से सम्पन्न हुआ। राष्ट्रपति विल्सन भले ही अन्य मामलों में समझौते के लिए भी तैयार रहा किन्तु लीग ऑफ नेशन्ज़ के कवनैण्ट को इन सन्धियों में सम्मिलित कराने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ था। इस प्रकार लीग ऑफ नेशन्ज़ का जन्म हुआ।

शान्ति सन्धि का कार्य 'स्वयं निर्णय' (Self-determination) के सिद्धान्त पर हुआ। पोल, चैक, क्रोट, लैट्ट, फिन, अल्साशियन, इत्यादि जातियों को विदेशी शासनों के चंगुल से मुक्त कर दिया गया। यह उल्लेखनीय है कि किसी भी अन्य शान्ति समझौते में जातीयता के सिद्धान्त को इतना महत्त्व नहीं दिया गया था। कई स्थानों पर सार्वजनिक मतदान (Plebiscites) कराए गए और जनता को अपनी इच्छा प्रकट करने का अवसर दिया गया। १९१९-२० की शान्ति सन्धि के अतिरिक्त अन्य किसी भी समझौते ने इतनी बड़ी संख्या में जनसाधारण को विदेशी शासनों के चंगुल से मुक्त नहीं कराया था। १९१४ में चार करोड़ व्यक्ति विदेशों के शासन में रहा करते थे, किन्तु १९१९ में इनकी संख्या कुल एक करोड़ साठ लाख रह गई थी। हरवर्ट फिशर का अनुमान है कि सारे यूरोप की जनसंख्या का केवल तीन प्रतिशत भाग विदेशी शासन में रह गया था। यह बात निर्विवाद है कि वास्तविक क्रियात्मक रूप में जातियों की उलझनें तथा क्षेत्रों की काँट-छाँट तथा अल्पमतों की समस्या को कभी भी सम्पूर्णता सुलझाया नहीं जा सकता, किन्तु फिर भी यथासम्भव इसे सुलझाने का प्रयास किया गया था। अल्पमत जातियों (minorities) की रक्षा के लिए विशेष व्यवस्थाएँ की गईं। धर्म, भाषा और नागरिकता के विषय में उनका संरक्षण किया गया था।

यूगोस्लाविया, पोलैण्ड और चैकोस्लोवाकिया के स्वतन्त्र राष्ट्रों का निर्माण और ऐलसेस-लोरेन का फ्रांस को लौटाना इन चौदह सिद्धान्तों का अनुकरण करना था।

शान्ति के व्यवस्थापक 'एक जाति, एक राज्य' के सिद्धान्त पर छोटे-छोटे राष्ट्र बनाने से भी नहीं हिचके थे।

अमरीका द्वारा वर्साई शान्ति सन्धि की अस्वीकृति (Rejection of the Treaty of Versailles by the U. S. A.)—यद्यपि १९१९-२० की शान्ति-सन्धि का प्रमुख प्रस्तावक राष्ट्रपति विलसन था, फिर भी अमरीका ने वर्साई

की सन्धि को स्वीकार नहीं किया। लीग ऑफ नेशन्ज़ का कवनेण्ट विशेषतः आलोचना का लक्ष्य रहा। प्रजातन्त्रवादी (Democrats) शान्ति सन्धि का समर्थन तथा गणतन्त्रवादी (Republicans) इसका विरोध करते थे। अमरीका के संविधान में किसी भी सन्धि को स्वीकार करने के लिए दो-तिहाई बहुमत की आवश्यकता होती है। सीनेट में अनेक संशोधन प्रस्तावित हुए किन्तु प्रजातन्त्रवादियों (Democrats) ने इन्हें अस्वीकार कर दिया। किन्तु जब १८ नवम्बर, १९१९ को सीनेट में मतदान लिया गया तो ५५ मत पक्ष में और ३९ मत विपक्ष में आए। आवश्यक बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। मार्च, १९२० में एक बार फिर सन्धि को सीनेट की स्वीकृति के लिए रखा गया। यद्यपि पक्ष में ५७ और ३९ मत विरोध में आए तथापि कानून की दृष्टि से सन्धि स्वीकृत नहीं हुई। १९२० में राष्ट्रपति के चुनाव के अवसर पर सन्धि की स्वीकृति, प्रजातन्त्रवादी दल की पराजय का मुख्य और महत्त्वपूर्ण कारण था। किन्तु नई सरकार ने जर्मनी, आस्ट्रिया और हंगरी से पृथक् सन्धियाँ कीं, जिन्हें अक्तूबर, १९२१ में सीनेट ने स्वीकार किया।

शान्ति सन्धि पर लायड जार्ज का मत (Lloyd George on Peace Settlement)—शान्तिसन्धि पर लायड जार्ज के विचारों का उल्लेख लाभदायक है। उसने १९१९ में हाउस ऑफ कामन्ज़ में कहा था, "मैं नहीं समझता कि कोई भी व्यक्ति सन्धि की शर्तों को अन्यायपूर्ण कह सकता है क्योंकि ऐसा वही व्यक्ति कहेगा जो इस बात में विश्वास करता है कि युद्ध छेड़ने में जर्मनी का कार्य न्यायपूर्ण था।" उसने कहा कि समझौते की कुछ शर्तें डरावनी थीं किन्तु जर्मनी की करतूतें भी अत्यन्त डरावनी थीं। "सारा विश्व इस असफल आघात से डगमगा रहा है। यदि यह चोट सफल हुई होती तो यूरोप की स्वतन्त्रता लुप्त हो गई होती।" ऐलसेस-लोरेन, पोलैण्ड, श्लैसविग इत्यादि प्रदेशों का उल्लेख करते हुए उसने कहा कि "ये प्रदेश किसी प्रकार जर्मनी के पास नहीं रहने चाहिएँ।" उसने कहा कि, युद्ध की पुनरावृत्ति के विरुद्ध सचेत रह कर व्यवस्था करना और जर्मनी का ऐसा उदाहरण बना देना कि भविष्य में कोई भी शासक और जनता इस दुष्ट भावना का विचार भी न कर सके, प्रतिरोध की भावना नहीं है। जर्मनी की जनता युद्ध की समर्थक थी इसलिए यह आवश्यक था कि इन शर्तों से यह स्पष्ट कर दिया जाए कि यदि कोई राष्ट्र अपने पड़ोसी राष्ट्रों पर बिना उत्तेजना के आक्रमण करेगा तो उसका उसे क्या फल भोगना पड़ेगा। जर्मनी ने जो कार्य अपनी सेना से युद्ध में कराए उन्हें देखते हुए उसकी सेना को निःशस्त्र करके भंग कर देना अन्याय नहीं है। यदि मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी के उपनिवेश; उनके द्वारा वहाँ की जनता पर किए गए अत्याचारों और जनता द्वारा मुक्ति के लिए संघर्ष को देखते हुए भी वापिस कर दिए होते, तो यह वहाँ की जनता के साथ विश्वासघात होता। जहाँ तक युद्ध के अपराधियों पर मुकदमों के चलाने का प्रश्न है—यदि इस प्रकार के युद्धों को बन्द करना है तो जो लोग व्यक्तिगत रूप से इसके उत्तरदायी हैं, जिन्होंने इन युद्धों की योजनाएँ बनाई हैं, उन्हें व्यक्तिगत रूप से

उत्तरदायी बनाना होगा । इसलिए मित्रराष्ट्रों की दृष्टि में उस व्यक्ति को दण्ड देना चाहिए जिसने सम्मानपूर्ण सन्धियों को तोड़ा और इस प्रकार युद्ध आरम्भ किया । यह दुःख है कि इस प्रकार की व्यवस्था कभी पहले नहीं की गई अन्यथा पहले की अपेक्षा कम युद्ध होते ।"

सीमेन के मतानुसार, "स्लाव जाति तथा ट्रान्सिलवानिया के किसानों को स्वतन्त्र करके १६१६ की सन्धियों द्वारा केवल जर्मनी (Reich) को नियन्त्रित करना न्यायपूर्ण है । शान्ति और न्याय दोनों ही अनेक शताब्दियों के पश्चात् इन सन्धियों से परिपूर्ण हुए । द्वितीय युद्ध का कारण वर्साई की सन्धि नहीं अपितु १६३८-३६ में जर्मनी द्वारा इस सन्धि को सफलता से भंग करना था । इस सन्धि के विरुद्ध जर्मनी का वास्तविक क्षोभ इसलिए नहीं था कि यह उन पर बलपूर्वक लाद दी गई थी या राष्ट्रपति विल्सन ने उनसे धोखा किया था । इसका वास्तविक कारण यह था कि इस सन्धि ने उन्हें विस्टुला नदी (R. Vistula) और डैन्यूब नदी (R. Danube) की घाटियों पर शासन करने तथा शोषण करने और यूक्रेन (Ukraine) और एशिया माइनर के मार्गों से दूर कर दिया था । इस सन्धि ने बलपूर्वक इस बात पर ज़ोर दिया कि दक्षिण-पूर्वी यूरोप में स्लाव जाति का भी स्वतन्त्र रहने का उतना ही अधिकार है जितना जर्मन और मैग्यार जाति को है ।"

Suggested Readings

Adam : *Clemenceau.*
Bakeless, J. : *Economic Causes of Modern War.*
Baker : *What Wilson did at Paris?*
Baker : *Wilson and World Settlement.*
Barnes, H. E. : *The Genesis of the World War, 1926.*
Bethmann Hollweg : *Reflections on the World War.*
Birdsall : *Versailles Twenty Years After, 1941.*
Carey and Scott : *An Outline History of the War.*
Churchill, W. : *The World Crisis.*
Churchill, W. : *The Aftermath.*
Chitwood, O. P. : *The Immediate Causes of the Great War.*
Cruttwell, C. R. M. : *A History of the Great War, 1934.*
Davis, W. S. : *Roots of the War.*
Halevy, E. : *The World Crisis of 1914-18.*
Hart, B. H. L. : *The Real War, 1914-18.*
Harris : *The Peace in the Making.*
Hayes : *Brief History of the Great War.*
House and Seymour : *What Really happened in Paris?*
Keynes : *Economic Consequences of the Peace.*
Keynes : *A Revision of the Treaty.*
Lawrence, T. E. : *Revolt in the Desert.*
Lee : *Ten Years, The World on the Way to War.*
Lloyd George : *Memoirs of the Peace Conference.*
Mckinley, A. E. : *Collected Materials for the Study of the War,*
Newbolt, Sir Henry : *A Naval History of the War. 1914-18.*
Nicolson. H. : *Peace-making, 1919.*
Pollard : *Short History of the Great War.*

Ramsay Muir : *Political Consequences of the Great War.*
Riddle : *Treaty of Versailles.*
Rose : *Origins of the War.*
Scott, A. P. : *Introduction to Peace Treaties.*
Seton-Watson, R.W.: *Sarajevo, 1926.*
Simonds, F. H. : *The World War.*
Stive : *Izvolsky and the World War.*
Schmitt, B. E. : *The Coming of the War, 1914 (2 Vols.)*
Temperley (ed.) : *History of the Peace Conference of the Paris (5 Vols.).*
Wolff : *The Eve of 1914.*

अध्याय ३२

प्रथम व द्वितीय विश्वयुद्धों के मध्य यूरोप की स्थिति

(Europe between the Two World Wars)

इस अध्याय में १९१९ से १९३९ तक की अवधि में यूरोप में घटित महत्त्व-पूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया जाएगा। आरम्भ में लीग ऑफ़ नेशन्ज़ (League of Nations) की चर्चा की जाएगी जिसकी स्थापना राष्ट्रपति विल्सन के सतत प्रयत्नों के पश्चात् की गई थी।

लीग ऑफ नेशन्ज (League of Nations)—वास्तव में लीग की स्थापना १९२० में स्विट्ज़रलैण्ड के जेनेवा नगर में की गई। लीग ऑफ नेशन्ज़ के कवनैण्ट की प्रस्तावना में कहा गया है कि "इस प्रतिज्ञा-पत्र को स्वीकार करने वाले राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की वृद्धि के लिए, स्पष्ट, न्यायपूर्ण तथा परस्पर सम्मानपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करके, राष्ट्रों में पारस्परिक व्यवहार में अन्तर्राष्ट्रीय कानून (International Law) को स्थापित करके और व्यवस्थित देशों में किए गए पारस्परिक समझौतों तथा प्रतिज्ञाओं के प्रति न्याय तथा आदर की भावना दृढ़ करके, युद्ध न करने की प्रतिज्ञा से अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए लीग ऑफ नेशन्ज़ के इस कवनैण्ट को स्वीकार करते हैं।"

लीग ऑफ नेशन्ज के कार्य विभाग थे—सभा (Assembly), परिषद् (Council), सचिवालय (Secretariat) और स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (Permanent Court of International Justice)। 'सभा' (Assembly) सर्वोच्च थी और लीग ऑफ नेशन्ज में आस्था रखने वाले विभिन्न राष्ट्रों के प्रति-निधि इसके सदस्य थे। प्रत्येक सदस्य-राष्ट्र को इस सभा में एक मत (Vote) देने का अधिकार था। 'सभा' के सारे निर्णय सर्वसम्मति से होते थे। 'परिषद्' (Council) में चार स्थायी सदस्य थे और अन्य चार सदस्यों को 'सभा' चुनती थी। किन्तु इसके बाद १९२६ में जर्मनी को भी स्थायी सदस्य बना लिया गया। अस्थायी सदस्यों की संख्या निरन्तर बढ़ती गई और अन्त में यह संख्या ग्यारह तक जा पहुँची। 'सभा' और 'परिषद्' में 'सभा' निस्सन्देह अधिक शक्तिशाली थी। 'सभा' एक प्रकार का अन्तर्राष्ट्रीय विधान-मण्डल (International Parliament) था और इसकी कार्यवाही संसार भर के देशों को भेजी जाती थी। इसने प्रतिष्ठा और सम्मान दोनों प्राप्त किए। इसका अधिकांश कार्य उप-समितियों (Sub Committees) द्वारा सम्पन्न होता था। लीग ऑफ नेशन्ज़ का 'सचिवालय' (Secretariat) जेनेवा में स्थित था और महासचिव (Secretary General)

सर्वोच्च पदाधिकारी था। 'परिषद्' उसकी नियुक्ति करती थी, किन्तु इस सम्बन्ध में 'सभा' की अनुमति आवश्यक थी। 'सचिवालय' के अधिकारियों की नियुक्ति परिषद् की अनुमति लेकर महासचिव करता था। सदस्य-राष्ट्रों को एक विशेष अनुपात से 'सचिवालय' का व्यय-भार उठाना पड़ता था। 'परिषद्' और 'सभा' के अधिवेशन विशिष्ट अवधि में होते थे, किन्तु 'सचिवालय' वर्ष भर अपना कार्य करता था, क्योंकि इसके बिना लीग का कार्य चलना असम्भव था। 'स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय' (Permanent Court of International Justice) में १५ न्यायाधीश थे और इसका प्रमुख कार्यालय हेग (Hague) में था। यह अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों की व्याख्या और सन्धियों और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय पारस्परिक विवादों के प्रश्नों के सम्बन्ध में अपना निर्णय करता था, ताकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था स्थापित रह सके। न्यायाधीशों का चुनाव 'सभा' और 'परिषद्' की संयुक्त बैठक में ९ वर्ष के लिए किया जाता था। 'अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-कार्यालय' (International Labour Office) भी लीग का एक प्रकार से एक अंग बनकर कार्य करता था। संसार के विभिन्न भागों में श्रमजीवियों की स्थिति में सुधार करना इसका उद्देश्य था। इसकी प्रबन्धकारिणी में सरकारी प्रतिनिधि, स्वामियों और श्रमिकों के प्रतिनिधि थे। इसके सम्मेलन वार्षिक होते थे और इन सम्मेलनों में महत्त्वपूर्ण निर्णय किए जाते थे।

लीग ऑफ़ नेशन्ज़ का मुख्य उद्देश्य था युद्ध न होने देना, संसार में शान्ति स्थापित करना और इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पूर्ण शक्ति से प्रयत्न करना, शस्त्रीकरण पर रोक लगाना, तथा सैन्य-शक्ति को इतना घटा देना, ताकि वह प्रत्येक देश में शान्ति और व्यवस्था की रक्षा कर सके तथा विदेशी आक्रमण को रोक सकने के लिए सशक्त हो। लीग की ओर से सदस्य-राष्ट्रों से यह माँग की गई कि वे तब तक युद्ध नहीं करेंगे जब तक शान्तिपूर्ण साधन उनका झगड़ा निपटाने में समर्थ रहेंगे। 'सभा', 'परिषद्' और 'स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय' को शान्त बनाए रखने में सहायता करनी होती थी। लीग के संविधान (Covenant) का उल्लंघन करने वाले राष्ट्र के विरुद्ध सामूहिक कार्यवाही करने की भी व्यवस्था थी। विद्रोही राष्ट्रों के विरुद्ध दबाव डालने की कार्यवाही की भी व्यवस्था थी। आक्रमणकारी देश पर आर्थिक नाकाबन्दी (Economic Sanctions) करने की भी व्यवस्था थी।

लीग ऑफ़ नेशन्ज़ में 'संरक्षण प्रणाली' (Mandate System) की व्यवस्था थी। केन्द्रीय शक्तियों (Central Powers) और तुर्की से छीने हुए प्रदेशों को उन्हें नहीं लौटाया गया और न ही ये प्रदेश विजेता राष्ट्रों को प्रभुत्व सहित दिए गए। उन प्रदेशों का राज्य-प्रबन्ध लीग की देख-रेख में विभिन्न शक्तियों के हाथों में सौंप दिया गया। इस नई नीति के आधार की व्याख्या इस प्रकार की गई : "उन उपनिवेशों और प्रदेशों के लिए जो गतयुद्ध के परिणामस्वरूप उन देशों के अधिकार में नहीं रहे, जिनका उन पर पहले अधिकार था और जहाँ की जनता आधुनिक युग की कठोर जीवन-चर्या को नहीं चला सकती, इस सिद्धान्त का प्रयोग किया जाए कि इस प्रकार के देशों की उन्नति और भलाई सभ्य राष्ट्रों की पवित्र धरोहर (Sacred

Trust) है और इस धरोहर की रक्षा के लिए इस संविधान में उचित व्यवस्था की जाए। इस सिद्धान्त को वास्तविक और सुचारु ढंग से कार्य रूप में परिणत तभी किया जा सकता है जब उन्हें उन उन्नत देशों के संरक्षण में रखा जाए, जो अपने साधनों, अनुभवों अथवा भौगोलिक विशेषताओं के कारण लीग की ओर से इनके संरक्षण का उत्तरदायित्व सम्भाल सकें। संरक्षण की व्यवस्था, संरक्षित देश के लोगों की आर्थिक अवस्था, देश की भौगोलिक स्थिति तथा अन्य कारणों के अनुसार परिवर्तनशील होगी।"

लीग का मूल्यांकन (Estimate of the League)—यह निर्विवाद तथ्य है कि लीग संसार के अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के विकास की दिशा में एक महान् प्रयत्न थी। इसने विश्व की मूल तथा प्रभावशाली समस्याओं की ओर संसार का ध्यान आकर्षित किया। इसने एक ऐसी न्याय-व्यवस्था स्थापित की जिसके आधार पर अनेक राष्ट्र अपनी समस्याओं पर विचार कर सकते थे और विश्व के विभिन्न भागों की समस्याओं का हल निकालने के लिए प्रयत्न कर सकते थे। इसने विश्व के सम्मुख एक उच्च आदर्श रखा। लीग कुछ देशों के झगड़े निपटाने में भी सफल हुई। १९२४-२५ में तुर्की और ईराक में झगड़ा हुआ, किन्तु लीग के हस्तक्षेप द्वारा उसे सफलतापूर्वक निपटा दिया गया। लीग ने एक निष्पक्ष सीमा आयोग (Neutral Boundary Commission) बनाया और उसके सुझावों को तत्सम्बन्धित पक्षों ने स्वीकार किया था। १९२५ में बल्गारिया और ग्रीस में सीमा-सम्बन्धी विवाद उठ खड़ा हुआ। ग्रीस को बल्गारिया की सीमा से सेनाएँ हटाने के लिए विवश कर दिया गया और उसके इस कृत्य को अवैध घोषित करके सीमोल्लंघन के अपराध में क्षति-पूर्ति भी देनी पड़ी। लीग ऑफ़ नेशन्ज़ ने पोलैण्ड और लिथुआनिया के तनाव को भी सफलतापूर्वक कम कर दिया। इसने अल्प-मत-जातियों (Minorities) के लिए भी बहुत कार्य किया। लीग ने 'सार घाटी' (Saar Valley) के प्रदेश पर १५ वर्ष तक शासन किया और वहाँ मतदान (Plebiscite) भी कराया। आर्थिक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहन दिया गया, अनेक दिशाओं में मानव कल्याण सम्बन्धी कार्य किए गए, यथा वेश्यावृत्ति निरोध, नशे की वस्तुओं पर प्रतिबन्ध, बच्चों की उन्नति, शरणार्थियों की देख-भाल, इत्यादि।"

किन्तु लीग अपने मुख्य उद्देश्य विश्व में शान्ति स्थापित करने में असफल रही। निरन्तर दो दशाब्दियों (decades) तक प्रयत्न करने पर भी १९३९ में सारा संसार युद्ध-ग्रस्त हो गया। उस समय तक लीग की सारी व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। लीग की असफलता के अनेक कारण थे। यह दुर्भाग्य की बात है कि लीग का संविधान शान्ति-सन्धि का एक आवश्यक अंग माना गया। यदि इसे अलग ही रखा जाता तो अच्छा होता। ऐसे बहुत से देश थे जो वर्साई की सन्धि को 'प्रतिशोध सन्धि' मानते थे और इसलिए इसे स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। सन्धि को अस्वीकार करने के कारण वे लीग के सदस्य नहीं बन सकते थे। इस अन्तर्राष्ट्रीय संस्था से बड़ी शक्तियों के पृथक् रहने से यह दुर्बल रही और यह

इसकी असफलता के कारणों में एक कारण था। इस प्रकार जापान, जर्मनी और इटली भी लीग को छोड़ गए और उनके इस परित्याग ने लीग को क्षीण कर दिया। सर्वसाधारण की यह धारणा थी कि इंग्लैण्ड और फ्रांस का इसमें प्रभुत्व है अतः अन्य राष्ट्रों का इस पर से विश्वास उठ गया। लीग को विश्व में 'यथा स्थिति' (Status quo) बनाए रखने का असम्भव कार्य सौंपा गया था। यह अपना कार्य तभी कर सकती थी जब १९१८-२० की शान्ति-सन्धि न्याय और औचित्य पर आधारित होती। क्योंकि जर्मनी जैसे देश पूर्णतः अपमानित कर दिए गए थे इस कारण स्थायी शान्ति की आशा नहीं की जा सकती थी। जर्मनी द्वारा वर्साई सन्धि की व्यवस्था को तोड़ना अनिवार्य था क्योंकि उसकी धारणा थी कि उसने सन्धि को स्वेच्छा से नहीं माना अपितु यह व्यवस्था उस पर संगीन की नोक पर थोपी गई थी। इस प्रकार के वातावरण में कोई भी संस्था शान्ति स्थापित करने में असफल हो जाती। इटली, जापान और जर्मनी में तानाशाही के प्रादुर्भाव के कारण लीग की सफलता की सम्भावना और भी कम हो गई। जापान राज्यवृद्धि के लिए दृढ़-संकल्प था और कट्टर देशक्ति के कारण उसने अन्तर्राष्ट्रीय कानून और सदाचार की पूर्ण अवहेलना कर दी। यदि लीग उसके द्वारा मञ्चूरिया विजय के अपराध को क्षमा नहीं कर सकती थी तो जापान भी उसकी सदस्यता छोड़ने को तैयार था और अन्त में उसने वास्तव में किया भी ऐसा ही। इसी प्रकार जब लीग ने इटली द्वारा ऐबीसिनिया (Abyssinia) पर आक्रमण करने के अवसर पर उसके विरुद्ध कार्यवाही करने का निश्चय किया तो इटली ने लीग छोड़ दी। जर्मनी भी वर्साई की सन्धि की निःशस्त्रीकरण की व्यवस्था को मानने के लिए तैयार नहीं था अतः वह भी लीग से पृथक् हो गया। अन्य देश भी उसी समय तक सदस्य बने रहे जब तक उनके स्वार्थों को चोट नहीं पहुँचाई गई। उन्होंने इस अन्तर्राष्ट्रीय संस्था को बनाए रखने की अपेक्षा अपने राष्ट्रीय स्वार्थों को अधिक श्रेष्ठ माना। छोटे राष्ट्रों की भी लीग पर से आस्था उठ गई कि वह आक्रमण से उनकी रक्षा कर सकेगी। सामूहिक सुरक्षा (collective security) के सिद्धान्तों का क्रियात्मक रूप से कभी पालन नहीं किया गया। यदि सारे सदस्यों ने जापान और इटली के क्रमशः मञ्चूरिया और ऐबीसीनिया पर आक्रमण करने के समय सामूहिक कार्यवाही की होती तो आक्रमण रुक जाते और इससे लीग की प्रतिष्ठा बढ़ जाती। प्रत्येक देश द्वारा अपनी-अपनी नीति का अनुसरण करने के कारण, सामूहिक सुरक्षा का सिद्धान्त निर्बल हो गया और इस कारण हिटलर की आक्रामक नीति को रोकने के लिए कोई साधन नहीं रह गया था। लीग के हाथों में आर्थिक निषेध (Economic sanctions) का महत्त्वपूर्ण शस्त्र दिया गया था, किन्तु इस शस्त्र का प्रयोग इस प्रकार नहीं किया गया कि परिणाम शुभ होते। आर्थिक निषेध के अधिकार का प्रयोग इटली के विरुद्ध अत्यन्त संकोच के साथ किया गया और इसी कारण इससे लक्ष्य-सिद्धि न हो सकी। लीग विभिन्न सरकारों के प्रतिनिधियों की संस्था थी, विभिन्न देशों की जनता के प्रतिनिधियों की संस्था नहीं। बस इसी कारण यह असफल हुई। विभिन्न राष्ट्रों की

जनता को इसके मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार न था। अतः इसे विश्व के जनसाधारण का समर्थन प्राप्त न हो सका।

फ्रांस (France)—१९१९ के पश्चात् फ्रांस के शासकों के सम्मुख राष्ट्र की सुरक्षा की समस्या आई। विजयी होने पर भी वह डगमगा रहा था और उसे भविष्य में जर्मनी से भय हो गया था। "राइन नदी के बाएँ तट पर तथा इसके पुलों पर जर्मनी का अधिकार हो जाने के कारण आतंक छा गया है। वर्त्तमान परिस्थितियों में पश्चिमी तथा समुद्र-पार के प्रदेशों की सुरक्षा के लिए यह अत्यावश्यक हो गया है कि जर्मनी से राइन नदी के पुलों की रक्षा की जाए।" फ्रांस ने मित्र-राष्ट्रों से सुरक्षा का आश्वासन प्राप्त करना चाहा, किन्तु वह इस दिशा में असफल रहा। यह सत्य है कि १९२२ में ब्रिटेन ने फ्रांस को जर्मनी के विरुद्ध सुरक्षा का आश्वासन दिया, किन्तु पोएनकेयर (Poincare) के नेतृत्व में फ्रांस की सरकार उसकी शर्तों से सन्तुष्ट नहीं हुई। अतः इस आश्वासन को अस्वीकृत कर दिया गया। १९२० में फ्रांस ने बेल्जियम से एक सैनिक सन्धि की। १९२१ में उसने पोलैण्ड से सन्धि की। फ्रांस ने पोलैण्ड को बड़े परिमाण में युद्ध सामग्री देना स्वीकार किया और वास्तव में उसने अपना वचन पूरा भी किया। यूगोस्लाविया, रूमानिया और चैकोस्लोवाकिया ने हंगरी के विरुद्ध एक संगठन किया जसे 'लिटल आन्ता' (Little Entente) कहा जाने लगा। फ्रांस ने भी इस संगठन के सदस्य-देशों से सन्धियाँ कर लीं। इसके परिणमस्वरूप ये देश फ्रांस के अनुयायी बन गए। इन अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों का परिणाम यह हुआ कि फ्रांस का कर्त्तव्य हो गया कि वह लिथुआनिया के विरुद्ध पोलैण्ड की सहायता करे और बल्गारिया के विरुद्ध रूमानिया और यूगोस्लाविया की सहायता करे। इसी प्रकार उसे हंगरी और यूगोस्लाविया के विरुद्ध चैकोस्लोवाकिया की मदद करनी था।

१९२३ में फ्रांस की सैनिक टुकड़ियों ने इस बहाने की आड़ में कि जर्मनी ने युद्ध की क्षति-पूर्ति की रकम नहीं दी है, जर्मनी के रूहर घाटी (Ruhr Valley) के प्रदेश पर अधिकार कर लिया। यद्यपि इस प्रदेश पर फ्रांस का अधिकार केवल एक ही वर्ष रहा, किन्तु इस अवधि की स्मृति फ्रांस और जर्मनी के बीच अत्यन्त कटु रही। १९२४ में फ्रांस ने जेनेवा प्रतिज्ञा पर इस कारण हस्ताक्षर नहीं किए कि उसकी शर्तों से उसे सहमति नहीं थी। किन्तु जर्मनी और फ्रांस की सीमाओं की सुरक्षा सम्बन्धी लोकार्नो सन्धि (Locarno Pact) पर फ्रांस ने १९२५ में हस्ताक्षर किए और इस सन्धि ने जर्मनी और फ्रांस के बीच की सीमा के प्रश्न को सुलझा दिया। इंग्लैण्ड और इटली इस सन्धि के साक्षी रहे। १९३३ में फ्रांस 'चार-शक्तियों की सन्धि' (Four-Power Pact) का सदस्य बना। इस सन्धि के सदस्य-राष्ट्र जर्मनी, ब्रिटेन, इटली और फ्रांस थे। इस सन्धि में सम्मिलित होने के कारण फ्रांस के प्रति 'आन्ता राष्ट्रों' (Entente Powers) को सन्देह हो गया कि फ्रांस उनके प्रति उदासीन है और अपने स्वार्थ के लिए उनका बलिदान कर देना चाहता है। १९३५ में फ्रांस ने रूस से सन्धि की। यह एक 'पंचवर्षीय-अनाक्रमण

सन्धि थी। इसमें दोनों ने 'अकारण आक्रमण' होने की अवस्था में परस्पर सहायता करने की प्रतिज्ञा की। यह सन्धि १८९४ की फ्रांस-रूस सन्धि के प्रकार की सन्धि थी। आरम्भ में फ्रांस और इटली के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे, किन्तु १९३३ में फ्रांस और इटली दोनों ही 'चार-शक्तियों की सन्धि' (Four-Power Pact) में सम्मिलित हो गए। १९३५ में लावल (Laval) ने इटली की सरकार से अनेक समझौते किए जिनके द्वारा दोनों देशों के पुराने झगड़े निपटा दिए गए। १९३५ के फ्रांस-इटली के समझौते के कारण ही फ्रांस ने ऐबीसीनिया के मामले में इटली का समर्थन किया था। जब स्पेन में गृह-युद्ध (Civil War) हुआ तो हिटलर और मुसोलिनी ने जनरल फ्रेंको (General Franco) की सहायता की और फ्रांस ने स्पेन की प्रजातन्त्रात्मक सरकार की सहायता की। फ्रांस की सहायता करने पर भी जनरल फ्रेंको सफल हुआ। १९३८ में चैकोस्लोवाकिया के मामले में फ्रांस ने इंगलैण्ड का साथ दिया था। १९३८ के म्यूनिक समझौते (Munich Pact) पर हस्ताक्षर करने वाले देशों में फ्रांस भी एक था। फ्रांस ने जर्मनी के विरुद्ध सितम्बर, १९३९ में युद्ध घोषणा की और जर्मनी को जून, १९४० में आत्मसमर्पण करना पड़ा।

इटली (Italy)—पूर्व लेख में कहा जा चुका है कि १९२२ में मुसोलिनी (Mussolini) ने इटली में अपनी तानाशाही (Dictatorship) स्थापित कर ली थी। इसके शासनकाल में रोम के प्राचीन गौरव को पुनः प्राप्त करने का प्रयास किया गया था। जनता में सैन्य-भावना को जगाया गया। आरम्भ में मुसोलिनी ने जर्मनी द्वारा आस्ट्रिया पर अधिकार करने का विरोध किया। किन्तु ऐबीसीनिया की युद्ध के पश्चात् परिस्थिति बदल गई और 'बर्लिन-रोम धुरी' (Berlin-Rome Axis) का प्रादुर्भाव हुआ। इटली और जर्मनी दोनों ने स्पेन की प्रजातन्त्रात्मक सरकार को नष्ट करने में सहायता दी। वास्तव में बाद में इटली जर्मनी का अनुयायी बन गया। उसने द्वितीय विश्व-युद्ध में जर्मनी की ओर से युद्ध लड़ा।

रूस (Russia)—१९१७ में रूस में बोल्शेविक-शासन (Bolshevist Regime) की स्थापना हुई। साम्यवादियों (Communists) की इच्छा थी कि उनकी विचारधारा का विश्व भर में प्रचार हो। इसलिए एक पक्ष में रूस और दूसरे पक्ष में मित्र-राष्ट्रों के बीच संघर्ष छिड़ गया। यह भी सत्य है कि बोल्शेविक शासन के विरोधियों की पश्चिमी प्रजातन्त्रात्मक देशों ने सहायता की जिसके कारण घोर रक्तपात और विनाश हुआ। किन्तु १९२१ में इन कठिनाइयों के होने पर भी रूस ने आक्रमणकारियों को भगा दिया और विद्रोहियों को कुचल दिया। १९२१ में ब्रिटेन ने रूस से एक व्यापारिक समझौता करके नवीन शासन को मान्यता (recognition) दी। रूस ने जर्मनी से रापोल्लो (Rapollo) की सन्धि की। दोनों देशों ने पारस्परिक दावे समाप्त करके व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित कर लिये। १९२४ में फ्रांस और ब्रिटेन ने रूस को औपचारिक रूप से मान्यता (De Jure Recognition) दी। इटली और जापान ने भी उनका अनुसरण किया। अमरीका ने १९३३ में उसे मान्यता दी।

आरम्भ में रूस के साम्यवादी समस्त विश्व में साम्यवाद का प्रसार करना चाहते थे और इसके लिए वे सब कुछ करने के लिए उद्यत थे। किन्तु स्टालिन (Stalin) के नेतत्व में रूस की नीति में परिवर्तन हुआ और उसने रूसी जनता के उत्साह को अपने देश की उन्नति के लिए ही केन्द्रित कर दिया। परिणामतः अन्य देशों में साम्यवादी प्रचार बन्द कर दिया गया और इस नई नीति से एक नवीन परिस्थिति का जन्म हुआ। १६३३ में जर्मनी में हिटलर (Hitler) सत्तासीन हुआ और उसने अपने को साम्यवाद का कट्टर शत्रु घोषित किया। उसके इस रुख के कारण रूस प्रजातन्त्रात्मक देशों की ओर झुकने लगा। १६३८ में रूस लीग ऑफ नेशन्ज़ का सदस्य बन गया। १६३५ में रूस ने फ्रांस से एक सैनिक समझौता किया।

सोवियत रूस को हिटलर की ओर से युद्ध की आशंका थी अतः उसने अपनी सुरक्षा के लिए पूर्ण शक्ति से व्यवस्था करने का प्रयास किया। १६३६ में रूस के पास अनुमानतः तेरह लाख सैनिक, छः हज़ार टैंक और सात हज़ार वायुयान थे। यंत्र-चालित शस्त्रों (mechanised armaments) का उत्पादन बढ़ाने का पूरा प्रयत्न किया गया। सितम्बर, १६३६ में रूस के युद्ध-मन्त्री वोरोशिलोव ने कहा था कि, "जब शत्रु सोवियत यूक्रेन अथवा सोवियत वायलो रशिया अथवा सोवियत संघ के किसी भी भाग पर आक्रमण करेगा, हम उसे अपने देश पर आक्रमण करने से नहीं रोकेंगे, किन्तु फिर भी उसके देश में आ जाने पर उसे उसके अपने ही देश में परास्त अवश्य कर दिया जाएगा।"

हिटलर चतुर व्यक्ति था और वह उपयुक्त प्रकार से तथा समय पर अपनी नीति को बदलना जानता था। वह प्रकट रूप से साम्यवाद की कटु आलोचना करता रहा और उसने रूस पर उसकी सैन्य-शक्ति के डर से आक्रमण नहीं किया, किन्तु अन्य देशों पर आक्रमण करने का उसने पूर्ण निश्चय किया। पश्चिमी यूरोप की प्रजातन्त्रीय सरकारें यह विश्वास करती रहीं कि हिटलर उन पर आक्रमण करने की अपेक्षा रूस को समाप्त करना अधिक पसन्द करेगा। घटना-चक्र ने सिद्ध कर दिया कि इस दिशा में उन्हें बड़ा भ्रम था।

ऐबीसीनिया के मामले में रूस ऐबीसीनिया की रक्षा करने के पक्ष में था किन्तु फ्रांस और ब्रिटेन ने उसका साथ नहीं दिया। स्पेन में गृह-युद्ध छिड़ जाने पर भी इंग्लैण्ड और फ्रांस ने तटस्थ रहने की नीति अपनाई और स्पेन के प्रजातन्त्रीय शासन की रक्षा करने में रूस को सहयोग देना अस्वीकार कर दिया। १६३८ में चैकोस्लोवाकिया की समस्या के अवसर पर भी रूस ने इंग्लैण्ड और फ्रांस से इस देश की रक्षा के लिए सहयोग की माँग की, किन्तु पश्चिमी प्रजातन्त्रीय देशों ने साथ देने से इन्कार कर दिया। मार्च, १६३६ में मार्शल स्टालिन ने इन तथ्यों का उल्लेख करते हुए कहा था कि, "आक्रमण की नीति को न अपनाने वाले देशों ने, विशेषतः इंग्लैण्ड और फ्रांस ने, सामूहिक सुरक्षा की नीति को छोड़ दिया है—उस नीति को जो आक्रमणकारी का सामूहिक रूप से विरोध करती थी।

उन्होंने हस्तक्षेप न करने की स्थिति में निष्पक्षता की नीति अपना ली है। हस्तक्षेप न करने की नीति, प्रतीक्षा की नीति, आक्रमणकारी को उसके घृणित कार्य से न रोकने की इच्छा, जापान को चीन से व्यर्थ ही युद्ध करने से न रोकने की और वस्तुतः सोवियत रूस से युद्ध करने की भावना, जर्मनी को यूरोप के मामलों में उलझने से न रोकने की भावना, अथवा बड़ी सरलता से उसे सोवियत रूस से युद्ध में उलझने देने की भावना की जड़ें गहरी पैठ गई हैं। उदाहरणतः जर्मनी को लीजिए। इन्होंने इसे आस्ट्रिया हड़प करने दिया। विशेषतः जबकि उसने उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा करने का वचन दिया हुआ था। इन्होंने उसे सूडेटन (Sudeten) प्रदेश पर अधिकार करने दिया। इन्होंने चैकोस्लोवाकिया को उसके भाग्य पर छोड़ दिया और इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा भंग की है। उन्होंने अपने समाचारपत्रों में रूस की सेना की निर्बलता के विषय में बहुत कुछ कहना आरम्भ कर दिया है, रूस की वायुसेना को भंग किए जाने के विषय में कहा है, रूस में विद्रोह होना बताया गया है। उन्होंने जर्मनी को पूर्व की ओर बढ़ने के लिए उकसाया है, उसे सरलता से विजय प्राप्त करने का लालच दिलाया है। उन्हें उत्साह दिलाया है कि यदि वे रूस पर आक्रमण कर देंगे तो उनके लिए अत्यन्त शुभ होगा।

"ब्रिटेन, फ्रांस और अमरीका के समाचारपत्रों द्वारा किया गया झूठा प्रचार इसका स्पष्ट उदाहरण है। इन देशों के पत्रकारों के चीखते-चीखते गले बैठ गए कि 'जर्मनी की सेनाएँ सोवियत यूक्रेन की ओर बढ़ रही हैं, उन्होंने 'कारपेथियन यूक्रेन' कहा जाने वाला प्रदेश जीत लिया है, जिसकी जनसंख्या सात लाख है तथा बसन्त के आते ही वे सोवियत यूक्रेन पर अधिकार कर लेंगे, जिसकी जनसंख्या कारपेथियन यूक्रेन कहे जाने वाले प्रदेश से ३ करोड़ अधिक है।" ऐसा प्रतीत होता है कि इस मिथ्या प्रचार का उद्देश्य रूस को जर्मनी के विरुद्ध भड़काना था, वातावरण को विषाक्त करके अकारण ही जर्मनी से टकराने के लिए उभार देना था।

"यह सम्भव है कि जर्मनी में कुछ ऐसे पागल व्यक्ति हैं जो विशाल कारपेथियन यूक्रेन में सोवियत यूक्रेन के हाथी को बाँध लेने का स्वप्न देखते हैं। यदि वास्तव में जर्मनी में इस प्रकार के पागल व्यक्ति हैं तो विश्वास रखिए कि हमने उनके लिए अपने देश में पर्याप्त संख्या में कठघरे बनवा रखे हैं। किन्तु यदि हम पागलों की उपेक्षा करके जन-साधारण का विचार करें तो क्या कारपेथियन यूक्रेन में सोवियत युक्रेन को मिलाने की बात स्पष्ट रूप से व्यर्थ और मूर्खतापूर्ण नहीं है?

"मैं हस्तक्षेप न करने की नीति पर उपदेश नहीं देना चाहता। षड्यंत्र, विश्वासघात इत्यादि के विषय में भी मैं कुछ नहीं कहना चाहता। जो लोग मानवता के संस्कारों से हीन हैं उनसे चरित्र की बात करना मूर्खता है। जैसा कि पुराने विज्ञ कूटनीतिज्ञों ने कहा है, कि राजनीति, राजनीति है। किन्तु इतना, कहना ही पर्याप्त होगा कि 'हस्तक्षेप न करने' के समर्थकों ने एक ऐसा चक्र चला दिया है, जो स्वयं उनके लिए ही घोर अनिष्ट का कारण बन जाएगा।

१. हमारी नीति शान्ति तथा सभी देशों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने

की है। यह हमारी नीति है और हम इसका अनुसरण उस समय तक करते रहेंगे जब तक ये देश सोवियत संघ से इसी प्रकार के सम्बन्ध बनाए रखेंगे और जब तक वे हमारे देश के हितों पर आघात नहीं करेंगे।

२. हमारी नीति यह है कि हम उन सब पड़ोसी देशों से शान्तिपूर्ण, निकट तथा मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखना चाहते हैं, जिनके सीमान्त प्रदेश सोवियत संघ की सीमाओं से जुड़े हुए हैं। हम इस नीति का उस समय तक अनुसरण करते रहेंगे जब तक ये देश हमारे देश से इसी प्रकार के सम्बन्ध बनाए रखेंगे और जब तक ये देश प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सोवियत राष्ट्र की सीमाओं का उल्लंघन करने का प्रयत्न नहीं करते।

३. हम आक्रमण से पीड़ित और अपने देश की स्वतंन्त्रता की रक्षा के लिए संघर्ष करने वाले देशों के समर्थक हैं।

४. हम आक्रमणकारियों की धमकियों से नहीं डरते और सोवियत संघ की सीमा का उल्लंघन करने वाले आक्रमणकारी को ईंट का जवाब पत्थर से देने को तैयार हैं।"

पश्चिमी प्रजातन्त्रों ने उस समय वास्तविकता को पहिचाना जब चैकोस्लोवाकिया का विभाजन हो गया और वे रूस से मैत्री करने को उत्सुक हुए। किन्तु रूस ने स्पष्ट कहा कि वह केवल समव्यवहार और उत्तरदायित्व के समान बँटवारे के आधार पर ही सहयोग देने को तैयार है। उसने दोनों पक्षों को आपत्तिकाल में परस्पर सहायता देने के आधार पर सैनिक सन्धि की माँग की। प्रजातन्त्रीय देशों ने रूस के प्रस्ताव को नहीं माना अतः बहुत दिनों तक परामर्श होते रहने पर भी सैनिक वार्त्ता सफल नहीं हुई। द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ होने से पूर्व रूस ने जर्मनी से एक-दूसरे पर आक्रमण न करने का समझौता (Non-aggression Pact) किया और इस प्रकार उसने युद्ध में निष्पक्ष रहना स्वीकार किया।

नवम्बर, १९३९ में रूस ने फिनलैण्ड पर आक्रमण किया। फिनलैण्ड ने बड़ा कड़ा प्रतिरोध किया, किन्तु अन्त में उसे रूस से समझौता करना ही पड़ा। जून, १९४० में रूस ने लिथुआनिया, लैटविया तथा एस्टोनिया पर अधिकार कर लिया। जून, १९४१ में जर्मनी ने रूस पर आक्रमण किया और जुलाई, १९४१ में रूस का इंग्लैण्ड से समझौता हुआ। नवम्बर, १९४१ में रूज़वैल्ट ने रूस को सद्-भावनाएँ भेजीं। अमरीका ने रूस को बहुत बड़ी संख्या में टैंक, वायुयान, रेल के इञ्जन, मोटरकारें, इस्पात और जूते भेजे। रूसियों ने बड़ा कड़ा मुकाबला किया और युद्ध केवल युद्धस्थल में ही नहीं अपितु नगरों के बाहर, गलियों और घरों में भी हुआ। जर्मनी की सेनाएँ बहुत सफल नहीं हुईं और उनकी प्रगति रुक गई। रूस की इस झुलसाने वाली नीति ने जर्मन-सैनिक टुकड़ियों को झुलसा दिया। पोलैण्ड पर विजय प्राप्त करने के पश्चात्, रूसी सेना बर्लिन की ओर बढ़ी। इस अवसर पर मार्शल स्टालिन ने घोषणा की, "स्लाव जाति का युगयुगान्तर से

अस्तित्व और स्वतन्त्रता का संघर्ष जर्मन आक्रमणकारियों और जर्मन अत्याचार पर विजय प्राप्त करके सफल हुआ है। भविष्य में राष्ट्रों की स्वतन्त्रता और राष्ट्रों में शान्ति का पुनीत ध्वज समूचे यूरोप पर लहराएगा। शत्रु से युद्ध करते समय जिन वीरों ने हमारी नीति की सफलता और स्वतन्त्रता के लिए अपना बलिदान दिया है, वे अमर यश के भागी हैं।" हिटलर का पतन हुआ और जर्मनी के एक भाग पर रूस का अधिकार हो गया।

तुर्की (Turkey)—सेवरिज की सन्धि (Treaty of Sevres) में तुर्की के साथ बड़ा दुर्व्यवहार हुआ था। मुस्तफा कमालपाशा के नेतृत्व में तुर्की का विद्रोह करना आश्चर्यजनक नहीं था। सुलतान को अपदस्थ करके प्रजातन्त्रीय शासन की स्थापना कर दी गई। जनता को देश-भक्ति की भावना से बड़ा प्रोत्साहित किया गया और देश की सुरक्षा-स्थिति को दृढ़ बना लिया गया। अन्ततः १९२३ में लासेन्न (Lausanne) की सन्धि हुई। नई सन्धि के अन्तर्गत तुर्की को बहुत-सी सुविधाएँ दी गईं। १९१४ में विश्वयुद्ध आरम्भ होने के समय जो यूरोपीय प्रदेश तुर्की के पास थे उसे लौटा दिए गए। तुर्की को स्मर्ना (Smyrna) भी दे दिया गया। तुर्की के नए शासन ने प्रगतिशील नीति अपनाई और देश में सांवैधानिक सरकार (Constitutional Government) की स्थापना की गई। अतातुर्क के हाथों में एक तानाशाह की सारी शक्तियाँ थीं। सार्वजनिक मतदान के आधार पर विधान-मण्डल के चुनाव की व्यवस्था की गई। 'खलीफा' (Caliph) का पद हटा दिया गया और धार्मिक सहिष्णुता (Religious toleration) की घोषणा कर दी गई। देश की लिपि भी बदल दी गई। जब द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ तो तुर्की ने अपनी निष्पक्षता की घोषणा की और युद्ध के अन्त तक उसने इसी नीति का पालन किया।

ग्रेट ब्रिटेन (Great Britain)—यद्यपि प्रथम विश्वयुद्ध में ब्रिटेन और फ्रांस साथ रहे थे तथापि फ्रांस की सुरक्षा के सम्बन्ध में दोनों देशों में मतभेद उत्पन्न हो गया था। ब्रिटेन और अमरीका दोनों ने ही फ्रांस को सम्भावित जर्मन आक्रमण के अवसर पर रक्षा का आश्वासन दिया था किन्तु अमरीका की संसद् द्वारा वर्साई की सन्धि का अनुमोदन न होने के कारण अमरीका को इस आश्वासन से पीछे हटना पड़ा। यह सत्य है कि ब्रिटेन को फ्रांस की भावनाओं के प्रति पूर्ण सहानुभूति थी किन्तु वह फ्रांस की इच्छानुसार जर्मनी के विरुद्ध कार्यवाही नहीं कर सकता था। ब्रिटेन का प्रधानमन्त्री लॉयड जार्ज भी जर्मनी के प्रति सहानुभूति का भाव रखता था। ब्रिटेन का विश्वास था कि "स्वतन्त्र, संतुष्ट और समृद्धिशाली जर्मनी विकास की दृष्टि से आवश्यक है।" उसकी धारणा थी कि युद्ध की क्षति-पूर्ति करना उसकी सामर्थ्य से बाहर है। फ्रांस इस विषय में जर्मनी के प्रति ब्रिटेन के व्यवहार से सहमत नहीं था। वह जर्मनी की कठिनाइयों की उपेक्षा करके मांस के टुकड़े को प्राप्त करना ही चाहता था।

रूस के प्रति ब्रिटेन का व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण नहीं था। १९१९-२०

ब्रिटेन ने अपनी सेनाएँ रूस से ऐस्टोनिया की रक्षा करने के लिए भेजी थीं। कालान्तर में पोलैण्ड पर रूस के आक्रमण की सम्भावना बढ़ने पर लॉयड जार्ज ने घोषणा की कि वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति से पोलैण्ड की रक्षा करेगा। किन्तु जब वास्तव में रूस ने पोलैण्ड पर आक्रमण किया तो ब्रिटेन ने उसकी रक्षा के लिए उँगली तक नहीं हिलाई। इससे कटुता बढ़ गई।

१९२१ में लॉयड जार्ज ने रूस से स्पष्टतः इस आधार पर व्यापारिक समझौता किया कि रूस ब्रिटेन के विरुद्ध कटु प्रचार बन्द कर देगा। विश्वास दिलाने पर भी सोवियत रूस ने अपना वचन पूरा न किया। १९२४ में रूस को औपचारिक रूप से मान्यता दी गई। किन्तु १९२६ में इंग्लैण्ड में रूस के विरुद्ध बड़ी कटुता फैली। इसका यह कारण था कि रूस ने इंग्लैण्ड की सार्वजनिक हड़ताल को बड़ा प्रोत्साहन दिया था। १९२९ में जब श्रमिक दल (Labour Party) सत्तासीन हुआ, ब्रिटेन ने रूस एक व्यापारिक सन्धि की और सोवियत व्यापार शिष्टमण्डल को राजदूत का सम्मान दिया। रूस के रुख में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ, जिसके अनेक कारण थे। इसका एक कारण जर्मनी में हिटलर का अभ्युदय तथा उसके द्वारा रूस के नए शासन की कटु आलोचना थी। मन्चूरिया में जापान की आक्रामक नीति के कारण रूस यूरोप की शक्तियों से जापान और जर्मनी के विरुद्ध सहयोग करने के लिए विवश हो गया। रूस लीग ऑफ़ नेशन्ज का सदस्य बनना चाहता था और कुछ समय के पश्चात् वह सदस्य बन भी गया। १९३८ तक दोनों देशों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बने रहे। चैकोस्लोवाकिया के प्रश्न पर रूस ने हिटलर के विरुद्ध ब्रिटेन को सहयोग दिया। वह म्यूनिच-सन्धि से भी घृणा करता था। हिटलर की ओर से निरन्तर भय बढ़ने के कारण रूस और ब्रिटेन को मित्र बनाने के प्रयत्न जारी रहे। किन्तु रूस अपनी मैत्री का मूल्य चाहता था और ब्रिटेन इस मूल्य को देना नहीं चाहता था इसलिए यह मामला बहुत दिन तक उलझा रहा। रूस ने स्पष्ट कह दिया था कि वह आश्वासन देने को तैयार है यदि ब्रिटेन भी इसी प्रकार का आश्वासन द। द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व जर्मनी ने रूस से परस्पर आक्रमण न करने का समझौता कर लिया था। ब्रिटेन को अपनी मूर्खता का मूल्य चुकाना पड़ा। जर्मनी के रूस पर आक्रमण के पश्चात् १९४१ में रूस ने ब्रिटेन का साथ दिया। १९४१ से १९४५ की अवधि में ब्रिटेन और रूस जर्मनी के विरुद्ध लड़े।

ब्रिटेन और तुर्की के सम्बन्धों के विषय में यह बात उल्लेखनीय है कि सुलतान ने सैविरज़ की सन्धि (Treaty of Sevres) को स्वीकार नहीं किया और मित्रराष्ट्रों ने उनके पास कान्स्टौण्टिनोपल छोड़ दिया था। फ्रांस और ब्रिटेन की सरकारों ने ग्रीस को स्मर्ना के एक नगर थ्रेस और आएओनिया (Ionia) के निकट के प्रदेश पर अधिकार कर लेने की अनुमति दे दी थी। कमालपाशा के नेतृत्व में तुर्की में विद्रोह हुआ और ग्रीस तथा तुर्की में संघर्ष की सम्भावना बढ़ गई। दोनों पक्ष तैयार थे और किसी भी समय युद्ध हो सकता था। किन्तु कमालपाशा के संयम और ब्रिटेन के परामर्श से १९२२ में शान्ति सन्धि हुई। मिस्र की स्वतन्त्रता को मान्यता दी गई।

तुर्की और ब्रिटेन ने ईराक की सीमाओं के विषय में परामर्श करके निर्णय करने का निश्चय किया। सीमा का प्रश्न लीग ऑफ नेशन्ज़ ने सुलझा दिया। इस प्रकार दोनों देशों में मैत्री हो गई और द्वितीय विश्वयुद्ध की अवधि में बनी रही।

जर्मनी के प्रति ब्रिटेन की सहानुभूति का उल्लेख किया जा चुका है। यह धारणा थी कि यदि जर्मनी के नए शासन के साथ अच्छा व्यवहार न किया गया तो देश में बड़ी कटु प्रतिक्रिया होगी। ब्रिटेन जर्मनी को लीग ऑफ नेशन्ज में लाना चाहता था और उसके प्रयत्नों से जर्मनी लीग का सदस्य भी बन गया। १९२३ में फ्रांस की सेना द्वारा रूहर घाटी (Ruhr Valley) पर अधिकार करने का ब्रिटेन ने बड़ा विरोध किया। १९३३ तक जर्मनी में हिटलर के अभ्युदय के समय तक ब्रिटेन का यही रुख रहा। उस समय भी हिटलर की महत्त्वाकांक्षाओं पर रोक लगाने के उद्देश्य से १९३५ में जर्मन-ब्रिटेन समुद्री सन्धि हुई। किन्तु हिटलर द्वारा १९३६ में राइनलैण्ड और १९३८ में आस्ट्रिया पर अधिकार करने पर यह आशा नष्ट हो गई। ब्रिटेन ने चैकोस्लोवाकिया के प्रश्न पर बड़ा कड़ा रुख अपनाया, सेनाएँ सतर्क कर दी गईं और घोषणा कर दी गई कि ब्रिटेन इस देश को हिटलर द्वारा हड़प नहीं करने देगा। किन्तु फिर भी १९३८ में चैम्बरलेन ने म्यूनिच समझौते पर हस्ताक्षर कर दिए। इस प्रकार हिटलर की भूख को शान्त करने के लिए चैकोस्लोवाकिया का बलिदान कर दिया गया। चर्चिल ने म्यूनिच-समझौते को 'विनाश की पराकाष्ठा' (Disaster of the first magnitude) बताया। ऐमरी ने इसे 'नंगी शक्ति की विजय' (Victory of sheer naked force) कहा था। यह आक्रामक सैन्यवाद की सबसे महान् और सरल विजय थी। भविष्य की घटनाओं ने सिद्ध कर दिया कि चैकोस्लोवाकिया का बलिदान व्यर्थ गया और हिटलर की क्षुधा शान्त होने की अपेक्षा और भी बढ़ गई। सितम्बर, १९३९ में जर्मनी की सेनाएँ पोलैण्ड में घुस गईं। चैम्बरलेन १९४० तक ब्रिटेन का प्रधान मन्त्री रहा और उसके पश्चात् चर्चिल ने उसका स्थान ग्रहण किया। परिस्थिति बड़ी जटिल हो गई थी और नए प्रधान मन्त्री ने ब्रिटेन की जनता को कहा था, "मैं आपको खून, आँसू, श्रम और पसीने के अतिरिक्त कुछ नहीं दे सकूँगा···हमारी नीति ?···जल, स्थल और आकाश में युद्ध करना है···युद्ध भी अपनी पूरी शक्ति से, जो प्रभु ने हमें दी है। मानव के इतिहास में अत्यन्त घृणित और नीच अपराधों से भी अधिक अनिर्वचनीय अत्याचारों के विरुद्ध युद्ध करेंगे। हमारा लक्ष्य···विजय है। किसी भी मूल्य पर विजय प्राप्त करनी है। सारे खतरे होने पर भी हमें विजय प्राप्त करनी है। उस विजय का मार्ग कितना ही लम्बा और कठिन क्यों न हो, क्योंकि बिना विजय के अस्तित्व असम्भव है।" इतिहास इस बात का साक्षी है कि यद्यपि अमरीका के युद्ध में आ जाने से तथा रूस में जर्मनी के फँसे होने के कारण उसे सहायता मिली, चर्चिल ने ही ब्रिटेन को विजय प्राप्त करा दी।

१९१९ से १९३९ की अवधि में ब्रिटेन हार्दिक रूप से निःशस्त्रीकरण (Disarmament) की नीति का पालन करता रहा। उसने केवल निःशस्त्री-

करण सम्मेलन का आयोजन ही नहीं किया अपितु उसे सफल बनाने में सक्रिय भाग भी लिया। किन्तु जर्मनी और इटली में सैन्यवाद के जन्म के कारण तथा फ्रांस और अन्य देशों की उदासीनता के कारण उसे सफलता नहीं मिली। उसने १६२५ में लोकार्नो (Locarno) समझौते पर हस्ताक्षर भी किए। इस समझौते के अनुसार जर्मनी ने यह आश्वासन दिया कि समझौता करने वाले देशों से यदि उसका कोई विवाद हुआ तो वह उसे पंचफैसले (arbitration) के लिए प्रस्तुत करेगा। किन्तु उसने यह नहीं माना कि वह अपने पूर्वी सीमान्त को मान्यता देगा। उसने केवल इतना स्वीकार किया कि वह पूर्वी सीमान्त में हेर-फेर करने के लिए युद्ध का आश्रय नहीं लेगा। ब्रिटेन और इटली ने जर्मनी और फ्रांस के पूर्वी सीमान्त की रक्षा का वचन दिया। १६२७ के ब्रायण्ड कैल्लोग्ग समझौते (Briand-Kellogg Pact) के अनुसार ब्रिटेन ने युद्ध को अवैधानिक घोषित किया। किन्तु इस समझौते पर हस्ताक्षर करते समय मिस्र तथा कुछ और देशों को निकाल दिया गया था। १६३३ के 'चार शक्तियों के समझौते' पर हस्ताक्षर करने वाले देशों में ब्रिटेन भी एक था। इस सन्धि के अनुसार ब्रिटेन ने अन्य सभी देशों के साथ "सभी सम्बन्धित मामलों पर परस्पर परामर्श करने तथा लीग ऑफ़ नेशन्ज़ के विधान के अनुसार शान्ति, सुरक्षा तथा लीग के निर्णयों को क्रियान्वित करने की" तथा निःशस्त्रीकरण को प्रोत्साहन देने और आर्थिक व्यवस्था बनाने की प्रतिज्ञा की। इस समझौते का उद्देश्य लीग का समर्थन तथा यूरोप में शान्ति स्थापित करना था। १६३० में नौ सेना के अधिकारियों का एक सम्मेलन लन्दन में बुलाया गया। यद्यपि इटली और फ्रांस ने अपनी नौ सेना घटाने से इन्कार कर दिया था, तथापि जापान, ब्रिटेन और अमरीका ने अपनी पनडुब्बियों तथा युद्ध-पोतों की संख्या को घटाना स्वीकार कर लिया था। ब्रिटेन ने पाँच, अमरीका ने तीन और जापान ने एक युद्ध-पोत को नष्ट कर दिया। ब्रिटेन के प्रभाव से ही मित्र-राष्ट्रों ने १६३० में राइनलैण्ड (Rhineland) खाली कर दिया यद्यपि वे इस प्रदेश को १६३५ तक अपने अधिकार में रख सकते थे।

जर्मनी (Germany)—जर्मनी की जनता शान्ति-सन्धि की शर्तों से बहुत असन्तुष्ट थी। उसकी धारणा थी कि उसके साथ बहुत अन्याय हुआ है। १६२३ में फ्रांस की सेनाओं ने रूहर घाटी (Ruhr Valley) पर इसलिए अधिकार कर लिया कि जर्मनी ने वर्साई की सन्धि के अनुसार क्षतिपूर्ति की अदायगी पूरी नहीं की थी। रूहर घाटी जर्मनी के उद्योगों का हृदय थी। जर्मनी के कोयले, लोहे और इस्पात का ८० प्रतिशत उत्पादन इसी घाटी से होता था तथा देश के व्यापारिक रेल यातायात का ७० प्रतिशत इसी प्रदेश पर निर्भर था। इस पर अधिकार का परिणाम आर्थिक रूप से देश की हत्या करना था। जर्मनी विवश था और वह केवल असहयोग करके ही रोक-थाम कर सकता था। रूहर घाटी की जनता ने फ्रांसीसी आक्रमणकारियों को सहयोग न दिया। परिणामतः कारखाने और खानें बन्द हो गईं। देश के सार्वजनिक सेवा-कार्य बन्द हो गए। स्थानीय अधिकारियों ने फ्रांसीसियों के आदेशों का पालन करने से इन्कार कर दिया। समाचारपत्रों ने

आक्रमणकारियों की आज्ञाओं का प्रसार करने से इन्कार कर दिया। जर्मनी की जनता पर अत्याचार किया गया, किन्तु फिर भी उसने सहयोग नहीं दिया। जर्मनी ने क्षतिपूर्ति देना बन्द कर दिया। यह उल्लेखनीय है कि "दो व्यक्तियों ने जर्मनी का संगठन किया है—१८७२ में बिस्मार्क ने और १९२३ में पोएनकेयर ने। इस प्रदेश पर अधिकार करने के परिणाम फ्रांस और जर्मनी, दोनों के लिए अनिष्टकर हुए यद्यपि स्ट्रैसमैन (Stresemann) समझौता करने को तैयार था किन्तु पोएनकेयर नहीं माना। फ्रांस में हेरियट (Herriot) के प्रधानमन्त्री बनने पर समझौते की सम्भावना बढ़ गई। डावस योजना (Dawes Plan) के क्रियान्वित होते ही फ्रांस की सेनाएँ रूहर घाटी से हटा ली गई।

डावस समिति (Dawes Committee) की नियुक्ति हुई और उसे जर्मनी द्वारा क्षतिपूर्ति की अदायगी के विषय में सुझाव देने का कार्य सौंपा गया। विशद परामर्श के पश्चात् डावस समिति ने अपने सुझाव प्रस्तुत किए कि जर्मनी को आर्थिक दृष्टि से पूर्णाधिकार दिए जाएँ और फ्रांस रूहर घाटी खाली कर दे। क्षतिपूर्ति के लिए एक 'केन्द्रीय अदायगी बैंक' (Central Bank of Issue) की स्थापना की जाए। बैंक को पचास वर्ष के लिए 'कागज़ की मुद्रा' (Paper money) चलाने का अधिकार दिया जाए। अदायगी की वार्षिक राशि नियत कर दी जाए। राशि में परिवर्तन देश के स्तर के अनुसार किया जाए। जर्मनी के आठ सौ करोड़ स्वर्ण मार्क (Golden Marks) विदेशी ऋण के रूप में दिए जाएँ। डावस योजना को कार्यपरिणत करने के लिए एक विदेशी 'प्रमुख प्रतिनिधि' (Agent-General) नियुक्त किया जाए और उसकी सहायता के लिए एक समिति नियुक्त की जाए। यह सत्य है कि थोड़े समय के लिए डावस योजना ने जर्मनी में आत्मविश्वास को बढ़ाया किन्तु इस योजना में अनेक न्यूनताएँ आ गई थीं। जर्मनी द्वारा दी जाने वाली क्षतिपूर्ति की राशि तथा अदायगी की अवधि नियत नहीं की गई थी। इस अस्थिरता की प्रतिक्रिया जर्मनी की जनता की कार्य करने की इच्छा पर हुई। जर्मनी इस योजना में विहित नियन्त्रण को भी नहीं चाहता था। गिलबर्ट के शब्दों में, "जैसे-जैसे समय बीत रहा है और वास्तविकता का अनुभव हो रहा है, यह स्पष्ट होता जा रहा है कि जब तक विदेशी नियन्त्रण और संरक्षण के बिना जर्मनी को निजी उत्तरदायित्व पर कार्य करने की छूट नहीं दी जाएगी, तब तक क्षतिपूर्ति अथवा इससे सम्बन्धित समस्याएँ नहीं सुलझ सकेंगी।"

१९२९ में डावस योजना को 'यंग योजना' (Young Plan) ने रद्द कर दिया। नई योजना के अनुसार जर्मनी द्वारा दस करोड़ पौण्ड की सैंतीस वार्षिक किश्तें देना नियत हुआ। इसके अतिरिक्त, उसने अन्य बाईस छोटी-छोटी वार्षिक किश्तें देना स्वीकार किया। यंग समिति ने नई योजना का वर्णन इस प्रकार किया था, "प्रस्तावित योजना, डावस योजना के कार्य को आगे बढ़ा कर पूर्ण कर रही है; क्योंकि १९२४ में तत्कालीन परिस्थितियों में जर्मनी अथवा अन्य देशों की स्थिति के कारण उस समय केवल एक रूपरेखा ही बनाई जा सकती थी। जर्मनी

के ऋण को घटाकर उसकी राशि को अन्तिम रूप से नियत करने से, वार्षिक अदायगी की किश्तें नियत करने से तथा किश्तों की अदायगी के लिए नए बैंक द्वारा प्रस्तावित सुविधाओं तथा जटिलताओं के हटा देने के कारण जर्मनी के ऋण पर अन्तर्राष्ट्रीय समझौते की मुहर लग गई है। यदि एक दृष्टिकोण से यह योजना अदायगी की रकम को जो डावस योजना के अन्तर्गत थी पर्याप्त रूप से कम करती है, दूसरी ओर यह पहली योजना में विहित अस्थिरता (यथा देश की समृद्धि की स्थिति) को समाप्त करती है और ऋणी अथवा प्राप्त करनेवाले देशों को नियत राशि स्थिर करके वैमनस्य की स्थिति को भी समाप्त करती है। दोनों पक्षों को लेने और देने की राशि का पूर्ण ज्ञान है।" १९३० में यंग योजना के लागू होते ही मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ जर्मनी की भूमि से हटा ली गईं।

१९२५ के लोकार्नो समझौते का उल्लेख भी आवश्यक है। जर्मनी ने फ्रांस और बेल्जियम से अपने पश्चिमी सीमान्त को स्थायी रूप से निर्धारित कर लिया था। किन्तु उसने चैकोस्लोवाकिया और पोलैण्ड को इस प्रकार का आश्वासन नहीं दिया। किन्तु इस स्थिति में भी उसने सीमान्त में हेर-फेर करने के लिए युद्ध का आश्रय न लेने का आश्वासन दिलाया। लोकार्नो समझौते के अनुसार १९२६ में जर्मनी ने लीग की 'परिषद्' (Council) में अपना स्थान ग्रहण किया। इस अवसर पर ब्रीआँ (Briand) ने कहा था, "जो लोग लीग पर व्यंग करते हैं और हताश हैं और दावा करते हैं कि यह समाप्त होने वाली है, वे अब क्या सोचेंगे ? इसका आशय है कि इतिहास के पृष्ठों को रंग देने वाले भयानक और रक्तपात से पूर्ण संघर्षों से हमने अपना सम्बन्ध तोड़ दिया है। भविष्य में हमारा मार्ग शान्ति और प्रगति का मार्ग होगा। हमारे देशों को वास्तविक रूप से महानता प्राप्त हो जाएगी, यदि हम उन्हें घमण्ड त्याग कर विश्व शान्ति के हित में अपनी कुछ अभिलाषाओं का बलिदान करने के लिए मान लेंगे। इस बलिदान से उनका सम्मान घटने की अपेक्षा बढ़ जाएगा।"

१९२६ में ब्रीआँ (Briand) और स्ट्रैसमैन्न (Stresemann) की जेनेवा के निकट थोइरे (Thoiry) नाम के स्थान पर भेंट हुई। इन्होंने दोनों देशों के हितों की समस्याओं पर विचार-विमर्श किया और "साधारणतः इनको सुलझाने के विषय में सहमत हो गए।" कहा जाता है कि स्ट्रैसमैन्न ने कुछ सुविधाएँ माँगीं और ब्रीआँ ने उन पर सहानुभूति से विचार करने का वचन दिया। किन्तु फ्रांस की जनता ने इसका बहुत विरोध किया, अतः मामले को स्थगित कर दिया गया।

हिटलर का अभ्युदय (Rise of Hitler)—जर्मनी में हिटलर के अभ्युदय के अनेक कारण थे। १९१९ के शान्ति समझौते से जर्मनी का बड़ा अपमान किया गया था। जर्मनी जैसे गौरवशाली राष्ट्र के लिए अपने उपनिवेशों तथा अन्य सुविधाओं की हानि को भूल जाना असम्भव था। उसकी सैन्य-शक्ति पूर्णतः कुचल दी गई थी। उस पर क्षतिपूर्ति की इतनी बड़ी राशि लाद दी गई थी कि उसे अदा करना उसके लिए असम्भव था। १९३० तक मित्र-राष्ट्रों (Allies) की सेनाएँ जर्मनी में रहीं और इस कारण, खासकर फ्रांस की सेना के दुर्व्यवहारों के कारण, कटुता बढ़ गई।

असाधारण परिस्थितियों के कारण प्रजातन्त्रीय शासन संतोषजनक रीति से नहीं चल सकता था। जर्मनी के नीतिज्ञ परस्पर झगड़ते रहते थे। डावस योजना (Dawes Plan) और यंग योजना (Young Plan) दोनों से ही देश की आर्थिक समस्या हल नहीं हुई। १९२९ में विश्वव्यापी आर्थिक संकट (World-wide economic depression) उपस्थित हुआ और इसका प्रभाव जर्मनी पर भी पड़ा। चान्सलर ब्रूनिङ्ग (Bruning) देश की समस्याओं को न सुलझा सका। उसकी सरकार को 'भूखों मारने

हिटलर

वाली सरकार' (Starvation Government) कहा जाता था। देश में बेकारों की संख्या बढ़ गई थी। देश में फैले असंतोष से हिटलर के नेतृत्व में नाज़ी दल (Nazi Party) ने लाभ उठाया। नाज़ी दल ने जनता को प्रगतिशील कार्यक्रम दिया और अपमान को समाप्त करके जर्मनी को विश्व का एक महान् राष्ट्र बनाने की प्रतिज्ञा की। हिटलर के ओजस्वी भाषण जनता को मुग्ध कर देते थे। उसके अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी और इसके साथ-साथ देश में उसका प्रभाव और शक्ति भी बढ़ती गई। यह तथ्य १९२४ के पश्चात् हुए चुनावों से स्पष्ट होता है।

दिसम्बर, १९२४ में नाज़ी दल को केवल १४ स्थान मिले। किन्तु बाद में विधान मण्डल (Legislature) में इसकी संख्या २८८ हो गई। राष्ट्रपति हिण्डनबर्ग ने ब्रूनिङ्ग को चाँसलर के पद से हटा कर वान पेपन (Von Papen) को नियुक्त किया। वान पेपन को देश में शान्ति और व्यवस्था की स्थापना असम्भव प्रतीत हुई और उसने त्याग-पत्र दे दिया। तत्पश्चात् श्लेशर (Schleicher) उसके स्थान पर आया। किन्तु उसने भी १९३२ में त्याग-पत्र दे दिया। जनवरी, १९३३ में हिटलर को चाँसलर पद पर नियुक्त किया गया। १९३४ में हिण्डनबर्ग की मृत्यु हो जाने पर वह जर्मनी का राष्ट्रपति चुन लिया गया और उसने अपने हाथ में राष्ट्रपति और चाँसलर दोनों के अधिकार ले लिये। वह १९४५ तक सत्तासीन रहा और बर्लिन के पतन के समय उसने आत्महत्या कर ली।

सत्तासीन होने से पूर्व हिटलर वर्साई सन्धि को पूर्णतः भंग करने का कट्टर समर्थक था और जब वह चाँसलर से राष्ट्रपति बना तो सारी यूरोपीय शक्तियाँ बड़ी चिन्तित हुईं। सर्वसाधारण की धारणा थी कि जर्मनी सारे यूरोप पर छा जाएगा और संघर्ष होगा। यूरोप की सरकारों को अपनी शान्तिप्रिय नीति और कार्यशैली के विषय में आश्वासन देने के उद्देश्य से हिटलर ने घोषणा की कि "जर्मनी की सरकार और जनता शान्ति, समझौते और परामर्श की नीति का पालन करने के लिए संगठित है और इसी नीति को सब निर्णयों और परामर्शों का आधार मानती है।" अपनी घोषणा की पुष्टि के लिए उसने जनवरी, १९३४ में पोलैण्ड से १० वर्ष के लिए पोलैण्ड और जर्मनी की सीमाओं को मान्यता दी। इस से पोलैण्ड और जर्मनी में तनाव कम हो गया। १९२१ से चलती हुई अल्पमत जातियों (Minorities) की शिकायतें समाप्त हो गईं। जुलाई, १९३४ में आस्ट्रिया में नाज़ी विद्रोह हुआ, किन्तु असफल रहा। हिटलर ने कहा कि विद्रोह में उसका हाथ नहीं था। जनवरी, १९३५ में लीग ऑफ नेशन्ज़ के तत्त्वावधान में सार घाटी (Saar Valley) में सार्वजनिक मतदान (Plebiscite) हुआ और ९० प्रतिशत जनता ने जर्मनी के साथ मिलने के लिए मतदान दिया। जून, १९३५ में हिटलर ने ब्रिटेन से समुद्री सेना सम्बन्धी समझौता (Naval Agreement) किया। इसके अनुसार जर्मनी का समुद्री बेड़ा ब्रिटेन के बेड़े का ३५ प्रतिशत कर दिया गया।

१९३६ के पश्चात् हिटलर आक्रमण के मार्ग पर अग्रसर हुआ। मार्च, १९३६ में उसने वर्साई की सन्धि के अनुसार खाली किए गए राइनलैण्ड के प्रदेश पर जर्मनी की सेनाओं को घुस जाने की आज्ञा दी। यद्यपि यह कार्य वर्साई की सन्धि का उल्लंघन था और बेल्जियम और फ्रांस दोनों की सुरक्षा के लिए खतरा था, तथापि जर्मनी के विरुद्ध कार्यवाही न की गई। १९३६ में स्पेन में गृह-युद्ध छिड़ गया। एक ओर जनरल फ्रैंको और दूसरी ओर प्रजातन्त्रीय सरकार थी। रूस प्रजातन्त्रीय सरकार का समर्थक था और जर्मनी और इटली ने फ्रैंको की सहायता की। अन्ततः जनरल फ्रैंको विजयी हुआ। १९३६ में जर्मनी ने जापान से साम्यवादी-संघ के विरुद्ध सन्धि (Anti-comintern Pact) की। १९३७ में इटली भी इस सन्धि

का सदस्य बन गया। इस प्रकार बर्लिन-रोम-टोक्यो धुरी संघ (Berlin-Rome-Tokyo Axis) का जन्म हुआ। १९३८ में हिटलर ने विना कठिनाई के आस्ट्रिया पर अधिकार कर लिया। आरम्भ में इटली आस्ट्रिया पर अधिकार करने का विरोधी था किन्तु उससे मैत्री हो जाने के कारण उसकी ओर से कोई विरोध नहीं हुआ। नाजी दल ने चैकोस्लोवाकिया के जर्मन अल्पमतों (German minorities) को सरकार के विरुद्ध प्रदर्शन करने के लिए उत्तेजित किया। जर्मन नागरिकों ने, जिन्हें सूडेटन्स (Sudetens) कहा जाता था, जर्मनी से मिलने की मांग की। चैकोस्लोवाकिया सरकार ने उनकी उचित मांगों को मानने का यथासाध्य प्रयत्न किया, किन्तु हिटलर की सहायता के वल पर सूडेटन्स लोगों ने समझौता नहीं किया। ब्रिटेन ने घोषणा की कि यदि चैकोस्लोवाकिया के प्रश्न पर युद्ध हुआ तो उसे अपनी प्रतिज्ञा पालन करने के लिए युद्ध में भाग लेना पड़ेगा। वातावरण वड़ा क्षुब्ध था और युद्ध की पूरी सम्भावना थी। किन्तु ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री चैम्वरलेन ने अग्रणी बनकर हिटलर से भेंट की। समझौता हुआ कि जिन प्रदेश में सूडेटन्स रहते हैं वह जर्मनी को दिया जाए। किन्तु जव चैकोस्लोवाकिया की सरकार पर हिटलर की माँगें मान लेने के लिए दवाव डाला जाने लगा तो हिटलर ने अपनी माँगें वढ़ा दीं। एक वार फिर स्थिति जटिल हो गई और संघर्ष की सम्भावना वढ़ गई। हिटलर, चैम्वरलेन, मुसोलिनी और डैलाडिए (Daladier) में भेंट हुई और चैकोस्लोवाकिया काफी वड़ा प्रदेश देने के लिए विवश कर दिया गया। हिटलर ने कहा कि वह यूरोप में किसी भी प्रदेश पर अधिकार नहीं करना चाहता, अत: शान्ति वनी रहेगी। फिर भी मार्च, १९३९ में चैकोस्लोवाकिया को वोहेमिया और मोराविया के प्रदेश जर्मनी को देने के लिए विवश कर दिया गया।

चैकोस्लोवाकिया के बाद लियुथ्रानिया (Lithuania) की वारी आई। उसे मैमेल (Memel) और निकटस्थ प्रदेश देने की चुनौती दी गई। यह माँग माननी पड़ी और जर्मन सेना ने मार्च, १९३९ में इस पर अधिकार कर लिया।

यद्यपि हिटलर ने पोलैण्ड से १९३४ में १० वर्ष के लिए आक्रमण न करने का समझौता किया था, किन्तु उसने समझौते का कोई आदर नहीं किया और पोलैण्ड की सरकार से भी माँग की जाने लगी। पोलैण्ड ने माँगें अस्वीकार कर दीं और स्पष्ट रूप से युद्ध का भय वढ़ गया। किन्तु युद्ध आरम्भ होने से पहिले जर्मनी २३ अगस्त, १९३९ को रूस से पारस्परिक अनाक्रमण समझौता करने में सफल हो गया। सोवियत रूस की निष्पक्षता (Neutrality) प्राप्त करके हिटलर ने डेन्जिग की माँग की और माँग को अस्वीकार कर देने पर, १ सितम्वर, १९३९ को पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया गया। यह युद्ध १९४५ तक चलता रहा और हिटलर के पतन पर ही समाप्त हुआ।

लोकार्नो समझौता (१९२५) (Locarno Pact)—लोकार्नो समझौता, कैलॉग-ब्रीआँ समझौता, फ्रांस-रूस सन्धि और वर्लिन-रोम-टोक्यो धुरी के विषय में विशद उल्लेख आवश्यक है। लोकार्नो समझौते के लिए जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन, इटली

चैकोस्लोवाकिया, पोलैण्ड और बेल्जियम के प्रतिनिधियों का स्विट्ज़रलैण्ड में लोकानों नाम के स्थान पर एक सम्मेलन ५ अक्टूबर से १६ अक्टूबर, १९२५ तक हुआ। इस सम्मेलन की कार्यवाही में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन का अनुभव हुआ। पारस्परिक घृणा के स्थान पर मैत्री और सौजन्य की भावना दीख पड़ी। परिवर्तित वातावरण को 'लोकार्नो भावना' के नाम से पुकारा जाने लगा। इस वातावरण में सात सन्धियों पर हस्ताक्षर किए गए।

फ्रांस-जर्मनी और बेल्जियम-जर्मनी की सीमाओं के विषय में परस्पर आश्वासन दिलाया गया और इसमें जर्मनी, बेल्जियम, फ्रांस, ब्रिटेन और इटली सम्मिलित थे। जर्मनी और बेल्जियम, जर्मनी और फ्रांस, जर्मनी और पोलैण्ड तथा जर्मनी और चैकोस्लोवाकिया में पंच-फैसले की सन्धियाँ (Arbitration Treaties) भी हुईं। फ्रांस और पोलैण्ड तथा फ्रांस और चैकोस्लोवाकिया में जर्मनी द्वारा आक्रमण होने की स्थिति में परस्पर सहायता की सन्धियाँ भी हुईं।

प्रमुख सन्धि जर्मनी के फ्रांस और बेल्जियम के सीमान्त के विषय में हुई। इसमें व्यवस्था की गई कि, "वर्साई की सन्धि के अनुसार जर्मनी-बेल्जियम और जर्मनी-फ्रांस के जो सीमान्त निर्धारित हुए हैं उनकी यथास्थिति स्थिर रहेगी। वर्साई की सन्धि के अनुसार निर्धारित राईन नदी (R. Rhine) के पूर्व की ओर पचास किलोमीटर के प्रदेश के विसैन्यीकरण (Demilitarization) को आश्वस्त कर दिया गया। लीग ऑफ नेशन्ज़ के संविधान की धारा १६ (Article 16 of the Covenant of the League of Nations) के अनुसार, जर्मनी, बेल्जियम और फ्रांस ने स्वीकार किया कि वे किसी भी परिस्थिति में एक दूसरे पर आक्रमण नहीं करेंगे। विसैन्यीकरण सिद्धान्त (Demilitarization Formula) के उल्लंघन की स्थिति में ही वे युद्ध का आश्रय लेंगे अथवा लीग की आज्ञानुसार किसी भी आक्रामक देश पर कार्यवाही करने के लिए शस्त्र उठायेंगे। उन्होंने यह भी प्रतिज्ञा की, कि वे "साधारण सम्बन्धों द्वारा न सुलझने वाली समस्याओं को भी शान्तिपूर्ण तरीकों से निपटाएँगे।" सन्धि पर हस्ताक्षर करने वाले सारे देशों ने प्रतिज्ञा की, कि वे उस देश की सहायता करेंगे, जिस पर आक्रमण किया जाएगा। यदि सन्धि की शर्तों को भंग करने के किसी भी विषय पर सन्देह होगा तो वे उस मामले को लीग ऑफ नेशन्ज़ की परिषद् (Council) को अन्तिम निर्णय के लिए सौंप देंगे। सन्धि को तब से लागू होना था जब से जर्मनी लीग का सदस्य बने और तब तक लागू रहना था जब तक लीग को यह विश्वास हो कि सदस्य-राष्ट्रों को पर्याप्त सुरक्षा प्राप्त हो गई है। लीग को इस विषय में दो-तिहाई बहुमत से निर्णय करना होगा।

पंच फैसलों के चार समझौतों (Arbitration Treaties) में व्यवस्था की गई थी कि जर्मनी से अन्य सदस्यों के सारे झगड़े "जो साधारण विचार-विमर्श द्वारा निपटाए नहीं जा सकेंगे, वे या तो पंच फैसले के आयोग (Arbitration Tribunal) को या स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (Permanent Court of

International Justice) को निर्णय के लिए भेजे जाएँगे।" किन्तु इन समझौतों से पहले के अथवा प्राचीन झगड़ों के विषय में यह व्यवस्था लागू नहीं होगी। अतः शान्ति सन्धि से पैदा होने वाले विवादों पर इस व्यवस्था का कोई प्रभाव नहीं होगा। फ्रांस-पोलैण्ड और फ्रांस-चैकोस्लोवाकिया की सन्धियों में व्यवस्था की गई थी कि यदि मुख्य सन्धियों पर हस्ताक्षर करने वाले देश लोकार्नो के समझौतों का पालन न करने के कारण पीड़ित किए जाएँगे तो वे परस्पर सहायता करेंगे। किन्तु यह सहायता उसी समय दी जाएगी जब समझौतों का उल्लंघन करने के साथ उन पर बिना कारण के आक्रमण भी किया जाए।

यह उल्लेखनीय है कि लोकार्नो समझौते में जर्मनी के पूर्वी और पश्चिमी सीमान्त के विषय में भेद-भाव किया गया था। जर्मनी के पश्चिमी सीमान्त के विषय में निश्चित निर्णय किया गया और इटली और ब्रिटेन ने उसका उल्लंघन न होने देने का आश्वासन दिया किन्तु इस प्रकार का आश्वासन जर्मनी के पोलैण्ड और चैकोस्लोवाकिया की ओर के पूर्वी सीमान्त के विषय में नहीं दिया गया। परोक्ष रूप से यह स्वीकार किया गया कि जर्मनी का पूर्वी सीमान्त न्याय पर आधारित नहीं है और जर्मनी इसमें परिवर्तन की माँग करने का अधिकारी होगा। किन्तु इस ध्येय की प्राप्ति के लिए वह युद्ध का आश्रय नहीं लेगा अपितु पंच फैसले की शरण लेगा। लोकार्नो की सन्धियाँ वर्साई की सन्धि का उल्लंघन थीं और इस तथ्य की स्वीकृति थी कि १९१९-२० की शान्ति-व्यवस्था न्यायपूर्ण नहीं थी। लोकार्नो की सन्धियों से कुछ समय के लिए जर्मनी और फ्रांस में तनाव कम हो गया। १९३५ में हिटलर ने राइनलैण्ड में अपनी सेनाएँ भेजकर लोकार्नो समझौते को भंग कर दिया।

गैथोर्न-हार्डी (Gathorne Hardy) ने लोकार्नो समझौते का महत्त्व वर्णन करते हुए कहा है, "यूरोप के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर इसका तत्कालीन परिणाम निस्सन्देह बहुत अच्छा हुआ। ब्रिटेन के आश्वासन से जर्मनी और फ्रांस में जो अधिक सुरक्षा की भावना जाग्रत हो गई वह इस प्रश्न से, कि क्या ब्रिटेन वास्तव में समय पड़ने पर अपने आश्वासन को पूरा कर सकेगा अथवा नहीं, कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण थी। प्रजातन्त्री देश जनता की अनुमति के बिना युद्ध आरम्भ नहीं कर सकता। जनता की अनुमति जाने-पहचाने मित्र की सहायता के लिए लेना तो सरल है किन्तु जहाँ दो मित्र हों और वे भी एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी हों तो अनुमति प्राप्त करना बड़ा कठिन है। युद्ध आरम्भ होने के समय की अस्थिर परिस्थिति में यह भी हो सकता है कि जनता की सहानुभूति उस पक्ष के साथ हो जो अन्त में दोषी सिद्ध हो। उस समय वास्तविकता को जानना बड़ा कठिन है। यह भी सम्भव है कि ऐसी परिस्थिति में जनमत विभाजित हो। किन्तु जब तक ब्रिटेन के हस्तक्षेप का भय आक्रमणकारी के हृदय में बना रहे, उस समय तक इस समझौते को परखने के अवसर की सम्भावना नहीं थी। आक्रमणकारी को उसके कार्य से डरा कर दूर रखने का कार्य, उसके द्वारा अपराध कर देने के पश्चात् परास्त करने से

अधिक लाभदायक है। समझौते के सम्पन्न होते समय लोकार्नो समझौता एक अत्यन्त प्रभावशाली और अविरुद्ध प्रतीत होने वाला डरावा (Scarecrow) था और इसने अपने निर्माता श्री ऑस्टिन चैम्बरलेन की आशाओं को पूरी तरह पूरा किया कि इसको लगाने का समय वास्तव में युद्ध-काल और शान्तिकाल को बाँटने वाली रेखा थी।" (A Short History of International Affairs, p. 76)

लैंगसम (Langsam) के मतानुसार, "लोकार्नो समझौते की सफलता का सार्वभौमिक रूप से विश्व के इतिहास में एक नए युग का निर्माण करने वाली घटना के रूप में स्वागत किया गया। किन्तु ये समझौते और 'लोकार्नो भावना' शान्ति की रक्षा के लिए वास्तविक आधार नहीं थे। सत्य है कि प्रकट रूप से राइन-सीमान्त की रक्षा हो गई थी। जर्मनी ने एलसेस-लॉरेन पर दावे और फ्रांस ने राइनलैण्ड को अपना संरक्षित देश बनाने के दावे छोड़ दिए थे। किन्तु जर्मनी के पूर्वी सीमान्त की समस्या बनी रही और इस बात का कोई विश्वास नहीं था कि यह शान्ति से सुलझ जाएगी। १९२५ के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में मैत्री की झलक कम ही नज़र आने लगी थी। अगले ही वर्ष उसे भुला दिया गया, जबकि लीग ऑफ नेशन्ज की सदस्यता के लिए जर्मनी का प्रार्थना-पत्र विचाराधीन था, किन्तु १९२७ में यह भावना फिर जीवित हो गई।" (The World Since 1914, p. 109)

थॉमसन (Thompson) के मतानुसार, "१९२५ के शान्त वातावरण में इन समझौतों ने यूरोप में शान्ति स्थापना में बड़ी सहायता प्रदान की थी। फ्रांस और जर्मनी, दोनों की आवश्यकताओं को मान्यता देने का यह प्रथम सफल प्रयत्न था। जर्मनी पुनः महान् शक्तियों के रहस्यमय गुट में आ गया और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में अहिंसा और शान्तिपूर्ण तरीकों से भाग लेता प्रतीत होने लगा। किन्तु लोकार्नो समझौतों का प्रभाव एक साथ सन्तोषजनक और भयानक था। परोक्ष रूप से सीमान्त में भेद-भाव करना, जिसके अनुसार जर्मनी के पश्चिमी सीमान्त को स्थायी और पूर्वी सीमान्त से अनुपाततः अधिक पवित्र मानने का आशय यह था कि १९१९ में जर्मनी ने जो सीमान्त मान लिया था, वह केवल उसी हद तक ठीक था जहाँ तक जर्मनी ने उसे स्वयमेव स्वीकार किया था। ब्रिटेन द्वारा एक ओर के सीमान्त की सुरक्षा का आश्वासन देना और दूसरी ओर के सीमान्त के विषय में आश्वासन न देने से ही इस सम्मेलन की नींव हिल गई थी। यद्यपि वर्साई के समझौते में न्यूनता थी किन्तु इस समझौते के पश्चात् वह बिल्कुल ही निर्बल हो गया। फ्रांस ने ब्रिटेन के सहयोग के बिना ही पूर्वी यूरोप में सन्धियाँ करके अपना उत्तरदायित्व बढ़ा लिया था। यदि लीग के सदस्य स्वयं ही शान्ति-व्यवस्था के कुछ भाग का जिसका उनसे तात्कालिक सम्बन्ध था, अपने स्वार्थ के लिए आश्वासन दे सकते थे और जिस भाग में उन्हें कुछ कम दिलचस्पी थी उसके लिए सशस्त्र सहायता नहीं देना चाहते थे, तो यह कहा जा सकता है कि लोकार्नो समझौते से सामान्य सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो गया था। इस समझौते में कुछ विशेष त्रुटियाँ थीं, यथा जर्मनी द्वारा आक्रमण होने की स्थिति में ब्रिटेन और फ्रांस के सेनाध्यक्षों के सक्रिय सहयोग की योजना में इस

विषय में कोई व्यवस्था नहीं की गई थी कि फ्रांस के जर्मनी पर आक्रमण की स्थिति में ब्रिटेन की सेना जर्मनी के साथ किस प्रकार सहयोग करेगी। किन्तु इस प्रकार की वास्तविक स्थितियों पर विचार ही नहीं किया गया। ये समस्याएँ कालान्तर में उनके सम्मुख आईं; उस समय तो वे आशा और सौजन्य की भावना में वह रहे थे।"
(Europe Since Napolean, pp. 636-7)

ग्राण्ट और टैम्परले के मतानुसार, "लोकार्नो के समझौते में यद्यपि भविष्य के विषय में कोई निर्णय नहीं हुआ तथापि यह व्यर्थ नहीं था। इससे सर आस्टिन चैम्बरलेन की भविष्यवाणी पूरी नहीं हुई कि यह समझौता युद्ध-काल और शान्ति-काल की रेखा है।" किन्तु इसने सद्भावना और समझौते का वातावरण उत्पन्न कर दिया जो वास्तविक रूप से महत्त्वपूर्ण था और कालान्तर में निर्णायक भी हो सकता था। इंग्लैण्ड में चैम्बरलेन और फ्रांस में ब्रीआँ दोनों ही जर्मनी से सहयोग करने के लिए कठोर परिश्रम कर रहे थे। स्ट्रेसमैन ने वास्तव में जर्मनी को महान् शक्तियों के मण्डल में लाकर उसे लीग ऑफ नेशन्ज़ का सदस्य वना दिया। यद्यपि १९२५ में यह स्पष्ट नहीं था किन्तु आज यह तथ्य स्पष्ट है कि भविष्य, लीग द्वारा सार्वभौमिक निःशस्त्रीकरण कराने की योजना पर निर्भर था। वर्साई में शस्त्रों को सीमित करने की प्रतिज्ञा की गई थी। मित्रराष्ट्रों ने जर्मनी तथा अन्य शत्रु देशों के निःशस्त्रीकरण की आवश्यकता को इस धारा के अनुसार न्यायोचित बताया था कि सारे राष्ट्रों में शस्त्रीकरण को सीमित करने के लिए यह आवश्यक है। इस प्रतिज्ञा की इस बार भी पुष्टि की गई और यदि इसे क्रियान्वित किया गया होता तो यह समझौता एक वास्तविक सन्धि बन जाती, क्योंकि यदि फ्रांस और जर्मनी की सैन्य शक्ति समान होती तो ब्रिटेन की शक्ति थोड़ी होने पर भी दोनों देशों को एक दूसरे के विरुद्ध रक्षा करने का आश्वासन दे सकने के लिए पर्याप्त होती।"

कैलॉग-ब्रीआँ समझौता (१९२५) (Kellogg-Briand Pact)—इस समझौते का ध्येय युद्ध का राष्ट्रीय नीति के आधार और अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को निपटाने के साधन के रूप में पूर्णतः बहिष्कार कर देना था। लीग ऑफ नेशन्ज़ की स्थापना के पश्चात् युद्ध की आवश्यकता को हटाने के लिए अनेक प्रयत्न किए गए। पारस्परिक सहायता की सैसिल-रिक्वन, सन्धि के मसौदे (Draft Cecil Requin Treaty of Mutual Assistances) १९२३ में घोषणा की थी कि "आक्रमणकारी युद्ध एक अन्तर्राष्ट्रीय अपराध है और सदस्य-राष्ट्र प्रतिज्ञा करते हैं कि वे इस अपराध को नहीं करेंगे।" जेनेवा सन्धि (Geneva Protocol) ने इसका अनुसरण किया। इसकी भूमिका में घोषणा की गई थी, "युद्ध अन्तर्राष्ट्रीय सदस्यों के संगठन की अवज्ञा है और अन्तर्राष्ट्रीय अपराध है।" इस पर हस्ताक्षर करने वालों को यह स्वीकार करना था कि वे आक्रमण को रोकने के लिए या लीग की परिषद् की अनुमति लेकर ही युद्ध का आश्रय लेंगे, अन्य किसी भी परिस्थिति में युद्ध नहीं करेंगे। उन्हें यह भी स्वीकार करना था कि वे कोई भी ऐसा कार्य नहीं करेंगे जिसे किसी भी देश के प्रति आक्रमण की धमकी समझा जाए। आक्रमणकारी देश की परिभाषा

इस प्रकार की गई : "वह देश जो शान्तिपूर्ण तरीकों को अपनाए बिना ही युद्ध करे, आक्रमणकारी समझा जाएगा। सन्देह की अवस्था में 'आक्रमणकारी' का निर्णय लीग की परिषद् करेगी और उस पर दण्ड का विधान भी लागू करेगी।" किन्तु जेनेवा सन्धि (Geneva Protocol) के प्रति ब्रिटेन के विरोध के कारण कोई परिणाम नहीं निकला।

जून, १९२७ में ब्रीआँ ने अमरीका के राज्य-सचिव कैल्लॉग (Secretary of State, Kellogg) से प्रस्ताव किया कि फ्रांस और अमरीका में एक समझौता होना चाहिए जिसमें युद्ध को राष्ट्रीय नीति का आधार न माना जाए। यह प्रस्ताव ही आगे जाकर १९२८ का कैल्लॉग-ब्रीआँ समझौता बना। आरम्भ में यह प्रस्ताव अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं था क्योंकि फ्रांस और अमरीका में अधिक मतभेद नहीं था। कैल्लॉग ने ब्रीआँ को सुझाव दिया कि इस समझौते को द्विपक्षीय न बना कर बहुपक्षीय बनाया जाए। बड़े संकोच के पश्चात् ब्रीआँ ने सुझाव मानकर बहु-पक्षीय समझौते का प्रस्ताव बनाया

जिस समय यह परामर्श चल रहा था, लीग ऑफ नेशन्ज़ की सभा (Assembly) ने २४ सितम्बर, १९२७ को पोलैण्ड का प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किया जिसके अनुसार सारे आक्रामक युद्धों (aggressive wars) का निषेध कर दिया गया। यह घोषित किया गया कि सब परिस्थितियों में पहले शान्तिपूर्ण तरीके अनिवार्य रूप से अपनाए जाने चाहिएं। इसी प्रकार का प्रस्ताव अमरीकी देशों के छठे सम्मेलन (Sixth Pan American Conference) में फरवरी, १९२८ में स्वीकार किया गया।

कैल्लॉग-ब्रीआँ समझौते के विषय में ब्रिटेन ने समझौते में सम्मिलित होना स्वीकार किया किन्तु इस शर्त पर कि उसे "संसार के विशेष भागों में कार्य की स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए क्योंकि ये प्रदेश हमारी सुरक्षा की दृष्टि से विशेष और महत्त्वपूर्ण हितों से सम्बन्ध रखते हैं।" अमरीका का मुनरो सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया। २७ अगस्त, १९२८ को फ्रांस के विदेश-मन्त्रालय पर (Quai d' Orsay) १५ देशों ने इस समझौते पर हस्ताक्षर कर किए। १९३० के समाप्त होने से पहले ६१ देशों ने इस समझौते पर हस्ताक्षर कर दिए। २४ जुलाई, १९२९ को राष्ट्रपति हूवर ने समझौता लागू होने की घोषणा कर दी। सोवियत संघ ने इस समझौते को सर्वप्रथम मान्यता दी यद्यपि इसकी कुछ व्यवस्थाओं की अस्थिरता और असंगति के कारण आलोचना भी की। पोलैण्ड स्थित सोवियत राजदूत ने २९ दिसम्बर, १९२८ को प्रस्ताव किया कि पोलैण्ड, रूस और लियुआनिया 'लिटविनोव समझौते' के नाम से एक समझौता करें जिसके अनुसार कैल्लॉग-ब्रीआँ के औपचारिक रूप से लागू होने की प्रतीक्षा न करके, यह समझौता इन तीन देशों में तुरन्त ही लागू कर दिया जाए। पोलैण्ड ने कुछ आपत्तियाँ उठाईं किन्तु रूस ने उनका समाधान कर दिया। रूस ने लैटविया और ऐस्टोनिया को समझा-बुझा कर समझौता स्वीकार करा लिया। परिणामतः ९ फरवरी, १९२९ को 'लिटविनोव समझौते' पर मास्को में रूस, पोलैण्ड रूमानिया, लैटविया और ऐस्टोनिया ने हस्ताक्षर कर दिए। तुर्की और लिथुआनिया

ने १ अप्रैल, १९२९ को; डैन्ज़िग ने ३० अप्रैल, १९२९ को और ईरान ने ४ जुलाई, १९२९ को हस्ताक्षर कर दिए।

अमरीका की यह धारणा थी कि कैल्लॉग-ब्रीआँ समझौता आत्मरक्षा के लिए मुनरो सिद्धान्त के अनुसार कार्य करने में कोई वाधा उपस्थित नहीं करता। सब पक्षों ने यह स्वीकार किया कि समझौते में आक्रामक युद्धों पर प्रतिबन्ध है और आत्मरक्षा के युद्धों से किसी समझौते को तोड़ने वाले के विरुद्ध युद्ध करने, लीग के संविधान के अनुसार आदेश दिए गए युद्ध, लोकार्नो समझौते अथवा अन्य निष्पक्षता अथवा मैत्री सम्बन्धी युद्धों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

समझौते की भूमिका में घोषणा की गई थी कि, "मानव समाज के हित की वृद्धि के प्रति अपने पुनीत कर्त्तव्य को भली प्रकार जानते हुए, इस धारणा से प्रेरित होकर कि यह उपयुक्त समय है जब स्पष्ट रूप से युद्ध का बहिष्कार किया जाना चाहिए, जिससे हमारी जनताओं में परस्पर मैत्री सम्बन्ध और भी स्थायी हो जाएँ और सभी परिवर्तन शान्तिपूर्ण तरीकों से ही किए जाएँ; संसार की सभ्य जातियाँ युद्ध का राष्ट्रीय नीति के आधार के रूप में सामूहिक रूप से बहिष्कार करती हैं।"

समझौते की व्यवस्थाओं में सदस्य-राष्ट्रों ने हार्दिक रूप से "अपने-अपने राष्ट्रों की ओर से घोषणा की कि वे अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को निपटाने में युद्ध का आश्रय लेने की घोर निन्दा करते हैं। और परस्पर राष्ट्र नीति के रूप में युद्ध के आश्रय का त्याग करते हैं।" उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि, "सब प्रकार के झगड़ों और संघर्षों का, चाहे वे किसी भी प्रकार के हों अथवा उनका कुछ भी कारण हो, उन सब का हल अथवा निर्णय शान्तिपूर्ण तरीकों के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार नहीं किया जाएगा।" सदस्य-राष्ट्रों ने अपने-अपने देश के संविधान के अनुसार उसको मान्य करवा कर, मान्यता-पत्र वाशिंगटन में जमा कराने के पश्चात् यथाशीघ्र इस समझौते को लागू करने की घोषणा की।

इस समझौते के महत्त्व के विषय में अमरीका के राज्य सचिव स्टिमसन (Secretary of State, Stimson) ने १९३२ में कहा था, "कैल्लॉग-ब्रीआँ समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले देशों ने राष्ट्रों के बीच युद्ध करने का त्याग किया है। इसका आशय यह है कि युद्ध लगभग सारे संसार में एक अवैधानिक वस्तु बन चुका है। भविष्य में जब भी देश सशस्त्र संघर्ष करेंगे, उनमें से एक अथवा दोनों ही इस सन्धि की दृष्टि में कानून भंग करने वाले माने जाएँगे। हम उनकी नियम भंग करने वाले के रूप में घोर निन्दा करते हैं।"

इस समझौते के कानूनी पक्ष के विषय में न्यूरेम्बर्ग अन्तर्राष्ट्रीय सैनिक न्यायालय (Nuremberg International Military Tribunal) ने कहा था, "जिन राष्ट्रों ने इस समझौते पर हस्ताक्षर किए, उन्होंने बिना शर्त के इसके सिद्धान्तों को स्वीकार करके भविष्य के लिए युद्ध का नीति के आधार के रूप में परित्याग किया है। इस समझौते पर हस्ताक्षर करने के पश्चात् यदि कोई देश अपनी राष्ट्रीय नीति के रूप में युद्ध करता है तो मौलिक रूप से वह अन्तर्राष्ट्रीय कानून की दृष्टि में

अपराधी है तथा जो युद्ध की योजना बना कर इसे आरम्भ करेंगे और भयानक परिणामों को पैदा करेंगे, वे कानून की दृष्टि से अपराध करेंगे। अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को सुलझाने के लिए यदि युद्ध को राष्ट्रीय नीति का आधार बनाया जाएगा तो वह युद्ध आक्रामक युद्ध होगा और इस प्रकार के युद्ध का समझौते ने निषेध किया है।'

यह उल्लेखनीय है कि कैल्लॉग-ब्रीआँ समझौता लीग ऑफ नेशन्ज के संविधान (Covenant) से भिन्न था। लीग का संविधान एक राजनैतिक सन्धि थी किन्तु यह समझौता युद्ध को पाप-पूर्ण मानकर चारित्रिक उत्तरदायित्व पर निर्धारित था। लीग के संविधान (Covenant) में कुछ विशेष प्रकार के युद्धों की छूट थी और कुछ युद्धों का निषेध था तथा वर्जित युद्धों के लिए दण्ड की व्यवस्था भी थी। कैल्लॉग-ब्रीआँ समझौते में सब प्रकार के युद्धों का निषेध था किन्तु किसी के लिए दण्ड का विधान नहीं था। शुमेन (Schuman) के मतानुसार, "समझौते में इसकी व्यवस्था को लागू करने की शक्ति नहीं थी। यह माना गया था कि यदि कोई सदस्य इसका उल्लंघन करेगा तो वह सदस्यता से पृथक् कर दिया जाएगा। समझौता एक प्रकार से बड़ा निर्बल था। जो भी राष्ट्र अपने स्वार्थों की रक्षा अथवा उन्नति के लिए शस्त्र उठाता सर्वदा यह कह सकता था कि उसने आत्म-रक्षा के लिए यह युद्ध किया है अतः समझौते की व्यवस्था उस पर लागू नहीं होती। वह यह भी कह सकता था कि 'समझौते' के सारे प्रयत्नों में यदि युद्ध की घोषणा नहीं की गई है, तो वे 'शान्तिपूर्ण' हैं—और वास्तव में कानून की दृष्टि से यह तर्क ठीक है। अन्य देश समझौते से सहमत न रहें तो भले ही 'विश्वमत' उसकी निन्दा करता रहे। किन्तु एक सबल और दृढ़ प्रतिज्ञ राष्ट्र केवल मौखिक निन्दा के डर से कभी नहीं रुकता। वह केवल अधिक शक्ति से ही रुक सकता है।" (International Politics, p. 221)

लैंगसम (Langsam) के मतानुसार, "दुर्भाग्य से हस्ताक्षर करने वालों ने समझौते पर युद्ध के 'बहिष्कार' के विषय में जो शर्तें और परिभाषाएँ समझौते पर लिखी हैं, उनसे इस 'बहिष्कार' का प्रभाव बहुत क्षीण हो गया है। वास्तव में युद्ध का बहिष्कार किया गया किन्तु (१) आत्म-रक्षा के लिए किया गया युद्ध, (२) अन्य पूर्व-सन्धियों के अनुसार किया गया युद्ध, या (३) लीग ऑफ नेशन्ज या लोकार्नो समझौते के सदस्य होने के नाते किया गया युद्ध, अवैध नहीं है। ब्रिटेन ने एक अन्य विशेष शर्त, संसार के कुछ प्रदेशों में जो हमारी शान्ति और सुरक्षा के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं' युद्ध की छूट माँगी। समझौते की नींव इस आशा पर रखी गई कि जनमत इतना बलवान और प्रभावशाली होगा कि आपत्ति में कोई भी राष्ट्र मूलतः चारित्रिक मान्यताओं के कारण युद्ध नहीं करेगा। किन्तु सर्वसाधारण द्वारा इन समझौते के स्वीकार करने से प्रतीत होता था कि कुछ प्रगति हुई, युद्ध के परित्याग करने की दिशा में विश्व सहयोग हुआ, अथवा यह एक लक्ष्य या आदर्श था जिसकी स्थापना की गई। लीग के विधान को समझौते के निकट लाने की इच्छा

से सितम्बर, १९२९ में लीग के दसवें अधिवेशन में संविधान की धारा में संशोधन प्रस्तावित किया गया कि सदस्य राष्ट्र किसी भी झगड़े पर पंच-फैसले अथवा न्यायालय की रिपोर्ट आने के तीन महीने तक कोई कार्यवाही न करें। संशोधित धारा इस प्रकार थी : "विवादग्रस्त पक्ष स्वीकार करते हैं कि वे युद्ध का आश्रय किसी भी अवस्था में नहीं लेंगे।" १९३१ के चीन-जापान विवाद जैसी घटनाओं से यह बात सिद्ध होती है कि यदि पेरिस सन्धि (Pact of Paris) को दांत प्रदान कर दिए जाते तो इसका उल्लंघन केवल एक आध्यात्मिक अपराध ही नहीं अपितु कुछ अधिक गम्भीर अपराध भी समझा जाता।" (The World Since 1914, p. 184)

गेथोर्न हार्डी (Gathorne-Hardy) के शब्दों में, "युद्ध का नीति के रूप में यह सार्वजनिक परित्याग एक ऐतिहासिक घटना के रूप में अभूतपूर्व रूप से महत्त्वपूर्ण है। युद्ध की ओर यह नवीन सदाचार का दृष्टिकोण बड़ा ही प्रभावशाली है। यह इस कारण और भी महत्त्वपूर्ण है कि इसने एक ऐसा आधार बना दिया जिस पर अमरीका और रूस दोनों शान्ति-व्यवस्था में सामूहिक रूप से कार्य कर सकते थे।" किन्तु व्हीलर वेनट (Wheeler Bennett) ने कहा है कि "केवल आक्रमणकारी युद्ध का ही निषेध हुआ है" और वास्तव में यह सत्य है। अतः इस समझौते ने सितम्बर, १९२७ में लीग द्वारा स्वीकृत पोलैण्ड के प्रस्ताव से अधिक कुछ नहीं किया जैसा कि अटलाण्टिक समुद्र के पार के देशों में पैदा हुई किसी भी वस्तु से आशा की जा सकती है, यह समझौता उस समय संसार की शान्तिप्रियता का एक महान् प्रदर्शन था और इसे अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा की दिशा में एक महान् कार्य माना जा सकता था। इसका आधार हस्ताक्षर करने वाले देशों की सद्भावना के अतिरिक्त अन्य किसी ठोस वस्तु पर नहीं था और इसमें इसका उल्लंघन करने वालों के विरुद्ध कार्यवाही करने की कोई व्यवस्था नहीं थी। एक ऐसे युग में जो असुविधाजनक उत्तरदायित्वों की अवहेलना करना सीख चुका हो, यह सम्भावित नहीं था कि यह राष्ट्रों में उतने गहरे आत्म-विश्वास को उत्पन्न कर सकता जितना कि निःशस्त्रीकरण के लिए आवश्यक था। प्रत्येक देश युद्ध को किसी भी प्रकार से राष्ट्रीय नीति का आधार नहीं मानता था किन्तु वह अपने पड़ोसी की ईमानदारी पर सन्देह करता था।" (A Short History of International Affairs, pp. 183-4).

फ्रांस-रूस सन्धि (Franco-Russian Alliance) १९३५—१९३५ में सोवियत रूस और फ्रांस ने परस्पर सहायता और आक्रमण न करने की सन्धि की। दोनों देशों ने आक्रमण के खतरे के समय परस्पर परामर्श करना स्वीकार किया। उन्होंने अकारण आक्रमण होने की स्थिति में एक दूसरे की सहायता करना भी स्वीकार किया। यह समझौता पांच वर्ष के लिए किया गया था। यह भी स्वीकार किया गया कि उत्तरी-पूर्वी यूरोप के सारे देशों को इस सन्धि में सदस्य बनने के लिए बुलाया जाए। यह सन्धि १९३९ तक चलती रही किन्तु १९३९ में रूस द्वारा जर्मनी से 'आक्रमण नहीं करने' की सन्धि करने के पश्चात् इसका महत्त्व समाप्त हो गया। १९३५ की यह सन्धि १८९४ की फ्रांस-रूस सन्धि का अवशेष थी।

बर्लिन रोम-टोक्यो धुरी (१९३७) (Berlin-Rome-Tokyo Axis)—यद्यपि इटली १९१९-२० के शान्ति समझौते से संतुष्ट नहीं था, वह पश्चिमी यूरोप के प्रजातन्त्रवादी देशों से सहयोग करता रहा। वास्तव में १९२५ में लोकार्नो समझौते में इटली बेल्जियम और फ्रांस के साथ जर्मनी के पश्चिमी सीमान्त की सुरक्षा का साक्षी और आश्वासन था। हिटलर ने १९३४ में आस्ट्रिया पर अपना आधिपत्य जमाने का प्रयत्न किया था और इटली ने इस प्रयत्न को असफल करने के लिए पूरी शक्ति लगाई थी। इटली ने फरवरी, १९३४ में फ्रांस और ब्रिटेन को प्रोत्साहित किया कि वे एक घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर करके घोषणा करें कि "वर्त्तमान सम्बन्धित सन्धियों के आधार पर तीनों शक्तियाँ आस्ट्रिया की स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण बनाए रखने की आवश्यकता को मान्यता देती हैं।" १९३४ में इटली, आस्ट्रिया और हंगरी के प्रधान मन्त्रियों ने रोम सन्धि पर हस्ताक्षर किये और स्वीकार किया कि वे यूरोपीय राष्ट्रों में सक्रिय सहयोग कराने के लिए एक जैसी नीति का अनुसरण करेंगे। १९३३ में इटली ने रूस से अनाक्रमण सन्धि पर हस्ताक्षर किए।

१९३५ में लावल-मुसोलिनी समझौते (Laval-Mussolini Pact) पर रोम में हस्ताक्षर किए गए। अफ्रीका मे इटली को रेल के अधिकार और थोड़ा-सा प्रदेश दिया गया। फ्रांस द्वारा अधिकृत ट्युनिशिया में इटली के नागरिकों को १९४५ तक विशेष सुविधाएँ दी गई। यह भी स्वीकार किया गया कि यदि आस्ट्रिया की स्वतन्त्रता को किसी प्रकार का भय हुआ तो दोनों देश परस्पर परामर्श करेंगे

जापान १९२१ के वाशिंगटन समझौते से, जिसके अनुसार उसकी नौ-सैनिक शक्ति ब्रिटेन और अमरीका के बेड़े की ६० प्रतिशत कर दी गई थी, प्रसन्न नहीं था। वह इस समझौते को अपना अपमान और ब्रिटेन और अमरीका की महत्ता का प्रतीक मानता था। १९३४ में अमरीका, ब्रिटेन और जापान के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन समुद्री सेना को सीमित करने के लिए बुलाया गया। जापान ने अपने पड़ोसियों के बराबर अपनी शक्ति की माँग की; किन्तु यह माँग ठुकरा दी गई। परिणामतः जापान ने १९३४ में समुद्री समझौते से अपनी सदस्यता हटा लेने की द्विवर्षीय सूचना दे दी। यह सूचना-अवधि १९३६ में समाप्त हुई।

हिटलर साम्यवाद और सोवियत रूस की कटु आलोचना करने में अग्रणी था। १९३५ में रूस ने फ्रांस से समझौता किया। इसी वर्ष हिटलर ने ब्रिटेन से समुद्री बेड़े के सम्बन्ध में समझौता किया और अपनी समुद्री शक्ति को ब्रिटेन की शक्ति का ३५ प्रतिशत करना स्वीकार कर लिया। हिटलर ने साम्यवादी संघ विरोधी समझौता (Anti-Comintern Pact) जापान के साथ किया और दोनों पक्षों ने यह स्वीकार किया कि वे "तृतीय इण्टरनेशनल (Third International) की गतिविधि के विषय में परस्पर सूचना देते रहेंगे, सुरक्षा सम्बन्धी कार्यवाही के विषय में परामर्श करते रहेंगे और इन कार्यों को परस्पर घनिष्ठ सहयोग के साथ करेंगे।"

मुसोलिनी का रुख भी बदल गया। जब इटली ने ऐबिसीनिया पर आक्रमण किया तो पश्चिमी यूरोप के प्रजातन्त्रीय देशों ने सामूहिक सुरक्षा के नाम पर इटली

पर आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिए। यद्यपि फ्रांस ने इन प्रतिबन्धों को क्रियान्वित करने में ढील दिखाई तथापि इटली का झुकाव जर्मनी और जापान की ओर हुआ, क्योंकि ये दोनों देश भी इटली जैसी परिस्थिति में थे। ठीक ही कहा गया है कि जर्मनी ने लीग का तथा इटली और जापान का लीग ने वहिष्कार किया था। इस प्रकार तीनों देशों ने लीग, साम्यवाद और सोवियत रूस के विरोध में सामूहिक शक्ति बना ली। ऐबिसीनिया पर इटली की विजय को जर्मनी ने सर्वप्रथम मान्यता दी थी। जर्मनी ने इटली की जनता के प्रति बहुत सहानुभूति प्रदर्शित की थी। दोनों देशों में ताना-शाही होने के कारण भी इन दोनों देशों के सम्बन्ध अधिक घनिष्ठ हो गए। दोनों ही १९१९-२० की सन्धियों को बदलना चाहते थे। दोनों ही धरती के भूखे थे और फ्रांस तथा ब्रिटेन जैसे संतुष्ट देशों के विरुद्ध संगठित हो सकते थे। १९३७ में

हिटलर मुसोलिनी का स्वागत कर रहा है

मुसोलिनी जर्मनी गया और इसके बदले हिटलर ने रोम की यात्रा की। परिणामतः १९३७ में बर्लिन-रोम-टोक्यो धुरी (Berlin-Rome-Tokyo Axis) का जन्म हुआ। मुसोलिनी ने इसके विषय में कहा, "इस धुरी के चारों ओर शान्ति के इच्छुक यूरो-

पीय राष्ट्र सहयोग कर सकते हैं।" उसने यह घोषणा की कि, "इन दो संसारों में (अर्थात् धुरी संसार और अ-धुरी संसार में) कोई समझौता नहीं हो सकता। या तो वे रहेंगे या हम।" हिटलर ने इसके विषय में कहा था "यह महान् राजनीतिक विश्व त्रिकोण है जो तीन शक्तिहीन मूर्तियों से नहीं अपितु ऐसे तीन शक्तिशाली राष्ट्रों से बना है जो अपने अधिकारों और हितों की रक्षा के लिए सन्नद्ध और दृढ़-संकल्प हैं।" यह धुरी संघ द्वितीय विश्वयुद्ध की अवधि भर बना रहा और इटली. जर्मनी और जापान के पतन के पश्चात् ही नष्ट हुआ।

Suggested Readings

Abel, Theodore : *Why Hitler came into Power ? 1938.*

Armstrong : *"We or They", 1936.*

Buell, R. L. : *Poland, Key to Europe, 1939.*

Cameron : *Prologue to Appeasement. 1942.*

Carr, E. H. : *International Relations between the Two World Wars (1919-1939), 1947.*

Carr, E. H. : *The Twenty Years Crisis (1919-1939), 1946.*

Dell, R. : *The Geneva Racket (1920-1939), 1941.*

Finer, H. : *Mussolini's Italy, 1935.*

Gathorne-Hardy, G.M. : *A Short History of International Affairs (1920-1939), 1942.*

Hoover : *Dictators and Democracies. 1937.*

Machray, R. : *The Poland of Pilsudski, (1914-1936), 1937.*

Hiller, D. H. : *The Peace Pact of Paris (1928), 1928.*

Mowat, R. H. : *History of European Diplomacy (1914-1915), 1927.*

Namier, L. B. : *Europe in Decay, A Study in Disintegration (1936-1940), 1950.*

Wolfers, A. : *Britain and France between two Wars, 1940.*

Mamier, L. B. : *Diplomatic Prelude, (1938-1939) 1948.*

अध्याय ३३

द्वितीय विश्वयुद्ध (१९३९-४५)

(The World War II, 1939-45)

युद्ध के कारण (Causes of the War)—(१) साइरिल फ़ाल्ज़ (Cyril Falls) के मतानुसार द्वितीय विश्वयुद्ध मूलतः जर्मनी का प्रतिशोध लेने का युद्ध था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जर्मनी का राष्ट्रीय समाजवाद (German National Socialism) प्रतिशोध का मूल कारण था। इसके अन्य उद्देश्य, यथा पड़ोसी देशों पर अधिकार करके 'रहने का स्थान बनाना', ट्यूटोनिक (Teutonic) अथवा तथाकथित ट्यूटोनिक जातियों को देश में मिला लेना, यूक्रेन जैसे कृषक प्रदेशों में बस्तियाँ बसाना, यूरोप के मुख्य उद्योग-धन्धों पर नियन्त्रण, इत्यादि या तो बदले के लिए शक्ति संग्रह के साधन थे या प्रशिया में अनन्त काल से फैली हुई और बाद में सारे जर्मनी पर छा जाने वाली क्रूर भावना के द्योतक थे। हिटलर सर्वप्रथम शस्त्रीकरण और बदला चाहता था और फिर लूट और जर्मनी की प्रभुता का समर्थक था।

वर्साई की सन्धि में ही १९३९ के युद्ध के बीज बोए गए थे। जर्मनी के साथ बुरा वर्ताव हुआ था। उसे तलवार की नोक पर सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश कर दिया गया था तथा यह सन्धि भी प्रतिशोध की भावना पर आधारित थी। उसे उपनिवेशों तथा विदेशों की सुविधाओं से वंचित कर दिया गया था। यूरोप में उसे उसकी भूमि से भी खदेड़ दिया गया था। पोलिश-बरामदा (Polish Corridor) को स्थापित करके उसे दो भागों में विभक्त कर दिया गया था। उसकी समुद्री-शक्ति को पूर्णतः नष्ट कर दिया गया था। उसकी सेना को घटा कर नगण्य कर दिया गया था। उसके कोयले और इस्पात के स्रोत भी छीन लिये गए थे। उस पर युद्ध की क्षतिपूर्ति का असहनीय भार लाद दिया गया था। सन्धि की शर्तों को लागू करने के लिए देश में विदेशी सेनाएँ छावनी डाले पड़ी थीं। मित्र-राष्ट्रों की जर्मनी में छोड़ी गई सेनाओं ने जनता से सद्व्यवहार नहीं किया अतः उनके इस व्यवहार ने असन्तोषपूर्ण घटनाओं को जन्म दिया। रूहर (Ruhr) की घाटी में फ्रांस की सेना का अधिकार अत्यन्त अपमानजनक रहा। परिणामतः नवनिर्मित जर्मनी के गणतन्त्र के सामने इतनी जटिल समस्याएँ आ उपस्थित हुईं कि उसके राजनीतिज्ञों के लिए इन्हें सुलझाना असम्भव था। पश्चिमी यूरोप की प्रजातन्त्रीय सरकारों ने वाइमर (Weimar) गणतन्त्र को इस प्रकार की कोई सहायता नहीं दी, जिससे उसका अपनी जनता पर पूर्ण अधिकार बना रह सकता। उसे चारों ओर से विरोध का, बहुधा सशस्त्र विरोध का, सामना करना पड़ता था। राष्ट्रवादी दृष्टिकोण तथा सेना पर निर्भर रहने के कारण

जर्मनी की सरकार प्रतिक्रियावादियों की अपेक्षा उग्रदल वालों के प्रति अधिक कठोरता से व्यवहार करती थी। जर्मनी में प्रजातन्त्र की नींव अत्यन्त निर्बल थी। राजनीतिक विप्लवकारियों ने वाइमर विधान (Weimar Constitution) के अन्तर्गत सुरक्षा को प्राप्त कर लिया था, यद्यपि वे स्वयं कानून की परवाह नहीं करते थे। देश में आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) के कारण राजनीतिक दलों की संख्या बढ़ गई और इस कारण मन्त्रिमण्डल स्थायी नहीं रह सकता था। जर्मनी की जनता ने पुनः सन्धि करने की माँग की किन्तु फ्रांस के विरोध के कारण यह सम्भव नहीं था। फ्रांस की धारणा थी कि उसकी सुरक्षा के लिए केवल शान्ति-सन्धि ही उपयुक्त है। उसने अनुभव किया कि जर्मनी को किसी प्रकार की सुविधा देने से सन्धि कमज़ोर पड़ जाएगी। जर्मनी की जनता सन्धि पर पुनर्विचार से ही संतुष्ट हो सकती थी, किन्तु फ्रांस निरन्तर इसका विरोध करता रहा। वाइमर गणतन्त्र ने परिस्थिति को सँभालने का पूर्ण प्रयत्न किया किन्तु असफल रहा। इन परिस्थितियों में देश में नाज़ी पार्टी पनपने लगी और इसका नेता हिटलर जनवरी १९३३ में चाँसलर नियुक्त हुआ। आरम्भ में नाज़ी दल ने बड़ी सावधानी की नीति अपनाई और अपने भावी कार्यक्रम के विषय में अन्य शक्तियों के सन्देहों का निवारण किया। हिटलर ने घोषणा की कि वह शान्ति का समर्थक है और अपनी नीति की पुष्टि में १९३४ में पोलैण्ड से और १९३५ में इंग्लैण्ड से सन्धियाँ भी कीं। जब १९३४ में आस्ट्रिया में विद्रोह हुआ तो हिटलर ने कहा कि इसमें उसका कोई हाथ नहीं था।

देश में अपनी स्थिति शक्तिशाली बनाकर और अपने सैनिक साधनों को मजबूत बनाकर नाज़ियों ने अपने उद्देश्य और लक्ष्य स्पष्ट करने आरम्भ किए। मार्च, १९३६ में राइनलैण्ड पर अधिकार कर लिया गया और १९३८ में आस्ट्रिया को जर्मनी में मिला लिया गया। चैकोस्लोवाकिया के सूडेटनों (Sudetens) को जर्मनी से मिलने के लिए उकसाया और हिटलर ने उनकी माँग का खुले रूप में समर्थन किया। क्योंकि ब्रिटेन चैकोस्लोवाकिया को सैनिक सहायता देने का वचन दे चुका था, युद्ध की सम्भावना बढ़ गई थी। किन्तु चैम्बरलेन तीन बार जर्मनी गया और अन्त में म्यूनिक सन्धि (Munich Pact) के अनुसार चैकोस्लोवाकिया को जर्मनी की माँगें माननी पड़ीं। चैकोस्लोवाकिया का अंग-भंग करके युद्ध टल गया, और चैम्बरलेन ने कहा था कि उसने सम्मान के साथ शान्ति स्थापित की है। यद्यपि वास्तव में युद्ध टल गया था, बहुत से लोग चर्चिल के मत से सहमत थे कि म्यूनिक का समझौता ब्रिटेन की पूर्ण लज्जाजनक हार थी। म्यूनिक सन्धि द्वारा स्थापित शान्ति केवल ११ महीने ही चल सकी। चैम्बरलेन की खुशामदी नीति के समर्थन के बारे में कहा जाता है कि ब्रिटेन उस समय युद्ध के लिए तैयार नहीं था। १९१९ के पश्चात् उसने अपनी सैन्य-शक्ति को बहुत ही कम कर दिया था। ब्रिटिश सेना के पास टैंकों की कमी थी। यद्यपि वायुसेना दक्ष थी फिर भी वह संकट-काल के लिए उपयुक्त न थी। देश में कोई लामबन्दी नहीं थी। राष्ट्रीय सुरक्षा का दूसरा मोर्चा प्रादेशिक सेना (Territorial Army) बिल्कुल असमर्थ थी। इस निराशाजनक स्थिति के लिए ब्रिटेन के

लेखकगण, राजनीतिज्ञ, समाचार-पत्र और यहाँ तक कि सम्पूर्ण राष्ट्र उत्तरदायी था। किसी भी ब्रिटिश सरकार, राजनीतिक दल अथवा देश की किसी भी संस्था ने यह माँग नहीं की कि देश की सुरक्षा की उपयुक्त रूप से देख-भाल की जाय। इंग्लैण्ड के जनसाधारण ने शुतुर्मुर्ग की तरह रेत में मुँह छुपा रखा था और जब मुँह को निकाल कर देखा तो प्रस्तुत परिस्थिति ने उन्हें असमंजस में डाल दिया था। उन्हें अपने आपको अकर्मण्यता के लिए धन्यवाद देना पड़ा। अतः ब्रिटेन की सरकार और जनमत को हिटलर को उसी समय रोक देना चाहिए था, जब उसने राईनलैण्ड में अपनी सेनाएँ भेजी थीं। उन्हें जापान द्वारा मञ्चूरिया में तथा इटली द्वारा ऐबिसीनिया की विजय के समय हस्तक्षेप करना चाहिए था। उन्हें हिटलर को बिना युद्ध किए आस्ट्रिया पर अधिकार नहीं करने देना चाहिए था। चैकोस्लोवाकिया के मामले में भी ब्रिटेन को 'असमर्पण' की नीति अपनानी चाहिए थी। जैसी परिस्थिति थी हिटलर और बर्लिन-रोम-टोक्यो धुरी संगठन में उसके साथियों को बिना किसी रोक-टोक के विजय करने दिया गया। इस प्रकार के रुख से तानाशाहों पर दुर्भाग्यपूर्ण प्रभाव पड़ा। क्योंकि इन्हें सफलताओं के बाद सफलताएँ मिलती रहीं और केवल शाब्दिक विरोध के अतिरिक्त कुछ नहीं हुआ, परिणामस्वरूप वे उत्तरोत्तर और भी साहसी बनते चले गए। उन्हें अपनी गति रोकने में कोई युक्ति नहीं प्रतीत हुई विशेषतः जब वे अपना कार्य सुगमता से कर सकते थे।

१६३६ में नाजियों ने अपना ध्यान डैन्जिग (Danzig) और पोलैण्ड के बरामदे (Polish Corridor) पर केन्द्रित किया। हिटलर ने अपनी पुरानी चाल समाचार-पत्रों द्वारा जर्मन नागरिकों पर पोलैण्ड के अत्याचारों का प्रचार करने का आश्रय लिया। ३१ मार्च, १६३६ को चैम्बरलेन ने घोषणा की कि यदि जर्मनी ने पोलैण्ड पर आक्रमण किया तो इंग्लैण्ड और फ्रांस उसकी सहायता करेंगे। किन्तु हिटलर ने इस चेतावनी की उपेक्षा करके पोलैण्ड को धमकी दी कि यदि वह हठ करता रहा तो उसे दुष्परिणाम भोगने पड़ेंगे। अप्रैल, १६३६ में ब्रिटेन और फ्रांस ने ग्रीस और रूमानिया की स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण बनाए रखने का आश्वासन दिया। इटली ने १६३६ में अलबानिया पर अधिकार कर लिया था। इसलिए राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने हिटलर और मुसोलिनी से कुछ देशों से आक्रमण न करने की सन्धि करके शान्ति की रक्षा करने को कहा। यह प्रार्थना १५ अप्रैल को की गई किन्तु इसे ठुकरा दिया गया। २८ अप्रैल को जर्मनी ने १६३५ की इंग्लैण्ड से की गई समुद्री सन्धि भंग कर दी। उसने पोलैण्ड से १६३४ में किए 'अनाक्रमण समझौते' को भी तोड़ डाला और डैन्जिग को लौटाने तथा पोलैण्ड के बरामदे को पार करके पूर्वी आस्ट्रिया में रेल और मोटर यातायात बनाने की अनुमति की माँग की। ५ मई, १६३६ को पोलैण्ड ने ये माँगें अस्वीकार कर दीं।

२२ मई, १६३६ को रिबिनट्रोप (Ribbentrop) और चियानो (Ciano) ने बर्लिन में एक दस-वर्षीय सन्धि पर हस्ताक्षर किए जिसके अनुसार कूटनीतिक सहयोग, परामर्श, युद्धकालीन आर्थिक व्यवस्था और दोनों देशों के युद्ध में फँस जाने की

स्थिति में तुरन्त सैनिक सहायता देने आदि की प्रतिज्ञाएँ की गईं। दोनों देशों में से कोई भी अकेले ही किसी से सन्धि और समझौता नहीं करेगा। जर्मनी ने डेन्मार्क, ऐस्टोनिया और लैटविया से युद्ध न करने की सन्धियाँ कीं। २३ अगस्त, १६३६ को सोवियत रूस और जर्मनी में भी 'अनाक्रमण समझौता' हुआ कि दोनों देश किसी भी अवस्था में परस्पर युद्ध नहीं करेंगे। यदि दोनों में से एक देश तीसरी शक्ति से युद्ध में फँस जाए तो दूसरा देश तीसरी शक्ति की सहायता नहीं करेगा। दोनों देश पारस्परिक हित की बातों पर परामर्श करेंगे। वे दोनों किसी भी ऐसे गुट में सम्मिलित नहीं होंगे, जो दोनों में से किसी एक के विरुद्ध बनाया जाएगा। यह सन्धि जर्मनी की कूटनीति की कुशलता की महान् विजय थी। युद्ध की स्थिति में जर्मनी दो मोर्चों पर युद्ध करने से बहुत डरता था। रूस से सन्धि करके जर्मनी को रूस की ओर मोर्चे से छुटकारा मिल गया। रूस ने इस सन्धि को इसलिए माना कि वह फ्रांस और इंग्लैण्ड के रूस से घृणा करने लगा था और वह इतना बलशाली नहीं था कि अपने पैरों पर स्वयं खड़ा हो सकता।

रूस से समझौता हो जाने के पश्चात् घटनाचक्र बड़ी तेज़ी से घूमने लगा। जर्मनी और पोलैण्ड के समाचार-पत्र विरोधी पक्षों द्वारा किए गए अत्याचारों की कहानियों का प्रचार कर रहे थे। हिटलर ने शिकायत की कि उसके जातीय भाइयों को पोलैण्ड में सताया जा रहा है। सैनिक तैयारियों को अन्तिम बार चमका दिया गया। अत्याचारों की कहानियाँ बढ़ा-चढ़ा कर छपने लगीं। हिटलर पोलैण्ड के विरुद्ध अधिकाधिक गरजने लगा। संसार साँस रोके हुए दिन गुज़र रहा था।

२६ अगस्त, १६३६ को जर्मनी ने ब्रिटेन से कहा कि वह एक पूर्णाधिकार सम्पन्न पोलैण्ड के प्रतिनिधि से ३० अगस्त को बर्लिन में बातचीत कराने का प्रबन्ध करे। ब्रिटेन ने कहा कि यह माँग अनुचित है और कार्यान्वित नहीं हो सकती। इस कार्य के लिए पर्याप्त समय नहीं दिया गया था। जर्मनी को सलाह दी गई कि वह पोलैण्ड के विषय में अपनी माँगों को पोलैण्ड के राजदूत के सम्मुख प्रस्तुत करे। जब जर्मनी के विदेश-मन्त्री रिबिनट्रोप को ब्रिटेन के राजदूत ने यह उत्तर अर्धरात्रि के समय दिया, तब उसने शीघ्रतापूर्वक जर्मन भाषा में वे १६ माँगें पढ़ीं, जिनके मानने से युद्ध टल सकता था। सर नैविल हैण्डर्सन ने जो उस समय बर्लिन में ब्रिटेन का राजदूत था, इन माँगों की एक प्रति माँगी तो रिबिनट्रोप ने कहा, "क्योंकि पोलैण्ड का प्रतिनिधि अभी तक नहीं आया है अब बहुत देर हो चुकी है।" ३१ अगस्त, १६३६ को जर्मन सरकार ने इन १६ माँगों को रेडियो द्वारा प्रसारित किया। पोलैण्ड के राजदूत ने इन १६ माँगों को अपनी सरकार को भेजने का प्रयत्न किया, किन्तु पोलैण्ड के साथ यातायात और संचार के सारे साधन नष्ट कर दिए गए थे अतः वह असफल रहा। जर्मनी ने घोषणा की कि पोलैण्ड ने अपना प्रतिनिधि नहीं भेजा और नियत अवधि में माँगें मानने से भी इन्कार कर दिया है। पोलैण्ड के विरुद्ध युद्ध की घोषणा किए बिना ही जर्मनी के बमवर्षक वायुयानों ने पोलैण्ड के नगरों पर बम बरसाने आरम्भ कर दिए और जर्मनी की सेनाओं ने पोलैण्ड की धरती पर १ सितम्बर, १६३६ को आक्रमण कर दिया। अपने कार्य के समर्थन में हिटलर

ने कहा, "मेरे पास अब शक्ति का मुकाबला शक्ति से करने के अतिरिक्त कोई तरीका नहीं रह गया है।" ३ सितम्बर, १६३६ को ब्रिटेन ने जर्मनी से कहा कि वह पोलैण्ड से अपनी सेनाएँ हटा ले किन्तु यह नहीं माना गया। चैम्बरलेन ने हाउस ऑफ कॉमन्स में घोषणा की, "यह देश अब जर्मनी से युद्ध की स्थिति में है।" फ्रांस ने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस प्रकार सितम्बर, १६३६ में द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ।

(२) युद्ध का दूसरा कारण जापान का साम्राज्यवाद (Japanese Imperialism) भी था। प्रथम विश्वयुद्ध में जापान की महत्त्वाकांक्षाएँ दढ़ गई थीं। यद्यपि जापान और चीन दोनों ही प्रथम विश्व-युद्ध में मित्र-राष्ट्रों के सहयोगी थे तथापि चीन की कीमत पर जापान को अनेक सुविधाएँ दी गई थीं। उसने अपने समुद्री बेड़े को शक्तिशाली बनाना आरम्भ कर दिया था। जापान के युवकों ने अपनी सरकार के प्रयत्नों का समर्थन किया। १६३० तक जापान की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। १६३१ में जापान ने मन्चूरिया में हस्तक्षेप किया। लीग ऑफ नेशन्स के होते हुए भी मन्चूरिया को जीत कर इस पर अधिकार जमा लिया गया। जापान की लालसा अब भी पूरी नहीं हुई। जुलाई, १६३७ में जापान ने चीन पर बिना घोषणा किए आक्रमण कर दिया। एक के बाद दूसरा नगर जापान के अधिकार में आने लगा। पीकिंग ही नहीं, अपितु नानकिंग भी जापान ने हथिया लिया। जब १६३६ में द्वितीय विश्व-युद्ध आरम्भ हुआ उस समय भी चीन और जापान का युद्ध चल रहा था। जापान ने १६४१ में विश्व-युद्ध में भाग लिया और पर्ल हारबर (Pearl Harbour) पर आक्रमण कर दिया। किन्तु वह बर्लिन-रोम-टोक्यो धुरी राष्ट्रों में मिल चुका था। जापान की विजय और प्रसार के कार्य का परिणाम युद्ध ही होना था और इन परिस्थितियों में शान्ति असम्भव थी।

(३) यूरोप के कई देशों में तानाशाही का स्थापित हो जाना युद्ध का एक अन्य कारण था। हिटलर के नेतृत्व में जर्मनी में नाज़ी तानाशाही की स्थापना का उल्लेख किया जा चुका है। हिटलर ने संसार को आश्वासन दिलाने का प्रयत्न किया था कि उसका उद्देश्य शान्ति स्थापित करना है। किन्तु वह अधिक समय तक अपने असली लक्ष्य को छिपा नहीं सका। शीघ्र ही उसने आक्रमणकारी रुख अपना लिया और संसार को युद्ध की आग में झोंक दिया। यही हाल मुसोलिनी का था। १६२२ में सत्ता सँभालने के पश्चात् उसने इटली में अपनी तानाशाही सत्ता स्थापित की थी। मुसोलिनी और उसके फ़ासिस्ट साथी प्राचीन रोम की शान की पुनर्स्थापना की डींग मारने लगे थे। इटली ने ऐबिसीनिया पर आक्रमण किया और अन्त में उसे अपने साम्राज्य में मिला लिया। जनरल फ्रैंको की सहायता के लिए इटली के स्वयंसेवक स्पेन गए और वहाँ भी वे अपने कार्य में सफल हुए। इटली १६३७ में साम्यवादी संघ विरोधी सन्धि (Anti-Comintern Pact) में सम्मिलित हुआ और इस प्रकार बर्लिन-रोम-टोक्यो धुरी संगठन का जन्म हुआ। मई, १६३६ में इटली ने जर्मनी से दस-वर्षीय सन्धि की थी। दोनों देशों ने प्रतिज्ञा की कि वे कूटनीतिक मामलों में

परस्पर परामर्श करेंगे और युद्ध की आर्थिक व्यवस्था में परस्पर सहयोग देंगे। धुरी राष्ट्रों की उपस्थिति में शान्ति असम्भव थी और इसमें आश्चर्य नहीं कि इसका परिणाम युद्ध ही होना था।

(४) तानाशाही और प्रजातन्त्रवाद की विचारधाराओं में भी संघर्ष (Conflict of ideologies) था। जर्मनी, इटली और जापान जैसे देश एक विचारधारा के अनुयायी थे। ब्रिटेन, फ्रांस और अमरीका दूसरी विचारधारा के पक्षपाती थे। मुसोलिनी ने इन दो विचारधाराओं के संघर्ष का अपने शब्दों में ठीक वर्णन किया था कि, "दो प्रकार के संसारों के संघर्ष में समझौते का कोई स्थान नहीं है। या तो हम रहेंगे या वे" मूल रूप में दोनों विचारधाराओं के भेद का आधार राज्य में व्यक्ति (individual) की स्थिति पर निर्भर था। प्रजातन्त्रवाद में व्यक्ति राज्य के सारे कार्यों का निर्माता और लाभ उठाने वाला था। उसके जीवन में उसी समय हस्तक्षेप किया जा सकता था जब उसकी गतिविधि से अन्य व्यक्तियों को हानि पहुँचती हो। तानाशाही शासन में व्यक्ति का कोई महत्त्व नहीं था। उसे राष्ट्र में आत्मसात् करके राष्ट्र के लिए इसका बलिदान किया जाता था। दोनों विचारधाराएँ आध्यात्मिक, प्रादेशिक और आर्थिक मामलों में भी भिन्न थीं। प्रजातन्त्र प्रणाली को मानने वाले राष्ट्र राजनीतिक और क्षेत्रीय मामलों में यथा-स्थिति (Status Quo) को बनाए रखने के समर्थक थे और उन्हें 'सर्वसम्पन्न' (Haves) कहा जाता था। विपक्ष में धुरी राष्ट्रों को 'सर्वहीन' (Have-nots) कहा जाता था। प्रतिष्ठा और युद्ध की दृष्टि से उन्होंने अधिक प्रदेशों की माँग की थी। जापान धरती का भूखा था अतः वह सुदूर पूर्व में अपना आधिपत्य जमाने में लगा था। वह किसी भी समझौते को मानने के लिए तैयार नहीं था और उस प्रत्येक देश से, जो उसके प्रभाव की प्रगति में बाधक होने का दुस्साहस करता, युद्ध करने के लिए तैयार था। यही अवस्था जर्मनी और इटली की थी। हिटलर ने केवल प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् उससे छीने गए उपनिवेश ही वापिस नहीं माँगे, अपितु अन्य प्रदेशों की भी माँग की, ताकि जर्मनी भी उपनिवेशों की संख्या में ब्रिटेन और फ्रांस का समकक्ष बन जाए। हिटलर के शासन-काल में जर्मन नागरिक यह नहीं समझ सकते थे कि जब ब्रिटेन और फ्रांस विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य रख सकते हैं तब क्या कारण है कि जर्मनी के पास एक भी उपनिवेश नहीं? वे अपने को 'शासक जाति' समझते थे और संसार में उस समय की स्थिति में उन पर लादी गई सीमाओं को सहन करना उनके बस का नहीं था। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वे युद्ध का खतरा लेने को भी तैयार थे। सत्य रूप से कहा जा सकता है कि १९३९ में युद्ध से पहले विश्व धुरी राष्ट्रों (Axis Powers) और अ-धुरी राष्ट्रों (Non-Axis Powers) में बँट गया था। दोनों में कोई भी समझौता सम्भव नहीं था, एक पक्ष का हारना अनिवार्य ही था। संघर्ष पूर्णरूप से अवश्यम्भावी था।

(५) युद्ध का एक और कारण था प्रजातन्त्रवादी राष्ट्रों की कमजोरी और धुरी राष्ट्रों का अपनी शक्ति पर अत्यधिक आत्मविश्वास (over-confidence)। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि १९१९-२० की शान्ति-सन्धि के पश्चात् इंगलैण्ड

और फ्रांस एक दूसरे से दूर होते गए। ब्रिटेन यूरोपीय राजनीति से अलग रहने की नीति पर चलने और शान्ति की रक्षा के लिए कोई भी कार्य करने से दूर रहने लगा। वह यूरोप के विदेशी मामलों की अपेक्षा अपने व्यापार और व्यवसाय के प्रति अधिक ध्यान देने लगा था। उसकी धारणा थी कि उसे युद्ध की क्षति, युद्ध ऋण, राईनलैण्ड पर अधिकार और शस्त्रीकरण की अपेक्षा जर्मनी के आर्थिक उत्थान से अधिक लाभ होगा। किन्तु फ्रांस का रुख यह नहीं था। युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् फ्रांस जर्मनी से डरने लगा था। उसने अनुभव किया कि जर्मनी की जनसंख्या में वृद्धि हो रही है और उसकी अपनी जनसंख्या घटती जा रही है। इन परिस्थितियों में जर्मनी से भविष्य में युद्ध हो जाने की अवस्था में निश्चित रूप से जर्मनी का पासा भारी रहता। पुनश्च, जर्मनी द्वारा १९१९ की पराजय का बदला लेने की भी सम्भावना थी। इसमें आश्चर्य नहीं कि फ्रांस ने इंग्लैण्ड और अमरीका से आश्वासन प्राप्त करना चाहा। जब उसे इनसे संतोषजनक विश्वास प्राप्त नहीं हुआ तो उसने पोलैण्ड, बेल्जियम और चैकोस्लोवाकिया जैसे छोटे देशों से गठबन्धन किया। दुर्भाग्य से उसके मैत्री बन्धन उसके सहायक होने की अपेक्षा भार बन गए। किन्तु फिर भी उसे अपनी सुरक्षा के विषय में संतोष नहीं हुआ। इसलिए उसने सन्धि पर किसी भी प्रकार से पुनर्विचार करने के प्रस्ताव का विरोध किया। उसे १९१९-२० की सन्धि में ही अपनी सुरक्षा दीख पड़ती थी। १९३५ में उसने रूस और इटली से सन्धियाँ कर लीं। किन्तु इन सन्धियों के होने पर भी वह सुरक्षित नहीं था और अन्त में उसने ब्रिटेन के साथ अपने भाग्य को जोड़ दिया।

दुर्भाग्य से ब्रिटेन स्वयं युद्ध को तैयार नहीं था और परिणामस्वरूप १९३८ तक आक्रमणकारियों को रोकने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सका क्योंकि वे अपने-अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सब कुछ कर सकने के लिए तैयार थे। इस तथ्य को भुलाया नहीं जा सकता कि जिस समय धुरी राष्ट्रों ने अपनी आक्रामक गतिविधियाँ आरम्भ की थीं यदि उस समय मित्र राष्ट्र युद्ध के लिए तैयार होते तो उन्हें रोका जा सकता था। किन्तु ऐसा नहीं किया जा सका। सैनिक-शक्ति की कमी और प्रजातन्त्रीय राष्ट्रों की पारस्परिक फूट ने धुरी-राष्ट्रों को उत्साहित किया। १९३९ में उन्होंने मित्रराष्ट्रों को भी मुकाबले के लिए तैयार पाया, किन्तु धुरी-राष्ट्रों को अपने मार्ग से वापिस लौटना असम्भव हो गया। अतः वे अपने आक्रमणों को अधिक तीव्र करते गए।

(६) यूरोप के कूटनीतिज्ञों ने यह अनुभव किया कि सैन्यवाद ही प्रथम विश्व-युद्ध का मुख्य कारण था। इसलिए उन्होंने लीग ऑफ नेशन्ज़ बनाई। इसका उद्देश्य मूलतः शान्ति बनाए रखना और तनाव के कारणों में कमी करना था। वर्साई की सन्धि से जर्मनी को निःशस्त्र कर दिया गया था और आशा की गई कि अन्य देश भी इसका अनुसरण करेंगे। ब्रिटेन ने क्रमशः निःशस्त्रीकरण करना आरम्भ किया और इस सीमा तक पहुँच गया कि उसकी अपनी सुरक्षा खतरे में पड़ गई। फ्रांस को भी ऐसा करने को कहा गया, किन्तु उसने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। उसने कहा

कि उसके राष्ट्र की सुरक्षा के लिए सैन्य-शक्ति आवश्यक है। यही हाल यूरोप के अन्य देशों का था। निःशस्त्रीकरण के लिए सम्मेलन हुए और किसी क्रियात्मक निर्णय पर पहुँचने का प्रयत्न किया गया, किन्तु ये प्रयास सफल न हुए। परिणामतः हिटलर जब जर्मनी में सत्ताधारी बना तो उसने वर्साई की सन्धि की उन धाराओं को जिनके अनुसार जर्मनी के शस्त्रीकरण पर प्रतिबन्ध लगाया गया था भंग करने का निश्चय कर लिया। जर्मनी की वायुसेना की प्रगति हुई और इसे यूरोप में सबसे शक्तिशाली वायुसेना माने जाने लगा। १९३५ में जर्मनी में जबरन भरती आरम्भ हुई। १९३६ में जर्मनी की सेना ने राईनलैण्ड पर अधिकार कर लिया। ये सब कदम सैन्यवाद (militarism) की दिशा में बढ़ाए जा रहे थे। सैन्यवाद जापान और इटली में भी प्रगति कर रहा था। धुरी-राष्ट्रों की युद्ध की तैयारियों ने प्रजातन्त्रवादी देशों को भी सशस्त्र होने के लिए विवश कर दिया। १९३८ के पश्चात् यह गति और भी तीव्र हो गई। दोनों पक्षों में सैनिक तैयारियों का परिणाम युद्ध ही होना था।

(७) दुर्भाग्य से जब दोनों पक्षों में तनाव बढ़ रहा था कोई भी ऐसी प्रभावशाली अन्तर्राष्ट्रीय संस्था नहीं थी जो दोनों पक्षों को एक स्थान पर लाकर उनमें समझौता करा सकती। लीग ऑफ नेशन्ज़ पूर्णतः मर चुकी थी। ऐबिसीनिया और मन्चूरिया के मामलों में इसकी असफलता के पश्चात् यह एक प्रकार से समाप्त ही हो गई थी। छोटे और बड़े राष्ट्रों का इस अन्तर्राष्ट्रीय संस्था से विश्वास उठ गया और अब केवल एक ही मार्ग रह गया था कि दोनों पक्ष सशस्त्र संघर्ष में अपनी-अपनी शक्ति की परख करें।

युद्ध का प्रवाह (Course of the War)—पोलैण्ड द्वारा आत्मसमर्पण न करने का परिणाम पोलैण्ड पर जर्मनी का आक्रमण हुआ। पोल जाति द्वारा कड़ा मुकाबला करने पर भी उन्हें हरा कर कुचल दिया गया। जिस समय जर्मनी पोलैण्ड के रक्षात्मक युद्ध को कुचल रहा था उस समय पूर्व की ओर से रूस ने आक्रमण कर दिया। परिणामतः विजय के पश्चात् पोलैण्ड को रूस और जर्मनी ने बाँट लिया।

१९३९ की शिशिर ऋतु (autumn) में रूस ने फिनलैण्ड पर आक्रमण कर दिया। उसने फिनलैण्ड का एक भाग माँगा क्योंकि लेनिनग्राड की सुरक्षा के लिए इसकी आवश्यकता थी। रूस को जर्मनी की शान्ति और मैत्री के आश्वासनों पर कोई विश्वास नहीं रहा था इसलिए वह सभी प्रकार की सुरक्षात्मक कार्यवाही कर रहा था। उसे इस बात का डर था कि यदि जर्मनी ने फिनलैण्ड को जीत लिया तो रूस के लिए खतरा पैदा हो जाएगा। रूस ने कुछ भाग पर अधिकार करके फिनलैंड से सन्धि कर ली। रूस ने बाल्टिक सागर के लैटविया, ऐस्टोनिया और लिथुआनिया के राज्यों पर भी अधिकार कर लिया था।

जर्मनी की सेना ने अप्रैल, १९४० में डेन्मार्क पर तथा मई, १९४० में हॉलैण्ड और बेल्जियम पर अधिकार कर लिया।

फ्रांस को अपनी सुरक्षा के लिए मेजिनो रेखा (Maginot Line) पर बड़ा विश्वास था किन्तु १९१४ की तरह जर्मनी ने इस रेखा को लाँघ कर आक्रमण किया। ब्रिटेन ने सोचा कि उसकी सेनाएँ वहाँ घिर जाएँगी अतः उसने उसे खाली करने का निश्चय कर लिया। अमानुषी पराक्रम से यह सेना डनकर्क (Dunkirk) पहुँची। चार या पाँच दिन में वहाँ से चैनल पार करके ब्रिटिश सैनिकों को इंग्लैण्ड में लाया गया। यह बात ध्यान रखने योग्य है कि डनकर्क से ब्रिटिश सेना का निकल आना द्वितीय विश्वयुद्ध की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है और इसके कारण ही अन्त में ब्रिटेन की जीत हुई। शत्रु द्वारा वायुयानों से निरन्तर आक्रमण किए जा रहे थे और बड़ी कठिनाई से ब्रिटिश सेना अपनी सारी सामग्री छोड़कर बुरी हालत में अपने घर पहुँच पाई थी। अधिकांश ब्रिटिश टुकडियाँ इंग्लैण्ड पहुँचने पर लगभग नंगी थीं।

ब्रिटिश सेनाओं के वहाँ से चले जाने के पश्चात् जर्मनी की शक्ति का मुकाबला करना असम्भव था और फ्रांस ने जून, १९४० में हथियार डाल दिए। इंग्लैण्ड के नए प्रधानमन्त्री चर्चिल ने फ्रांस को युद्ध जारी रखने के लिए कहा, किन्तु फ्रांस असफल रहा। मार्शल पीताँ (Petain) की अध्यक्षता में विशी (Vichy) में एक नई सरकार बनाई गई। फ्रांस का बहुत बड़ा भाग जर्मन सेना के अधिकार में था और फ्रांस को उसका खर्चा उठाना पड़ता था। जर्मन युद्धबन्दी मुक्त कर दिए गए और फ्रांस के युद्धबन्दियों को कारखानों और शस्त्रागारों में काम करना पड़ता था। किन्तु फ्रांस के समुद्री बेड़े ने जर्मनी के सामने आत्मसमर्पण नहीं किया था।

फ्रांस की पराजय के पश्चात् इटली भी युद्ध में सम्मिलित हो गया। इटली ने नाइस (Nice), सेवॉय (Savoy) और कॉर्सिका (Corsica) की माँग की क्योंकि ये प्रदेश कभी उसके शासन में थे। मुसोलिनी को आशा थी कि जर्मनी उसकी सहायता करेगा, किन्तु उसकी आशा विफल हुई। इटली के युद्ध में आने के पश्चात् उत्तरी अफ्रीका में इटली और ब्रिटेन की सेनाओं में संघर्ष आरम्भ हो गया। मुसोलिनी ने यूनान पर हमला किया किन्तु कड़ा मुकाबला हुआ और इटली पराजित हुआ। किन्तु जर्मनी भी इटली की सहायता करने लगा और अन्त में यूनान पर विजय प्राप्त हुई। यूगोस्लाविया और क्रीट (Crete) पर भी जर्मनी का अधिकार हो गया।

डनकर्क के पतन के पश्चात् यूरोप में इंग्लैण्ड अकेला रह गया। उसकी वायु सेना यूरोप भर में गुणों की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ थी किन्तु उसकी संख्या पर्याप्त नहीं थी। हिटलर जून, १९४० में ही फ्रांस के पतन के पश्चात् इंग्लैण्ड पर आक्रमण कर सकता था और उस समय इंग्लैण्ड कमजोर भी था, किन्तु वह अवसर चूक गया। चर्चिल के ओजस्वी नेतृत्व में इंग्लैण्ड उभर आया। उसने राष्ट्र को, "रक्त, श्रम, आँसू और पसीने" के अतिरिक्त कुछ भी दिलाने की प्रतिज्ञा नहीं की। अपने ऐतिहासिक भाषण में उसने घोषणा की थी, "हम समुद्रों और सागरों में लड़ेंगे, हम बढ़ती हुई शक्ति से वायु में लड़ेंगे, हम अपने देश की रक्षा करेंगे भले ही इसका हमें कुछ भी मूल्य चुकाना पड़े। हम समुद्र-तटों और हवाई अड्डों पर लड़ेंगे। हम खेतों और गलियों में लड़ेंगे। हम पर्वतों में लड़ेंगे, किन्तु कभी भी आत्मसमर्पण नहीं करेंगे।"

इंग्लैण्ड की जनता ने अपने नेता की ललकार को सुनकर शत्रु से मुकाबला करने के लिए कमर कस ली थी। "यदि इंग्लैण्ड हार गया तो फिर और कौन जीत सकता है", "हम युद्ध में पराजित होने की सम्भावना में दिलचस्पी नहीं रखते; ऐसी सम्भावना है ही नहीं," इत्यादि नारे गूंजने लगे। १९४० की शिशिर ऋतु में जर्मनी ने लगन से इंग्लैण्ड पर अपना आक्रमण आरम्भ किया। उनकी चाल थी कि पहले वायु सेना को नष्ट कर दिया जाए और फिर स्थल सेना से देश पर आक्रमण किया जाए। इस उद्देश्य से बहुत बड़ी संख्या में इंग्लैण्ड पर हवाई हमले किए गए, किन्तु शाही वायु सेना (R.A.F.) पराजित नहीं हुई। ब्रिटेन की लड़ाई ने युद्ध के चित्र को बदल दिया। शत्रु के वायुयान बहुत बड़ी संख्या में नष्ट हो गए और आक्रमण धीमे पड़ गए। चर्चिल यह कहने योग्य हो गया कि "मानवता के इतिहास में इतने अधिक लोग इतने कम लोगों के इतने आभारी कभी नहीं थे" ("Never in the history of mankind did so many owe so much to so few")

जर्मनी ने लन्दन और अन्य बड़े नगरों पर रात्रि के समय बमबारी आरम्भ कर दी। परिणामस्वरूप बहुत-सी सम्पत्ति नष्ट हुई और अनेक लोग मारे गए। किन्तु कुछ समय पश्चात् ब्रिटेन की जनता ने हवाई हमलों से रक्षा करने के तरीके सीख लिये। हवाई हमलों से बचने के रक्षागृहों (Air-raid Shelters) बनाने के बाद और हवामार तोपों के खुले प्रयोग करने से हानि क्रमशः कम होने लगी। शाही वायु सेना ने फ्रांस, बेल्जियम, हालैण्ड और नार्वे की बन्दरगाहों, घाटों और जहाज़ों पर आक्रमण करने आरम्भ कर दिए, ताकि जर्मनी की इंग्लैण्ड पर आक्रमण की तैयारियाँ नष्ट हो जाएँ।

आरम्भ में अमरीका का विचार था कि ब्रिटेन का पतन समय की बात है इसलिए उसने इस विषय में अधिक चिन्ता करनी छोड़ दी थी। किन्तु जून, १९४० में ओरान (Oran) में फ्रांस के समुद्री जहाज़ों की बहुत बड़ी संख्या ब्रिटेन के समुद्री बेड़े ने इसलिए नष्ट कर डाली कि वे जर्मनी के हाथों में न पड़ सकें। परिणामतः फ्रांस की विशी स्थित सरकार (Vichy Government of France) ने ब्रिटेन से कूटनीतिक सम्बन्ध (Diplomatic Relations) समाप्त कर दिए, किन्तु ओरान की लड़ाई से अमरीका बड़ा प्रभावित हुआ। उसे अनुभव होने लगा कि चर्चिल की डींग कि "हम बहुत कड़ी लड़ाई अन्त तक लड़ेंगे" केवल थोथी धमकी नहीं थी। यह भी समझा जाने लगा कि ब्रिटेन को उसके भाग्य पर छोड़ देना ठीक राजनीति नहीं है, क्योंकि ब्रिटेन के पश्चात् अमरीका की बारी आ सकती थी। राष्ट्रपति रूज़वैल्ट जनमत के कारण बड़ी सावधानी से कार्य कर रहा था, किन्तु जब उसने जनमत को ब्रिटेन के प्रति सहानुभूतिपूर्ण पाया तो उसने अमरीका के समुद्री बेड़े के ५० लड़ाकू जहाज़ों को समुद्री और हवाई अड्डों के बदले में ब्रिटेन को दे दिया। मार्च, १९४१ में अमरीका की कांग्रेस ने उधार-पट्टा अधिनियम (Lease-Lend Act) बनाया जिसके अनुसार अमरीका ने धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध लड़ने वाले सारे देशों को सहायता देने की प्रतिज्ञा की। अगस्त, १९४१ में राष्ट्रपति रूज़वैल्ट और प्रधानमन्त्री चर्चिल

अन्ध महासागर में एक ब्रिटिश युद्धपोत पर मिले और 'अटलान्टिक चार्टर' नाम के घोषणा-पत्र का मसविदा बनाया गया जिसमें युद्ध के उद्देश्यों की व्याख्या की गई थी।

अगस्त, १९३९ की अनाक्रमण सन्धि होने पर भी बिना चुनौती दिए हिटलर ने जून, १९४१ में रूस पर आक्रमण कर दिया। जर्मनी को आशा थी कि रूस पर सरलता से विजय प्राप्त की जा सकेगी और यूक्रेन और काकेशस से तेल और खाद्य-सामग्री प्राप्त होने लग जाएगी। रूस जैसे साधन मिल जाने पर ब्रिटेन पर आक्रमण किया जा सकेगा। जब जर्मनी ने रूस पर आक्रमण किया तो मोलोतोव ने रूसी जनता से कहा, "यह युद्ध हम पर न तो जर्मनी की जनता ने थोपा है और न ही जर्मनी के मजदूरों, किसानों और बुद्धिजीवियों ने ही। अपितु यह युद्ध जर्मनी के रक्त-पिपासु फासिस्ट शासकों ने हम पर लादा है जो फ्रांस, चैकोस्लोवाकिया, पोलैण्ड, सर्बिया, नार्वे, बेल्जियम, डेन्मार्क, हालैण्ड, यूनान और अन्य राष्ट्रों की जनता को गुलाम बना चुके हैं। हम उनके ऊपर किए जा रहे अत्याचारों को जानते हैं। यह प्रथम अवसर नहीं है कि हमारे नागरिकों को इस प्रकार के ढीठ शत्रु का मुकाबला करना पड़ा है। नेपोलियन द्वारा रूस पर आक्रमण के समय हमारी जनता का उत्तर देश की रक्षा के लिए युद्ध था। इस प्रकार नेपोलियन की हार और पतन भी हुआ। यही हाल हिटलर का भी होगा जिसने गुस्ताखी से हमारे देश के साथ एक नया युद्ध छेड़ा है। लाल सेना और हमारी सारी जनता देश की रक्षा के लिए, अपनी प्रतिष्ठा और अपनी स्वतन्त्रता के लिए एक बार फिर विजय के लिए युद्ध करेगी।

"संघ के नागरिकों से सरकार अनुरोध करती है कि वे अपनी बोल्शेविक पार्टी के ध्वज के नीचे, अपनी सोवियत सरकार के निकट, हमारे महान् नेता स्टालिन के चारों ओर एकत्रित हो जाएँ। हमारा उद्देश्य सच्चाई पर आधारित है। शत्रु अवश्य ही पराजित होगा और विजय हमारी होगी।"

जब जर्मनी ने रूस पर आक्रमण किया उस समय रूस में क्रिप्स शिष्टमण्डल भी सफल हुआ और जुलाई, १९४१ में दोनों देशों में एक समझौता हुआ। नवम्बर, १९४१ में राष्ट्रपति रूजवैल्ट ने रूसी जनता को अभिनन्दन-पत्र भेजा और १,०००,०००,००० डालर की सहायता की प्रतिज्ञा की। रूस को बहुत बड़ी संख्या में टैंक, वायुयान, रेल के इंजन, मोटरें और जूते इत्यादि प्राप्त हुए। रूसी सैनिक जर्मनी की सेना से बड़ी वीरता से लड़े। वे शत्रु से युद्ध के मैदान में, नगरों के बाहर, बाजारों में, गलियों और प्रत्येक घर में लड़े। स्टालिनग्राड की रक्षा के लिए लड़े गए युद्ध ने इतिहास का निर्माण कर दिया। रूस की वीरता और धैर्य की सारे संसार ने प्रशंसा की। १९४२ में जनरल मेकार्थर ने कहा था, "सभ्यता की आशाएँ साहसी रूसी सेना के आदरणीय ध्वज पर निर्भर हैं। अपने जीवनकाल में मैं अनेक युद्धों में लड़ा हूँ, अन्य युद्धों को देखा है और अतीत के श्रेष्ठ सेनापतियों की युद्ध-विद्या का अध्ययन भी किया है, किन्तु कहीं भी मैंने अभी तक अपराजित सेना की करारी चोटों का इतना शक्तिशाली प्रत्याक्रमण आज तक नहीं देखा। इनके प्रत्याक्रमण ने शत्रु को वापिस उसके देश में खदेड़ दिया है। इस मोर्चे की कुशलता और महानता सारे इतिहासों

में सबसे महान् सैनिक विजय है।" विन्स्टन चर्चिल ने इन शब्दों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की थी, "यह रूस की सेना ही है जिसने जर्मनी की सेना की आंत निकालने का मुख्य कार्य किया है।" जब रूस की धरती से जर्मनी को निकाल दिया गया उस समय स्टालिन ने घोषणा की थी "स्लाव जाति के जीवन संघर्ष और उनके स्वातन्त्र्य के युगयुगान्तर के संघर्ष का फल आज जर्मन आक्रमणकारियों तथा उनके अत्याचारों पर विजय प्राप्त करके हुआ है। आज के पश्चात् राष्ट्रों की स्वतन्त्रता का और राष्ट्रों में शान्ति का ध्वज यूरोप में लहराएगा। उन वीरों का जो शत्रु से युद्ध करते हुए काम आए और जिन्होंने हमारी जनता की स्वतन्त्रता और समृद्धि के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग किया, उन्हें अक्षय कीर्ति प्राप्त हो।"

जापान ने स्वयं को चीन पर विजय प्राप्त करने में संलग्न रखा और विश्व-युद्ध से अलग रहा। किन्तु वह साथ ही प्रशान्त महासागर में अमरीका के उपनिवेशों पर आक्रमण करने की तैयारियाँ करता रहा। दोनों देशों के विवादग्रस्त मामलों को निपटाने के लिए जापान का एक शिष्टमण्डल वाशिंगटन गया। विचार-विमर्श चल ही रहा था कि जापान ने पर्ल हारबर पर दिसम्बर, १९४१ में आक्रमण कर दिया। यह आक्रमण बिना चेतावनी के किया गया था और अमरीका की जनता में इस पर बड़ा रोष फैला। आक्रमणकारी को एक अच्छा पाठ पढ़ाने का निश्चय किया गया। संयुक्त राज्य अमरीका ने जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और ब्रिटेन ने उसका साथ दिया। जापान ने पूरी तैयारी के बाद आक्रमण किया था परिणामतः जापान के आक्रमणों को एक दम रोका नहीं जा सकता था। जापान ने फिलिपाइन द्वीपसमूह पर अधिकार कर लिया। सिंगापुर का ब्रिटिश अड्डा भी जापान के अधिकार में हो गया। मलाया का पतन हुआ और शत्रु ने वर्मा पर भी विजय प्राप्त कर ली। भारतवर्ष और लंका की सुरक्षा के लिए भी खतरा उत्पन्न हो गया।

मित्रराष्ट्रों ने भी अपने सारे साधन जुटा कर प्रत्याक्रमण किया। जनरल मेकार्थर को सर्वोच्च सेनापति बना दिया गया और लार्ड माउण्टबेटन को दक्षिणपूर्वी एशिया का सेनापति बना कर दिल्ली में उनका मुख्य कार्यालय बना दिया गया। लार्ड माउण्टबेटन ने जापानियों को वर्मा से खदेड़ दिया। जनरल मेकार्थर ने फिलिपाईन पर अधिकार कर लिया।

१९४१ से १९४३ के दौरान में अफ्रीका में भी धमासान युद्ध हुआ। संयुक्त-राष्ट्रों ने ऐबिसीनिया पर अधिकार करके सम्राट् हेलसिलेसी (Emperor Haile) Selassie) को गद्दी पर बैठा दिया जिसे १९३६ में इटली ने भगा दिया था। इटालियन सोमालीलैण्ड जीत लिया गया। इटली और जर्मनी की सेनाओं ने मिस्र पर आक्रमण करने का निश्चय किया क्योंकि वहाँ ब्रिटिश सेनाएँ थीं। ब्रिटिश सेनाएँ लिबिया और बेनगाजी तक आगे बढ़ गईं किन्तु उन्हें पीछे हटने को विवश होना पड़ा। किन्तु नवम्बर, १९४२ में जनरल मण्टगुमरी के 'रेगिस्तान के चूहों की सेना' (Desert Rats) ने लिबिया से जर्मनी और इटली को मार भगाया। मण्टगुमरी ने

ट्रिपोली पर अधिकार कर लिया और ट्यूनीशिया में भी घुस गया।

मुसोलिनी ने भूमध्यसागर पर अपने अधिकार की शेखी बघारी थी। वह इसे 'हमारा समुद्र' कहा करता था। किन्तु यूनान के तट के पास केप मैटापन (Cape Matapan) की लड़ाई में इटली के एक बेड़े को ब्रिटिश जहाजी बेड़े ने हरा दिया था। माल्टा के द्वीप पर इटली ने कई बार आक्रमण किया था, किन्तु किसी न किसी प्रकार यह अन्त तक शत्रु का मुकाबला करता रहा और कभी भी इसने आत्मसमर्पण नहीं किया।

नवम्बर, १९४२ में अमरीकन और ब्रिटिश सेनाओं ने फ्रांस के उपनिवेश अल्जीरिया पर अधिकार कर लिया था। यहाँ फ्रांस की एक सरकार स्थापित कर दी गई और फ्रांस की बहुत सी सेनाएँ मित्रराष्ट्रों से आकर मिल गईं। ब्रिटिश और अमरीकन सेनाएँ जनरल आइज़नहॉवर के नेतृत्व में जनरल मण्टगुमरी की सेनाओं से जा मिलीं। १९४३ में इटली और जर्मनी की सेनाओं को उत्तरी अफ्रीका से निकाल दिया गया। १९४३ की ग्रीष्म ऋतु में ब्रिटिश और अमरीकन सेनाओं ने सिसली के द्वीप (Island of Sicily) पर अधिकार कर लिया। इटली पर भी आक्रमण किया गया। इटली में विद्रोह हुआ और मुसोलिनी को कैद कर लिया गया किन्तु वह किसी प्रकार भाग कर जर्मनी की शरण में चला गया। मार्शल बडोगलियो (Marshal Badoglio) की अध्यक्षता में इटली में नई सरकार बनाई गई। सितम्बर, १९४३ में इटली ने मित्रराष्ट्रों के सामने बिना शर्त के हथियार डाल दिए। किन्तु जर्मन सेनाएँ इटली में लड़ती रहीं और केवल युद्ध के अन्तिम दिनों में ही उन्हें इटली से पूरी तरह निकाला जा सका। १९४५ में पुनः मुसोलिनी को पकड़ लिया गया और इटली के लोगों ने स्वयं ही उसे गोली से मार डाला।

१९४३-४४ की शरद् ऋतु में जनरल आइज़नहॉवर के नेतृत्व में यूरोप के महाद्वीप पर आक्रमण करने की तैयारियाँ हुईं। उसकी सहायता के लिए जनरल मण्टगुमरी और वायुसेना के एयर चीफ़ मार्शल टेड्डर थे। फ्रांस के समुद्री तट पर लगाने के लिए चैनल के पार जहाज़ों द्वारा खैंच कर ले जाई जाने वाली बनावटी बन्दरगाहें जिन्हें 'मुलबेरी' (Mulberry) कहते थे, बनाई गईं। आक्रमण करने वाली सेना को पेट्रोल देने के लिए 'प्लुटो' ('Pluto' or Pipe-Line under the Ocean) अर्थात् समुद्र के नीचे से पाइप की नली बिछाई गई। अब तक शाही वायु सेना बहुत शक्तिशाली बन चुकी थी। इसके पास हज़ारों सुशिक्षित और दक्ष हवाबाज सिपाही थे। अमरीकन और ब्रिटिश उड़ाकुओं ने जर्मनी में जाकर निशानों पर बमवर्षा की और जर्मनी की युद्ध-सामग्री बनाने वाले कारखानों को नष्ट कर दिया। युद्ध के महत्त्वपूर्ण निशानों पर आक्रमण करने से जर्मनी की जनता भयभीत हो गई और जर्मनी में सब कुछ अस्तव्यस्त हो गया।

जर्मनी संयुक्त राष्ट्रों (United Nations) द्वारा यूरोप पर आक्रमण की आशंका कर रहा था किन्तु वह यह नहीं समझ पाया था कि यह आक्रमण

किस ओर से होगा । परिणामतः वे इंग्लैण्ड की ओर के सारे समुद्री तट की रक्षा करने लगे । जून, १९४४ में नॉरमैण्डी पर आक्रमण हुआ । घमासान युद्ध होने पर भी संयुक्त राष्ट्र मुख्य महाद्वीप पर जम गए । रसद की प्राप्ति होने पर वे पेरिस को जीतने में सफल हुए और जर्मनों को फ्रांस से निकाल कर भगा दिया। जनरल एलेग्ज़ेण्डर ने इटली पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् दक्षिण-पूर्व की ओर से फ्रांस पर आक्रमण किया और इस प्रकार फ्रांस का दक्षिणी प्रदेश शत्रु से मुक्त हो गया । जनरल एलेग्ज़ेण्डर की सेना जनरल आइज़नहॉवर की सेना से राईन नदी पर जाकर मिल गई । दिसम्बर, १९४४ में रण्डस्टैड (Rundstedt) के नेतृत्व में जर्मनी ने प्रत्याक्रमण किया । थोड़ी सी सफलता के पश्चात् उसे पीछे हटना पड़ा । जब जनरल आइज़नहॉवर की सेनाओं ने राईन नदी पार करके एल्बे (Elbe) की ओर बढ़ना आरम्भ किया, उसी समय रूस ने जर्मनी पर पूर्व की ओर से आक्रमण कर दिया । जर्मनी दो मोर्चों पर नहीं लड़ सकता था, हिटलर ने अप्रैल, १९४५ में आत्महत्या कर ली । मई, १९४५ में जर्मनी ने बिना शर्त के आत्मसमर्पण कर दिया और विजेताओं ने बर्लिन में पदार्पण किया ।

संयुक्त राष्ट्रों ने जर्मनी को चार भागों में विभक्त कर लिया । एक भाग को रूस, दूसरे को ब्रिटेन, तीसरे को अमरीका और चौथे भाग को फ्रांस के अधिकार में सौंप दिया गया । जर्मनी की सेनाएँ अब भी यूरोप के अनेक भागों पर अधिकार किए हुए थीं । उन्हें स्वदेश लौट आने की आज्ञा दी गई । जर्मनी की सेनाओं को निःशस्त्र करके भंग कर दिया गया । जर्मनी की सेनाओं ने सारे गोला-बारूद के हथियार डाल दिए । जर्मनी की सारी युद्ध-सामग्री को या तो नष्ट कर दिया गया या संयुक्त राष्ट्रों ने आपस में बाँट लिया । बहुत से जर्मन नागरिकों पर युद्ध के अपराधों के अभियोग में सैनिक न्यायालयों में मुकदमे चलाए गए और उन्हें या तो मुक्त कर दिया गया या दण्ड दिया गया । जर्मनी के प्रमुख सेनापतियों पर न्यूरेमबर्ग में मुकदमे चलाए गए और उन्हें मृत्युदण्ड या आजीवन कारावास का कठोर दण्ड दिया गया ।

जर्मनी के पतन का एक कारण था संयुक्त राष्ट्रों की तैयारियाँ और दूसरा स्वयं हिटलर की मूर्खता थी । उसे फ्रांस के पतन के पश्चात् जून, १९४० में ही इंग्लैण्ड पर आक्रमण कर देना चाहिए था । उसे रूस पर आक्रमण नहीं करना चाहिए था, क्योंकि इस युद्ध से उल्टा उसका ही नाश हुआ । फिर जर्मनी ने विजित देशों की जनता से सद्व्यवहार नहीं किया । परिणामतः इन देशों में असन्तोष फैल गया । वे अवसर मिलते ही जर्मनी की दासता के बन्धन को तोड़ फेंकने के लिए तैयार थे ।

जर्मनी के पतन के पश्चात् अमरीका और ब्रिटेन ने अपना ध्यान जापान पर केन्द्रित किया । ६ अगस्त, १९४५ को हिरोशिमा नगर पर अणु बम गिराया गया । अनुमान है कि इस एक ही बम से एक लाख व्यक्ति मारे गए । जापान को हथियार डालने को कहा गया और उसके इन्कार कर देने पर ९ अगस्त, १९४५ को नागासाकी नगर पर दूसरा बम फेंका गया । इसके परिणाम भी विनाशकारी हुए । १४ अगस्त,

१९४५ को जापान ने बिना शर्त के आत्मसमर्पण कर दिया। जिस समय जापान ने समर्पण किया उसकी सेनाएँ दक्षिण-पूर्व एशिया पर अधिकार किए हुए थीं। इन सेनाओं को तुरन्त घर लौट आने की आज्ञा दी गई। जापान पर जनरल मेकार्थर की अध्यक्षता में संयुक्त राष्ट्रों की सेनाओं ने अधिकार कर लिया। मेकार्थर के निरीक्षण में एक नई सरकार बनाई गई। यद्यपि रूस ने भी जापान के आत्मसमर्पण के कुछ सप्ताह पहले जापान पर आक्रमण कर दिया था तथापि उसकी सेनाओं को जापान के द्वीपसमूह में घुसने नहीं दिया गया।

युद्ध की मुख्य विशेषताएँ (Main Features of the War)—(१) द्वितीय विश्व-युद्ध की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख आवश्यक है। जब युद्ध की घोषणा की गई उस समय राष्ट्रीयता के प्रदर्शन हुए। जर्मनी में भी नाज़ियों के सम्मेलनों के अतिरिक्त जनसाधारण में उदासीनता थी। इंग्लैण्ड की जनता ने भी केवल पारिवारिक रूप में युद्ध-घोषणा सुनी, सार्वजनिक भीड़ के रूप में नहीं। चैम्बरलेन ने भी जनता से जोश की अपेक्षा धैर्य रखने के लिए कहा था।

(२) द्वितीय विश्वयुद्ध एक सम्पूर्ण युद्ध था। प्रत्येक नागरिक आरम्भ से ही युद्ध में जुट गया था। जैसे-जैसे समय बीतता गया जनता के जीवन पर सरकार का अधिकाधिक नियन्त्रण होता गया। इंग्लैण्ड में स्त्रियों की भी भर्ती की गई और उन्होंने इस दिशा में बड़ी वीरता दिखाई। शायद ही विश्व का कोई भाग ऐसा रहा हो जो युद्ध में न फँसा हो। जंगलों, शहरों और रेगिस्तानों में भी युद्ध हुआ। चारों ओर विनाश हुआ।

(३) क्योंकि यह युद्ध सारे संसार में फैल गया था इसकी मोर्चाबन्दी (Strategy) भी विश्वव्यापी थी। संसार के प्रत्येक मोर्चे पर उपयुक्त सैनिक, उपयुक्त सामग्री, उपयुक्त समय पर भेजे गए जिससे योजना के अनुसार ही युद्ध का परिणाम हो। यह विश्व की मोर्चाबन्दी स्वयं स्टालिन, रूज़वैल्ट और चर्चिल ने बनाई थी। यह ठीक है कि उनकी सहायता के लिए उनके सेनापति भी थे। रूज़वैल्ट अगस्त, १९४१ और जनवरी, १९४३ में चर्चिल से मिला। तीनों नेता नवम्बर, १९४३ में तेहरान में भी मिले थे।

(४) द्वितीय विश्वयुद्ध प्रथम युद्ध से मौलिक रूप से भिन्न था। प्रथम युद्ध में खाइयों की लड़ाई (Trench-warfare) का महत्त्व रहा था किन्तु द्वितीय विश्व-युद्ध में ऐसा नहीं हुआ। इतिहास में सबसे बड़ी मूर्खता यह है कि फ्रांस अपनी सुरक्षा के लिए मेजिनो रेखा (Maginot Line) पर ही निर्भर रहा। जर्मनी ने बेल्जियम की ओर से फ्रांस में घुसकर उसकी मोर्चाबन्दी को व्यर्थ कर दिया। द्वितीय विश्व-युद्ध गतिमान युद्ध था। जर्मनी ने अपनी शक्ति हवाई सेना और टैंकों पर केन्द्रित कर रखी थी। जर्मनी अपनी तीव्र गति के ही कारण पोलैण्ड को चार सप्ताह में, हालैण्ड को चार दिन में और बेल्जियम को लगभग चौदह दिन में जीत सका था। शक्ति-संचालित युद्ध शस्त्रों के कारण बहुत घोर विनाश होता था। युद्ध स्थल में घायल होने वालों की संख्या तथा बमवर्षा से मारे जाने वाले नागरिकों की संख्या

बहुत ही विशाल थी। यद्यपि घायलों की चोटें अत्यन्त गम्भीर होती थीं, तथापि औषध विज्ञान की प्रगति के कारण बहुत से लोगों की जानें बचा ली गईं।

(५) युद्ध के आर्थिक पहलू भी थे। अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया था कि सैनिक, नाविक और वायु सेना के सदस्य औद्योगिक श्रमिकों पर निर्भर हैं और श्रमिक कच्चे माल और खाद्य सामग्री पर निर्भर हैं। इसलिए इस विश्वयुद्ध में सभी कच्चे माल और उद्योग संघर्ष में जुट गए थे।

(६) युद्ध का एक पहलू यह था कि यह युद्ध परिपाटियों (creeds) का संघर्ष था। यह एक प्रकार का धर्मयुद्ध (crusade) था। रूज़वेल्ट ने इस युद्ध को चार स्वतन्त्रताओं का युद्ध कहा था अर्थात् भय से स्वतन्त्रता (Freedom from Fear), कमी से स्वतंत्रता (Freedom from Want), पूजा की स्वतंत्रता (Freedom of Worship) और राजनीतिक स्वतंत्रता (Political Freedom)। अगस्त, १९४१ के अटलांटिक घोषणा-पत्र में घोषणा की गई थी कि, "हम अधर्म और अन्याय के विरुद्ध लड़ रहे हैं।" इसी प्रकार की घोषणाएँ हिटलर और स्टालिन ने भी की थीं। युद्ध में प्रचार ने भी बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। इस युद्ध में विचारधाराओं का संघर्ष होने के कारण प्रत्येक देश की प्रचार-व्यवस्था को शक्तिशाली बनाना पड़ा। जर्मनी में गाबल्ज़ (Gobbels) प्रमुख था और इंग्लैण्ड में ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कार्पोरेशन (B. B. C.) ने अपना कार्य पूरा किया।

(७) इस युद्ध का एक और महत्त्वपूर्ण पहलू यह था कि इसके कारण प्रत्येक देश के निवासियों का पारिवारिक जीवन अस्त-व्यस्त हो गया। शत्रुओं की बमवर्षा के कारण धनवान और निर्धन दोनों ही उजड़ गए। जब बम गिरते थे उस समय पति अपनी पत्नियों से और बालक अपने माता-पिता से बिछुड़ जाया करते थे।

Suggested Readings

Churchill, W. : *The Second World War (6 Vols.).*
Dupuy : *World in Arms, 1939.*
Falls, C. : *The Second World War : A Short History, 1948.*
Fuller, F. J. C. : *The Second World War (1939-45).*
Hains and Hoffman : *Origin and Background of the Second World War.*
Henderson : *Failure of a Mission.*
Schuman, F. L. : *Design for Power : Struggle for the World.*
Wilmot, Chester : *The Struggle for Europe, 1952.*

अध्याय ३४

१६४५ के पश्चात् यूरोप

(Europe Since 1945)

संयुक्त राष्ट्र संघ (United Nations Organisation)—द्वितीय विश्व-युद्ध की समाप्ति से पहले ही जून, १६४५ में संयुक्त-राष्ट्र-चार्टर (United Nations Charter) पर सान फ्रांसिस्को में हस्ताक्षर किए गए । चार्टर की घोषणा इस प्रकार है, "हम संयुक्त राष्ट्रों के नागरिक भावी सन्तानों की युद्ध के भयंकर परिणामों से रक्षा करने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ हैं; युद्ध ने हमारे जीवन-काल में ही दो बार मानव समाज को अनिर्वचनीय संताप दिए हैं, हम मानव के व्यक्तित्व के मूल्य और प्रतिष्ठा के मूलभूत अधिकारों में, स्त्री और पुरुष, छोटे और बड़े राष्ट्रों के समान अधिकारों में पूर्ण आस्था प्रकट करते हैं । सन्धियों तथा अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों की सुरक्षा के अन्य स्रोतों तथा इनके सम्मान और न्याय की रक्षा के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ बनाने की तथा सामाजिक उन्नति और अधिक स्वतन्त्रता के वातावरण में जीवन यापन के स्तर को ऊँचा उठाने की प्रतिज्ञा करते हैं तथा इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सहनशीलता अपनाएँगे और परस्पर शान्ति से अच्छे पड़ौसियों की तरह रहेंगे और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की स्थापना और सुरक्षा के लिए अपनी शक्ति को एकत्रित करेंगे। सिद्धान्तों और तरीकों को स्थापित करके तथा पारस्परिक मान्यता देकर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देंगे कि सामूहिक हित के अतिरिक्त कभी भी शस्त्र शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाएगा । हम सब जातियों की आर्थिक और समाजिक उन्नति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को प्रयोग में लाएँगे तथा इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सामूहिक रूप से प्रयत्न करेंगे ।"

संयुक्त राष्ट्र संघ (United Nations Organisation) की स्थापना अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा, राष्ट्रों में परस्पर मैत्री सम्बन्धों की स्थापना, आर्थिक, सामाजिक अथवा मानवता के हित के कार्यों की अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की प्राप्ति, तथा जाति, लिंग, भाषा और धर्म के भेद-भाव के बिना मानव के अधिकारों और मूलभूत स्वतन्त्रता के सम्मान के लिए हुई है । संयुक्त राष्ट्र संघ में दो प्रकार के सदस्य हैं । इनमें से कुछ संस्थापक सदस्य हैं, किन्तु एक विशेष व्यवस्था के द्वारा नए सदस्य भी बनाए जा सकते हैं। जो देश शान्ति-प्रिय हैं, जो इसके चार्टर में निहित कर्त्तव्यों को पूरा करना स्वीकार करते हैं और जो संयुक्त राष्ट्र संघ की धारणा के अनुसार अपने कर्त्तव्यों के पालन करने योग्य अथवा इच्छुक समझे जाते हैं उन सब देशों के लिए इसकी सदस्यता का द्वार खुला

है। किसी भी देश की सदस्यता को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने में सुरक्षा-परिषद् (Security Council) का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग रहता है। महासभा (General Assembly) सुरक्षा परिषद् के सुझावों पर किसी भी देश की सदस्यता को निलम्बित (Suspend) कर सकती है अथवा उसको निष्कासित (outlaw) कर सकती है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के महत्त्वपूर्ण अंग हैं सुरक्षा परिषद् (Security Council), आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् (Economic and Social Council), संरक्षण परिषद् (Trusteeship Council), अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (International Court of Justice) तथा सचिवालय (Secretariat)। नियमानुसार संघ का अधिवेशन वर्ष में एक बार होता है किन्तु किन्हीं परिस्थितियों में विशेष अधिवेशन भी होता है। संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रत्येक सदस्य महासभा का सदस्य होता है। महासभा को संयुक्त राष्ट्र संघ के सारे कार्यों पर विवाद, पुनर्विचार, व्यवस्था तथा आलोचना का अधिकार दिया गया है। यह अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के लिए विचार-विमर्श तथा इसके लिए व्यवस्था कर सकती है। यह अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक और सामाजिक सहयोग की व्यवस्था और निर्देशन करती है। यह संघ की वित्तीय व्यवस्था का नियन्त्रण करती है। यह सदस्यों को बनाती है और निलम्बित तथा निष्कासित करती है। यह अन्तर्राष्ट्रीय नियम स्वीकार करती है। यह अन्तर्राष्ट्रीय कानून (International Law) के अध्ययन की तथा इसके क्रमशः विकास के लिए सुझाव देती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के विभिन्न अंगों और समितियों पर बहुत बड़ी संख्या में सदस्यों की नियुक्ति करती है। यह संघ के चार्टर में संशोधन भी स्वीकार कर सकती है।

सुरक्षा परिषद् (Security Council) के महासभा (General Assembly) की अपेक्षा अधिक अधिवेशन होते हैं। इसके कुल सदस्य ग्यारह हैं जिनमें से पाँच स्थायी सदस्य हैं और अन्य छः सदस्यों को बारी-बारी से महासभा दो वर्षों के लिए चुनती है। इन छः सदस्यों को चुनते समय प्रादेशिक प्रतिनिधित्व का ध्यान रखा जाता है। सुरक्षा परिषद् के प्रत्येक सदस्य को एक मत देने का अधिकार है और प्रत्येक नए सदस्य की नियुक्ति के समय पाँचों स्थायी सदस्यों की अनुमति अनिवार्य है। इस प्रकार सुरक्षा परिषद् के प्रत्येक सदस्य को निषेधाधिकार (Power of Veto) प्राप्त है। कैल्सन (Kelson) के मतानुसार, "मतदान प्रणाली द्वारा प्रत्येक स्थायी सदस्य को निषधाधिकार देने का वास्तविक प्रभाव यह है कि इन विशेषाधिकार प्राप्त राष्ट्रों के विरुद्ध, यदि निर्णयार्थ समस्या का सम्बन्ध इनमें से किसी भी एक राष्ट्र से है तो कोई भी महत्त्वपूर्ण निर्णय नहीं किया जा सकता।" "एक स्थायी सदस्य केवल अपने ही मामलों में नहीं अपितु अन्य राष्ट्रों के मामलों में भी निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकता है। अतः जिन राष्ट्रों को यह अधिकार प्राप्त नहीं है, उन्हें महान् शक्तियों में से किसी एक की मैत्री और संरक्षण प्राप्त करने की प्रेरणा मिलती है। सुरक्षा परिषद् का वर्तमान नियमों को पालन करने को

बाध्य न होने के कारण एक ऐसे राष्ट्र के लिए जो सुरक्षा परिषद् का स्थायी सदस्य नहीं है, चार्टर के कर्त्तव्यों के पालन की अपेक्षा यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि वह पाँच महान् शक्तियों में से किसी एक को मित्र अथवा संरक्षक बनाए। खुले रूप से नियमों की अवहेलना करने पर भी यदि कोई राष्ट्र इन पाँचों शक्तियों में से किसी एक पर निर्भर है तो उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती। सुरक्षा परिषद् के पांच स्थायी सदस्यों के निषेधाधिकार का परिणाम लगभग आधिपत्य मानने वाले राजनैतिक प्रणाली के राज्यों की उत्पत्ति हो सकता है। दूसरे शब्दों में संघ पाँच गुटों में विभक्त हो जाएगा जिसमें किसी भी गुट के सदस्य अपने संरक्षक राष्ट्र के विशेषाधिकार का उपभोग करने लगेंगे। पूर्ण एक मत (complete unanimity) का सिद्धान्त इस प्रकार की प्रवृत्ति को कभी भी जन्म नहीं देता।" एक अन्य विद्वान् का मत है कि, "यह संस्था ऐसे नगरपालकों की संस्था बन जाएगी जो स्वयं अपने द्वारा लागू किए गए नियमों का पालन करने को बाध्य नहीं होंगे, किन्तु इन नियमों के अनुसार वे छोटे-छोटे छोकरों को नियन्त्रण में रख सकेंगे।"

सुरक्षा परिषद् (Security Council) का मुख्य कार्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखना है। इसे महासभा को अपनी कार्यवाही की वार्षिक या विशेष रिपोर्ट देनी पड़ती है। सदस्य देशों में शस्त्रीकरण पर नियंत्रण करने के लिए यह महासभा को योजनाएँ भेज सकती है। इस प्रकार की योजना बनाते समय यह सैनिक अधिकारी समिति (Military Staff Committee) की सहायता प्राप्त करती है। सुरक्षा परिषद् क्षेत्रीय कार्यालयों (Regional Agencies) और समझौतों की व्यवस्था करती है। विभिन्न देशों के संरक्षण में रखी जाने वाली संरक्षित प्रदेशों की व्यवस्था और नियन्त्रण करना भी इसी का काम है। इसे अपनी सद्भावना से और शान्तिपूर्ण तरीकों से अन्तर्राष्ट्रीय झगड़े निपटाने होते हैं। आवश्यकता पड़ने पर यह झगड़े के दोनों पक्षों को परामर्श, जाँच, मध्यस्थता, सुलह, पंच फैसले, न्यायिक निर्णय, प्रादेशिक कार्यालयों की कार्यवाही अथवा क्षेत्रीय व्यवस्था अथवा अन्य शान्तिपूर्ण तरीकों से झगड़ा निपटाने के लिए आदेश दे सकती है।

आर्थिक और सामाजिक परिषद् के अठारह सदस्य होते हैं जिन्हें महासभा तीन वर्ष के लिए चुनती है। किन्तु एक तिहाई सदस्य प्रति वर्ष अवकाश ग्रहण करते हैं। इसका मुख्य कार्य अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, शिक्षा सम्बन्धी, स्वास्थ्य तथा कला और अन्य मामलों पर अध्ययन करना अथवा अध्ययन करवाकर महासभा को सूचना देना है। यह इन विषयों पर अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों अथवा योजनाओं का मसविदा बना कर महासभा को भेज सकती है। यह विशेषज्ञों की समितियों (Specialised Agencies) की कार्यवाहियों में सहयोग स्थापित कर सकती है और इनसे नियमित रूप से नियत समय पर सूचना-पत्र मँगा सकती है। इसे महासभा द्वारा निर्देशित अथवा सदस्य राष्ट्रों द्वारा प्रेषित समस्याओं तथा विशेषज्ञ समितियों द्वारा भेजे गए विषयों पर भी कार्यवाही करनी पड़ती है।

संरक्षण व्यवस्था (Trusteeship System) लीग ऑफ नेशन्ज की अधिकार

व्यवस्था (Mandate System) का अधिक विकसित रूप है। इस कार्य को संरक्षण परिषद् करती है। संरक्षण परिषद् (Trusteeship Council) प्रशासन के लिए उत्तरदायी देश की रिपोर्टों पर विचार करती है। यह प्रशासन अधिकारी के साथ परामर्श करके याचिकाओं (petitions) पर विचार करती है। यह संरक्षण व्यवस्था के अधिकृत क्षेत्रों का दौरा करके इनके प्रशासन का निरीक्षण करती है। यह संरक्षित क्षेत्रों को उनकी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा शिक्षा सम्बन्धी प्रगति की जाँच के लिए प्रश्न-पत्र (Questionnaire) भी भेज सकती है

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (International Court of Justice) पूर्वकालीन अन्तर्राष्ट्रीय स्थायी न्यायालय (Permanent Court of International Justice) से अधिक उन्नत संस्था है। इसके पन्द्रह सदस्य हैं जिसे महासभा चुनती है। इसका कार्य-क्षेत्र (Jurisdiction) दो प्रकार का है। यह दो अथवा दो से अधिक देशों के परस्पर झगड़ों का निर्णय करता है। इसे परामर्श देने का कार्य भी सौंपा हुआ है। (Advisory Jurisdiction)।

सचिवालय (Secretariat) का मुख्य प्रशासन अधिकारी महासचिव (Secretary General) है। इसकी सहायता के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्यवाहियों को चलाने वाले बहुत बड़ी संख्या में सहायक कर्मचारी हैं। सचिवालय का स्थान संयुक्त राज्य अमरीका में न्यूयार्क नगर में है। सदस्य देशों को कार्यालय का व्यय-भार उठाना पड़ता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की आलोचना (Criticism of United Nations)—संयुक्त राष्ट्र संघ की बड़ी कटु आलोचना होती है। इस संस्था का नाम 'संयुक्त राष्ट्र' ही अब निरर्थक और उपहासास्पद हो गया है और उचित रूप से इसे 'विभक्त राष्ट्र' (Disunited Nations) कहा जाना चाहिए। बेण्टविच और मार्टिन के मतानुसार, "जिस संस्था का विश्व शान्ति की स्थापना के लिए निर्माण हुआ था वास्तव में विश्व संघर्ष का रंगमंच सिद्ध हुआ है।" आर्थर मूर के मतानुसार, "संयुक्त राष्ट्र संघ भी लीग ऑफ नेशन्ज़ के मार्ग पर चल रही है। क्योंकि आधुनिक घटना-चक्र प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् की घटनाओं की गति से अधिक तीव्रता से घूम रहा है, यह संस्था लीग से भी अधिक शीघ्रता से समाप्त हो जाएगी।" लीग ऑफ नेशन्ज़ की भाँति संयुक्त राष्ट्र संघ भी पराजितों का नहीं, अपितु विजेताओं का संघ है। यह उन देशों से बना है जिन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध जीता था।

(२) संयुक्त राष्ट्र संघ का आधार सारे सदस्य राष्ट्रों की सर्वाधिकार सम्पन्नता है। किसी देश के साधन अथवा क्षेत्रफल कितना ही क्यों न हो, उसकी स्थिति संघ में दक्षिणी अमरीका अथवा मध्यपूर्व के किसी भी नगण्य राज्य के ही बराबर है। यह व्यवस्था ठीक नहीं है। यदि हम इन भेदों पर ध्यान न दें तो भी इन भेदों का उतना ही महत्त्व है।

(३) संयुक्त राष्ट्र संघ कोई सर्वोच्च राज्य (Super State) नहीं है। प्रत्येक सदस्य राष्ट्र अपनी सर्वाधिकार सम्पन्नता (Sovereignty) रखता है। अतः

यह संयुक्त-राष्ट्र संघ के निर्णयों को मानने को बाध्य नहीं है। इसका परिणाम यह है कि संघ एक अन्तर्राष्ट्रीय वाद-विवाद समिति (An International Debating Society) मात्र बन गई है, जिसमें प्रत्येक देश भाग लेता है।

(४) संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर ने पाँच देशों को, यथा ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमरीका, सोवियत रूस, फ्रांस और चीन को निषेधाधिकार (Veto Power) प्रदान किया है। इसका परिणाम यह है कि बिना पाँचों देशों के एकमत के कोई भी निर्णय नहीं हो सकता। बहुधा इनमें सहमति नहीं होती। यदि पाँचों राष्ट्रों में कोई एक राष्ट्र स्वयं आक्रमणकारी हो अथवा आक्रमणकारी की सहायता करना चाहे तो संघ अपराधी के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं कर सकता। इससे संयुक्त राष्ट्र संघ दुर्बल हो जाता है। लार्ड विन्स्टर (Winster) के मतानुसार, "यह संस्था छोटे बच्चों को ठीक रखने वाले पंचों की है जो स्वयं अपने द्वारा बनाए गए नियमों का पालन नहीं करते।" डा० मुर्रे के मतानुसार, "मुझे पूरी आशंका है कि इस नई सभा का वास्तविक संकट काल उस समय आएगा जब यह स्वतन्त्रता का उपभोग करने वाले किसी राष्ट्र को आज्ञा देने का प्रयत्न करेगी। सुरक्षा परिषद् को आदेश देने का अधिकार एक नई व्यवस्था है। किन्तु महान् शक्तियों को इसके आदेश न मानने की छूट होने के कारण, सुरक्षा परिषद् के आदेशों को वह आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त नहीं है जो इसे वास्तव में होनी चाहिए थी।"

(५) संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्यों में अधिक सामंजस्य नहीं है। सभी शक्तियाँ दो गुटों में अर्थात् सोवियत गुट और एंग्लो-अमरीकन गुट में बँटी हुई हैं। इसका परिणाम यह है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के विचारार्थ समस्याओं पर उनके औचित्य के अनुसार विचार नहीं होता। दोनों गुटों का उद्देश्य एक दूसरे को नीचा दिखाना होता है। इससे बड़ी कटुता उत्पन्न होती है और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के दृष्टिकोण से यह अच्छा नहीं है। दोनों गुटों की विचारधारा भिन्न है और दोनों में निरन्तर खींचातानी लगी रहती है। शीत युद्ध (Cold War) किसी भी समय सशस्त्र युद्ध (Shooting War) का रूप धारण कर सकता है।

(६) छोटे राष्ट्रों के विचारों को संयुक्त राष्ट्र संघ में महत्त्व नहीं दिया जाता। प्रत्येक विषय में बड़े राष्ट्र अपनी मनमानी करते हैं। ट्युनीशिया के मामले पर सुरक्षा परिषद् ने अफ्रीका और एशिया के प्रतिनिधियों की उसे विचारार्थ समस्या सूची (Agenda) में सम्मिलित करने की सर्वसम्मति से की गई माँग को ठुकरा दिया। ऐसा ब्रिटेन और अमरीका के कारण हुआ क्योंकि ये दोनों फ्रांस की स्थिति को बिगाड़ना नहीं चाहते थे।

(७) सुरक्षा परिषद् को अपराधी देशों को दण्ड देने का कोई अधिकार नहीं है। यह सत्य है सैनिक अधिकारी समिति (Military Staff Committee) की व्यवस्था है किन्तु इस प्रकार की स्थिति में इस व्यवस्था से भी कोई विशेष आशा नहीं की जा सकती। डा० मुर्रे के मतानुसार, "नई संस्था को इस सुरक्षा सम्बन्धी व्यवस्था ने बहुत बड़े दाँत दे दिए हैं और तुरन्त ही किए गए कार्य की सर्वसाधारण

ने प्रशंसा की है। नवीन चार्टर को इससे प्राचीन लीग ऑफ नेशन्स के कवनैण्ट की अपेक्षा अधिक ऊँचा स्थान और स्तर प्राप्त हो गया है ऐसी धारणा प्रथम वार ही इस व्यवस्था को पढ़ते ही होती है। किन्तु विचार करने पर केवल आशंका ही नहीं अपितु सन्देह भी होने लगता है। वे राष्ट्र जिनके पास विशाल सैनिक शक्ति होने की सम्भावना है और जिनके कारण विश्व की शान्ति को खतरा हो सकता है, उन्हीं राष्ट्रों ने अपना पूरा शस्त्रीकरण किया हुआ है और इस वात पर अड़े हुए हैं कि इस महान् शान्ति संस्था का उन पर कोई नियन्त्रण नहीं होना चाहिए। वे साधारणतः शान्ति वनाए रखने के आश्वासन दिलाते रहते हैं और अपनी इच्छानुसार कार्य करते रहते हैं। फिर भी हमको अपने आपको वधाई देनी चाहिए कि नई संस्था के कुछ दाँत तो हैं।"

(८) संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर सदस्य राष्ट्रों में परस्पर हुए समझौतों का परिणाम था। सदस्य राष्ट्रों में परोक्ष रूप से वड़ी गन्दी सौदेवाज़ी हुई। इस कारण जो भी समझौते हुए वे सर्वोत्तम न होकर दूसरी श्रेणी के ही थे। चार्टर अपूर्ण व्यवस्था थी और इसका प्रवन्ध वड़ा ढीला था। हैज़लक (Hasluck) के विचारानुसार, "चार्टर की भाषा और व्यवस्था में जो भी न्यूनताएँ हैं, वे किए गए समझौतों के कारण हैं!"

(९) संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता में सार्वभौमिकता (universality) नहीं है। किसी देश की सदस्यता की योग्यता का निर्णय करने का कार्यभार सुरक्षा परिषद् को सौंपा गया है, जो प्रार्थी देश की 'शान्ति प्रियता' की व्याख्या करती है और निर्णय करती है कि वह अपने कर्त्तव्यों को पूरा करने का 'इच्छुक और समर्थ' भी है अथवा नहीं। वास्तव में इन बातों का निर्णय केवल राजनीतिक दृष्टिकोण से और संयुक्त राष्ट्र संघ के अहित में ही होता रहा है। इक्कीस देशों की सदस्यता को इस कारण अस्वीकार कर दिया गया है कि सुरक्षा परिषद् में किसी-न-किसी वड़ी शक्ति ने इसकी प्रार्थना पर निषेधाधिकार का प्रयोग किया है। लगभग वारह से पन्द्रह अन्य राष्ट्र इसके शक्तिशाली सदस्य हैं। लगभग विश्व की एक तिहाई जनसंख्या राजनीतिक शर्तों के लगाए जाने के कारण इसकी सदस्यता से वंचित है। इन शर्तों का चार्टर की व्यवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसकी सदस्यता को 'समविचार' देशों तक सीमित रखने की अपेक्षा अधिकाधिक सार्वभौमिक स्तर पर वनाना चाहिए। अन्यथा इससे संयुक्त राष्ट्र संघ का आधार ही वदल जाएगा और यह एक भिन्न प्रकार की संस्था वन जाएगी। सुरक्षा परिषद् को नई सदस्यता के लिए विचार करते समय अन्य वातों को महत्त्व नहीं देना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र संघ में गुटवन्दी की कठिन सौदेवाज़ी को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए। प्रतिद्वन्द्वी गुटों की परस्पर सौदेवाज़ी में पूर्ण प्रस्ताव स्वीकार या अस्वीकार करने की पद्धति (Package Deals) को प्रोत्साहन देना चाहिए। इस विषय में सुरक्षा परिषद् का निषेधाधिकार समाप्त कर देना चाहिए और इस विषय को महासभा को ही सौंप देना चाहिए।

(१०) विभिन्न देशों के उचित प्रतिनिधित्व के उद्देश्य से चार्टर की धारा

२३ (१) में 'न्यायपूर्ण भौगोलिक वितरण' (Equitable geographical distribution) के सिद्धान्त के अनुसार विश्व के विभिन्न देशों के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था है किन्तु फिर भी सुरक्षा परिषद् में इसका उचित प्रतिनिधित्व नहीं है। पिछले दस वर्ष के प्रतिनिधित्व का विश्लेषण करने से पता चलता है कि छः अस्थायी स्थानों में से दो स्थान सर्वदा दक्षिणी-अमरीका के देशों को ही मिलते रहे हैं, अन्य दो पूर्वी और पश्चिमी देशों के गुटों को, कॉमनवेल्थ देशों को क्रमानुसार (In rotation) एक स्थान और छठा स्थान मध्य पूर्व के देशों को प्राप्त होता रहा है। क्रियात्मक रूप से अफ्रीका और एशिया को वस्तुतः एक भी स्थान प्राप्त नहीं हुआ। भारतवर्ष और पाकिस्तान का भी प्रतिनिधित्व केवल कॉमनवेल्थ के देशों में होने के कारण हुआ, क्षेत्रीय अथवा भौगोलिक आधार पर नहीं। बर्मा, अफ़ग़ानिस्तान, थाईलैण्ड और इण्डोनेशिया का सुरक्षा परिषद् में प्रतिनिधित्व नहीं है। एशिया को अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त होने की कोई आशा नहीं है। इस कठिनाई का एक ही प्रकार निराकरण हो सकता है कि या तो दक्षिणी अमरीका के देश अपना एक स्थान छोड़ दें या सुरक्षा परिषद् की सदस्यता में एक और स्थान बढ़ा दिया जाए और इस स्थान को एशिया और अफ्रीका के प्रतिनिधियों को दिया जाए। श्री केसे (Casey) ने एशिया के प्रतिनिधित्व को न्यायोचित बताते हुए कहा है, "बहुत से नए एशियाई देश हैं और मेरी धारणा है कि उन्हें कम प्रतिनिधित्व मिला है।"

(११) चार्टर की 'आन्तरिक अधिकार क्षेत्र' (Domestic Jurisdiction) सम्बन्धी धारा २ (७) की भी बड़ी आलोचना की गई है। 'मूलतः आन्तरिक क्षेत्र' ('Essentially within the Domestic Jurisdiction') वाक्य की परिभाषा साधारण व्यक्ति की समझ में नहीं आती। इसकी कानूनी परिभाषा इसके आशय को स्पष्ट नहीं कर सकती क्योंकि सुरक्षा परिषद् और महासभा ने सानफ्रांसिस्को के मसविदे के निर्माताओं की इच्छाओं की अवहेलना करते हुए इसकी व्याख्या केवल राजनीतिक आधारों पर ही की है। एक मत यह है कि दोषी देशों को, 'आन्तरिक अधिकार क्षेत्र' की आड़ नहीं लेने देनी चाहिए। दूसरा मत यह है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्य क्षेत्र को बढ़ाने का परिणाम झगड़ा होगा और अन्ततः इसका परिणाम संयुक्त राष्ट्र संघ के लिए ही घातक सिद्ध हो सकता है। सर जॉन लैथम (John Latham) के मतानुसार, "संयुक्त राष्ट्र संघ को संसार भर की और संसार भर के सारे देशों की बुराइयों को नष्ट करने के लिए एक धर्म-युद्ध का साधन नहीं समझना चाहिए। यदि संसार के सारे देश दूसरे देशों में अपने देशवासियों की विचारधारा को प्रचलित करना चाहेंगे तो विश्व में शान्ति की रक्षा की कोई आशा नहीं रह जाएगी। यह सोचना कि संयुक्त राष्ट्र संघ को सब स्थानों पर सार्वजनिक रूप से त्रुटियों का निराकरण करना चाहिए एक ऐसी नीति है जिसे क्रियात्मक रूप से पूरा करना असम्भव है और जिससे स्वयं संयुक्त राष्ट्र संघ के नष्ट हो जाने की सम्भावना है।"

(१२) संरक्षण व्यवस्था (Trusteeship System) की भी आलोचना की

जाती है। बहुधा संरक्षण परिषद् का मंच एक राजनीतिक मंच से कुछ ही ऊँचा है। संरक्षक देशों की भूल-चूक की भी बड़ी निन्दा की जाती है। किन्तु यह भी सत्य है कि बहुत से झगड़े संरक्षक परिषद् के सदस्यों की अनुभव की और विशेष ज्ञान की कमी के कारण भी हो जाते हैं। पर्यवेक्षकों द्वारा उपनिवेशों का दौरा करने पर और वहाँ की परिस्थिति की जाँच से वहाँ की अवस्थाओं की अधिक स्पष्ट स्थिति पता लगी है तथा इससे निन्दा की अपेक्षा प्रशंसा की गई है। अनेक मामलों में प्रशासक देशों की कटु निन्दा से एक झुँझलाहट की भावना उत्पन्न हुई है और इसका परिणाम यह हुआ कि वे चार्टर के अन्तर्गत अपने कर्तव्यों को कम-से-कम पूरा करते हैं। इस समस्या का हल उपनिवेशों की समस्याओं के विशेषज्ञों के साथ सम्पर्क स्थापित करके उपनिवेशहीन शक्तियों के अनुभव को बढ़ाने में है। यह कार्य सूचना समिति (Committee on Information) कर सकती है। संरक्षण परिषद् में विशेषज्ञों को सदस्य बनाकर इसकी सदस्यता नें परिवर्तन कर देने से भी इस समस्या को सुलझाया जा सकता है।

(१३) आलोचकों का मत है कि जिन परिस्थितियों में संयुक्त राष्ट्र संघ कार्य करता है उनके कारण भी बहुत-सी कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। यह भी कहा जाता है कि यदि इसका मुख्य कार्यालय (Head-quarter) किसी छोटे और निष्पक्ष देश में होता तो सम्भवतः संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्मुख प्रस्तुत समस्याओं पर अधिक न्यायपूर्ण रीति से विचार होता। 'खुली कूटनीति' (Open Diplomacy) की परिपाटी राष्ट्रपति विलसन की आध्यात्मिक धारणाओं तथा प्रथम विश्वयुद्ध से पहले की गुप्त सन्धियों के प्रति घृणा और कटुता पर आधारित थी। यह ध्यान में रखना चाहिए कि कालचक्र की गति का प्रवाह बहुत बदल चुका है। आधुनिक काल में कूटनीति सार्वजनिक घोषणा द्वारा आरम्भ होती है। सुरक्षा परिषद् और संयुक्त राष्ट्र संघ के भवनों में हुए विवादों की गूँज आज प्रत्येक राष्ट्र के आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में होती है। समितियों के सदस्य व्यक्तिगत रूप से विशेषज्ञ के रूप में सेवा कर ही नहीं सकते। ध्वनि विस्तारक-यंत्र (microphone) और समाचारपत्रों में हुए वाद-विवाद से अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को कभी भी ठीक न हो सकने वाली हानि पहुँचती है। गोल मेज सभाओं को गुप्त रूप से करने से अन्तर्राष्ट्रीय तनाव में बहुत कमी हो जाती है। केवल समझौता हो जाने पर या अन्तिम निर्णय कर लेने पर ही परिणाम की सार्वजनिक घोषणा होनी चाहिए। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय मेल-जोल और उत्तरदायित्व बने रहने के साथ-साथ सद्भावना भी बनी रह सकती है।

(१४) चार्टर में झगड़ों को शान्ति से निपटाने के विषय में की गई व्यवस्था भी असन्तोषजनक है। यह बड़े खेद की बात है कि कोई भी एक राष्ट्र सुरक्षा परिषद् को मध्यस्थता और समझौते कराने से रोक सकता है। युद्ध के पश्चात् शक्ति प्रतिद्वन्द्विता का परिणाम एक ऐसी भावना है विशेषतः सोवियत गुट की, कि विश्व साम्राज्य के सम्मुख किसी भी सहयोगी द्वारा अपने चरित्र के स्पष्टीकरण करने से

उसकी प्रतिष्ठा को आघात पहुँचता है। इस प्रकार के रुख से सुरक्षा परिषद् के एक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य के पालन में बाधा पड़ती है और संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रतिष्ठा को शान्ति की सुरक्षा करने वाली संस्था के रूप में बड़ा धक्का लगता है।

(१५) कार्य प्रणाली (Procedure) से सम्बन्धित मामलों को जिस प्रकार निषेधाधिकार (Veto) से क्रियात्मक रूप में छूट प्राप्त हुई है आलोचकों ने उसका भी उल्लेख किया है। कार्य प्रणाली से सम्बन्धित मामलों (Procedural matters) का महत्त्व निषेधाधिकार को उपयुक्त और उचित रूप से प्रयोग न करने के कारण बहुत कम हो गया है इस तथ्य के कारण कि अधिकार पत्र में निषेधाधिकार की उचित व्याख्या न होने के कारण इसकी व्याख्या का कार्य सुरक्षा परिषद् पर छोड़ दिया गया है जिसके परिणामस्वरूप अनुचित रूप से इस अधिकार का प्रयोग किया जाता है। महासभा द्वारा इस विषय में उचित परिपाटी नियत करने के सारे प्रयत्न सोवियत रूस के विरोध के कारण असफल रहे हैं और औपचारिक रूप से इस व्यवस्था में परिवर्तन करने के प्रयत्नों का भी यही परिणाम होगा।

(१६) यह भी कहा जाता है कि महासचिव की नियुक्ति की व्यवस्था में भी सुधार की आवश्यकता है। ट्रिगवेलाई (Trygve Lie) के अवकाश प्राप्त करने पर बहुत दिनों तक विवाद चलता रहा। रूस अन्य देशों द्वारा मनोनीत व्यक्ति की प्रमुख मन्त्री के पद पर नियुक्ति को स्वीकार करने की अपेक्षा संघ को छोड़ने के लिए तैयार था। किसी भी एक देश द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्य में बाधा नहीं पड़नी चाहिए। केवल विलम्ब निषेधाधिकार (Suspensive Veto) का अधिकार होना चाहिए और जब महासभा बहुमत से निर्णय कर ले तो सुरक्षा परिषद् को इसके सुझाव को स्वीकार कर लेना चाहिए।

(१७) अपने स्वार्थों की रक्षा के उद्देश्य से बड़ी शक्तियाँ सिद्धान्तों के मामलों पर दृढ़ता से कार्य नहीं करतीं। संयुक्त राज्य अमरीका और ब्रिटेन का, दक्षिणी अफ्रीका के भारतीयों के प्रति किए जाने वाले व्यवहार के विषय में रुख अच्छा नहीं था। न्याय की अपेक्षा अवसरवादिता (opportunism) को अधिक महत्त्व दिया जाता रहा है।

(१८) साम्यवादी चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ तथा सुरक्षा परिषद् की सदस्यता से वंचित रखने की भी अनेक व्यक्तियों ने आलोचना की है। कहा जाता है कि इस विषय में अमरीका का साम्यवाद के प्रति घृणा और अविश्वास ही उत्तरदायी है। इस से पूर्व और पश्चिम के तनाव में वृद्धि हुई है और साम्यवादी चीन को अधिकाधिक रूस के गुट में मिला दिया है। चीन के प्रतिनिधि द्वारा सुरक्षा परिषद् में सदस्यता प्राप्त करने की अद्भुत परिस्थिति स्वयं एक उदाहरण है। सुरक्षा परिषद् में राजनैतिक दृष्टि से अपनी स्थिति दृढ़ बनाए रखने के लिए अमरीका की शक्ति प्रयोग द्वारा अपने स्वार्थों की रक्षा करने का ज्वलन्त उदाहरण है। यह रुख पूर्णतः न्याय और औचित्य हीन है और इससे संस्था की प्रतिष्ठा को घातक चोट पहुँची है।

संयुक्त राष्ट्र सघ का कार्य (Work of the Unitea Nations)—संयुक्त राष्ट्र संघ ने बहुत से सराहनीय कार्य किए हैं। इण्डोनेशिया का मामला सुरक्षा परिषद् के सम्मुख जनवरी, १९४६ में विचारार्थ आया, किन्तु जाँच का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया गया। जुलाई, १९४७ में भारतवर्ष और आस्ट्रेलिया ने सुरक्षा परिषद् को सूचित किया कि इण्डोनेशिया गणतन्त्र और नीदरलैण्ड्स में युद्ध हो रहा है। सुरक्षा परिषद् ने दोनों पक्षों को युद्ध बन्द करने का आदेश दिया और दोनों ने युद्ध बन्द करने की आज्ञाएँ दे दीं। सुरक्षा परिषद् ने झगड़े को निपटाने के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित कीं और इस उद्देश्य से सद्भावना समिति (Good Offices Committee) नियुक्त की गई। इस समिति द्वारा दोनों पक्षों से किए गए विचार-विमर्श के परिणामस्वरूप जनवरी, १९४८ में दोनों सरकारों में शान्ति-सन्धि हुई। दिसम्बर, १९४८ में पुनः जब नीदरलैण्ड्स ने युद्ध छेड़ा तो सुरक्षा परिषद् ने पुनः दोनों को युद्ध बन्द करने का आदेश दिया। जनवरी, १९४९ में सुरक्षा परिषद् ने दोनों पक्षों को झगड़ा समाप्त करने का आदेश दिया और इण्डोनेशिया को स्वतन्त्र संघीय प्रणाली तथा सर्वाधिकार सम्पन्न प्रजातन्त्र (Federal, Independent and Sovereign Republic) बनाने का सुझाव दिया। सद्भावना समिति को संयुक्त राष्ट्र संघ का एक आयोग (Commission) बना दिया गया और सुरक्षा परिषद् के प्रस्ताव को क्रियान्वित करने का कार्य सौंप दिया गया। नीदरलैण्ड्स सरकार की प्रार्थना पर सुरक्षा परिषद् ने सत्ता हस्तान्तरण करने के उद्देश्य से एक गोल मेज सम्मेलन का आयोजन करने का आदेश दिया। यह आयोग युद्ध समाप्त करने में और शान्ति की स्थापना कराने के निमित्त बना था। यह गोल मेज सम्मेलन हेग में हुआ और सत्ता का हस्तान्तरण करने के विषय में निर्णय किए गए और इन निर्णयों को क्रियान्वित करने में संयुक्त राष्ट्र संघ के आयोग ने बड़ी सहायता की थी। दिसम्बर, १९४९ में इण्डोनेशिया के सर्वाधिकार सम्पन्न प्रजातन्त्र का जन्म हुआ और इस कार्य में संयुक्त राष्ट्र संघ ने निःसन्देह बड़ा महत्त्वपूर्ण भाग लिया।

दक्षिणी अफ्रीका में भारतीय वंशजों के साथ हुए दुर्व्यवहारों के मामले में भारतवर्ष ने महासभा में शिकायत की और यह आरोप लगाया कि दक्षिणी-अफ्रीका संघ भारतीय वंशजों के साथ भेदभाव का वर्ताव कर रहा है। दक्षिणी अफ्रीका संघ ने दावा किया कि यह उसका घरेलू मामला है और संयुक्त राष्ट्र संघ को हस्तक्षेप करने आ कोई अधिकार नहीं है। महासभा ने इस मामले को अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को निर्णयार्थ भेजने का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया, किन्तु इस तथ्य पर ज़ोर दिया कि भारतीयों के साथ किए जाने वाले दुर्व्यवहार से संघ के दो सदस्यों के सम्बन्धों में तनाव आ जाएगा। संयुक्त राष्ट्र संघ का मत यह था कि भारतीयों के साथ कोई भेदभाव का वर्ताव नहीं होना चाहिए और इस विषय में १९२७ में भारतवर्ष और दक्षिणी अफ्रीका संघ की सरकार में केपटाउन समझौता (Capetown Agreement) माननीय है। इसने दोनों देशों से आग्रह किया कि वे परस्पर शान्ति से समझौता करलें और इसकी सूचना संयुक्त राष्ट्र संघ को दें। दक्षिणी अफ्रीका संघ की सरकार समझौता करने लिए तैयार नहीं थी, अतः महासभा ने भारतवर्ष, पाकिस्तान और

दक्षिणी अफ्रीका संघ को गोलमेज़ सम्मेलन करने का आदेश दिया। फरवरी, १९५० में केपटाउन (Capetown) में वार्ता हुई और विचारणीय समस्याओं को चुन लिया गया। किन्तु दक्षिणी अफ्रीका की सरकार द्वारा भेदभाव सम्बन्धी नए कानून के लागू होने के कारण सम्मेलन नहीं हो सका। यह मामला अभी तक अनिर्णीत है और अत्यन्त कटुता उत्पन्न कर रहा है। यद्यपि राष्ट्र संघ ने समितियाँ नियुक्त करके अपनी रिपोर्ट देने को कहा है किन्तु दक्षिणी अफ्रीका की सरकार के व्यवहार के कारण अभी तक कुछ नहीं हो पाया है।

(३) प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के समय से ही फिलस्तीन (Palestine) में शान्ति नहीं थी। अरब और यहूदी जातियों में बड़ी खींचातानी चल रही थी। दोनों ही एक दूसरे को नष्ट करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ थे। १९४७ में महासभा ने फिलस्तीन के मामले पर विचार करने के लिए संयुक्त राष्ट्र उपसमिति (United Nations Sub-Committee) की स्थापना की। उप-समिति ने अल्पमत तथा बहुमत, दो योजनाएँ प्रस्तुत कीं। महासभा ने बहुमत योजना को स्वीकार कर लिया और इस प्रदेश पर ब्रिटेन के अधिकार को समाप्त करने का तथा वहाँ से अगस्त, १९४८ तक सारी ब्रिटिश सेना हटा लेने का प्रस्ताव किया गया। ब्रिटिश सेनाओं के हट जाने के दो महीने बाद पृथक्-पृथक् अरब और यहूदी राज्यों की स्थापना तथा जैरुसलेम पर अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण लागू करने की योजना बनाई गई। महासभा ने इन सुझावों को क्रियान्वित करने के लिए एक संयुक्त राष्ट्र फिलस्तीन आयोग (United Nations Palestine Commission) की स्थापना की। फिलस्तीन में स्थिति बुरी तरह बिगड़ चुकी थी अतः विभाजन योजना को क्रियान्वित करना असम्भव हो गया। फिलस्तीन पर संरक्षण प्रणाली (Trusteeship System) के अनुसार प्रशासन करने की योजना बनाई गई किन्तु यह भी सफल नहीं हो पाया। संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से एक मध्यस्थ (mediator) नियुक्त किया गया। अप्रैल, १९४८ में शान्ति आयोग की नियुक्ति हुई। मई, १९४८ में ब्रिटेन फिलस्तीन से हट गया और तुरन्त ही नए यहूदी राज्य इज़राईल का जन्म हुआ। इस नए राष्ट्र पर सारे अरब देशों ने आक्रमण किया किन्तु सबको ही बारी-बारी से मार कर पीछे भगा दिया गया। संयुक्त राष्ट्र के मध्यस्थ तथा शान्ति आयोग ने किसी प्रकार पक्षों में समझौता करा दिया किन्तु यह समझौता ९ जुलाई, १९४८ को टूट गया। मध्यस्थ की सूचना पर सुरक्षा परिषद् ने झगड़ा करने वाले पक्षों को युद्ध बन्द कर देने का आदेश दिया और धमकी दी कि यदि आदेश का पालन न किया गया तो शक्ति का प्रयोग किया जाएगा। चेतावनी का कोई प्रभाव नहीं हुआ और मध्यस्थ तथा फ्रांसीसी प्रेक्षकों के नेता की हत्या कर दी गई। सुरक्षा परिषद् की कई बैठकें हुईं और युद्ध-बन्दी के आदेशों की उपेक्षा कर दी गई। प्रारम्भिक असफलताओं के पश्चात् १९४९ में संयुक्त राष्ट्र संघ सन्धि कराने में सफल हुआ। संयुक्त राष्ट्र संघ ने फिलस्तीन के शरणार्थियों के लिए सहायता तथा काम दिलाऊ संस्था (United Nations Relief and Works Agency for Palestine Refugees) स्थापित की। इस संस्था ने बड़ा लाभदायक कार्य किया। फिलस्तीन की समस्या अब भी पूरी तरह नहीं

निपटाई जा सकी है। इज़राईल और उसके पड़ोसी अरब देशों के सम्बन्ध अब भी अच्छे नहीं हैं और उनमें झड़पें होती रहती हैं। किन्तु इस बात से कोई भी इन्कार नहीं कर सकता कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने फिलस्तीन में सराहनीय कार्य किया है।

(४) जापान के १९४५ में पतन हो जाने के पश्चात् कोरिया को मुक्त कर दिया गया था। दक्षिणी कोरिया को अमरीका, ब्रिटेन और चीन के नियन्त्रण में तथा उत्तरी कोरिया को रूस के नियन्त्रण में रख दिया गया था। संयुक्त राष्ट्र संघ ने अनेक बार कोरिया में प्रजातन्त्रीय प्रणाली की सरकार स्थापित करने के प्रयत्न किए किन्तु सफलता नहीं मिल सकी। १९४९ में कोरिया पर अधिकार रखने वाली सेनाएँ अपने-अपने क्षेत्रों से हटा ली गईं। जून, १९५० में उत्तरी कोरिया ने दक्षिणी कोरिया पर आक्रमण किया। मामला सुरक्षा परिषद् के सम्मुख रखा गया और परिषद् ने उत्तरी कोरिया को अपनी सेनाएँ हटा लेने का आदेश दिया। उत्तरी कोरिया ने सेना हटाने से इन्कार कर दिया, इस कारण सुरक्षा परिषद् ने उत्तरी कोरिया को आक्रमण-कारी घोषित कर दिया और संयुक्त राष्ट्रों से माँग की गई कि वे दक्षिणी कोरिया को इतनी सहायता दें जिससे कि वह आक्रमण का सामना करके इस क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की रक्षा कर सके। रूस ने सुरक्षा परिषद् का वहिष्कार कर दिया था और इसकी अनुपस्थिति में ही यह प्रस्ताव स्वीकार हुआ। संयुक्त राष्ट्र संघ ने जनरल मेकार्थर को अपना सेनापति नियुक्त किया और अनेक देशों ने संयुक्त राष्ट्र संघ के ध्वज के नीचे लड़ने के लिए सेनाएँ भेजीं। किन्तु युद्ध का मुख्य भार अमरीका पर ही पड़ा। कुछ समय पश्चात् उत्तरी कोरिया की प्रगति रोक दी गई और राष्ट्र संघ की सेनाएँ उत्तरी कोरिया में आगे बढ़ने लगीं। कोरिया में युद्ध-बन्दी कराने के प्रयत्न कराए गए किन्तु रूस के विरोध के कारण सारे ही असफल हुए। जब उत्तरी कोरिया परास्त होने लगा तो साम्यवादी चीन ने उसकी सहायता के लिए अपने सैनिक भेजे। जनरल मेकार्थर के स्थान पर जनरल रिजवे को संयुक्त राष्ट्र संघ का सर्वोच्च सेनापति नियुक्त किया गया। केसांग (Kaesong) में युद्धबन्दी वार्ता आरम्भ हुई और यह वार्ता पानमुनजोन में पूरी हुई। युद्धबन्दी सीमा तथा युद्ध के कैदियों की अदला बदली के विषय में कठिनाई प्रस्तुत हुई। जुलाई, १९५३ में शान्ति समझौते पर हस्ताक्षर हुए और युद्ध बन्द हुआ। निष्पक्ष राष्ट्र पुनर्संस्थापन आयोग (Neutral Nations Repatriation Commission) ने अपने देश लौटना न चाहने वाले सैनिकों की अत्यन्त जटिल समस्या को भी सुलझाया। दोनों पक्षों में बड़ी कटुता थी किन्तु अन्त में कार्य सम्पन्न हुआ। जो कुछ भी कोरिया में हुआ उसका श्रेय संयुक्त राष्ट्र संघ को ही है।

(५) जुलाई, १९४७ में स्वतन्त्रता अधिनियम स्वीकार होने के पश्चात् कश्मीर रियासत के राजा को भारतवर्ष अथवा पाकिस्तान किसी भी देश से मिल जाने की छूट दी गई थी। महाराजा ने दोनों देशों में से किसी से भी मिलना स्वीकार नहीं किया और पाकिस्तान के साथ यथास्थिति समझौता (Standstill Agreement) कर लिया। किन्तु फिर भी पाकिस्तान ने कबायली लोगों को कश्मीर

पर आक्रमण करने दिया। इन परिस्थितियों में कश्मीर के महाराजा ने भारतवर्ष से मिलना स्वीकार कर लिया। भारवर्ष से तुरन्त ही सैनिक सहायता भेजी गई और आक्रमणकारियों की प्रगति को रोक दिया गया। दिसम्बर, १६४७ में भारतवर्ष ने संयुक्त राष्ट्र संघ में पाकिस्तान के विरुद्ध शिकायत की कि पाकिस्तान आक्रमण करने का दोषी है और उसके विरुद्ध कार्यवाही की जानी जाहिए। पाकिस्तान ने इसका उत्तर दिया कि भारतवर्ष की सेनाओं ने उन रियासतों पर अधिकार कर लिया है जो पाकिस्तान में मिलना चाहती थीं और भारतवर्ष में मुसलमानों की हत्या करने का बड़ा भारी प्रचार हो रहा है। २८ अप्रैल, १६४८ को सुरक्षा परिषद् ने एक प्रस्ताव स्वीकार किया जिसमें कहा गया कि कश्मीर के झगड़े से अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को खतरा हो सकता है तथा संयुक्त राष्ट्र ने खोज तथा मध्यस्थता आयोग (United Nations Commission for Investigation and Mediation) को आदेश दिया कि वह तुरन्त ही भारतीय महाद्वीप में पहुँच कर भारतवर्ष और पाकिस्तान, दोनों देशों की सरकारों के सम्मुख अपनी सद्भावना और मध्यस्यता प्रस्तुत करे। आयोग ने भारतवर्ष आकर दोनों देशों को गोलाबारी बन्द कर देने को तथा सेनाएँ हटा लेने को कहा। आयोग ने अन्य भी कई सुझाव दिए। १ जनवरी, १६४६ को भारतवर्ष और पाकिस्तान ने युद्धबन्दी के आदेश दिए। जम्मू और कश्मीर की जनता की इच्छा जानने के लिए कि वे भारतवर्ष में अथवा पाकिस्तान में मिलना चाहेंगे, एक निष्पक्ष और खुला मतदान (Plebiscite) कराने के लिए एडमिरल निमिट्ज़ (Admiral Nimitz) को नियुक्त किया गया।

सुरक्षा परिषद् ने मार्च, १६५० में सुरक्षा की दृष्टि से आवश्यक सेना को छोड़कर उस क्षेत्र से शेष सेनाएँ हटा लेने का सुझाव दिया। दोनों देशों में समझौता कराने के लिए सर ओवन डिक्सन (Sir Owen Dixon) को संयुक्त राष्ट्र संघ ने भारतवर्ष भेजा। २० सितम्बर, १६५० को सर ओवन डिक्सन ने कहा कि कश्मीर में सार्वजनिक मतदान असम्भव है। मध्यस्थता के सारे मार्ग समाप्त हो चुके हैं। अब दोनों देशों को परस्पर सीधा विचार-विमर्श करके समझौता कर लेना चाहिए। सर ओवन डिक्सन के मतानुसार पाकिस्तान ने कश्मीर में अपनी सेना भेजकर अन्तर्राष्ट्रीय नियमों को तोड़ा था।

सर ओवन के असफल प्रयास के पश्चात् डा० ग्राहम (Dr. Graham) को अप्रैल, १६५७ में कश्मीर में संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रतिनिधि नियुक्त किया गया। डा० ग्राहम का मुख्य कार्य दोनों देशों के विचार जानकर समझौता कराना था। उसके प्रयत्नों के सच्चे होने पर भी उसे सफलता नहीं मिली। दोनों देशों में समझौता कराना असम्भव हो गया था। कश्मीर की समस्या आज भी सुलझी नहीं। किन्तु इस जटिल समस्या को सुलझाने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने जो भी कार्य किया है उसका श्रेय इसे मिलना ही चाहिए। भारतवर्ष और पाकिस्तान के लिए कश्मीर राष्ट्रीय सम्मान और प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया है।

(६) १६५१ म इरानी तेल उद्योग राष्ट्रीयकरण कानून (Iranian Oil

Nationalisation Act of 1951) के ईरान में लागू हो जाने के कारण ईरान की सरकार और ऐंग्लो-ईरानी तेल कम्पनी में झगड़ा हो गया। तेल कम्पनी की ओर से ब्रिटिश सरकार ने मामला अपने हाथ में ले लिया। यह कहा गया कि १९५१ का कानून १९३३ की सन्धि पर आक्षेप करता है और दोनों पक्ष पंच-फ़ैसले को मानने के लिए वाध्य हैं। ब्रिटेन मामले को अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में ले जाकर अन्तरिम आज्ञा प्राप्त करने में सफल हो गया। ईरान की सरकार का दावा था कि यह उसका घरेलू मामला है और अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के कार्य-क्षेत्र (Jurisdiction) से वाहिर है। अन्त में ईरान का दावा मान्य हुआ। इस समस्या पर सुरक्षा परिषद् में भी विवाद हुआ किन्तु कुछ भी तथ्य नहीं निकला।

(७) १९४६ में महासभा ने एक प्रस्ताव द्वारा जनरल फ्रैंको के तानाशाह शासन के अन्तर्गत स्पेन को संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता से वंचित रखने का निर्णय किया। फ्रैंको के शासन को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के लिए भयानक घोषित करने के असफल प्रयत्न भी किए गए। महासभा ने सदस्य राष्ट्रों को स्पेन से अपने राजदूत वापिस बुलाने का सुझाव दिया। किन्तु फिर भी अमरीका की सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति देखते हुए फ्रैंको की सरकार से सन्धि करली।

(८) संयुक्त राष्ट्र संघ की वलकान की विशेष समिति ने यूनान और उसके पड़ौसी राष्ट्रों की स्थिति को वनाए रखने का प्रयत्न किया। इस समिति ने अल्वानिया, वल्गारिया, युगोस्लाविया और यूनान के प्रतिनिधियों में शान्ति समझौते की वार्ता कराने में वड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया था।

(९) १९४६ में संयुक्त राष्ट्र संघ ने ईरान से विदेशी सेनाओं को हटाकर उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा करने में सहायता दी।

(१०) १९४६ में संयुक्त राष्ट्र संघ ने सीरिया और लेवनान से विदेशी सेनाओं को हटाने में सहायता देकर इन दो देशों को स्वतन्त्र राष्ट्रों की पंक्ति में सम्मिलित होने में सहायता दी।

(११) १९४७ में संयुक्त राष्ट्र संघ ने यूनान में विदेशी देशों द्वारा उत्तेजित गृह-युद्ध को रोक कर यूनान की स्वतन्त्रता नष्ट होने से वचाई।

(१२) १९५१ में लिविया संयुक्त राष्ट्रसंघ के संरक्षित राष्ट्र की स्थिति से उठकर स्वतन्त्र राष्ट्र वन गया है और संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य है।

(१३) १९५० के पश्चात् राष्ट्र संघ ने अपना ध्यान मोरक्को और ट्यूनिशिया की ओर दिया। दोनों ही देश अव फ्रांस से शान्तिपूर्ण वार्ता द्वारा पूर्ण सर्वाधिकार सम्पन्न राष्ट्र वन गए हैं।

(१४) १९५६ में हंगरी ने अपनी स्वतन्त्रता और स्वराज्य प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इस प्रयत्न में हंगरी को संयुक्त राष्ट्र संघ की सहायता प्राप्त हुई और अव भी मिल रही है। यद्यपि राष्ट्र संघ के कार्य से हंगरी को स्वतन्त्रता और

स्वराज्य नहीं मिला, तथापि महासभा के प्रस्ताव ने समूचे विश्व के निवासियों के प्रति न्याय भावना का प्रदर्शन किया।

(१५) १९५६ में मिस्र में संयुक्त राष्ट्र संघ ने युद्ध बन्द करके शान्ति स्थापित करने के लिए कार्यवाही की थी। यह कार्यवाही विश्व राष्ट्रों के कार्यों को एक सूत्र में पिरोकर शान्ति स्थापित करने का श्रेष्ठ उदाहरण है।

(१६) १९४७ में घाना (Ghana) का एक नए राष्ट्र के रूप में प्रादुर्भाव हुआ और इसे संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बना लिया गया। घाना में टोगोलैण्ड नाम का प्रदेश भी सम्मिलित है जो संयुक्त राष्ट्र संघ के संरक्षित प्रदेश के रूप में ब्रिटेन के नियन्त्रण में था। टोगोलैण्ड की जनता ने संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्त्वावधान में घाना में सम्मिलित होने के लिए अपना मतदान किया था। इस प्रकार का यह मतदान अभूतपूर्व था।

(१७) १७६० में सोमालीलैण्ड इटली का उपनिवेश शान्तिपूर्वक संरक्षित देश की स्थिति से एक सर्वाधिकार सम्पन्न राष्ट्र बन गया।

(१८) निष्कामभाव से अपने कार्य में संलग्न अनेक अन्तर्राष्ट्रीय पदाधिकारियों के परिश्रम के परिणामस्वरूप औद्योगिक रूप से पिछड़े हुए देशों को सहायता दी जा रही है। अन्तर्राष्ट्रीय बैंक (International Bank) कारखाने लगाने के लिए, प्रसार और संचार के साधनों में उन्नति के लिए तथा बिजलीघर बनाने के लिये ऋण दे रहा है। विश्व स्वास्थ्य संस्था (World Health Organisation) द्वारा स्वास्थ्य स्तर ऊँचा उठाने के लिए प्रयत्न किए जा रहे हैं। खाद्य और कृषि संस्था (Food and Agriculture Organisation) द्वारा खाद्य-स्थिति सुधारने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। विस्थापितों और अनाथों की देखभाल की जा रही है। इसी प्रकार के लाभों का अनेक देशों के जनसाधारण उपभोग कर रहे हैं।

(१९) संयुक्त राष्ट्र संघ विश्व की आर्थिक समस्याओं को सर्वेक्षण और अध्ययन करके सुलझाता है। इसके सचिवालय ने अनेक आर्थिक रिपोर्टें तैयार की हैं, यथा १९४५ से १९४७ तक विश्व की आर्थिक परिस्थिति की रूपरेखा तथा यूरोप का आर्थिक भविष्य, १९४७ में एशिया और सुदूरपूर्व की आर्थिक स्थिति का सर्वेक्षण। इसने वित्तीय आँकड़ों तथा जनसंख्या सम्बन्धी मामलों पर अनेक अधिकारपूर्ण प्रकाशन भी प्रसारित किए हैं। इसने यूरोप के लिए आर्थिक आयोग, दक्षिणी अमरीका के लिए आर्थिक आयोग तथा एशिया और सुदूरपूर्व के लिए एक आर्थिक आयोग की नियुक्ति की है। इन आयोगों ने अपने क्षेत्रों की आर्थिक स्थिति का विशद अध्ययन किया है और उपयुक्त तथा उचित सुझाव भी दिए हैं। बाढ़ नियन्त्रण के लिए भी एक संस्था बनाई गई है।

(२०) सामाजिक क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र संघ विशेषज्ञों की सहायता तथा परामर्श प्रदान करता है, विशेषज्ञों को अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति देता है। अपंगों के पुनर्स्थापन के लिए उपयुक्त तरीकों की शिक्षा और प्रचार के लिए सामान और अन्य वस्तुएँ भी देता है। फिल्मों, पुस्तकों तथा क्षेत्रीय सम्मेलनों द्वारा सहायता

भी देता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संस्था (International Labour Office) ने विश्व में श्रमिकों की हालत सुधारने के लिए बहुत प्रशंसनीय कार्य किया है। नशीली वस्तुओं और वेश्यावृत्ति पर नियन्त्रण लगाने का भी विचार हो रहा है। संयुक्त राष्ट्र शिक्षा वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संस्था (United Nations Educational Scientific and Cultural Organisation) विश्व भ्रातृत्व और परस्पर सहयोग की उन्नति कर रही है। राष्ट्र संघ मानव अधिकारों की विश्व घोषणा (Universal Declaration of Human Rights) को अपना चुका है। सूचना सम्बन्धी स्वतन्त्रता की उन्नति के लिए भी प्रयत्न किए जा रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने अनेक विवादग्रस्त मामलों पर महत्त्वपूर्ण निर्णय दिए हैं। अन्तर्राष्ट्रीय विधि आयोग (International Law Commission) ने अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों को संहिताबद्ध करने का सराहनीय कार्य किया है।

मूल्यांकन (Estimate)—केनेथ यंगर (Kenneth Younger) के मतानुसार, "पिछले दस वर्ष के जीवन काल में संयुक्त राष्ट्र संघ विश्व भर के लोगों के मस्तिष्क में घर कर चुका है। इससे आशा की गई कि निकट भविष्य में कोई महायुद्ध नहीं होगा। दूसरे; मुख्य रूप से विचार-विनिमय के अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच के रूप में इसका बड़ा महत्त्व आँका जा रहा है। १९४७ से १९४५ की अवधि में राष्ट्र संघ बड़ी शक्तियों के सम्बन्धों में अनेक कठिन परिस्थितियों को सुलझा चुका है और इसलिए अन्य महायुद्ध जैसी दुर्घटना के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु से इसके अस्तित्व को कोई विशेष खतरा नहीं हो सकता।" राष्ट्रपति कारलोस रोमुलो (President Carlos Romulo) का विचार है कि "संयुक्त राष्ट्र संघ की शक्ति बनाए रखने के अनेक कारण हैं। यह एक ऐसी संस्था है जहाँ विश्व के दोनों गुटों के प्रतिनिधि परस्पर निरन्तर कूटनीतिक सम्बन्ध बनाए रखते हैं जिसके कारण स्वयमेव ही शान्ति की रक्षा होती रहती है। औपनिवेशिक दासता के बन्धन से विश्व की सबसे बड़ी समस्या इन देशों को स्वशासी तथा स्वतन्त्र बनाने के संक्रान्ति काल में रक्तपात की अपेक्षा शान्ति से परिवर्तन करा सकने का यही एकमात्र साधन है। संयुक्त राष्ट्र संघ की हत्या करने का अर्थ एक ऐसे विशाल बाँध को तोड़ देना होगा, जिसने कोरिया, इण्डोनेशिया, कश्मीर और फिलस्तीन की लड़ाइयों को विश्वयुद्ध बनने से रोक दिया है और जिससे इस प्रकार के युद्धों को भविष्य में भी रोकने की आशा की जा सकती है। संयुक्त राष्ट्र संघ की समाप्ति का अर्थ मनुष्यों द्वारा स्वयं को पृथ्वी पर से पूर्णतः नष्ट कर देने का महान् अवसर देना भी होगा।" "विश्व भर के भूख और गरीबी से पीड़ित विशाल क्षेत्र के प्रति संयुक्त राष्ट्र संघ ही नवीन और अच्छे जीवन का सन्देश देता है। यह अधिक अन्न प्राप्त करने, तपेदिक, मलेरिया और अन्धेपन को दूर करने, कुएँ बनवाने, नहरें खुदवाने तथा सीमेण्ट इत्यादि के कारखाने बनवाने में सहायता प्रदान करता है। किन्तु यह देखकर कि राष्ट्र संघ के विश्व-कल्याण के कार्यों में धीमापन आ गया है, बड़ा खेद होता है। यदि यह प्रवृत्ति बराबर बनी रही और पिछड़े हुए देशों के निवासियों की संयुक्त राष्ट्र संघ पर से आस्था उठ गई तो करोड़ों व्यक्ति जो आज साम्यवादियों की ओर नहीं हैं, रोटी के लिए

साम्यवाद का सहारा लेंगे। यह एक भयानक सत्य है। किन्तु संयुक्त राष्ट्र संघ को राजनैतिक क्षीणता के रोग से मरने से बचाया जा सकता है। राष्ट्र संघ की आक्रमण रोकने की शक्ति को बढ़ाना चाहिए। यह उपयुक्त समय है कि सदस्य राष्ट्रों को १९५० के प्रस्तावों को मानकर कुछ सेना सदैव ही राष्ट्र संघ की आज्ञा-पालन करने के लिए नियुक्त कर देनी चाहिए।"

एक अन्य लेखक का मत है कि "संयुक्त राष्ट्र संघ केवल विचार-विमर्श करने की ही संस्था नहीं है अपितु शान्ति की सुरक्षा करने की संस्था भी है। वास्तविक रूप से राष्ट्र संघ अभी तक विचारों का आदान-प्रदान करने का मंच ही बना रहा। शन्ति सुरक्षा का कार्य अभी तक प्रभावशाली ढंग से नहीं किया गया और जिन परिणामों की आशा थी अभी तक वे प्रकट नहीं हुए हैं। विचारों के आदान-प्रदान के कार्य का महत्त्व कम नहीं है। एक ही स्थान पर विरोधी मत वाले राष्ट्रों का स्वतन्त्र रूप से वाद-विवाद करने की परिपाटी परस्पर समझने का तथा निर्णय करने का एक प्रभावशाली तरीका है। दोनों गुटों के विरोधी होते हुए भी एक ही भवन में विचार-विमर्श होने के कारण वे एक दूसरे की स्थिति तथा विचारों को भली प्रकार समझ सकते हैं। यह बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है कि राष्ट्र संघ इन दो पक्षों को यह सभा-कक्ष प्रदान करता है। सोवियत रूस के प्रतिनिधि मण्डलों की उपस्थिति के कारण प्रजातन्त्रीय देश अधिक संलग्नता से विचार-विमर्श में भाग लेते हैं। यह बात परोक्ष रूप से अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को बनाए रखने में अत्यन्त सहायक है। विश्व भर के नागरिक राष्ट्र संघ की रिपोर्टों का अध्ययन करके विभिन्न देशों की मनोवृत्ति को समझ सकते हैं। वे शान्ति भंग करने वालों की निन्दा करते हैं तथा उन्हें सहायता नहीं देते। इस दृष्टिकोण से राष्ट्र संघ ने विश्व शान्ति के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।"

शूमैन (Schuman) के मतानुसार, "राष्ट्र संघ के स्थान पर ही सम्भवतः विश्व के देशों द्वारा स्वयमेव ही 'विश्व गणतन्त्र संघ' (World Federal Republic) की स्थापना हो सकती है जिसमें विभिन्न देशों की सरकारों और नागरिकों की इच्छाओं से केन्द्रीय शक्ति को कुछ अधिकार दिए जाएँ, जिनके द्वारा वह विश्व भर के पुरुषों और स्त्रियों की सेवा कर सके। किन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति की मूल धारणा यह है कि जिन देशों का भी निर्णायक प्रभाव होगा वे किसी-न-किसी प्रकार प्राचीन काल के हिंसात्मक तरीके अपना लेंगे और उन सब मान्यताओं का नया मूल्य और नई परिभाषाएँ करने लगेंगे जिनके द्वारा मानव समाज की एकता सम्भव हो सकती है। इस प्रयास की असफलता मानव समाज की हत्या होगी अथवा इस महान् समाज का अन्त अव्यवस्था और अन्धकार की अग्नि में होगा।"

जून १९५५ में संयुक्त राष्ट्र संघ की दसवीं वर्षगाँठ पर अनेक अन्तर्राष्ट्रीय महापुरुषों के विचार ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन (B.B.C.) द्वारा प्रसारित किए गए थे। इस अवसर पर श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने कहा था कि "संयुक्त राष्ट्र संघ की एक बड़ी कठिनाई यह भी है कि इसके सदस्य-राष्ट्र इसे अपनी

शिकायत व्यक्त करने का स्थान समझते हैं, यह शिकायतें दूर करने का स्थान नहीं।" वास्तव में राष्ट्र संघ की शक्ति इसके चार्टर में निहित आदर्शों में है। श्रीमती एलिनोर रूजवेल्ट ने कहा था, "मेरे विचार से पिछले दस वर्षों से संयुक्त राष्ट्र संघ को बड़ी सफलता मिली है।" राष्ट्र संघ की असफलता का एक कारण यह है कि "हम अब अणुयुग में आ गए हैं" तथा इस युग की इस संस्था की स्थापना के समय कल्पना भी नहीं की गई थी। अणुयुग और शीत युद्ध ही इसकी कठिनाइयों के प्रति उत्तरदायी हैं। अन्यथा इसके चार्टर में मूलतः कोई त्रुटि नहीं है। सर चार्ल्स वेब्स्टर ने कहा कि "पिछले दस वर्षों में राष्ट्र संघ को जो सफलताएँ मिली हैं उन्हें देखते हुए मुझे बड़ा हर्ष होता, यदि मुझे दस वर्ष पहले ही यह ज्ञात हो जाता।" सर ज़फ़रुल्ला खान ने संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा कोरिया में की गई कार्यवाही का उल्लेख करते हुए कहा था कि "राष्ट्र संघ ने यह अभूतपूर्व कार्य किया है और एक हर्षोत्पादक उदाहरण उपस्थित किया है। यह परीक्षा और त्रुटियाँ करने का समय था किन्तु हमने अनेक उपदेश ग्रहण किए हैं जिन्हें, मेरी आशा है, हम कार्य रूप में परिणत करेंगे।" हमारी कमियाँ थीं किन्तु इन्हें असफलताएँ बताना उचित नहीं है।

वैण्डेबॉश और होगन (Vandenbosch and Hogan) के मतानुसार "संयुक्त राष्ट्र संघ ने एक संस्था, एक अवसर, एक तरीका प्रदान किया है। युद्ध के पश्चात् उपस्थित होने वाली समस्याओं को सुलझाने के कारण इसके प्रभाव और प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई है। भविष्य में राष्ट्र संघ को शक्तिशाली बनाने की समस्या मूलतः अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की प्राप्ति और उन्हें बनाए रखने की समस्या है। यह कोई साधारण तथा सरल कार्य नहीं है और यह कार्य आधुनिक संसार की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं से अछूते रह कर भी नहीं किया जा सकता। यह चुनौती उतनी ही विशाल और उतनी ही महान् है जितनी कि स्थायी तथा शान्तिपूर्ण विश्व-व्यवस्था का निर्माण करना। संयुक्त राष्ट्र संघ का भविष्य आधुनिक सभ्यता के भविष्य से बँधा हुआ है।" (The United Nations, p. 330)।

शान्ति व्यवस्था की ओर (Towards Peace Settlement)—द्वितीय विश्वयुद्ध के समय यूरोप के राजनीतिज्ञों द्वारा किए गए सम्मेलनों, घोषणाओं तथा निर्णयों का उल्लेख किए बिना, युद्ध समाप्ति के बाद किए गए शान्ति समझौते का इतिहास अधूरा रह जाएगा। अगस्त, १९४१ में चर्चिल और रूज़वेल्ट की भेंट हुई और एक घोषणा की गई जो अटलान्टिक चार्टर (Atlantic Charter) के नाम से प्रसिद्ध है। उन्होंने युद्ध से अपनी प्रतिष्ठा अथवा उन्नति न करने की, संसार के समस्त नागरिकों के स्वशासन का अधिकार मानने की, सब देशों को मण्डियों और कच्चे माल की प्राप्ति से सब लोगों की उन्नति, नाजी अत्याचार की समाप्ति और विश्व में निःशस्त्रीकरण तथा शान्ति की स्थापना की प्रतिज्ञा की। १ जनवरी, १९४२ को संयुक्त राष्ट्रों की घोषणा हुई जिसके द्वारा अमरीका, ब्रिटेन, रूस और चीन ने

धुरी राष्ट्रों (Axis Powers) तथा उनके सहयोगियों की शक्ति का विनाश करने के लिए अपने सारे साधनों को प्रयोग में लाने की प्रतिज्ञा की। अप्रैल, १९४५ तक इस घोषणा-पत्र पर ४५ देशों ने हस्ताक्षर कर दिए।

जनवरी, १९४३ में रूज़वैल्ट और चर्चिल तथा उनके प्रमुख सेनाध्यक्षों का एक सम्मेलन उत्तरी अफ्रीका के केसाब्लान्का (Casablanca) में हुआ और वहाँ पहले सिसली और फिर इटली पर आक्रमण करने का निर्णय किया गया। उन्होंने धुरी राष्ट्रों से बिना शर्त के आत्मसमर्पण करने की माँग करने का भी निर्णय किया।

अक्टूबर, १९४३ में अमरीका, ब्रिटेन और रूस के विदेश मन्त्रियों की बैठक हुई। १ नवम्बर, १९४३ को उन्होंने एक संयुक्त घोषणा प्रसारित की कि वे शत्रु द्वारा बिना शर्त आत्मसमर्पण करने के समय तक निरन्तर युद्ध करते रहेंगे। इटली के विषय में कहा गया था कि इटली के प्रति मित्रराष्ट्रों की नीति इस मूल सिद्धान्त पर आधारित होगी कि वहाँ फासिस्टवाद (Fascism) को पूर्णतः नष्ट कर दिया जाएगा और इटली की जनता को प्रजातन्त्री प्रणाली के अनुसार सरकारी तथा अन्य व्यवस्था करने की छूट दी जाएगी। यह भी स्वीकार किया गया कि इटली की सरकार को अधिक प्रजातन्त्री बनाने के लिए इसमें उन वर्गों के प्रतिनिधियों को सम्मिलित किया जाएगा जिन्होंने फासिस्टवाद का विरोध किया था। भाषण की स्वतन्त्रता, धार्मिक पूजा की स्वतन्त्रता, राजनीतिक विश्वास की स्वतन्त्रता, पत्रकारिता की स्वतन्त्रता तथा सार्वजनिक सम्मेलनों की स्वतन्त्रता के अधिकार इटली की जनता को पूर्णतः दे दिए जाएँगे। फासिस्ट शासन द्वारा स्थापित सारी व्यवस्थाओं और संस्थाओं का दमन कर दिया जाएगा। सार्वजनिक संस्थाओं, संगठनों और शासन से सारे फासिस्ट नेताओं को पदच्युत कर दिया जाएगा। फासिस्ट शासन के सारे राजनीतिक कैदियों को मुक्त करके पूर्ण क्षमादान दिया जाएगा। स्थानीय सरकारों के लिए प्रजातन्त्री प्रणाली की व्यवस्था की जाएगी। फासिस्ट-नेता तथा युद्ध के अपराधों के सारे दोषियों को पकड़ कर न्यायालय के सुपुर्द कर दिया जाएगा।

आस्ट्रिया के विषय में मास्को घोषणा में कहा गया था कि उसे जर्मनी के चंगुल से मुक्त कर दिया जाएगा। मार्च, १९३८ में जर्मनी द्वारा आस्ट्रिया पर किए गए अधिकार को अवैध घोषित कर दिया गया। संयुक्त राष्ट्र आस्ट्रिया को स्वतन्त्र और स्वशासित देखना चाहते थे किन्तु आस्ट्रिया को कहा गया कि उसकी स्वतन्त्रता के समय उसके द्वारा हिटलर के शासन को दी गई सहायता को ध्यान में रखा जाएगा।

यह भी कहा गया कि हिटलर की सेनाओं द्वारा जीते गए देशों में, जिन्हें अब वे छोड़ते जा रहे हैं, अत्याचार, हत्याओं, सामूहिक हत्याकाण्डों के किए जाने के पर्याप्त प्रमाण मिल चुके हैं। इन अत्याचारों, हत्याओं तथा हत्याकाण्डों के प्रति उत्तरदायी जर्मन पदाधिकारियों, नाज़ी दल के अनुयायियों, सदस्यों तथा उन लोगों को जिन्होंने इनमें स्वेच्छा से भाग लिया था, उन सब को उन्हीं देशों में

भेज दिया जाएगा जहाँ घृणित कार्य किए गए थे जिससे कि उन दोनों देशों के कानूनों के अनुसार उन्हें दण्ड दिया जा सके। सब देशों में इन व्यक्तियों की पूर्ण विवरण सहित सूचियाँ बनाई जाएँ। विशेषतः सोवियत संघ, पोलैण्ड, चैकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया, यूनान, नार्वे, डेन्मार्क, नीदरलैण्ड्ज, बेल्जियम, फ्रांस, इटली इत्यादि के उन भागों से, जिन पर जर्मनी ने आक्रमण किया था। बड़े युद्ध अपराधियों को, जिनका अपराधक्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से नियत न किया जा सके, उन्हें मित्र-राष्ट्रों की सरकारों के संयुक्त निर्णय के अनुसार दण्ड दिया जाए।

नवम्बर, १९४३ में रूज़वैल्ट, चर्चिल और चाँग-काई शेक, जापान को परास्त करने की योजना बनाने के लिए काहिरा (Cairo) में मिले। उन्होंने जापान से बिना शर्त आत्मसमर्पण की माँग की। उन्होंने घोषणा की कि दोनों महायुद्धों में जापान द्वारा हथियाए गए सारे प्रदेशों को छीन लिया जाएगा और चीन के मञ्चूरिया, फार्मोसा और पेस्काडोरस में सारे प्रदेशों को भी छीन लिया जाएगा। कोरिया को भी स्वतन्त्रता देने का आश्वासन दिया गया। "तीन महान् मित्रराष्ट्र जापान के आक्रमण को रोकने तथा उसे दण्ड देने के उद्देश्य से इस युद्ध में लड़ रहे हैं। वे अपने लिए किसी भी प्रकार के लाभ की आशा नहीं करते, उन्हें देश जीतकर अधिकार करने की कोई इच्छा नहीं है। उनका उद्देश्य १९१४ में प्रथम विश्वयुद्ध के आरम्भ होने पर प्रशान्त सागर के सारे द्वीपों को जिन पर जापान ने अधिकार कर लिया था छीन लेना है तथा जो प्रदेश जापान ने चीन से चुरा लिए थे, यथा, मञ्चूरिया, फार्मोसा, पेस्काडोरस, उन्हें चीन गणतन्त्र को लौटा देना है। जापान को उन सब प्रदेशों से भी निकाल दिया जाएगा जिन्हें उसने शक्ति-प्रयोग और लालच के कारण अपने अधिकार में कर रखा है। उपरोक्त तीनों मित्र-राष्ट्र कोरिया की जनता की दासता के प्रति जागरूक हैं और कालान्तर में कोरिया को स्वतन्त्र और स्वशासित बना देने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ हैं।"

तेहरान सम्मेलन में रूज़वैल्ट, चर्चिल और स्टालिन उपस्थित थे। इसी सम्मेलन में तीनों महापुरुषों ने अपने सेनाध्यक्षों की सहायता से जर्मनी पर विजय प्राप्त करने की अन्तिम योजना बनाई थी। १ दिसम्बर, १९४३ को उन्होंने विज्ञप्ति प्रसारित की। घोषणा की गई कि तीनों बड़ी शक्तियों की इच्छा है कि ईरान की स्वतन्त्रता, सर्वाधिकारसम्पन्नता, तथा प्रादेशिक अक्षुण्णता की रक्षा की जाए। गुप्त समझौता केवल मार्च, १९४७ में प्रकाशित किया गया जिसमें यह व्यवस्था की गई थी कि नार्वे में मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ घुसते ही रूस भी आक्रमण आरम्भ कर देगा। तुर्की को भी युद्ध में सम्मिलित होने के लिए कहा जाएगा और युगोस्लाविया के छापामार देशभक्तों को पूर्ण शक्ति से यथासम्भव सहायता दी जाएगी।

फरवरी, १९४५ में क्रीमिया में याल्टा (Yalta) नामक स्थान पर रूज़वैल्ट, चर्चिल और स्टालिन फिर मिले। यह निर्णय किया गया कि प्रस्तावित विश्व-संस्था के लिए मित्रराष्ट्रों का एक सम्मेलन २५ अप्रैल, १९४५ को अमरीका में बुलाया जाए। अमरीका की सरकार द्वारा निमंत्रण भेजने की व्यवस्था पर भी

फैसला किया गया। सम्मेलन में मतदान के नियम भी बनाए गए। मुक्त यूरोप के विषय में भी एक घोषणा की गई। नाज़ीवाद और फासिस्टवाद के अन्तिम चिन्हों को समाप्त कर दिया जाएगा। जनता को अपनी सरकार चुनने का अधिकार दिया जाएगा। उन्हें स्वशासन तथा सर्वाधिकारसम्पन्नता के अधिकार दिए जाएँगे। देशों में कानून और व्यवस्था स्थापित की जाएगी। स्वतन्त्र चुनाव कराने की सुविधाएँ दी जाएँगी। यह भी कहा गया कि जर्मनी के विषय में अमरीका, ब्रिटेन और सोवियत रूस को सर्वोच्च अधिकार प्राप्त होंगे। उन्हें इस देश में शान्ति और सुरक्षा की आवश्यक कार्यवाही करने का अधिकार होगा। फ्रांस के लिए जर्मनी में एक विशेष क्षेत्र बनाया जाएगा। यह क्षेत्र ब्रिटेन और अमरीका के क्षेत्रों को काटकर बनाया जाएगा। जर्मनी पर मित्रराष्ट्रों की नियन्त्रण परिषद् (Allied Council of Control for Germany) की सदस्यता के लिए फ्रांस की अस्थायी सरकार के प्रतिनिधि को बुलाया जाएगा। युद्ध के समय जर्मनी द्वारा मित्रराष्ट्रों को पहुँचाई गई क्षति को जर्मनी माल के रूप में पूरा करेगा। क्षतिपूर्ति पहले उन देशों को मिलेगी जिन्होंने युद्ध का मुख्य भार उठाया था, जिहोंने बड़ी हानि उठाई थी और जिन्होंने शत्रु पर विजय प्राप्त करने की व्यवस्था की थी। माल के रूप में क्षतिपूर्ति तीन प्रकार से की जाएगी। कारखानों का सामान, मशीनों के पुर्जे, समुद्री जहाज़, माल, विदेशों में लगी जर्मनी की पूँजी, जर्मनी में औद्योगिक, रेलों इत्यादि में लगी पूँजी के हिस्से इत्यादि को जर्मनी की युद्ध-शक्ति को समाप्त कर देने के उद्देश्य से, दो वर्ष में जर्मनी से उठा दिया जाएगा। जर्मनी के मज़दूरों को इस कार्य में प्रयुक्त किया जाएगा। चालू उत्पादन से माल की वार्षिक देनदारी भुगताई जाएगी। मास्को में मित्रराष्ट्रों का क्षतिपूर्ति आयोग नियुक्त किया गया जिसे जर्मनी से धन के रूप में वसूल की जाने वाली क्षति का अनुमान करने का कार्य सौंपा गया। यह मान लिया गया कि क्षतिपूर्ति का एक बड़ा भाग रूस को दिया जाएगा। पोलैण्ड के विषय में यह निर्णय किया गया कि अस्थायी पोलैण्ड राष्ट्रीय एकता सरकार (Polish Provisional Government of National Unity) यथाशीघ्र स्वतन्त्र और अबाध्य रूप से वयस्क मताधिकार (adult franchise) के आधार पर गुप्त मतदान प्रणाली (Secret Ballot System) द्वारा चुनाव करे। सब प्रजातन्त्रवादी और नाज़ी विरोधी दलों को चुनाव लड़ने तथा अपने प्रत्याशी (candidates) खड़े करने का अधिकार होगा। यह निर्णय हुआ कि पोलैण्ड की पूर्वी सीमा कर्जन रेखा (Curzon Line) रहेगी। यह भी माना गया कि उत्तर और पश्चिम में पोलैण्ड को पर्याप्त क्षेत्र दिया जाए। पोलैण्ड के पश्चिमी सीमान्त का अन्तिम निर्णय शान्ति सम्मेलन में किया जाए।

जापान के विषय में यह निर्णय हुआ कि जर्मनी के आत्मसमर्पण के दो-तीन महीने पश्चात् और यूरोप में युद्ध की समाप्ति हो जाने के बाद सोवियत रूस मित्र-राष्ट्रों की ओर से जापान के विरुद्ध युद्ध आरम्भ करेगा। बाहरी मंगोलिया (Outer Mongolia) में यथास्थिति (Status quo) बनाई रखी जाएगी। साखालीन (Sakhalin) और उसके निकट के द्वीप रूस को लौटा दिए जाएँगे। डेरियन

(Darien) की बन्दरगाह का अन्तर्राष्ट्रीयकरण (internationalization) कर दिया जाएगा। समुद्री अड्डा बनाने के लिये पोर्ट आर्थर सोवियत रूस को पट्टे (Lease) पर दे दिया जाएगा। पूर्वी-चीन रेल-सड़क (Chinese-Eastern Rail Road) और दक्षिणी मन्चूरिया रेल-सड़क (South Manchurian Rail-Road) की यातायात व्यवस्था का रूस और चीन की एक संयुक्त कम्पनी प्रबन्ध करेगी। चीन को मन्चूरिया पर पूर्ण अधिकार प्राप्त होंगे। कुराइल द्वीपसमूह (Kurile Islands) रूस को दे दिया जाएगा। अमरीका की सरकार ने उपरोक्त निर्णयों को चीन की सरकार से स्वीकार करा देने का आश्वासन दिया।

यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि याल्टा सम्मेलन के निर्णयों से ब्रिटिश और अमरीकन प्रतिनिधि प्रसन्न नहीं थे। अमरीका के राज्य सचिव स्टेटीनीयस (Secretary of State Stettinius) ने कहा था, "फरवरी, १९४५ तक चैकोस्लोवाकिया को छोड़कर पोलैण्ड और सारा पूर्वी यूरोप लाल सेना के अधिकार में आ गया था। इस परिस्थिति में स्थिति यह नहीं थी कि अमरीका और ब्रिटेन रूस को पोलैण्ड में क्या कुछ करने की अनुमति देंगे, अपितु यह कि वे दोनों रूस को कितना स्वीकार कराने में राजी कर सकेंगे।" चर्चिल ने कहा था कि, "अब जर्मनी को हरा देने के बाद जिन्होंने रूस के सैनिक प्रयत्नों को प्रोत्साहित किया था तथा हमारे महान् सहयोगी जिसने भयानक हानि उठाई थी, उससे सहयोग प्राप्त किया था. उन लोगों की निन्दा करना बड़ा आसान है। जिस समय जर्मनी के ३०० डिवीजन युद्ध के मोर्चों पर लड़ रहे थे उस समय भी यदि हम रूस से लड़ पड़े होते तो क्या हुआ होता? हमारी सारी आशाएँ धूल में मिल गई होतीं किन्तु उस समय तो केवल वही हमारा सहायक था।"

जर्मनी के पतन के पश्चात् बर्लिन अथवा पोट्सडैम सम्मेलन (Berlin or Potsdam Conference) १७ जुलाई से २ अगस्त, १९४५ तक हुआ। इसमें स्टालिन, राष्ट्रपति ट्रूमैन और प्रधानमन्त्री एटली आए। निर्णय किया गया कि शान्ति समझौते का मसविदा तैयार करने के प्रारम्भिक कार्य को विदेश मन्त्रियों की एक परिषद् करे। परिषद् का मुख्य कार्यालय लन्दन में बनाया गया किन्तु सम्मेलन अन्य किसी भी देश की राजधानी में हो सकता था। परिषद् को इटली, रूमानिया, बल्गारिया, हंगरी और फ़िनलैण्ड से सन्धि के मसविदे तैयार करने का कार्य सौंपा गया। प्रारम्भिक अधिकार के समय जर्मनी के साथ व्यवहार के नियम बनाने का कार्य भी परिषद् को सौंपा गया। जर्मनी के विभिन्न क्षेत्रों में रूस, अमरीका, ब्रिटेन और फ्रांस के मुख्य सेनापतियों की आज्ञा सर्वोच्च होगी तथा समूचे जर्मनी से सम्बन्धित मामलों में परिषद् के सदस्य होने के नाते उनकी संयुक्त आज्ञा सर्वोच्च होगी। जर्मनी का सम्पूर्ण निःशस्त्रीकरण (Disarmament) और विसैन्यीकरण (Demilitarization) कर दिया जाएगा। उन सब कारखानों की, जिन्हें युद्ध-सामग्री बनाने के कार्य में लाया जा सकता होगा, नष्ट कर दिया जाएगा या नियन्त्रण में रखा जाएगा। जर्मनी की स्थल, जल और वायु सेनाएँ सारी सैनिक और अर्धसैनिक

संस्थाएँ पूर्ण रूप से सर्वदा के लिए समाप्त कर दी जाएँगी। सारे अस्त्र-शस्त्र गोला बारूद, युद्ध की सामग्री और उनके उत्पादन की सुविधाएँ मित्र-राष्ट्रों के अधिकार में सौंप दी जाएँगी या नष्ट कर दी जाएँगी। जर्मनी की जनता को यह दिखा देना होगा कि उन्हें सम्पूर्ण रूप से सैनिक पराजय मिली है और वे अपने कार्य के उत्तरदायित्व से नहीं बच सकते। जर्मनी की राष्ट्रीय समाजवादी पार्टी (National Socialist Party) को पूर्णतः नष्ट कर दिया जाएगा। जर्मनी को प्रजातन्त्री प्रणाली तैयार करके शान्ति से रहना सिखाया जाएगा। सारे नाज़ी कानून नष्ट कर दिए जाएँगे। युद्ध के अपराधियों को पकड़ कर न्यायालय में पेश किया जाएगा। जर्मनी की शिक्षा-पद्धति को इस प्रकार नियन्त्रित किया जाएगा कि नाज़ी और सैन्यवादी सिद्धान्त पूर्णतः नष्ट हो जाएँ और प्रजातन्त्री विचारधारा की उन्नति हो। न्याय-प्रणाली में परिवर्तन और संशोधन किए जाएँगे। जर्मनी के शासन-यन्त्र का विकेन्द्रीकरण कर दिया जाएगा। प्रजातन्त्री सिद्धान्तों पर स्थानीय शासन का निर्माण किया जाएगा। देश भर में प्रजातन्त्रवादी राजनीतिक दलों को प्रोत्साहन दिया जाएगा। आरम्भ में केन्द्रीय जर्मन सरकार की स्थापना नहीं की जाएगी। किन्तु कुछ आवश्यक केन्द्रीय विभागों का निर्माण किया जाएगा अर्थात् वित्त, यातायात, प्रसार, विदेश-व्यापार और उद्योग। ये विभाग नियन्त्रण में कार्य करेंगे।

अधिकार (Cccupat cn) की अवधि में जर्मनी को एक आर्थिक इकाई समझा जाएगा। इस उद्देश्य से (१) खानों तथा कारखानों के उत्पादन और प्रयोग, (२) खेती, जंगल और मछली पकड़ना, (३) वेतन, मूल्य और राशन, (४) सारे जर्मनी का विदेशों से माल मँगाना और भेजने का कार्यक्रम, (५) मुद्रा, बैंक, केन्द्रीय कर व्यवस्था और चुंगी, (६) क्षति-पूर्ति और युद्ध-सामग्री बनाने वाले कारखानों, (७) यातायात और प्रसार के मामलों में जर्मनी भर के लिए समान नीति का निर्माण और अनुसरण किया जाएगा। इस बात पर जोर दिया गया कि जर्मनी के विभिन्न क्षेत्रों में आवश्यक सामग्री के वितरण के लिए नियन्त्रण परिषद् निर्णय करेगी क्योंकि बाहर से माल न मँगा कर यथासाध्य समूचे जर्मनी में एक जैसी आर्थिक स्थिति रहे।

क्षतिपूर्ति की अदायगी इस प्रकार होगी कि बाहरी सहायता के बग़ैर ही जर्मनी की जनता का जीवन-यापन हो सकेगा। सोवियत रूस की क्षतिपूर्ति तथा पश्चिमी शक्तियों की क्षतिपूर्ति अपने-अपने क्षेत्रों (Zones) से मशीन, कल-कारखानों से सामान प्राप्त करके की जाएगी। अधिकार के पश्चात् यह पता लगा कि रूस को जिन भारी मशीनों की अत्यधिक आवश्यकता थी वह ब्रिटिश क्षेत्र में रूहर (Ruhr) प्रदेश में थीं। अतएव रूस को "पश्चिमी क्षेत्र से (१) जर्मनी की शान्ति समय की आर्थिक व्यवस्था के लिए अनावश्यक किन्तु काम में आ सकने वाली भारी मशीनों का १५ प्रतिशत परस्पर समझौते के अनुसार उनके बराबर के मूल्य की खाद्य सामग्री, कोयला, पोटाश, जस्त, लकड़ी, मिट्टी की वस्तुएँ, पेट्रोल की वस्तुएँ तथा अन्य वस्तुओं के बदले में दे दिया जाएगा; और (२) अन्य प्रकार की मशीनें तथा औद्योगिक सामग्री का १० प्रतिशत बिना कुछ भी दिए दे दिया जाए।"

जर्मनी के काम में लाए जा सकने वाले जहाज़ी बेड़े को सोवियत संघ, अमरीका और ब्रिटेन में बराबर बाँट लिया जाए। जर्मनी के पनडुब्बी बेड़े का बहुत बड़ा भाग नष्ट कर दिया जाए। तीस पनडुब्बियों से अधिक पनडुब्बियाँ अनुसन्धान और अन्य कार्यों के लिए न रखी जाएँ। यह भी घोषणा हुई कि युद्ध के अपराधियों पर मुक़दमा चलाया जाएगा।

पोलैण्ड के विषय में बड़ा विवाद था। किन्तु अन्त में यह निर्णय हुआ कि, तीन शक्तियाँ इस बात को मानती हैं कि पोलैण्ड की अस्थायी सरकार याल्टा सम्मेलन के निर्णय के अनुसार सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के आधार पर गुप्त मतदान की प्रणाली द्वारा पूर्णतः स्वतन्त्र चुनाव कराएगी। इस चुनाव में सारे प्रजातन्त्रवादी और नाज़ी विरोधी दलों को चुनाव लड़ने और प्रत्याशी (candidates) खड़े करने का अधिकार होगा, तथा मित्रराष्ट्रों के समाचारपत्रों को चुनाव के पहले और इसके दौरान में संसार भर को चुनाव सम्बन्धी समाचार देने का पूर्ण अधिकार होगा। यह भी घोषणा की गई कि पोलैण्ड के पश्चिमी सीमान्त के विषय में अन्तिम निर्णय शान्ति समझौते के पश्चात् किया जाएगा।

शान्ति सन्धियाँ (Peace Treaties)—पॉट्सडम समझौते (Potsdam Agreement) के अनुसार विदेश मन्त्रियों की परिषद् की बैठक सितम्बर और अक्टूबर, १९४५ में लन्दन में हुई। यह बैठक असफल हुई। बड़ी तीन शक्तियों के विदेश मन्त्रियों की एक अन्तरिम बैठक मास्को में हुई। शान्ति सन्धियों का मसविदा बनाने की कार्य-प्रणाली के विषय में समझौता हो गया। विदेश मन्त्री परिषद् की दूसरी बैठक अप्रैल-मई, १९४६ और जून-जुलाई, १९४६ में पेरिस में हुई। शक्तियों के पुराने मतभेद पुनः उठ खड़े हुए और थोड़ी प्रगति हुई। अमरीका के राज्य सचिव बिर्न्ज़ (Byrnes) को विवश होकर कहना पड़ा कि, "विदेश मन्त्रियों की परिषद् की स्थापना शान्ति की स्थापना के लिए की गई थी, शान्ति के मार्ग में बाधा डालने के लिए नहीं।" अन्त में, १५ महीने के प्रारम्भिक कार्य के पश्चात् इटली, बल्गारिया, हंगरी, फ़िनलैण्ड और रूमानिया के साथ २१ देशों ने सन्धियाँ कीं। सम्मेलन ने १०७ सुझावों को स्वीकार किया। विदेश-मन्त्री परिषद् की तीसरी बैठक नवम्बर-दिसम्बर, १९४६ में न्यूयार्क में हुई। पाँच सन्धियों को अन्तिम रूप दिया गया और इन पर १० फरवरी, १९४७ को पाँच शत्रु देशों के और मित्रराष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने पेरिस में हस्ताक्षर किए।

इटली से सन्धि (Treaty with Italy)—इस सन्धि में ९० धाराएँ और १७ तालिकाएँ थीं। इसके अनुसार इटली को लिटिल सेण्ट बर्नार्ड (Little St. Bernard), माउण्ट थाबोर (Mont. Thabor), चेबर्टन (Chaberton), माउण्ट सेनिस (Mont Cenis), टिण्डा (Tenda) और ब्रिगा (Briga) के प्रदेशों के छोटे-छोटे ज़िले फ्रांस को देने पड़े। ज़ारा, पिलागोसा, लागोस्टा और डालमेशियन तट के अन्य द्वीप यूगोस्लाविया को देने पड़े। ईस्ट्रियन प्रायद्वीप (Istrian Peninsula) और विनिज़िया गियूलिया (Venezia Giulia) प्रान्त का बचा हुआ भाग ट्रीस्ट

(Trieste) सहित 'स्वतन्त्र क्षेत्र' घोषित करके सुरक्षा परिषद् के 'कानून द्वारा प्रशासित क्षेत्र' बना दिया गया। इटली को रोहड्स और अन्य डोडेकानीज़ द्वीप समूह (Rhodes and other Dodecanese Islands) यूनान को देने पड़े। इटली को अफ्रीका के उपनिवेश छोड़ने पड़े। उसे अल्बानिया और इथोपिया की स्वतन्त्रता को मान्यता देनी पड़ी।

यह व्यवस्था हुई कि इटली को फ्रांस और यूगोस्लाविया की ओर के सीमान्त से सेनाएँ हटा लेनी पड़ेंगी। इटली को अणुशस्त्र, विद्युत् संचालित राकेट, ३० किलोमीटर से अधिक दूर मार करने वाली तोपें नहीं रखनी होंगी। उसे सुरंगें, समुद्री गोले, हवाई जहाज़ ले जाने वाले जलयान (aircraft carriers), पनडुब्बियाँ नहीं रखनी होंगी। उसे २०० से अधिक मंझले भार वाले टैंकों से अधिक टैंक नहीं रखने होंगे। उसकी जलसेना घटाकर केवल दो लड़ाकू जहाज, २५,००० नाविक और अधिकारी कर दी गई। वायुसेना घटा कर २०० लड़ाकू और सुरक्षा करने वाले और १५० भारवाहक वायुयान कर दी गई। इटली को ७ वर्ष में १००,०००,००० डालर रूस को देने पड़ेंगे। उसे अल्बानिया को ७ वर्ष में ५,०००,००० डालर देने पड़ेंगे।

हंगरी से सन्धि (Treaty with Hungary)—इस सन्धि में ४२ धाराएँ और ६ तालिकाएँ थीं। आस्ट्रिया और यूगोस्लाविया के ओर की उसकी जो सीमा १ जनवरी, १९३८ को थी वही नियत की गई। उसे डेन्यूब नदी के पश्चिम की ओर के तीन गाँव यूगोस्लाविया को देने पड़े। नवम्बर, १९३८ के विआना समझौते को रद्द कर दिया गया। परिणामतः ट्रांसिलवानिया रूमानिया को मिल गया। हंगरी की सेना ६५,०००, वायुसेना ५,००० और वायुयान ९० नियत किए गए। हंगरी को २००,०००,००० डालर रूस को; ५०,०००,००० डालर यूगोस्लाविया को तथा ५०,०००,००० डालर चैकोस्लोवाकिया को देना नियत किया गया।

बल्गारिया से सन्धि (Treaty with Bulgaria)—इस सन्धि में ३८ धाराएँ और छः तालिकाएँ थीं। इसकी सेना ५५,००० हवामार तोपखाना, १,८०० सैनिक, ३५,००० जलसेना तथा वायुसेना, ९० वायुयान और ५,२०० सैनिक नियत की गई। बल्गारिया को ८ वर्ष में २५,०००,००० डालर का माल यूगोस्लाविया और ४५,०००,००० डालर का माल यूनान को देना नियत हुआ।

रूमानिया से सन्धि (Treaty with Rumania)—इस सन्धि में ४० धाराएँ और छः तालिकाएँ थीं। उसकी सेना १,२०,००० ;हवामार तोपखाना ५,०००; जलसेना १,५०० टन और ५,००० नाविक नियत की गई। उसकी वायुसेना १५० वायुयान और ८,००० सैनिक कर दी गई। उसे ८ वर्ष में रूस को ३००,०००,००० डालर का माल देना नियत हुआ।

फ़िनलैंण्ड से सन्धि (Treaty with Finland)—इस सन्धि में ३६ धाराएँ और छः तालिकाएँ थीं। १ जनवरी, १९४१ को जो फ़िनलैण्ड की सीमा थी उसकी

पुनःस्थापना की गई। किन्तु पेटसामो (Petsamo) का प्रान्त सोवियत रूस को दे दिया गया। मार्च, १९४० की रूस और फ़िनलैण्ड की सन्धि पुनः लागू कर दी गई। रूस ने हांगो पर अपने पट्टे के अधिकार छोड़ दिए किन्तु समुद्री अड्डे के लिए पोक्कला-उड्ड (Porkkala-udd) प्रदेश पर पट्टे का अधिकार प्राप्त कर लिया। फिनलैण्ड की सेना ३४,४००, जलसेना ४,८०० नाविक और १०,००० टन वायुसेना, ३० वायुयान और ३,००० सैनिक नियत की गई। सितम्बर, १९४४ के पश्चात् उसे ८ वर्ष में रूस को ३००,०००;००० डालर रूस को देने नियत किए गए।

आस्ट्रिया (Austria)—१९४५ में युद्ध समाप्त होने के समय मास्को घोषणा के कारण आस्ट्रिया को बड़ी आशाएँ थीं क्योंकि तीन बड़ी शक्तियों ने उसे नाज़ी अत्याचार का पीड़ित देश बताया था। आशा थी कि उसे स्वतन्त्र कर दिया जाएगा। मित्रराष्ट्रों द्वारा नियुक्त एक आयोग ने अधिकार करने वाली सेनाओं का क्षेत्र और नियन्त्रण की व्यवस्था के विषय में नियम बनाए। मित्रराष्ट्र नियन्त्रण परिषद् (Allied Control Council) अत्यन्त महत्त्वशाली थी और इसमें चार अधिकृत क्षेत्रों के चारों सेनापति सदस्य थे। आशा थी कि चारों क्षेत्रों में एक जैसी शासन व्यवस्था तथा समूचे आस्ट्रिया में सर्वोच्च सत्ता का कार्य परिषद् पूरा करेगी। परिषद् की बैठकों में सेनापतियों में बहुधा मतभेद होने का परिणाम यह हुआ कि क्षेत्रों को चार विभागों में बाँट दिया गया और प्रत्येक क्षेत्र में वहाँ का सेनापति स्वेच्छाचारी शासक था। सिद्धान्त रूप से देश में आस्ट्रिया की एक ही सरकार देश पर शासन करती थी किन्तु वास्ताव में देश में चार फाँसी के फन्दे उसका गला घोंट रहे थे। अधिकार की नीति अत्यन्त भयानक होती गई और व्यक्तियों और वस्तुओं के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में बाधा पड़ने लगी। राजनीतिक एकता को पीछे धकेल दिया गया और देश की सार्वजनिक आर्थिक उन्नति का बलिदान होने लगा। अधिकार करने वाली सेनाओं का व्यय आस्टिया को देना पड़ रहा था और यह भार उसके साधनों पर बड़ा भारी बोझा था।

आस्ट्रिया से सन्धि करने के विषय में समझौते के अनेक प्रयत्न किए गए किन्तु एक ओर सोवियत गुट और दूसरी ओर ऐंग्लो-अमरीकन गुट के परस्पर मत-भेद होने के कारण सारे प्रयत्न असफल रहे। पॉट्सडम (Potsdam) समझौते की क्षतिपूर्ति की व्यवस्था की जो परिभाषा रूस ने की वह अन्य शक्तियों को मान्य नहीं थी। यूगोस्लाविया भी रूस से क्षतिपूर्ति की माँग करने लगा। आस्ट्रिया और यूगोस्लाविया में सीमा-रेखा पर भी विवाद था। अन्त में १९४९ में विदेशमन्त्री अपने छठे सम्मेलन में आस्ट्रिया की सन्धि के विषय में सहमत हुए। यह मान लिया गया कि जो सीमा १ जनवरी, १९३८ को थी वही सीमा मान ली जाए। आस्ट्रिया में रहने वाली स्लाव और क्रीट अल्पमत जातियों के अधिकारों की रक्षा का आस्ट्रिया आश्वासन दे। आस्ट्रिया से क्षतिपूर्ति की वसूली न की जाए। किन्तु यूगोस्लाविया के राज्य में आस्ट्रिया की सम्पत्ति और अन्य हितों को छीन लेने का अधिकार यूगोस्लाविया को दिया गया था। सोवियत रूस को आस्टिया से आठ वर्ष में सुगमता

से बदली जा सकने वाली मुद्रा में १५०० लाख डालर लेने नियत हुए। इस पर भी सोवियत रूस और ऐंग्लो-अमरीकन गुट में परस्पर शीत-युद्ध होने के कारण सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं हुए।

अप्रैल, १९५५ में सोवियत सरकार के निमन्त्रण पर आस्ट्रिया का एक शिष्ट-मण्डल मास्को गया। विचार-विमर्श के अन्त में दोनों सरकारों की ओर से एक संयुक्त घोषणा की गई कि वे आस्ट्रिया में स्वतन्त्रता की स्थापना के लिए सन्धि की शर्तों पर सहमत हैं। आस्ट्रिया के शिष्टमण्डल ने निष्पक्ष रहने का तथा किसी भी शक्ति-गुट से दूर रहने तथा आस्ट्रिया में सैनिक अड्डे न बनने देने का आश्वासन दिया। सोवियत सरकार ने अधिकार करने वाली सेनाएँ बुला लेने का आश्वासन दिया। रूस को दी जाने वाली क्षतिपूर्ति के विषय में समझौता हुआ कि यह केवल आस्ट्रिया में बने हुए माल के द्वारा ही दी जाएगी। रूस ने डेन्यूब नदी में चलने वाले जहाज़ों को मुआवज़ा लेकर लौटा देना स्वीकार किया। कच्चे तेल के बदले तेल के मैदान और शोधन के कारखाने लौटा देने पर भी समझौता हुआ। सोवियत रूस ने आस्ट्रिया के युद्ध के कैदी लौटा देना स्वीकार कर लिया।

१९ अप्रैल, १९५५ को रूस के विदेश-मन्त्री ने अमरीका, फ्रांस और ब्रिटेन के विदेशमन्त्रियों को विआना में एक सम्मेलन में आने का निमन्त्रण दिया ताकि आस्ट्रिया से सन्धि करने के प्रश्न पर विचार किया जा सके। निमन्त्रण स्वीकार कर लिया गया और नियत समय पर सम्मेलन भी हुआ। १५ मई, १९५५ को आस्ट्रिया से सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। सन्धि में आस्ट्रिया की आर्थिक स्वतन्त्रता की सुरक्षा का आश्वासन दिया गया। चार बड़े राष्ट्रों ने आस्ट्रिया की निष्पक्षता का सम्मान किया।

जर्मनी (Germany)—१९४५ में जर्मनी के पतन के पश्चात् देश पर चार बड़े राष्ट्रों ने अधिकार कर लिया। इसे चार क्षेत्रों (Zones) में बाँट दिया गया और प्रत्येक क्षेत्र पर अधिकार करने वाली शक्ति का अधिकार था। बर्लिन पर संयुक्त अधिकार किया गया और अधिकार करने वाली शक्ति को नगर का एक क्षेत्र दिया गया। मित्र-देशीय संस्था (Inter-Allied Body) की सारे नगर पर शासन करने के लिए स्थापना की गई। समूचे जर्मनी पर शासन की नीति में ताल-मेल रखने के लिए मित्र देशों की एक नियन्त्रण परिषद् (Allied Control Authority) बनाई गई थी। यह परिषद् भिन्न-भिन्न क्षेत्रों पर अधिकार रखने वाली सेनाओं के सेनापतियों की मुख्य सलाहकार समिति थी। नियन्त्रण-परिषद् के सदस्यों में आरम्भ से ही मतभेद थे और परिणामतः इसे किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त नहीं हुई। नाज़ी नेताओं और पदाधिकारियों पर मुकदमा चलाया गया और भिन्न-भिन्न सज़ाएँ दी गईं। कुछ को कैद कर लिया गया और कुछ को मृत्यु-दण्ड दिया गया।

१९४७ में ब्रिटेन और अमरीका ने अपने क्षेत्रों की आर्थिक व्यवस्था एक कर दी। इस व्यवस्था में सम्मिलित होने का निमन्त्रण फ्रांस ने भी स्वीकार किया, किन्तु रूस ने नहीं माना। पश्चिमी जर्मनी में औद्योगिक और खेती की उपज की

उन्नति होने लगी। जून, १६४८ में पश्चिमी क्षेत्र में एक नई मुद्रा का प्रचलन हुआ तथा इससे भी वृद्धि हुई। रूस ने भी अपने क्षेत्र में कुछ खेती सम्वन्धी सुधार किए।

१६४८ में अमरीका, ब्रिटेन तथा फ्रांस के क्षेत्रों से तथा वर्लिन के इन्हीं क्षेत्रों से प्रतिनिधियों का चुनाव विधान सभा (Constituent Assembly) वनाने के लिए हुआ और १६४६ का वॉन्न का संविधान (Bonn Constitution) स्वीकार कर लिया गया। यह १६१६ के वाइमर संविधान (Weimar Constitution) की प्रणाली पर ही था। रूस ने भी अपने क्षेत्र के लिए एक संविधान वनाया।

जर्मनी रूस और ऐंग्लो-अमरीकन गुट के संघर्ष में फँस गया। प्रत्येक ही वर्लिन को अपने पक्ष में दूसरे के विरुद्ध मोर्चा वनाना चाहता था। पश्चिमी देश जर्मनी को साम्यवाद के विरुद्ध एक ढाल वनाना चाहते थे। सोवियत संघ अटलाण्टिक तक पूँजीवादी-प्रजातन्त्र के प्रभाव से वचने के लिए लौह-आवरण (Iron Curtain) वढ़ा देना चाहता था। प्रत्येक पक्ष, दूसरे से युद्ध होने की अवस्था में जर्मनी को अपना साथी वनाना चाहता था। ऐंग्लो-अमरीकन गुट ने अपने क्षेत्र में अरवों डालर की पूँजी वहाँ की जनता की सुख-समृद्धि के लिए लगा दी। जर्मनी शक्तियों के गुटों की खेलने की गेंद वन गया।

पश्चिमी शक्तियों द्वारा वर्लिन को खाली करा देने के उद्देश्य से रूस ने जून, १६४८ में, जर्मनी के पश्चिमी क्षेत्रों और वर्लिन के वीच जल और स्थल से याता-यात तोड़ दिए। जनता के भूखे मरने का डर हो गया। झुकने की वजाय ब्रिटेन और अमरीका ने चुनौती स्वीकार की और फिर प्रसिद्ध वर्लिन-हवाई उठान (Berlin Air-lift) आरम्भ हुई। वर्लिन के पश्चिमी क्षेत्र की जनता की सारी आवश्यकताओं की हवाई जहाज़ से माल भिजवा कर पूर्ति की गई। यह प्रवन्ध १० महीने तक चलता रहा। अंत में रूस को घेरा उठाने के लिए विवश होना पड़ा। यह सत्य है कि हवाई जहाज़ से माल पहुँचाना वड़ा खर्चीला था किन्तु इस प्रवन्ध के सफल हो जाने के कारण पश्चिमी शक्तियों की प्रतिष्ठा वढ़ गई और रूस को मुँह की खानी पड़ी।

मई, १६५२ में पश्चिमी देशों ने पश्चिमी जर्मनी से एक समझौता किया जिसके अनुसार जर्मन-गणतन्त्र-संघ (German Federal Republic) को आन्त-रिक और विदेशी मामलों में पूर्ण स्वायत्त अधिकार मिल गए। पश्चिमी जर्मनी को नाटो अर्थात् उत्तरी-अटलाण्टिक सन्धि संस्था (North Atlantic Treaty Organisation or N.A.T.O.) के संरक्षण में भी रख दिया गया। १६५५ में यह नाटो का सदस्य भी वन गया। फ्रांस के विरोध के होने पर भी जर्मन गणतन्त्र संघ को सशस्त्र (Rearmed) कर दिया गया। इसका उद्देश्य यह है कि रूस के खतरे का मुकावला किया जा सके।

जर्मनी की मुख्य समस्या एकीकरण की है। किन्तु रूस द्वारा पूर्वी जर्मनी पर किसी-न-किसी रूप में अधिकार रखने के दृढ़ संकल्प के कारण यह वड़ा कठिन

प्रतीत होता है। जर्मनी यूरोप के मध्य में स्थित है और परिणामतः जर्मनी की समस्या यूरोप और संसार के हृदय की समस्या है। उसका भविष्य रूस और पश्चिमी शक्तियों के सम्बन्धों पर निर्भर है। अनेक अवसरों पर जर्मनी का प्रश्न प्रमुख बन कर विश्व की शान्ति के लिए खतरा बन चुका है।

१९५१ की जापान से सन्धि (Japanese Peace Treaty of 1951)—४ सितम्बर से ८ सितम्बर, १९५१ तक हुए सॉन फ्रांसिस्को सम्मेलन में जापान से एक शान्ति सन्धि पर हस्ताक्षर किए गए। इस सम्मेलन में रूस ने भाग लिया किन्तु भारतवर्ष नहीं था। इस सन्धि के अनुसार जिस दिन सन्धि लागू हो उसी दिन जापान से युद्ध-स्थिति समाप्त हो जाएगी।

इस सन्धि के दूसरे अध्याय में प्रादेशिक व्यवस्था का वर्णन है। जापान ने कोरिया की स्वतन्त्रता को मान्यता दी और क्विलपार्ट (Quelpart), पोर्ट हैमिल्टन (Port Hamilton) और डेज़लेट (Dagelet) के द्वीपों सहित कोरिया के प्रदेशों पर से अपना अधिकार उठा लिया। जापान ने फार्मोसा, पेस्काडोरस (Pescadores) और कुराइल द्वीपसमूह (Kurile Islands) १९०५ से जापान के अधिकृत साखालिन द्वीप का भाग, लीग ऑफ नेशन्ज़ द्वारा धरोहर के तौर पर रखे हुए प्रशान्त सागर के प्रदेश, अण्टार्कटिक क्षेत्र और स्प्रेटले और पैरासल द्वीपसमूह से भी अपना अधिकार हटा लिया।

सन्धि का तीसरा अध्याय सुरक्षा से सम्बन्धित है। जापान ने संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अनुसार, अनाक्रमण और झगड़ों को शान्ति से निपटाने के सिद्धान्तों को मान्यता दी। मित्रराष्ट्रों ने जापान से अपने सम्बन्धों को राष्ट्रसंघ के अधिकार-पत्र की धारा २ के अनुसार चलाने का आश्वासन दिया। इस धारा में यह सिद्धान्त निहित है कि सारे राष्ट्रों को एक समान पूर्णाधिकार है और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शान्ति से सुलझाया जाना चाहिए। जापान के निजी और सामूहिक आत्मरक्षा और स्वेच्छा से सामूहिक रक्षा के लिए किसी व्यवस्था की सदस्यता प्राप्त करने का अधिकार सर्वमान्य हुआ। सन्धि के लागू होने के ९० दिन के अन्दर जापान से सारी अधिकार करने वाली सेनाएँ हटा ली जाएँगी। किन्तु इस शर्त से किसी एक शक्ति अथवा अधिक मित्रराष्ट्रों से किए गए समझौते के अनुसार सेना का रखना अवैध नहीं माना जाएगा।

चौथे अध्याय में युद्धोपरान्त अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों के लागू होने की कार्य-प्रणाली की व्यवस्था की गई है। यदि मित्रराष्ट्र कोई द्विपक्षी सन्धि लागू रखना चाहें या परिवर्तित करना चाहें तो वे जापान को सूचना देंगे। यदि कोई सूचना न दी जाए तो सन्धियाँ विघटित समझी जाएँगी। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के लिए मित्र-राष्ट्रों द्वारा की गई सभी सन्धियों को जापान ने मान्यता दे दी। उसने जापान में सभी विशेष अधिकार और सुविधाएँ भी छोड़ दीं।

जापान ने सन्धि पर हस्ताक्षर करने वाले देशों से मैत्रीपूर्ण व्यापारिक तथा सामुद्रिक सम्बन्ध स्थापित करने स्वीकार किए। सन्धि के लागू होने के चार वर्ष तक

जापान सन्धि पर हस्ताक्षर करने वाले सारे देशों के साथ विशेष हितैषी राष्ट्र जैसा सम्बन्ध (most-favoured nations treatment) रखना पड़ेगा। यह विशेष व्यवहार उस देश के साथ नहीं किया जाएगा जो इसका प्रत्युत्तर नहीं देगा।

सारे मित्रराष्ट्रों ने इस तथ्य को मान्यता दी कि क्षतिपूर्ति देने से जापान की आर्थिक व्यवस्था नष्ट हो जाएगी। किन्तु यह माना गया कि युद्ध-काल में की गई हानि की पूर्ति जापान को करनी पड़ेगी। यदि कोई मित्रराष्ट्र चाहेगा तो जापान उसे जापानी विशेषज्ञ तथा अन्य सेवाएँ उस तोड़-फोड़ की मरम्मत करने के लिए देगा। मित्रराष्ट्र मरम्मत के लिए कच्चा माल देंगे। जापान के दूतावासों की सम्पत्ति वापस कर देने का निर्णय हुआ। जापान ने मित्रराष्ट्रों की सेनाओं के लिए, जिन्हें युद्ध-बन्दी होने के कारण बहुत कठिनाइयाँ उठानी पड़ी थीं, बहुत-सा सामान और सहायता देने का वचन दिया। अन्तर्राष्ट्रीय रैड क्रास को भूतपूर्व युद्धवन्दियों तथा उनके परिवारों का पुनर्व्यवस्थापन करने के लिए इस सम्पत्ति का उपयोग करने का अधिकार दिया गया।

जापान ने युद्ध से पहले के अपने ऋण को स्वीकार किया। उसे ऋण को निपटाने के लिए अपने ऋणदाताओं से परामर्श करने को कहा गया। इस शर्त पर कि जर्मनी भी इसी प्रकार का आश्वासन देगा, जापान ने जर्मनी पर अपने सारे ऋण और युद्ध के दावे छोड़ दिए।

सन्धि के छठे परिच्छेद में जापानी शान्ति सन्धि से उत्पन्न होने वाले झगड़ों के निपटारे के विषय में व्यवस्था की गई है। यदि अन्य तरीकों से झगड़ों का निपटारा न हो सके तो इन झगड़ों को अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (International Court of Justice) के सुपुर्द करने की व्यवस्था की गई और जापान को न्यायालय के निर्णय को मानने के लिए बाध्य कर दिया गया।

इस सन्धि पर प्रमुख देशों के, जापान के तथा मुख्य अधिकार करने वाली शक्ति के रूप में अमरीका के हस्ताक्षर हो जाने पर इसका लागू होना निश्चित हुआ। अन्य मुख्य सम्बन्धित शक्तियाँ थीं—आस्ट्रेलिया, बर्मा, कनाडा, लंका, फ्रांस, भारत, इण्डोनेशिया, नीदरलैण्ड्ज़, न्यूज़ीलैण्ड, पाकिस्तान, फिलिपाइन्ज़, ब्रिटेन और सोवियत रूस। इस सन्धि पर जापान के हस्ताक्षर हो जाने के पश्चात् ९ महीने तक यदि आवश्यक बहुमत इस सन्धि को स्वीकार न करे तो कोई भी देश जापान के हस्ताक्षर करने के बाद तीन वर्ष की अवधि में अमरीका और जापान की सरकारों को सूचना देकर जापान से निजी रूप से सन्धि कर सकेगा।

जापान पर साम्यवादी चीन अथवा कुओमिण्टैङ्ग (Kuomintang) सरकार में से किसी से भी सन्धि करने की छूट दी जाएगी। रूस ने सन्धि पर सान फ्रांसिस्को में हस्ताक्षर नहीं किए और १९५२ में भारत ने जापान से अलग सन्धि की।

जापान और अमरीका में सन्धि (Treaty between Japan and U.S.A.)—सोवियत गुट के देशों को छोड़कर सान फ्रांसिस्को सम्मेलन में भाग लेने वाले सारे देशों के हस्ताक्षर होते ही सन्धि की व्यवस्था के अनुसार सान फ्रांसिस्को में ही जापान

और अमरीका में एक प्रतिरक्षा सन्धि हुई। इसकी प्रथम धारा के अनुसार जापान ने अमरीका को यह अधिकार दिया कि अमरीका की जल, स्थल व वायु सेनाएं जापान के भीतर और चारों ओर जहां चाहें रह सकेंगी। ये सेनाएं मध्यपूर्व में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की सुरक्षा के लिए, जापान पर किसी अन्य देश के आक्रमण से रक्षा करने के लिए तथा आन्तरिक बड़े दंगे-फसाद और गृहयुद्ध की स्थिति में जापान सरकार की प्रार्थना पर शान्ति व्यवस्था की स्थापना के लिए प्रयोग में लाई जाएंगी। धारा २ के अनुसार जापान ने यह स्वीकार किया था कि वह अन्य तीसरी किसी शक्ति को, बिना अमरीकन सरकार की अनुमति के, सैनिक अड्डे बनाने, सेना रखने, मोर्चेबन्दी करने, सैन्य सामग्री ले जाने तथा हवाई और जल सेना को रखने या ले जाने का कोई भी अधिकार नहीं देगा। धारा २ में व्यवस्था है कि अमरीका की सेना की स्थिति के विषय में दोनों सरकारों में प्रशासनिक समझौते के अनुसार कार्यवाही की जाएगी। धारा ४ में व्यवस्था की गई है कि जिस समय जापान और अमरीका की सरकारों को यह सन्तोष हो जाए कि जापान के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ (U. N. O.) ने कोई व्यवस्था कर दी है अथवा अन्य कोई व्यवस्था राष्ट्र संघ के कार्य की पूर्ति के लिए बना दी गई है, उस समय यह सन्धि समाप्त हो जाएगी।

शीत युद्ध (Cold War)—यह सत्य है कि हिटलर को परास्त करने के लिए ब्रिटेन और अमरीका ने रूस से सहयोग किया था किन्तु युद्ध के समाप्त होते ही युद्ध-काल के साथी भिन्न-भिन्न दिशाओं में भटकने लगे। इन सब में परस्पर तनाव बढ़ता गया जो शीत-युद्ध के नाम से पुकारा जाने लगा। एंग्लो-अमरीकन गुट १९४७ के आरम्भ तक जितना क्षेत्र प्राप्त किया जा चुका था उससे अधिक प्रभाव-क्षेत्र रूस को देना नहीं चाहता था। अमरीका ने ट्रूमैन सिद्धान्त (Truman Doctrine) से आरम्भ करके मार्शल योजना (Marshall Plan), नाटो (NATO), सीटो (SEATO) और बगदाद सन्धि इत्यादि गुट बनाए।

ट्रूमैन सिद्धान्त का इन परिस्थितियों में प्रतिपादन हुआ। १९४५ में युद्ध बन्द हो जाने के पश्चात् साम्यवादियों ने इटली, फ्रांस, यूनान और तुर्की को अपना मुख्य निशाना बनाया। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् व्यापक अव्यवस्था से लाभ उठा-कर उन्होंने इटली और फ्रांस में अपनी शक्ति को संगठित किया। उन्होंने तोड़-फोड़ की नीति अपनाकर प्रशासन की व्यवस्था का सुचारु रूप से चलना असम्भव कर दिया था। यूनानी लोगों को अपनी स्वतन्त्रता छिन जाने का भय होने लगा था। यह भय साम्यवादियों के नेतृत्व में लड़ने वाले १३,००० छापामार सैनिक थे जिन्हें यूनान के उत्तर में बसे हुए साम्यवादी देशों से रसद, शस्त्र और शरण मिलती थी। ये देश यूगोस्लाविया, बल्गारिया और अल्बानिया थे। अधिकांश छापामार यूनानी थे, किन्तु वे बाहर से सक्रिय पर्याप्त सहायता प्राप्त किए बिना गृहयुद्ध दो वर्ष तक चालू नहीं रख सकते थे। दिसम्बर, १९४६ में यूनान ने अपने पड़ोसियों के विरुद्ध सुरक्षा परिषद् (Security Council) में सीमा अतिक्रमण (violations of

frontiers) की शिकायत की। सुरक्षा परिषद् ने जाँच करने के लिए एक आयोग यूनान भेजा। जनवरी, १९४७ में संयुक्त राज्य अमरीका (U.S.A.) ने एक आर्थिक शिष्टमण्डल को यूनान भेजा कि वह जाँच करके यह बताए कि यूनान को पूर्ण पतन से बचाने के लिए क्या किया जा सकता है। इसी अवसर पर ब्रिटिश सरकार ने यूनान
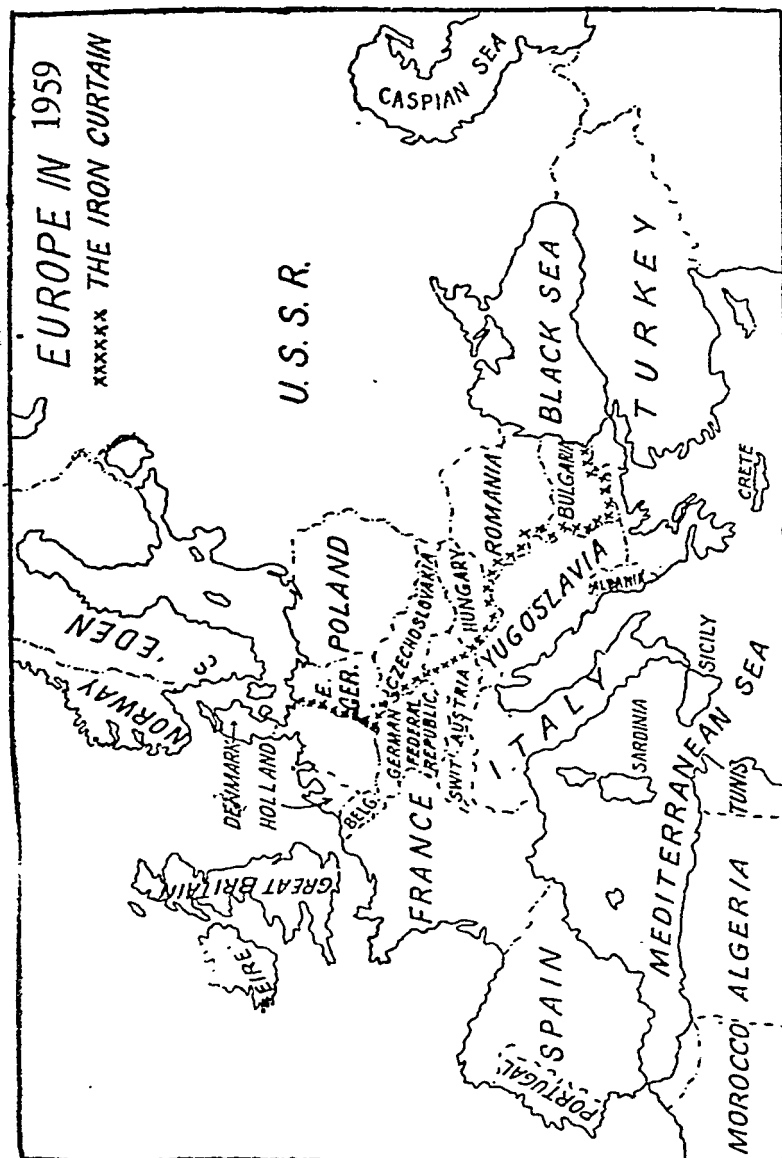
से अपनी सेनाएँ हटा लेने का निर्णय किया। संयुक्त राष्ट्र सहायता संस्था (United Nations Relief Agency) भी अपना कार्य ३१ मार्च, १९४७ को समाप्त करने वाली थी।

तुर्की की परिस्थिति भी भयानक थी। १६४५ में रूस ने तुर्की से पुरानी मैत्री सन्धि को बढ़ाने से इनकार कर दिया। यह माँग की गई कि तुर्की डार्डनल्ज़ की सुरक्षा और नियन्त्रण में रूस से साझा करे। रूस ने पूर्वी तुर्की के दो बड़े प्रान्तों को लेने की माँग भी दुहराई। रूस ने तुर्की की सरकार के विरुद्ध प्रचार करना आरम्भ किया कि वह प्रतिक्रियावादी तथा फासिस्ट (Fascist) है। तुर्की की जनता को सरकार के विरुद्ध भड़काया गया। इन परिस्थितियों में तुर्की की सरकार ने रूसी भय से बचने के लिए अमरीका से सहायता माँगी।

मार्च, १६४७ में राष्ट्रपति ट्रूमैन ने अमरीका की संसद् में संयुक्त अधिवेशन में एक घोषणा की, जो बाद में ट्रूमैन सिद्धान्त (Truman Doctrine) के नाम से प्रसिद्ध हुई। ट्रूमैन ने इस अवसर पर कहा था, "हज़ारों सशस्त्र व्यक्तियों की आतंकवादी गतिविधि से, जो साम्यवादियों के नेतृत्व में हैं और सरकार की सत्ता की अवहेलना करते हैं, यूनान देश का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। यदि यूनान को स्वावलम्वी और आत्मसम्मान वाला देश बनना है तो उसे अवश्य ही सहायता मिलनी चाहिए। तुर्की ने ब्रिटेन और अमरीका से राष्ट्रीय अक्षुण्णता की रक्षा के लिए आर्थिक सहायता माँगी है। यह अक्षुण्णता मध्यपूर्व में शान्ति के लिए अत्यावश्यक है। हम अपने उद्देश्य को तब तक प्राप्त नहीं कर सकेंगे जब तक हम स्वतन्त्र देशों को उनकी स्वतन्त्र राज्यप्रणाली और राष्ट्रीय अक्षुण्णता की रक्षा के लिए तानाशाही शासन थोपने की हिंसात्मक कार्यवाहियों के विरुद्ध सहायता नहीं देंगे। यह इस बात की स्पष्ट स्वीकारोक्ति से अधिक नहीं है कि स्वतन्त्र जातियों पर अप्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से तानाशाही शासन थोपना, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की नींव पर आघात करना है और इसलिए अमरीका की सुरक्षा को भय है। अमरीका ने दबाव और धमकी के विरुद्ध अनेक बार आवाज़ उठाई है। पोलैण्ड, रूमानिया और बल्गारिया में याल्टा सम्मेलन की सन्धि की अवहेलना होने पर भी...मेरे विचार से अमरीका की यह नीति होनी चाहिए कि वह उन देशों की सहायता करे जहाँ स्वतन्त्र राष्ट्र सशस्त्र अल्पमत अथवा बाहरी दबाव से सरकार को दबाने के प्रयत्न का प्रतिरोध कर रहे हैं। हमें तुरन्त और दृढ़ निर्णय करना चाहिए। संसार की स्वतन्त्र जातियाँ हमारी ओर अपनी स्वतन्त्रता बनाए रखने के लिए सहायता की याचना की दृष्टि से देख रही हैं। यदि हम अपने नेतृत्व में डगमगा गए तो सम्भवतः हम विश्व शान्ति को खतरे में डाल देंगे और अपने राष्ट्र की सुरक्षा को भी निस्सन्देह आघात पहुँचाएँगे।"

'ट्रूमैन सिद्धान्त' यूनान और तुर्की को सैनिक और आर्थिक सहायता भेजने का प्रस्ताव था। यह अमरीका की "सशस्त्र अल्पमत द्वारा सरकार को दबाने के प्रयत्न का विरोध करने वाली जातियों की सहायता करने" की नीति थी। यह एक स्पष्ट स्वीकारोक्ति थी कि "स्वतन्त्र जातियों पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से तानाशाही शासन थोपने से अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की नींव पर कुठाराघात होगा।"

मई, १६४७ में अमरीका की संसद् ने यूनान और तुर्की को सहायता देने की अनुमति दे दी। १६५० तक यह मालूम हुआ कि अमरीका की नीति ने यूनान और

तुर्की में परिस्थिति ही बदल दी है। छापामार लड़ाकू यूनान से पूर्णतः नष्ट हो गए और देश में शान्ति की पुनर्स्थापना हो गई। रेलगाड़ियाँ साधारण रूप से चलने लगीं और सड़कों का यातायात सुरक्षित हो गया। पुलों का पुनःनिर्माण हुआ। हज़ारों नए घर बनाए गए। खेती की उपज युद्ध से पूर्वी की मात्रा से भी अधिक होने लगी। खेती की धरती में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। यही स्थिति तुर्की में थी। इस देश में शान्ति की स्थापना हुई। नए चुनाव हुए। २७ वर्ष पश्चात् तुर्की में एक दल की सरकार समाप्त हुई।

मार्शल योजना (Marshall Plan)—५ जून, १९४७ को हारवर्ड (Harvard) में भाषण देते हुए अमरीका के राज्य सचिव जार्ज मार्शल ने कहा कि "वास्तविक बात यह है कि विदेशी खाद्य समाग्री और अन्य आवश्यक वस्तुओं की आगामी तीन-चार वर्ष के लिए यूरोप में इतनी आवश्यकता है, विशेषतः अमरीका के माल की कि उसका मूल्य चुकाना उसकी सामर्थ्य से बाहर है। अतः उसे पर्याप्त सहायता मिलनी चाहिए, अन्यथा आर्थिक, सामाजिक तथा भौतिक दृष्टि से उसे अत्यन्त गम्भीर पतन का सामना करना पड़ेगा। यह युक्तियुक्त है कि अमरीका को अपनी पूरी शक्ति से विश्व के साधारण आर्थिक स्वास्थ्य को लौटाने में सहायता करनी चाहिए। इसके बिना विश्व में राजनीतिक स्थिरता और शान्ति की व्यवस्था नहीं हो सकती। मेरे विचार से इस विषय में पहल यूरोप की ओर से ही होनी चाहिए। इस देश का कार्य यूरोप भर के लिए एक कार्यक्रम का मसविदा बनाने में मैत्रीपूर्ण सहायता देना है और इसके पश्चात् यथासाध्य इस कार्यक्रम को सफलतापूर्वक सम्पूर्ण करने में सहायता देना है। यह कार्यक्रम संयुक्त होना चाहिए जिसके विषय में यदि सारे नहीं तो बहुत से यूरोपीय देश सहमत होने चाहिएँ।"

वास्तव में ब्रिटेन और फ्रांस की सरकारों ने पहल की और उन्होंने रूस से विदेश मन्त्रियों के एक सम्मेलन का प्रस्ताव किया। बेविन, बिडाल्ट और मोलोतोव २७ जून, १९४७ को पेरिस में मिले। रूस ने इस विषय में आश्वासन देना नहीं चाहा। जब जुलाई, १९४७ में ब्रिटेन और फ्रांस ने मार्शल के प्रस्ताव पर विचार करने के लिए २२ देशों को निमन्त्रण भेजा तो रूस ने अपने प्रभाव में आए हुए देशों को सम्मेलन में जाने से रोक दिया। पोलैण्ड, हंगरी, यूगोस्लाविया, रूमानिया, बल्गारिया और अल्बानिया इस सम्मेलन में नहीं आए। इसी प्रकार इच्छा होते हुए भी फ़िनलैण्ड और चैकोस्लोवाकिया ने भी इस सम्मेलन में भाग नहीं लिया।

रूस और उसके साथियों के इस व्यवहार के होने पर भी अमरीका में 'आर्थिक सहयोग प्रशासन' (Economic Co-operation Administration or ECA) और पेरिस में 'यूरोपीय आर्थिक सहयोग संस्था' (Organisation for Economic Co-operation) की स्थापना हो गई। रूस ने साम्यवादी सूचनालय (Communist Information Bureau or Cominform) की स्थापना की जिसने कॉमिनटर्न (Comintern) के कार्य को फिर चालू किया। रूस के पोलिटब्यूरो के प्रधान-भ्रैडनोव (Zhdanov) की अध्यक्षता में १९४७ में वारसा में हुए एक सम्मेलन

में 'कोमिनफार्म' (Cominform) का जन्म हुआ। यूरोप के आर्थिक कार्यक्रम को धक्का पहुँचाने के उद्देश्य से कोमिनफार्म का मुख्य कार्यालय बेलग्राड (Belgrade) में रखा गया।

विरोध होने पर भी मार्शल योजना को बहुत हद तक सफलता प्राप्त हुई। १९४७-१९५१ की चार वर्ष की अवधि में इसे अमरीका से ११,०००,०००,०००,००० डालर की सहायता मिली ताकि यूरोप की आर्थिक अवस्था सुधर जाय और वह साम्यवादियों के प्रभाव से बच जाए। प्रो० एडवर्ड मीड अर्ल के मतानुसार, "मार्शल योजना ऐंग्लो-अमरीकन कूटनीति अर्थात् सुधारप्रिय स्वार्थ का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। अमरीका की सरकार तथा जनता ने हृदय से यह अनुभव किया कि पर्याप्त और तुरन्त सहायता दिए जाने पर ही यूरोप स्वतन्त्र और स्वावलम्बी रह सकता है। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि यूरोप की राजनैतिक स्वतन्त्रता तथा उसकी प्रजातन्त्रीय प्रणाली की रक्षा में ही उनकी निजी स्वतन्त्रता निहित है। इसी कारण वे यूरोप के पुनरुत्थान के लिए अरबों डालर लगा देने को तैयार हो गए थे। गत घटनाओं पर विचार करने से मालूम होता है कि यह सहायता द्वारा अपने राष्ट्रीय हित तथा सुरक्षा के लिए किया गया सब से बड़ा कार्य था।"

रियो समझौता १९४७ (Rio Pact of 1947)—अमरीका महाद्वीप की सुरक्षा और शान्ति की रक्षा के लिए रियो-डि-जनेरो (Rio de Janeiro) में १९४७ में हुए आन्तर्-अमरीकन सम्मेलन (Inter-American Conference) में इस समझौते पर हस्ताक्षर हुए। इस समझौते में २६ धाराएँ हैं। इसकी भूमिका में कहा गया है कि यह समझौता इसलिए किया गया है कि किसी भी अमरीकन देश पर आक्रमण होने, तथा आक्रमण के भय का सामना करने के लिए परस्पर सहयोग द्वारा पर्याप्त साधन जुटा कर सुरक्षा और शान्ति की व्यवस्था की जा सके।

सन्धि करने वाले देशों ने युद्ध की निन्दा करते हुए अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में धमकी या शक्ति प्रयोग का आश्रय न लेने और किसी भी प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की प्रथम धारा के प्रतिकूल कार्य न करने की प्रतिज्ञा की। (धारा संख्या १) उन्होंने परस्पर होने वाले प्रत्येक विवाद को शान्तिपूर्वक सुलझाने तथा आन्तर्-अमरीकन व्यवस्था (Inter-American System) में विहित नियमों के अनुसार सारे विवादों को संयुक्त राष्ट्र संघ को भेजने से पहले निपटाने की भी प्रतिज्ञा की। (धारा संख्या २) यह समझौता हुआ कि किसी भी अमरीकन देश पर हुआ आक्रमण सारे अमरीकन देशों पर आक्रमण समझा जाएगा। अतः संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा सम्मानित व्यक्तिगत तथा सामूहिक सुरक्षा समझौतों के अनुसार सारे देश इस प्रकार के आक्रमण का विरोध करेंगे। सुरक्षा परिषद् द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रबन्ध करने से पहले, सुरक्षा का उचित प्रबन्ध किया जाएगा। (धारा संख्या ३)

यदि किसी भी अमरीकन देश की क्षेत्रीय अक्षुण्णता अथवा सर्वाधिकार-

सम्पन्नता अथवा राजनैतिक स्वतन्त्रता पर सशस्त्र आक्रमण के अतिरिक्त किसी भी अन्य प्रकार की विपत्ति आ जाए, अथवा अन्तर्द्वीप अथवा महाद्वीप में ही कोई झगड़ा हो जाए अथवा किसी भी अन्य तथ्य और घटना द्वारा अमरीका की शान्ति को खतरा उत्पन्न हो जाए तो परामर्श निकाय (Organ of Consultation) का सम्मेलन बुलाया जाएगा और पीड़ित देश की सहायता के लिए अथवा सामूहिक सुरक्षा एवं शान्ति की स्थापना और महाद्वीप की सुरक्षा के लिए आवश्यक व्यवस्था की जाएगी। (धारा संख्या ६)

दो या दो से अधिक अमरीकन देशों में युद्ध होने की अवस्था में सारे देश संघर्ष-ग्रस्त देशों को तुरन्त ही युद्ध वन्द करने का आदेश देंगे और अन्तर्देशीय शान्ति और सुरक्षा की स्थापना करेंगे और झगड़े का शान्तिपूर्ण निपटारा करेंगे। (धारा संख्या ७)

परामर्श निकाय (Organ of Consultation) द्वारा व्यवस्थित कार्यवाही इस प्रकार थी : दूतावास के प्रमुखों को वापिस बुला लेना, कूटनीतिक सम्बन्धों को तोड़ देना, आर्थिक सम्बन्धों को आंशिक अथवा पूर्णरूप से रोक देना, रेल मार्ग, समुद्री मार्ग, डाक, तार, टेलीफोन और वेतार के तार इत्यादि की संचार व्यवस्था को समाप्त कर देना और सशस्त्र शक्ति का प्रयोग। (धारा संख्या ८)

निम्नलिखित कार्य आक्रमण माने गए : विना कारण किसी देश पर आक्रमण करना, पूर्व निर्धारित सीमा का उल्लंघन करना तथा किसी भी देश द्वारा शासित प्रदेश पर अधिकार की चेष्टा करना। (धारा संख्या ९)

समझौता अनन्तकाल के लिए है किन्तु कोई भी देश अमरीकन संघ को सूचना देकर अपनी सदस्यता को समाप्त कर सकता है। (धारा संख्या २५)

डलेस के मतानुसार रियो समझौता अमरीका की विदेश नीति में एक महत्त्वपूर्ण पग है। रियो समझौता एक विशिष्ट दिशा में पहला कदम था जो आगे जाकर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उत्तरी अटलाण्टिक संधि (North Atlantic Pact) के रूप में पूर्ण हुआ।

उत्तर अटलान्टिक सन्धि संस्था (NATO, North Atlantic Treaty Organisation)—अमरीका, कनाडा, वेल्जियम, डेन्मार्क, फ्रांस, आइसलैण्ड, इटली, लक्सेम्वर्ग, नीदरलैण्ड्ज़, नार्वे, पुर्तगाल और ब्रिटेन ने ४ अप्रैल, १९४९ को वाशिंगटन में उत्तर अटलान्टिक सन्धि (नाटो) पर हस्ताक्षर किए। यूनान और तुर्की इस सन्धि में १९५२ में सम्मिलित हुए। जर्मन गणतन्त्र संघ मई, १९५६ में इसका सदस्य वना। नाटो के वर्त्तमान १५ सदस्य हैं।

इसकी स्थापना सोवियत संघ द्वारा युद्ध के पश्चात् युद्ध जैसी नीति अपनाने के कारण हुई। उसने ईरान के उत्तर में स्थित सोवियत सेनाओं का व्यय-भार उठाने के लिए ईरान पर दवाव डाला। उसने तुर्की पर भी कुछ क्षेत्रों का दावा किया और स्ट्रेट्स (Straits) में अड्डे वनाने की माँग भी की। उसने यूनान में छापामार युद्ध को तथा गृह-युद्ध भड़काने वाले साम्यवादियों की सहायता भी की।

उसने पूर्वी यूरोप के देशों पर अपना नियन्त्रण लागू कर दिया जिसका अन्तिम चरण १९४८ में चैकोस्लोवाकिया में शस्त्र प्रयोग द्वारा शासन बदलना था। उसने मार्शल योजना को अस्वीकार कर दिया और पश्चिम की आर्थिक उन्नति को नष्ट करने का प्रयत्न किया। उसने १९४५, पॉटसडैम समझौते की शर्तों का उल्लंघन भी किया। उसने १९४८ में बर्लिन की नाकाबन्दी कर दी और इसे १० महीने तक चालू रखा। उसने भूतपूर्व शत्रु राष्ट्रों से शान्ति सन्धियाँ करने से इन्कार कर दिया। उसने पूर्वी यूरोप में विशाल सोवियत सेनाएँ रखीं और अपने मित्र-राष्ट्रों की सेनाओं में भी वृद्धि करता रहा। वह संयुक्त राष्ट्र संघ में अपने निषेधाधिकार का दुरुपयोग करता था। द्वितीय विश्व युद्ध के कारण जिन देशों में आर्थिक संकट था वहाँ वह साम्यवादी शासन की स्थापना का प्रयत्न करने लगा। उसने इन देशों में तोड़-फोड़, असंतोष और अराजकता फैलाने में प्रोत्साहन दिया।

सोवियत रूस को संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्त्वावधान में ही शान्ति, सुरक्षा और प्रगति के लिए मतभेदों को शान्तिपूर्ण तरीकों से निपटाकर सहयोग देने के लिए मनाने का प्रयत्न किया गया किन्तु ये सारे प्रयत्न असफल रहे। ऐसा प्रतीत होता था कि उसके विश्व साम्राज्य स्थापित करने के लक्ष्य की पूर्ति के लिए रूस किसी भी परिस्थिति से लाभ उठाने के प्रयत्न करने से नहीं चूकेगा। इन परिस्थितियों में अमरीका शान्त न रह सका। उसने यूनान और तुर्की को आर्थिक और सैनिक सहायता दी। मार्शल योजना ने पश्चिमी यूरोप के राष्ट्रों को युद्ध से अस्त-व्यस्त आर्थिक अवस्था को सुधारने में सहायता दी। किन्तु यह अनुभव हुआ कि यह पर्याप्त नहीं होगा। १९४८ में बेल्जियम, फ्रांस, लक्सेमबर्ग, नीदरलैण्ड्ज़ और ब्रिटेन ने एक सन्धि पर हस्ताक्षर किए कि सशस्त्र आक्रमण होने की स्थिति में वे एक दूसरे की सहायता करेंगे। अमरीका की सरकार ने इस सन्धि का स्वागत किया। थोड़े ही समय पश्चात् अमरीका के एक सीनेटर वाण्डेनबर्ग (Senator Vandenberg) ने एक प्रस्ताव रखा कि, "अमरीका को, सांवैधानिक तरीके से, ऐसी क्षेत्रीय और सामूहिक व्यवस्थाओं को सहयोग देना चाहिए जो परस्पर सहयोग और सहायता को प्रोत्साहन देती हों और जिससे अमरीका की सुरक्षा पर अच्छा प्रभाव पड़ता हो।" सीनेट ने यह प्रस्ताव जून, १९४८ में स्वीकार किया। इसके पश्चात् अमरीका के राष्ट्रपति ने उत्तरी अटलाण्टिक क्षेत्र के देशों से परामर्श करना आरम्भ कर दिया और इस परामर्श का परिणाम यह सन्धि हुई जिस पर ४ अप्रैल, १९४८ को हस्ताक्षर किए गए। सीनेट ने इस सन्धि को १३ के मुकाबले में ८२ के बहुमत से स्वीकार किया। अन्य देशों की संसदों ने भी इसे स्वीकार किया और २४ अगस्त, १९४९ को यह लागू हो गई।

नाटो सन्धि की शर्तें (Provisions of the Treaty)—उत्तर अटलाण्टिक सन्धि की एक भूमिका (Preamble) और चौदह धाराएँ (Articles) हैं। भूमिका में कहा गया है कि सन्धि-कर्त्ता देश संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के उद्देश्यों और सिद्धान्तों में अपने विश्वास की पुष्टि करते हैं और अन्य सभी देशों तथा सरकारों

के साथ शान्तिपूर्वक रहने की इच्छा करते हैं। "गणतन्त्र, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता (individual liberty) और कानून की सर्वोच्चता (Rule of Law) के सिद्धान्तों पर आधारित अपने-अपने राष्ट्र की स्वतन्त्रता, साझी विरासत (common heritage) और संस्कृति की रक्षा करने के लिए वे दृढ़ प्रतिज्ञ हैं।" उत्तर अटलाण्टिक क्षेत्र में शान्ति और सुरक्षा की स्थापना तथा सामूहिक प्रतिरक्षा (Collective Defence) के लिए वे अपने प्रयत्नों को केन्द्रीभूत करने के लिए दृढ़-संकल्प हैं।

धारा १ में कहा गया है कि सन्धि-कर्त्ता देश किसी अन्तर्राष्ट्रीय झगड़े में फँस जाएँ तो वे उसे शान्तिमय ढंग से इस प्रकार सुलझाएँगे कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति सुरक्षा एवं न्याय को आघात न पहुँचे। अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में भी वे शक्ति-प्रयोग या शक्ति-प्रयोग की धमकी को व्यवहार में नहीं लाएँगे, यदि ऐसी क्रिया संयुक्त राष्ट्र चार्टर के उद्देश्यों के प्रतिकूल हो।

धारा २ में कहा गया है कि अपनी स्वतन्त्र संस्थाओं को अधिक सुदृढ़ बना कर, उनके आधारभूत सिद्धान्तों को भली प्रकार स्पष्ट करके और स्थिरता तथा समृद्धि की परिस्थितियाँ स्थापित करके शान्तिमय और मैत्रीपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के विकास में सहायता देंगे। वे अपनी-अपनी आर्थिक नीतियों में असामंजस्य हटाने का प्रयत्न करेंगे और सन्धि-कर्त्ता देशों में आर्थिक सहयोग को प्रोत्साहन देंगे।

धारा ३ में कहा गया है कि इस सन्धि के उद्देश्यों की पूर्ण प्राप्ति के लिए सन्धि-कर्त्ता देश सामूहिक तथा व्यक्तिगत रूप से तथा निरन्तर और प्रभावशाली स्व-सहायता तथा परस्पर सहायता के साधन से सशस्त्र आक्रमण को रोकने की अपनी सामूहिक तथा व्यक्तिगत क्षमता में वृद्धि करने की चेष्टा करेंगे।

धारा ४ में कहा गया है कि यदि सन्धि-कर्त्ता देशों के विचार में उनमें से किसी की क्षेत्रीय अक्षुण्णता (territorial integrity), राजनीतिक स्वतन्त्रता अथवा सुरक्षा को खतरा हो तो वे परस्पर विचार-विमर्श करेंगे।

धारा ५ में कहा गया है कि यूरोप या उत्तरी अमरीका में सन्धि-कर्त्ता देशों में से किसी एक देश पर या एक से अधिक देशों पर सशस्त्र आक्रमण को उन सब पर आक्रमण समझा जाएगा। वे सहमत हैं कि कोई ऐसा आक्रमण हो तो प्रत्येक देश व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्व-रक्षा के अधिकार का प्रयोग करते हुए, आक्रमण-ग्रस्त देश या देशों की सहायतार्थ अकेले अथवा अन्य देशों के साथ मिलकर ऐसी कार्यवाही करेंगे और आवश्यकतानुसार बल-प्रयोग का भी व्यवहार करेंगे ताकि उत्तर अटलाण्टिक प्रदेश में सुरक्षा की पुनर्स्थापना तथा रक्षा की जा सके। इस प्रकार के किसी भी सशस्त्र आक्रमण और उसका सामना करने के लिए की गई कार्यवाही की सूचना सुरक्षा परिषद् (Security Council) को अविलम्ब दे दी जाएगी। ऐसी कार्यवाही उस समय समाप्त कर दी जाएगी जब सुरक्षा परिषद्

अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा की पुनर्स्थापना के लिए आवश्यक कार्यवाही कर ले।

धारा ६ में कहा गया है कि यूरोप या उत्तरी अमरीका में स्थित सदस्य राष्ट्रों में से किसी के क्षेत्र पर किया गया आक्रमण, फ्रांस के अल्जीरिया के प्रदेशों पर किया गया आक्रमण, यूरोप में किसी देश की आधिपत्य सेना (Occupation Forces) पर किया गया आक्रमण, कर्क रेखा (Tropic of Cancer) से उत्तर की ओर के उत्तरी अटलाण्टिक प्रदेश में स्थित किसी भी सदस्य राष्ट्र के राज्याधीन द्वीपों पर किया गया आक्रमण या इस प्रदेश के किसी सदस्य राष्ट्र के समुद्री या हवाई यान पर किया गया आक्रमण, सशस्त्र आक्रमण समझा जाएगा।

धारा ७ में कहा गया है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य राष्ट्रों के संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अधीन कर्त्तव्यों तथा अधिकारों पर इस सन्धि का कोई प्रभाव नहीं है और सुरक्षा परिषद् के शान्ति और सुरक्षा को कायम रखने के प्रमुख कर्त्तव्य पर भी इसका कोई प्रभाव नहीं है।

धारा ८ में कहा गया है कि प्रत्येक सन्धि-कर्त्ता देश घोषणा करता है कि चालू अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियाँ जो उन्होंने आपस में या अन्य देशों के साथ की हैं इस सन्धि के प्रतिकूल नहीं हैं और सदस्य राष्ट्र भविष्य में भी कोई ऐसी सन्धि नहीं करेंगे जो इस सन्धि के प्रतिकूल हो।

धारा १० में कहा गया है कि वे सर्व-सम्मति से किसी भी यूरोपीय देश को इस सन्धि में सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित कर सकते हैं यदि वह देश इस सन्धि के सिद्धान्तों में सहायक हो सके और उत्तर अटलाण्टिक प्रदेश की सुरक्षा में योग दे सके।

धारा १२ में कहा गया है कि सन्धि के लागू होने के दस वर्ष पश्चात् या उसके पश्चात्, किसी भी सदस्य राष्ट्र की इच्छा पर सभी सदस्य राष्ट्र सन्धि पर पुनर्विचार के लिए एकत्र होंगे और उस अवसर पर उत्तर अटलाण्टिक प्रदेश को प्रभावित करने वाले साधनों और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा को स्थिर रखने के लिए विश्व-व्यापी अथवा प्रादेशिक कार्यवाही को ध्यान में रखेंगे।

धारा १३ के अनुसार सन्धि के लागू होने के बीस वर्ष पश्चात् कोई भी सदस्य राष्ट्र संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार को एक वर्ष की पूर्व सूचना देकर सन्धि की सदस्यता को त्याग सकता है। संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार ऐसी सूचना अन्य सदस्य राष्ट्रों को प्रसारित करेगी।

नाटो अपना कार्य सैनिक और असैनिक संस्थाओं के माध्यम से करती है। नाटो की सर्वोच्च नीति-निर्णायक संस्था है उत्तर अटलाण्टिक परिषद् (North Atlantic Council)। प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को इस परिषद् में प्रतिनिधित्व प्राप्त है। साधारणतः सदस्यों के प्रतिनिधि मण्डलों में विदेश मन्त्री, प्रतिरक्षा मन्त्री और वित्त मन्त्री नियुक्त किए जाते हैं। परिषद् की सहायतार्थ कई समितियाँ हैं जो

विशिष्ट समस्याओं पर काय करती हैं। समय-समय पर नियुक्त की गई तदर्थ समितियों (Ad Hoc Committees) के अतिरिक्त लगभग वीस स्थायी असैनिक समितियाँ भी हैं।

उत्तर अटलाण्टिक परिषद् और नाटो सरकारों की सहायता के लिए नाटो अन्तर्राष्ट्रीय सैन्याधिकरण (Nato International Staff) की रचना की गई है। इसके सदस्य योग्यता के आधार पर सदस्य राष्ट्रों में से चुने जाते हैं। यह परिषद् (Council) के लिए सचिवीय सेवा (Secretariat Service) भी करता है और नाटो सरकारों में विभिन्न प्रकार के सहयोग के लिए मिलन-कक्ष का काम करता है। नाटो अन्तर्राष्ट्रीय सैन्याधिकरण का प्रमुख महा-सचिव (Secretary General) है जो उत्तर अटलाण्टिक परिषद् (North Atlantic Council) की सभाओं में अध्यक्ष का स्थान ग्रहण करता है।

नाटो की सैनिक समिति (Military Committee) वास्तव में 'संयुक्त सैनिक प्रमुखों' (Joint Chiefs of Staff) की भाँति है। प्रत्येक सदस्य राष्ट्र का सेनापति (Chief of Staff) सैनिक समिति (Military Committee) में अपने देश का प्रतिनिधि होता है। यह सर्वोच्च सैनिक नेता कभी-कभी एकत्र होते हैं, इसलिए सैनिक समिति नाटो की सैनिक नीतियों (Military Policies) की मुख्य रूप-रेखा का ही निर्णय करती है और दैनिक कार्य स्थायी अधिकरण (Standing Group) और सैनिक प्रतिनिधि समिति (Military Representatives Committee) के सुपुर्द कर दिया गया है। स्थायी अधिकरण (Standing Group) नाटो की चालू सैनिक संस्थाओं का निर्देशन करता है। इसमें संयुक्त राज्य अमरीका, ब्रिटेन और फ्रांस का एक-एक प्रतिनिधि है। नाटो के सर्वोच्च निर्देशनालयों (Supreme Commands) के कार्य का भी यही निर्देशन करता है। सैनिक प्रतिनिधि समिति (Military Representatives Committee) में सशस्त्र सेना रखने वाले सभी सदस्य राष्ट्रों का एक-एक प्रतिनिधि सम्मिलित है। इस समिति का वाशिंगटन में निरन्तर अधिवेशन होता रहता है। यह सदस्य राष्ट्रों के सेनापतियों (Chiefs of Staff) से सम्पर्क स्थापित रखती है, साझे हित की सैनिक समस्याओं पर विचार करती है और प्रत्येक सदस्य राष्ट्र के सैनिक नेताओं के दृष्टिकोण प्रसारित करती है।

यह प्रश्न पूछा गया है कि संयुक्त राज्य अमरीका ने इस सन्धि के अन्तर्गत पश्चिमी यूरोप की सहायता करने का बीड़ा क्यों उठाया? अमरीकी कार्यवाही के पक्ष में कई तर्क प्रस्तुत किए गए हैं। कहा गया है कि यूरोप की स्वतन्त्रता और शक्ति स्वयं अमरीका की सुरक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण है। जब तक यूरोप के स्वतन्त्र राष्ट्र अपनी स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखेंगे तब तक संसार के स्वतन्त्र देश किसी भी आक्रमणकारी का सामना करने के लिए सशक्त रहेंगे। यदि साम्यवादी इन देशों पर अधिकार कर लें और इनके साधनों का शोषण करने लगें तो शक्ति-

संतुलन को आघात पहुँचेगा और अमरीका और शेष स्वतन्त्र देशों के लिए खतरा पैदा हो जाएगा।

कहा गया है कि स्वतन्त्र यूरोप की जनसंख्या ३३·५ करोड़ है जो संयुक्त राज्य अमरीका की जनसंख्या का दो गुना है। ये लोग संसार के सर्वाधिक दक्ष लोगों में हैं। मित्रों के रूप में ये लोग स्वतन्त्रता और शान्ति के लिए अत्यधिक मूल्यवान् हैं। यदि वे सोवियत अधिकार में आ जाएँ तो सोवियत संघ की आक्रमण करने की शक्ति बहुत ज्यादा हो जाएगी। इसके अतिरिक्त पश्चिमी यूरोप में संसार में सबसे अधिक विकसित औद्योगिक यन्त्र (Industrial Plant) हैं। उत्तरी अमरीका और पश्चिमी यूरोप की औद्योगिक उत्पादन की संयुक्त शक्ति साम्यवादी गुट से अधिक है। यदि पश्चिमी यूरोप साम्यवादियों के अधिकार में आ जाए तो उत्तरी अमरीका की स्थिति को खतरा हो जाएगा। अमरीका की सुरक्षा वैज्ञानिक और प्रावैधिक (technical) साधनों पर निर्भर है। यह सर्वोच्चता खनिज पदार्थों, कारखानों, अनुसन्धानशालाओं, वैज्ञानिक दक्षता, प्रविधिज्ञों (technicians) प्रशिक्षित सैनिक अधिकारी (trained military personnel), अड्डों, हवाई जहाजों और अन्य साधनों पर निर्भर है। अन्तिम गणना में अमरीका की साम्यवादियों पर सर्वोच्चता बनाए रखने की योग्यता इस बात पर निर्भर है कि पश्चिमी यूरोप को साम्यवादियों के चंगुल से सुरक्षित रखा जाए। संसार के अधिकांश देश बड़े पैमाने पर आधुनिक शस्त्रों का उत्पादन करने, उन्हें कार्य-योग्य रखने और प्रयोग करने में समर्थ नहीं हैं इसलिए पश्चिमी यूरोप आधारभूत सैनिक शक्ति का प्रमुख स्रोत है जो शान्ति की रक्षा करने की क्षमता रखता है। नाटो के यूरोपीय सदस्यों के पास ३,०००,००० सशस्त्र सैनिक हैं और लाखों अन्य सैनिक रिज़र्व में हैं। पर्याप्त प्रशिक्षण और शस्त्रों सहित ये सेना साम्यवादी सेनाओं से अधिक शक्तिशाली हैं। पश्चिमी यूरोप में कई उत्तम बन्दरगाहें हैं और सोवियत संघ के बहुत ही निकट हवाई अड्डे इसमें स्थित हैं। युद्ध की स्थिति में इन बन्दरगाहों और अड्डों की सहायता से संयुक्त राज्य अमरीका शत्रु का सामना और उस पर प्रत्याक्रमण कर सकेगा। इनके साम्यवादी अधिकार में होने से सोवियत पनडुब्बियाँ अन्धमहासागर में जहाजों को नष्ट कर देतीं और उत्तरी अमरीका के नगरों पर जबरदस्त हमला करने में भी उन्हें सहायता होती। राष्ट्रपति आइज़नहॉवर के मतानुसार, "संसार की शान्ति एवं सुरक्षा को बढ़ते हुए साम्यवादी खतरे के विरुद्ध अमरीकी प्रतिरक्षा सन्धियों में नाटो एक मूल और अनिवार्य अंग है।"

हार्टमैन (Hartmann) के मतानुसार, मार्शल योजना के अधीन पश्चिमी यूरोप को दी गई सहायता का यह युक्ति-संगत सम्पूरक (supplement) है। अमरीकी सरकार राज्य विभाग के अनुसार, "यदि लोगों को यह भय हो कि उनके देश पर विदेशी आक्रमण होगा और उनके परिश्रम के फल उनसे छीन लिए जाएँगे तो सफल आर्थिक पुनरुत्थान के लिए वे घोर परिश्रम और व्यक्तिगत बलिदान करने से झिझकते हैं।···यदि विश्व-व्यापी उन्नति को चलते रहना है तो सुरक्षा की भावना

को फिर से लाना होगा। असुरक्षा के मूल में सशस्त्र आक्रमण का खतरा ही है इसलिए भय का एकमात्र उपचार है शत्रु के सम्मुख स्वतन्त्र राष्ट्रों की सामूहिक कार्यवाही और अत्यधिक शक्ति जिसमें आर्थिक पुनरुत्थान और राजनीतिक स्थिरता भी निहित होगी।" नाटो से पश्चिमी यूरोप के आत्म-विश्वास को शक्ति मिलेगी। औपचारिक रूप से की गई एक परस्पर सहायता सन्धि से, जिसके अधीन अमरीका अन्य देशों से सहायता करने को वचन-बद्ध है, सोवियत संघ के पश्चिम-गामी विकास को रोका जा सकता है। पश्चिमी यूरोप के प्रति अमरीकी नीति के विषय में कुछ भी अस्पष्ट नहीं रह गया है इसलिए सोवियत नेतागण अटलाण्टिक की ओर सैनिक अभियान नहीं भेजेंगे। इस विचार को राष्ट्रपति ट्रूमैन ने इन शब्दों में व्यक्त किया "यदि हम पहले से ही यह स्पष्ट कर सकें कि हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरा पहुँचाने वाले सशस्त्र आक्रमण का सामना अत्यधिक शक्ति से किया जाएगा, तो सम्भवतः वह आक्रमण कभी होगा ही नहीं।" सीनेटर वैण्डेनबर्ग (Senator Vandenberg) के मतानुसार, "मेरे विचार में, अटलाण्टिक परिवार पर सशस्त्र आक्रमण होने की स्थिति में राष्ट्रों के हितों की एकता को मान्यता देना...ही तृतीय विश्व युद्ध के विरुद्ध एक बहुत बड़ा आश्वासन होगा, क्योंकि मेरे विचार में यदि कैसर (Kaiser) को प्रथम विश्व युद्ध में तथा फ्यूहरर (Fuehrer) को द्वितीय विश्व युद्ध में यह सूचना होती कि हमारे साथ सम्बन्धित किसी मित्र देश पर सशस्त्र आक्रमण को हम इस योग्य समझेंगे कि हम भी साझी प्रतिरक्षा में योग दें, तो वे दोनों युद्ध आरम्भ ही न होते।" इस विचार के अनुसार, संयुक्त राज्य अमरीका से एक प्रमुख युद्ध मोल लेने को तत्पर न होने के कारण सोवियत संघ अपने घेरे (containment) को स्वीकार कर लेगा, अटलाण्टिक पहुँचने की आशाएँ छोड़ देगा और एक अधिक सहयोगी मुद्रा बना लेगा।

नाटो के समर्थक यह भी कहते हैं कि इसकी रचना से संयुक्त राज्य अमरीका को पर्याप्त सहायता मिलेगी। राज्य विभाग द्वारा प्रसारित एक विज्ञप्ति के अनुसार, "अटलाण्टिक सन्धि उत्तर अटलाण्टिक प्रदेश के देशों की सामूहिक आत्म-रक्षा का एक साधन है, जो उनमें से किसी एक पर सशस्त्र आक्रमण होने पर संगठित होने के साथ-साथ चार्टर के अधीन अपने कर्तव्य की पुष्टि करते हैं कि वे किसी भी देश के साथ झगड़ा होने की स्थिति में उसे केवल शान्तिमय उपायों से ही सुलझाएँगे। संयुक्त राष्ट्र चार्टर की धारा ५१ द्वारा मान्य आत्म-रक्षा के अधिकार के अधीन राष्ट्रों की प्रतिरक्षा के उपायों का यह समन्वय ही है। इसलिए इसकी रचना संयुक्त राष्ट्र संघ की रूप रेखा के अनुरूप ही की गई है और चार्टर के अनुसार शान्ति और सुरक्षा को स्थिर रखने के लिए क्रियात्मक उपाय करने का ही एक ढङ्ग है।" संक्षेप में, सरकारी मत यह है कि नाटो से पश्चिमी यूरोप अधिक शक्तिशाली होगा, आत्म-विश्वास की उन्नति होगी, रूस का पश्चिम-गामी विकास रुकेगा और संयुक्त राष्ट्रों के भविष्यगर्भी विकास के लिए सहयोग का शक्तिशाली स्रोत होगा।

नाटो की सफलताएँ (Achievements of NATO)—नाटो के समर्थक पिछले दस वर्ष में इसकी अनेक सफलताओं का वर्णन करते हैं। वे इस बात पर जोर देते हैं कि नाटो की उत्पत्ति के पश्चात् यूरोप में कोई युद्ध नहीं हुआ है। यह तथ्य एक शान्ति की व्यवस्था के रूप में नाटो की महत्ता का द्योतक है। १६४६ के पश्चात् साम्यवादियों को यूरोप भर में कहीं भी सफलता नहीं मिली। प्रत्येक नाटो देश में साम्यवादियों की संख्या तथा आन्तरिक राजनीति में उनका प्रभाव क्रमशः घटता ही जा रहा है। नाटो की स्थल सेनाएँ १६४६ में १२ डिविज़नों से बढ़ कर सुसज्जित १०० डिविज़न हो गई हैं। ये सारे डिविज़न या तो क्षेत्र में हैं या सुसज्जित सेना के रूप में हैं। नाटो की वायु शक्ति लगभग ४०० वायुयानों से बढ़ कर १६५५ में ६,००० वायुयान हो गई है। नाटो की समुद्री शक्ति भी बहुत बढ़ गई है। १६४६ के पश्चात् सेना की प्रभावशीलता में भी बड़ी वृद्धि हुई है। यह निरन्तर प्रशिक्षण और शस्त्रों की उत्तमता का परिणाम है। यूरोप का युद्ध सामग्री का उत्पादन १६४६ से चार गुना बढ़ गया है। व्यवस्था को अधिक कुशल बना दिया गया है। परोक्ष रूप से नाटो से यूरोपीय राष्ट्रों में अधिक क्रियात्मक एकता बढ़ गई है और परस्पर वैमनस्य और प्रतिद्वन्द्विता समाप्त हो गई है, जिससे पहले इनकी शक्ति क्षीण होती रहती थी। अक्टूबर, १६५४ के पेरिस समझौतों द्वारा पश्चिमी जर्मनी की सर्वाधिकार सम्पन्नता लौटा दी गई, एक पश्चिमी यूरोपियन संघ (Western European Union) की स्थापना हुई और पश्चिमी जर्मनी को नाटो और पश्चिमी यूरोपियन संघ द्वारा पश्चिम के साथ दृढ़ता से बांध दिया। नाटो ने यूरोप के लोगों में आत्म-विश्वास और चरित्र का पुनर्निर्माण किया है।

आलोचना (Criticism)—नाटो के आलोचकों का मत है कि नाटो से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध सुधारने की अपेक्षा बिगड़ गए हैं। नाटो से सोवियत नेताओं को पर्याप्त प्रमाण मिल जाता है कि अमरीका सोवियत संघ को समाप्त करने के लिए संसार भर के देशों को यथाशक्ति इकट्ठा रह रहा है। एक रूसी पत्रकार के शब्दों में "उत्तरी अटलाण्टिक सन्धि व्यवस्था और इसकी तैयारी की परिस्थितियों से स्पष्ट पता लगता है कि ऐंग्लो-अमरीकन गुट संसार पर अधिकार जमाना चाहता है। यह स्पष्ट है कि यह सन्धि अधिकाधिक देशों की बागडोर अमरीका और ब्रिटेन के हाथों में पकड़ा देना चाहती है तथा इसका उद्देश्य इन देशों को स्वतन्त्र आन्तरिक और विदेश नीति के अनुसरण के अधिकार से वंचित करके, इन देशों को ऐंग्लो-अमरीकन साम्राज्य की स्थापना के लिए कठपुतली बनाकर प्रयोग करना है।"

हार्टमैन (Hartmann) के मतानुसार नाटो की स्थापना से संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रभाव नगण्य हो जाएगा। यदि नाटो संसार भर के देशों के प्रभाव को अमरीका और सोवियत संघ के क्षेत्रों में बाँट देगा तो संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रगति का कोई अवसर नहीं रहेगा। इससे संसार का ध्यान राष्ट्र संघ से इन गुटबन्दियों की ओर चला जाना आवश्यक है। इससे राष्ट्र संघ की महासभा (General

Assembly) में गुटबन्दी के मतदान की प्रथा की प्रगति होगी। यह भी हो सकता है कि इनके कारण सोवियत संघ संयुक्त राष्ट्र संघ को ही छोड़ दे। रूसियों के अनुसार नाटो "संयुक्त राष्ट्र संघ के नीचे रखा बम का गोला है।"

नाटो से सोवियत प्रचारकों (Propagandists) को अमरीका के विरुद्ध और भी कटु प्रचार करने का अवसर प्राप्त होता है। यूरोप के वे देश जो सोवियत गुट में नहीं हैं और नाटो के भी सदस्य नहीं हैं, बड़ी कठिन परिस्थिति में हैं। नाटो के कारण सोवियत संघ पूर्वी जर्मनी और फ़िनलैण्ड पर अपना नियन्त्रण कड़ा कर देगा। इसके कारण पश्चिमी यूरोप का एक तीसरा गुट बन सकता है। संसार को दो भागों में बाँटने की अपेक्षा बहुत से लोगों का विचार है कि सोवियत संघ और नाटो के प्रभाव से यह तीसरा गुट अधिक अच्छा है। नाटो सम्पूर्ण विनाशकारी युद्ध के लिए एक नया कदम है। इसके कारण अमरीका का ध्यान यूरोप पर ही लगा रह सकता है और दूसरी ओर सोवियत संघ संसार के अन्य देशों पर अपना प्रभाव बढ़ा सकता है।

नाटो यूरोप को आप्लावित करने वाली बाढ़ के विरुद्ध आपत्तिकालीन बाँध का काम दे या न दे; इस दिशा में कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु इसके अस्तित्व के कारण बाढ़ का प्रभाव दूसरी ओर अवश्य जा सकता है। सोवियत संघ मध्य और सुदूरपूर्व में अपना प्रभाव बढ़ा सकता है।

यद्यपि नाटो की भूमिका में कहा गया है कि इसकी स्थापना स्वतन्त्रता, सार्वजनिक विरासत तथा प्रजातन्त्र, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और कानून द्वारा स्थापित शासन के सिद्धान्तों पर आधारित संस्कृति और सभ्यता की रक्षा के लिए की गई है। तथापि पुर्तगाल जैसे स्वेच्छाचारी देश की सदस्यता इस बात की द्योतक है कि सामरिक महत्त्व (strategic importance) के कारण आदर्शों का बलिदान कर दिया गया है। सोवियत संघ से युद्ध करने की तैयारी, प्रजातन्त्र और स्वतन्त्रता से अधिक प्रिय है।

सन्धि में प्रयुक्त वाक्यांश 'अटलाण्टिक क्षेत्र' भ्रम में डालने वाला है। सामरिक (strategic) कारणों से उत्तरी अटलाण्टिक क्षेत्र के भौगोलिक महत्त्व को भुला दिया गया है। यह तुर्की, यूनान और इटली को सम्मिलित करने से सिद्ध हो जाता है।

एक सोवियत प्रतिनिधि के शब्दों में, "नाटो की उत्पत्ति से हमारे समय तक इसकी सारी कार्यवाही स्पष्टतः प्रदर्शित करती है कि यह एक सीमित सैनिक संस्था है जो शान्ति की स्थापना की घोर विरोधी है। यह अपने सदस्यों को शस्त्रीकरण की दौड़ में फँसाए हुए है। शीतयुद्ध को दहका कर अग्नियुद्ध बना देना चाहती है और देशों में शान्तिप्रिय सहयोग को नष्ट-भ्रष्ट कर देना चाहती है।

"नाटो के युद्ध करने वाले गुट का निर्माण, संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों और उद्देश्यों के विरुद्ध लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किया गया है। इस गुट की

गतिविधियों ने संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्य को बड़ी हानि पहुँचाई है और पहुँचा रहा है। सर्वप्रथम, नाटो की स्थापना के कारण नाटो सदस्य-राष्ट्रों में शान्तिकाल में अभूतपूर्व गम्भीर शस्त्रीकरण की होड़ लगी है। प्रकाशित आँकड़ों के आधार पर सदस्य राष्ट्रों ने लगभग ५,०००,०००,००० डालर पहले ९ वर्षों में ही खर्च कर दिए हैं।

"पिछले १० वर्ष में यह अनुभव हुआ है कि नाटो के सैनिक पदाधिकारियों के प्रत्येक सम्मेलन की इस संस्था की परिषद् की बैठकों में सर्वदा मुख्य माँग यह होती है कि विनाश के साधन अधिकाधिक बनाए जाएँ, नाटो को और अधिक डिविज़न सेना दी जाए, अधिकाधिक सैनिक अड्डे बनाए जाएँ, सदस्य राष्ट्रों को अपने आय-व्यय लेखे में युद्ध-सामग्री के लिए अधिक धन देना चाहिए इत्यादि...।

"थोड़े समय से पश्चिम के राजनीतिक नेता बहुधा कहते सुने जाते हैं कि नाटो अब विशुद्ध सैनिक गुट नहीं रहा है और क्रमशः सदस्य राष्ट्रों में राजनीतिक सहयोग का कार्य कर रहा है। इस प्रकार के भाषण जनसाधारण की सम्मति को भ्रम में डालने के लिए किए जाते हैं, क्योंकि वे इस गुट की युद्ध की तैयारियों को देखकर भयभीत हैं।

"वास्तव में नाटो अधिकाधिक एक विश्व प्रहरी का कार्य कर रहा है जिसका कार्य उपनिवेशों और दास देशों में राष्ट्रीय आन्दोलनों को कुचलना है। लगभग दो वर्ष पहले संसार ने देखा कि इस सैनिक गुट द्वारा बनाए हुए सैनिक अड्डों के जालों का प्रयोग नाटो के दो प्रमुख सदस्यों—अमरीका और ब्रिटेन—ने दो छोटे-छोटे अरब देशों के विरुद्ध किया था। किन्तु नाटो की वास्तविकता का प्रदर्शन करने के लिए केवल यह अकेला उदाहरण नहीं है—अन्य भी अनेक उदाहरण हैं।

"अभी थोड़े समय से नाटो की आर्थिक कार्यवाहियों के विषय के कहने की एक परिपाटी बन गई है। उदाहरणतः कहा जाता है कि आगामी बैठक में इस प्रकार के प्रश्नों पर जैसे कि ६ पश्चिमी नाटो देशों का सामूहिक मण्डी (Common Market) और पश्चिमी यूरोप में 'स्वतन्त्र व्यापार क्षेत्र' (Free Trade Area) के निर्माण पर विचार होगा। नाटो में आर्थिक समस्याओं पर हुए विचार-विमर्श की सूचना को देखने से प्रतीत होगा कि नाटो के नेताओं को व्यापार, उद्योग और जनसाधारण के जीवन स्तर को उठाने की बड़ी चिन्ता है। किन्तु वास्तव में तथ्य यह है कि पश्चिमी यूरोप के देशों को यूरोप के अन्य देशों से पृथक् कर देने का परिणाम यूरोप के नाटो देशों का क्रमशः अमरीका पर निर्भर होना हो जाएगा। यूरोप के अन्य देशों से अलग होकर और शस्त्रीकरण की दौड़ को पूरा करने के लिए अपनी आर्थिक व्यवस्था को ठीक करने से यूरोप के नाटो देश अपनी आर्थिक स्थिति को व्यवस्थित नहीं कर सकेंगे अपितु बिना भेद-भाव के सारे यूरोप के आधार पर अन्य देशों से अपने आर्थिक सम्बन्ध बना कर, अपनी स्थिति सुधार सकेंगे। किन्तु नाटो के नेता पश्चिमी यूरोप के देशों को इस दिशा में अग्रसर होने से रोक रहे हैं।"

यूरोपीय सुरक्षा संस्था (European Defence Community)—२७ मई, १९५२ को यूरोपीय सुरक्षा संस्था की स्थापना के लिए पेरिस में एक सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। इसमें सामूहिक राजनीतिक व्यवस्था, सशस्त्र सेना आय-व्यय लेखा और शस्त्रीकरण कार्यक्रम की व्यवस्था थी। सामूहिक सेना का नाम यूरोपीय सुरक्षा सेना (European Defence Force) रखा गया और इस सेना का प्रबन्ध करने के लिए और संस्था के नियन्त्रण के लिए व्यवस्था की गई। यूरोप की कोयला और लोहा संस्था सभा (The Assembly of Coal & Steel Community) ही इस संस्था का कार्य करे—इस प्रकार की व्यवस्था की गई। केवल इतना अन्तर था कि जब यूरोपीय सुरक्षा संस्था के मामलों पर विचार होता, उस समय इटली, फ्रांस और पश्चिमी जर्मनी के ३-३ विशेष प्रतिनिधि अधिवेशन में सम्मिलित कर लिए जाते थे। फ्रांस, इटली और पश्चिमी जर्मनी, प्रत्येक को १८ प्रतिनिधि, बेल्जियम और नीदरलैंड प्रत्येक को १० प्रतिनिधि तथा लक्सेमबर्ग को चार प्रतिनिधि भेजने का अधिकार था।

नीदरलैण्ड्ज़ और पश्चिमी जर्मनी ने सबसे पहले इस सन्धि को स्वीकार किया। किन्तु फ्रांस ने इसे मानने से इन्कार कर दिया। परिणामतः २८ सितम्बर से ३ अक्टूबर, १९५४ तक समझौता करने के लिए लन्दन में एक सम्मेलन हुआ। सम्मेलन ने एक व्यवस्था बनाई जिसके अनुसार पश्चिम की एकता का कार्य १९४८ की ब्रुसेल्स सन्धि के विधान के अनुसार किए जाने का निर्णय हुआ। ब्रिटेन के अतिरिक्त पश्चिमी यूरोपीय संघ (Western European Union) के वही सदस्य थे जो यूरोपीय सुरक्षा संस्था में थे। पश्चिमी यूरोपीय संघ को बड़े विशद अधिकार दिए गए। इसे अनेक महत्त्वपूर्ण मामलों पर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रणों के स्थान पर, निर्णय करने का अधिकार भी दिया गया। यह भी निर्णय हुआ कि पश्चिमी जर्मनी को सर्वाधिकार सम्पन्नता प्रदान कर दी जाए। पश्चिमी जर्मनी को नाटो का सदस्य बनाने की भी व्यवस्था की गई जिससे वह पश्चिम की सुरक्षा में हाथ बँटा सके।

शीत युद्ध यूरोप तक ही सीमित नहीं था। प्रभुत्व प्राप्त करने का संघर्ष निकट और मध्यपूर्व में भी था। इस क्षेत्र में बहुमूल्य तेल के क्षेत्र तथा महत्त्वपूर्ण स्थल और जल यातायात व्यवस्था भी है। विश्व भर में इस क्षेत्र से बढ़कर सामरिक महत्त्व का अन्य कोई क्षेत्र नहीं है। इसलिए आश्चर्य नहीं है कि दोनों गुट इस क्षेत्र पर अपना प्रभाव जमाने के लिए संघर्ष में लगे हैं।

ईरान (Iran)—१९४५ में सोवियत संघ ने द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान में स्थित सेनाओं को ईरान से हटाने से इन्कार कर दिया। उसने अज़रबेजान और कुर्द के प्रदेशों में शासन व्यवस्था बनाने में सहायता भी दी क्योंकि यहाँ की जनता सोवियत संघ तथा इसकी नीति की समर्थक थी। ईरान इस मामले को संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्मुख ले गया। ईरान को एंग्लो-अमरीकन गुट की सहायता प्राप्त होने के कारण, सोवियत संघ को दिसम्बर, १९४६ में अपनी सेनाएँ हटाने के लिए विवश

होना पड़ा। ईरान में अन्य मार्गों से सोवियत दवाव पड़ता रहा और इसलिए १९५० में अमरीका ने ईरान से सन्धि की जिसके अनुसार अमरीका ने साम्यवाद को रोकने के लिए हथियार देने का आश्वासन दिया।

एन्जूज पैक्ट, १९५१ (Anzus Pact)—आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और संयुक्त राज्य की सरकारों ने १९५१ में एक संधि प्रशान्त क्षेत्र में सामहिक सुरक्षा और शान्ति बनाए रखने के अपने प्रयासों को समन्वित करने के उद्देश्य से की। पैक्ट की धारा १ के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को कोई देश जिसमें वह ग्रस्त हो शान्तिपूर्ण ढंग से इस प्रकार सुलझाने को वचनवद्ध हैं जिससे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को खतरा उत्पन्न न हो। उन्होंने यह भी वचन दिया कि वे अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में धमकी देने या शक्ति का प्रयोग इस प्रकार से नहीं करेंगे जो संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों के विपरीत हो। धारा २ के अनुसार इस संधि के वन्धनों को प्रभावी रूप से प्राप्त करने के हेतु देश अलग-अलग एवं संयुक्त रूप से निरन्तर प्रभावी आत्म साहाय्य एवं पारस्परिक सहायता के माध्यम से सशस्त्र आक्रमण का सामना करने की अपनी निजी एवं सामूहिक क्षमता (शक्ति) को वनाए रखेंगे और वढ़ाते रहेंगे। धारा ३ के अनुसार देश एक दूसरे से विचार विनिमय करेंगे जबकि प्रशान्त क्षेत्र में उनमें से किसी एक के विचार में देशों में से किसी एक देश की क्षेत्रीय अखंडता, राजनीतिक स्वतन्त्रता या सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो। धारा ४ के अनुसार प्रत्येक देश ने यह माना कि प्रशान्त क्षेत्र में किसी भी देश पर सशस्त्र आक्रमण उसकी अपनी शान्ति एवं सुरक्षा के लिए खतरा होगा। प्रत्येक देश ने घोषणा की कि वह सामान्य खतरे का सामना अपनी संवैधानिक प्रक्रिया के अनुसार करेगा। सशस्त्र आक्रमण की सुरक्षा परिषद् को आवश्यक कार्यवाही हेतु तुरन्त रिपोर्ट की जायेगी। धारा ५ के अनुसार देशों में से किसी एक के राजधानी-क्षेत्र या प्रशान्त में उसके अधिकार-क्षेत्र के अधीन किसी द्वीप क्षेत्र या प्रशान्त में उसकी सशस्त्र सेनाओं, सार्वजनिक पोतों या वायुयानों पर सशस्त्र आक्रमण को सशस्त्र आक्रमण समझा जायेगा। धारा ६ के अनुसार यह संधि संयुक्तराष्ट्र के चार्टर के अधीन देशों के अधिकारों और दायित्वों को किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं करती और न इस प्रकार से उसकी व्याख्या की जायेगी और न अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा वनाये रखने के संयुक्त राष्ट्र के दायित्व को प्रभावित करती है। धारा ७ के अनुसार इस संधि को लागू या प्रभावी करने के उपाय सोचने के लिए देश अपने-अपने विदेश मंत्रियों या उनके प्रतिनिधियों की एक परिषद् (Council) नियुक्त करेंगे। परिषद् की रचना इस प्रकार की जानी थी कि उसकी किसी भी समय बैठक हो सके। धारा १० के अनुसार यह संधि असीमित काल तक लागू रहनी थी, कोई भी देश एक वर्ष का नोटिस देकर समझौते से हट सकता था।

सीटो या मनीला संधि, १९५४ (SEATO or Manila Pact)—१९४९ के पश्चात् एशिया और संसार की राजनीति में साम्यवादी चीन के पदार्पण करने पर दक्षिणपूर्वी एशिया की सुरक्षा के लिए योजनाएँ बनाना प्रारम्भ हो गया था। फिलीपाइन्स, स्याम और दक्षिणी कोरिया ने जो कि अपने को साम्यवादियों से आतंकित समझते थे, एक सुरक्षा संगठन स्थापित करने के लिए समय-समय पर सुझाव दिये। १९५१

में ग्रेट ब्रिटेन, अमरीका और फ्रांस के दूरपूर्व के सैनिक-अधिकारियों का एक सम्मेलन हुआ। उस अवसर पर फ्रांस द्वारा यह प्रस्ताव रखा गया कि इण्डो-चीन में उसका संघर्ष दक्षिण-पूर्वी एशिया को साम्यवाद से बचाने का एक वास्तविक युद्ध है और इसमें उसकी सहायता करना दूसरे राज्यों का कर्त्तव्य है। कोरिया के युद्ध छिड़ने और सोवियत रूस और लाल चीन द्वारा उत्तरी कोरिया को सहायता प्रदान करने पर एन्जूज (Anzus) शक्तियाँ भयातुर हो गईं। चीन सरकार ने डॉ० हो ची चिन्ह की सहायता की। चीनियों द्वारा प्रशान्त क्षेत्र की ओर घुसने की सम्भावना थी। सिंगापुर में जो बात-चीत शुरू हुई थी वह १९५२ में वाशिंगटन में जारी रही और कनाडा, न्यूजीलैंड और आस्ट्रेलिया ने भी विचार-विनिमय में भाग लिया। किन्तु कोई निश्चित कदम नहीं उठाया गया। १९५३ में प्रधान मन्त्री चर्चिल ने अमरीका सरकार को सुझाव दिया कि नाटो (NATO) के सिद्धान्तों को दक्षिण-पूर्वी एशिया में भी लागू किया जाय। परन्तु इसका कोई आशा-जनक उत्तर नहीं मिला।

अप्रैल १९५४ में अमरीका के सैक्रेटरी ऑफ स्टेट श्री डल्लस लन्दन गए और उन्होंने अमरीकी सरकार से दक्षिण-पूर्वी एशिया और प्रशान्त के निकटवर्त्ती क्षेत्रों में एक सामूहिक संगठन प्रणाली स्थापित करने की सम्भावना पर विचार करने के लिए कहा। श्री डल्लस कोलम्बो शक्तियों के बिना ही सुरक्षा संगठन स्थापित करना चाहते थे परन्तु सर एन्थोनी ईडन ने उनको सम्मिलित करने के लिए आग्रह किया कि, "उनकी सूझ-बूझ और सहायता के बिना दक्षिण-पूर्वी एशिया का स्थायी सुरक्षा संगठन पूर्ण रूप से प्रभाव-शाली नहीं बन सकता था।" अमरीकी सरकार यह चाहती थी कि अंग्रेजी सरकार सैनिक सन्धि पर तुरन्त हस्ताक्षर करे और इसके विस्तृत विवरण पर बाद में विचार-विमर्श होता रहे। अमरीकी सरकार का ध्येय जनेवा सम्मेलन में जाने से पूर्व अपने को शक्ति-शाली बनाना था परन्तु अंग्रेज सरकार इसके लिए तैयार न थी। इण्डो चीन पर जनेवा समझौते के बाद कुछ सप्ताहों में ही ६ सितम्बर, १९५४ को फिलीपाइन्स में एक सम्मेलन बुलाया गया। अमरीका, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, थाइलैंड और फिलिपाइन्स को निमन्त्रण भेजे गये। कोलम्बो शक्तियों को बुलाने का कार्य सर एन्थोनी ईडन पर छोड़ दिया गया। उन सब को निमंत्रण भेजे गए परन्तु पाकिस्तान के सिवाय सभी ने सम्मेलन में भाग लेने से इन्कार कर दिया। भारत द्वारा निमन्त्रण अस्वीकार करने पर पाकिस्तान ने सम्मेलन में भाग लेना स्वीकार कर लिया।

८ सितम्बर, १९५४ को संयुक्त राज्य, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, पाकिस्तान, थाइलैण्ड और फिलिपाइन्स ने एक संधि पर हस्ताक्षर किये जो 'दक्षिण-पूर्वी एशिया संधि संगठन' (सीटो) या दक्षिण-पूर्वी एशिया की सामूहिक सुरक्षा-संधि, मनीला के नाम से प्रसिद्ध है। समझौता करने वाले देशों ने अपने सदस्यों की सार्वभौम समानता को मान्यता दी, उन्होंने संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में प्रस्थापित उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों में अपना विश्वास तथा समस्त सरकारों तथा लोगों के साथ शान्ति से रहने की अपनी इच्छा को दोहराया। उन्होंने लोगों के समान अधिकारों तथा आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को फिर से स्थिर किया। उन्होंने घोषणा की कि वे प्रत्येक संभव उपाय द्वारा उन समस्त देशों

की स्वतन्त्रता को प्राप्त करने तथा स्व-शासन अथवा स्वराज्य की उन्नति के लिए हार्दिक यत्न करेंगे जिनकी जनता ने इसकी कामना की हो और उसके दायित्वों को वहन करने में समर्थ है।

उन्होंने सार्वजनिक एवं औपचारिक रूप से अपनी एकता की भावना की घोषणा की ताकि किसी संभाव्य आक्रामक को यह परिबोध हो जाए कि क्षेत्र के देश संगठित हैं। यह भी घोषणा की गई कि समझौता करने वाले देश शान्ति एवं सुरक्षा बनाए रखने के लिए सामूहिक सुरक्षा के हेतु अपने प्रयासों को समन्वित करने के इच्छुक थे।

समझौता करने वाले देशों ने उस अन्तर्राष्ट्रीय झगड़े को जिससे वे सम्बद्ध हों, शान्तिपूर्ण तरीके से इस रीति से हल करने का निर्णय किया जिससे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा और न्याय को भय उत्पन्न न हो। उन्होंने अपने अन्तर्राष्ट्रीय संबन्धों में शक्ति की धमकी या शक्ति का प्रयोग इस प्रकार से न करने का वचन दिया जो संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्य से मेल न खाता हो। संधि के उद्देश्य को अधिक प्रभावी रूप से प्राप्त करने के लिए यह तय पाया कि पक्ष पृथक्तः एवं संयुक्त रूप से, निरन्तर एवं प्रभावी आत्म-साहाय्य एवं पारस्परिक सहायता द्वारा, सशस्त्र आक्रमण को रोकने एवं अपनी क्षेत्रीय अखंडता एवं राजनीतिक दृढ़ता के विरुद्ध बाहर से तोड़-फोड़ की कार्यवाही का प्रतिकार करने की अपनी निजी एवं सामूहिक क्षमता को बनाए रखेंगे एवं विकसित करेंगे। देशों ने अपने स्वतन्त्र संस्थानों को शक्तिशाली बनाने तथा आर्थिक लक्ष्यों को आगे विकसित करने के लिए एक दूसरे से सहयोग करने का निर्णय किया। इसमें तकनीकी सहायता भी शामिल है जिसका उद्देश्य आर्थिक प्रगति एवं सामाजिक कल्याण दोनों को बढ़ाना तथा इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सरकारों के निजी एवं सामूहिक प्रयासों को गति देना हो। प्रत्येक देश ने यह माना कि संधि क्षेत्र में, देशों में से किसी एक के विरुद्ध या किसी राज्य या क्षेत्र के विरुद्ध, जिसे देश सर्वसम्मत समझौते द्वारा बाद में घोषित करे, सशस्त्र आक्रमण द्वारा आक्रमण उसकी अपनी शान्ति एवं सुरक्षा को खतरा होगा। प्रत्येक देश राजी हुआ कि उस समय वह अपनी संवैधानिक प्रक्रिया के अनुसार सामान्य खतरे का सामना करने के लिए कार्यवाही करेगा। उठाये जाने वाले पगों की सूचना तुरन्त ही संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् को देनी थी।

यदि किसी देश के विचार में संधि क्षेत्र में किसी देश की पवित्रता या क्षेत्र की अखंडता, या प्रभुसत्ता या राजनीतिक स्वतन्त्रता या किसी अन्य राज्य या क्षेत्र को, जिस पर संधि के उपबन्ध समय-समय पर लागू हों, सशस्त्र आक्रमण के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार से धमकी दी गई हो या किसी अन्य तथ्य या स्थिति द्वारा प्रभावित किया गया हो जिससे क्षेत्र की शान्ति को खतरा हो तो देशों का कर्त्तव्य तुरन्त ही सामूहिक सुरक्षा के लिए उठाये जाने वाले पगों के बारे में सहमत होने के लिए पारस्परिक विचार-विनिमय करना था। यह समझा गया था कि सम्बन्धित सरकार के निमन्त्रण या स्वीकृति के बिना देश के क्षेत्र में कोई कार्यवाही नहीं की जानी थी। एक परिषद् के निर्माण की व्यवस्था थी जिसमें कि संधि करने वाले प्रत्येक देश को प्रतिनिधित्व दिया जाना था। परिषद् को संधि को लागू करने से सम्बन्धित मामले पर विचार करना था। इसमें सैन्य अथवा

किसी अन्य प्रकार की योजना के विषय में भी परामर्श करने की व्यवस्था थी जैसी कि संधि-क्षेत्र की स्थिति समय-समय पर मांग करे। परिषद् का गठन इस प्रकार किया जाना था कि उनकी बैठक किसी भी समय की जा सके। यह घोषणा की गई थी कि संधि संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अधीन देशों में से किसी के भी अधिकारों एवं दायित्वों या अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा बनाए रखने के निमित्त संयुक्त राष्ट्र के उत्तरदायित्व को प्रभावित नहीं करती। प्रत्येक पक्ष ने घोषणा की कि उस देश और किसी अन्य देश के मध्य उस समय लागू कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय समझौता इस संधि के उपबन्धों के विरुद्ध नहीं है। प्रत्येक देश ने कोई ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय समझौता न करने का वचन दिया जो इस संधि के उपबन्धों के विरुद्ध हो। पक्षों की सर्वसम्मत सहमति से किसी अन्य उस राज्य को इस संधि को स्वीकार करने के लिए आमन्त्रित किया जा सकता था जो इस संधि के उद्देश्य को बढ़ाने की स्थिति में हो और क्षेत्र की सुरक्षा में योगदान दे सके। संधि में उल्लिखित संधि-क्षेत्र दक्षिण-पूर्वी एशिया का सामान्य क्षेत्र था जिसमें एशिया के देशों का संपूर्ण भूखण्ड और दक्षिण-पश्चिमी प्रशान्त का सामान्य क्षेत्र शामिल था। लेकिन २१° उत्तरी अक्षांश के उत्तर का प्रशान्त क्षेत्र इसमें शामिल नहीं था। तो भी देशों को किसी भी क्षेत्र को संधि क्षेत्र में शामिल करने की छूट थी। संधि अनन्त काल तक लागू रहनी थी लेकिन कोई भी देश एक मास का नोटिस देकर सदस्यता से पृथक् हो सकता था।

संधि पर हस्ताक्षर करते समय अमरीकी प्रतिनिधि की ओर से यह स्पष्ट कर दिया गया था कि इसका मुख्य लक्ष्य साम्यवादी आक्रमण को रोकना था। कहीं और से आक्रमण होने की स्थिति में संयुक्त राज्य धारा ४ के उपबन्धों के अधीन अन्य देशों से परामर्श करेगा। संधि के संलेख में यह घोषित किया गया था कि संधि करने वाले देशों ने सर्वसम्मति से कम्बोडिया, लाओस और वियतनाम देश के अधिकार-क्षेत्र के अधीन स्वतन्त्र क्षेत्र के देशों को मनोनीत किया।

सीटो की संधि लगभग २१ वर्ष रही। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अमरीका ने बहुत वर्ष साम्यवादी शक्तियों को इस इलाके में रोके रखा और आगे बढ़ने न दिया परन्तु अप्रैल १९७५ के अन्त में साम्यवादियों की जीत हो गई और अमरीका के साथी हार गये और उसी वर्ष सीटो की संधि भी भंग कर दी गई।

बगदाद पैक्ट अथवा सेन्टो, १९५५ (The Baghdad Pact or CENTO)—इस पैक्ट का प्रारंभ २४ फरवरी, १९५५ को हुआ जब ईराक और तुर्की के प्रधान मंत्रियों ने एक समझौता कर अपनी सुरक्षा एवं बचाव के लिए आपस में सहयोग करने की प्रतिज्ञा की। इस पैक्ट की धारा ५ इसकी सदस्यता के द्वार उन देशों के लिए खुला छोड़ती है जो, "इस क्षेत्र (मध्य पूर्व) की सुरक्षा एवं शान्ति से सक्रिय रूप में (actively) संबन्धित हो और ग्रेट ब्रिटेन ने २४ अप्रैल, १९५५ को यह समझौता स्वीकार किया। उसने समझौते की पारस्परिक बचाव के लिए तुर्की और ईराक के मिलन का स्वत: स्फूर्त प्रस्ताव कहकर सराहना की। इसी प्रकार पाकिस्तान ने १ जुलाई,

१९५५ और ईरान ने ३ नवम्बर, १९५५ को समझौते को स्वीकार किया। संयुक्त राज्य इसका पूरा सदस्य नहीं था लेकिन उसने प्रारंभ से ही उसके प्रति अपनी रुचि एवं सहानुभूति प्रकट की। पैक्ट के अधीन स्थापित वह अनेक समितियों का सदस्य था। उसके राज-मर्मज्ञों ने समझौते के उद्देश्यों एवं आदर्शों की प्रशंसा की। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया संयुक्त राज्य पैक्ट के अधिकाधिक समीप आने लगा। विशेष रूप से ईराक में क्रान्ति के पश्चात् पैक्ट इतना कमजोर हो गया कि संयुक्त राज्य को इसमें पूर्ण सदस्य के रूप में शामिल होने के लिए विवश होना पड़ा। बगदाद पैक्ट केन्द्रीय संधि संगठन (Central Treaty Organisation) के नाम से भी प्रख्यात है।

बगदाद पैक्ट में भूमिका और ८ धाराएँ हैं। यह व्यवस्था करता है कि समझौता करने वाले प्रमुख देश अपनी सुरक्षा और बचाव के लिए सहयोग करेंगे। इस सहयोग को प्रभावित करने के लिए वे पग या उपाय, जिन्हें वे उठाने के लिए राजी हों, एक दूसरे के साथ किए जाने वाले विशेष समझौतों के विषय हो सकते हैं। ऊपर बताए हुए सहयोग को सुनिश्चित रखने के लिए समझौते के लागू होते ही समझौता करने वाले प्रमुख देशों के सक्षम अधिकारी किये जाने वाले उपायों या कार्यवाहियों के बारे में निर्णय करेंगे। ये उपाय या कार्यवाहियाँ त्योंही क्रियात्मक रूप धारण करें ज्योंही समझौता करने वाले देशों की सरकारें उन्हें मान्य करती हैं। देशों ने एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में बिल्कुल हस्तक्षेप न करने का निर्णय किया। वे आपसी झगड़ों को संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुसार शान्तिपूर्ण तरीके से तय करेंगे। पक्षों ने घोषणा की कि इस समझौते के उपबन्ध किसी अन्य अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व के विरुद्ध नहीं हैं जो उनमें से किसी देश ने किसी अन्य तीसरे देश या देशों के साथ किए हों। वे कथित अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वों का न तो अल्पीकरण करते हैं और न अल्पीकरण करने के लिए उनकी व्याख्या की जा सकती है। देशों ने इस समझौते से मेल न खाते हुए कोई अन्तर्राष्ट्रीय बन्धन न करने का निर्णय किया। समझौता इस क्षेत्र की सुरक्षा एवं शान्ति से सक्रिय रूप से सम्बद्ध प्रत्येक अरब देश के लिए खुला था। समझौते को स्वीकार करने वाला देश उस देश या उन देशों से विशेष समझौता कर सकता था जो इस समझौते में पक्ष थे। समझौते के ढाँचे में काम करने के लिए मंत्री स्तर की एक स्थायी परिषद् को स्थापित किया जाना था। समझौता ५ वर्ष तक लागू रहना था और हर पाँच वर्ष बाद उसका नवीकरण हो सकता था। कोई भी देश अन्य दूसरे सदस्यों को नोटिस देकर समझौते को छोड़ सकता था। आरम्भ में उसका मुख्यालय बगदाद में रखा गया लेकिन उस देश में क्रान्ति के बाद उसे वहाँ से हटा दिया गया। परिषद् की बैठकें विभिन्न स्थानों पर होती हैं।

जोर्डन पर समझौते में शामिल होने के लिए दबाव डाला गया लेकिन सफलता नहीं मिली। मिस्र, सीरिया और साउदी अरब समझौते में केवल शामिल ही नहीं हुए प्रत्युत् उन्होंने उसका विरोध भी किया। सोवियत संघ ने भी इसका विरोध किया।

समझौते का प्रारम्भिक उद्देश्य साम्यवाद को रोकना था। यह सोवियत संघ के विरुद्ध था। किन्तु पाकिस्तान, ईरान और तुर्की से सोवियत संघ के मैत्रीपूर्ण संबंधों

की सफल स्थापना के पश्चात् समझौते की अधिकांश उपादेयता एवं शक्ति समाप्त हो गई है।

मार्च १९५४ में संयुक्त राज्य ने पाकिस्तान, ईरान एवं तुर्की से सैनिक समझौते किए। सितम्बर १९५४ में संयुक्त राज्य और स्पेन ने एक बीस-वर्षीय बचाव संघि पर हस्ताक्षर किए और अमरीकी सरकार को स्पेन के नौसैनिक एवं वायु अड्डों के प्रयोग तथा विकास करने का अधिकार मिला। स्पेन को अमरीकी सरकार की ओर से सैनिक सामग्री मिलती थी। सितम्बर १९५४ में यूनान, टर्की और यूगोस्लाविया में २० वर्ष के लिए बलकान समझौता हुआ। इसमें किसी भी देश पर आक्रमण होने पर पारस्परिक सहायता की व्यवस्था थी।

वार्सा सन्धि, १९५५ (The Warsaw Pact)—जब पश्चिमी शक्तियाँ सोवियत संघ और उसके शिविर अनुयायियों के विरुद्ध सैनिक समझौते करने में सफल हुईं तो परवर्ती से पीछे रहने की आशा नहीं की जा सकती थी। दिसम्बर १९५४ में आठ यूरोपीय देशों अर्थात् अलबानिया, बुलगेरिया, हंगरी, चैकोस्लोवाकिया, पूर्वी जर्मनी, पोलैण्ड, रूमानिया, सोवियत संघ तथा साम्यवादी चीन के एक पर्यवेक्षक का एक सम्मेलन पेरिस शान्ति संधियों के प्रति अपने रवैये के बारे में विचार करने के लिए हुआ। सम्मेलन ने सन्धियों के पुष्टीकरण का विरोध किया और घोषणा की कि उनके पुष्टीकरण किये जाने पर भाग लेने वाले देश प्रतिवादी का समर्थन करने के लिए संयुक्त कार्यवाही करेंगे। यह भी घोषणा की गई कि वे संयुक्त रक्षा कमाण्ड (Joint Defence Command) के ठोस पगों पर विचार करने के लिए पुनः मिलेंगे। जब उपर्युक्त घोषणा के होते हुए भी पेरिस संधियों की पुष्टि की गई तो ऊपर बताए आठ देशों की वार्सा में ११ मई से १४ मई, १९५५ तक चार दिन बैठक हुई। लम्बे विचार-विनिमय के बाद उन्होंने मैत्री, सहयोग एवं पारस्परिक सहायता की संधि की। इसे वार्सा सन्धि कहते हैं

हस्ताक्षर करने वाले देशों की सशस्त्र सेनाओं की एक संयुक्त कमाण्ड मास्को में मुख्यालय रखते हुए स्थापित करने का निर्णय किया गया। संयुक्त कमाण्ड का सेनापतित्व सोवियत संघ के कोनियर मार्शल को सौंपा गया। हस्ताक्षर करने वाले देशों के रक्षा मंत्रियों या अन्य सैनिक अधिकारियों को डिप्टी कमाण्डर-इन-चीफ नियुक्त किया गया और उनको प्रत्येक अलग-अलग हस्ताक्षर करने वाले देश द्वारा संयुक्त सशस्त्र सेनाओं में निर्दिष्ट सशस्त्र सेना की कमाण्ड सौंपी गई। समझौता करने वाले देशों ने यूरोप में सामूहिक सुरक्षा प्रणाली के लिए प्रयत्न करने का निर्णय किया जो सभी यूरोपीय देशों में भाग लेने पर आधारित हो जिससे वे अपने सामाजिक एवं सरकारी ढाँचे के अनुसार यूरोप में शान्ति बनाए रखने के हित में अपने प्रयासों को संगठित कर सकें। उन्होंने उस स्थिति पर भी विचार किया जो यूरोप में पेरिस समझौतों के पुष्टीकरण से उत्पन्न हुई जिससे पश्चिमी यूरोपीय संघ के रूप में पश्चिमी जर्मनी के साथ एक सैनिक पंक्ति के निर्माण का विचार किया गया था। उसने शांति-प्रिय देशों की राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरा उत्पन्न किया और उनके लिए यह आवश्यक

था कि वे अपनी सुरक्षा को बचाने के लिए आवश्यक कार्यवाही करें। यह घोषित किया गया कि समझौता करने वाले देशों की स्वतन्त्रता एवं प्रभुसत्ता उनके आन्तरिक मामलों में अहस्तक्षेप का आदर करने के सिद्धान्तों के अनुसार मैत्री, सहयोग एवं पारस्परिक सहायता को विकसित करने तथा शक्तिशाली बनाने के हित में संयुक्त-राष्ट्र के चार्टर के उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों से मार्गदर्शन प्राप्त करे।

संधि ने व्यवस्था की कि समझौता करने वाले पक्षों ने अपने अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में हिंसा की धमकी देने या उसके प्रयोग से अलग रहने और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शान्तिपूर्ण तरीकों से तय करने का निर्णय किया। समझौता करने वाले पक्षों ने अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा को प्राप्त करने के उद्देश्य से समस्त अन्तर्राष्ट्रीय कार्यवाहियों में सहयोग करने की अपनी इच्छा की घोषणा की। उन्होंने उस लक्ष्य के लिए सहयोग करने वाले राज्यों से समझौता करने के लिए प्रयास करना था तथा शस्त्रीकरण को कम करने तथा परमाणु, हाइड्रोजन बम तथा अन्य जन-विध्वंसक हथियारों पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए उपाय करने थे। समझौता करने वाले पक्षों को पारस्परिक हितों से सम्बन्धित समस्त प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर आपस में परामर्श करना था और वैसा करते समय अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा को शक्तिशाली बनाने के हितों से मार्गदर्शन प्राप्त करना था। समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले किसी एक या अन्य देशों के विरुद्ध सशस्त्र आक्रमण की धमकी दिए जाने पर पारस्परिक रक्षा स्थिर रखने तथा शान्ति एवं सुरक्षा बनाए रखने के लिए उन्हें तुरन्त ही एक दूसरे से परामर्श करना था। यूरोप में किसी एक देश या देशों के समूह द्वारा संधि के किसी एक देश या अनेक देशों के विरुद्ध सशस्त्र आक्रमण होने पर संधि का प्रत्येक सदस्य देश, अपनी एवं सामूहिक आत्म-रक्षा के अधिकार को मूर्त रूप देने के उद्देश्य से, ऐसे आक्रमण से आक्रांत देश या देशों को निजी रूप से तथा अन्य देशों की सहमति से जो शामिल हों, जिसमें सशस्त्र सेनाओं के प्रयोग को शामिल करते हुए आवश्यक प्रतीत होने वाले साधनों से तुरन्त सहायता करेगा। संधि कर्त्ता देशों को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा को स्थापित करने एवं बनाए रखने के लिए तुरन्त संयुक्त कार्यवाही करना आवश्यक था। धारा ४ के आधार पर की गई कार्यवाही को संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुसार सुरक्षा को सहायता देना था। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा को स्थापित करने तथा रक्षित करने के लिए सुरक्षा परिषद् द्वारा कार्यवाही किए जाने पर उस कार्यवाही को तुरन्त ही रोकना था।

संधिकर्त्ता देश संधि द्वारा देशों में नियुक्त करने के लिए अपनी सशस्त्र सेनाओं की एक संयुक्त कमाण्ड स्थापित करने को सहमत हुए जिसे इस कमाण्ड की इच्छा पर रहना था और संयुक्त रूप से प्रस्थापित सिद्धान्त के आधार पर प्रयुक्त किया जाना था। अपनी जनता के शान्तिपूर्ण कठोर परिश्रम की रक्षा करने, अपने सीमान्तों तथा क्षेत्रों की अखण्डता की गारण्टी करने तथा संभावित आक्रमण के विरुद्ध अपने बचाव को निश्चित करने के हेतु अपनी रक्षा को शक्तिशाली बनाने के निमित्त पग उठाने के लिए भी उन्हें अन्य कार्यवाही करनी भी आवश्यक थी। संधि में भाग लेने वाले राज्यों के मध्य वर्तमान संधि में व्यवस्थित परामर्श को पूर्ण करने के उद्देश्य से, और संधि को

पूर्ण करने के बारे में उठने वाले प्रश्नों की जांच करने के हेतु एक राजनीतिक परामर्शदात्री समिति, संधि में भाग लेने वाले प्रत्येक देश में स्थापित की जानी थी। समिति को आवश्यक होने पर अन्य सहायक संगठन स्थापित करने का अधिकार था। संधिकर्त्ता देशों ने इस संधि की शर्तों के विपरीत किसी अन्य समझौते या संघ या सहमिलन में शामिल न होने का निर्णय किया। उन्होंने घोषित किया कि वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों के अधीन उनके दायित्व इस संधि की शर्तों के विपरीत नहीं थे। उन्होंने घोषणा की कि वे आपस के आर्थिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों को विकसित करने के लिए मैत्री एवं सहयोग की भावना से कार्य करेंगे और पारस्परिक सम्मान के सिद्धान्त से मार्गदर्शन प्राप्त करेंगे तथा एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। संधि २० वर्ष तक लागू रहनी थी। वे देश, जो संधि के समाप्त होने से एक वर्ष पूर्व हटने का नोटिस नहीं देंगे, इससे १० वर्ष के लिए और बंधे रहेंगे। यूरोप में सामूहिक सुरक्षा प्रणाली की स्थापना होने तथा उसके लिए एक समझौते पर हस्ताक्षर होने पर उसी दिन से यह संधि समाप्त होनी थी जिस दिन से सामूहिक सुरक्षा संधि लागू होनी थी।

वारसा समझौता सभी मुख्य बातों में नाटो का दूसरा रूप है फिर भी दोनों में कुछ अन्तर हैं। कोई भी देश वारसा समझौते का सदस्य बन सकता है परन्तु नाटो की सदस्यता के लिए सर्वसम्मति आवश्यक है। वारसा समझौता कुछ समय के लिए है क्योंकि यह यूरोपियन सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था के जीवित रहने तक ही लागू रह सकता है। इसका ध्येय संसार में शान्ति बनाये रखना है जो कि जर्मनी के नाटो में शामिल होने से खतरे में पड़ सकती है। यह सच है कि वारसा समझौते के सारे सदस्य देश सिद्धान्त रूप से बराबर हैं, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। सदस्य देशों की स्वतन्त्रता भिन्न-भिन्न है। संयुक्त राज्य की नाटो में प्रभावशाली स्थिति होने पर भी, वह दूसरों की अपेक्षा इतना अधिक प्रबल नहीं है जैसा कि सोवियत संघ वारसा समझौते में है। वारसा समझौते द्वारा सोवियत संघ और उसके पांच सदस्यों में हुई दोतरफा संधियों में केवल कुछ महत्त्वपूर्ण बातें जोड़ी गई हैं। वारसा समझौते के न होने पर भी सोवियत संघ और उसके अन्य सदस्य देशों के सम्बन्धों में कोई अन्तर नहीं आता।

यह सब जानते हैं कि जब १९५६ में हंगरी में विद्रोह हुआ तो वारसा समझौते की शक्तियों ने उसमें दखल दिया। इसी प्रकार उन्होंने १९६८ में चैकोस्लोवेकिया में दखल दिया जब उस देश ने उदार नीतियां अपनाना शुरू कीं। रूमानिया वारसा समझौते का सदस्य है परन्तु सोवियत संघ श्री केजस्कू से जो कि रूमानिया में साम्यवादी दल के महासचिव हैं, बहुत परेशान है। वास्तव में रूमानिया की जनता वारसा समझौते के अन्तर्गत रूस जो कुछ भी करना चाहता है उसका विरोध करती है। वह चाहती है कि वारसा समझौता और ऐसे सारे सैनिक संगठन समाप्त हो जाएं। केजस्कू का मत है कि सैनिक समझौते प्रत्येक देश की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता

और सर्वोच्च सत्ता से मेल नहीं खाते। रूमानिया संगठन में सदस्य देशों की फौजों को एकत्रित करने की रूस की योजना का विरोध करता है और अपनी सेनाओं को वारसा समझौते की शक्तियों की कमान में सौंपने से इनकार करता है। रूमानिया का यह रुख सोवियत संघ को पसन्द नहीं है, परन्तु वह कुछ नहीं कर सकता। अलबानिया वारसा समझौते से अलग हो गया और उसने सोवियत संघ के शत्रु साम्यवादी चीन से मित्रता कर ली।

हंगरी में विद्रोह, १९५६ (Revolt in Hungary)—१९५६ में हंगरी में एक विद्रोह हुआ। विद्रोह को दबाने के लिए हंगरी की सरकार ने सोवियत संघ से अपनी सेनाएँ भेजने को कहा। सोवियत संघ ने प्रार्थना स्वीकार की और उसने अपनी सेनाएँ हंगरी में भेजीं तथा कानून एवं व्यवस्था पुनः स्थापित हुई। सोवियत सेनाएँ इसके तुरन्त बाद वापस लौट गईं। तो भी, एक वार पुनः गड़बड़ हुई। बहुत अधिक रक्तपात हुआ। बहुत से आदमी मारे गए। बुडापैस्ट की सड़कों के प्रकाश-स्तम्भों पर अनेक नेताओं को लटका दिया गया। विद्रोहियों ने बुडा-पैस्ट का राष्ट्रीय अद्भुतालय जला डाला। वे दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक शक्तिशाली होते गए। उन्होंने राष्ट्रीयकरण किए हुए कार्यों तथा राज्याधीन कारखानों को नष्ट कर दिया। श्री नेगी की वापसी की आम माँग की गई जिसे पहले गिरफ्तार किया गया था। ३० अक्टूबर, १९५६ को श्री नेगी ने, जिसने युद्ध के दौरान सरकार संभाल ली थी, घोषणा की कि वह समस्त प्रजातन्त्रीय दलों की संयुक्त सरकार बनायेगा और पाश्चात्य प्रजातंत्रों की तरह स्वतन्त्र निर्वाचन होंगे। इस समय श्री कादर और उसके अन्य साथियों ने श्री नेगी को अपदस्थ कर दिया और एक नई हंगरी वासी क्रान्तिकारी कारीगरों तथा कृषकों की सरकार स्थापित की गई। नई सरकार ने घोषणा की कि वह हंगरी की जनता की प्रजातन्त्रीय उपलब्धियों की सुरक्षा करेगी और जनता की प्रजातन्त्रीय प्रणाली को बचायेगी। कादर की सरकार ने देश में विद्रोह को दबाने के लिए सोवियत संघ से सहायता की प्रार्थना की। सोवियत संघ ने अपनी सेनाएँ हंगरी में भेजीं और विद्रोहियों को पकड़ा तथा दबाया। उस अवसर पर अत्यधिक नृशंसता का प्रयोग किया गया। ४ नवम्बर, १९५६ को यह घोषित किया गया कि विद्रोहियों को पूर्णतः कुचल दिया गया। श्री नेगी तथा उसकी सरकार के अनेक अन्य सदस्यों को रूसी सेनाओं ने गिरफ्तार कर लिया। श्री कादर की अध्यक्षता में हंगरी की नई सरकार बनी जो साम्यवादी दल का प्रथम सचिव था। ४ नवम्बर, १९५६ को अमरीकी सरकार ने सुरक्षा परिषद में एक प्रस्ताव रखा कि सोवियत संघ को अपनी सेनाएँ हंगरी से हटा लेनी चाहिएं और उस देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करे। सोवियत संघ ने उस प्रस्ताव का निषेध (Veto) किया। साधारण सभा का संकटकालीन अधिवेशन हुआ और उसमें एक प्रस्ताव पास कर सोवियत संघ के हंगरी में से अपनी सेनाएँ हटाने की माँग की गई ताकि संयुक्त राष्ट्र के संरक्षण में स्वतन्त्र निर्वाचन कराये जा सकें। साधारण सभा ने एक अन्य प्रस्ताव पारित कर हंगरी

की जनता से उसकी स्वाधीनता एवं स्वतन्त्रता छीनने और हंगरी के लोगों के मौलिक अधिकारों का हनन करने के कारण सोवियत संघ की निन्दा की। सोवियत संघ से पुनः अपनी सेनाएँ हटाने का अनुरोध किया गया। किन्तु सोवियत संघ ने इन प्रस्ताओं पर कोई ध्यान नहीं दिया।

१९५६ में हुए हंगरी के विद्रोह के मूल कारणों के विषय में दो अलग-अलग मत हैं। सोवियत मत के अनुसार, विद्रोही फासिस्ट थे और उन्हें बाहरी शक्तियों की मदद थी। कादर की हंगरी की सरकार को उनको सख्ती से दबाने का पूर्ण अधिकार था। सोवियत संघ ने वारसा समझौते के अन्तर्गत अपनी फौजों को हंगरी में भेजकर अपना कर्तव्य निभाया।

पाश्चात्य मत के अनुसार, हंगरी की जनता साम्यवादी शासन द्वारा उनके जीवन पर लगाए गए अनेक बन्धनों से तंग आ गई थी और इसलिए उन्होंने विद्रोह किया। साम्यवादी शासन के अत्याचार के विरुद्ध यह जनता का स्वेच्छापूर्वक विद्रोह था जिसको अधिकतर जनता का समर्थन प्राप्त था। यदि सोवियत सेनाएँ विद्रोह को कुचलने के लिए हंगरी नहीं जातीं तो विद्रोही अपनी सरकार स्थापित करने में सफल हो जाते। हंगरी में सोवियत सेनाओं के रहने की भी निन्दा की गई।

चैकोस्लोवाकिया, १९६८ (Czechoslovakia)—श्री एलेक्जेंडर ड्यूबेक के नेतृत्व में, जो चैकोस्लोवाकिया में साम्यवादी दल का प्रथम सचिव था, चैकोस्लोवाकिया में मुक्ति शक्तियों ने कार्य करना प्रारम्भ किया। राष्ट्रपति एन्टोनिन नोवोटनी को, जो स्टालीन युग का अन्तिम वीर था, सार्वजनिक माँग के कारण त्यागपत्र देने को विवश होना पड़ा और उसका त्यागपत्र २२ मार्च, १९६८ को स्वीकार किया गया। ३० मार्च, १९६८ को जनरल स्वोबोडा ने चैकोस्लोवाकिया के नए राष्ट्रपति के रूप में पद की शपथ ली। प्रैस को पर्याप्त स्वतन्त्रता दी गई और देश में प्रजातन्त्रीय शक्तियाँ अधिक शक्तिशाली हो गयीं।

सोवियत संघ और वार्सा संधि के अन्य सदस्यों ने इन परिवर्तनों को पसन्द नहीं किया। सोवियत संघ, पोलैण्ड, हंगरी, बुलगारिया और पूर्वी जर्मनी की साम्यवादी पार्टी की एक बैठक १४ और १५ जुलाई, १९६८ को वार्सा में हुई। बैठक ने चैकोस्लोवाकिया की घटनाओं पर 'गम्भीर चिन्ता' व्यक्त की। सोवियत नेताओं और चैक नेताओं के मध्य सिअरना (Cierna) और ब्रॅटिसलावा में दो बैठकें हुईं। सोवियत संघ की सरकार और पार्टी के नेताओं तथा वार्सा शक्तियों ने चैकोस्लोवाकिया के साम्यवादी दल को एक संयुक्त पत्र लिखा जिसमें उन्होंने कहा, "तुम्हारे देश के घटनाचक्र ने हमारे देश में गम्भीर चिन्ता उत्पन्न की है। हमारा यह सुनिश्चित मत है कि साम्राज्यवाद की प्रेरणा से प्रतिक्रियावादी शक्तियों के आक्रमण से आपके देश के समाजवादी मार्ग से भटकने का खतरा उत्पन्न हो गया है और इससे परिमाणतः समस्त समाजवादी प्रणाली के हितों को भय उत्पन्न हो गया है।" चैकोस्लोवाकिया के साम्यवादी दल ने इन आरोपों को अस्वीकार

किया। उसने वार्सा संधि और समाजवादी समाज में अपना विश्वास पुनः व्यक्त किया। उसने घोषणा की कि चैकोस्लोवाकिया का साम्यवादी दल "पुरातन अविश्वसनीय नौकरशाही के पुलिस ढंग" की अपेक्षा एक भिन्न नेतृत्व प्रदान करने का प्रयास कर रहा था। १८ जुलाई, १९६८ को श्री ड्यूबैक ने रेडियो और दूरदर्शन प्रसारण में यह विश्वास दिलाया कि जनवरी १९६८ में शुरू किये गए प्रजातन्त्रीय सुधारों से पीछे नहीं हटा जायेगा। १२ अगस्त को हर वाइटर उलब्रिक्ट (Ulbricht), पूर्वी जर्मनी का साम्यवादी नेता चैकोस्लोवाकिया आया और उसने श्री ड्यूबैक से लम्बा विचार-विनिमय किया।

१६ अगस्त, १९६८ को 'प्रवदा' अखबार ने चैकोस्लोवाकिया में समाजवादी विरोधी प्रतिक्रियावादियों की विध्वंसक कार्यवाही को तेज करने का आरोप लगाया। २० अगस्त को सोवियत संघ की केन्द्रीय साम्यवादी पार्टी की बैठक क्रेमलिन में हुई और उसी रात को रूस, पोलैण्ड, हंगरी, बुलगेरिया और पूर्वी जर्मनी की सेनाओं ने चैकोस्लोवाकिया पर आक्रमण किया और कुछ घंटों में प्राग तथा चैकोस्लोवाकिया के अन्य नगरों पर अधिकार कर लिया। चैकोस्लोवाकिया में रूसी हस्तक्षेप का घोर विरोध किया गया लेकिन उन सभी विरोधों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया गया। सोवियत संघ तथा अन्य शक्तियाँ चैकोस्लोवाकिया में समस्त उदार शक्तियों को कुचलने को कटिवद्ध थीं और उनके कार्य की निन्दा का उन पर बिल्कुल असर नहीं था। धीरे-धीरे ड्यूबैक और उसके मित्रों को उनके पदों से हटा दिया गया और आजकल चैकोस्लोवाकिया पर सोवियत संघ का पूर्ण अधिकार है। वह उसकी इच्छाओं के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता। तो भी सोवियत सेना के अधिकार के विरुद्ध लोकप्रिय प्रदर्शन होते रहते हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि रूमानिया ने चैकोस्लोवाकिया के आक्रमण में भाग नहीं लिया।

वार्सा संधि के वारे में कुछ उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं। अल्वानिया इसे पूर्णतः छोड़ चुका है और उसके नेताओं ने सोवियत संघ का विरोध करने का साहस किया है। इस सब में उनका समर्थन चीन ने किया है। वार्सा संधि से रूमानिया भी तंग है। वह लोह आवरण के अधीन प्रतिवन्धों से परेशान है और वह पश्चिमी देशों तथा सोवियत संघ दोनों से मैत्रीपूर्ण सम्वन्ध रखने को उत्सुक है। रूमानिया सरकार के निमन्त्रण पर राष्ट्रपति निक्सन अगस्त १९६९ में रूमानिया गए और उनका हार्दिक स्वागत हुआ। तो भी इसने सोवियत संघ पर आघात किया है जिसने भयंकर परिणामों की चेतावनी दी है जो इसके परिणामस्वरूप हो सकते हैं। देखना यह है कि क्या रूमानिया सोवियत संघ से अपनी रक्षा कर सकता है या उसे चैको-स्लोवाकिया के भाग्य का अनुसरण करना पड़ेगा। वहुत कुछ इस वात पर निर्भर है कि ऐसे आक्रमण के घटित होने पर अमरीकी सरकार सैनिक सहायता भेजने को तैयार है या नहीं।

क्यूबा संकट (Cuban Crisis)—१९६२ में क्यूबा प्रश्न पर युद्धाग्नि भड़कने का भय था। जब ख्रुश्चेव ने क्यूबा में मिसाइल स्थापित की तो राष्ट्रपति कैनेडी

ने एक चेतावनी दी कि यदि सोवियत सरकार ने अपने कार्यक्रम को पूरा करने का आग्रह किया तो अमरीकी सरकार इस प्रश्न पर युद्ध करने को तैयार है। विश्व की दो महान् शक्तियों में आणविक संघर्ष होने का गम्भीर खतरा उत्पन्न हो गया था। तो भी सोवियत संघ अन्तिम क्षण पर पीछे हट गया और इस प्रकार दुःखान्त घटना टल गई।

अमरीका और रूस

(The United States and Soviet Union)

यद्यपि अमरीका और सोवियत संघ द्वितीय विश्वयुद्ध में हिटलर के खिलाफ इकट्ठे लड़े, तथापि युद्ध का अन्त होते ही दोनों देशों के परस्पर सम्बन्ध खराव हो गये। सोवियत संघ ने पूर्वी यूरोप में अपना अधिकार जमा लिया और वहां पर साम्यवादी सरकारें स्थापित कर दीं। यह बात अमेरिका को अच्छी न लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि दोनों देशों में परस्पर शीत-युद्ध प्रारम्भ हो गया और ऐसी परिस्थिति कई साल चलती रही। खुश्चेव ने एक नई नीति चालू की ताकि भिन्न-भिन्न नीतियों और आदर्शों के रखने वाले देश भी युद्ध के बिना रह सकें। वह स्वयं राष्ट्रपति आइजनहावर को मिलने के लिए १९५९ में वाशिगटन गया और उसने संयुक्त राष्ट्र संघ की जनरल असैम्बली में संसार से युद्ध को समाप्त करने के लिए अपने प्रस्ताव रखे। अक्टूबर १९५८ से लेकर अप्रैल १९६१ तक न्यूक्लीयर बैन ट्रीटी कान्फ्रैन्स जिनेवा में चलती रही और रूस, अमरीका और ब्रिटेन ने इस कान्फ्रैन्स में भाग लिया और १९६३ में Partial Nuclear Test Ban संधि पर रूस, अमरीका और ब्रिटेन ने हस्ताक्षर किए। इसका परिणाम यह हुआ कि Nuclear टैस्टों पर बहुत सी रोकें लगाई गयीं। १९६८ में अमरीका और सोवियत संघ ने Nuclear Non-Proliferation संधि पर हस्ताक्षर किए। इस संधि का ध्येय यह था कि Nuclear शस्त्र संसार में न फैल जाएँ और उन पर रोकें लगाई जाएं। मई १९७२ में राष्ट्रपति निक्सन मास्को गए और वहां पर एक ऐसी संधि पर हस्ताक्षर किए जिसका मुख्य उद्देश्य यह था कि दोनों देशों के Nuclear weapons पर कुछ पाबन्दियां लगा दी जाएँ ताकि वे ऐसे अस्त्र-शस्त्र अपनी मन-मरजी के अनुसार न बनाएँ। जून १९७३ में रूस के साम्यवादी दल का सैक्रेटरी श्री ब्रैजनेव वाशिगटन गया और अपने देश की ओर से अमरीका में चार संधियों पर हस्ताक्षर किए। उन संधियों का उद्देश्य यह था कि दोनों देशों में शान्तिपूर्वक सम्बन्ध स्थापित हो जाएँ। चूंकि वाटरगेट काण्ड के कारण राष्ट्रपति निक्सन को त्यागपत्र देना पड़ा इसलिए नवम्बर १९७४ में राष्ट्रपति फोर्ड ब्रैजनेव को मिलने के लिए वलाडीवास्टक गये। दोनों नेताओं ने दस वर्ष के लिए अस्त्र-शस्त्रों पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए समझौता किया। जुलाई १९७४ के अन्त में योरुप में स्थाई और परस्पर सहयोग की भावना को उत्पन्न करने के लिए हैलसिन्की के स्थान पर एक बड़ी सभा हुई जिसमें भाग लेने के लिए राष्ट्रपति फोर्ड और ब्रैजनेव वहां गए और दोनों के दरम्यान बातचीत हुई। उस समय राष्ट्रपति फोर्ड ने घोषणा

की कि इस संसार में शान्ति स्थापित करने के लिए अमरीका रूस को पूरा-पूरा सहयोग देगा।

यह प्रश्न किया जा सकता है कि दोनों देशों के परस्पर सम्बन्धों में तबदीली क्यों आई। उसका मुख्य कारण यह है कि अणु-शस्त्रों पर बहुत ही अधिक खर्चा होता है। दोनों देश ऐसा सोचते थे कि कुछ वर्षों के पश्चात् दूसरा देश हार जाएगा परन्तु ऐसा न हुआ। यह अनुभव किया गया कि यदि दोनों देशों के मध्य अणु-शस्त्रों की प्रतियोगिता चलती रही तो अन्त में दोनों देश उजड़ जायेंगे। अमरीका की आर्थिक अवस्था बहुत ही खराब हो गई और वैसी ही स्थिति रूस में थी और ऐसा अनुभव किया गया कि यदि दोनों देशों के बीच कोई समझौता न हुआ तो अन्त में युद्ध होकर ही रहेगा। आधुनिक युद्ध बहुत भयानक हो गया है जिसमें संसार का सब कुछ नष्ट हो सकता है। ऐसी परिस्थिति को रोकने के लिए दोनों देशों ने एक दूसरे के साथ मिलकर चलने की ठानी। नई नीति का एक और कारण यह था कि रूस का सम्बन्ध साम्यवादी चीन के साथ बहुत खराब हो गया और वे देश, जो कुछ वर्ष पहले एक दूसरे के मित्र थे, अब घोर शत्रु हो गए। चूंकि अमरीका और चीन ने आपस में बनाने की ठान ली, इसलिए रूस ने भी अमरीका के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने के लिए निश्चय किया ताकि अमरीका और चीन उसके खिलाफ इकट्ठे न हो जायें। चीन रूस के खिलाफ अमरीका से दोस्ती चाहता है और रूस चीन के खिलाफ अमरीका से मित्रता चाहता है। रूस यह नहीं चाहता कि चीन और अमरीका दोनों उसके खिलाफ इकट्ठे हो जाएँ।

ऐसा होते हुए भी दोनों देशों में निरन्तर परस्पर संघर्ष की भावना मौजूद रहती है। यह बात किसी से छिपी नहीं कि रूस ने अमरीका के खिलाफ उत्तर वियतनाम की सहायता की और अन्त में उसकी १९७५ में विजय हुई और अमरीका की मान-हानि हुई। यह भी सर्व-विदित है कि रूस ने इज्राइल के खिलाफ अरबों की सहायता की और मिस्र की १९७३ में विजय हुई। १९७६ में रूस ने अंगोला में हस्तक्षेप किया। यद्यपि अमरीका ने प्रोटैस्ट भी किया तथापि रूस ने वहाँ पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। वर्तमान में ऐसी अवस्था है कि यद्यपि दोनों देश एक दूसरे से लड़ने के लिए तैयार नहीं तथापि अपना अधिकार तथा प्रभाव संसार के हर कोने में बढ़ाने के लिए जुटे हुए हैं।

अमरीका और चीन
(United States and China)

यद्यपि अमरीका ने चांग-कई-शेक की सरकार की सब प्रकार से सहायता की तथापि वह १९४९ में हार कर चीन से फारमोसा द्वीप भाग गया। साम्यवादी चीन चाहता था कि वह फारमोसा को भी जीत ले परन्तु अमरीका की सैनिक शक्ति ने फारमोसा की रक्षा की। राष्ट्रपति ट्रूमेन ने अमरीका से सातवें बेड़े को फारमोसा और चीन के मध्य भेज दिया ताकि साम्यवादी चीन फारमोसा पर

आक्रमण न कर सके। यद्यपि साम्यवादी चीन ने कई बार चेतावनी दी कि वह फारमोसा पर आक्रमण करेगा परन्तु अमरीका के आगे चीन की कुछ न बन पाई। अमरीका ने फारमोसा के साथ एक सैनिक संधि की और यह वचन दिया कि वह उसकी हर प्रकार से सहायता और रक्षा करेगा। चीन की साम्यवादी सरकार यह भली-भाँति जानती थी कि फारमोसा पर आक्रमण करना अमरीका पर आक्रमण करना था और वह ऐसा करने के लिए तैयार न थी।

जून १६५० में कोरिया का युद्ध प्रारम्भ हुआ और अमरीका ने दक्षिणी कोरिया की उत्तरी कोरिया के विरुद्ध सहायता की। चीन और रूस ने उत्तरी कोरिया की सहायता की। चीन ने लाखों सैनिक लड़ने के लिए युद्धक्षेत्र में भेजे। परिस्थिति ऐसी थी कि अमरीका और चीन के मध्य युद्ध हो सकता था परन्तु जनरल मैकार्थर को अमरीकी सरकार ने आगे बढ़ने न दिया और अन्त में उसको अपने पद से भी हटा दिया। चीन और अमरीका के सम्बन्ध बहुत खराब रहे।

जब चीन ने १६६२ में भारत पर आक्रमण किया तो भारत सरकार ने अमरीका से सहायता माँगी और राष्ट्रपति कैनेडी ने चीन के खिलाफ भारत की सहायता की। अमरीकी सहायता के कारण भारत की स्थिति सुधर गई और वह चीन के खिलाफ लड़ने में समर्थ हो गया। इस बात ने भी चीन को अमरीका के खिलाफ कर दिया।

चीन ने उत्तरी वियतनाम की दक्षिणी वियतनाम के खिलाफ सहायता की यद्यपि अमरीका दक्षिणी वियतनाम की सहायता कर रहा था। वियतनाम के युद्ध में अमरीका के लाखों सैनिक मारे गये अथवा जख्मी हुए। इस बात ने भी दोनों देशों के सम्बन्ध खराब किए।

प्रारम्भ से ही अमरीका की सरकार ने इस प्रस्ताव का विरोध किया कि चीन संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बन जाये। अमरीका ने साम्यवादी चीन की सत्ता को न माना और फारमोसा ही असली चीन का प्रतिनिधित्व करता रहा।

यद्यपि साम्यवादी चीन और अमरीका के सम्बन्ध कई वर्ष ऐसे रहे तथापि दोनों की नीति ने १६७१ में पलटा खाया। १६७१ में डा० किसिंगर पाकिस्तान के रास्ते पीकिंग गये और उसके बाद यह घोषणा की गई कि राष्ट्रपति निक्सन चीन जायेंगे। अमरीका की सहायता से २६ अक्टूबर, १६७१ को साम्यवादी चीन संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बन गया। दोनों देशों में बहुत तैयारियाँ की गईं और अन्त में फरवरी १६७२ में राष्ट्रपति निक्सन चीन गये। वहाँ पर उनका बहुत स्वागत किया गया। अन्त में यह घोषणा की गई कि अमरीका फारमोसा को चीन का एक हिस्सा मानता है और धीरे-धीरे वह अपनी सेनाएँ फारमोसा से हटा लेगा।

यद्यपि १६७२ में दोनों देशों के मध्य सम्बन्ध सुधरने की नींव रखी गई और दोनों देशों का आपस में मेल-जोल भी बढ़ा परन्तु इतने वर्षों के बीतने पर भी अभी तक न ही चीन ने अपना राजदूत वाशिंगटन में नियत किया है और न ही अमरीका

ने पीकिंग में। संसार की परिस्थिति ऐसी है कि अभी तक अमरीका ने भी अपनी सेनाएँ फारमोसा से नहीं हटाईं।

चीन और सोवियत संघ (China and the Soviet Union)—१९४९ में साम्यवादी चांग-काई-शेक और उसकी सरकार को चीन की मुख्य भूमि से भगाने में सफल हुए और पेकिंग में एक साम्यवादी सरकार स्थापित हुई। प्रारम्भ में सोवियत संघ ने साम्यवादी चीन को पर्याप्त आर्थिक एवं सैनिक सहायता दी। १४ फरवरी, १९५० को सोवियत समाजवादी गणराज्य तथा चीनी जन गणराज्य में मैत्री, सहयोग एवं पारस्परिक सहयोग की संधि पर हस्ताक्षर हुए। संधि में दोनों देशों ने संपूर्ण विश्व में शान्ति एवं सुरक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से समस्त अन्तर्राष्ट्रीय कार्यवाहियों में हार्दिक सहयोग की भावना से भाग लेने की अपनी तत्परता की घोषणा की। संधि ने "जापान द्वारा पुनः आक्रमण करनें तथा शान्ति के भंग करने और किसी अन्य शक्ति के जापान के साथ प्रत्यक्षतः मिलने या आक्रमण के कार्य को किसी अन्य रूप में रोकने के लिए दोनों पक्षों को बाध्य किया।" कोई अन्य देश, जो जापानी भूमि को सोवियत संघ या चीन के विरुद्ध कार्य करने के लिए अड्डे के रूप में प्रयोग करेगा वह तर्कानुसार संधि के वन्धनों के नियम के फैलाव के अधीन आ जायेगा।

संधि की धारा ५ ने प्रत्येक देश की प्रभुसत्ता को, संधि की वचनवद्धता को लागू करने से उत्पन्न एक दूसरे के हस्तक्षेप से गारण्टी दी। यह घोषणा की गई कि संधि के अन्तर्गत समस्त कार्य मैत्री और सहयोग की भावना से किये जाने थे जो दूसरे पक्ष के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने तथा राज्य प्रभुसत्ता तथा क्षेत्रीय अखण्डता के पारस्परिक सम्मान से और समानता एवं पारस्परिक हितों के सिद्धान्तों से मेल खाते हों। दोनों देश समस्त प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर एक दूसरे से सहयोग करने तथा सोवियत संघ तथा साम्यवादी चीन के मध्य आर्थिक तथा सांस्कृतिक वन्धनों को दृढ़ एवं विकसित करने को सहमत हुए। सोवियत संघ ने दूर पूर्व में चीन का कई सुविधाएँ भी दीं। उसने ३०० मिलियन डालर तक का ऋण ५ वर्ष में देने का वचन दिया।

इस संधि के अधीन चीन में आधे रूसी तथा आधे चीनी संयुक्त व्यवस्था मंडल के अधीन कम-से-कम १४१ कारखाने स्थापित किए गए। हजारों चीनी विद्यार्थी अपनी ट्रेनिंग प्राप्त करने के लिए सोवियत संघ के विश्वविद्यालयों में पढ़ने गए। चीनी सेना का रूसी मदद से आधुनिकीकरण एवं विस्तार किया गया। ३१ दिसम्बर, १९५३ को सोवियत संघ मंचूरिया की रेलों में अपने सम्पत्ति के अधिकारों को छोड़ने के लिए सहमत हुआ। अक्टूबर १९५४ में की गई एक संधि के अनुसार सोवियत संघ आर्थर वन्दरगाह को छोड़ने को सहमत हुआ। इस संधि ने १ विलियन रूवल के रूसी ऋण की भी व्यवस्था की। सोवियत संघ मिली-जुली कम्पनियों में अपना शेयर भी छोड़ने को सहमत हुआ।

तो भी, सोवियत संघ और साम्यवादी चीन के मध्य मैत्री अधिक दिन तक नहीं चली और दोनों देशों के मध्य मतभेद उत्पन्न हुए। निश्चित रूप से सोवियत

संघ यूरोप और एशिया की शक्ति है और चीन एक एशियाई देश है और दोनों देशों के हितों का भिन्न-भिन्न होना आवश्यक है और संघर्ष की सदैव संभावना हो सकती है। साम्यवादी चीन पसंद नहीं करता कि सोवियत संघ दक्षिणी-पूर्वी एशिया में प्रभावी हो और वह स्थिति सोवियत संघ को स्वीकार्य नहीं। दोनों देशों के मध्य कुछ सैद्धान्तिक मतभेद भी उत्पन्न हुए। ख्रुश्चेव ने सत्तारूढ़ होने पर पूंजीवाद और समाजवाद में शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की एक नई नीति प्रारम्भ की। उसका विश्वास था कि प्रतियोगिता में साम्यवादी पूंजीवादियों को पछाड़ सकते हैं। वह आणविक युद्ध का खतरा उठाने को तैयार नहीं था। माओत्से तुंग तथा चाऊ-एन-लाई के अधीन साम्यवादी चीन ने ख्रुश्चेव की नई नीति की निन्दा की। चीनी नेता क्रान्ति और पूंजीवाद के विरुद्ध अन्तिम दम तक लड़ने की नीति में विश्वास करते थे। वे पूंजीवाद के पूर्ण विध्वंस में विश्वास करते हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि नई सोवियत नीति उनको स्वीकार्य नहीं थी और उन्होंने ख्रुश्चेव पर कायरता का आरोप लगाया।

दोनों देशों के मतभेद १९५८ और १९५९ में सामने आए। चीनियों ने अप्रत्यक्ष रूप से रूसी नीति पर आक्रमण करने शुरू किए। १९६१ में बुखारेस्ट और मास्को में महत्त्वपूर्ण बैठकें हुई। १९६१ में मास्को के २२ वें पार्टी सम्मेलन में ख्रुश्चेव ने अलबानिया के साम्यवादी दल पर आक्रमण किया जिसे चीन सरकार का समर्थन प्राप्त था। जब ख्रुश्चेव ने स्टालिनवाद के विरुद्ध अपनी योजना प्रारंभ की तो चीन सरकार ने उसे मान्यता नहीं दी। १९६२ में साम्यवादी चीन ने क्यूबा संकट और संयुक्त राज्य के सामने सोवियत संघ के वास्तविक आत्म-समर्पण के लिए ख्रुश्चेव की निन्दा की। सोवियत संघ की भारत समर्थक नीति की भी साम्यवादी चीन ने निन्दा की। इस सब का यह फल हुआ कि रूस ने साम्यवादी चीन से अपना सब समर्थन वापस ले लिया और दोनों देश खुले शत्रु बन गए।

जब अक्टूबर १९६४ में कोसीजन ख्रुश्चेव को प्रधान मन्त्री पद से हटा कर सत्तारूढ़ हुआ तो आशा की गई थी कि सोवियत संघ और साम्यवादी चीन के संबंधों में सुधार हो सकेगा। यथार्थ में साम्यवादी चीन को अपने पक्ष में करने के लिए श्री कोसिजन ने अनेक आराधक पग भी उठाए लेकिन वे सभी प्रयास असफल रहे। साम्यवादी चीन इस विचार को सहन नहीं कर सकता कि सोवियत संघ भारत को आर्थिक सहायता दे जो उसका शत्रु है। सीमा-संघर्षों के कारण भी दोनों देशों के सम्बन्धों में तनाव बढ़ा है। साम्यवादी चीन रूस के साथ अपनी सीमा के पुनर्निर्धारण के लिए तथा उन क्षेत्रों को लेने को कटिबद्ध है जो रूस ने चीन से १९वीं तथा २०वीं शताब्दियों में ले लिए थे। यद्यपि दोनों देश साम्यवादी हैं लेकिन उनमें एकता नहीं है और सत्य तो यह है कि साम्यवादी संसार के नेतृत्व के लिए दोनों में प्रतिद्वन्द्विता है।

चीन तथा भारत (China and India)—कोरिया युद्ध में साम्यवादी चीन ने उत्तरी कोरिया की ओर से अपनी सेनाएँ लड़ने के लिए भेजीं। अमरीकी सरकार

ने इंग्लैण्ड और भारत के दबाव में जनरल मैकार्थर को चीनी सेनाओं को उत्तरी कोरिया के परे हटाने की आज्ञा नहीं दी। परिणाम यह हुआ कि चीन को मारपीट का दंड नहीं देना पड़ा। कोरिया युद्ध के तुरन्त बाद चीन ने तिब्बत को मुक्त करने की बात की। तथ्य यह है कि चीनी सेनाएँ अक्टूबर १९५० में तिब्बत में प्रविष्ट हो चुकी थीं। १९५१ में भारत ने तिब्बत पर चीन का नियन्त्रण एवं अधिकार स्वीकार किया। १९५४ में भारत और चीन में एक मैत्री संधि पर हस्ताक्षर हुए। इस सन्धि में एक दूसरे की क्षेत्रीय अखंडता तथा प्रभुसत्ता, एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना, अनाक्रमण, समानता, पारस्परिक लाभ तथा शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के पाँच सिद्धान्तों का समावेश किया गया। भारत ने तिब्बत में अपने समस्त क्षेत्रीय अधिकारों को छोड़ दिया। यातुंग और ग्यान्त्से की सैनिक चौकियां हटा ली गईं। भारत ने ब्रिटिश सरकार द्वारा तिब्बत में स्थापित डाक एवं तार संचार व्यवस्था को उपहार में चीन को दे दिया। ऐसा होते हुए भी साम्यवादी चीन ने भारतीय क्षेत्र को दबाना शुरू किया और अन्ततः अक्टूबर १९६२ को उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। भारतीय सेनाओं को हराने के बाद साम्यवादी चीन ने एकपक्षीय युद्ध बन्द करने की घोषणा की। अब भी साम्यवादी चीन हजारों वर्गमील भारतीय क्षेत्र को अधिकृत किए हुए है।

वियतनाम (Vietnam)—द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद फ्रांस को फ्रांसीसी इण्डो-चीन में अपने साम्राज्य की रक्षा के लिए उस क्षेत्र में एक भयानक युद्ध लड़ना पड़ा। वियतनामी साम्यवादियों का नेतृत्व डा० हो ची मिन्ह कर रहे थे और साम्यवादी चीन तथा सोवियत संघ उसकी सहायता कर रहे थे। अमरीकी सहायता के होते हुए भी फ्रांस की स्थिति १९५४ के आरंभ में भयानक हो गई। लम्बे विचार-विनिमय के पश्चात् जनेवा में एक समझौता हुआ और विरोधी कार्यवाही समाप्त हुई। उस क्षेत्र में फ्रांस के औपनिवेशिक साम्राज्य को विघटित किया गया। कम्बोडिया और लाओस स्वतन्त्र देश घोषित किए गए। वियतनाम देश को उत्तरी वियतनाम तथा दक्षिणी वियतनाम में विभाजित कर दिया गया। दक्षिणी वियतनाम को स्वतन्त्र बनाया गया और उत्तरी वियतनाम में डा० हो ची मिन्ह की अध्यक्षता में एक साम्यवादी सरकार को मान्यता दी गई। वियतनाम के भविष्य को तय करने के लिए १९५६ में निर्वाचन करने की व्यवस्था की गई। १९५४ के समझौते के होते हुए भी वियतनाम में शान्ति न हुई। अमरीकी सरकार ने साम्यवादी चीन तथा सोवियत संघ द्वारा समर्थित उत्तरी वियतनाम के विरुद्ध दक्षिणी वियतनाम को यथाशक्ति संभव सहायता दी। उत्तरी वियतनाम के अड्डों पर बड़े पैमाने पर बम वर्षा की गई लेकिन युद्ध का अंत न हुआ। राष्ट्रपति जानसन ने ३१ मार्च, १९६८ को घोषणा की कि संयुक्त राज्य उस क्षेत्र में शान्ति स्थापित करने के लिए उत्तरी वियतनाम पर वायु और नौसेना के आक्रमण को रोकेगा। दक्षिणी वियतनाम ने राष्ट्रपति जानसन के इस प्रस्ताव का समर्थन किया और सुझाव दिया कि वियतनाम के भविष्य के बारे में दोनों देशों में पेरिस में वार्ता हो। इस वातावरण में मई १९६८ में दोनों देशों में पेरिस में वार्ता आरम्भ हुई।

कई वर्ष बीत गए परन्तु पेरिस के वार्तालाप का कोई परिणाम न निकला। दोनों दल अपने-अपने दृष्टिकोणों पर जमे रहे और उत्तरी और दक्षिणी वियतनाम में युद्ध होता रहा। यह सत्य है कि अमरीका ने दक्षिणी वियतनाम की सब प्रकार से बड़ी सहायता की परन्तु उत्तरी वियतनाम की सोवियत रूस और साम्यवादी चीन ने भी दिल खोल कर मदद की। अन्त में जनवरी १९७३ में उत्तरी वियतनाम और अमरीका में युद्ध को समाप्त करने के लिए संधि हुई। इसके बावजूद शान्ति की स्थापना न हुई और संधि की अवहेलना की गई। उत्तरी वियतनाम युद्ध की तैयारी करता रहा और अन्त में अप्रैल १९७५ के अन्त में दक्षिणी वियतनाम हार गया और उत्तरी वियतनाम जीत गया। १७ अप्रैल, १९७५ को जनरल लॉन नाल की कम्बोडिया की सरकार हार गई और राजकुमार नोरोडम सीनोक के सहायक जीत गये। लाओस में भी साम्यवादियों का अधिकार स्थापित हो गया।

इण्डोनेशिया (Indonesia)—१९४९ में सुकर्णो की अध्यक्षता में इंडोनेशिया स्वतन्त्र हो गया। हालैण्ड के विरुद्ध उसकी स्वतन्त्रता को प्राप्त करने में भारत ने महत्त्वपूर्ण भाग लिया। १९५५ में बांडुंग सम्मेलन हुआ जिसमें एशिया और अफ्रीका के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इससे इंडोनेशिया के सम्मान में वृद्धि हुई। धीरे-धीरे इण्डोनेशिया साम्यवादी चीन के प्रभाव में आ गया। सितम्बर १९६५ में इण्डोनेशिया में साम्यवादियों ने सत्ता छीनने का प्रयास किया। उस क्रांति में इंडोनेशिया के अनेक जनरल मारे गये लेकिन क्रान्ति असफल रही। उन्हें मुकदमा चलाकर दण्डित किया गया जिनका इस क्रान्ति में हाथ था। राष्ट्रपति सुकर्णो को पदच्युत किया गया। जनरल सुहार्तो सत्तारूढ़ हुआ। धीरे-धीरे उस क्षेत्र की स्थिति ठीक हो गयी।

मलेशिया (Malaysia)—यद्यपि इण्डोनेशिया को द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई थी, मलेशिया भी कुछ संघर्ष के पश्चात् स्वतन्त्र हो गया। जब ग्रेट ब्रिटेन तथा मलेशिया की सरकारों ने ३१ अगस्त, १९६३ तक मलेशिया संघ को स्थापित करने का निर्णय किया तो फिलिपाइन तथा इण्डोनेशिया ने इसका विरोध किया। तो भी विरोध के होते हुए भी मलेशिया का जन्म १६ सितम्बर, १९६३ को हो गया। इण्डोनेशिया ने राष्ट्रपति सुकर्णो के नेतृत्व में मलेशिया का सामना करने की नीति का पालन किया और यह दशा १९६६ तक चलती रही जबकि स्वयं राष्ट्रपति सुकर्णो से उसकी शक्तियाँ छीन ली गयीं। जनरल सुहार्तो ने सामना करने की नीति त्याग दी। सिंगापुर १९६५ में मलेशिया से अलग हो गया और स्वतन्त्र हो गया।

संसार की वर्तमान स्थिति शोचनीय है। दोनों महा शक्तियाँ, संयुक्त राज्य और सोवियत संघ अधिक से अधिक विनाशकारी हथियारों की प्राप्ति की दौड़ में लगे हुए हैं। यह छूत का रोग छोटे देशों को भी लग गया है जो युद्ध की सामग्री पर अधिक से अधिक खर्च कर रहे हैं। यद्यपि अनेक देश ऐसा करने में असमर्थ हैं जैसा कि उनके वार्षिक बजट के बड़े-बड़े घाटों से प्रतीत होता है। सोवियत संघ ने अफगानिस्तान पर अधिकार कर लिया है और संयुक्त राज्य और उसके मित्रों के

कड़े विरोध के बावजूद पीछे हटने को तैयार नहीं है। प्रेसीडेण्ट रीगन के शासन के आधीन संयुक्त राज्य ने सोवियत संघ के समान शक्तिशाली बनने का निश्चय कर लिया है और उस ध्येय को प्राप्त करने के लिए वह वास्तव में बहुत धन खर्च कर रहा है। उसने भारत के विरोध के बावजूद पाकिस्तान को भयानक हथियार देने का निश्चय कर लिया है। चीन भी पाकिस्तान को भारत के विरुद्ध उसकी सैनिक शक्ति मजबूत करने में मदद दे रहा है और संयुक्त राज्य उसकी मदद कर रहा है। ईरान और ईराक के बीच युद्ध जारी है। ईरान में बड़ी मात्रा में फाँसियाँ दी जा रही हैं। प्रेसीडेण्ट सादात की हत्या इस बात का उदाहरण है कि हिंसा का वातावरण फैला हुआ है। इजराईल और अरब देश घोर शत्रु हैं। पेलेस्टाईन समस्या से लगातार खतरा बना हुआ है और शान्ति बनाए रखना कठिन प्रतीत होता है। संसार में बड़े युद्ध के भड़कने का भय सदा बना हुआ है। इसके न होने का केवल यह कारण है कि बड़ी शक्तियाँ यह अनुभव करती हैं कि विश्वयुद्ध होने पर न कोई विजेता होगा और न कोई हारने वाला क्योंकि महायुद्ध से समस्त संसार का विनाश हो सकता है।

Suggested Readings

Anshen, R. N. (Ed.) : *Mid-East : World Centre*, 1956.
Arnold, G. L. : *The Pattern of World Conflict*, 1955.
Bailey, T. : *America Faces Russia*, 1950.
Belloff, Max : *Europe and Europeans*, 1957.
Belloff, Max : *The United States and the Unity of Europe*, 1963.
Ben-Gurion : *Rebirth and Destiny of Israel*, 1957.
Bono, M. J. : *Whither Europe—Union or Partnership ?* 1952.
Boyd and Boyd : *Western Union : A Study af the Trend Toward European Union*, 1949.
Brebner, J. B. : *North Atlantic Triangle*, 1945.
Brinton, C. : *From Many One*, 1948.
Claude, I. L. : *Swords into Plowshares*, 1956.
Council of Europe : *Union of Europe : Its Progress, Problems. Prospects, Place in the Western World*, 1951.
Dunn, F. S. : *War and the Minds of Men*, 1950.
Ellis, H. S. : *The Economies of Freedom*, 1950.
Feis, H. : *Churchill—Roosevelt—Stalin : The War They Waged and the Peace They Sought*, 1957.
Fischer, L. : *This Is Our World*, 1956.
Goitein, S. D. : *Jews and Arabs*, 1955.
Hallstein : *Clayton Lectures.*
Harris, S. E. : *The European Recovery Programme*, 1948.
Hart, B. H. L. : *The Red Army*, 1956.
Hawtrey, R. G. : *Western European Union*, 1949.
Holborn, H. : *The Political Collapse of Europe*, 1951.
Ingram, K. : *The History of the Cold War*, 1955.
Ismay, Lord : *NATO : The First Five Years*, 1954.

Jackson, J. H. : *The Post-War Decade.*
Kennan, George, F. : *American Diplomacy, (1900-1950)*, 1951.
Kintner, W. R.. : *The Front is Everywhere*, 1950.
Lawrence, W. I. : *The Hell Bomb*, 1951.
Ledczowski, G. : *The Middle East in World Affairs*, 1956.
Lippmann, W. : *The Cold War : A Study in U. S. Foreign Policy*, 1947.
Low, Sir Francis : *Struggle for Asia*, 1955.
Middleton, D. : *The Defence of Western Europe*, 1952.
Miksche, Lieut. Col. C.O. : *Atomic Weapons and Armies*, 1965.
Moore, Ben, T. : *NATO : and the Future of Europe*, 1958.
Morgenthau, H. J. : *Germany and the Future of Europe*, 1951.
Opie, Redvers : *The Search for Peace Settlements*, 1951.
Price, H. B. : *Marshall Plan and Its Meaning.*
Robertson, A. H. : *The Council of Europe*, 1956.
Shwadran, B. : *The Middle East, Oil and the Great Powers* 1955.
Smith, H. K. : *The State of Europe*, 1949.
Smith, W. M. : *This Atomic Age and the World of God*, 1948.
Thomson : *The Rise of Modern Asia.*
Turner, A. C. : *Bulwark of the West*, 1953
United States Department of State : *NATO*, 1952.
Vandenbosch and Hogan : *The United Nations* 1952.
Ward, D. : *Policy for the West*, 1951.
White, T. H- : *Fire in the Ashes*, 1953.
Wilmot : *The Struggle for Europe*, 1952.

अनुक्रमणिका (Index)